सूरसागर





काशी नागरीप्रचारिणी स

किरन श्रीवास्तव





नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला—३५

सूरसागर

(पहला खंड)

(गोलोकवासी जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा संगृहीत और सभा की प्रदत्त सामग्री के आधार पर संपादित)



सूर-समिति

श्रीअयोध्यासिंह उपाध्याय
श्रीकेशवप्रसाद मिश्र
श्रीरामचंद्र शुक्ल
सभा के साहित्य-मंत्री

के तत्वावधान में

संपादक

श्रीनंददुलारे वाजपेयी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक : नागरी मुद्रालय, काशी
द्वितीय संस्करण : २००० प्रतियाँ : संवत् २००६ वि०
मूल्य १०)

संपादकीय विज्ञप्ति

प्रसन्नता का विषय है कि 'सूरसागर' का यह संस्करण जिसके संपादन में हमें चार वर्षों से अधिक समय लगा था और जो पिछले दस बारह वर्षों से अप्रकाशित पड़ा था, अब प्रकाश में आ रहा है। सभा द्वारा इसे प्रकाशित करने के कई प्रयत्न इसके पूर्व भी किए गए थे, एक बार तो इसका मासिक पत्राकार 'राजसंस्करण' आठ अंकों तक प्रकाशित भी हुआ था, पर वह कार्य अधूरा ही रहा और बीच में ही स्थगित कर दिया गया। 'सूरसागर' जैसे महान् और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का कोई सुसंपादित प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध न होने के कारण हिंदीभाषी जनता अत्यंत असमंजस में रही है और विशेषतः काव्य-प्रेमियों और सूरकाव्य के अध्येताओं के लिये बड़ी विषम परिस्थिति थी। उन्हें कतिपय छोटे संग्रहों से ही काम चलाना पड़ता था। प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशित होने से यह अभाव अधिक अंश तक दूर हो जायगा और प्रथम बार सूरसागर के समस्त उपलब्ध पदों का शुद्ध पाठ जनसमाज को प्राप्त होगा।

इस विज्ञप्ति के साथ हम यह स्वीकार करते हैं कि प्रस्तुत संस्करण में संपादित प्रति का पूरा उपयोग नहीं किया जा सका है। इसमें समस्त उपलब्ध पद तो दे दिए गए हैं परंतु किन प्राचीन प्रतियों में कौन से पद मिलते हैं और कौन से नहीं मिलते, इसका विवरण नहीं दिया जा सका है। निश्चय ही प्रस्तुत पदावली से कोई सौ पद निर्भ्रांत रूप से प्रक्षिप्त हैं और अन्य कई सौ पद अत्यधिक संदिग्ध हैं। यह सूचना हम पादटिप्पणियों में देना चाहते थे, परंतु प्राचीन प्रतियों की प्रतिलिपि का काल तथा उनकी सापेक्षिक प्रामाणिकता संबंधी वक्तव्य दिए बिना किसी पद के प्रक्षिप्त या संदिग्ध होने का निर्देश मात्र कर देना हमें विशेष समीचीन नहीं प्रतीत हुआ। विभिन्न प्रतियों में पाए जानेवाले पाठभेद तथा राग-रागिनियों-संबंधी उल्लेख भी यहाँ नहीं दिये जा सके हैं। दीर्घ वर्णों का ह्रस्व उच्चारण करने के निमित्त कई स्थानों पर संकेतक चिह्न आवश्यक थे, परंतु यहाँ उनका भी प्रयोग नहीं किया जा सका। महाकवि सूरदास तथा उनके इस महान्

काव्यग्रंथ पर एक प्रशस्त और शोधपूर्ण भूमिका भी आवश्यक थी जो इस संस्करण में नहीं दी जा सकी है। सभा द्वारा व्यवस्था की जा रही है कि ऊपर निर्देश किए गए अंगों की पूर्ति आगामी संस्करण में की जाय और वह संस्करण भी यथासंभव शीघ्र प्रकाशित किया जायं। परंतु जब तक वह प्रस्तावित संस्करण प्रकाशित नहीं होता, तब तक हिंदीभाषी और हिंदीप्रेमी विशाल जनसमूह को सूरसागर के शुद्ध पाठ की यह आरंभिक प्रति ही भेंट की जा रही है। आशा है इसका उचित उपयोग किया जायगा।

'सूरसागर' के इस संस्करण को प्रस्तुत करने की कल्पना सर्वप्रथम स्वर्गीय श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी के मन में हुई थी, जो व्रजभाषा और प्राचीन काव्य के अनन्य प्रेमी और मर्मज्ञ विद्वान् थे। उन्होंने इस संकल्प को पूरा बरने के निमित्त अनेक स्थानों से 'सूरसागर' की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त की थीं और संपादन कार्य की प्रारंभिक रूपरेखा भी बनाई थी। उन्होंने व्रजभाषा व्याकरण संबंधी आवश्यक शोध किए थे और अपने उन विचारों और निर्णयों को लिपिबद्ध भी कर लिया था। व्रजभाषा की प्राचीन पुस्तकों तथा 'सूरसागर' की पुरानी प्रतिलिपियों के आधार पर उन्होंने प्रस्तुत संस्करण के लिये एक सामान्य लिपि-पद्धति का भी निर्माण किया था, परंतु इस आरंभिक सामग्री को लेकर वे संप्रादन-कार्य में संलग्न हो हुए थे, इतने में उनका असामयिक शरीरपात हो गया और उनकी योजना अकृतकार्य ही रही।

'रत्नाकर' जी तथा उनके उत्तराधिकारियों के इच्छानुसार यह कार्य सभा को सौंप दिया गया और वह सम्पूर्ण सामग्री सभा के अधिकार में रख दी गई, जो 'रत्नाकर' जी ने एकत्र की थी। सभा द्वारा समस्त कार्य नए सिरे से आरंभ किया गया। कुछ दिनों तक श्री मुंशी अजमेरी यह कार्य करते रहे, परंतु कुछ ही दिनों में वे इससे उपराम हो गए। सन्'३३ के अंत में सभा के तत्कालीन अधिकारी डा० श्यामसुंदरदास जी ने मुझे इस कार्य के लिये बुलाया और सभा का आदेश पाकर '३४ से ३७ तक चार वर्ष पर्यंत मैं इसमें संलग्न रहा। इस अवधि में मैंने, प्रथम पद से लेकर अंतिम पद तक, समस्त ग्रंथ का संपादन किमा। कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने पूर्ववर्ती संपादकों, विशेषकर श्रो 'रत्नाकर' जी के मूल्यवान निर्देशों का मैंने यथोचित उपयोग किया। सभा तथा हम सभो उनके कृतज्ञ हैं कि उन्होंने व्ययसाध्य

बहुमूल्य सामग्री और दुर्लभ ग्रंथसंग्रह सभा को समर्पित किया जिसके बिना सभा इस संस्करण को इतने विशुद्ध और विश्वस्त रूप में उपस्थित न कर सकती। मैं सभा द्वारा नियोजित 'सूरसमिति' के सदस्यों का भी आभारी हूँ जिनसे समय समय पर उपयोगी परामर्श प्राप्त हुए थे। विशेषतः स्वर्गीय 'हरिऔध' जी के तत्संबंधी मार्मिक सुझाव मुझे सदैव स्मरण रहेंगे। अपने सहायक कार्यकर्त्ताओं, विशेषकर 'रत्नाकर' जी के सहकर्मी श्री चंद्रिकाप्रसाद जी के मूल्यवान सहयोग का उल्लेख करना भी मेरे लिये आवश्यक है। खेद है, वे भी असमय में ही हमारे बीच से उठ गए। इन सब विधायकों, सहकारों और उपायनों के प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए भी संपादन-संबंधी समस्त कार्य और उसकी अनगिन त्रुटियों के लिये मैं किसी अन्य की ओट नहीं ले सकता। वह सारा उत्तरदायित्व मेरा रहा है और उसकी पूरी परीक्षा मुझे ही देनी पड़ेगी। मैं विनीत भाव से सहृदय पाठक-समाज के संमुख उपस्थित होकर समस्त त्रुटियों के लिये क्षमायाचना करता हूँ। सूचना मिलने पर मैं उनके परिहार का प्रयत्न भी करूँगा, और आवश्यकता होने पर अपनी निजी संमतियाँ उन विषयों पर दे सकूँगा जिनके संबध में शंका होगी। परंतु मुझे पूरा परितोष तो तभी प्राप्त होगा जब 'सूरसागर' के चार वर्षों के संपादन-काल के अपने संपूर्ण संपादकीय प्रयत्नों को पाठकों के संमुख उपस्थित कर सकूँगा जिसके आधार पर वे हमारी सफलता असफलता का निर्णय कर सकेंगे। साथ ही सूरदास तथा उनके काव्य के संबंध में विस्तृत प्रस्तावना लिखकर मैं उस अधीत सामग्री का उपयोग कर लेना चाहता हूँ जिसके बिना मेरा चार वर्षों का संपादकीय जीवन अपने प्रयोजन की अभिव्यक्ति नहीं कर सकेगा। इसके लिये पाठक-समाज से आगामी संस्करण की प्रतीक्षा करने का अनुरोध-अनुनय करना ही संप्रति मेरा एकमात्र अवलंब है।

नंददुलारे वाजपेयी

विषय सूची

———



सूरसागर

प्रथम स्कंध

विनय

मंगलाचरण *राग बिलावल*

चरण-कमल बंदौं हरि-राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ ॥१॥

सगुणोपासना *राग कान्हरौ*

अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगैं मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै ॥२॥

भक्त-वत्सलता *राग मारू*

बासुदेव की बड़ी बड़ाई।
जगत-पिता, जगदीस, जगत-गुरु, निज भक्तनि की सहत ढिठाई।
भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर, बोले बचन सकल-सुखदाई।
सिव-बिरंचि मारन कौं धाए, यह गति काहू देव न पाई।
बिनु बदलैं उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई।
रावन अरि कौ अनुज बिभीषन, ताकौं मिले भरत की नाई।
बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई।
बिनु दीन्हैं ही देत सूर-प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाईं ॥३॥

राग धनाश्री

करनी करुना-सिंधु की, मुख कहत न आवै।
कपट हेत परसैं बकी, जननी-गति पावै।
वेद-उपनिषद जासु कौं, निरगुनहिं बतावै।
सोइ सगुन ह्वै नंद की दाँवरी बँधावै।
उग्रसेन की आपदा सुनि सुनि बिलखावै।
कंस मारि, राजा करै, आपहु सिर नावै।
जरासंध बंदी कटैं नृप-कुल जस गावै।
अस्मय-तन गौतम-तिया कौ साप नसावै।
लच्छा-गृह तैं काढ़ि कैं पांडव गृह ल्यावै।
जस गैया बच्छ कैं सुमिरत उठि धावै।
बरुन-पास तैं ब्रजपतिहिं छन माहिँ छुड़ावै।
दुखित गयंदहिं जानि कै आपुन उठि धावै।
कलि मैं नामा प्रगट ताकि छानि छवावै।
सूरदास की बीनती कोउ लै पहुँचावै ।।४।।

राग मारू

ऐसी को करी अरु भक्त काजैं।
जैसी जगदीस जिय धरी लाजैं ।।
हिरनकस्यप बढ़्यो उदय अरु अस्त लौं, हठी प्रह्लाद चित चरन लायौ।
भीर के परे तैं धीर सबहिनि तजी, खंभ तैं प्रगट ह्वै जन छुड़ायौ।
ग्रस्यौ गज ग्राह लै चल्यौ पताल कौं, काल कैं त्रास मुख नाम आयौ।
छाड़ि सुखधाम अरु गरुड़ तजि साँवरौ पवन के गवन तैं अधिक धायौ।
कोपि कौरव गहे केस जब सभा मैं, पांडु की बधू जस नैंकु गायौ।
लाज के साज मैं हुती ज्यौं द्रौपदी, बढ़्यौ तन-चीर नहिं अंत पायौ।
रोर कै जोर तैं सोर घरनी कियौ, चल्यौ द्विज द्वारिका-द्वार ठाढ़ौ।
जोरि अंजलि मिले, छोरि तंदुल लए, इंद्र के विभव तैं अधिक बाढ़ौ।
सक्र कौ दान-बलि-मान ग्वारनि लियौ, गह्यौ गिरि पानि.
जस जगत छायौ।
यहै जिय जानि कैं अंध भव त्रास तैं, सूर कामी-कुटिल सरन आयौ ।।५।।

राग रामकली

का न कियौ जन-हित जदुराई।
प्रथम कह्यौ जो वचन दयारत, तिहिं बस गोकुल गाइ चराई।

भक्तबछ्छल बपु धरि नरकेहरि, दनुज दह्यौ, उर दरि, सुरसाँईं।
बलि बलदेखि, अदिति सुत-कारन, त्रिपद ब्याज तिहुँपुर फिरि आई।
एहि थर बनी क्रीड़ा गज-मोचन और अनंत कथा स्रुति गाई।
सूर दीन प्रभु-प्रगट-बिरद सुनि अजहुँ दयाल पतत सिर नाई ॥६॥

राग रामकली

जहाँ जहाँ सुमिरे हरि जिहिं बिधि, तहँ तैसैं उठि धाए (हो)।
दीन-बंधु हरि, भक्त-कृपानिधि, बेद-पुराननि गाए (हो)।
सुत कुबेर के मत्त-मगन भए, बिषै-रस नैननि छाए (हो)।
मुनि सराप तैं भए जमलतरु, तिन्ह हित आपु बँधाए (हो)।
पट कुचैल, दुरबल द्विज देखत, ताके तंदुल खाए (हो)।
संपति दै वाकी पतिनी कौं, मन-अभिलाख पुराए (हो)।
जब गज गह्यौ ग्राह जल-भीतर, तब हरि कौं उर ध्याए (हो)।
गरुड़ छाँड़ि, आतुर ह्वै धाए, सो तत्काल छुड़ाए (हो)।
कलानिधान, सकल-गुन-सागर, गुरु धौं कहा पढ़ाए (हो)।
तिहिं उपकार मृतक सुत जाँचे, सो जमपुर तैं ल्याए (हो)।
तुम मोसे अपराधी माधव, केतिक स्वर्ग पठाए (हो)।
सूरदास-प्रभु भक्त-बछ्छल तुम, पावन-नाम कहाए (हो) ॥७॥

राग धनाश्री

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ।
अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनि राइ।
तिनका सौं अपने जनकौ गुन मानत मेरु-समान।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं बूँद-तुल्य भगवान।
बदन-प्रसन्न कमल सनमुख ह्वै देखत हौं हरि जैसैं।
बिमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिरि चितयौं तौ तैसैं!
भक्त-बिरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे।
सूरदास ऐसे स्वामी कौं देहिं पीठि सो अभागे ॥८॥

राग नट

हरि सौं ठाकुर और न जन कौं।
जिहिं जिहिं बिधि सेवक सुख पावै, तिहिं बिधि राखत मन कौं।
भूख भए भोजन जु उदर कौं, तृषा तोय, पट तन कौं।
लग्यौ फिरत सुरभी ज्यौं सुत-सँग, औचट गुनि गृह बन कौं।

परम उदार, चतुर चिंतामनि, कोटि कुबेर निधन कौँ।
राखत है जन की परतिज्ञा, हाथ पसारत कन कौँ।
संकट परैँ तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पन कौँ।
कोटिक करै एक नहिँ मानै सूर महा कृतघन कौँ ॥६॥

राग धनाश्री

हरि सौँ मीत न देख्यौ कोई।
बिपति-काल सुमिरत, तिहिँ औसर आनि तिरीछौ होई।
ग्राह गहे गजपति मुकरायौ, हाथ चक्र लै धायौ।
तजि बैकुंठ, गरुड़ तजि, श्री तजि, निकट दास कैँ आयौ।
दुर्वासा कौ साप निवार्यौ, अंबरीष-पति राखी।
ब्रह्मलोक-परजंत फिर्यौ तहँ देव-मुनी-जन साखी।
लाखागृह तैँ जरत पांडु-सुत बुधि-बल नाथ, उबारे।
सूरदास-प्रभु अपने जन के नाना त्रास निवारे ॥१०॥

राग धनाश्री

राम भक्तबत्सल निज बानौँ।
जाति, गोत, कुल, नाम, गनत नहिँ, रंक होइ कै रानौँ।
सिव-ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु, हौँ अजान नहिँ जानौँ।
हमता जहाँ तहाँ प्रभु नाहीँ, सो हमता क्यौँ मानौँ?
प्रगट खंभ तैँ दए दिखाई, जद्यपि कुल कौ दानौ।
रघुकुल राघव कृष्न सदा ही गोकुल कीन्हौँ थानौ।
बरनि न जाइ भक्त की महिमा, बारंबार बखानौँ।
ध्रुव रजपूत, बिदुर दासी-सुत, कौन कौन अरगानौ।
जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, भक्तनि हाथ बिकानौ।
राजसूय मैँ चरन पखारे स्याम लिए कर पानौ।
रसना एक, अनेक स्याम-गुन, कहँ लगि करौँ बखानौ!
सूरदास-प्रभु की महिमा अति, साखी बेद-पुरानौ ॥११॥

राग बिलावल

काहू के कुल तन न बिचारत।
अबिगत की गति कहि न परति है, ब्याध-अजामिल तारत।
कौन जाति अरु पाँति बिदुर की, ताही कैँ पग धारत।
भोजन करत माँगि घर उनकैँ, राज-मान-मद टारत।

ऐसे जनम-करम के ओछे, ओछनि हूँ व्यौहारत।
यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त-बछल-पन पारत ॥१२॥

राग सारंग

गोबिँद प्रीति सबनि की मानत।
जिहिँ जिहिँ भाइ करत जन सेवा, अंतर की गति जानत।
सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई।
जूठनि की कछु संक न मानी, भच्छ किए सत-भाई।
संतत भक्त-मीत हितकारी स्याम बिदुर कैं आए।
प्रेम-बिकल, अति आनँद उर धरि, कदली-छिकुला खाए।
कौरव-काज चले रिषि सापन, साक-पत्र सु अघाए।
सूरदास करुना-निधान प्रभु, जुग जुग भक्त बढ़ाए ॥१३॥

राग रामकली

सरन गए को को न उबारयौ।
जब जब भीर परी संतनि कौँ, चक्र सुदरसन तहाँ सँभारयौ।
भयौ प्रसाद जु अंबरीष कौँ, दुरबासा कौ क्रोध निवारयौ।
ग्वालनि हेत धरयौ गोबर्धन, प्रकट इंद्र कौ गर्ब प्रहारयौ।
कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खंभ फारि हिरनाकुस मारयौ।
नरहरि रूप धरयौ करुनाकर, छिनक माहिँ उर नखनि बिदारयौ
ग्राह ग्रसत गज कौँ जल बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टारयौ।
सूर स्याम बिनु और करै को, रंग-भूमि मैं कंस पछारयौ ॥१४॥

राग केदारौ

जन की और कौन पति राखै ?
जाति-पाँति-कुल-कानि न मानत, बेद-पुराननि साखै।
जिहिँ कुल राज द्वारिका कीन्हौ, सो कुल साप तैं नास्यौ।
सोइ मुनि अंबरीष कैं कारन तीनि भुवन भ्रमि त्रास्यौ।
जाकौ चरनोदक सिव सिर धरि, तीनि लोक हितकारी।
सोइ प्रभु पांडु-सुतनि के कारन निज कर चरन पखारी।
बारह बरस बसुदेव-देवकिहिँ कंस महा दुख दीन्हौ।
तिन प्रभु प्रहलादहिँ सुमिरत हीं नरहरि-रूप जु कीन्हौ।
जग जानत जदुनाथ, जिते जन निज-भुज-स्रम-सुख पायौ !
ऐसौ को जु न सरन गहे तैं कहत सूर उतरायौ ॥१५॥

राग केदारौ

जब जब दीननि कठिन परी।
जानत हौं, करुनामय जन कौं तब तब सुगम करी।
सभा मँझार दुष्ट दुस्सासन द्रौपदि आनि धरी।
सुमिरत पट कौ कोट बढ़यौ तब, दुख-सागर उबरी।
ब्रह्म-बाण तैं गर्भ उबार्यौ, टेरत जरी जरी।
बिपति-काल पांडव-बधु बन मैं राखी स्याम ढरी।
करि भोजन अवसेस जज्ञ कौ त्रिभुवन-भूख हरी।
पाइ पियादे धाइ ग्राह सौं लीन्हौ राखि करी।
तब तब रच्छा करी भगत पर जब जब बिपति परी।
महा मोह मैं पर्यौ सूर प्रभु, काहैं सुधि बिसरी? ॥१६॥

राग रासकली

और न काहुहिं जन की पीर।
जब जब दीन दुखी भयौ, तब तब कृपा करी बलबीर।
गज बल-हीन बिलोकि दसौं दिसि, तब हरि-सरन पर्यौ।
करुनासिंधु, दयाल, दरस दै, सब संताप हर्यौ।
गोपी-ग्वाल-गाय-गोसुत-हित सात दिवस गिरि लीन्हौ।
मागध हत्यौ, मुक्त नृप कीन्हैं, मृतक बिप्र-सुत दीन्हौ।
श्री नृसिंह बपु धर्यौ असुर हति, भक्त-बचन प्रतिपार्यौ।
सुमिरत नाम, द्रुपद-तनया कौ पट अनेक बिस्तार्यौ।
मुनि-मद मेटि दास-व्रत राख्यौ, अंबरीष-हितकारी।
लाखा-गृह तैं, सत्रु-सैन तैं, पांडव-बिपति निवारी।
बरुन-पास ब्रजपति मुकरायौ दावानल-दुख टार्यौ।
गृह आने बसुदेव-देवकी, कंस महा खल मार्यौ।
सो श्रीपति जुग जुग सुमिरन-बस, बेद बिमल जस गावै।
असरन-सरन सूर जाँचत है, को अब सुरति करावै? ॥१७॥

राग केदारौ

ठकुरायत गिरिधर की साँची।
कौरव जीति जुधिष्ठिर-राजा, कीरति तिहूँ लोक मैं माँची।
ब्रह्म-रुद्र डर डरत काल कैं, काल डरत भ्रू-भँग की आँची।
रावन सौ नृप जात न जान्यौ, माया बिषम सीस पर नाची

गुरु-सुत आनि दिए जमपुर तैं बिप्र सुदामा कियौ अजाची।
दुस्सासन कटि बसन छुड़ावत, सुमिरत नाम द्रौपदी बाँची।
हरि-चरनारविंद तजि लागत अनत कहूँ, तिनकी मति काँची।
सूरदास भगवंत भजत जे, तिनकी लीक चहूँ जुग खाँची ॥१८॥

राग मलार

स्याम गरीबनि हूँ के गाहक।
दीनानाथ हमारे ठाकुर, साँचे प्रीति-निवाहक।
कहा बिदुर की जाति-पाँति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक।
कह पांडव कैं घर ठकुराई? अरजुन के रथ-बाहक।
कहा सुदामा कैं धन हौ? तौ सत्य-प्रीति के चाहक।
सूरदास सठ, तातैं हरि भजि आरत के दुख-दाहक ॥१९॥

राग कान्हरौ

जैसैं तुम गज कौ पाउँ छुड़ायौ।
अपने जन कौं दुखित जानि कै पाउँ पियादे धायौ।
जहँ जहँ गाढ़ परी भक्तनि कौं, तहँ तहँ आपु जनायौ।
भक्ति-हेत प्रहलाद उबार्‌यौ, द्रौपदि-चीर बढ़ायौ।
प्रीति जानि हरि गए बिदुर कैं, नामदेव-घर छायौ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा, तिहिं दारिद्र नसायौ ॥२०॥

राग रामकली

नाथ अनाथनि ही के संगी।
दीनदयाल, परम करुनामय, जन-हित हरि बहु-रंगी।
पारथ-तिय कुरुराज सभा मैं बोलि करन चहै नंगी।
स्रवन सुनत करुना-सरिता भए; बढ़्यौ बसन उमंगी।
कहा बिदुर की जाति बरन है, आइ साग लियौ मंगी।
कहा कूबरी सील-रूप-गुन? बस भए स्याम त्रिभंगी।
ग्राह गह्यौ गज बल बिनु ब्याकुल, विकल गात, गति लंगी।
धाइ चक्र लै ताहि उबार्‌यौ, मार्‌यौ ग्राह बिहंगी।
कहा कहौं हरि केतिक तारे, पावन-पद परतंगी।
सूरदास यह बिरह स्रवन सुनि, गरजत अधम अनंगी ॥२१॥

जे जन सरन भजे बनवारी।
ते ते राखि लिए जग-जीवन, जहँ जहँ बिपति परी तहँ टारी।
संकट तैं प्रह्लाद उधार्यौ, हिरनाकसिप-उदर नख फारी।
अंबर हरत द्रुपद-तनया की दुष्ट-सभा मधि लाज सम्हारी।
राख्यौ गोकुल बहुत बिघन तैं, कर-नख पर गोवर्धन धारी।
सूरदास प्रभु सब सुख-सागर दीनानाथ, मुकुंद, मुरारी ॥२२॥

पारथ के सारथि हरि आप भए हैं।
भक्त-बछल नाम निगम गाइ गए हैं।
बाएँ कर बाजि-बाग दाहिन हैं बैठे।
हाँकत हरि हाँक देत गरजत ज्यौं ऐंठे।
छाती लौं छाँह किए सोभित हरि-छाती।
लागन नहिं देत कहूं समर-आँच ताती।
करन-मेघ बान-बूँद भादौं-झरि लायौ।
जित जित मन अर्जुन कौ तितहिं रथ चलायौ।
कौरो-दल नासि नासि कीन्हौं जन-भायौ।
सरन गए राखि लेत सूर सुजस गायो ॥२३॥

राग परज

स्याम-भजन-बिनु कौन बड़ाई ?
बल, बिद्या, धन, धाम, रूप, गुन और सकल मिथ्या सौंजाई।
अंबरीष, प्रह्लाद, नृपति बलि, महा ऊँच पदवी तिन पाई।
गहि सारँग, रन रावन जीत्यौ, लंक बिभीषन फिरी दुहाई।
मानी हार बिमुख दुरजोधन, जाके जोधा हे सौ भाई।
पांडव पाँच भजे प्रभु-चरननि, रनहिं जिताए हैं जदुराई।
राज-रवनि सुमिरे पति-कारन असुर-बंदि तैं दिए छुड़ाई।
अति आनंद सूर तिहिं औसर, कीरति निगम कोटि मुख गाई ॥२४॥

राग बिहागरो

कहा गुन बरनौं स्याम, तिहारे।
कुबिजा, बिदुर, दीन द्विज, गनिका, सबके काज सँवारे।
जज्ञ-भाग नहिं लियौ हेत सौं रिषिपति पतित बिचारे।
भिल्लिनि के फल खाए भाव सौं खाटे-मीठे-खारे।

कोमल कर गोबर्धन धारयौ जब हुते नंद-दुलारे।
दधि-मिस आपु बँधायौ दाँवरि, सुन कुबेर के तारे।
गरुड़ छाँड़ि प्रभु पायँ पियादे गज-कारन पग धारे।
अब मोसौं अलसात जात हो अधम-उधारनहारे!
कहँ न सहाय करी भक्तनि की पांडव जरत उबारे।
सूर परी जहँ बिपति दीन पर, तहाँ बिघन तुम टारे ॥२५॥

राग सारंग

भक्तनि हित तुम कहा न कियौ?
गर्भ परीच्छित-रच्छा कीन्ही, अंबरीष-व्रत राखि लियौ।
जन प्रहलाद-प्रतिज्ञा पुरई, सखा बिप्र-दारिद्र हयौ।
अंबर हरत द्रौपदी राखी, ब्रह्म-इंद्र को मान नयौ।
पांडव कौ दूतत्व कियौ पुनि, उग्रसेन कौं राज दयौ।
राखी पैज भक्त भीषम की, पारथ कौ सारथी भयौ।
दुखित जानि दोउ सुत कुबेर के, नारद-साप निबृत्त कियौ।
करि बल-बिगत उबारि दुष्ट तैं, ग्राह ग्रसत बैकुंठ दियौ।
गौतम की पतिनी तुम तारी, देव, दवानल कौं अँचयौ।
सूरदास-प्रभु भक्त-बछल हरि, बलि-द्वारैं दरबान भयौ ॥२६॥

राग धनाश्री

ऐसैहिं जनम बहुत बौरायौ।
बिमुख भयौ हरि-चरन-कमल तजि, मन संतोष न आयौ।
जब जब प्रगट भयौ जल थल मैं, तब तब बहु बपु धारे।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह-बस, अतिहिं किए अघ भारे।
नृग, कपि, बिप्र, गीध, गनिका, गज, कंस-केसि-खल तारे।
अघ, बक, बृषभ, बकी धेनुक हति, भव-जल-निधि तैं उबारे।
संखचूड़, मुष्टिक, प्रलंब अरु तृनाबर्त संहारे।
गज-चानूर हते दव नास्यौ, ब्याल मथ्यौ, भयहारे!
जन-दुख जानि, जमलद्रुम-भंजन, अति आतुर ह्वै धाए।
गिरि कर धारि इंद्र-मद मर्द्यौ, दासनि सुख उपजाए।
रिपु कच गहत द्रुपद-तनया जब सरन सरन कहि भाषी।
बढ़े दुकूल-कोट अंबर लौं, सभा-माँझ पति राखी।

मृतक जिवाइ दिए गुरु के सुत, व्याध परम गति पाई।
नंद-बरुन-बंधन-भय-मोचन, सूर पतित सरताई ॥२७॥

राग धनाश्री

तातैं जानि भजे बनवारी। सरनागत की ताप निवारी।
जन-प्रह्लाद-प्रतिज्ञा पारी। हिरनकसिपु की देह बिदारी
ध्रुवहिं अभै पद दियौ मुरारी। अंबरीष की गुर्गति टारी।
द्रुपद-सुता जब प्रगट पुकारी। गहत चीर हरि नाम उबारी।
गज, गनिका, गौतम-तिय तारी। सूरदास सठ, सरन तुम्हारी ॥२८॥

राग धनाश्री

ऐसे कान्ह भक्त हितकारी।
जहाँ जहाँ जिहिं काल सम्हारे, तहँ तहँ त्रास निवारी।
धर्म-पुत्र जब जज्ञ उपायौ, द्विज मुख ह्वै पन लीन्हौं।
अस्व-निमित उत्तर दिसि कैं पथ गमन धनंजय कीन्हौं।
अहिपति-सुता-सुवन सन्मुख ह्वै बचन कह्यौ इक हीनौ।
पारथ बिमल बभ्रुबाहन कौं सीस-खिलौना दीनौ।
इतनी सुनत कुंति उठि धाई, बरषत लोचन नीर।
पुत्र-कबंध अंक भरि लीन्हौ, धरति न इक छिन धीर।
लै लै स्रोन हृदय लपटावति, चुंबति भुजा गँभीर
त्यागति प्रान निरखि सायक धनु, गति-मति-बिकल-सरीर।
ठाढ़े भीम, नकुल, सहदेवऽरु नृप सब कृष्न समेत।
पौढ़े कहा समर-सेज्या सुत, उठि किन उत्तर देत!
थकित भए कछु मंत्र न फुरई, कीने मोह अचेत।
या रथ बैठि बंधु की गर्जहिं पुरवै को कुरुखेत?
काकौ बदन निहारि द्रौपदी दीन दुखी संभरिहै?
काकी ध्वजा बैठि कपि किलकिहि, किहिं भय दुरजन डरिहै?
काके हित श्रीपति ह्याँ ऐहैं, संकट इच्छा करिहैं?
को कौरव-दल-सिंधु मथन करि या दुख पार उतरिहै?
चिंता मानि, चितै अंतर-गति, नाग-लोक कौं धाए।
पारथ-सीस सोधि अष्टाकुल, तब जदुनंदन ल्याए।
अमृत-गिरा बहुत बरषि सूर-प्रभु, भुज गहि पार्थ उठाए।
अस्व समेत बभ्रुवाहन लै, सुफल जज्ञ-हित आए।

राग गौरी

मोहन के मुख ऊपर वारी।
देखत नैन सबै सुख उपजत, बार बार तातैं बलिहारी।
ब्रह्मा बाल बछरुवा हरि गयौ, सो ततछन सारिखे सँवारी।
कीन्हौं कोप इंद्र बरषारितु, लीला लाल गोवर्धन धारी।
राखी लाज समाज माहिँ जब, नाथ नाथ द्रौपदी पुकारी।
तीनि लोक के ताप निवारन, सूर स्याम सेवक-सुखकारी ॥३०॥

राग सोरठ

गोविंद गाढ़े दिन के मीत।
गज अरु व्रज प्रहलाद, द्रौपदी, सुमिरत ही निहचीत।
लाखागृह पांडवनि उबारे, साक-पत्र मुख नाए।
अंबरीष-हित साप निवारे, व्याकुल चले पराए।
नृप-कन्या कौ व्रत प्रतिपारयौ, कपट वेष इक धारयौ।
तामैं प्रगट भए श्रीपति जू, अरि-गन-गर्व प्रहारयौ।
कोटि छ्यानबै नृप-सेना सब, जरासंध बँध छोरे।
ऐसैं जन परतिज्ञा राखत, जुद्ध प्रगट करि जोरे।
गुरु-बांधव-हित मिले सुदामहिँ, तंदुल पुनि पुनि जाँचत।
भगत-बिरह कौ अतिहीं कादर, असुर-गर्व-बल नासत।
संकट-हरन-चरन हरि प्रगटे, वेद बिदित जस गावै।
सूरदास ऐसे प्रभु तजि कै, घर घर देव मनावै! ॥३१॥

राग आसावरी—तिताला

प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साँचौ।
पोषन भरन बिसंभर साहब, जो कलपै सो काँचौ।
जब गजराज ग्राह सौं अटक्यौ, बली बहुत दुख पायौ।
नाम लेत ताही छिन हरि जू, गरुड़हिँ छाँड़ि छुड़ायौ।
दुस्सासन जब गही द्रौपदी, तब तिहिँ बसन बढ़ायौ।
सूरदास प्रभु भक्तबछल हैँ, चरन सरन हौं आयौ ॥३२॥

राग सारंग

हरै बलबीर बिना को पीर?
साराँग-पति प्रगटे साराँग तैं, जानि दीन पर भीर।

सारँग बिकल भयौ सारँग मैं, सारँग तुल्य सरीर।
परयौ काम सारँग-बासी सौं, राखि लियौ बलवीर।
सारँग इक सारँग ह्वै लोट्यौ, सारँगही कैं तीर।
सारँग-पानि राय ता ऊपर, गए परीच्छत कीर।
गहैँ दुष्ट द्रुपदी कौ सारँग, नैननि बरसत नीर।
सूरदास प्रभु अधिक कृपा तैं, सारँग भयौ गँभीर ॥३३॥

राग सारंग

हरि के जन सब तैं अधिकारी।
ब्रह्मा महादेव तैं को बड़, तिनकी सेवा कछु न सुधारी।
जाँचक पैं जाँचक कह जाँचै ? जौ जाँचै तौ रसना हारी।
गनिका-सुत सोभा नहिं पावत, जाके कुल कोऊ न पिता री।
तिनकी साखि देखि, हिरनाकुस-कुटुँब-सहित भई ख्वारी।
जन प्रह्लाद प्रतिज्ञा पाली, कियौ बिभीषन राजा भारी।
सिला तरी जल माहिँ सेत बँधि, बलि वह चरन अहिल्या तारी।
जे रघुनाथ-सरन तकि आए, तिनकी सकल आपदा टारी।
जिहिँ गोविंद अचल ध्रुव राख्यौ, रवि-ससि किए प्रदच्छिनकारी।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु धरनी जननि बोझ कत भारी ! ॥३४॥

राग सारंग

जापर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन, बड़ौ सुंदर सोइ, जिहिँ पर कृपा करै।
कौन बिभीषन रंक-निसाचर, हरि हँसि छत्र धरै।
राजा कौन बड़ौ रावन तैं, गर्बहिँ-गर्ब गरै।
रंकव कौन सुदामाहूँ तैं, आप समान करै।
अधम कौन है अजामील तैं, जम तहँ जात डरै।
कौन बिरक्त अधिक नारद तैं, निसि-दिन भ्रमत फिरै।
जोगी कौन बड़ौ संकर तैं, ताकौं काम छरै।
अधिक कुरूप कौन कुबिजा तैं, हरि पति पाइ तरै।
अधिक सुरूप कौन सीता तैं, जनम बियोग भरै।
यह गति-मति जानै नहिं कोऊ, किहिँ रस रसिक ढरै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु फिरि फिरि जठर जरै ॥३५॥

राग सारंग

जाकौं दीनानाथ निवाजैं।
भव-सागर मैं कबहुँ न झूकै, अभय निसाने बाजैं।
बिप्र सुदामा कौं निजि दीन्हीं, अर्जुन रन मैं गाजैं।
लंका राज बिभीषन राजैं, ध्रुव आकास बिराजैं।
मारि कंस-केसी मथुरा मैं, मेट्यौ सबै दुराजैं।
उग्रसेन-सिर छत्र धर्यौ है, दानव दस दिसि भाजैं।
अंबर गहत द्रौपदी राखी, पलटि अंध-सुत लाजैं।
सूरदास प्रभु महा भक्ति तैं, जाति अजातिहिँ साजैं॥३६॥

राग देवगंधार

जाकौं मनमोहन अंग करै।
ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जौ जग बैर परै।
हिरनकसिपु-परहार थक्यौ, प्रहलाद न नैंकु डरै।
अजहूँ लगि उत्तानपाद-सुत, अबिचल राज करै।
राखी लाज द्रुपद-तनया की, कुरुपति चीर हरै।
दुरजोधन कौ मान भंग करि बसन-प्रबाह भरै।
जौ सुरपति कोप्यौ ब्रज ऊपर क्रोध न कछू सरै।
ब्रज-जन राखि नंद कौ लाला, गिरिधर बिरद धरै।
जाकौ बिरद है गर्ब-प्रहारी, सो कैसै बिसरै।
सूरदास भगवंत-भजन करि, सरन गए उबरै॥३६॥

राग केदारौ

जाकौं हरि अंगीकार कियौ।
ताके कोटि बिघन हरि हरि कै, अभै प्रताप दियौ।
दुरबासा अँबरीष सतायौ, सो हरि-सरन गयौ।
परतिज्ञा राखी मन-मोहन फिरि तापैं पठयौ।
बहुत सासना दल प्रहलादहिँ, ताहि निसंक कियौ।
निकसि खंभ तैं नाथ निरंतर, निज जन राखि लियौ।
मृतक भए सब सखा जिवाए, बिष-जल जाइ पियौ।
सूरदास भक्तबछल हैं, उपमा कौं न बियौ।

राग बिलावल

कहा कमी जोग राम धनी।
मनसा-नाथ मनोरथ-पूरन, सुख-निधान जाकी मौज घनी।
अर्थ, धर्म अरु काम, मोच्छ, फल, चारि पदारथ देत गनी।
इंद्र समान हैं जाके सेवक, नर बपुरे की कहा गनी।
कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी अपनी।
खाइ न सकै खरचि नहिं जानै, ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी।
आनंद-मगन राम-गुन गावै, दुख-सँताप की काटि तनी।
सूर कहत जे भजत राम कौं, तिनसौं हरि सौं सदा बनी ॥३६॥

राग बिलावल

हरि के जन की अति ठकुराई।
महाराज, रिषिराज, राजमुनि, देखत रहे लजाई।
निरभय देह, राज-गढ़ ताकौ, लोक मगन-उतसाहु।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ये भए चोर तैं साहु।
दृढ़ बिस्वास कियौ सिंहासन, तापर बैठे भूप।
हरि-जस बिमल छत्र सिर ऊपर, राजत परम अनूप।
हरि-पद-पंकज पियौ प्रेम-रस, ताही कैं रँग रातौ।
मंत्री ज्ञान न औसर पावै, कहत बात सकुचातौ।
अर्थ-काम दोउ रहैं दुवारैं, धर्म-मोच्छ सिर नावैं।
बुद्धि-बिवेक बिचित्र पौरिया, समय न कबहूँ पावैं।
अष्ट महा-सिधि द्वारैं ढाढ़ीं, कर जोरे, डर लीन्हे।
छरीदार बैराग बिनोदी, झिरकि बाहिरैं कीन्हे।
माया, काल, कछू नहिं ब्यापै, यह रस-रीति जो जानै।
सूरदास यह सकल समग्री, प्रभु-प्रताप पहिचानै ॥४०॥

तुम्हरैं भजन सबहि सिंगार।
जो कोउ प्रीति करै पद-अंबुज, उर मंडत निरमोलक हार।
किंकिनि नूपुर पाट पटंबर, मानौ लिये फिरैं घर-बार।
मानुष-जनम पोत नकली ज्यौं, मानत भजन-बिना बिस्तार।
कलिमल दूरि करन के काजैं, तुम लीन्हौ जग मैं अवतार।
सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसैं सूकर-स्वान-सियार ॥४१॥

माया-वर्णन *राग केदारौ*

बिनती सुनौ दीन की चित दै, कैसैं तुव गुन गावै ?
माया नटी लकुटि कर लीन्हें कोटिक नाच नचावै।
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति, नाना स्वाँग बनावै।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै।
मन अभिलाष-तरंगनि करि करि, मिथ्या निसा जगावै।
सोवत सपने मैं ज्यौं संपति, त्यौं दिखाइ बौरावै।
महा मोहिनी मोहि आतमा, अपमारगहिं लगावै।
ज्यौं दूती पर-बधू भोरि कै, लै पर-पुरुष दिखावै।
मेरे तो तुम पति, तुमहीं गति, तुम समान को पावै ?
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, को मो दुख बिसरावै।।४२।।

राग केदारौ

हरि, तुव माया को न बिगोयौ ?
सौ जोजन मरजाद सिंधु की, पल मैं राम बिलोयौ।
नारद मगन भए माया मैं, ज्ञान-बुद्धि-बल खोयौ।
साठि पुत्र अरु द्वादस कन्या, कंठ लगाए जोयौ।
संकर कौ मन हरयौ कामिनी, सेज छाँड़ि भू सोयौ।
चारु मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नख-सिख तैं रोयौ।
सौ भैया दुरजोधन राजा, पल मैं गरद समोयौ।
सूरदास कंचन अरु काँचहिं, एकहिं धगा पिरोयौ।।४३।।

राग सारंग

(गोपाल) तुम्हरी माया महाप्रबल, जिहिं सब जग बस कीन्हौ (हो)।
नैंकु चितै, मुसक्याइ कै, सब कौ मन हरि लीन्हौ (हो)।
पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहै (हो)।
कटि लहँगा नीलौ बन्यौ, को जो देखि न मोहै (हो) ?
चोली चतुरानन ठग्यौ, अमर उपरना राते (हो)।
अँतरौटा अवलोकि कै, असुर महा-मद माते (हो)।
नैकु दृष्टि जहँ परि गई, सिव-सिर टोना लागे (हो)।
जोग-जुगति बिसरी सबै, काम-क्रोध-मद जागे (हो)।
लोक-लाज सब छुटि गई, उठि धाए सँग लागे (हो)।
सुनि याके उतपात कौं, सुक सनकादिक भागे (हो)।

बहुत कहाँ लौं बरनिऐ, पुरुष न उबरन पावै (हो)।
भरि सोवै सुख-नींद मैं, तहाँ सु जाइ जगावै (हो)।
एकनि कौं दरसन ठगै, एकनि के सँग सोवै (हो)।
एकनि लै मंदिर चढ़ै, एकनि बिरचि बिगोवै (हो)।
अकथ कथा याकी कछू, कहत नहीँ कहि आई (हो)।
छैलनि कै सँग यौं फिरै, जैसैं तनु सँग छाईं (हो)।
इहिँ बिधि इहिँ डहके सबै, जल-थल-नभ-जिय जेते (हो)।
चतुर-सिरोमनि नंद-सुत, कहौं कहाँ लगि तेते (हो)।
कछु कुल-धर्म न जानई, रूप सकल जग राँच्यौ (हो)।
बिनु देखैं, बिनहीं सुनैं, ठगत न कोऊ बाँच्यौ (हो)!
इहिँ लाजनि मरिऐ सदा, सब कोउ कहत तुम्हारी (हो)।
सूर स्याम इहिँ बरजि कै, मेटौ अब कुल गारी (हो) ॥४४॥

राग बिहागरौ

हरि, तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कह करौं, तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ।
जबै आवौं साधु-संगति, कछुक मन ठहराइ।
ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता, बहुरि बहै सुभाइ।
बेष धरि धरि हरयौ पर-धन, साधु-साधु कहाइ।
जैसे नटवा लोभ-कारन करत स्वाँग बनाइ।
करौं जतन, न भजौं तुमकौं, कछुक मन उपजाइ।
सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ ॥४५॥

राग बिहागरौ

माधौ जू, मन माया बस कीन्हौ।
लाभ-हानि कछु समुझत नाहीं, ज्यौं पतंग तन दीन्हौ।
गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर।
मैं मति-हीन मरम नहिँ जान्यौ, परयौ अधिक करि दौर।
बिवस भयौं नलिनी के सुक ज्यौं, बिन गुन मोहि गह्यौ।
मैं अज्ञान कछू नहिँ समुझयौं, परि दुख-पुंज सह्यौ।
बहुतक दिवस भए या जग मैं, भ्रमत फिरयौ मति-हीन।
सूर स्यामसुंदर जौ सेवैं, क्यौं होवै गति दीन ॥४६॥

अब हौं माया हाथ-बिकानौ।
परबस भयौ पसू ज्यौं रजु-वस, भज्यौ न श्रीपति रानौ।
हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आसाहीं लपटानौ।
याही करत अधीन भयौ हौं, निद्रा अति न अघानौ।
अपने हीं अज्ञान-तिमिर मैं, बिसरयौ परम ठिकानौ।
सूरदास की एक आँखि है, ताहू मैं कछु कानौ ॥४७॥

राग धनाश्री

दीन जन क्यौं करि आवै सरन ?
भूल्यौ फिरत सकल जल-थल-मग, सुनहु ताप-त्रय-हरन।
परम अनाथ, बिवेक-नैन बिनु, निगम-ऐन क्यौं पावै ?
पग पग परत कर्म-तम-कूपहिं, को करि कृपा बचावै ?
नहिं कर लकुटि सुमति-सतसंगति, जिहिं अधार अनुसरई।
प्रबल अधार मोह-निधि दस-दिसि, सुधौं कहा अब करई।
अखुटित रटत सभीत, ससंकित, सुकृत सब्द नहिं पावै।
सूर स्याम-पद-नख-प्रकास बिनु, क्यौं करि तिमिर नसावै ॥४८॥

राग धनाश्री

अब सिर परी ठगौरी देव।
तातैं बिवस भयौं करुनामय, छाँड़ि तिहारी सेव।
माया-मंत्र पढ़त मन निसि-दिन मोह-मूरछा आनत।
ज्यौं मृग नाभि-कमल निज अनुदिन निकट रहत नहिं जानत।
भ्रम-मद-मत्त, काम-तृष्ना-रस-बेग, न क्रमै गह्यौ।
सूर एक पल गहरु न कीन्ह्यौ, किहिं जुग इतौ सह्यौ ! ॥४६॥

राग धनाश्री

माया देखत ही जु गई।
ना हरि-हित, ना तू-हित, इनमैं एकौ तौ न भई !
ज्यौं मधुमाखी सँचति निरंतर, बन की ओट लई।
व्याकुल होत हरे ज्यौं सरबस, आँखिनि धूरि दई।
सुत-संतान-स्वजन-बनिता-रति, घन समान उनई।
राखे सूर पवन पाखँड हति, करी जो प्रीति नई ॥५०॥
२

अविद्या-वर्णन *राग मलार*

माधौ जू, यह मेरी इक गाइ।
अब आज तैँ आप-आगैँ दई, लै आइयै चराइ।
यह अति हरहाई, हटकत हूँ बहुत अमारग जाति।
फिरति बेद-बन-ऊख उखारति, सब दिन अरु सब राति।
हित करि मिलै लेहु गोकुलपति, अपने गोधन माहँ।
सुख सोऊँ सुनि बचन तुम्हारे, देहु कृपा करि बाँह।
निधरक रहौ सूर के स्वामी, जनि मन जानौ फेरि।
मन-ममता रुचि सौँ रखवारी, पहिलैँ लेहु निबेरि ॥५१॥

राग धनाश्री

किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए।
पर-निंदा रसना के रस करि, केतिक जनम बिगोए।
तेल लगाइ कियौ रुचि-मर्दन, बस्तर मलि-मलि धोए।
तिलक बनाइ चले स्वामी ह्वै, विषयिनि के मुख जोए।
काल बली तैँ सब जग काँप्यौ, ब्रह्मादिक हूँ रोए।
सूर अधम की कहौ कौन गति, उदर भरे, परि सोए ॥५२॥

राग बिलावल

यह आसा पापिनी दहै।
तजि सेवा बैकुंठनाथ की, नीच नरनि कैँ संग रहै।
जिनकौ मुख देखत दुख उपजत, तिनकौं राजा-राय कहै।
धन-मद-मूढ़नि, अभिमानिनि, मिलि, लोभ लिए दुर्बचन सहै।
भई न कृपा स्यामसुंदर की, अब कहा स्वारथ फिरत बहैँ ?
सूरदास सब-सुख-दाता-प्रभु-गुन बिचारि नहिँ चरन गहै ॥५३॥

राग सारंग

इहिँ राजस को को न बिगोयौ ?
हिरनकसिपु, हिरनाच्छ आदि दै, रावन, कुंभकरन कुल खोयौ।
कंस, केसि, चानूर, महाबल करि निरजीव जमुन-जल बोयौ।
जज्ञ-समय सिसुपाल सुजोधा अनायास लै जोति समोयौ।
ब्रह्मा-महादेव-सुर-सुरपति नाचत फिरत महा रस भोयौ।
सूरदास जो चरन-सरन रह्यो, सो जन निपट नींद भरि सोयौ ॥५४॥

राग सारंग

फिरि फिरि ऐसोई है करत।
जैसैं प्रेम पतंग दीप सौं, पावक हू न डरत।
भव-दुख-कूप ज्ञान करि दीपक, देखत प्रगट परत।
काल-व्याल, रज-तम-विष-ज्वाला कत जड़ जंतु जरत!
अबिहित बाद-बिवाद सकल मत इन लगि भेष धरत!
इहिं बिधि भ्रमत सकल निसि-दिन गत, कछू न काज सरत।
अगम सिंधु जतननि सजि नौका, हठि क्रम-भार भरत।
सूरदास-व्रत यहै, कृष्ण भजि, भव जलनिधि उतरत ॥५५॥

तृष्णा-वर्णन *राग केदारौ*

माधौ, नैंकु हटकौ गाइ।
भ्रमत निसि-बासर अपथ-पथ, अगह गहि नहिं जाइ।
छुधित अति न अघाति कबहूँ, निगम-द्रुम दलि खाइ।
अष्ट-दस-घट नीर अँचवति, तृषा तउ न बुझाइ।
छहौं रस जौ धरौं आगैं, तउ न गंध सुहाइ।
और अहित अभच्छ भच्छति, कला बरनि न जाइ।
व्योम, धर, नद, सैल, कानन इते चरि न अघाइ।
नील खुर अरु अरुन लोचन, सेत सींग सुहाइ।
भुवन चौदह खुरनि खूँदति, सु धौं कहाँ समाइ।
ढीठ, निठुर, न डरति काहूँ, त्रिगुन ह्वै समुहाइ।
हरै खल-बल दनुज-मानव-सुरनि सीस चढ़ाइ।
रचि-बिरंचि मुख-भौंह-छबि, लै चलति चित्त चुराइ।
नारदादि सुकादि मुनिजन थके करत उपाइ।
ताहि कहु कैसैं कृपानिधि, सकत सूर चराइ? ॥५६॥

राग देवगंधार

कहत हे, आगैं जपिहैं राम।
बीचहिं भई और की औरै परयौ काल सौं काम।
गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयौ बिस्राम।
बालापन खेलतहीं खोयौ, जोबन जोरत दाम।
अब तौ जरा निपट नियरानी, करयौ न कछुवै काम।
सूरदास प्रभु कौं बिसरायौ बिना लिएँ हरि-नाम ॥५७॥

राग कान्हरौ

रे मन, जग पर जानि ठगायौ।
धन-मद, कुल-मद, तरुनी कैं मद, भव-मद, हरि बिसरायौ।
कलि-मल-हरन, कालिमा-टारन, रसना स्याम न गायौ।
रसमय जानि सुधा सेमर कौं चोंच घालि पछितायौ।
कर्म-धर्म, लीला-जस, हरि-गुन, इहिँ रस छाँव न आयौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु कहु कैसैं सुख पायौ! ॥५८॥

राग नट

रे मन, छाँड़ि विषय कौ रँचिबौ।
कत तूँ सुवा होत सेमर कौ, अंतहिँ कपट न बचिबौ।
अंतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगौ पचिबौ;
तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिबौ।
सतगुरु कह्यौ, कहौं तोसौं हौं, राम-रतन धन सँचिबौ।
सूरदास-प्रभु हरि-सुमिरन बिनु जोगी-कपि ज्यौं नचिबौ ॥५६॥

राग देवगंधार

चौपरि जगत मड़े जुग बीते।
गुन पाँसे, क्रम अंक, चारि गति सारि न कबहूँ जीते।
चारि पसार दिसानि, मनोरथ घर, फिरि फिरि गिनि आनै।
काम-क्रोध-मद-संग मूढ़ मन खेलत हार न मानै।
बाल-विनोद बचन हित-अनहित बार बार मुख भाखै।
मानौ बग बगदाइ प्रथम दिसि आठ-सात-दस नाखै।
षोड़स जुक्ति, जुवति चित षोड़स, षोड़स बरस निहारै।
षोड़स अंगनि मिलि प्रजंक पै छ-दस अंक फिरि डारै।
पंद्रह पित्र-काज, चौदह दस-चारि पठे, सर साँधे।
तेरह रतन कनक रुचि द्वादस अटन जरा जग बाँधे।
नहिँ रुचि पंथ, पयादि डरनि छकि पंच एकादस ठानै।
नौ दस आठ प्रकृति तृष्ना सुख सदन सात संधानै।
पंजा पंच प्रपंच नारि-पर भजत, सारि फिरि मारी।
चौक चबाउ भरे दुबिधा छकि रस रचना रुचि धारी।
बाल, किसोर, तरुन, जर, जुग सो सुपक सारि ढिग ढारी।
सूर एक पौ नाम बिना नर फिरि फिरि बाजी हारी ॥६०॥

राग सारंग

अब कैसैं पैयत सुख माँगे ?
जैसोइ बोइयै तैसोइ लुनिऐ, कर्मन भोग अभागे।
तीरथ-व्रत कछुवै नहिं कीन्हौ, दान दियौ नहिं जागे।
पछिले कर्म सम्हारत नाहीं, करत नहीं कछु आगे।
बोवत बबुर दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे।
सूरदास तुम राम न भजि कै, फिरत काल सँग लागे ॥६१॥

रे मन, गोविंद के ह्वै रहियै।
इहिं संसार अपार बिरत ह्वै, जम की त्रास न सहियै।
दुख, सुख, कीरति, भाग आपनैं आइ परै सो गहियै।
सूरदास भगवंत-भजन करि अंत बार कछु लहियै ॥६२॥

रे मन, अजहूँ क्यौं न सम्हारै।
माया-मद मैं भयौ मत्त, कत जनम बादिहीं हारै।
तू तौ बिषया-रंग रँग्यो है, बिन धोए क्यौं छूटै।
लाख जतन करि देखौ, तैसैं बार-बार बिष घूटै।
रस लै-लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई।
फिर औटाए स्वाद जात है, गुर तैं खाँड़ न होई।
सेत, हरौ, रातौ अरु पियरौ रंग लेत है धोई।
कारौ अपनौ रंग न छाँड़ै, अनरँग कबहुँ न होई।
कुबिजा भई स्याम-रँग-राती, तातैं सोभा पाई।
ताहि सबै कंचन सम तौलैं अरु श्री-निकट समाई।
नंद-नँदन-पद-कमल छाँड़ि कै माया-हाथ बिकानौ।
सूरदास आपुहिं समुझावै, लोग बुरौ जिनि मानौ ॥६३॥

राग धनाश्री

जनम साहिबी करत गयौ।
काया-नगर बड़ी गुंजाइस, नाहिंन कछु बढ़यौ।
हरि कौ नाम, दाम खोटे लौं, झकि-झकि डारि दयौ।
बिषया-गाँव अमल कौ टोटौ, हँसि-सँसि कै उमयौ।
नैन-अमीन, अधर्मिनि कैं बस, जहँ कौ तहाँ छयौ।
दगाबाज कुतवाल काम रिपु, सरबस लूटि लयौ।

पाप उजीर कह्यौ सोइ मान्यौ, धर्म-सुधन लुटयौ।
चरनोदक कौँ छाँड़ि सुधा-रस, सुरा-पान अँचयौ।
कुबुधि-कमान चढ़ाइ कोप करि, बुधि-तरकस रितयौ।
सदा सिकार करत मृग-मन कौ, रहत मगन भुरयौ।
घेरयौ आइ कुटुम-लसकर मैँ, जम अहदी पठयौ।
सूर नगर चौरासी भ्रमि-भ्रमि, घर-घर कौ जु भयौ ॥६४॥

राग धनाश्री

नर तैँ जनम पाइ कह कीनो ?
उदर भरयौ कूकर-सूकर लौँ, प्रभु कौ नाम न लीनौ।
श्री भागवत सुनी नहिँ श्रवननि, गुरु गोबिँद नहिँ चीनौ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन बिषया मैँ दीनौ।
झूठौ सुख अपनो करि जान्यो, परस प्रिया कैँ भीनौ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बलहीनौ।
लख चौरासी जोनि भरमि कै फिरि वाहीँ मन दीनौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु ज्यौं अंजलि-जल छीनौ ॥६५॥

राग कान्हरौ

नीकैँ गाइ गुपालहिँ मन रे।
जा गाए निर्भय पद पाई अपराधी अनगन रे।
गायौ गीध, अजामिल, गनिका, गायौ पारथ-धन रे।
गायौ स्वपच परम अघ-पूरन, सुत पायौ बाम्हन रे।
गायौ ग्राह-ग्रसत गज जल मैँ, खंभ बँधे तैँ जन रे।
गाए सूर कौन नहिँ उबरयौ, हरि परिपालन पन रे ॥६६॥

राग केदारौ

रह्यो मन सुमिरन कौ पछितायौ।
यह तन राँचि राँचि करि बिरच्यौ, कियौ आपनौ भायौ।
मन-कृत-दोष अथाह तरंगिनि तरि नहिँ सक्यौ, समायौ।
मेल्यौ जाल काल जब खैँच्यौ, भयौ, मीन जल-हायौ।
कीर पढ़ावत गनिका तारी, ब्याध परम पद पायौ।
ऐसौ सूर नाहिँ कोउ दूजौ, दूरि करै जम-दायौ ॥६६॥

राग सारंग

सब तजि भजिऐ नंद-कुमार।
और भजे तैं काम सरै नहिं, मिटै न भव-जंजार।
जिहिं जिहिं जौनि जन्म धारयौ, बहु जोरयौ अघ कौ भार।
तिहिं काटन कौं समरथ हरि कौ तीछन नाम-कुठार।
बेद, पुरान, भागवत, गीता, सब कौ यह मत सार।
भव-समुद्र हरि-पद-नौका बिनु कोउ न उतारै पार।
यह जिन जानि, इहाँ छिन भजि, दिन बीते जात असार।
सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार ॥६८॥

राग सूहा बिलावल

यहई मन आनंद-अवधि सब।
निरखि सरूप बिवेक-नयन भरि, या सुख तैं नहिं और कछू अब।
जित चकोर-गति करि अतिसय रति, तजि स्रम सघन विषय लोभा।
चिंति चरन-मृदु-चारु-चंद-नख, चलत चिह्न चहुँ दिसि सोभा।
जानु सुजघन करभ-कर-आकृति, कटि प्रदेस किंकिनि राजै।
ह्रद बिध नाभि, उदर त्रिबली बर, अवलोकत भव-भय भाजै।
उरग-इंद्र उनमान सुभग भुज, पानि पदुम आयुध राजैं।
कनक-बलय, मुद्रिका मोदप्रद, सदा सुभग संतनि काजैं।
उर बनमाल बिचित्र बिमोहन, भृगु-भँवरी भ्रम कौं नासै।
तड़ित-बसन घन-स्याम सहस तन, तेज-पुंज तम कौं त्रासै।
परम रुचिर मनि-कंठ किरनि-गन, कुंडल-मुकुट-प्रभा न्यारी।
बिधु मुख, मृदु मुसुक्यानि अमृत सम,सकल लोक-लोचन प्यारी।
सत्य-शील-संपन्न सुमूरति, सुर-नर-मुनि-भक्तनि भावै।
अंग-अंग-प्रति-छबि-तरंग-गति सूरदास क्यौं कहि आवै ! ॥६९॥

रे मन, आपु कौं पहिचानि।
सब जनम तैं भ्रमत खोयौ, अजहुँ तौ कछु जानि।
ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताकैं पास।
भ्रमत हीं वह दौरि ढूंढै, जबहिं पावै वास।
भरम ही बलवंत सब मैं, ईसहू कैं भाइ।
जब भगत भगवंत चीन्है, भरम मन तैं जाइ।

सलिल कौं सब रंग तजि कै, एक रंग मिलाइ।
सूर जो द्वै रंग त्यागै, यहै भक्त सुभाइ ॥७०॥

राग रामकली

राम न सुमिरयौ एक घरी।
परम भाग सुक्रित के फल तैं सुंदर देह धरी।
जिहिं जिहिं जोनि भ्रम्यौ संकट-बस सोइ-सोइ दुखनि भरी।
काम-क्रोध-मद-लोभ-गरब मैं, बिसरयौ स्याम हरी।
भैया-बंधु-कुटुंब घनेरे, तिनतैं कछु न सरी।
लै देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी।
मरती बेर सम्हारन लागे, जो कछु गाड़ि धरी।
सूरदास तैं कछु सरी नहिं, परी काल-फँसरी ॥७१॥

नर देही पाइ चित्त चरन-कमल दीजै।
दीन बचन, संतनि-सँग दरस-परस कीजै।
लीला-गुन अंमृत रस स्रवननि-पुट पीजै।
सुंदर मुख निरखि, ध्यान नैन माहिं लीजै।
गद्गद सुर, पुलक रोम, अंग भीजै।
सूरदास गिरिधर-जस गाइ गाइ जीजै ॥७२॥

राग धनाश्री

जनम सिरानौई सौ लाग्यौ।
रोम रोम, नख-सिख लौं मेरैं महा अघनि बपु पाग्यौ।
पंचनि के हित-कारन यह मन जहँ तहँ भरमत भाग्यौ।
तीनौ पन ऐसैं ही खोए, समय गए पर जाग्यौ।
तौ तुम कोऊ तारयौ नहिं, जौ, मोसौं पतित न दाग्यौ।
हौं स्रवननि सुनि कहत न एकौ, सूर सुधारौ आग्यौ ॥७३॥

राग नट

गाइ लेहु मेरे गोपालहिं।
नातरु काल-व्याल लेते है, छाँड़ि देहु तुम सब जंजालहिं।
अंजलि के जल ज्यौं तन छीजत, खोटे कपट तिलक अरु मालहिं।
कनक-कामिनी सौं मन बाँध्यौ, ह्वै गज चल्यौ स्वान की चालहिं।

सकल सुखनि के दानि आनि उर, दृढ़ बिस्वास भजौ नँदलालहिँ।
सूरदास जो संतनि कौँ हित, कृपावंत मेटत दुख-जालहिँ ॥७४॥

राग धनाश्री

जौ हरि-ब्रत निज उर न धरैगौ।
तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावँ पकरैगौ।
आन देव की भक्ति-भाइ करि, कोटिक कसब करैगौ।
सब वे दिवस चारि मन-रंजन, अंत काल बिगरैगौ।
चौरासी लख जोनि जन्मि जग, जल-थल भ्रमत फिरैगौ।
सूर सुकृत सेवक सोइ साँचौ, जो स्यामहिँ सुमिरैगौ ॥७५॥

राग सारंग

अंत के दिन कौँ हैँ घनस्याम।
माता-पिता-बंधु-सुत तौ लगि, जौ लगि जिहिँ कौँ काम।
आमिष-रुधिर-अस्थि अँग जौलौँ, तौलौँ कोमल चाम।
तौ लगि यह संसार सगौ है जौ लगि लेहि न नाम।
इतनी जउ जानत मन मूरख, मानत याहीँ धाम।
छाँड़ि न करत सूर सब भव-डर बृंदाबन सौँ ठाम ॥७६॥

राग बिलावल

तेरौ तब तिहिँ दिन, को हितू हो हरि बिन,
सुधि करि कै कृपिन, तिहिँ चित आनि।
जब अति दुख सहि, कठिन करम गहि,
राख्यौ हो जठर महिँ स्रोनित सौँ सानि।
जहाँ न काहू कौ गम, दुसह दारुन तम,
सकल बिधि विषय, खल मल खानि।
समुझि धौँ जिय महिँ, को जन सकत नहि,
बुधि बल कुल तिहिँ, जायौ काकी कानि!
वैसी आपदा तैँ राख्यौ, तोष्यौ, पोष्यौ, जिय दयौ,
मुख - नासिका - नयन - स्रौन - पद - पानि।
सुनि कृतघन, निसि-दिन कौ सखा आपन,
अब जो बिसार्‌यौ करि बिनु पहिचानि।

अजहुँ सँग रहत, प्रथम लाज गहत,
संतत सुभ चहत, प्रिय जन जानि।
सूर सो सुहृद मानि, ईस्वर अंतर जानि,
सुनि सठ, झूठौ हठ-कपट न ठानि ॥७७॥

राग धनाश्री

जनम तौ ऐसेहिँ बीति गयौ।
जैसैँ रंक पदारथ पाए, लोभ बिसाहि लयौ।
बहुतक जन्म पुरीष-परायन, सूकर-स्वान भयौ।
अब मेरी मेरी करि बौरे, बहुरौ बीज बयौ।
नर कौ नाम पारगामी हो, सो तोहिँ स्याम दयौ।
तैँ जड़ नारिकेल कपि-कर ज्यौँ, पायौ नाहिँ पयौ।
रजनी गत बासर मृगतृष्ना रस हरि कौ न चयौ।
सूर नंद-नंदन जेहिँ बिसरयौ, आपुहिँ आपु हयौ ॥७८॥

राग धनाश्री

प्रीतम जानि लेहु मन माहीँ।
अपनैँ सुख कौँ सब जग बाँध्यौ, कोउ काहू कौ नाहीँ।
सुख मैँ आइ सबै मिलि बैठत, रहत चहूँ दिसि घेरे।
बिपति परी तब सब सँग छाँड़े, कोउ न आवै नेरे।
घर की नारि बहुत हित जासौँ, रहति सदा सँग लागी।
जा छन हंस तजी यह काया, प्रेत प्रेत कहि भागी।
या बिधि कौ ब्यौहार बन्यौ जग, तासौं नेह लगायौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, नाहक जनम गवायौ ॥७९॥

राग बिलावल

क्यौँ तू गोबिँद नाम बिसारौ ?
अजहूँ चेति, भजन करि हरि कौ, काल फिरत सिर ऊपर भारौ।
धन-सुत-दारा काम न आवैँ, जिनहिँ लागि आपुनपौ हारौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चल्यो पछिताइ, नयन जल ढारौ ॥८०॥

राग कान्हरौ

जौ अपनौ मन हरि सौँ राँचै।
आन उपाय-प्रसंग छाँड़ि कै, मन-बच-क्रम अनुसाँचै।

निसि-दिन नाम लेत ही रसना, फिरि जु प्रेम-रस माँचै।
इहिँ बिधि सकल लोक मैँ बाँचै, कौन कहै अब साँचै।
सीत-उष्न, सुख-दुख नहिँ मानै, हर्ष-सोक नहिँ खाँचै।
जाइ समाइ सूर वा निधि मैँ, बहुरि जगत नहिँ नाचै ॥८१॥

राग टोड़ी

जो घट अंतर हरि सुमिरै।
ताकौ काल रूठि का करिहै, जो चित चरन धरै।
कोपै तात प्रह्लाद भगत कौ, नामहिँ लेत जरै।
खंभ फारि नरसिंह प्रगट ह्वै असुर के प्रान हरै।
सहस बरस गज युद्ध करत भए, छिन इक ध्यान धरै।
चक्र धरे बैकुँठ तैँ धाए, वाकी पैज सरै।
अजामील द्विज सौं अपराधी, अंतकाल बिडरै।
सुत-सुमिरत नारायन-बानी, पार्षद धाइ परैँ।
जहँ जहँ दुसह कष्ट भक्तनि कौँ, तहँ तहँ सार करैं।
सूरजदास स्याम सेए तैँ दुस्तर पार तरै ॥८२॥

राग सोरठ

करि हरिसौँ सनेह मन साँचौ।
निपट कपट की छाँड़ि अटपटी, इंद्रिय बस राखहिँ किन पाँचौ?
सुमिरन कथा सदा सुखदायक, विषधर विषय विषम-विष-बाँचौ।
सूरदास प्रभु हित कै सुमिरौ जौ, तौ आनँद करिकै नाँचौ ॥८३॥

राग टोड़ी

हरि बिन अपनौ को संसार।
माया-लोभ-मोह हैँ चाँड़े काल-नदी की धार।
ज्यौँ जन संगति होत नाव मैँ, रहति न परसैँ पार।
तैसैँ धन-दारा-सुख-संपति, बिछुरत लगै न बार।
मानुष-जनम, नाम नरहरि कौ, मिलै न बारंबार।
इहिँ तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गँवार।
जैसैँ अंधौ अंध कूप मैँ गनत न खाल-पनार।
तैसेहिँ सूर बहुत उपदेसैँ सुनि सुनि गे कै बार ॥८४॥

राग धनाश्री

हरि बिनु मीत नहीँ कोउ तेरे।
सुनि मन, कहौँ पुकारि तोसौँ हौँ, भजि गोपालहिँ मेरे।
या संसार विषय-बिष-सागर, रहत सदा सब घेरे।
सूर स्याम बिनु अंतकाल मैँ कोउ न आवत नेरे ॥८५॥

राग झिँझौटी

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरि जैहैँ।
या देही कौ गरब न करियै, स्यार-काग-गिध खैहैँ।
तीननि मैँ तन कृमि, कै बिष्टा, कै ह्वै खाक उड़ैहै।
कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रँग-रूप दिखैहै।
जिन लोगनि सौँ नेह करत है, तेई देखि घिनैहैँ।
घर के कहत सबारे काढ़ौ, भूत होइ धरि खैहैँ।
जिन पुत्रनिहिँ बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनैहैँ।
तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैँ।
अजहूँ मूढ़ करौ सतसंगति, संतनि मैँ कछु पैहै।
नर-बपु धारि नाहिँ जन हरि कौँ, जम की मार सो खैहै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु बृथा सु जनम गँवैहै ॥८६॥

राग बिहाग—तिंताला

अब तौ यहै बात मन मानी।
छाड़ौ नाहिँ स्याम-स्यामा की वृंदावन रजधानी।
भ्रम्यौ बहुत लघु धाम बिलोकत छन-भंगुर दुखदानी।
सर्वोपरि आनंद अखंडित सूर-मरम लपिटानी ॥८७॥

राग सोरठ

नहिँ अस जनम बारंबार।
पुरबलौ धौँ पुन्य प्रगट्यौ; लह्यौ नर-अवतार।
घटै पल-पल बढ़ै छिन-छिन, जात लागि न बार।
धरनि पत्ता गिरि परे तैँ फिरि न लागै डार।
भय-उदधि जमलोक दरसै, निपट ही अँधियार।
सूर हरि कौ भजन करि-करि उतरि पल्ले-पार ॥८८॥

नाम-महिमा

राग बिलावल

को को न तर्‌यौ हरि-नाम लिएँ।
सुवा पढ़ावत गनिका तारी, व्याध तर्‌यौ सर-घात किएँ।
अंतर-दाह जु मिट्यौ व्यास कौ इक चित ह्वै भागवत किएँ।
प्रभु तैं जन, जन तैं प्रभु बरतत, जाकी जैसी प्रीति हिएँ।
जौ पै राम-भक्ति नहिं जानी, कह सुमेरु सम दान दिएँ?
सूरजदास बिमुख जो हरि तैं, कहा भयौ जुग कोटि जिएँ! ॥८९॥

अद्‌भुत राम नाम के अंक।
धर्म-अँकुर के पावन द्वै दल, मुक्ति-बधू-ताटंक।
मुनि-मन-हंस-पच्छ-जुग, जाकैं बल उड़ि ऊरध जात।
जनम-मरन-काटन कौं कर्तरि तीछन बहु बिख्यात।
अंधकार-अज्ञान हरन कौं रबि-ससि जुगल-प्रकास।
बासर-निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास।
दुहूँ लोक सुखकरन, हरनदुख, बेद-पुराननि साखि।
भक्ति ज्ञान के पंथ सूर ये, प्रेमनिरंतर भाखि ॥९०॥

अब तुम नाम गहौ मन नागर।
जातैं काल-अगिनि तैं बाँचौ, सदा रहौ सुख-नागर।
मारि न सकै, बिघन नहिं ग्रासै, जम न चढ़ावै कागर।
क्रिया-कर्म करतहु निसि-बासर भक्ति कौ पंथ उजागर।
सोचि बिचारि सकल-स्रुति-सम्मति, हरि तैं और न आगर।
सूरदास प्रभु इहिं औसर भजि उतरि चलौ भवसागर ॥९१॥

राग सारंग

हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत नहिं कबहूँ, आवत गाढ़ैं काम।
जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसौ हरि-नाम।
बैकुंठनाथ सकल सुख-दाता, सूरदास-सुख-धाम ॥९२॥

राग गौरी

तुम्हारी एक बड़ी ठकुराई।
प्रति दिन जन-जन कर्म सबासन नाम हरे जदुराई।

कुसुमित धर्म-कर्म कौ मारग जउ कोउ करत बनाई।
तदपि बिमुख पाँती सो गनियत, भक्ति हृदय नहिँ आई।
भक्ति पंथ मेरे अति नियरैँ जब तब कीरति गाई।
भक्ति-प्रभाव सूर लखि पायौ, भजन-छाप नहिँ पाई ॥६३॥

बिनती *राग केदारौ*

बंदौँ चरन-सरोज तिहारे।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान-पियारे।
जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तैँ नहिँ टारे।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रहलाद सँभारे।
जे पद-पदुम-परस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे।
जे पद-पदुम-परस रिषि-पतिनी बलि, नृग, ब्याध, पतित बहु तारे।
जे पद-पदुम रमत बृंदाबन अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनि सरबस दै, सुत-सदन बिसारे।
जे पद-पदुम रमत पांडव-दल दूत भए, सब काज सँवारे।
सूरदास तेई पद-पंकज त्रिबिध-ताप-दुख-हरन हमारे ॥६४॥

राग धनाश्री

हरि जू, तुमतैँ कहा न होइ ?
बोलै गुंग, पंगु गिरि लंघै अरु आवै अंधौ जग जोइ।
पतित अजामिल, दासी कुबिजा, जिनके कलिमल डारे धोइ।
रंक सुदामा कियौ इंद्र-सम पांडव-हित-कौरव-दल खोइ।
बालक मृतक जिवाइ दए प्रभु, तब गुरु-द्वारैँ आनँद होइ।
सूरदास-प्रभु इच्छापूरन, श्रीगुपाल सुमिरौ सब कोइ ॥६५॥

राग सोरठ

बिनती करत मरत हौँ लाज।
नख-सिख लौँ मेरी यह देही है पाप की जहाज।
और पतित आवत न आँखि-तर देखत अपनौ साज।
तीनौँ पन भरि ओर निबाह्यौ तऊ न आयौ बाज।
पाछैँ भयौ न आगैँ ह्वै है, सब पतितनि सिरताज।
नरकौ भयौ नाम सुनि मेरौ, पीठि दई जमराज।

अबलौं नान्हे-नून्हे तारे, ते सब बृथा अकाज।
साँचैं बिरद सूर के तारत, लोकनि-लोक अवाज ॥६६॥

राग सोरठ

अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान।
ताकैं डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारै प्रान?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान।
सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय-जय कृपानिधान ॥६७॥

राग विहागरौ

हृदय की कबहुँ न जरनि घटी।
बिनु गोपाल बिथा या तन की कैसैं जाति कटी।
अपनी रुचि जित ही जित ऐंचति इंद्रिय-कर्म-गटी।
हौं तित हीं उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी।
झूठौ मन, झूठी सब काया, झूठी आरभटी।
अरु झूठनि के बदन निहारत मारत-फिरत-लटी।
दिन-दिन हीन छीन भइ काया दुख-जंजाल-जटी।
चिंता कीन्हैं भूख भुलानी, नींद फिरति उचटी।
मगन भयौ माया-रस लंपट, समुझत नाहिं हटी।
ताकैं मूँड़ चढ़ी नाचति है मीचऽति नीच नटी।
किंचित स्वाद स्वान-बानर ज्यौं, घातक रीति ठटी।
सूर सुजल सींचियै कृपानिधि, निज जन चरन तटी ॥६८॥

राग केदारौ

अब कैं नाथ, मोहिं उधारि।
मगन हौं भव-अंबुनिधि मैं, कृपासिंधु मुरारि!
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल कौं गहे ग्राह अनंग।
मीन इंद्री तनहिं काटत, मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार।

क्रोध-दम्भ-गुमान-तृष्ना पवन अति झकझोर।
नाहिँ चितवन देत सुत-तिय, नाम-नौका ओर।
थक्यौ बीच बिहाल, बिह्वल, सुनौ करुना-मूल!
स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज कैं कूल ।।९९।।

राग सारंग

माधौ जू, मन हठ कठिन पर्‌यौ।
जद्यपि बिद्यमान सब निरखत, दुःख सरीर भर्‌यौ।
बार-बार निसि-दिन अति आतुर, फिरत दसौं दिसि धाए।
ज्यौं सुक सेमर-फूल बिलोकत, जात नहीँ बिनु खाए।
जुग-जुग जनम, मरन अरु बिछुरन, सब समुझत मत-भेव।
ज्यौँ दिनकरहिँ उलूक न मानत, परि आई यह टेव।
हौँ कुचील, मति-हीन सकल बिधि, तुम कृपालु जग जान।
सूर-मधुप निसि कमल-कोष-बस, करौ कृपा-दिन-भान ।।१००।।

राग धनाश्री

आछौ गात अकारथ गार्‌यौ।
करी न प्रीति कमल-लोचन सौँ, जनम जुवा ज्यौँ हार्‌यौ।
निसि-दिन बिषय-बिलासनि बिलसत, फूटि गईं तब चार्‌यौ।
अब लाग्यौ पछितान पाइ दुख, दीन, दई कौ मार्‌यौ।
कामी, कृपन, कुचील, कुदरसन, को न कृपा करि तार्‌यौ।
तातैं कहत दयाल देव-मनि, काहैँ सूर बिसार्‌यौ? ।।१०१।।

राग सारंग

माधौ जू, मन सबही बिधि पोच।
अति उनमत्त, निरंकुस, मैगल, चिंता-रहित, असोच।
महा मूढ़ अज्ञान-तिमिर महँ, मगन होत सुख मानि।
तेली के वृष लौँ नित भरमत, भजत न सारँगपानि।
गीध्यौ दुष्ट हेम तस्कर ज्यौँ, अति आतुर मति-मंद।
लुबध्यौ स्वाद मीन-आमिष ज्यौँ अवलोक्यौ नहिँ फंद।
ज्वाला-प्रीति प्रगट सन्मुख हठि, ज्यौँ पतंग तन जार्‌यौ।
बिषय-असक्त, अमित-अघ-व्याकुल, तबहूँ कछू न सँभार्‌यौ।

ज्यौं कपि सीत-हरन-हित गुंजा सिमिट होत लौलीन ।
त्यौं सठ वृथा तजत नहिँ कबहूँ, रहत विषय-आधीन ।
सेमर-फूल सुरँग अति निरखत, मुदित होत खग-भूप ।
परसत चोँच तूल उघरत मुख, परत दुःख कैँ कूप ।
जहाँ गयौ तहँ भलौ न भावत, सब कोऊ सकुचानौ ।
ज्ञान और बैराग भक्ति प्रभु, इनमैँ कहूँ न सानौ ।
और कहाँ लौँ कहौँ एक मुख, या मन के कृत काज ।
सूर पतित तुम पतित-उधारन, गहौ बिरद की लाज ॥१०२॥

राग सारंग

मेरौ मन मति-हीन गुसाईँ ।
सब सुख-निधि पद कमल छाँड़ि, स्रम करत स्वान की नाईँ ।
फिरत वृथा भाजन अवलोकत, सूनैँ सदन अजान ।
तिहिँ लालच कबहूँ, कैसैँहूँ, तृप्ति न पावत प्रान ।
कौर-कौर-कारन कुबुद्धि, जड़, किते सहत अपमान ।
जहँ-जहँ जात तहीँ तहिँ त्रासत अस्म, लकुट, पद-त्रान ।
तुम सर्वज्ञ, सबै बिधि पूरन, अखिल-भुवन-निज-नाथ ।
तिन्हैँ छाँड़ि यह सूर महा सठ, भ्रमत भ्रमनि कैँ साथ ॥१०३॥

राग गौरी

दयानिधि तेरी गति लखि न परै ।
धर्म अधर्म, अधर्म, धर्म करि, अकरन करन करै ।
जय अरु बिजय कर्म कह कीन्हौ, ब्रह्म-सराप दिवायौ ।
असुरज्ञ-जोनि ता ऊपर दीन्ही, धर्म-उछेद करायौ ।
पिता-बचन खंडै सो पापी, सोइ प्रहलादहिँ कीन्हौ ।
निकसे खंभ-बीच तैँ नरहरि, ताहि अभय पद दीन्हौ ।
दान-धर्म बहु कियौ भानु-सुत, सो तुव बिमुख कहायौ ।
बेद-बिरुद्ध सकल पांडव-कुल, सो तुम्हरे मन भायौ ।
जज्ञ करत बैरोचन को सुत, बेद-बिहित-बिधि-कर्मा ।
सो छलि बाँधि पताल पठायौ, कौन कृपानिधि धर्मा ?
द्विज कुल-पतित अजामिल बिषयी, गनिका-हाथ बिकायौ ।
सुत-हित नाम लियौ नारायन, सो बैकुंठ पठायौ ।

पतिव्रता जालंधर-जुवती, सो पति-व्रत तैं टारी।
दुष्ट पुंस्चली, अधम सो गनिका सुवा पढ़ावत तारी।
मुक्ति-हेत जोगी स्रम साधै, असुर बिरोधैं पावै।
अविगत गति करुनामय तेरी, सूर कहा कहि गावै ॥१०४॥

राग सारंग

अबिगत-गति जानी न परै।
मन-बच-कर्म-अगाध, अगोचर, किहिं बिधि बुधि सँचरै?
अति प्रचंड पौरुष बल पाएँ, केहरि भूख मरै।
अनायास बिनु उद्यम कीन्हैं, अजगर उदर भरै।
रीतै भरै, भरैं पुनि ढारै, चाहै फेरि भरै।
कबहुँक तृन बूड़ै पानी मैं, कबहुँक सिला तरै।
बागर तैं सागर करि डारै, चहुं दिसि नीर भरै।
पाहन-बीच कमल बिकसावै, जल मैं अगिनि जरै।
राजा रंक, रंक तैं राजा, लै सिर छत्र धरै।
सूर पतित तरि जाइ छिनक मैं, जो प्रभु नैंकु ढरै ॥१०५॥

राग केदारौ

अपनी भक्ति देहु भगवान।
कोटि लालच जौ दिखावहु, नाहिनैं रुचि आन।
जा दिना तैं जनम पायौ, यहै मेरी रीति।
बिषय-बिष हठि खात, नाहीं डरत करत अनीति।
जरत ज्वाला, गिरत गिरि तैं, स्वकर काटत सीस।
देखि साहस सकुच मानत, राखि सकत न ईस।
कामना करि कोटि कबहूँ किए बहु पसु-घात।
सिंह-सावक ज्यौं तजैं गृह, इंद्र आदि डरात।
नरक कूपनि जाइ जमपुर परयौ बार अनेक।
थके किंकर-जूथ जमके, टरत टारैं न नेक।
महा माचल, मारिबे की सकुचि नाहिं न मोहिं।
किए प्रन हौं परयौं द्वारैं, लाज प्रन की तोहिं।
नाहिं काँचौ कृपा-निधि हौं, करौ कहा रिसाइ।
सूर तबहुँ न द्वार छाँड़ैं, डारिहौ कढ़िराइ ॥१०६॥

राग धनाश्री

जन के उपजत दुख किन काटत ?
जैसैं प्रथम-असाढ़-आँजु-तृन, खेतिहर निरखि उपाटत।
जैसैं मीन किलकिला दरसत, ऐसैं रहौ प्रभु डाटत।
पुनि पाछैं अघ-सिंधु बढ़त है, सूर खाल किन पाटत ॥१०७॥

राग कान्हरौ

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।
महा पतित, कबहूँ नहिं आयौ, नैंकु तिहारैं काज।
माया सबल धाम-धन-बनिता बाँध्यौ हौं इहिं साज।
देखत-सुनत सबै जानत हौं, तऊ न आयौ बाज।
कहियत पतित बहुत तुम तारे, स्रवननि सुनी अवाज।
दई न जाति खेवट उतराई, चाहत चढ्यौ जहाज ?
लीजै पार उतारि सूर कौं महाराज ब्रजराज।
नई न करन कहत प्रभु, तुम हो सदा गरीब-निवाज ॥१०८॥

राग बिलावल

महा प्रभु तुम्हैं बिरद की लाज।
कृपा-निधान, दानि दामोदर, सदा सँवारन काज।
जब गज-चरन ग्राह गहि राख्यौ, तबहीं नाथ पुकारयौ।
तजि कै गरुड़ चले अति आतुर, नक्र चक्र करि मारयौ।
निसि-निसि ही रिषि लिए सहस-दस दुरबासा पग धारयौ।
ततकालहिं तब प्रगट भए हरि, राजा-जीव उबारयौ।
हिरनाकुस प्रहलाद भक्त कौं बहुत सासना जारयौ।
रहि न सके, नरसिंह रूप धरि, गहि कर असुर पछारयौ।
दुस्सासन गहि केस द्रौपदी, नगन करन कौं ल्यायौ।
सुमिरत ही ततकाल कृपानिधि, बसन-प्रवाह बढ़ायौ।
मागधपति बहु जीति महीपति, कछु जिय मैं गरबाए।
जीत्यौ जरासंध, रिपु मारयौ, बल करि भूप छुड़ाए।
महिमा अति अगाध, करुनामय भक्त-हेत हितकारी।
सूरदास पर कृपा करौ अब, दरसन देहु मुरारी ॥१०९॥

राग धनाश्री

सरन आए की प्रभु, लाज धरिऐ।
सध्यौ नहिँ धर्म सुचि, सील, तप, व्रत कछू, कहा मुख लै तुम्हँ बिनै करिऐ।
कछू चाहौँ कहौँ, सकुचि मन मैँ रहौँ, आपने कर्म लखि त्रास आवै।
यहै निज सार, आधार मेरौ यहै, पतित-पावन बिरद वेद गावै।
जन्म तैँ एक टक लागि आसा रही, विषय-विष खात नहिँ तृप्ति मानी।
जो छिया छरद करि सकल संतन्हि तजी, तासु तैँ मूढ़-मति प्रीति ठानी।
पाप-मारग जिते, सबै कीन्हेँ तिते, बच्यौ नहिँ कोउ जहँ सुरति मेरी।
सूर अवगुन भर्यौ, आइ द्वारैँ पर्यौ, तकै गोपाल अब सरन तेरी॥११०॥

राग धनाश्री

प्रभु, मेरे गुन-अवगुन न बिचारौ।
कीजै लाज सरन आए की, रवि-सुत-त्रास निवारौ।
जोग-जज्ञ-जप-तप नहिँ कीन्हौ, वेद बिमल नहिँ भाख्यौ।
अति रस-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौँ, अनत नहीँ चित राख्यौ।
जिहिँ जिहिँ जोगि फिर्यौ संकट-बस तिहिँ तिहिँ यहै कमायौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-ग्रसित ह्वै बिषय परम बिष खायौ।
जौ गिरिपति मसि घोरि उदधि मैँ, लै सुरतरु बिधि हाथ।
मम कृत दोष लिखै बसुधा भरि, तऊ नहीँ मिति नाथ।
तुमहिँ समान और नहिँ दूजौ काहि भजौँ हौँ दीन।
कामी, कुटिल, कुचील, कुदरसन, अपराधी, मति-हीन।
तुम तौ अखिल, अनंत, दयानिधि, अबिनासी, सुख-रासि।
भजन-प्रताप नाहिँ मैँ जान्यौ, पर्यौँ मोह की फाँसि।
तुम सरबज्ञ, सबै बिधि समरथ, असरन-सरन मुरारि।
मोह-समुद्र सूर बूड़त है, लीजै भुजा पसारि॥१११॥

राग सारंग

तुम हरि, साँकरे के साथी।
सुनत पुकार, परम आतुर ह्वै, दौरि छुड़ायौ हाथी।
गर्भ परीच्छित रच्छा कीन्ही, वेद-उपनिषद साखी।
बसन बढ़ाइ द्रुपद-तनया की सभा माँझ पति राखी।

राज-रवनि गाईं व्याकुल ह्वै, दै दै तिनकौं धीरक।
मागध हति राजा सब छोरे, ऐसे प्रभु पर-पीरक।
कपट रूप निसिचर तन धरिकै अमृत पियौ गुन मानी।
कठिन परैं ताहू मैं प्रगटे, ऐसे प्रभु सुख-दानी।
ऐसैं कहौं कहाँ लगि गुन-गन, लिखत अंत नहिं लहिऐ।
कृपासिंधु उनहीं के लेखैं मम लज्जा निरबहिऐ।
सूर तुम्हारी आसा निबहै, संकट मैं तुम साथै।
ज्यौं जानौ त्यौं करौ, दीन की बात सकल तुव हाथै ॥११२॥

राग सारंग

तुम बिनु साँकरैं को काकौ।
तुमहीं देहु बताइ देवमनि, नाम लेउँ धौं ताकौ।
गर्भ परीच्छित इच्छा कीनी, हुतौ नहीं बस माँ कौ।
मेटी पीर परम पुरुषोत्तम, दुख मेट्यौ दुहुँ-घाँ कौ।
हा करुनामय कुंजर टेर्‍यौ, रह्यौ नहीं बल, थाकौ।
लागि पुकार तुरत छुटकायौ, काट्यौ बंधन ताकौ।
अंबरीष कौं साप देन गयौ, बहुरि पठायौ ताकौं।
उलटी गाढ़ परी दुर्बासैं, दहत सुदरसन जाकौं।
निधरक भए पांडु-सुत डोलत, हुतौ नहीं डर काकौ ?
चारौं बेद चतुर्मुख ब्रह्मा जस गावत हूँ ताकौ।
जरासिंधु कौ जोर उघार्‍यो, फारि कियो द्वै फाँकौ।
छोरी बंदि बिदा किए राजा, राजा ह्वै गए राँकौ।
सभा-माँझ द्रौपदि-पति राखी, पति पानिप कुल ताकौ।
बसन-ओट करि कोट बिसंभर, परन न दीन्हौ झाँकौ।
भीर परैं भीषम-प्रन राख्यौ, अर्जुन कौ रथ हाँकौ।
रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हौ, भक्तबछल-प्रन ताकौ।
नरहरि ह्वै हिरनाकुस मार्‍यौ, काम पर्‍यौ हो बाँकौ।
गोपीनाथ सूर के प्रभु कैं बिरद न लाग्यौ टाँकौ ॥११३॥

राग कान्हरौ

तुम्हारी कृपा गोपाल गुसाईं, हौं अपने अज्ञान न जानत।
उपजत दोष नैन नहिं सूझत, रवि की किरनि उलूक न मानत।

सब सुख-निधि हरिनाम महामनि, सो पाएहुँ नाहीँ पहिचानत।
परम कुबुद्धि, तुच्छरस-लोभी, कौड़ी लगि मग की रज छानत।
सिव कौ धन, संतनि कौ सरबस, महिमा बेद-पुरान बखानत।
इते मान यह सूर महा सठ, हरि-नग बदलि, बिषय-बिष आनत ॥११४॥

राग बिलावल

अपनैं जान मैं बहुत करी।
कौन भाँति हरि कृपा तुम्हारी, सो स्वामी, समुझी न परी।
दूरि गयौ दरसन के ताईं, ब्यापक प्रभुता सब बिसरी।
मनसा-बाचा-कर्म-अगोचर सो मूरति नहिं नैन धरी।
गुन बिन गुनी, सुरूप रूप बिन, नाम बिना श्री स्याम हरी।
कृपा-सिंधु, अपराध अपरिमित, छमौ, सूर तैं सब बिगरी ॥११५॥

राग बिलावल

तुम प्रभु, मोसौं बहुत करी।
नर-देही दीनी सुमिरन कौं, मो पापी तैं कछु न सरी।
गरभ-बास अति त्रास, अधोमुख, तहाँ न मेरी सुधि बिसरी।
पावक-जठर जरन नहिं दीन्हौं, कंचन सी मम देह करी।
जग मैं जनमि पाप बहु कीन्हे, आदि-अंत लौं सब बिगरी।
सूर पतित, तुम पतित-उधारन, अपने बिरद की लाज धरी ॥११६॥

राग धनाश्री

माधौ जू, जौ जन तैं बिगरै।
तउ कृपाल, करुनामय केसव, प्रभु नहिं जीय धरै।
जैसैं जननि-जठर-अंतरगत सुत अपराध करै।
तौऊ जतन करै अरु पोषै, निकसैं अंक भरै।
जद्यपि मलय-बृच्छ जड़ काटै, कर कुठार पकरै।
तऊ सुभाव न सीतल छाँड़ै, रिपु-तन-ताप हरै।
धर बिधंसि नल करत किरषि हल, बारि, बीज बिथरै।
सहि सन्मुख तउ सीत-उष्न कौं, सोई सुफल करै।
रसना द्विज दलि दुखित होति बहु, तउ रिस कहा करै!
छमि सब छोभ जु छाँड़ि, छवौ रस लै समीप सँचरै।

कारन-करन, दयालु, दयानिधि, निज भय दीन डरै।
इहिं कलिकाल-व्याल-मुख-ग्रासित सूर सरन उबरै ॥११७॥

राग कान्हरौ

दीन-नाथ अब बारि तुम्हारो।
पतित उधारन बिरद जानि कै, बिगरी लेहु सँवारी।
बालापन खेलत ही खोयौ, जुवा बिषय-रस मातैं।
वृद्ध भए सुधि प्रगटी मोकौं, दुखित पुकारत तातैं।
सुतनि तज्यौ, तिय तज्यौ, भ्रात तज्यौ, तन तैं त्वच भई न्यारी।
स्रवन न सुनत, चरन-गति थाकी, नैन भए जलधारी।
पलित केस, कफ कंठ बिरुंध्यौ, कल न परति दिन-राती।
माया-मोह न छाँड़ै तृष्ना, ये दोऊ दुख-थाती।
अब यह बिथा दूरि करिबे कौं और न समरथ कोई।
सूरदास-प्रभु करुना-सागर, तुमतैं होइ सो होई ॥११८॥

राग आसावरी

पतितपावन जानि सरन आयौ।
उदधि-संसार सुभ नाम-नौका तरन, अटल अस्थान निजु निगम गायौ।
व्याध अरु गीध, गनिका, अजामीलद्विज चरन गौतम-तिया परसि पायौ।
अंध औसर अरध-नाम-उच्चार करि सुम्रत गज ग्राह तैं तुम छुड़ायौ।
अबल प्रहलाद, बलि दैत्य सुखहीँ भजत, दास ध्रुव चरन चित सीस नायौ।
पांडु-सुत बिपति-मोचन महादास लखि, द्रौपदी-चीर नाना बढ़ायौ।
भक्त-बत्सल कृपा-नाथ असरन-सरन, भार-भूतल हरन जस सुहायौ।
सूर प्रभु-चरन चित चेति चेतन करत, ब्रह्म-सिव-सेस-सुक-सनक-
ध्यायौ ॥११९॥

राग आसावरी

(श्री) नाथ सारंगधर कृपा करि दीन पर, डरत भव-त्रास तैं राखि लीजै।
नाहिँ जप, नाहिँ तप, नाहिँ सुमिरन-भज, सरन आए की अब लाज कीजै।
जीव जल थल जिते, वेष धरि धरि तिते, अटत दुरगम अगम अचल भारे।
मुसल मुदगर हनत, त्रिबिध करमनि गनत, मोहिँ दंडत धरम-दूत हारे।
बृषभ, केसी, प्रलँब, धेनुकऽरु पूतना, रजक, चानूर से दुष्ट तारे।
अजामिल गनिका तैं कहा मैं घटि कियौ, तुम जो अब सूर चित तैं।
बिसारे ॥१२०॥

राग आसावरी

कबहूँ तुम नाहिँ न गहरु कियौ।
सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तनि अभै दियौ।
गाइ-गोप-गोपीजन-कारन गिरि कर-कमल लियौ।
अघ-अरिष्ट, केसी, काली मथि दावानलहिँ पियौ।
कंस-बंस बधि, जरासंध हति, गुरु-सुत आनि दियौ।
करषत सभा द्रुपद-तनया कौ अंबर अछय कियौ।
सूर स्याम सरवज्ञ कृपानिधि, करुना-मृदुल-हियौ।
काकी सरन जाउँ नँदनंदन, नाहिँन और बियौ ॥१२१॥

राग सारंग

तातैं तुम्हरौ भरोसौ आवै।
दीनानाथ पतित-पावन, जस बेद-उपनिषद गावै।
जौ तुम कहौ कौन खल तारयौ, तौ, हौँ बोलौँ साखी।
पुत्र-हेत सुर-लोक गयौ द्विज, सक्यौ न कोऊ राखी।
गनिका किए कौन ब्रत-संजम, सुक-हित नाम पढ़ावै।
मनसा करि सुमिरयौ गज बपुरैं, ग्राह प्रथम गति पावै।
बकी जु गई घोष मैं छल करि, यसुदा की गति दीनी।
और कहति स्रुति, बृषभ-व्याध की जैसी गति तुम कीनी।
द्रुपद-सुताहिँ दुष्ट दुरजोधन सभा माहिँ पकरावै।
एसौ और कौन करुनामय, बसन-प्रवाह बढ़ावै ?
दुखित जानिकै सुत कुबेर के, तिन्ह लगि आपु बँधावै।
ऐसौ को ठाकुर, जन-कारन दुख सहि, भलौ मनावै ?
दुरबासा दुरजोधन पठ्यौ पांडव-अहित बिचारी।
साक पत्र लै सबै अघाए, न्हात भजे कुस डारी।
देवराज मष-भंग जानि कै बरष्यौ ब्रज पर आई।
सूर स्याम राखे सब निज कर, गिरि लै भए सहाई ॥१२२॥

राग धनाश्री

दीन कौ दयाल सुन्यौ, अभय-दान-दाता।
साँची बिरुदावलि, तुम जग के पितु माता।

ब्याध-गीध-गनिका-गज इनमैं को ज्ञाता ?
सुमिरत तुम आए तहँ, त्रिभुवन बिख्याता।
केसि-कंस दुष्ट मारि, मुष्टिक कियौ घाता।
धाए गजराज-काज, कौतक यह बाता!
तीनि लोक बिभव दियौ तंदुल के खाता।
सरबस प्रभु रीझि देत तुलसी कैं पाता।
गौतम की नारि तरी नैंकु परसि लाता।
और को है तारिबे कौं, कहौ कृपा-ताता।
माँगत है सूर त्यागि जिहिँ तन-मन राता।
अपनी प्रभु भक्ति देहु जासौं तुम नाता ॥१२३॥

राग मारू

सो कहा जु मैं न कियौ (जौ) सोइ चित धरिहौ।
पतित-पावन-बिरद साँच (तौ) कौन भाँति करिहौ।
जब तैं जग जनम लियौ, जीव नाम पायो।
तब तैं छुटि औगुन इक नाम न कहि आयौ।
साधु-निंदक, स्वाद-लँपट, कपटी गुरु-द्रोही।
जेते अपराध जगत, लागत सब मोहीँ।
गृह-गृह प्रति द्वार फिर्‌यौ, तुमकौं प्रभु छाँड़े।
अंध अंध टेकि चलै, क्यौँ न परै गाड़े।
सुकृती-सुचि-सेवकजन काहि न जिय भावै।
प्रभु की प्रभुता यहै जु दीन सरन पावै।
कमल-नैन, करुनामय, सकल-अँतरजामी।
बिनय कहा करै सूर, कूर, कुटिल, कामी ॥१२४॥

राग सारंग

कौन गति करिहौ मेरी नाथ!
हौं तौ कुटिल, कुचील, कुदरसन, रहत बिषय के साथ।
दिन बीतत माया कैं लालच, कुल-कुटुंब कैं हेत।
सिगरी रैनि नींद भरि सोवत जैसैं पसु अचेत।
कागद धरनि, करै द्रुम लेखनि, जल-सायर मसि घोरै।
लिखै गनेस जनम भरि मम कृत, तऊ दोष नहिँ ओरै।

गज, गनिका अरु बिप्र अजामिल, अगनित अधम उधारे।
यहै जानि अपराध करे मैं तिनहूँ सौं अति भारे।
लिखि लिखि मम अपराध जनम के, चित्रगुप्त अकुलाए।
भृगु रिषि आदि सुनत चक्रित भए, जम सुनि सीस डुलाए।
परम पुनीत-पवित्र, कृपानिधि, पावन-नाम कहायौ।
सूर पतित जब सुन्यौ बिरद यह, तब धीरज मन आयौ ॥१२५॥

राग धनाश्री

मेरी कौन गति ब्रजनाथ ?
भजन बिमुखऽरु सरन नाहीँ, फिरत बिषयनि साथ।
हौं पतित, अपराध-पूरन, भर्‌यौ कर्म-बिकार।
काम क्रोधऽरु लोभ चितवौं, नाथ तुमहिं बिसार।
उचित अपनो कृपा करिहौ तबै तौ बनि जाइ।
सोइ करहु जिहिँ चरन सेवै सूर जूठनि खाइ ॥१२६॥

राग धनाश्री

सोइ कछु कीजै दीन-दयाल।
जातैं जन छन चरन न छाँड़ै करुना-सागर, भक्त-रसाल।
इंद्री अजित, बुद्धि विषयारत, मन की दिन-दिन उलटी चाल।
काम-क्रोधमद-लोभ-महाभय, अह-निसि नाथ, रहत बेहाल।
जोग-जुगति, जप-तप, तीरथ-व्रत, इनमैं एकौं अंक न भाल।
कहा करौं, किहिँ भाँति रिझावौं हौं तुमकौ सुंदर नँदलाल।
सुनि समरथ, सरबज्ञ, कृपानिधि, असरन सरन, हरन जग-जाल।
कृपानिधान, सूर की यह गति, कासौं कहै कृपन इहिँ काल ! ॥१२७॥

राग गूजरी

कृपा अब कीजिऐ बलि जाउँ।
नाहिँन मेरैं और कोउ, बलि, चरन-कमल बिन ठाउँ।
हौं असौच, अक्रिय, अपराधी, सनमुख होत लजाउँ।
तुम कृपाल, करुनानिधि, केसव, अधम-उधारन-नाउँ।
काकैं द्वार जाइ होउँ ठाढ़ौ, देखत काहि सुहाउँ।
असरन सरन नाम तुम्हरौ, हौं कामी, कुटिल, निभाउँ।

कलुषी अरु मन मलिन बहुत मैं सैंत-मैंत न बिकाउँ ।
सूर पतितपावन पद-अंबुज, सो क्यौं परिहरि जाउँ ॥१२८॥

राग सारंग

दीन-दयाल, पतित-पावन प्रभु, बिरद बुलावत कैसौ ?
कहा भयौ गज-गनिका तारैं जो न तारौ जन ऐसौ।
जो कबहूँ नर जन्म पाइ नहिं नाम तुम्हारौ लीनौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तजि, अनत नहीं चित दीनौ।
अकरम, अबिधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति।
जाकौ नाम लेत अघ उपजै, सोई करत अनीति।
इंद्री-रस-बस भयौ, भ्रमत रह्यौ, जोइ कह्यौ सो कीनौ।
नेम-धर्म-व्रत, जप-यप-संजम, साधु-संग नहिं चीनौ।
दरस-मलोन, दीन दुरबल अति, तिनकौं मैं दुख-दानी।
ऐसौ सूरदास जन हरि कौ, सब अधमनि मैं मानी ॥१२९॥

राग देवगंधार

मोहिं प्रभु तुमसौं होड़ परी।
ना जानौं करिहौऽब कहा तुम नागर नवल हरी।
हुतीं जिती जग मैं अधमाई सो मैं सबै करी।
अधम-समूह उधारन-कारन तुम जिय जक पकरी।
मैं जु रहौं राजीव-नैन, दुरि, पाप-पहार-दरी।
पावहु मोहिं कहाँ तारन कौं, गूढ़-गँभीर खरी।
एक अधार साधु-संगति कौ, रचि पचि मनि सँचरी।
याहू सौंज संचि नहिं राखी, अपनी धरनि धरी।
मोकौं मुक्ति बिचारत हौ प्रभु, पचिहौ पहर-घरी।
श्रम तैं तुम्है पसीना ऐहै, कत यह टेक करी ?
सूरदास बिनती कह बिनवै, दोषनि देह भरी।
अपनौ बिरद सम्हारहुगे तौ यामैं सब निबरी ॥२३०॥

राग धनाश्री

नाथ सकौ तौ मोहिं उधारौ।
पतितनि मैं बिख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारौ।

बड़े पतित पासंगहु नाहीं, अजामिल कौन बिचारौ।
भाजे नरक नाम सुनि मेरौ, जम दीन्यौ हठि तारौ।
छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करौ जिय गारौ।
सूर पतित कौं ठौर नहीं, तौ बहत बिरद कत भारौ? ॥१३१॥

राग धनाश्री

तुम कब मो सौं पतित उधार्‌यौ।
काहे कौं बिरद बुलावत, बिन मसकत को तार्‌यौ।
गीध, व्याध, गज, गौतम की तिय, उनकौ कौन निहोरौ।
गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु तोरौ।
अजामील तौ बिप्र, तिहारौ, हुतौ पुरातन दास।
नैंकु चूकि तैं यह गति कीनी, पुनि बैकुंठ निवास।
पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यौ न कोऊ खोट।
तौ जानौं जौ मोहिं तारिहौ, सूर कूर कवि ठोट ॥१३२॥

राग धनाश्री

पतित-पावन हरि, बिरद तुम्हारौ कौनैं नाम धर्‌यौ?
हौं तौ दीन, दुखित, अति दुरबल, द्वारैं रटत पर्‌यौ।
चारि पदारथ दिए, सुदामा तंदुल भेंट धर्‌यौ।
द्रुपद-सुता की तुम पति राखी, अंबर दान कर्‌यौ।
संदीपन सुत तुम प्रभु दीने, बिद्या-पाठ कर्‌यौ।
बेर सूर की निठुर भए प्रभु, मेरौ कछु न सर्‌यौ ॥१३३॥

राग धनाश्री

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै तुमहीं, कै हमहीं माधौ, अपने भरोसैं लरिहौं।
हौं तो पतित सात पीढ़िनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, तुम्हैं बिरद बिन करिहौं।
कत अपनी परतीति नसावत, पायौ हरि हीरा।
सूर पतित तबहीं उठिहै, प्रभु जब हँसि दैहौ बीरा ॥१३४॥

राग नट

कहावत ऐसे त्यागी दानि।
चारि पदारथ दिए सुदामहिं अरु गुरु के सुत आनि।

रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहि सारँग-पानि।
लंका दई विभीषन जन कौं, पूरबली पहिचानि।
विप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि।
सूरदास सौं कहा निहोरौ नैननि हूँ की हानि! ॥१३५॥

राग धनाश्री

मोसौं बात सकुच तजि कहियै।
कत ब्रीड़त, कोउ और बतावौ, ताही के ह्वै रहियै।
कैधौं तुम पावन प्रभु नाहीं कै कछु मो मैं झोलौ।
तौ हौं अपनी फेरि सुधारौं, बचन एक जौ बोलौ।
तीन्यौ पन मैं ओर निबाहे, इहै स्वाँग कौं काछे।
सूरदास कौं यहै बड़ौ दुख, परत सबनि के पाछे॥१३६॥

राग सारंग

प्रभु, हौं बड़ी बेर कौ ठाढ़ौ।
और पतित तुम जैसे तारे, तिनहीं मैं लिखि काढ़ौ।
जुग जुग बिरद यहै चलि आयौ, टेरि कहत हौं यातैं।
मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, हौं अब कहौ घटि कातैं?
कै प्रभु हारि मानि कै बैठौ, कै करौ बिरद सही।
सूर पतित जौ झूठ कहत है, देखौ खोजि वही॥१३७॥

राग सारंग

प्रभु, हौं सब पतितन कौ टीकौ।
और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ जनमत ही कौ।
बधिक, अजामिल, गनिका तारी और पूतना ही कौ।
मोहिं छाँडि तुम और उधारे, मिटै सूल क्यौं जी कौ?
कोउ न समरथ अघ करिबे कौं, खैंचि कहत हौं लीको।
मरियत लाज सूर पतितनि में, मोहूँ तैं को नीकौ! ॥१३८॥

राग सारंग

हौं तौ पतित सिरोमनि, माधौ!
अजामील बातनि हीं तारयो, हुतौ जु मोतैं आधौ।
कै प्रभु हार मानि कै बैठौ, कै अबहीं निस्तारौ।
सूर पतित कौं और ठौर नहिं, है हरि-नाम सहारौ॥१३९॥

राग सारंग

माधौ जू, मोतैं और न पापी।
घातक, कुटिल, चवाई, कपटी, महाक्रूर, संतापी।
लंपट, धूत, पूत दमरी कौ, विषय-जाप कौ जापी।
भच्छि अभच्छ, अपान पान करि, कबहुँ न मनसा धापी।
कामी, बिवस कामिनी कैं रस, लोभ-लालसा थापी।
मन-क्रम-बचन-दुसह सबहिन सौं कटुक-बचन-आलापी।
जेतिक अधम उधारे प्रभु तुम, तिनकी गति मैं नापी।
सागर-सूर बिकार धरयौ जल, बधिक अजामिल वापी ॥१४०॥

राग कान्हरौ

हरि, हौं सब पतितनि-पतितेस।
और न सरि करिबे कौं दूजौ, महामोह मम देस।
आसा कैं सिंहासन बैठ्यौ, दंभ-छत्र सिर तान्यौ।
अपजस अति नकीब कहि टेरयौ, सब सिर आयसु मान्यौ।
मंत्री काम-क्रोध निज, दोऊ अपनी अपनी रीति।
दुविधा-दुंद रहै निसि-बासर, उपजावत बिपरीति।
मोदी लोभ, खवास मोह के, द्वारपाल अहँकार।
पाट बिरध ममता है मेरैं, माया कौ अधिकार।
दासी तृष्ना भ्रमत टहल-हित, लहत न छिन विश्राम।
अनाचार-सेवक सौं मिलिकै करत चवाइनि काम।
बाजि मनोरथ, गर्व मत्त गज, असत-कुमत रथ-सूत।
पायक मन, बानैत अधीरज, सदा दुष्ट-मति दूत।
गढ़वै भयौ नरकपति मोसौं, दीन्हे रहत किवार।
सेना साथ बहुत भाँतिन की, कीन्हे पाप अपार।
निंदा जग उपहास करत, मग बंदीजन जस गावत।
हठ, अन्याय, अधर्म, सूर नित नौबत द्वार बजावत ॥१४१॥

राग धनाश्री

साँचौ सो लिखहार कहावै।
काया-ग्राम मसाहत करि कै, जमा बाँधि ठहरावै।
मन-महतो करि कैद अपने मैं, ज्ञान-जहतिया लावै।
माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध कौ, पोता-भजन भरावै।

बट्टा काटि कसूर भरम कौ, फरद तलै लै डारै।
निहचै एक असल पै राखै, टरै न कबहूँ टारै।
करि अबारजा प्रेम प्रीति कौ, असल तहाँ खतियावै।
दूजे करज दूरि करि दैयत, नैंकु न तामैं आवै।
मुजमिल जोरै ध्यान कुल्ल कौ, हरि सौं तहँ लै राखै।
निर्भय रूपै लोभ छाँड़िकै, सोई वारिज राखै।
जमा-खरच नीकैं करि राखै, लेखा समुझि बतावै।
सूर आपु गुजरान मुहासिब, लै जवाब पहुँचावै ॥१४२॥

राग धनाश्री

हरि हौं ऐसौ अमल कमायौ।
साबिक जमा हुती जो जोरी, मिनजालिक तल ल्यायौ।
वासिल बाकी, स्याहा मुजमिल, सब अधर्म की बाकी।
चित्रगुप्त सु होत मुस्तौफी, सरन गहूँ मैं काकी ?
मोहरिल पाँच साथ करि दीने, तिनकी बड़ी बिपरीति।
जिम्मैं उनके, माँगैं मोतैं, यह तौ बड़ी अनीति।
पाँच-पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे।
सुनी तगीरी, बिसरि गई सुधि, मो तजि भए नियारे।
बढ़ौ तुम्हार बरामद हूँ कौ लखि कीनौ है साफ।
सूरदास की यहै बीनती, दस्तक कीजै माफ ॥१४३॥

राग सारंग

हरि, हौं सब पतितन कौ राजा।
निंदा पर-मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान नित बाजा।
तृष्ना देसऽरु सुभट मनोरथ, इंद्री खड्ग हमारी।
मंत्री काम कुमति दीबे कौं, क्रोध रहत प्रतिहारी।
गज-अहँकार चढ्यौ दिग-विजयी, लोभ-छत्र करि सीस।
फौज असत-संगति की मेरैं, ऐसौ हौं मैं ईस।
मोह-मया बंदी गुन गावत; मागध दोष-अपार।
सूर पाप कौ गढ़ दृढ़ कीन्हौ, मुहकम लाइ किवार ॥१४४॥

राग धनाश्री

हरि, हौं सब पतितनि कौ राउ।
को करि सकै बराबरि मेरी, सो धौं मोहिं बताउ।

व्याध, गीध अरु पतित पूतना, तिनत बड़ौ जु और।
तिनमैँ अजामील, गनिकादिक, उनमैँ मैँ सिरमौर।
जहँ-तहँ सुनियत यहै बड़ाई, मो समान नहिँ आन।
और हैँ आजकाल के राजा, मैँ तिनमैँ सुलतान।
अब लगि प्रभु तुम बिरद बुलाए, भई न मोसौँ भेँट।
तजौ बिरद कै मोहिँ उधारौ, सूर कहै कसि फेँट ॥१४५॥

राग सारंग

हरि, हौँ सब पतितन को नायक।
को करि सकै बराबरि मेरी, और नहीं कोउ लायक।
जो प्रभु अजामील कौँ दीन्हौ, सो पाटौ लिखि पाऊँ।
तौ बिस्वास सोइ मन मेरैँ, औरौ पतित बुलाऊँ।
बचन बाँह लै चलौँ गाँठि दै, पाऊँ सुख अति भारी।
यह मारग चौगुनौ चलाऊँ, तौ पूरौ ब्यौपारी।
यह सुनि जहाँ तहाँ तैँ सिमिटैँ, आइ होइ इक ठौर।
अब कैँ तौ आपुन लै आयौ, बेर बहुर की और।
होड़ा होड़ी मनहिँ भावते किए पाप भरि पेट।
ते सब पतित पाय-तर डारौँ यहै हमारी भेँट।
बहुत भरोसौ जानि तुम्हारौ, अब कीन्हे भरि भाँड़ौ।
लीजै बेगि निबेरि तुरतहीँ सूर पतित कौ टाँड़ौ ॥१४६॥

राग धनाश्री

मोसौँ पतित न और गुसाइँ।
अवगुन मोपैँ अजहुँ न छूटत, बहुत पच्यौ अब ताइँ।
जनम जनम तैँ हौँ भ्रमि आयौ कपि गुंजा की नाइँ।
परसत सीत जात नहिँ क्यौँहूँ, लै लै निकट बनाइँ।
मोह्यौ जाइ कनक-कामिनि-रस, ममता मोह बढ़ाई।
जिह्वा-स्वाद मीन ज्यौँ उरभयौ, सूझी नहीँ फँदाई।
सोवत मुदित भयौ सपने मैँ पाई निधि जो पराई।
जागि परैँ कछु हाथ न आयौ, यौँ जग की प्रभुताई।
सेए नाहिँ चरन गिरिधर के, बहुत करी अन्याई।
सूर पतित कौँ ठौर कहूं नहिँ, राखि लेहु सरनाई ॥१४७॥

राग जगला तिताला

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सब के अंतरजामी !
जो तन दियौ ताहि बिसरायौ, ऐसौ नोन-हरामी।
भरि भरि द्रोह विषै कौं धावत, जैसैं सूकर ग्रामी।
सुनि सतसंग होत जिय आलस, बिसयिनि सँग बिसरामी।
श्रीहरि-चरन छाँड़ि बिमुखन की निसि-दिन करत गुलामी।
पापी परम, अधम, अपराधी, सब पतितनि मैं नामी।
सूरदास प्रभु अधम उधारन सुनियै श्रीपति स्वामी ॥१४८॥

राग धनाश्री

हरि, हौं महापतित अभिमानी।
परमारथ सौं बिरत, बिषय-रत, भाव-भगति नहिं नैंकहु जानी।
निसि-दिन दुखित मनोरथ करि करि, पावतहूँ तृष्ना न बुझानी।
सिर पर मीच, नीच नहिं चितवत, आयु घटित ज्यौं अंजुलि-पानी।
बिमुखनि सौं रति जोरत दिन-प्रति, साधुनि सौं न कबहुँ पहिचानी।
तिहिं विनु रहत नहीं निसि बासर, जिहिं सब दिन रस-बिषय बखानी।
माया-मोह-लोभ के लीन्हैं, जानी न बृंदाबन रजधानी।
नवल किशोर जलद-तनु सुंदर, बिसर्यो सूर सकल-सुख-दानी ॥१४९॥

राग धनाश्री

माधो जू, मोहिं काहे की लाज।
जनम जनम यौं हीं भरमायौ, अभिमानी बेकाज।
जल-थल जीव जिते जग, जीवन निरखि दुखित भए देव !
गुन-अवगुन की समुझ न संका, परि आई यह टेव।
अब अनखाइ कहौं, घर अपनैं राखौ बाँधि-विचारि।
सूर स्वान के पालनहारैं आवति हैं नित गारि ॥१५०॥

राग सारंग

माधौ जू, सो अपराधी हौं।
जनम पाइ कछु भलौ न कीन्हौ, कहौ सु क्यौं निबहौं ?
सब सौं बात कहत जमपुर की गज-पिपीलिका लौं।
पाप-पुन्य कौ फल दुख सुख है, भोग करौ जोइ गौं।

मोकौं पंथ बतायौ सोई नरक कि सरग लहौं।
काकैं बल हौं तरौं गुसाइँ, कछु न भक्ति मो मौं।
हँसि बोलौ जगदीस जगत-पति, बात तुम्हारी यौं।
करुना-सिंधु कृपाल, कृपा बिनु काकी सरन तकौं।
बात सुने तैं बहुत हसौगे, चरन-कमल की सौं।
मेरी देह छुटत जम पठए, जितक दूर घर मौं।
लै लै ते हथियार आपने, सान धराए त्यौं।
जिनके दारुन दरस देखि कै, पतित करत म्यौं म्यौं।
दाँत चबात चले जमपुर तैं, धाम हमारे कौं।
ढूँढ़ि फिरे घर कोउ न बतायौ, स्वपच कोरिया लौं।
रिस भरि गए परम किंकर तब, पकरयौ छुटि न सकौं।
लै लै फिरे नगर में घर घर, जहाँ मृतक हो हौं।
ता रिस मैं मोहिं बहुतक मारयौ, कहँ लगि बरनि सकौं।
हाय हाय मैं परयौ पुकारौं, राम-नाम न कहौं।
ताल-पखावज चले बजावत, समधी सोभा कौं।
सूरदास की भली बनी है, गजी गई अरु पौं ॥१५१॥

राग कान्हरौ

थोरे जीवन भयौ तन भारौ।
कियौ न संत-समागम कबहूँ, लियौ न नाम तुम्हारौ।
अति उनमत्त मोह-माया-बस नहिँ कछु बात बिचारौ।
करत उपाव न पूछत काहू, गनत न खाटौ-खारौ।
इंद्री-स्वाद-बिबस निसि-बासर, आप अपुनपौ हारौ।
जल औंड़े मैं चहुँ दिसि पैरयौ, पाउँ कुल्हारौ मारौ।
बाँधी मोट पसारि त्रिबिध गुन, नहिँ कहुँ बीच उतारौ।
देख्यौ सूर बिचारि सीस परी, अब तुम सरन पुकारौ ॥१५२॥

राग धनाश्री

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।

तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल ॥१५३॥

राग धनाश्री

ऐसैं करत अनेक जन्म गए, मन संतोष न पायौ।
दिन-दिन अधिक दुरासा लाग्यौ, सकल लोक भ्रमि आयौ।
सुनि-सुनि स्वर्ग, रसातल, भूतल; तहाँ-तहाँ उठि धायौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-अगिनि तैं कहूँ न जरत बुझायौ।
सुत-तनया-बनिता-बिनोद-रस, इहिं जुर-जरनि जरायौ।
मैं अग्यान अकुलाइ, अधिक लै, जरत माँझ घृत नायौ।
भ्रमि-भ्रमि अब हारयौ हित अपनैं, देखि अनल जग छायौ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु, कैसैं जात नसायौ ! ॥१५४॥

राग धनाश्री

जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ
हरि-सुमिरन नहिं गुरु की सेवा, मधुबन बस्यौ न जाइ।
अब की बार मनुष्य-देह धरि, कियौ न कछू उपाइ।
भटकत फिरयौ स्वान की नाईं नैंकु जूठ कैं चाइ।
कबहुँ न रिझए लाल गिरिधरन, बिमल-बिमल जस गाइ।
प्रेम सहित पग बाँधि घूँघुरू सक्यौ न अंग नचाइ।
श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि नैंकहु रुचि उपजाइ।
आनि भक्ति करि, हरि-भक्तनि के कबहुँ न धोए पाइ।
अब हौं कहा करौं करुनामय, कीजै कौन उपाइ।
भव-अंबोधि, नाम-निज-नौका, सूरहिं लेहु चढ़ाइ ॥१५५॥

राग गौरी

माधौ जू, तुम कत जिय बिसरयौ ?
जानत सब अंतर की करनी, जो मैं करम करयौ।
पतित-समूह सबै तुम तारे, हुतौ जु लोक भरयौ।
हौं उनतैं न्यारौ करि डारयौ, इहिं दुख जात मरयौ।

फिरि-फिरि जोनि अनंतनि भरम्यौ, अब सुख-सरन पर्‌यौ।
उहिँ अवसर कत बाहुँ छुड़ावत, इहिँ डर अधिक डर्‌यौ।
हौँ पापी, तुम पतित उधारन, डारे हौँ कत देत?
जौ जानौ यह सूर पतित नहिँ, तौ तारौ निज हेत ॥१५६॥

राग केदारौ

जौ पै तुमहीँ बिरद बिसारौ।
तौ कहौ कहाँ जाइ करुनामय, कृपिन करम कौ मारौ!
दीन-दयाल, पतित-पावन, जस वेद बखानत चारौ।
सुनियत कथा पुराननि, गनिका, ब्याध, अजामिल तारौ।
राग-द्वेष, बिधि-अबिधि, असुचि-सुचि, जिहिँ प्रभु जहाँ सँभारौ।
कियौ न कबहूँ बिलंब कृपानिधि, सादर सोच निवारौ।
अगनित गुण हरि नाम तिहारैँ, अजौ अपुनपौ धारौ।
सूरदास-स्वामी; यह जन अब करत करत स्रम हारौ ॥१५७॥

राग सारंग

ऐसे और बहुत खल तारे।
चरन-प्रताप, भजन-महिमा कौँ, को कहि सकै तुम्हारे?
दुखित गयंद, दुष्ट-मति गनिका, नृग नृप कूप उधारे।
बिप्र बजाइ चल्यौ सुत कैँ हित, कटे महा दुख भारे।
ब्याध, गीध, गौतम की नारी, कहौ कौन ब्रत धारे?
केसी, कंस, कुबलया, मुष्टिक, सब सुख-धाम सिधारे।
उरजनि कौँ बिष बाँटि लगायौ, जसुमति की गति पाई।
रजक - मल्ल - चानूर - दवानल - दुख - भंजन सुखदाई।
नृप सिसुपाल महा पद पायौ, सर-अवसर नहिँ जान्यौ।
अघ-बक-तृनावर्त-धेनुक हति, गुन गहि दोष न मान्यौ।
पांडु-बधू पटहीन सभा मैँ, कोटिनि बसन पुजाए।
बिपति काल सुमिरत तिहिँ अवसर जहाँ तहाँ उठि धाए।
गोप-गाइ-गोसुत जल-त्रासत, गोबर्धन कर धार्‌यौ।
संतत दीन, हीन, अपराधी, काहैँ सूर बिसार्‌यौ? ॥१५८॥

राग केदारौ

बहुरि की कृपाहू कहा कृपाल?
बिद्यमान जन दुखित जगत मैँ, तुम प्रभु दीन-दयाल!

जीवत जाँचत कन-कन निर्धन, दर-दर रटत बिहाल।
तन छूटे तैं धर्म नहीं कछु, जौ दीजै मनि-माल।
कह दाता जो द्रवै न दीनहिं देखि दुखित ततकाल।
सूर स्याम कौ कहा निहारौ, चलत वेद की चाल ॥१५६॥

राग केदारौ

कौन सुनै यह बात हमारी ?
समरथ और देखौं तुम बिनु, कासौं बिथा कहौं बनवारी ?
तुम अविगत, अनाथ के स्वामी, दीन-दयाल, निकुंज-बिहारी।
सदा सहाइ करी दासनि की, जो उर धरी सोइ प्रतिपारी।
अब किहिं सरन जाउँ जादौपति, राखि लेहु बलि, त्रास निबारी
सूरदास चरननि की बलि-बलि, कौन खता तैं कृपा बिसारी ? ॥१६०॥

राग कल्याण

जैसैं राखहु तैसैं रहौं।
जानत हौ दुख-सुख सब जन के, मुख करि कहा कहौं ?
कबहुँक भोजन लहौं कृपानिधि, कबहुँक भूख सहौं।
कबहुँक चढ़ौं तुरंग, महा गज, कबहुँक भार बहौं।
कमल-नयन, घन-स्याम-मनोहर, अनुचर भयौ रहौं।
सूरदास-प्रभु भक्त-कृपानिधि, तुमरे चरन गहौं ॥१६१॥

राग धनाश्री

कब लगि फिरिहौं दीन बह्यौ ?
सुरति-सरित-भ्रम-भौंर-लोल मैं, मन परि तट न लह्यौ।
बात-चक्र बासना-प्रकृति मिलि, तन-तृन तुच्छ गह्यौ।
उरभ्यौ बिबस कर्म-निर अंतर, स्रमि सुख-सरनि चह्यौ।
बिनती करत डरत करुनानिधि, नाहिंन परत रह्यौ।
सूर कर्नि तरु रच्यौ जु निज कर, सो कर नाहिं गह्यौ ॥१६२॥

राग धनाश्री

तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी।
जिन कैं बस अनिमिष अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी।
बहत पवन, भरमत ससि-दिनकर, फनपति सिर न डुलावै।
दाहक गुन तजि सकत न पावक, सिंधु न सलिल बढ़ावै।

सिव-बिरंचि-सुरपति-समेत सब सेवत प्रभु-पद चाए।
जो कछु करन कहत सोई सोइ कीजत अति अकुलाए।
तुम अनादि, अबिगत, अनंत-गुन-पूरन परमानंद।
सूरदास पर कृपा करौ प्रभु, श्रीबृंदाबन-चंद ॥१६३॥

राग मलार

तुम तजि और कौन पै जाउँ ?
काकै द्वार सिर नाऊँ, पर हथ कहाँ निकाउँ।
ऐसौ को दाता है समरथ, जाके दिएँ अघाउँ।
अंत काल तुम्हरैं सुमिरन गति, अनत कहूँ नहिं दाउँ।
रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभय-पद ठाउँ।
कामधेनु, चिंतामनि, दीन्हौं कल्पवृच्छ-तर छाउँ।
भव-समुद्र अति देखि भयानक, मन मैं अधिक डराउँ।
कीजै कृपा सुमिरि अपनौ प्रन, सूरदास बलि जाउँ ॥१६४॥

राग सारंग

अब धौं कहौ, कौन दर जाउँ ?
तुम जगपाल, चतुर चिंतामनि, दीनबंधु सुनि नाउँ।
माया कपट-जुवा, कौरव-सुत, लोभ, मोह, मद भारी।
परबस परी सुनौ करुनामय, मम, मति-तिय अब हारी।
क्रोध-दुसासन गहे लाज-पट, सर्व अंध-गति मेरी।
सुर, नर, मुनि, कोउ निकट न आवत, सूर समुझि हरि-चेरी ॥१६५॥

राग मारू

मेरी तौ गति-पति तुम, अनतहिं दुख पाऊँ !
हौं कहाइ तेरौ, अब कौन कौ कहाऊँ ?
कामधेनु छाँड़ि कहा अजा लै दुहाऊँ !
हय गयंद उतरि कहा गर्दभ-चढ़ि धाऊँ !
कंचन-मनि डारि, काँच गर बँधाऊँ ?
कुमकुम कौ लेट मेटि, काजर मुख लाऊँ ?
पाटंबर-अंबर तजि, गूदरि पहिराऊँ ?
अंब सुफल छाँड़ि, कहा सेमर कौं धाऊँ ?

सागर की लहरि छाँड़ि, छीलर कस न्हाऊँ।
सूर क्रूर, आँधरौ, मैं द्वार पर्यौ गाऊँ ? ॥१६६॥

राग आसावरी

स्याम-बलराम कौं, सदा गाऊँ।
स्याम-बलराम बिनु दूसरे देव कौं, स्वप्न हूँ माहिं नहिं हृदय ल्याऊँ।
यहै जप, यहै तप, यहै मम नेम-व्रत, यहै मम प्रेम, फल यहै ध्याऊँ।
यहै मम ध्यान,यहै ज्ञान,सुमिरन यहै,सूर-प्रभु देहु हौं यहै पाऊँ॥१६७॥

राग देवगंधार

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसैं उड़ि जहाज कौ पच्छी, फिरि जहाज पर आवै।
कमल-नैन कौं छाँड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥१६८॥

राग सारंग

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।
छूटि गएँ कैसें जन जीवत, ज्यौं पानी बिनु पान।
जैसैं मगन नाद-रस सारँग, बधत बधिक बिन बान।
ज्यौं चितवत ससि ओर चकोरी, देखत ही सुख मान।
जैसैं कमल होत अति प्रफुलित, देखत दरसन भान।
सूरदास-प्रभु-हरिगुन मीठे, नित प्रति सुनियत कान॥१६९॥

राग धनाश्री

जौ हम भले बुरे तौ तेरे ?
तुम्हैं हमारी लाज-बड़ाई, बिनती सुनि प्रभु मेरे।
सब तजि तुम सरनागत आयौ, दृढ़ करि चरन गहे रे।
तुम प्रताप-बल बदत न काहूँ, निडर भए घर-चेरे।
और देव सब रंक-भिखारी, त्यागे बहुत अनेरे।
सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा तैं, पाए सुख जु घनेरे॥१७०॥

राग बिलावल

हमैँ नँदनंदन मोल लिये।
जम के फंद काटि मुकराए, अभय अजाद किये।
भाल तिलक, स्रबननि तुलसीदल, मेटे अंक बिये।
मूँड्यौ मूँड़, कंठ बनमाला, मुद्रा-चक्र दिये।
सब कोउ कहत गुलाम स्याम कौ, सुनत सिरात हिये।
सूरदास कौँ और बड़ौ सुख, जूठनि खाइ जिये ॥१७१॥

राग कान्हरौ

भक्त-बछल प्रभु, नाम तुम्हारौ।
जल-संकट तैँ राखि लियौ गज, ग्वालिन हित गोबर्धन धारौ।
द्रुपद-सुता कौ मिट्यौ महादुख, जबहीँ सो हरि टेरि पुकारौ।
हौँ अनाथ, नाहिँन कोउ मेरौ, दुस्सासन तन करत उघारौ।
भूप अनेक बंदि तैँ छोरे, राज-रवनि जस अति बिस्तारौ।
कीजै लाज नाम अपने की, जरासंध सौँ असुर सँघारौ।
अंबरीष कौ साप निवारौ, दुरबासा कौँ चक्र सँभारौ।
बिदुर दास कैँ भोजन कीन्हौ, दुरजोधन कौ मेट्यौ गारौ।
संतत दीन, महा अपराधी, काहैँ सूरज कूर बिसारौ?
सो कहि नाम रह्यौ प्रभु तेरौ, बनमाली, भगबान, उधारौ ॥१७२॥

राग जैतश्री

हरि, हौँ महा अधम संसारी।
आन समुझ मैँ बरिया ब्याही, आसा कुमति कुनारी।
धर्म - सत्त मेरे पितु - माता, ते दोउ दिये बिडारी।
ज्ञान - बिबेक बिरोधे दोऊ, हते बंधु हितकारी।
बाँध्यौ बैर दया भगिनी सौँ, भाग दुरी सु बिचारी।
सील-सँतोष सखा दोउ मेरे, तिन्हैँ बिगोवति भारी।
कपट - लोभ वाके दोउ भैया, ते घर के अधिकारी।
तृष्ना बहिनि, दीनता सहचरि, अधिक प्रीति बिस्तारी।
अति निसंक, निरलज्ज, अभागिनि, घर घर फिरत न हारी।
मैँ तौ वृद्ध भयौँ वह तरुनी, सदा बयस इकसारी।
याकैँ बस मैँ बहु दुख पायौ, सोभा सबै बिगारी।
करियै कहा, लाज मरियै जब अपनी जाँघ उघारी।

अधिक कष्ट मोहिँ पर्‌यौ लोक मैँ, जब यह बात उचारी।
सूरदास प्रभु हँसत कहा हौ, मेटौ विपति हमारी ॥१७३॥

राग नट

तिहारे आगैँ बहुत नच्यौ।
निसि-दिन दीन-दयाल, देवमनि, बहु बिधि रूप रच्यो।
कीन्हे स्वाँग जिते जाने मैँ, एकौ तौ न बच्यौ।
सोधि सकल गुन काछि दिखायौ, अंतर हो जो सच्यौ।
जौ रीझत नहिँ नाथ गुसाईँ, तौ कत जात जँच्यौ?
इतनी कहौ, सूर पूरौ दै, काहैँ मरत पच्यौ ॥१७४॥

राग अहीरी

भवसागर मैँ पैरि न लीन्हौ।
इन पतितनि कौँ देखि देखि कै पाछैँ सोच न कीन्हौ।
अजामील-गनिकादि आदि दै, पैरि पार गहि पैलौ।
संग लगाइ बीचहीँ छाँड़्यौ, निपट अनाथ अकेलौ।
अति गँभीर, तीर नहिँ नियरैँ, किहिँ बिधि उतर्‌यो जात?
नहीँ अधार नाम अवलोकत, जित-तित गोता खात।
मोहिँ देखि सब हँसत परस्पर, दै दै तारी तार।
उन तौ करी पाछिले की गति, गुन तोर्‌यौ बिच धार।
पद-नौका की आस लगाए, बूड़त हौँ बिनु छाहँ।
अजहूँ सूर देखिबौ करिहौ, बेगि गहौ किन बाहँ? ॥१७५॥

राग सोरठ

भरोसौ नाम कौ भारी।
प्रेम सौँ जिन नाम लीन्हौ, भए अधिकारी।
ग्राह जब गजराज घेर्‌यौ, बल गयौ हारी।
हारि कै जब टेरि दीन्हो, पहुँचे गिरिधारी।
सुदामा-दारिद्र भंजे, कूबरी तारी।
द्रौपदी कौ चीर बढ़्यौ, दुस्सासन गारी।
विभीषन कौँ लंक दीनी, रावनहिँ मारी।
दास ध्रुव कौँ अटल पद दियौ, रामदरबारी।

सत्य भक्तहिँ तारिबे कौँ, लीला बिस्तारी।
चेर मेरी क्योँ ढील कीन्ही, सूर बलिहारी ॥१७६॥

राग धनाश्री

तुम बिनु भूलोइ भूलौ डोलत।
लालच लागि कोटि देवन के, फिरत कपाटनि खोलत।
जब लगि सरबस दीजै उनकौँ, तबहीँ लगि यह प्रीति।
फल माँगत फिरि जात मुकर ह्वै, यह देवनि की रीति।
एकनि कौँ जिय-बलि दै पूजे, पूजत नैँकु न तूठे।
तब पहिचानि सबनि कौँ छाँड़े, नख-सिख लौँ सब झूठे।
कंचन मनि तजि काँचहिँ सैँतत, या माया के लीन्हे।
चारि पदारथ हूँ कौ दाता, सु तौ बिसर्जन कीन्हे।
तुम कृतज्ञ, करुनामय, केसव, अखिल लोक के नायक।
सूरदास हम दृढ़ करि पकरे, अब ये चरन सहायक ॥१७७॥

राग गौरी

प्रभु मेरे, मोसौँ पतित उधारौ।
कामी, कृपिन, कुटिल, अपराधी, अघनि भरयौ बहु भारौ।
तीनौ पन मैँ भक्ति न कीन्ही, काजर हूँ तैँ कारौ।
अब आयौ हौँ सरन तिहारी, ज्यौँ जानौ त्यौँ तारौ।
गीध-व्याध-गज-गनिका उधरी, लै लै नाम तिहारौ।
सूरदास प्रभु कृपावंत ह्वै, लै भक्तनि मैँ डारौ ॥१७८॥

जानिहौँ अब बाने की बात।
मोसौँ पतित उधारौ प्रभु जौ, तौ बदिहौँ निज तात।
गीध, व्याध, गनिकाऽरु अजामिल, ये को आहिँ बिचारे।
ये सब पतित न पूजत मो सम, जिते पतित तुम तारे।
जौ तुम पतितनि के पावन हौ, हौँ हूँ पतित न छोटौ।
बिरद आपुनौ और तिहारौ, करिहौँ लोटक-पोटौ।
कै हौँ पतित रहौँ पावन ह्वै, कै तुम बिरद छुड़ाऊँ।
द्वै मैँ एक करौँ निरवारौ, पतितनि-राव कहाऊँ।
सुनियत है, तुम बहु पतितनि कौँ, दीन्हौ है सुखधाम।
अब तौ आनि परयौ है गाढ़ौ, सूर पतित सौँ काम ॥१७९॥

राग जैतश्री

तब बिलंब नहिँ कियौ, जबै हिरनाकुस मार्यौ।
तब बिलंब नहिँ कियौ, केस गहि कंस पछार्यौ।
तब बिलंब नहिँ, कियौ, सीस दस रावन कट्टे।
तब बिलंब नहिँ कियौ, सबै दानव दहपट्टे।
कर जोरि सूर बिनती करै, सुनहु न हो रुकुमिनि-रवन!
काटौ न फंद मो अंध के, अब बिलंब कारन कवन? ॥१८०॥

राग धनाश्री

ताहूँ सकुच सरन आए की होत जु निपट निकाज।
जद्यपि बुधि-बल-बिभव बिहूनौ, बहत कृपा करि लाज।
तृन जड़, मलिन, बहत बपु राखै, निज कर गहै जु जाइ।
कैसैं कूल-मूल आस्रित कौं तजै आपु अकुलाइ?
तुम प्रभु अजित, अनादि-लोक-पति, हौं अजान, मतिहीन।
कछुव न होत निकट उत लागत, मगन होत इत दीन।
परिहस-सूल प्रबल निसि-बासर, तातैं यह कहि आवत।
सूरदास गोपाल सरनगत भएँ न को गति पावत ॥१८१॥

राग सोरठ

(हरि) पतित-पावन, दीन-बंधु, अनाथनि के नाथ।
संतत सब लोकनि स्तुति, गावत यह गाथ।
मोसौ कोउ पतित नहिँ अनाथ - हीन - दीन।
काहे न निस्तारत प्रभु, गुननि - अँगनि - हीन।
गज, गनिका, गौतम-तिय मोचन मुनि-साप।
अरु जन - संताप - दरन, हरन - सकल - पाप।
मनसा - बाचा - कर्मना, कछू कही राखि?
सूर सकल अंतर के तुमहीँ हौ साखि ॥१८२॥

राग सोरठ

जौ प्रभु, मेरे दोष बिचारैं।
करि अपराध अनेक जनम लौं, नख-सिख भरौ बिकारैं।
पुहुमि पत्र करि सिंधु मसानी गिरि-मसि कौं लै डारैं।
सुर-तरुवर की साख लेखिनी, लिखत सारदा हारैं!

पतित-उधारन बिरद बुलावैं, चारौं बेद पुकारैं।
सूर स्याम हौं पतित-सिरोमनि, तारि सकैं तौ तारैं ॥१८३॥

हमारी तुमकौं लाज हरी!
जानत हौ प्रभु, अंतरजामी, जो मोहिं माँझ परी।
अपनैं औगुन कहँ लौं बरनौं, पल पल, घरी घरी।
अति प्रपंच की मोट बाँधिकै अपनैं सीस धरी।
खेवनहार न खेवट मेरैं, अब मो नाव अरी।
सूरदास प्रभु, तव चरननि की आस लागि उबरी ॥१८४॥

प्रभु जू, यौं कीन्ही हम खेती।
वंजर भूमि, गाउँ हर जोते, अरु जेती की तेती।
काम-क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रज-तामस सब कीन्हौ।
अति कुबुद्धि मन हाँकनहारे, माया जूआ दीन्हौ।
इंद्रिय - मूल - किसान - महातृन - अग्रज - बीज बई।
जन्म जन्म की बिषय-बासना, उपजत लता नई।
पंच-प्रजा अति प्रबल बली मिलि, मन-बिधान जौ कीनौ।
अधिकारी जम लेखा माँगै, तातैं हौं आधीनौ।
घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ, जौन दियैं मैं छूटौं।
धर्म जमानत मिल्यौ न चाहै; तातैं ठाकुर लूटौं।
अहंकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही।
लागै धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही।
सोई करौ जु बसतै रहियै, अपनौ धरियै नाउँ।
अपने नाम की बैरख बाँधौ, सुबस बसौं इहिं गाउँ।
कीजै कृपा-दृष्टि की बरषा, जन की जाति लुनाई।
सूरदास के प्रभु सो करियै, होइ न कान-कटाई ॥१८५॥

प्रभु जू, हौं तो महा अधर्मी।
अपत, उतार, अभागौ, कामी, बिषयी, निपट कुकर्मी।
घाती, कुटिल, ढीठ, अति क्रोधी, कपटी, कुमति, जुलाई।
औगुन की कछु सोच न संका, बड़ौ, दुष्ट, अन्याई।
बटपारी, ठग, चोर, उचक्का, गाँठि-कटा, लठबाँसी।
चंचल, चपल, चबाइ, चौपटा, लिये मोह की फाँसी।

चुगुल, ज्वारि, निर्दय, अपराधी, झूठौ, खोटौ-खूटा।
लाभी, लौंद, मुकरवा, झगरू, बड़ौ पढ़ैलौ, लूटा।
लंपट, धूत, पूत, दमरौ कौ, कौड़ी कौड़ी जोरै।
कृपन, सूम, नहिँ खाइ खवावै, खाइ मारि कै औरै।
लंगर, ढीठ, गुमानी, टूँडक, महा मसखरा, रूखा।
मचला, अकलै-मूल, पातर, खाउँ खाउँ करै भूखा।
निर्घिन, नीच कुलज, दुर्बुद्धी, भौंदू, नित कौ रोऊ।
तृष्ना हाथ पसारे निसि-दिन, पेट भरे पर सोऊ।
बात बनावन कौँ है नीकौ, बचन-रचन समुझावै।
खाद-अखाद न छाँड़े अब लौँ, सब मैँ साधु कहावै।
महा कठोर, सुन्न हिरदै कौ, दोष देन कौँ नीकौ।
बड़ौ कृतघ्नी और निकम्मा, बेधन, राँकौ-फीकौ।
महा मत्त बुधि-बल कौ हीनौ, देखि करै अंधेरा।
बमनहिँ खाइ, खाइ सो डारै, भाषा कहि कहि टेरा।
मूकू, निंद, निगोड़ा, भौंड़ा, कायर, काम बनावै।
कलहा, कुही, मूष रोगी अरु काहूँ नैँकु न भावै।
पर-निंदक, परधन कौं द्रोही, पर-संतापनि बोरौ।
औगुन और बहुत हैँ मो मैँ कह्यो सूर मैँ थोरौ ॥१८६॥

राग धनाश्री

अधम की जौ देखौ अधमाई।
सुनु त्रिभुवन-पति, नाथ हमारे, तौ कछु कह्यौ न जाई।
जब तैँ जनम-मरन-अंतर हरि, करत न अघहिँ अघाई।
अजहूँ लौँ मन मगन काम सौँ बिरति नाहिँ उपजाई।
परम कुबुद्धि, अजान ज्ञान तैँ, हित जु बसति जड़ताई।
पाँचौ देखि प्रगट ठाढ़े ठग, हठनि ठगौरी खाई।
सुमृति-बेद मारग हरि-पुर कौ, तातैँ लियौ भुलाई।
कंटक-कर्म - कामना-कानन कौ मग दियौ दिखाई।
हौँ कहा कहौँ, सबै जानत हौ, मेरी कुमति कन्हाई।
सूर पतित कौँ नाहिँ कहूँ गति, राखि लेहु सरनाई ॥१८७॥

राग सारंग

तातैँ बिपति-उधारन गायौ।
स्रवननि साखि सुनी भक्तनि मुख, निगमनि भेद बतायौ।

सुवा पढ़ावत जीभ लड़ावति, ताहि बिमान पठायौ।
चरन-कमल परसत रिषि-पतिनी, तजि पषान, पद पायौ।
सब-हित-कारन देव अभय पद, नाम प्रताप बढ़ायौ।
आरतिवंत सुनत गज-क्रंदन, फंदन काटि छुड़ायौ।
पावँ अबार सु धारि रमापति, अजस करत जस पायौ।
सूर कूर कहै मेरी बिरियाँ बिरद किते बिसरायौ ॥१८८॥

राग कान्हरौ

ऐसी कब करिहौ गोपाल।
मनसा-नाथ, मनोरथ-दाता, हौ प्रभु दीनदयाल।
चरननि चित्त निरंतर अनुरत, रसना चरित-रसाल।
लोचन सजल, प्रेम-पुलकित तन, गर अंचल, कर माल।
इहिँ बिधि लखत, झुकाइ रहै जम अपनैं हीँ भय भाल।
सूर सुजस-रागी न डरत मन, सुनि जातना कराल ॥१८९॥

राग धनाश्री

ऐसे प्रभु अनाथ के स्वामी।
दीनदयाल, प्रेम-परिपूरन, सब-घट-अंतरजामी।
करत बिबस्त्र द्रुपद-तनया कौं, सरन सब्द कहि आयौ।
पूजि अनंत कोटि बसननि हरि, अरि कौ गर्ब गँवायौ।
सुत-हित बिप्र, कीर-हित गनिका, नाम लेत प्रभु पायौ।
छिनक भजन, संगति-प्रताप तैं, गज अरु ग्राह छुड़ायौ।
नर-तन, सिंह-बदन, बपु कीन्हौ, जन लगि भेष बनायौ।
निज जन दुखी जानि भय तैं अति, रिपु हति, सुख उपजायौ।
तुम्हरी कृपा गुपाल गुसाईं, किहिँ किहिँ स्रम न गँवायौ?
सूरजदास अंध, अपराधी, सो काहैँ बिसारायो ॥१९०॥

राग धनाश्री

तौ लगि बेगि हरौ किन पीर?
जौ लगि आन न आनि पहूँचै, फेरि परैगी भीर।
अबहिँ निवछरौ समय, सुचित ह्वै हम तौ निधरक कीजै।
औरौ आइ निकसिहैँ तातैं, आगैं है सो लीजै।
जहाँ तहाँ तैं सब आवैंगे, सुनि सुनि सस्तौ नाम।
अब तौ परयौ रहैगौ दिन-दिन तुमकौं ऐसौ काम।

यह तौ बिरद प्रसिद्ध भयौ जग, लोक-लोक जस कीन्हौ।
सूरदास प्रभु समुझि देखियै मैं बड़ तोहिं कर दीन्हौ ॥१६१॥

राग धनाश्री

माधौ जू, हौं पतित-सिरोमनि।
और न कोई लायक देखौं, सत-सत अघ प्रति रोमनि।
अजामील, गनिकाऽरु ब्याध, नृग, ये सब मेरे चटिया।
उनहूँ जाइ सौंह दै पूछौ, मैं करि पठयौ सटिया।
यह प्रसिद्ध सबही कौ संमत, बड़ौ बड़ाई पावै।
ऐसौ को अपने ठाकुर कौ इहिं बिधि महत घटावै।
नाहक मैं लाजनि मरियत है, इहाँ आइ सब नासी।
यह तौ कथा चलैगी आगैं, सब पतितनि मैं हाँसी।
सूर सुमारग फेरि चलैगौ, वेद-बचन उर धारौ।
बिरद छुड़ाइ लेहु बलि अपनौ, अब इहि तैं हद पारौ ॥१६२॥

राग सारंग

जिन जिनहीं केसव उर गायौ।
तिन तिन तुम पै गोबिंद-गुसाईं, सबनि अभै-पद पायौ।
सेवा यहै, नाम सर-अवसर जो काहुहिं कहि आयौ।
कियौ बिलंब न छिनहुँ कृपानिधि, सोइ सोइ निकट बुलायौ।
मुख्य अजामिल मित्र हमारौ, सो मैं चलत बुझायौ।
कहाँ कहाँ लौं कहौं कृपन की, तिनहुँ न स्रवन सुनायौ।
ब्याध, गीध, गनिका, जिहिं कागर, हौं तिहिं चिठि न चढ़ायौ।
मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, सूर सबै बिसरायौ ॥१६३॥

राग नट नारायन

बिरद मनौ बरियाइन छाँड़े।
तुम सौं कहा कहौं करुनामय, ऐसे प्रभु तुम ठाढ़े।
सुनि सुनि साधु-बचन ऐसौ सठ, हठि औगुननि हिरानौ।
धायौ चाहत कीच भरौ पट, जल सौं रुचि नहिं मानौ।
जौ मेरी करनी तुम हेरौ, तौ न करौ कछु लेखौ।
सूर पतित तुम पतित-उधारन, बिनय-दृष्टि अब देखौ ॥१६४॥

राग धनाश्री

जन यह कैसे कहै गुसाईं ?
तुम बिनु दीनबंधु, जादवपति, सब फीकी ठकुराई।
अपने से कर-चरन-नैन-मुख, अपनी सी बुधि पाई।
काल-कर्म-बस फिरत सकल प्रभु, तेऊ हमरी नाईं।
पराधीन, पर बदन निहारत, मानत मूढ़ बड़ाई।
हँसैं हँसत, बिलखैं बिलखत हैं, ज्यौं दर्पन मैं झाईं।
लियैं दियौ चाहैं सब कोऊ, सुनि समरथ जदुराई !
देव, सकल व्यापार परस्पर, ज्यौं पसु दूध-बराई।
तुम बिनु और न कोउ कृपानिधि, पावै पौर पराई।
सूरदास के त्रास हरन कौं कृपानाथ-प्रभुताई ॥१६५॥

राग देवगंधार

इक कौं आनि ठेलत पाँच !
करुनामय, कित जाउँ कृपानिधि, बहुत नचायौ नाच।
सबै क्रूर मोसौं ऋन चाहत, कहौ कहा तिन दीजै !
बिना दियैं दुख देत दयानिधि, कहौ कौन बिधि कीजै !
थाती प्रान तुम्हारी मोपै, जनमत हीं जो दीन्ही।
सो मैं बाँटि दई पाँचनि कौं, देह जमानति लीन्ही।
मन राखैं तुम्हरे चरननि पै, नित नित जो दुख पावैं।
मुकरि जाइ, कै दीन बचन सुनि, जमपुर बाँधि पठावैं।
लेखौ करत लाखही निकसत, को गनि सकत अपार।
हीरा जनम दियौ प्रभु हमकौं, दीन्ही बात सम्हार।
गीता-बेद-भागवत मैं प्रभु, यौं बोले हैं आथ।
जन के निपट निकट सुनियत हैं, सदा रहत हौ साथ।
जब जब अधम करी अधमाई, तब तब टोक्यौ नाथ।
अब तौ मोहिं बोलि नहिं आवै, तुमसौं क्यौं कहौं गाथ !
हौं तौ जाति गँवार, पतित हौं, निपट निलज, खिसिआनौ।
तब हँसि कह्यौ सूर-प्रभु सो तौ, मोहूँ सुन्यौ घटानौ ॥१६६॥

राग आसावरी

हरि जू, मोसौ पतित न आन।
मन-क्रम-बचन पाप जे कीन्हे, तिनकौ नाहिं प्रमान।

चित्रगुप्त जम-द्वार लिखत हैँ, मेरे पातक झारि।
तिनहूँ त्राहि करी सुनि औगुन, कागद दीन्हे डारि।
औरनि कौँ जम कैँ अनुसासन, किंकर कोटिक धावैं।
सुनि मेरी अपराध-अधमई, कोऊ निकट न आवैँ।
हौँ ऐसौ, तुम वैसे पावन, गावत हैँ जे तारे।
अवगाहौँ पूरन गुन स्वामी, सूर से अधम उधारे ॥१६७॥

राग धनाश्री

मोसौ पतित न और हरे।
जानत हौ प्रभु अंतरजामी, जे मैँ कर्म करे।
ऐसौ अंध, अधम, अविवेकी, खोटनि करत खरे।
बिषयी भजे, बिरक्त न सेए, मन धन-धाम धरे।
ज्यौँ माखी, मृगमद-मंडित-तन परिहरि, पूय परै।
त्यौँ मन मूढ़ विषय-गुंजा गहि, चिंतामनि बिसरै।
ऐसे और पतित अवलंबित, ते छिन माहिँ तरे।
सूर पतित, तुम पतित-उधारन, बिरद कि लाज धरे ॥१६८॥

राग नट

मेरी वेर क्यौँ रहे सोचि?
काटि कै अघ-फाँस पठवहु, ज्यौँ दियौ गज मोचि।
कौन करनी घाटि मोसौँ सो करौँ फिरि काँधि।
न्याइ कै नहिँ खुनुस कीजै, चूक पल्लैँ बाँधि।
मैँ कछू करिबे न छाँड्यौ, या सरीरहिँ पाइ।
तऊ मेरौ मन न मानत, रह्यौ अघ पर छाइ।
अब कछू हरि कसरि नाहीँ, कत लगावत बार?
सूर-प्रभु यह जानि पदवी, चलत बैलहिँ आर ॥१६९॥

राग धनाश्री

अपुने कौँ को न आदर देइ?
ज्यौँ बालक अपराध कोटि करै, मातु न मानै तेइ।
ते बेली कैसैँ दहियत हैँ, जे अपनैँ रस भेइ।
श्री संकर बहु रतन त्यागि कै, बिषहिँ कंठ धरि लेई।

माता-अछत छीर बिन सुत मरै, अजा-कंठ-कुच सेइ ?
जद्यपि सूरज महा पतित है, पतित-पावन तुम तेइ ॥२००॥

राग धनाश्री

जौ जग और बियौ कोउ पाऊँ।
तौ हौं बिनती बार-बार करि, कत प्रभु तुमहिँ सुनाऊँ ?
सिव-बिरंचि, सुर-असुर, नाग-मुनि, सु तौ जाँचि जन आयौ।
भूल्यौ, भ्रम्यौ, तृषातुर मृग लौं, काहूँ स्रम न गँवायौ।
अपथ सकल चलि, चाहि चहूँ दिसि, भ्रम उघटत मतिमंद।
थकित होत रथ चक्र-हीन ज्यौँ, निरखि कर्म-गुन-फंद।
पौरुष-रहित, अजित इंद्रिनि बस, ज्यौँ गज पंक पर्‌यौ।
बिषयासक्त, नटी के कपि ज्यौँ, जोइ जोइ कह्यौ कर्‌यौ।
भव-अगाध-जल-मग्न महा सठ, तजि पद-कूल रह्यौ।
गिरा-रहित, बृक-ग्रसित अजा लौँ, अंतक आनि गह्यौ।
अपने ही अँखियानि दोष तैँ, रबिहिँ उलूक न मानत।
अतिसय सुकृत-रहित, अघ-व्याकुल, वृथा स्रमित रज-छानत।
सुनु त्रयताप-हरन, करुनामय, संतत दीनदयाल !
सूर कुटिल राखौ सरनाई, इहिँ ब्याकुल कलिकाल ॥२०१॥

राग केदारौ

प्रभु, तुम दीन के दुख-हरन।
स्यामसुंदर, मदन-मोहन, बान असरन-सरन।
दूर देखि सुदामा आवत, धाइ परस्यौ चरन।
लच्छ सौँ बहु लच्छ दीन्हौ, दान अवढर-ढरन।
छल कियौ पांडवनि कौरव, कपट-पासा ढरन।
खाय बिष, गृह लाय दीन्हौ, तउ न पाए जरन।
बूड़तहिँ ब्रज राखि लीन्हौ, नखहिँ गिरिवर धरन।
सूर प्रभु कौ सुजस गावत, नाम-नौका तरन ॥२०२॥

राग धनाश्री

भक्ति बिना जौ कृपा न करते, तौ हौँ आस न करतौ।
बहुत पतित उद्धार किए तुम, हौँ तिनकौँ अनुसरतौ।
मुख मृदु-बचन जानि मति जानहु, सुद्ध पंथ पग धरतौ।

कर्म-बासना छाँड़ि कबहुँ नहिँ साप पाप आचरतौ।
सुजन-बेष-रचना प्रति जनमनि, आयौ पर-धन हरतौ।
धर्म-धुजा अंतर कछु नाहीँ, लोक दिखावत फिरतौ।
परतिय-रति-अभिलाष निसा-दिन, मन-पिटरी लै भरतौ।
दुर्मति, अति अभिमान, ज्ञान बिन, सब साधन तैँ टरतौ।
उदर-अर्थ चोरी हिंसा करि, मित्र-बंधु सौँ लरतौ।
रसना-स्वाद-सिथिल, लंपट ह्वै, अघटित भोजन करतौ।
यह ब्यौहार लिखाइ, रात-दिन, पुनि जीतौ पुनि मरतौ।
रवि-सुत-दूत बारि नहिँ सकते, कपट घनौ उर बरतौ।
साधु-सील, सद्रूप पुरुष कौ, अपजस बहु उच्चरतौ।
औघड़-असत-कुचीलनि सौँ मिलि, माया-जल मैँ तरतौ।
कबहुँक राज-मान-मद-पूरन, कालहु तैँ नहिँ डरतौ।
मिथ्या बाद आप जस सुनि सुनि, मूछहिँ पकरि अकरतौ।
इहिँ बिधि उच्च-अनुच तन धरि धरि, देस बिदेस बिचरतौ।
तहँ सुख मानि, बिसारि नाथ-पद, अपनैँ रंग बिहरतौ।
अब मोहिँ राखि लेहु मनमोहन, अधम-अंग पद परतौ।
खर-कूकर की नाईँ मानि सुख, बिषय-अगिनि मैँ जरतौ।
तुम गुन की जैसै मिति नाहिँ न, हौँ अघ कोटि बिचरतौ।
तुम्हैँ-हमैँ प्रति बाद भए तैँ गौरव काकौ गरतौ?
मोतैँ कछू न उबरी हरि जू, आयौ चढ़त-उतरतौ।
अजहूँ सूर पतित-पद तजतौ, जौ औरहु निस्तरतौ॥२०३॥

राग बिलावल

तुम्हरौ नाम तजि प्रभु जगदीसर, सु तौ कहौ मेरे और कहा बल?
बुधि बिबेक-अनुमान आपनैँ, सोधि गह्यौ सब सुकृतनि कौ फल।
वेद, पुरान, सुमृति, संतनि कौं, यह आधार मीन कौँ ज्यौँ जल।
अष्ट सिद्धि, नव निधि, सुर-संपति, तुम बिनु तुसकन कहुँ न कछू लल।
अजामील, गनिका, जु ब्याध, नृग, जासौँ जलधि तरे ऐसेउ खल।
सोइ प्रसाद सूरहिँ अब दीजै, नहीँ बहुत तौ अंत एक पल॥२०४॥

राग सारंग

अब हौँ हरि, सरनागत आयौ।
कृपानिधान, सुदृष्टि हेरियै, जिहिँ पतितनि अपनायौ।

ताल, मृदंग, झाँझ, इंद्रिनि मिलि, बीना, बेनु बजायौ।
मन मेरैं नट के नायक ज्यौं तिनहीं नाच नचायौ।
उघर्‍यौ सकल सँगीत रीति-भव अंगनि अंग बनायौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह की, तान-तरंगनि गायौ।
सूर अनेक देह धरि भूतल, नाना भाव दिखायौ।
नाच्यौ नाच लच्छ चौरासी, कबहुँ न पूरौ पायौ ॥२०५॥

राग नट

मन बस होत नाहिंनै मेरैं।
जिनि बातनि तैं बह्यौ फिरत हौं, सोई लै लै प्रेरै।
कैसैं कहौं-सुनौं जस तेरे, औरै आनि खचेरै।
तुम तौ दोष लगावन कौं सिर, बैठे देखत नेरैं।
कहा करौं, यह चर्‍यौ बहुत दिन, अंकुस बिना मुकेरैं।
अब करि सूरदास प्रभु आपुन, द्वार, पर्‍यौ है तेरैं ॥२०६॥

राग धनाश्री

मैं तौ अपनी कही बड़ाई।
अपने कृत तै हौं नहिं बिरमत, सुनि कृपालु व्रजराई!
जीव न तजै स्वभाव जीव कौ, लोक विदित दृढ़ताई!
तौ क्यौं तजै नाथ अपनौ प्रन? है प्रभु की प्रभुताई!
पाँच लोक मिलि कह्यौ, तुम्हारैं नहिं अंतर मुकताई।
तब सुमिरन-छल दुर्भर के हित, माला तिलक बनाई।
काँपन लागी धरा, पाप तैं ताड़ित लखि जदुराई!
आपुन भए उधारन जग के, मैं सुधि नीकैं पाई।
अब मिथ्या तप, जाप, ज्ञान सब, प्रगट भई ठकुराई।
सूरदास उद्धार सहज गनि, चिंता सकल गँवाई ॥२०७॥

राग गौरी

अब मोहिं सरन राखियै नाथ!
कृपा करी जो गुरुजन पठए, बह्यौ जात गह्यौ हाथ।
अहंभाव तैं तुम बिसराए, इतनेहिं छूट्यौ साथ।
भवसागर मैं पर्‍यौ प्रकृति-बस, बाँध्यौ फिर्‍यौ अनाथ।

भ्रमित भयौ, जैसैं मृग चितवत, देखि देखि भ्रम-पाथ।
जनम न लख्यौ संत की संगति, कह्यौ-सुन्यौ गुन-गाथ।
कर्म, धर्म तीरथ बिनु राधन, ह्वै गए सकल अकाथ।
अभय-दान दै, अपनौ कर धरि सूरदास कैं माथ ॥२०८॥

राग धनाश्री

अब मोहिं मज्जत क्यौं न उबारौ ?
दीनबंधु, करुनानिधि स्वामी, जन के दुःख निवारौ।
ममता-घटा, मोह की बूँदैं, सरिता मैन अपारौ।
बूड़त कतहुँ थाह नहिं पावत, गुरुजन-ओट-अधारौ।
गरजत क्रोध-लोभ कौ नारौ, सूझत कहुँ न उतारौ।
तृष्ना-तड़ित चमिकि छनहीँ-छन, अह-निसि यह तन जारौ।
यह भव-जल कलिमलहिं गहे है, बोरत सहस प्रकारौ।
सूरदास पतितनि के संगी, बिरदहिं नाथ, सम्हारौ ॥२०९॥

राग धनाश्री

जगतपति नाम सुन्यौ हरि, तेरौ
... ...।
मन चातक जल तज्यौ स्वाति-हित, एक रूप व्रत धारयौ।
नैंकु वियोग मीन नहिं मानत, प्रेम-काज बपु हारयौ।
राका-निसि केते अंतर ससि, निमिष चकोर न लावत।
निरखि पतंग बानि नहिं छाँड़त, जदपि जोति तनु तावत।
कीन्हे नेह-निबाह जीव जड़, ते इत-उत नहिं चाहत।
जैहै काहि समीप सूर नर, कुटिल वचन-दव दाहत ॥२१०॥

राग देवगंधार

जौ पै यहै बिचार परी।
तौ कत कलि-कलमष लूटन कौं, मेरी देह धरी ?
जौ नाहीँ अनुसरत नाम जग, बिदित बिरत कत कीन्हौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह कैं, हाथ बाँधि कत दीन्हौ ?
मनसा और मानसी सेवा, दोउ अगाध करि जानौं।
होहु कृपालु कृपानिधि, केसव, बहु अपराध न मानौ।

काकौ गृह, दारा, सुत, संपति, जासौं कीजै हेत ?
सूरदास प्रभु दिन उठि मरियत, जम कौं लेखौ देत ॥२११॥

राग टोड़ी

भजहु न मेरे स्याम मुरारी।
सब संतनि के जीवन हैं हरि, कमल-नयन प्यारे हितकारी।
या संसार-समुद्र, मोह-जल, तृष्ना- तरँग उठति अति भारी।
नाव न पाई सुमिरन हरि कौ, भजन-रहित बूड़त संसारी।
दीन-दयाल, अधार सबनि के, परम सुजान, अखिल अधिकारी।
सूरदास किहिँ तिहिँ तजि जाँचै, जन-जन-जाँचक होत भिखारी ॥२१२॥

राग धनाश्री

हारी जानि परी हरि मेरी।
माया-जल बूड़त हौं तकि तट चरन सरन धरि तेरी।
भव सागर, बोहित बपु मेरौ, लोभ-पवन दिसि चारौ।
सुत-धन-धाम-त्रिया-हित औरै लद्यौ बहुत बिधि भारौ।
अब भ्रम-भँवर परयौ ब्रज-नायक, निकसन की सब विधि की।
सूर सरद-ससि-बदन दिखाएँ उठै लहर जलनिधि की ॥२१३॥

राग रामकली

अनाथ के नाथ प्रभु कृष्न स्वामी।
नाथ सारंगधर, कृपा करि मोहिँ पर, सकल अघ-हरन हरि गरुड़गामी।
परयौ भव-जलधि मैं, हाथ धरि काढ़ि मल दोष जनि धारि चित काम-कामी।
सूर बिनती करै सुनहु नँद-नंद तुम, कहा कहौं खोलि कै अँतरजामी ॥२१४॥

राग धनाश्री

अदभुत जस विस्तार करन कौ हम जन कौ बहु हेत।
भक्त-पावन कोउ कहत न कबहूँ, पतित-पावन कहि लेत।
जय अरु विजय कथा नहि कछुवै, दसमुख-बध-विस्तार।
जद्यपि जगत-जननि कौ हरता, सुनि सब उतरत पार।
सेसनाग के ऊपर पौढ़त, तेतिक नाहिँ बड़ाई।
जातुधानि-कुच-गर मर्षत तब, तहाँ पूर्नता पाई।
धर्म कहैं, सर-सयन गंग-सुत, तेतिक नाहिँ सँतोष।
सुत सुमिरत आतुर द्विज उधरत, नाम भयौ निर्दोष !

धर्म-कर्म-अधिकारिनि सैँ कछु नाहिँ न तुम्हरौ काज।
भू-भर-हरन प्रगट तुम भूतल, गावत संत-समाज।
भार-हरन बिरुदावलि तुम्हरी, मेरे क्यौँ न उतारौ?
सूरदास-सत्कार किए तैँ ना कछु घटै तुम्हारौ ॥२१५॥

राग धनाश्री

हरि जू, हौँ यातैँ दुख-पात्र।
श्रीगिरिधरन-चरन-रति ना भई तजि विषया-रस मात्र।
हुतौ आढ्य तब कियौ असद्व्यय, करी न ब्रज-बन-जात्र।
पोषे नहिं तुव दास प्रेम सौँ, पोष्यौ, अपनौ गात्र।
भवन सँवारि, नारि-रस लोभ्यौ, सुत, बाहन, जन, भ्रात्र।
महानुभाव निकट नहिं परसे, जान्यौ न कृत-विधात्र।
छल-बल करि जित-तित हरि पर-धन, धायौ सब दिन-रात्र।
सुद्धासुद्ध बोझ बहु बह्यौ सिर, कृषि जु करी लै दात्र।
हृदय कुचील काम-भू-तृष्ना-जल-कलिमल है पात्र।
ऐसे कुमति जाट सूरज कैँ प्रभु विनु कोउ न धात्र ॥२१६॥

राग नट

मेरैँ हृदय नाहिँ आवत हौ, हे गुपाल, हौँ इतनी जानत!
कपटी, कृपन, कुचील, कुदरसन, दिन उठि बिषय-बासना बानत।
कदली कंटक, साधु असाधुहिँ, केहरि कैँ सँग धेनु बँधाने।
यह बिपरीति जानि तुम जन की, अंतर दै बिच रहे लुकाने।
जो राजा-सुत होइ भिखारी, लाज परे ते जाइ बिकाने।
सूरदास प्रभु अपने जन कौँ कृपा करहु जौ लेहु निदाने ॥२१७॥

राग सोरठ

प्रभु, मैँ पीछौ लियौ तुम्हारौ।
तुम तौ दीनदयाल कहावत, सकल आपदा टारौ।
महा कुबुद्धि, कुटिल, अपराधी, औगुन भरि लियौ भारौ।
सूर कूर की याही बिनती, लै चरननि मैँ डारौ ॥२१८॥

राग मुलतानी धनाश्री-तिताला

मेरी सुधि लीजौ हो ब्रजराज।
और नहीँ जग मैँ कोउ मेरौ, तुमहिं सुधारन-काज।

गनिका, गीध, अजामिल तारे, सबरी औ गजराज।
सूर पतित पावन करि कीजै, बाहँ गहे की लाज ॥२१९॥

राग खंबावती-तिताला

हमारे प्रभु, औगुन चित न धरौ।
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।
इक लोहा पूजा मैँ राखत, इक घर बधिक परौ।
सो दुबिधा पारस नहिँ जानत, कंचन करत खरौ।
इक नदिया इक नार कहावत, मैलौ नीर भरौ।
जब मिलि गए तब एक बरन ह्वै, गंगा नाम परौ।
तन माया, ज्यौं ब्रह्म कहावत, सूर सु मिलि बिगरौ।
कै इनकौ निरधार कीजियै, कै प्रन जात टरौ ॥२२०॥

राग मुलतानी-तिताला

अब मेरी राखौ लाज मुरारी।
संकट मैँ इक संकट उपजौ, कहै मिरग सौँ नारी।
और कछू हम जानति नाहीँ, आई सरन तिहारी।
उलटि पवन जब बावर जरियौ, स्वान चल्यौ सिर झारी।
नाचन-कूदन मृगिनी लागी, चरन कमल पर वारी।
सूर स्याम-प्रभु अविगत-लीला, आपुहिँ आपु सँवारी ॥२२१॥

यमुना–स्तुति *राग रामकली*

भक्त जमुने सुगम अगम औरैं।
प्रात जो न्हात, अघ जात ताके सकल, ताहि जमहू रहत हाथ जोरैं।
अनुभवी जानही बिना अनुभव कहा, प्रिया जाकौ नहीँ चित्त चोरै।
प्रेम के सिंधु कौ मर्म जान्यौ नहीँ सूर कहि कहा भयौ देह बोरैं ? ॥२२२॥

राग रामकली

फल फलित होत फल-रूप जानैं।
देखिहू सुनिहु नहिँ ताहि अपनौ कहै, ताकी यह बात कोउ कैसैं मानै।
ताहि कैँ हाथ निरमोल नग दीजियै, जोइ नीकैं परखि ताहि जानै।
सूर कहि कूर तैं दूर बसियै सदा, जमुन कौ नाम लीजै जु छानैं ॥२२३॥

श्रीभागवत-प्रसंग

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि की कथा होइ जब जहाँ। गंगाहू चलि आवै तहाँ।
जमुना, सिंधु, सरस्वति आवै। गोदावरी बिलंब न लावै।
सर्ब तीर्थ कौ बासा तहाँ। सूर हरि-कथा होवै जहाँ ॥२२४॥

भागवत वर्णन *राग सारंग*

श्रीमुख चारि स्लोक दए ब्रह्मा कौँ समुझाइ।
ब्रह्मा नारद सौँ कहे, नारद व्यास सुनाइ।
व्यास कहे सुकदेव सौँ द्वादस स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ ॥२२५॥

श्री शुक-जन्म-कथा *राग बिलावल*

व्यास कह्यौ जो सुक सौँ गाइ। कहौँ सो सुनौ संत चित लाइ।
व्यास पुत्र-हित बहु तप कियौ। तब नारायन यह बर दियौ।
ह्वै है पुत्र भक्त अति ज्ञानी। जाकी जग मैँ चले कहानी।
यह बर दै हरि कियौ उपाइ। नारद मन संसय उपजाइ।
तब नारद गिरिजा पैँ गए। तिनसौँ या बिधि पूछत भए।
मुंडमाल सिव-ग्रीवा कैसी? मोसौँ बरनि सुनावौ तैसी।
उमा कही मैँ तौ नहिँ जानी। अरु सिवहूँ मोसौँ न बखानी।
नारद कह्यौ अब पूछौ जाइ। बिनु पूछैँ नहिँ देहिँ बताइ।
उमा जाइ सिव कौँ सिर नाइ। कह्यौ सुनो बिनती सुरराइ।
मुंडमाल कैसी तव ग्रीवा? याकी मोहिँ बतावौ सींवा।
सिव बोले तब बचन रसाल। उमा आहि यह सो मुंडमाल।
जब जब जनम तुम्हारौ भयौ। तब तब मुंडमाल मैँ लयौ।
उमा कह्यौ सिव तुम अबिनासी। मैँ तुम्हरे चरननि की दासी।
मेरे हित इतनौ दुख भरत। मोहि अमर काहे नहिँ करत?

तब सिव-उमा गए ता ठौर। जहाँ नहीँ द्वितिया कोउ और।
सहस नाम तहँ तिन्हैँ सुनायौ। जातैँ आपु अमर-पद पायौ।
तहाँ हुतौ इक सुक कौ अंग। तिहिँ यह सुन्यौ सकल परसंग।
ताकौँ सिव मारन कौँ धायौ। तिन उड़ि अपनौ आपु बचायौ।
उड़त-उड़त सुक पहुँच्यौ तहाँ। नारि व्यास की बैठी जहाँ।
सिवहू ताके पाछैँ धाए। पै ताकौँ मारन नहिँ पाए।
व्यास-नारि तबहीँ मुख बायौ। तब तनु तजि मुख माहिँ समायौ।
द्वादस बर्ष गर्भ मैँ रह्यौ। व्यास भागवत तबहीँ कह्यौ।
बहुरौ जब जदुपति समुझायौ। तेरी माता बहु दुख पायौ।
तू जिहिँ हित नहिँ बाहर आवै। सो हमसैँ कहि क्यौँ न सुनावै ?
प्रभु तुव माया मोहिँ सतावत। तातैँ मैँ बाहर नहिँ आवत।
हरि कह्यौ अब न व्यापिहै माया। तब वह गर्भ छाँड़ि जग आया।
माया मोह ताहि नहिँ गह्यौ। सुन्यौ ज्ञान सो सुमिरन रह्यौ।
जैसैँ सुक कौँ व्यास पढ़ायौ। सूरदास तैसैँ कहि गायौ ॥१२६॥

श्रीभागवत के वक्ता-श्रोता *राग बिलावल*

व्यासदेव जब सुकहिँ पढ़ायौ। सुनि कै सुक सो हृदय बसायौ।
सुक सैँ नृपति परीच्छित सुन्यौ। तिनि पुनि भली भाँति करि गुन्यौ।
सत सौनकनि सैँ पुनि कह्यौ। बिदुर सो मैत्रेय सौँ लह्यौ।
सुनि भागवत सबनि सुख पायौ। सूरदास सो बरनि सुनायौ ॥१२७॥

सूत-शौनक-संवाद *राग बिलावल*

सूत व्यास सैँ हरि-गुन सुने। बहुरौ तिन निज मन मैँ गुने।
सो पुनि नीमषार मैँ आयौ। तहाँ रिषिनि कौ दरसन पायौ।
रिषिनि कह्यौ हरि-कथा सुनावौ। भली भाँति हरि के गुन गावौ।
प्रथमहिँ कह्यौ व्यास-अवतार। सुनौ सूर सो अब चित धार ॥१२८॥

व्यास-अवतार *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
व्यास-जनम भयौ जा परकार। कहौँ सो कथा, सुनौ चित धार।
सत्यवती मच्छोदरि नारी। गंगा-तट ठाढ़ी सुकुमारी।
तहाँ परासर रिषि चलि आए। बिबस होइ तिहिँ कैँ मद छाए।

रिषि कह्यौ ताहि, दान-रति देहि। मैं बर देहुँ तोहिँ सो लेहि।
तू कुमारिका बहुरौ होइ। तोकौं नाम धरै नहिँ कोइ।
मेरौ कह्यौ न जौ तू करै। दैहौं साप, महा दुख भरै।
सत्यवती सराप-भय मान। रिषि कौ बचन कियौ परमान।
जोजनगंधा काया करी। मच्छ-बास ताकी सब हरी।
ब्यासदेव ताकैं सुत भए। होत जनम बहुरौ बन गए।
देखौ काम-प्रतापऽधिकाई। कियौ परासर बस रिषिराई।
प्रबल सत्रु आहै यह मार। यातैं संतौ, चलौ सँभार।
या विधि भयौ व्यास-अवतार। सूर कह्यौ भागवत बिचार॥२२९॥

श्रीभागवत-अवतरण का कारण *राग बिलावल*

भयौ भागवत जा परकार। कहौं, सुनो सो अब चित धार।
सतजुग लाख बरस की आइ। त्रेता दस सहस्र कहि गाइ।
द्वापर सहस एक की भई। कलिजुग सत संबत रहि गई।
सोऊ कहन सुनन कौं रही। कलि-मरजाद जाइ नहिँ कही।
तातैं हरि करि ब्यासऽवतार। करो संहिता बेद - बिचार।
बहुरि पुरान अठारह किये। पै तउ सांति न आई हिये।
तब नारद तिनकैं ढिग आइ। चारि स्लोक कहे समुझाइ।
ये ब्रह्मा सौं कहे भगवान। ब्रह्मा मोसौं कहे बखान।
सोई अब मैं तुमसौं भाखे। कहौ भागवत इन हिय राखे।
श्री भागवत सुनै जो कोइ। ताकौं हरि-पद-प्रापति होइ।
ऊँच नीच ब्यौरौ न रहाइ। ताकी साखी मैं, सुनि भाइ!
जैसैं लोहा कंचन होइ। ब्यास, भई मेरी गति सोइ।
दासी-सुत तैं नारद भयौ। दोष दासपन कौ मिटि गयौ।
ब्यासदेव तब करि हरि-ध्यान। कियौ भागवत कौ ब्याख्यान।
सुनै भागवत जो चित लाइ। सूर सो हरि भजि भव तरि जाइ॥२३०

राग सारंग

कह्यौ सुक श्री भागवत-बिचार।
जाति-पाँति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति कैं दरबार।
श्रीभागवत सुनै जो हित करि, तरै सो भव-जल पार।
सूर सुमिरि सो रटि निसि-बासर, राम-नाम निज सार॥२३१॥

नाम-माहात्म्य

राग कान्हरौ

बड़ी है राम नाम की ओट।
सरन गएँ प्रभु काढ़ि देत नहिँ, करत कृपा कैँ कोट।
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट?
सूरदास पारस के परसैँ मिटति लोह की खोट ॥२३२॥

राग धनाश्री

सोइ भलौ जो रामहिँ गावै।
स्वपचहु स्रेष्ठ होत पद सेवत, बिनु गोपाल द्विज-जनम न भावै।
बाद-बिवाद, जज्ञ-व्रत-साधन, कितहूँ जाइ, जनम डहकावै।
होइ अटल जगदीस-भजन मैँ, अनायास चारिहुँ फल पावै।
कहूँ ठौर नहिँ चरन-कमल बिनु, भृंगी ज्यौँ दसहूँ दिसि धावै।
सूरदास प्रभु संत-समागम, आनँद अभय निसान बजावै ॥२३३॥

राग सारंग

काहु के बैर कहा सरै।
ताकी सरबरि करै सो झूठौ जाहि गुपाल बड़ौ करै।
ससि-सन्मुख जो धूरि उड़ावै, उलटि ताहि कैँ मुख परै।
चिरिया कहा समुद्र उलीचै, पवन कहा परबत टरै?
जाकी कृपा पतित ह्वै पावन, पग परसत पाहन तरै।
सूर केस नहिँ टारि सकै कोउ, दाँत पीसि जौ जग मरै ॥२३४॥

राग केदारौ

है हरि-भजन कौ परमान।
नीच पावैँ ऊँच पदवी, बाजते नीसान।
भजन कौ परताप ऐसौ, जल तरै पाषान!
अजामिल अरु भीलि गनिका, चढ़े जात बिमान।
चलत तारे सकल मंडल, चलत ससि अरु भान।
भक्त ध्रुव कौँ अटल पदवी, राम के दीवान।
निगम जाकौ सुजस गावत, सुनत संत सुजान।
सूर हरि की सरन आयौ राखि लै भगवान ॥२३५॥

विदुर-गृह भगवान-भोजन *राग बिलावल*

हरि, हरि, हरि, सुमिरौ सब कोइ। ऊँच नीच हरि गनत न दोइ।
बिदुर-गेह हरि भोजन पाए। कौरव-पति कौं मन नहिं ल्याए।
कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ। सूर स्याम भक्तनि मन भाइ॥२३६॥

राग बिलावल

भए पांडवनि के हरि दूत। गए जहाँ कौरवपति धूत।
उन सौं जो हरि बचन सुनाए। सूर कहत सो सुनौ चित लाए॥२३७॥

राग बिलावल

"सुनि राजा दुर्जोधना, हम तुम पैं आए।
'पांडव-सुत जीवत मिले, दै कुसल पठाए।
'छेम-कुसल अरु दीनता, दंडवत सुनाई।
'कर जोरे बिनती करी, दुरबल-सुखदाई।
'पाँच गाउँ पाँचौ जननि, किरपा करि दीजै।
'ये तुम्हरे कुल-बंस हैं, हमरी सुनि लीजै।"
"उनकी मोसौं दीनता, कोउ कहि न सुनावौ।
'पांडव-सुत अरु द्रौपदी कौं मारि गड़ावौ।
'राजनीति जानौ नहीं, गो-सुत चरवारे।
'पीवौ छाँछ अघाइ कै, कब के रयवारे!"
"गाइ-गाउँ के वत्सला मेरे आदि सहाई।
'इनकी लज्जा नहिं हमैं, तुम राज-बड़ाई।"
भीषम-द्रोन-करन सुनैं, कोउ मुखहु न बोलैं।
ये पांडव क्यौं गाड़िऐ, धरनी-धर डोलैं।
हम कछु लेन न देन मैं, ये बीर तिहारे।
सूरदास प्रभु उठि चले, कौरव-सुत हारे॥२३८॥

राग धनाश्री

ऊधौ, चलौ बिदुर कैं जइयै।
दुरजोधन कैं कौन काज जहँ आदर-भाव न पइयै!
गुरुमुख नहीं बड़े अभिमानी, कापै सेव करइयै?
टूटी छानि, मेघ जल बरसैं, टूटौ पलँग बिछइयै।

चरन धोइ चरनोदक लीन्हैाँ, तिया कहै प्रभु अइयै।
सकुचत फिरत जो बदन छिपाए, भोजन कहा मँगइयै।
तुम तौ तीनि लोक के ठाकुर, तुम तैँ कहा दुरइयै?
हम तौ प्रेम-प्रीति के गाहक, भाजी-साक छकइयै।
हसि हँसि खात, कहत मुख महिमा, प्रेम-प्रीति अधिकइयै।
सूरदास-प्रभु भक्तनि कैँ बस, भक्तनि प्रेम बढ़इयै ॥२३६॥

राग धनाश्री

हरि ठाढ़े रथ चढ़े दुवारे।
तुम दारुक, आगैँ ह्वै देखौ, भक्त भवन किधैाँ अनत सिधारे।
सुनि सुंदरि उठि उत्तर दीन्ह्यौ कौरव-सुत कछु काज हँकारे।
तहँ आए जदुपति सुनियत हैँ, कमल-नयन हरि हितू हमारे।
जिनकैाँ मिलन गए पति तेरे, सो ठाकुर ये बिदित तुम्हारे।
सूर सुनत संभ्रम उठि दौरी, प्रेम-मगन, तन-दसा बिसारे ॥२४०॥

राग धनाश्री

प्रभु जू, तुम हौ अंतरजामी।
तुम लायक भोजन नहिँ गृह मैँ अरु नाहीं गृह-स्वामी।
हरि कह्यौ साग-पत्र मोहिँ अति प्रिय, अम्रित ता सम नाहीं।
बारंबार सराहि सूर प्रभु, साग बिदुर घर खाहीँ ॥२४१॥

भगवान-दुर्योधन-संवाद

राग सोरठ

क्यौँ दासी-सुत कैँ पग धारे?
भीषम-करन-द्रोन-मंदिर तजि, मम गृह तजे मुरारे!
सुनियत हीन, दीन, बृषली-सुत, जाति पाँति तैँ न्यारे।
तिनकैँ जाइ कियौ तुम भोजन, जदु-कुल लाजनि मारे।
हरि जू कह्यौ, सुनौ दुरजोधन, सत्य सुबचन हमारे।
सोइ निरधन, सोइ कृपन दीन हैँ, जिन मम चरन बिसारे।
तुम साकट, वै भगत-भागवत, राग-द्वेष तैँ न्यारे।
सूरदास प्रभु नंदनँदन कहैँ, हम ग्वालनि-जुठिहारे ॥२४२॥

राग सारंग

"हम तैँ बिदुर कहा है नीकौ?
'जाकैँ रुचि सैाँ भोजन कीन्हौ, कहियत सुत दासी कौ।"

"द्वै बिधि भोजन कीजै राजा, बिपति परैँ कै प्रीति।
'तेरैँ प्रीति न मोहिँ आपदा, यहै बड़ी बिपरीति।
'ऊँचे मंदिर कौन काम के, कनक-कलस जो चढ़ाए।
'भक्त-भवन मैँ हौँ जु बसत हौँ, जद्यपि तृन करि छाए।
'अंतरजामी नाउँ हमारौ, हौँ अंतर की जानौँ।
'तदपि सूर मैँ भक्तबछल हौँ, भक्तनि हाथ बिकानौ" ॥२४३॥

राग सारंग

"हरि, तुम क्यौँ न हमारैँ आए ?
'षट-रस व्यंजन छाँड़ि रसोई, साग बिदुर-घर खाए।
'ताके झुगिया मैँ तुम बैठे कौन बड़प्पन पायौ ?
'जाति-पाँति कुलहू तैँ न्यारौ, है दासी को जायो।"
"मैँ तोहिँ सत्य कहौँ दुरजोधन, सुनि तू बात हमारी।
'बिदुर हमारौ प्रान पियारौ, तू बिषया-अधिकारी।
'जाति-पाँति सबकी हौँ जानौँ बाहिर छाक मँगाई।
'ग्वालनि कैँ सँग भोजन कीन्हौँ, कुल कौँ लाज लगाई।
'जहँ अभिमान तहाँ मैँ नाहीँ, यह भोजन विष लागै।
'सत्य पुरुष सो दीन गहत है, अभिमानी कौँ त्यागै।
'जहँ जहँ भीर परै भक्तनि कौँ, तहाँ तहाँ उठि धाऊँ।
'भक्तनि के हौँ संग फिरत हौँ, भक्तनि हाथ बिकाऊँ।
भक्तबछल है बिरद हमारौ, बेद सुमृतिहूँ गावैँ।"
सूरदास प्रभु यह निज महिमा, भक्तनि काज बढ़ावैँ ॥२४४॥

द्रौपदी-सहाय

राग बिलावल

हरि, हरि, हरि, सुमिरौ सब कोइ। नारि-पुरुष हरि गनत न दोइ।
द्रुपद-सुता की राखी लाज। कौरव-पति कौ पार्‍यौ ताज।
कहौँ सो कथा, सुनौ चित लाइ। सूर स्याम भक्तनि सुखदाइ ॥२४५॥

राग बिलावल

कौरव पासा कपट बनाए। धर्म-पुत्र कौँ जुआ खिलाए।
तिन हार्‍यौ सब भूमि-भँडार। हारी बहुरि द्रौपदी नार।
ताकौँ पकरि सभा मैँ ल्यावै। दुस्सासन कटि-बसन छुड़ावै।
तब वह हरि सैाँ रोइ पुकारी। सूर राखि मम लाज मुरारी ॥२४६॥

राग सारंग

अब कछु नाहिँन नाथ, रह्यौ ?
सकल सभा मैँ पैठि दुसासन, अंबर आनि गह्यौ।
हारि सकल भंडार-भूमि, आपुन बन-बास लह्यौ।
एकै चीर हुतौ मेरे पर, सो इन हरन चह्यौ।
हा जगदीस ! राखि इहिँ अवसर, प्रगट पुकारि कह्यौ।
सूरदास उमँगे दोउ नैना, सिंधु प्रवाह बह्यौ ॥२४७॥

राग मारू

राखौ पति गिरिवर गिरि-धारी !
अब तौ नाथ, रह्यौ कछु नाहिन, उघरत नाथ अनाथ पुकारी।
बैठी सभा सकल भूपनि की, भीषम-द्रोन-करन व्रतधारी।
कहि न सकत कोउ बात बदन पर, इन पतितनि मो अपति बिचारी।
पांडु-कुमार पवन से डोलत, भीम गदा कर तैँ महि डारी।
रही न पैज प्रबल पारथ की, जब तैँ धरम-सुत धरनी हारी।
अब तौ नाथ न मेरौ कोई, बिनु श्रीनाथ-मुकुंद-मुरारी।
सूरदास अवसर के चूकैँ फिरि पछितैहौ देखि उघारी ॥२४८॥

राग कल्यान

मो अनाथ के नाथ हरी।
ब्रह्मादिक, सनकादिक, नारद, जिहिँ समाधि नहिँ ध्यान टरी।
बूड़त स्याम, थाह नहिँ पावौँ, दुस्सासन-दुख-सिंधु परी।
भक्त-बछल प्रभु नाम सुमिरि कै, ता कारन मैँ सरन धरी।
भीषम, द्रोन, करन, अस्थामा, सकुनि सहित काहू न सरी।
महापुरुष सब बैठे देखत, केस गहत धरहरि न करी।
त्राहि-त्राहि द्रौपदी पुकारी, गई बैकुंठ अवाज खरी।
सूर स्याम फिरि कहा करौगे, जब जैहै इक बसन हरी ॥२४९॥

जब गहि राजसभा मैँ आनी।
द्रुपद-सुता पट-हीन करत कौं दुस्सासन अभिमानी।
परै बज्र या नृपति-सभा पै, कहति प्रजा अकुलानी।
बैठे हँसत करन, दुर्जोधन, रोवति द्रौपदि रानी !

जित देखति तित कोऊ नाहीँ, टेरि कहति मृदु बानी।
हा जदुनाथ, कमल-दल-लोचन, करुनामय, सुखदानी!
गरुड़ चढ़े देखे नँदनंदन, ध्यान-चरन-लपटानी।
सूरदास प्रभु कठिन बिपति सौँ राखि लियौ जग जानी ॥२५०॥

राग मारू

इत-उत देखि द्रौपदी टेरी।
ऐँचत बसन, हँसत कौरव-सुत, त्रिभुवन-नाथ, सरन हौँ तेरी।
सरबस दै अंबर तन बाँच्यौ, सोउ अब हरत, जाति पति मेरी।
क्रोधित देखि हँसै कौरव-कुल, मानौ मृगी सिंह बन घेरी।
गहि दुस्सासन केस सभा मैँ, बरबस लै आयौ ज्यौँ चेरी।
पांडव सब पुरुषारथ छाँड्यौ, बाँधे कपट-बचन की बेरी।
हा जदुनाथ द्वारिका-बासी, जुग-जुग भक्त-आपदा फेरी।
बसन-प्रवाह बढ़्यौ सुनि सूरज, आरत बचन कहे जब टेरी ॥२५१॥

राग बिलावल

जितनी लाज गुपालहिँ मेरी।
तितनी नाहिँ बधू हौँ जिनकी, अंबर हरत सबनि तन हेरी।
पति अति रोष मारि मनहीँ मन, भीषम दई बचन बँधि बेरी।
हा जगदीस, द्वारिकाबासी, भई अनाथ, कहति हौँ टेरी।
बसन-प्रवाह बढ़्यौ जब जान्यौ, साधु-साधु सबहिनि मति फेरी।
सूरदास-स्वामी जस प्रगट्यौ, जानी जनम-जनम की चेरी ॥२५२॥

राग रामकली

प्रभु, मोहिँ राखियै इहिँ ठौर।
केस गहत कलेस पाऊँ, करि दुसासन जोर।
करन, भीषम, द्रोन, मानत नाहिँ कोउ निहोर।
पाँच पति हित हारि बैठे, रावरैँ हित मोर।
धनुष-बान सिरान, कैधौँ गरुड़ बाहन खोर।
चक्र काहु चोरायौ, कैधौँ, भुजनि बल भयौ थोर।
सूर के प्रभु कृपा-सागर, चितै लोचन-कोर।
बढ़्यौ बसन-प्रवाह जल ज्यौँ, होत जय-जय सोर ॥२५३॥

६

राग आसावरी

लाज मेरी राखौ स्याम हरी।
हा-हा करि द्रौपदी पुकारी, बिलंब न करौ घरी।
दुस्सासन अति दारुन रिस करि, केसनि करि पकरी।
दुष्ट-सभा पिसाच दुरजोधन, चाहत नगन करी।
भीषम, द्रोन, करन, सब निरखत, इनतैं कछु न सरी।
अर्जुन-भीम महाबल जोधा, इनहूँ मौन धरी।
अब मोकौं धरि रही न कोऊ, तातैं जाति मरी।
मेरैं मात-पिता-पति-बंधू, एकै टेक हरी।
जय-जयकार भयौ त्रिभुवन मैं, जब द्रौपदि उबरी।
सूरदास प्रभु सिंह-सरन-गति स्यारहिँ कहा डरी ॥२५४॥

राग धनाश्री

निबाहौ बाहँ गहे की लाज।
द्रुपद-सुता भाषति नँदनंदन, कठिन बनी है आज।
भीषम, द्रोन, करन, दुरजोधन, बैठे सभा बिराज।
तिन देखत मेरौ पट काढ़त, लीक लगै तुम लाज।
खंभ फारि हरनाकुस मारयौ, जन प्रहलाद निबाज।
जनक-सुता-हित हत्यौ लंकपति, बाँध्यौ साइर-पाँज।
गदगद स्वर, आतुर, तन पुलकित, नैननि नीर-समाज।
दुखित द्रौपदी जानि जगतपति, आए खगपति त्याज।
पूरे चीर भीरु-तन-कृष्ना, ताके भरे जहाज।
काढ़ि काढ़ि थाक्यौ दुस्सासन, हाथनि उपजी खाज।
बिकल मान खोयौ कौरव-पति, पारेउ सिर कौ ताज।
सूरज प्रभु यह मान सदाई, भक्त-हेत महराज ॥२५५॥

राग बिहागरौ

ठाढ़ी कृष्न-कृष्न यौं बोलै।
जैसैं कोऊ बिपति परे तैं, दूरि धरयौ धन खोलै।
पकरयौ चीर दुष्ट दुस्सासन, बिलख बदन भइ डोलै।
जैसैं राहु-नीच ढिग आएँ, चंद्र-किरन झकझोलै।

जाकैँ मीत नंदनंदन से, ढकि लइ पीत पटोलै।
सूरदास ताकौँ डर काकौ, हरि गिरिधर के ओलै ।।२५६।।

राग धनाश्री

तुम्हरी कृपा बिनु कौन उबारे?
अर्जुन, भीम, जुधिष्ठिर, सहदेव, सुमति नकुल बलभारे।
केस पकरि ल्यायौ दुस्सासन, राखी लाज, मुरारे!
नाना बसन बढ़ाइ दिए प्रभु, बलि-बलि नंद-दुलारे।
नगन न होति, चकित भयौ राजा, सीस धुनै, कर मारै।
जापर कृपा करै करुनामय, ता दिसि कौन निहारै?
जो जो जन निस्चै करि सेवै, हरि निज बिरद सँभारै।
सूरदास प्रभु अपने जन कौं, उर तैं नैंकु न टारै ।।२५७।।

द्रौपदी हरि सैाँ टेरि कही।
तुम जिनि सहौ स्यामसुंदर बर, जेती मैँ जु सही।
तुम पति पाँच, पाँच पति हमरे, तुम सौँ कहा रही?
भीषम, करन, द्रोन देखत, दुस्सासन बाहँ गही।
पूरे चीर, अंत नहिँ पायौ, दुरमति हारि लही।
सूरदास प्रभु द्रुपद-सुता की, हरि जू लाज ठही ।।२५८।।

राग आसावरी

जौ मेरे दीनदयाल न होते।
तौ मेरी अपत करत कौरव-सुत, होत पंडवनि ओते।
कहा भीम के गदा धरैँ कर, कहा धनुष धरै पारथ?
काहु न धरहरि करी हमारी, कोउ न आयौ स्वारथ।
समुझि-समुझि गृह-आरति अपनी, धर्मपुत्र मुख जोवै।
सूरदास प्रभु नँद-नंदन-गुन गावत निसि-दिन रोवै ।।२५९।।

पांडव-राज्याभिषेक *राग विलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि चरनारबिंद उर धरौ।
हरि पांडव कौँ ज्यौँ दियौ राज। पुनि सो गए राज ज्यौँ त्याज।
बहुरौ भयौ परीच्छित राजा। ताकौँ साप बिप्र-सुत साजा।
सुनि हरि-कथा मुक्त सो भयौ। सूत सौनकनि सैाँ सो कह्यौ।
कहैौँ सु कथा सुनौ चित धारि। सूर कहै भागवत बिचारि ।।२६०।।

भीष्मोपदेश, युधिष्ठिर-प्रति *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
भारत जुद्ध होइ जब बीता। भयौ जुधिष्ठिर अति भयभीता।
गुरुकुल-हत्या मोतैं भई। अब धौं कैसी करिहै दई।
करौं तपस्या पाप निवारौं। राज-छत्र नाहीं सिर धारौं।
लोगनि तिहिं बहु बिधि समुझायौ। पै तिहिं मन-संतोष न आयौ।
तब हरि कह्यौ टेक परिहरौ। भीष्म पितामह कहै सो करौ।
हरि-पांडव रन-भूमि सिधाए। भीषम देखि बहुत सुख पाए।
हरि कह्यौ, राज न करत धर्मसुत। कहत हते मैं भ्रात तात-जुत।
गुरु-हत्या मोतैं ह्वै आई। कह्यौ सो छूटै कौन उपाई?
राजधर्म तब भीषम गायौ। दानापद पुनि मोच्छ सुनायौ।
पै नृप कौ संदेह न गयौ। तब भीषम नृप सौं यौं कह्यौ।
धर्म-पुत्र तू देखि बिचार। कारन करनहार करतार।
नर के किएँ कछू नहिं होइ। करता - हरता आपुहिं सोइ।
ताकौं सुमिरि राज तुम करौ। अहंकार चित तैं परिहरौ।
अहंकार किऐं लागत पाप। सूर स्याम मेटै संताप॥२६१॥

राग धनाश्री

करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनौ पुरुषारथ मानत, अति झूठौ है सोइ।
साधन, मंत्र, जंत्र, उद्यम, बल, ये सब डारौ धोइ।
जो कछु लिखि राखी नँदनंदन, मेटि सकै नहिं कोइ।
दुख-सुख, लाभ-अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हौ रोइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, स्याम-चरन मन पोइ॥२६२॥

राग कान्हरौ

होत सो जो रघुनाथ ठटै।
पचि-पचि रहैं सिद्ध, साधक, मुनि, तऊ न बढ़ै-घटै।
जोगी जोग धरत मन अपनैं, सिर पर राखि जटै।
ध्यान धरत महादेवऽरु ब्रह्मा, तिनहूँ पै न छटै।
जती, सती, तापस आराधैं, चारौं बेद रटै।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, करम-फाँस न कटै॥२६३॥

राग सारंग

भावी काहू सौं न टरै।
कहँ वह राहु, कहाँ वै रवि ससि, आनि सँजोग परै!
मुनि बसिष्ट पंडित अति ज्ञानी, रचि-पचि लगन धरै।
तात-मरन, सिय-हरन, राम बन-बपु धरि बिपति भरै।
रावन जीति कोटि तैं तीसौ, त्रिभुवन राज करै।
मृत्युहिं बाँधि कूप मैं राखै, भावी-बस सो मरै।
अरजुन के हरि हुते सारथी, सोऊ बन निकरै।
द्रुपद-सुता कौ राजसभा, दुस्सासन चीर हरै।
हरीचंद सो को जगदाता, सो घर नीच भरै।
जौ गृह छाँड़ि देस बहु धावै, तउ वह संग फिरै।
भावी कैं बस तीन लोक हैं, सुर नर देह धरै।
सूरदास प्रभु रची सु ह्वै है, को करि सोच मरै!॥२६४॥

राग कान्हरौ

तातैं सेइयै श्री जदुराइ।
संपति बिपति, बिपति तैं संपति, देह कौ यहै सुभाइ!
तरुवर फूलै, फरै, पतझरै, अपने कालहिं पाइ।
सरवर नीर भरै, भरि उमड़ै, सूखै, खेह उड़ाइ।
द्वुतिया-चंद बढ़त ही बाढ़ै, घटत-घटत घटि जाइ।
सूरदास संपदा-आपदा, जिनि कोऊ पतिआइ॥२६५॥

राग मलार

इहिं बिधि कहा घटैगौ तेरौ?
नंदनँदन करि घर कौ ठाकुर, आपुन ह्वै रहु चेरौ।
कहा भयौ जौ संपति बाढ़ी, कियौ बहुत घर घेरौ!
कहुँ हरि-कथा, कहूँ हरि-पूजा, कहुँ संतनि कौ डेरौ।
जो बनिता-सुत-जूथ सकेले, हय-गय-बिभव घनेरौ।
सबै समर्पौं सूर स्याम कौं, यह साँचौ मत मेरौ॥२६६॥

महाभारत में भगवान् की भक्तवत्सलता का प्रसंग *राग सारंग*

भक्तबछल श्री जादवराइ।
भीषम की परतिज्ञा राखी, अपनौ बचन फिराइ।

भारत माहिँ कथा यह बिस्तृत, कहत होइ बिस्तार।
सूर भक्त-वत्सलता बरनौं, सर्ब कथा कौ सार ॥२६७॥

अर्जुन-दुर्योधन का कृष्ण-गृह-गमन *राग सारंग*

भक्तबछलता प्रगट करी।
संत संकल्प बेद की आज्ञा, जन के काज प्रभु दूरि धरी।
भारतादि दुरजोधन, अर्जुन, भैंटन गए द्वारिकापुरी।
कमलनैन पौढ़े सुख-सेज्या, बैठे पारथ पाइतरी।
प्रभु जागे, अर्जुन-तन चितयौ, कब आए तुम, कुसल खरी ?
ता पाछैं दुर्जोधन भेद्यौ, सिर-दिसि तैं मन गर्व धरी।
दुहुँनि मनोरथ अपनौ भाष्यौ, तब श्रीपति बानी उचरी।
जुद्ध न करौं, सस्त्र नहिँ पकरौं, एक ओर सेना सिगरी।
हरि-प्रभाउ राजा नहिँ जान्यौ, कह्यौ सैन मोहिँ देहु हरी।
अर्जुन कह्यौ, जानि सरनागत, कृपा करौ ज्यौं पूर्व करी।
निज पुर आइ, राइ, भीषम सौं, कही जो बातैं हरि उचरी।
सूरदास भीषम परतिज्ञा, अस्त्र गहावन पैज करी ॥२६८॥

दुर्योधन-वचन, भीष्म-प्रति *राग धनाश्री*

मतौ यह पूछत भूतलराइ।
सुनौ पितामह भीषम, मम गुरु, कीजै कौन उपाइ ?
'उत अर्जुन अरु भीम पंडु-सुत, दोउ बर बीर गँभीर।
'इत भगदत्त, द्रोन, भूरिश्रव, तुम सेनापति धीर !
'जे जे जात परत ते भूतल, ज्यौं ज्वाला गत चीर।
'कौन सहाइ, जानियत नाहीँ, होत बीर निर्बीर।"
"जब तोसौं समुझाइ कही नृप, तब तैं करी न कान।
'पावक कथा दहत सबही दल तूल-सुमेरु-समान।
'अबिगत, अबिनासी, पुरुषोत्ततम हाँकत रथ कै आन।
अचरज कहा पार्थ जौ बेधै, तीनि लोक इक बान !"
"अब तौ हौं तुमकौं तकि आयौ, सोइ रजायसु दीजै।
'जातै रहै छत्रपन मेरौ. सोइ मंत्र कछु कीजै।
'जा सहाइ पांडव-दल जीतौं, अर्जुन कौ रथ लीजै।
'नातरु कुटुंब सकल संहरि कै कौन काज अब जीजै ?"

"तेरैं काज करौं पुरुषारथ, जथा जीव घट माहीं।
'यह न कहौं, रन चढ़ि जीतौं, मो मति नहिँ अवगाही।
'अजहूँ चेति, कह्यौ करि मेरौ, कहत पसारे बाहीं।
'सूरदास सरवरि को करिहै, प्रभु पारथ द्वै नाहीं ॥२६६॥

भीष्म प्रतिज्ञा *राग मलार*

आजु जौ हरिहिँ न सस्त्र गहाऊँ।
तो लाजौं गंगा जननी कौं, सांतनु-सुत न कहाऊँ।
स्यंदन खंडि महारथि खंडौं, कपिध्वज सहित गिराऊँ।
पांडव-दल-सन्मुख ह्वै धाऊँ, सरिता-रुधिर बहाऊँ।
इती न करौं सपथ तौ हरि की, छत्रिय-गतिहिँ न पाऊँ।
सूरदास रनभूमि बिजय बिनु, जियत न पीठि दिखाऊँ ॥२७०॥

राग मारू

सुरसरी-सुवन रनभूमि आए।
बान-बरषा लगे करन अति क्रुद्ध ह्वै, पार्थ-अवसान तब सब भुलाए।
कह्यौ करि कोप प्रभु अब प्रतिज्ञा तजौ, नहीं तौ जुद्ध निजु हम हराए।
सूर-प्रभु, भक्तबत्सल-बिरद आनि बर, ताहि या बिधि बचन कहि सुनाए
॥२७१॥

अर्जुन के प्रति भगवान् के बचन *राग बिलावल*

हमैं भक्तनि के, भक्त हमारे।
सुनि अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह ब्रत टरत न टारे।
भक्तनि काज लाज जिय धरि कै, पाइ पियादे धाऊँ।
जहँ-जहँ भीर परै भक्तनि कौं, तहँ-तहँ जाइ छुड़ाऊँ।
जो भक्तनि सौं बैर करत है, सो बैरी निज मेरौ।
देखि बिचारि भक्त-हित-कारन, हाँकत हौं रथ तेरौ।
जीतैं जीति भक्त अपनैं के, हारैं हारि बिचारौं।
सूरदास सुनि भक्त-बिरोधी, चक्र सुदरसन जारौं ॥२७२॥

भगवान् का चक्र-धारण *राग सारंग*

गोबिँद कोपि चक्र कर लीन्हौ।
छाँड़ि आपनौ प्रन जादवपति, जन कौ भायो कीन्हौ।

रथ तैं उतरि अवनि आतुर ह्वै, चले चरन अति धाए।
मनु संचित भू-भार उतारन, चपल भए अकुलाए!
कछुक अंग तैं, उड़त पीतपट, उन्नत बाहु बिसाल।
स्रवत स्रोनकन, तन सोभा, छबि-घन बरसत मनु लाल।
सूर सु भुजा समेत सुदरसन देखि बिरंचि भ्रम्यौ।
मानौ आन सृष्टि करिबे कौं, अंबुज नाभि जम्यौ ॥२७३॥

राग मलार

बरु मेरी परतिज्ञा जाउ।
इत पारथ कोप्यौ है हम पर, उत भीषम भट-राउ।
रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हौ, सुभट सामुहैं आए।
ज्यौं कंदर तैं निकसि सिंह, झुकि, गज-जूथनि पर धाए।
आइ निकट श्रीनाथ निहारे, परी तिलक पर दीठि।
सीतल भई चक्र की ज्वाला, हरि हँसि दीन्ही पीठि।
जय-जय-जय चिंतामनि स्वामी, सांतनु-सुत यौं भाखै।
तुम बिनु ऐसौ कौन दूसरौ, जो मेरौ प्रन राखै।
साधु-साधु सुरसरी-सुवन तुम, नहिं प्रन लागि डराऊँ।
सूरजदास भक्त दोऊ दिसि, कापर चक्र चलाऊँ ॥२७४॥

अर्जुन और भीष्म का संवाद *राग धनाश्री*

"कहौ पितु, मोसौं सोइ सतिभाव।
'जातैं दुरजोधन-दल जीतौं, किहिं बिधि करौं उपाव"।
"जब लगि जिय घट-अंतर मेरैं, को सरबरि करि पावै?
'चिरंजीव तौलौं दुरजोधन, जियत न पकर्यौ आवै।
'कौरव छाँड़ि भूमि पर कैसैं दूजौ भूप कहावै?
'तौ हम कछु न बसाइ पार्थ, जौ श्रीपति तोहिं जितावै"।
"अब मैं सरन तुम्हैं तकि आयौ, हमैं मंत्र कछु दीजै।
'नातरु कुटुंब सैन संहरि सब, कौन काज कौं जीजै"।
"द्रुपद-कुमार होइ रथ आगैं, धनुष गहौ तुम बान।
ध्वजा बैठि हनुमत गल गाजै, प्रभु हाँकै रथ-यान।
'केतिक जीव कृपिन मम बपुरौ, तजै कालहू प्रान।
'सूर एकहीं बान बिदारै, श्री गोपाल की आन" ॥२७५॥

भीष्म का देह-त्याग *राग सारंग*

पारथ भीषम सौं मति पाइ। कियौ सारथी सिखंडी आइ।
भीषम ताहि देखि मुख फेरयौ। पारथ जुद्ध-हेत रथ प्रेरयौ।
कियौ जुद्ध अतिहीं बिकरार। लागी चलन रुधिर की धार।
भीषम सर-सज्या पर परयौ। पै दछिनाइनि लखि नहिं मरयौ।
हरि पांडव-समेत तहँ आए। सूरज-प्रभु भीषम मन भाए॥२७६॥

राग सारंग

हरि सौं भीषम विनय सुनाई। कृपा करी तुम जादवराई!
भारत मैं मेरौ प्रन राख्यौ। अपनौ कह्यौ दूरि करि नाख्यौ।
तुम बिनु प्रभु को ऐसी करै। जो भक्तनि कैं बस अनुसरै।
तब दरसन सुर-नर-मुनि दुर्लभ। मोकौं भयौ सो अतिहीं सुलभ।
दूर नहीं गोबिंद वह काल। सूर कृपा कीजै गोपाल॥२७७॥

राग सारंग

गोबिंद, अब न दूरि वह काल।
दीनानाथ, देवकी-नंदन, भक्तवछल गोपाल!
मैं भीषम, तुम कृष्न सारथी, किये पीतपट लाल।
बहुत सनाह समर सर बेधे, ज्यौं कंटक नल-नाल।
तुम्हरैं चरन-कमल मो मस्तक, कत ताकौं सर-जाल?
सूरदास जन जानि आपनौ, देहु अभय की माल॥२७८॥

राग मलार

वा पट पीत की फहरानि।
कर धरि चक्र, चरन की धावनि, नहिं बिसरति वह बानि।
रथ तैं उतरि चलनि आतुर ह्वै, कच रज की लपटानि।
मानौ सिंह सैल तैं निकस्यौ, महा मत्त गज जानि।
जिन गोपाल मेरौ प्रन राख्यौ, मेटि बेद की कानि।
सोई सूर सहाइ हमारे, निकट भए हैं आनि॥२७९॥

राग सारंग

भीषम धरि हरि कौ उर ध्यान। हरि के देखत तजे परान।
तासु क्रिया करि सब गृह आए। राजा सिंहासन बैठाए।
हरि पुनि द्वारावती सिधाए। सूरदास हरि के गुन गाए॥२८०॥

भगवान् का द्वारिका-गमन *राग बिलावल*

धर्मपुत्र कौँ दै हरि राज। निज पुर चलिबे कौँ कियौ साज।
तब कुंती बिनती उच्चारी। सुनौ कृपा करि कृष्न मुरारी।
जब-जब हमकौँ बिपदा परी। तब-तब प्रभु सहाइ तुम करी।
तुम बिनु हमहिँ राज किहिँ काम? सूर बिसारहु हमैँ न स्याम॥२८१॥

कुंती-विनय *राग कान्हरौ*

प्रभु जू, बिपदा भली बिचारी।
धिक यह राज विमुख चरननि तैँ, कहति पांडु की नारी।
लाखा-मंदिर कौरव रचियौ, तहँ राखे बनवारी।
अंबर हरत सभा मैँ कृष्ना, सोक-सिंधु तैँ तारी।
अतिथि रिषीस्वर सापन आए, सोच भयौ जिय भारी।
स्वल्प साग तैँ तृप्त किए सब, कठिन आपदा टारी।
जन अर्जुन की रच्छा करन, सारथि भए मुरारी।
सोई सूर सहाइ हमारे, संतनि के हितकारी॥२८२॥

राग मलार

अब वे बिपदा हू न रही।
मनसा करि सुमिरत हे जब-जब, मिलते तब तबहीँ।
अपने दीन दास कैँ हित लगि, फिरते सँग-सँगहीँ।
लेते राखि पलक गोलक ज्यौँ, संतत तिन सबहीँ।
रन अरु बन, विग्रह, डर आगैँ, आवत जहीँ-तहीँ।
राखि लियौ तुमहीँ जग-जीवन, त्रासनि तैँ सबहीँ।
कृपा-सिंधु की कथा एक रस, क्यौँ करि जाति कहीँ।
कीजै कहा सूर सुख-संपति, जहँ जदुनाथ नहीँ?॥२८३॥

राजा धृतराष्ट्र का वैराग्य तथा वन गमन *राग बिलावल*

कौरवपति ज्यौँ बन कौँ गयौ। धर्मपुत्र बिरक्त पुनि भयौ।
बरनि सुनावौँ ता अनुसार। सूत कह्यौ जैसैँ परकार।
भारतादि कुरुपति की जथा। चली पांडवनि की जब कथा।
बिदुर कह्यौ मति करौ अन्याई। देहु पांडवनि राज बटाइ।
कुरुपति कह्यौ, धान मम खाइ। पांडु-सुतनि की करत सहाइ।

याकौँ ह्याँ तैँ देहु निकारि। बहुरि न आवै मेरे द्वारि।
बिदुर सस्त्र सब तबहिँ उतारि। चल्यौ तीरथनि मुंड उघारि।
भारत के बीतैँ पुनि आयौ। लोगनि सब वृत्तांत सुनायौ।
तब पूछ्यौ, कुरुपति है कहाँ? कह्यौ, पांडु-सुत-मंदिर जहाँ।
राजा सेव भली बिधि करै। दंपति-आयसु सब अनुसरै।
बिदुर कह्यौ, देखौ हरि-माया। जिन यह सकल लोक भरमाया।
इहिँ माया सब लोगनि लूट्यो। जिहिँ हरि कृपा करी सो छूट्यौ।
इनके पुत्र एक सो मुए। तिन्हैँ बिसारि सुखी ये हुए।
अब मैँ उनकौँ ज्ञान सुनाऊँ। जिहिँ तिहिँ बिधि वैराग्य उपाऊँ।
बहुरौ धर्म-पुत्र पैँ आयौ। राजा देखि बहुत सुख पायौ।
करि सन्मान कह्यौ या भाइ। करी हमारी बहुत सहाइ।
लाखा-गृह तैँ जरत उबारे। अरु बालापन तैँ प्रतिपारे।
कौन-कौन तीरथ फिरि आए? बिदुर सकल वृत्तांत सुनाए।
बहुरि कह्यौ, हरि-सुधि कछु पाई? कह्यौ न कछू, रह्यौ सिर नाई।
बहुरौ कुरुपति कैँ ढिग आए। पूछे समाचार सतिभाए।
कह्यौ, जुधिष्ठिर सेवा करत। तातैँ बहुत अनंदित रहत।
कह्यौ, सुतनि-सुधि आवति कबहीँ? कह्यौ, भावियै कैँ बस सबहीँ।
बिदुर कह्यौ, सत पुत्र तुम्हारे। पांडु-सुतनि सो सकल सँहारे।
तिनकैँ गृह तुम भोजन करत। अरु पुनि कहत सुखी हम रहत!
धिक तुम, धिक या कहिबे ऊपर। जीवित रहिहौ कौ लौँ भू पर।
स्वान-तुल्य है बुद्धि तुम्हारी। जूठनि काज सहत दुख भारी।
द्रौपदि के तुम बसन छिनाए। इन तव राज बहुत दुख पाए।
इनकैँ गृह रहि तुम सुख मानत। अति निलज्ज, कछु लाज न आनत!
जीवनि-त्रास प्रबल श्रुति लेखी। साच्छात सो तुममैँ देखी।
काल-अगिनि सबही जग जारत। तुम कैसे कैँ जिअन बिचारत?
आयु तुम्हारी गई सिराइ। बन चलि भजौ द्वारिकाराइ।
कुरुपति कह्यौ अंध हम दोइ। बन मैँ भजन कौन विधि होइ?
बिदुर कह्यो, सेवा मैँ करिहौँ। सेवा करत नैँकु नहिँ टरिहौँ।
अर्ध निसा तिनकौँ लै गयौ। प्रात भए नृप विस्मय भयौ।
बूड़ि मुए, कै कहूँ उठि गए। तिनकैँ सोच नृपति बहु तए।
उहाँ जाइ कुरुपति बल-जोग। दियौ छाँड़ि तन कौँ संजोग।
गंधारी सहगामिनि कियौ। बिदुर भक्त तीरथ-मग लियौ।

तिहिँ अंतर नारद तहँ आए। नृप कौँ सब वृत्तांत सुनाए।
नृप कैँ मन उपज्यौ बैराग। भजौँ सूर-प्रभु अब सब त्याग ॥२८४॥

हरि-वियोग, पांडव-राज्य-त्याग, उत्तर-गमन *राग सारंग*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि वियोग पांडव तजि राज। गए बन, भयौ परीच्छित-राज।
कहौँ सु कथा, सुनौ चित धारि। सूर कह्यौ भागवतऽनुसारि ॥२८५॥

अर्जुन का द्वारिका जाना और शोक-समाचार लाना *राग बिलावल*

राजा सौँ अर्जुन सिर नाइ। कह्यौ सुनौ बिनती महराइ।
बहु दिन भए, हरि-सुधि नहिँ पाई। आज्ञा होइ तौ देखौँ जाई।
यह कहि पारथ हरि-पुर गए। सुन्यौ, सकल जादव छै भए।
अर्जुन सुनत नैन जल धार। पर्‍यो धरनि पर खाइ पछार।
तब दारुक संदेस सुनायौ। कह्यो, हरि जू जो गीता गायौ।
सो सुरूप हिरदै महँ आन। रहियौ करत सदा मम ध्यान।
तब अर्जुन मन धीरज धारि। चले संग लै जे नर-नारि।
तहँ भिल्लनि सौँ भई लराई। लूटे सब, बिन स्याम-सहाई।
अर्जुन बहुत दुखित तब भए। इहाँ अपसगुन होत नित नए।
रोवैँ वृषभ, तुरग अरु नाग। स्यार द्यौस, निसि बोलैँ काग।
कंपै भुव, वर्षा नहिँ होइ। भयौ सोच नृप-चित यह जोइ।
इहिँ अंतर अर्जुन फिरि आयौ। राजा कैँ चरननि सिर नायौ।
राजा ताकौँ कंठ लगाइ। कह्यौ, कुसल हैँ जादवराइ ?
बल, बसुदेव, कुसल सब लोइ ? अर्जुन यह सुनि दीन्हौ रोइ।
राजा कह्यौ, कहा भयौ तोहिँ। तू क्यौँ कहि न सुनावै मोहिँ।
काहू असत्कार तौहिँ कियौ। कै कहि दान न द्विज कौँ दियौ।
कै सरनागत कौँ नहिँ राख्यौ। कै तुमसैँ काहू कटु भाष्यौ।
कै हरि जू भए अंतर्धान। मोसौँ कहि तू प्रगट बखान।
तब अर्जुन नैननि जल डारि। राजा सौँ कह्यौ वचन उचारि।
सूरज-प्रभु वैकुंठ सिधारे। जिन हमरे सब काज सँवारे ॥२८६॥

राग धनाश्री

हरि बिनु को पुरवै मो स्वारथ ?
मीड़त हाथ, सीस धुनि ढोरत, रुदन करत नृप, पारथ।

थाके हस्त, चरन-गति थाकी, अरु थाक्यौ पुरुषारथ।
पाँच बान मोहिँ संकर दीन्हे, तेऊ गए अकारथ।
जाकैँ संग सेत-बँध कीन्हौँ, अरु जीत्यौँ महभारथ।
गोपी हरी सूर के प्रभु बिनु, रहत प्रान किहिँ स्वारथ ! ॥२८॥

राग बिलावल

यह सुनि राजा रोइ पुकारे। भीमादिक रोए पुनि सारे।
रोवत सुनि कुंती तहँ आई। कहौ, कुसल जादौ-जदुराई ?
अर्जुन कह्यौ, सबै लरि मुए। हरि-बिनु सब अनाथ हम हुए।
कुंती प्रान तजे धरि ध्यान। जीवन-मरम उनहिँ भल जान।
राज परीच्छित कौँ नृप दीन्हौ। वज्रनाभ मथुरापति कीन्हौ।
द्रुपद-सुता समेत सब भाई। उत्तर दिशा गए हरि ध्याई।
जोग पंथ करि उन तनु तजे। सूर सबै तजि हरि-पद भजे॥२८८॥

गर्भ में परीक्षित की रक्षा तथा उनका जन्म *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारविँद उर धरौ।
हरि परीच्छितहिँ गर्भ-मँझार। राखि लियौ निज कृपा-अधार।
कहौँ सो कथा सुनहु चित लाइ। जो हरि भजै, रहै सुख पाइ।
भारत जुद्ध बितत जब भयौ। दुरजोधन अकेल रहि गयौ।
अस्वत्थामा तापैँ जाइ। ऐसी भाँति कह्यौ समुझाइ।
हमसौँ तुमसौँ बाल-मिताई। हमसौँ कछु न भई मित्राई !
अब जो आज्ञा मोकौँ होइ। छाँड़ि बिलंब करौँ मैँ सोइ।
राज गए का दुख नहिँ कोइ। पांडव राज नहीँ जो होइ।
उनके मुएँ हिऐं सुख होइ। जौ करि सकौ, करौ अब सोइ।
हरि सर्वज्ञ बात यह जानि। पांडु-सुतनि सौँ कही बखानि।
आज सरस्वति-तट रहौ सोइ। पै यह बात न जानै कोइ।
पांडव हरि की आज्ञा पाइ। तजि गृह, रहे सरस्वति जाइ।
काहू सौँ यह कहि न सुनाई। उहाँ जाइ सब रैनि बिताई।
अस्वत्थामा निसि तहँ आए। द्रौपदि-सुत तहँ सोवत पाए।
उनके सिर लै गयौ उतारि। कह्यौ, पांडवनि आयौ मारि।
बिन देखैँ ताकौँ सुख भयौ। देखे तैँ दूनौ दुख ठयौ।
ये बालक तैँ बृथा सँहारे। कहि, कुरुपति तजि प्रान-सिधारे।

अस्वत्थामा भय करि भग्यौ। इहाँ लोग सब सोवत जग्यौ।
द्रौपदि देखि सुतनि दुख पायौ। अर्जुन सौं यह बचन सुनायौ।
अस्वत्थाम न जब लगि मारौ। तब लगि अन्न न मुख मैं डारौ।
हरि-अजुन रथ पर चढ़ि धाए। अस्वत्थामा पै चलि आए।
अस्वत्थामा अस्त्र चलायौ। अर्जुन हूँ ब्रह्मास्त्र पठायौ।
उन दोउन सौं भई लराई। अजुन तब दोउ लिए बुलाई।
अस्वत्थामा कौं गहि ल्याए। द्रौपदि सीस मूँड़ि मुकराए।
याके मारैं हत्या होइ। मनि लै छाँड़ौं सोभा खोइ।
अस्वत्थामा बहुरि खिस्याइ। ब्रह्म-अस्त्र कौं दियौ चलाइ।
गर्भ परीच्छित जारन गयौ। तह हरि ताहि जरन नहिं दयौ।
रूप चतुर्भुज गर्भ-मँझारि। ताकौं तासौं लियौ उबारि।
जन्म परीच्छित कौ जब भयौ। कह्यौ, चतुर्भुज कहँ अब गयौ?
पुनि जब हरि कौं देख्यौ जोइ। पाइ सँतोष सुखी भयौ सोइ।
राजा जन्म-समय कौं देखि। मन मैं पायौ हर्ष बिसेखि।
गर्भ-परीच्छित रच्छा करी। सोई कथा सकल बिस्तरी।
श्रीभगवान कृपा जिहिं करै। सूर सो मारैं काके मरै?॥२८९॥

परीक्षित कथा *राग सारंग*

हरि, हरि-भक्तनि कौं सिर नाऊँ। हरि, हरि-भक्तनि के गुन गाऊँ।
हरि, हरि-भक्त एक, नहिं दोइ। पै यह जानत बिरला कोइ।
भक्त परीच्छित हरि कौ प्यारौ। गर्भ-मँझारि हुतौ जब बारौ।
ब्रह्म-अस्त्र तैं ताहि बचायौ। जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ।
बहुरि राज ताकौ जब भयौ। मिस दिगविजय चहूँ दिसि गयौ।
परजा सकल धर्म-रत देखी। ताकैं मन भयौ हर्ष बिसेखी।
कुरुच्छेत्र मैं पुनि जब आवा। गाइ, वृषभ तहँ दुःखित पायौ।
तासु वृषभ कैं पग त्रय नाहिं। रोवति गाइ देखि करि ताहिं।
वृषभ धर्म पृथ्वी सो गाइ। वृषभ कह्यौ तासौं या भाइ।
मेरैं हेत दुखी तू होत। कै अधर्म तो ऊपर होत?
गो कह्यौ, हरि बैकुंठ सिधारे। सम-दम उनहीं संग पधारे।
दया, धर्म संतोषहु गयौ। ज्ञान, छमादिक सब लय भयौ।
जज्ञ, सराध न कोऊ करै। कोऊ धर्म न मन मैं धरै।
अरु तुमकौं बिनु पाइनि देखि। मोहिं होत है दुःख बिसेखि।

सूद्रराज इहिँ अंतर आयौ। बृषभ-गाइ कौँ पाइ चलायौ।
ताहि परीच्छित खड्ग उठाइ। बहुरौ बचन कह्यौ या भाइ।
तू को, कौन देस है तेरौ? कै छल गह्यौ राज सब मेरौ।
या बिधि नृपति परीच्छित कह्यौ। पै वासौँ उत्तर नहिँ लह्यौ।
कह्यौ बृषभ सौँ, को दुखदाइ? तासु नाम मोहिँ देहु बताइ।
इंद्र होइ ताहू कौँ मारौँ। तुम्हरौ यह संताप निवारौँ।
बृषभ कह्यौ तुम ऐसेहि राउ। पै मैँ लेउँ कौन कौ नाउँ?
कोउ कहै हरि-इच्छा दुख होइ। द्वितिया दुखदायक नहिँ कोइ।
कोउ कहै करम होइ दुख-दाता। काहूँ दुख नहिँ देत बिधाता।
कोउ कहै सत्रु होइ दुखदाई। सो तौ मैँ न कीन्हि सत्राई।
काकौ नाम बताऊँ तोकौँ। दुखदायक अदृष्ट मम मोकौँ।
कहियत इतने दुख-दातार। तुमहीँ देखौ करौ बिचार।
तब बिचार करि राजा-देख्यौ। सूद्र नृपति कलिजुग करि लेख्यौ।
बृषभ धर्म अरु पृथ्वी गाइ। इनकौँ यहै भयौ दुखदाइ।
ताहि कह्यौ तू बड़ौ अधर्मी। तो समान नहिँ और कुकर्मी।
छमा, दया, तप पग तैँ काट्यौ। छाँड़ि देस मम, यह कहि डाँट्यौ।
तिन कह्यौ, मो मैँ एक भलाई। तुमसौँ कहौँ, सुनौ चित लाई।
धर्म बिचारत मन मैँ होइ। मनसा पाप लगै नहिँ कोइ।
राज तुम्हारौ है सब ठौर। तुम बिनु नृपति न द्वितिया और।
जौन ठौर मोहिँ आज्ञा होइ। ताही ठौर रहौँ मैँ जोइ।
कही, हरि-बिमुखऽरु वेस्या जहाँ। सुरापान, बधिकनि गृह तहाँ।
जूआ खेलत जहाँ जुआरी। ये पाँचौ हैँ ठौर तुम्हारी।
पाँचौ होहिँ नृपति ये जहाँ। मोकौँ ठौर बतावहु तहाँ।
तब नृप ताकौँ कनक बतायौ। कनक-मुकुट लखि सो लपटायौ।
इक दिन राइ अखेटहिँ गयौ। ता बन माहिँ पियासौ भयौ।
रिषि समीप कैँ आस्रम आयौ। रिषि हरि-पद सौँ ध्यान लगायौ।
राजा जल ता रिषि सौँ माँग्यौ। ताकौ मन हरि-पद सौँ लाग्यौ।
राजा कौँ उत्तर नहिँ दियौ। तब मन माहिँ क्रोध तिन कियौ।
यह सब कलिजुग कौ परभाउ। जो नृप कैँ मन भयउ कुभाउ।
रिषि की कपट-समाधि बिचारि। दियौ भुजंग मृतक गर डारि।
रिषि समाधि महँ त्यौँही रह्यौ। सृंगी रिषि सौँ लरिकनि कह्यौ।
सृंगी रिषि तब कियौ बिचार। प्रजा-दोष करै नृपति गुहार।

नृपति-दोष कहियै किहिँ जाइ। दियौ साप तिहिँ तच्छक खाइ।
दै करि साप पिता पहँ आयौ। देख्यो सर्प पिता-गर नायौ।
रोवन लग्यौ मृतक सो जान। रुदन सुनत छूट्यो रिषि-ध्यान।
सुत सौँ कह्यौ कहा भयौ तोहिँ। क्यौँ न सुनावत निज दुख मोहिँ?
शृंगी रिषि तब कहि समुझायौ। नृप भुजंग तब ग्रीवा नायौ।
यह अपराध बड़ौ उन कीन्हौ। तच्छक डसन साप मैँ दीन्हौ।
रिषि कह्यौ बहुत बुरौ तैँ कीन्हौ। जो यह साप नृपति कौँ दीन्हौ।
तुव सराप तैँ मरिहै सोइ। यह अपराध मोहिँ सब होइ।
सुख सौँ बसत राज उनकैँ सब। दुख पैहैँ सो सकल प्रजा अब।
ताकी रच्छा हरि जू करी। हरी-अवज्ञा तुम अनुसरी।
इत राजा मन मैँ पछिताइ। मैँ यह कियौ बड़ौ अन्याइ।
जाकैँ हृदय बुद्धि यह आवै। ताकौ फल सो भलौ न पावै।
रिषि सिष्यहिँ भेज्यौ समुझाइ। नृप सौँ कहि तू ऐसी जाइ।
मम सुत साप दियौ या भाइ। सप्तम दिन तोहिँ तच्छक खाइ।
सृंगी यह कीन्हौ बिनु जानैँ। होत कहा अब के पछितानैँ।
तातैँ तुम उपाइ सो करौ। जातैँ भव-सागर कौँ तरौ।
नृप सुनि, लाग्यौ करन विचार। सप्तम दिन मरिबौ निरधार।
जज्ञ-दान करि सुर पुर जैयै। तहाँ जाइ कै सुख बहु पैयै।
बहुरि कह्यौ सुरपुर कछु नाहिँ। पुन्य-छीन तिहिँ ठौर गिराहिँ।
तातैँ सुत, कलत्र, सब त्याग। गहौँ एक हरि-पद अनुराग।
बहुरि कह्यौ, अबकौ कहा त्याग। खोयौ जन्म बिषय-सुख-लाग।
सूर न हरि-पद सौँ चित लायौ। इत-उत देखत जनम गँवायौ ॥२९०॥

राग धनाश्री

इत-उत देखत जनम गयौ।
या झूठी माया कैँ कारन, दुहुँ दृग अंध भयौ।
जनम-कष्ट तैँ मातु दुखित भई, अति दुख प्रान सह्यौ।
वै त्रिभुवनपति बिसरि गए तोहिँ, सुमिरत क्यौँ न रह्यौ।
श्रीभागवत सुन्यौ नहिँ कबहूँ, बीचहिँ भटकि मर्‍यौ।
सूरदास कहै, सब जग बूड़्यौ, जुग-जुग भक्त तर्‍यौ ॥२९१॥

राग सारंग

जनम सिरानौ अटकैँ-अटकैँ।
राज-काज, सुत-बित की डोरी, बिनु बिवेक फिर्‍यौ भटकैँ।

कठिन जो गाँठि परी माया की, तोरी जाति न झटकैं।
ना हरि-भक्ति, न साधु-समागम, रह्यो बीचहीं लटकैं।
ज्यौं बहु कला काछि दिखरावै, लोभ न छूटत नट कैं।
सूरदास सोभा क्यौं पावै, पिय-बिहीन धनि मटकैं ॥२६२॥

राग सारंग

जनम सिरानौ ऐसैं-ऐसैं।
कै घर-घर भरमत जदुपति बिनु, कै सोवत, कै बैसैं।
कै कहुँ खान-पान-रमनादिक, कै कहुँ बाद अनैसैं।
कै कहुँ रंक, कहूँ ईस्वरता, नट-बाजीगर जैसैं।
चेत्यौ नाहिं, गयौ टरि औसर, मीन बिना जल जैसैं।
यह गति भई सूर की ऐसी, स्याम मिलैं धौं कैसैं ॥२६३॥

राग देवगंधार

बिरथा जन्म लियौ संसार।
करी कबहुँ न भक्ति हरि की, मारी जननी भार।
जज्ञ, जप, तप नाहिँ कीन्ह्यौ, अल्प मति विस्तार।
प्रगट प्रभु नहिँ दूरि हैं, तू, देखि नैन पसार।
प्रबल माया ठग्यौ सब जग, जनम जूआ हार।
सूर हरि कौ सुजस गावौ; जाहि मिटि भव-भार ॥२६४॥

राग सोरठ

काया हरि कैं काम न आई।
भाव-भक्ति जहँ हरि-जस सुनियत, तहाँ जात अलसाई।
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ, तहाँ सुनत उठि धाई।
चरन-कमल सुंदर जहँ हरि के, क्यौंहुँ न जात नवाई।
जब लगि स्याम-अंग नहिँ परसत, अंधे ज्यौं भरमाई।
सूरदास भगवंत-भजन तजि, बिषय परम विष खाई ॥२६५॥

राग धनाश्री

सबै दिन गए बिषय के हेत।
तीनौं पन ऐसैं हीं खोए, केस भए सिर सेत।
आँखिनि अंध, स्रवन नहिँ सुनियत, थाके चरन समेत।
गंगा-जल तजि पियत कूप-जल, हरि तजि पूजत प्रेत।

७

मन-बच-क्रम जौ भजे स्याम कौं, चारि पदारथ देत।
ऐसौ प्रभू छाँड़ि क्यौं भटकै, अजहूँ चेति अचेत।
राम नाम बिनु क्यौं छूटौगे, चंद गहैं ज्यौं केत।
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत ॥२६६॥

राग सारंग

जौ तू राम-नाम-धन धरतौ।
अबकौ जन्म, आगिलौ तेरौ, दोऊ जन्म सुधरतौ।
जम कौ त्रास सबै मिटि जातौ, भक्त नाम तेरौ परतौ।
तंदुल-घिरत समर्पि स्याम कौं, संत-परोसौ करतौ।
होतौ नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहिं टरतौ।
सूरदास बैकुंठ-पैंठ मैं, कोउ न फैंट पकरतौ ॥२६७॥

राग देवगंधार

सबनि सनेहौ छाँड़ि दयौ।
हा जदुनाथ! जरा तन ग्रास्यौ, प्रतिभौ उतरि गयौ।
सोइ तिथि-बार-नछत्र-लगन-ग्रह, सोइ जिहिं ठाट ठयौ।
तिन अंकनि कोउ फिरि नहिं बाँचत, गत स्वारथ समयौ।
सोइ धन-धाम, नाम सोई, कुल सोई जिहिं बढ़यौ।
अब सबही कौं बदन स्वान लौं, चितवत दूरि भयौ।
बरष दिवस करि होत पुरातन, फिरि-फिर लिखत नयौ।
निज कृति-दोष विचारि सूर प्रभु तुम्हरी सरन गयौ ॥२६८॥

राग मलार

द्वै मैं एकौ तौ न भई।
ना हरि भज्यौ, न गृह सुख पायौ, बृथा बिहाइ गई।
ठानी हुती और कछु मन मैं, औरै आनि ठई।
अबिगत-गति कछु समुझि परत नहिं, जो कछु करत दई।
सुत-सनेहि-तिय सकल कुटुँब मिलि, निसि-दिन होत खई।
पद-नख-चंद चकोर बिमुख मन, खात अँगार मई।
विषय-बिकार-दवानल उपजी, मोह-बतारि लई।
भ्रमत-भ्रमत बहुतै दुख पायौ, अजहुँ न टेंव गई।

होत कहा अबके पछिताएँ, बहुत बेर बितई।
सूरदास सेये न कृपानिधि, जो सुख सकल मई ॥२९९॥

राग सारंग

यह सब मेरीयै आइ कुमति।
अपनैं ही अभिमान-दोष दुख पावत हौं मैं अति।
जैसैं केहरि उझकि कूप-जल, देखत अपनी प्रति।
कूदि पर्यौ, कछु मरम न जान्यौ, भई आइ सोइ गति।
ज्यौं गज फटिक सिला मैं देखत, दसननि डारत हति।
जौ तू सूर सुखहिं चाहत है, तौ करि विषय-बिरति ॥३००॥

राग केदारौ

झूठेही लगि जनम गँवायौ।
भूल्यौ कहा स्वप्न के सुख मैं, हरि सौं चित न लगायौ।
कबहुँक बैठ्यौ रहसि-रहसि कै, ढोटा गोद खिलायौ।
कबहुँक फूलि सभा मैं बैठ्यौ, मूँछनि ताव दिखायौ।
टेढ़ी चाल, पाग सिर टेढ़ी, टेढ़ैं-टेढ़ैं धायौ।
सूरदास प्रभु क्यौं नहिं चेतत, जब लगि काल न आयौ ॥३०१॥

राग केदारौ

जग मैं जीवत ही कौ नातौ।
मन बिछुरैं तन छार होइगौ, कोउ न बात पुछातौ।
मैं-मेरी कबहूँ नहिं कीजै, कीजै, पंच-सुहातौ।
बिषयासक्त रहत निसि-बासर, सुख सियरौ, दुख तातौ।
साँच-झूठ करि माया जोरी, आपुन रूखौ खातौ।
सूरदास कछु थिर न रहैगौ, जो आयौ सो जातौ ॥३०२॥

राग धनाश्री

कहा लाइ तैं हरि सौं तोरी?
हरि सौं तोरि कौन सौं जोरी?
सिर पर धरि न चलैगौ कोऊ, जो जतननि करि माया जोरी।
राज-पाट सिंहासन बैठौ, नील पदुम हूँ सौं कहै थोरी।

मैँ-मेरी करि जनम गँवावत, जब लगि नाहिँ परति जम-डोरी।
धन-जोबन-अभिमान अल्प जल, काहे कूर आपनी बोरी।
हस्ती देखि बहुत मन-गर्वित, ता मूरख की मति है थोरी।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चले खेलि फागुन की होरी ॥३०३॥

राग धनाश्री

बिचारत ही लागे दिन जान।
सजल देह, कागद तैँ कोमल, किहि बिधि राखै प्रान ?
जोग न यज्ञ, ध्यान नहिँ सेवा, संत-संग नहिँ ज्ञान।
जिह्वा-स्वाद, इंद्रियनि-कारन, आयु घटति दिन मान।
और उपाइ नहीँ रे बौरे, सुनि तू यह दै कान।
सूरदास अब होत बिगूचनि, भजि लै सारँगपान ॥३०४॥

राग धनाश्री

अब मैँ जानी, देह बुढ़ानी।
सीस, पाउँ, कर कह्यौ न मानत, तन की दसा सिरानी।
आन कहत, आनै कहि आवत, नैन-नाक बहै पानी।
मिटि गइ चमक-दमक अँग-अँग की, मति अरु दृष्टि हिरानी।
नाहिँ रही कछु सुधि तन-मन की, भई जु बात बिरानी।
सूरदास अब होत बिगूचनि, भजि लै सारँमपानी ॥३०५॥

मन-प्रबोध

राग देवगंधार

रे मन, सुमिरि हरि हरि हरि !
सत जज्ञ नाहिँन नाम सम, परतीति करि करि करि।
हरि-नाम हरिनाकुस बिसारयौ, उठ्यौ बरि बरि बरि।
प्रहलाद-हित जिहिँ असुर मारयौ, ताहि डरि डरि डरि।
गज-गीध-गनिका-व्याध के अघ गए गरि गरि गरि।
रस-चरन-अंबुज बुद्धि-भाजन, लेहि भरि भरि भरि।
द्रौपदी के लाज कारन, दौरि परि परि परि।
पांडु-सुत के बिघन जेते, गए टरि टरि टरि।
करन, दुरजोधन, दुसासन, सकुनि, अरि अरि अरि।
अजामिल सुत-नाम लीन्हैँ, गए तरि तरि तरि।

चारि फल के दानि हैं प्रभु, रहे फरि फरि फरि।
सूर श्री गोपाल हिरदै राखि धरि धरि धरि ॥३०६॥

राग केदारौ

करि मन, नंद-नंदन-ध्यान।
सेव चरन-सरोज सीतल, तजि विषय-रस-पान।
जानु-जंघ त्रिभंग सुंदर, कलित कंचन-दंड।
काछनी कटि पीतपट-दुति, कमल-केसर-खंड।
मनौ मधुर मराल-छौना, किंकिनी-कल-राव।
नाभि-ह्रद, रोमावली-अलि, चले सहज सुभाव।
कंठ मुक्तामाल, मलयज, उर बनी बनमाल।
सुरसरी कैं तीर मानौ लता स्याम तमाल।
बाहु-पानि सरोज-पल्लव, धरे मृदु मुख बेनु।
अति बिराजत बदन-बिधु, पर सुरभि-रंजित-रेनु।
अधर, दसन, कपोल, नासा, परम सुंदर नैन।
चलित कुंडल गंड-मंडल, मनहुँ निर्तत मैन।
कुटिल भ्रू पर तिलक रेखा, सीस सिखिनि-सिखंड।
मनु मदन धनु-सर सँधाने, देखि घन-कोदंड।
सूर श्रीगोपाल की छबि, दृष्टि भरि-भरि लेहु।
प्रानपति की निरखि सोभा, पलक परन न देहु ॥३०७॥

राग केदारौ

भजि मन, नंद-नंदन-चरन।
परम पंकज अति मनोहर, सकल सुख के करन।
सनक-संकर ध्यान धारत, निगम-आगम बरन।
सेस, सारद, रिषय नारद, संत चिंतन सरन।
पद-पराग-प्रताप-दुर्लभ, रमा कौ हित-करन।
परसि गंगा भई पावन, तिहूँ पुर धन-धरन।
चित्त चिंतन करत जग-अघ हरत, तारन-तरन।
गए तरि लै नाम केते, पतित, हरि-पुर-धरन।
जासु पद-रज-परस गौतम-नारि-गति-उद्धरन।
जासु महिमा प्रगटि केवट, धोइ पग सिर धरन।

कृष्न-पद-मकरंद पावन, और नहिँ सरबरन।
सूर भजि चरनारबिंदनि, मिटै जीवन-मरन ॥३०८॥

राग केदारौ

रे मन, समुझि सोचि-बिचारि।
भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ, कहत निगम पुकारि।
धारि पासा साधु-संगति, फेरि रसना-सारि।
दाउँ अबकैँ पर्‍यौ पूरौ, कुमति पिछली हारि।
राखि सतरह, सुनि अठारह, चोर पाँचौ मारि।
डारि दै तू तीनि काने, चतुर चौक निहारि।
काम क्रोधऽरु लोभ मोह्यौ, ठग्यौ नागरि नारि।
सूर श्री गोबिँद-भजन बिनु, चले दोउ कर झारि ॥३०९॥

राग सारंग

होउ मन, राम-नाम कौ गाहक।
चौरासी लख जीव-जोनि मैँ भटकत फिरत अनाहक।
भक्तनि-हाट बैठि अस्थिर ह्वै, हरि नग निर्मल लेहि।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तू, सकल दलाली देहि।
करि हियाव, यह सौंज लादि कै, हरि कैँ पुर लै जाहि।
घाट-बाट कहुँ अटक होइ नहिँ, सब कोउ देहि निबाहि।
और बनिज मैँ नाहीँ लाहा, होति मूल मैँ हानि।
सूर स्याम कौ सौदा साँचौ, कह्यौ हमारौ मानि ॥३१०॥

राग केदारौ

रे मन, राम सौँ करि हेत।
हरि-भजन की बारि करि लै, उबरै तेरौ खेत।
मन सुवा, तन पीँजरा, तिहिँ माँझ राखै चेत।
काल फिरत बिलार-तनु धरि, अब घरी तिहिँ लेत।
सकल विषय-विकार तजि, तू उतरि सायर-सेत।
सूर भजि गोबिंद के गुन, गुर बताए देत ॥३११॥

राग कान्हरौ

मन-बच-क्रम मन, गोबिँद सुधि करि।
सुचि-रुचि सहज समाधि साधि सठ, दीनबंधु करुनामय उर धरि।

मिथ्या बाद-बिवाद छाँड़ि दै, काम-क्रोध-मद-लोभहिँ परिहरि।
चरन-प्रताप आनि उर अंतर, और सकल सुख या सुख तरहरि।
बेदनि कह्यौ, सुस्मृतिहूँ भाष्यौ, पावन-पतित नाम निज नरहरि।
जाकौ सुजस सुनत अरु गावत, जैहै पाप-बृंद भजि भरहरि।
परम उदार, स्याम-घन-सुंदर, सुखदायक, संतत हितकर हरि।
दीनदयाल, गोपाल, गोपपति, गावत गुन आवत ढिग ढरहरि।
अति भयभीत निरखि भवसागर, घन ज्यौँ घेरि रह्यौ घट घरहरि।
जब जम-जाल-पसार परैगौ, हरि बिनु कौन करैगौ धरहरि?
अजहूँ चेति मूढ़, चहुँ दिसि तैँ उपजी काल-अगिनि झर झरहरि।
सूर काल-बल-ब्याल ग्रसत है, श्रीपति-सरन परत किन फरहरि ॥३१२॥

राग कान्हरौ

तिहारौ कृष्न कहत कह जात ?
बिछुरैँ मिलन बहुरि ह्वैहै, ज्यौँ तरवर के पात।
सीत-बात-कफ कंठ बिरोधै, रसना टूटै बात।
प्रान लए जम जात, मूढ़-मति देखत जननी-तात।
छन इक माहिँ कोटि जुग बीतत, नर की केतिक बात ?
यह जग-प्रीति सुवा-सेमर ज्यौँ, चाखत ही उड़ि जात।
जमकैँ फंद पर्यौ नहिँ जब लगि, चरननि किन लपटात ?
कहत सूर बिरथा यह देही, एतौ कत इतरात ॥३१३॥

राग केदारौ

हरि की सरन महँ तू आउ।
काम-क्रोध-बिषाद-तृष्ना, सकल जारि बहाउ।
काम कैँ बस जो परै जमपुरी ताकौँ त्रास।
ताहि निसि-दिन जपत रहि जो सकल-जीव-निवास।
कहत यह बिधि भली तोसौँ, जौ तू छाँड़ै दोह।
सूर स्याम सहाइ हैँ तौ आठहूँ सिधि लेहि ॥३१४॥

कान्हरौ

दिन दस लेहि गोबिँद गाइ।
छिन न चिंतत चरन-अंबुज, बादि जीवन जाइ।

दूरि जब लौं जरा रोगऽरु चलति इंद्री भाइ।
आपुनौ कल्यान करि लै, मानुषी तन पाइ।
रूप जोबन सकल मिथ्या, देखि जनि गरबाइ।
ऐसेहीं अभिमान-आलस, काल ग्रसिहै आइ।
कूप खनि कत जाइ रे नर, जरत भवन बुझाइ।
सूर हरि कौ भजन करि लै, जनम-मरन नसाइ ॥३१५॥

राग केदारौ

दिन द्वै लेहु गोबिंद गाइ।
मोह-माया-लोभ लागे, काल घेरै आइ।
बारि मैं ज्यौं उठत बुदबुद, लागि बाइ बिलाइ।
यहै तन-गति जनम-झूठौ, स्वान-काग न खाइ!
कर्म-कागद बाँचि देखौ, जौ न मन पतियाइ।
अखिल लोकनि भटकि आयौ, लिख्यौ मेटि न जाइ।
सुरति के दस द्वार रूँधे, जरा घेर्यौ आइ।
सूर हरि की भक्ति कीन्हैं, जन्म-पातक जाइ ॥३१६॥

राग धनाश्री

मन, तोसौं किती कही समुझाइ।
नंदनँदन के चरन-कमल भजि, तजि पाखँड-चतुराइ।
सुख-संपति, दारा-सुत, हय-गय, छूट सबै समुदाइ।
छनभंगुर यह सबै स्याम बिनु, अंत नाहिँ सँग जाइ।
जनमत-मरत बहुत जुग बीते, अजहूँ लाज न आइ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जैहै जनम गंवाइ ॥३१७॥

राग मलार

अब मन, मानि धौं राम दुहाई।
मन-बच-क्रम हरि-नाम हृदय धरि, ज्यौं गुरु बेद बताई।
महा कष्ट दस मास गर्भ बसि, अधोमुख-सीस रहाई।
इतनी कठिन सही तैं केतिक, अजहुँ न तू समुझाई!
मिटि गए राग द्वेष सब तिनके, जिन हरि प्रीति लगाई।
सूरदास प्रभु-नाम की महिमा, पतित परम गति पाई ॥३१८॥

राग आसावरी

बौरे मन, रहन अटल करि जान्यौ।
धन-दारा-सुत-बंधु-कुटुँब-कुल, निरखि निरखि बौरान्यौ।
जीवन जन्म अल्प सपनौ सौ, समुझि देखि मन माहीँ।
बादर-छाहँ, धूम-धौराहर, जैसैँ थिर न रहाहीँ।
जब लगि डोलत, बोलत, चितवत, धन-दारा हैँ तेरे।
निकसत हंस, प्रेत कहि तजिहैं, कोउ न आवं नेरे।
मूरख, मुग्ध, अजान, मूढ़मति, नाहीँ कोऊ तेरौ।
जो कोऊ तेरौ हितकारी, सो कहै काढ़ि सबेरौ।
घरी इक सजन-कुटुँब मिलि बैठैँ, रुदन बिलाप कराहीँ।
जैसैँ काग काग के मूएँ, काँ-काँ करि उड़ि जाहीँ।
कृमि-पावक तेरौ तन भखिहै, समुझि देखि मन माहीँ।
दीन-दयाल सूर हरि भजि लै, यह औसर फिरि नाहीँ॥३१६॥

राग गौरी

ते दिन बिसरि गए इहाँ आए।
अति उन्मत्त मोह-मद छाक्यौ, फिरत केस बगराए।
जिन दिवसनि तैँ जननि-जठर मैँ रहत बहुत दुख पाए।
अति संकट मैँ भरत भँटा लौँ, मल मैँ मूँड़ गड़ाए।
बुधि-बिवेक-बल-हीन, छीन-तन, सबही हाथ पराए।
तब धौँ कौन साथ रहि तेरैँ, खान-पान पहुँचाए।
तिहिँ न करत चित अधम अजहुँ लौँ जीवत जाके ज्याए।
सूर सो मृग ज्यौँ बान सहत नित बिषय ब्याध के गाए॥३२०॥

राग धनाश्री

रे मन, निपट निलज अनीति।
जियत की कहि को चलावै, मरत बिषयनि प्रीति।
स्वान कुब्ज, कुपंगु, कानौ, स्रवन-पुच्छ-बिहीन।
भग्न भाजन कंठ, कृमि सिर, कामिनी-आधीन।
निकट आयुध बधिक धारे, करत तीच्छन धार।
अजा-नायक मगन क्रीड़त, चरत बारंबार।
देह छिन-छिन होति छीनी, दृष्टि देखत लोग।
सूर स्वामी सौँ बिमुख ह्वै, सती कैसे भोग?॥३२१॥

राग गौरी

बौरे मन, समुझि-समुझि कछु चेत।
इतनौ जन्म अकारथ खोयौ, स्याम चिकुर भए सेत।
तब लगि सेवा करि निस्चय सौं, जब लगि हरियर खेत।
सूरजदास भरम जनि भूलौ, करि बिधना सौं हेत ॥३२२॥

राग धनाश्री

रे सठ, बिन गोबिंद सुख नाहीं।
तेरौ दुःख दूरि करिबे कौं, रिधि-सिधि फिरि-फिरि जाहीं।
सिव, बिरंचि, सनकादिक मुनिजन इनकी गति अवगाहीं।
जगत-पिता जगदीस-सरन बिनु, सुख तीनौं पुर नाहीं।
और सकल मैं देखे-ढूंढ़े, बादर की सी छाहीं।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, दुख कबहूँ नहिं जाहीं ॥३२३॥

राग कान्हरौ

मन, तोसौं कोटिक बार कही।
समुझि न चरन गहे गोबिंद के, उर अघ-सूल सही।
सुमिरन, ध्यान, कथा हरिजू की यह एकौ न रही।
लोभी, लंपट, बिषयिनि सौं हित, यौं तेरी निबही।
छाँड़ि कनक-मनि रतन अमोलक, काँच की किरच गही।
ऐसौ तू है चतुर बिवेकी, पय तजि पियत मही।
ब्रह्मादिक, रुद्रादिक, रवि-ससि, देखे सुर सबही।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, सुख तिहुँ लोक नहीं ॥३२४॥

राग परज

मन रे, माधव सौं करि प्रीति।
काम-क्रोध-मद-लोभ तू, छाँड़ि सबै बिपरीति।
भौंरा भोगी बन भ्रमै, (रे) मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करै, (पै) कमल बँधावै आप।
सुनि परमिति पिय प्रेम की, (रे) चातक चितवन पारि।
घन-आसा सब दुख सहै, (पै) अनत न जाँचै बारि।
देखौ करनी कमल की, (रे) कीन्हौं रवि सौं हेत।
प्रान तज्यौ, प्रेम न तज्यौ, (रे) सूख्यौ सलिल समेत।

दीपक पीर न जानई, (रे) पावक परत पतंग।
तनु तौ तिहिँ ज्वाला जरयौ (पै) चित न भयौ रस-भंग।
मीन वियोग न सहि सकै, (रे) नीर न पूछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहिँ, (रे) रति न घटै तन जात।
परनि परेवा प्रेम की, (रे) चित लै चढ़त अकास।
तहँ चढ़ि तीय जो देखई, (रे) भू पर परत निसास।
सुमिरि सनेह कुरंग कौ, (रे) स्रवननि राच्यौ राग।
धरि न सकत पग पछमनौ, (रे) सर सनमुख उर लाग।
देखि जरनि, जड़, नारि, की, (रे) जरति प्रेम के संग।
चिता न चित फीकौ भयौ, (रे) रची जु पिय कैँ रंग।
लोक-बेद बरजत सबै, (रे) देखत नैननि त्रास।
चोर न चित चोरी तजै, (रे) सरबस सहै निवास।
सब रस कौ रस प्रेम है, (रे) विषयी खेलै सार।
तन-मन-धन-जोबन खसै, (रे) तऊ न मानै हार।
तैँ जो रतन पायो भलौ, (रे) जान्यौ साधि न साज।
प्रेम,कथा अनुदिन सुनै, (रे) तऊ न उपजै लाज।
सदा सँघाती आपनौ, (रे) जिय कौ जीवन-प्रान।
सु तैँ बिसारयौ सहज हीँ, (रे) हरि, ईश्वर, भगवान।
वेद, पुरान, सुमृति सबै, (रे) सुर-नर सेवत जाहि।
महा मूढ़ अज्ञान मति, (रे) क्यौँ न सँभारत ताहि।
खग-मृग-मीन-पतंग लौँ, (रे) मैँ सोधे सब ठौर।
जल-थल-जीव जिते तिते, (रे) कहाँ कहाँ लगि और।
प्रभु पूरन पावन सखा, (रे) प्राननि हूँ कौ नाथ।
परम दयालु कृपालु है, (रे) जीवन जाकैँ हाथ।
गर्भ-बास अति त्रास मैँ, (रे) जहाँ न एकौ अंग।
सुनि सठ, तेरौ प्रानपति, (रे) तहउ न छाँड़यौ संग।
दिन-राती पोषत रह्यौ, (रे) जैसैँ चोली पान।
वा दुख तैँ तोहिँ काढ़ि कै, (रे) लै दीनौ पय-पान।
जिन जड़ तैँ चेतन कियौ, (रे) रचि गुन-तत्त्व-बिधान।
चरन, चिकुर, कर, नख, दए, (रे) नयन, नासिका, कान।
असन, बसन, बहु विधि दए, (रे) औसर औसर आनि।
मातु-पिता-भैया मिले (रे) नई रुचि नई पहिचानि।

सजन कुटुँब परिजन बढ़े, (रे) सुत-दारा-धन-धाम।
महा मूढ़ बिजयी भयौ, (रे) चित आकर्ष्यौ काम।
खान-पान-परिधान मैं, (रे) जोबन गयौ सब बीति।
ज्यौं बिट पर-तिय-सँग बस्यौ, (रे) भोर भए भई भीति।
जैसैं सुखहीं तन बढ़्यौ, (रे) तैसैं तनहिं अनंग।
धूम बढ़्यौ, लोचन खस्यौ, (रे) सखा न सूझ्यौ संग।
जम जान्यौ, सब जग सुन्यौ, (रे) बाढ़्यौ अजस अपार।
बीच न काहू तब कियौ, (जब) दूतनि दीन्हीं मार।
कहा जानै कैवाँ मुवौ, (रे) ऐसैं कुमति, कुमीच।
हरि सौं हेत बिसारि कै, (रे) सुख चाहत है नीच।
जौ पै जिय लज्जा नहीं, (रे) कहा कहौं सौ बार।
एकहु आँक न हरि भजे, (रे) रे सठ, सूर गवार ।।३२५।।

राग कल्यान

धोखैं ही धोखैं डहकायौ।
समुझि न परी, बिषय-रस गीध्यौ, हरि-हीरा घर माँझ गँवायौ।
ज्यौं कुरंग जल देखि अवनि कौ, प्यास न गई चहूँ दिसि धायौ।
जनम-जनम बहु करम किए हैं, तिनमैं आपुन आपु बँधायौ।
ज्यौं सुक सेमर सेव आस लगि; निसि-बासर हठि चित्त लगायौ।
रीतौ परयौ जबै फल चाख्यौ, उड़ि गयौ तूल, ताँवरौ आयौ।
ज्यौं कपि डोरि बाँधि बाजीगर, कन-कन कौं चौहटैं नचायौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, काल-व्याल पै आपु डसायौ ।।३२६।।

राग बिलावल

धोखैं ही धोखैं बहुत बह्यौ।
मैं जान्यौ सब संग चलैगौ, जहँ कौ तहाँ रह्यौ।
तीरथ गवन कियौ नहिं कबहूँ, चलतहिं चलत दह्यौ।
सूरदास सठ तब हरि सुमिरयौ, जब कफ कंठ गह्यौ ।।३२७।।

राग धनाश्री

जनम गँवायौ ऊआबाई।
भजे न चरन-कमल जदुपति के, रह्यौ बिलोकत छाई।

धन-जोबन-मद ऐँड़ौ-ऐँड़ौ, ताकत नारि पराई।
लालच-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौँ, सोऊ हाथ न आई।
रंच काँच-सुख लागि मूढ़-मति, कंचन-रासि गँवाई।
सूरदास प्रभु छाँड़ि सुधा-रस, विषय परम विष खाई ॥३२८॥

राग धनाश्री

भक्ति कब करिहौ, जनम सिरानौ।
बालापन खेलतहीँ खोयौ, तरुनाई गरबानौ।
बहुत प्रपंच किए माया के, तऊ न अधम अघानौ।
जतन जतन करि माया जोरी, लै गयौ रंक न रानौ।
सुत-बित-बनिता-प्रीति लगाई, झूठे भरम भुलानौ।
लोभ-मोह तैँ चेत्यौ नाहीँ, सुपनैँ ज्यौँ डहकानौ।
बिरध भएँ कफ कंठ बिरोध्यौ, सिर धुनि धुनि पछितानौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जम कैँ हाथ बिकानौ ॥३२९॥

राग धनाश्री

(मन) राम-नाम-सुमिरन बिनु, बादि जनम खोयौ।
रंचक सुख कारन, तैँ अंत क्यौँ बिगोयौ।
साधु-संग, भक्ति बिना, तन अकार्थ जाई।
ज्वारी ज्यौँ हाथ झारि, चालै छुटकाई।
दारा-सुत, देह-गेह, संपति सुखदाई।
इनमैँ कछु नाहिँ तेरौ, काल-अवधि आई।
काम – क्रोध – लोभ – मोह – तृष्ना मन मोयौ।
गोबिँद-गुन चित बिसारि, कौन नीँद सोयौ।
सूर कहै चित बिचारि, भूल्यौ भ्रम अंधा।
राम-नाम भजि लै, तजि और सकल धंधा ॥३३०॥

राग कल्याण

भक्ति बिनु बैल बिराने ह्वैहौ।
पाउँ चारि, सिर सृंग, गुंग सुख, तब कैसैँ गुन गैहौ।
चारि पहर दिन चरत फिरत बन, तऊ न पेट अघैहौ।
टेढ़ कंधऽरु फूटी नाकनि, कौ लौँ धौँ भुस खैहौ।

लादत, जोतत लकुट बाजिहै, तब कहँ मूँड़ दुरैहौ ?
सीत, घाम, घन, बिपति बहुत बिधि भार तरैं मरि जैहौ।
हरि-संतनि कौ कह्यौ न मानत, कियौ आपुनौ पैहौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मिथ्या, जनन गँवैहौ ॥३३१॥

राग सारंग

तजौ मन, हरि-बिमुखनि कौ संग।
जिनकैं संग कुमति उपजति है, परत भजन मैं भंग।
कहा होत पय-पान कराएँ, बिष नहिं तजत भुजंग।
कागहिं कहा कपूर चुगाएँ, स्वान न्हवाएँ गंग।
खर कौं कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन-अंग।
गज कौं कहा सरित अन्हवाएँ, बहुरि धरै वह ढंग।
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग।
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ रंग ॥३३२॥

राग सोरठ

रे मन, जनम अकारथ खोइसि।
हरि की भक्ति न कबहूँ कीन्हीँ, उदर भरे परि सोइसि।
निसि-दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि।
गोड़ पसारि परयौ दोउ नीकैं, अब कैसी कह होइसि !
काल-जमनि सौं आनि बनी है, देखि-देखि मुख रोइसि।
सूर स्याम बिनु कौन छुड़ावै, चले जाव भाई पोइसि ॥३३३॥

राग सोरठ

तब तैं गोविँद क्यौं न सँभारे ?
भूमि परे तैं सोचन लागे, महा कठिन दुख भारे।
अपनौ पिंड पोषिबैं कारन, कोटि सहस जिय मारे।
इन पापिन तैं क्यौं उबरौगे, दामनगीर तुम्हारे।
आपु लोभ-लालच कैं कारन, पापिन तैं नहिं हारे।
सूरदास जम कंठ गहे तैं, निकसत प्रान दुखारे ॥३३४॥

राग धनाश्री

रे मन मूरख जनम गँवायौ।
करि अभिमान विषय-रस गीध्यौ स्याम-सरन नहिं आयौ।

यह संसार सुवा-सेमर ज्यौं, सुंदर देखि लुभायौ।
चाखन लाग्यौ रुई गई उड़ि हाथ कछू नहिं आयौ।
कहा होत अब के पछिताएँ पहिलैं पाप कमायौ।
कहत सूर भगवंत-भजन बिनु, सिर धुनि-धुनि पछितायौ ॥३३५॥

राग मारू

औसर हार्‌यौ रे, तैं हार्‌यौ।
मानुष-जनम पाइ नर बौरे, हरि कौ भजन बिसार्‌यौ।
रुधिर बूँद तैं साजि कियौ तन, सुंदर रूप सँवार्‌यौ।
जठर अगिनि अंतर उर दाहत, जिहिं दस मास उबार्‌यौ।
जब तैं जनम लियौ जग भीतर, तब तैं तिहिं प्रतिपार्‌यौ।
अंध, अचेत, मूढ़मति, बौरे, सो प्रभु क्यौं न सँभार्‌यौ?
पहिरि पटंबर, करि आडंबर, यह तन झूठ सिंगार्‌यौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ, तिया-रति, बहु बिधि काज बिगार्‌यौ।
मरम भूलि, जीवन थिर जान्यौ, बहु उद्यम जिय धार्‌यौ।
सुत-दारा कौ मोह अँचै बिष, हरि-अमृत-फल डार्‌यौ।
झूठ-साँच करि माया जोरी, रचि-पचि भवन सँवार्‌यौ।
काल-अवधि पूरन भई जा दिन, तनहूँ त्यागि सिधार्‌यौ।
प्रेत-प्रेत तेरौ नाम पर्‌यौ, जब, जेंवरि बाँधि निकार्‌यौ।
जिहिं सुत कैं हित बिमुख गोबिंद तैं, प्रथम तिहीं मुख जार्‌यौ।
भाई-बंधु कुटुंब-सहोदर, सब मिलि यहै बिचार्‌यौ।
जैसे कर्म, लहौ फल तैसे, तिनुका तोरि उचार्‌यौ।
सतगुरु कौ उपदेस हृदय धरि, जिन भ्रम सकल निवार्‌यौ।
हरि भजि, बिलँब छाँड़ि सूरज सठ, ऊँचैं टेरि पुकार्‌यौ ॥३३६॥

चित्-बुद्धि-संवाद *राग देवगंधार*

चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम वियोग।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिं कबहूँ, सोइ सायर सुख जोग।
जहाँ सनक-सिव हंस, मीन मुनि, नख रवि-प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि-डर, गुंजत निगम सुवास।
जिहिं सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै।

लछमी-सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सूरजदास।
अब न सुहात बिषय-रस-छीलर, वा समुद्र की आस ॥३३७॥

राग देवगंधार

चलि सखि, तिहिँ सरोवर जाहिँ।
जिहिँ सरोवर कमल कमला, रवि बिना बिकसाहिँ।
हंस उज्जल पंख निर्मल, अंग मलि-मलि न्हाहिँ।
मुक्ति-मुक्ता अनगिने फल, तहाँ चुनि-चुनि खाहिँ।
अतिहिँ मगन महा मधुर रस, रसन मध्य समाहिँ।
पदुम-बास सुगंध-सीतल, लेत पाप नसाहिँ।
सदा प्रफुल्लित रहैँ, जल बिनु निमिष नहिँ कुम्हिलाहिँ।
सघन गुंजत बैठि उन पर भौँरहू बिरमाहिँ।
देखि नीर जु छिलछिलौ जग, समुझि कछु मनमाहिँ।
सूर क्यौँ नहिँ चलै उड़ि तहँ, बहुरि उड़िबौ नाहिँ।

राग रामकली

भृंगी री, भजि स्याम-कमल-पद, जहाँ न निसि कौ त्रास।
जहँ बिधु-भानु समान, एक रस, सो बारिज सुख-रास।
जहँ किंजल्क भक्ति नव-लच्छन, काम-ज्ञान रस एक।
निगम, सनक, सुक, नारद, सारद, मुनि जन भृंग अनेक।
सिव-बिरंचि खंजन मनरंजन, छिन-छिन करत प्रवेस।
अखिल कोप तहँ भरयौ सुकृत-जल, प्रगटित स्याम-दिनेस।
सुनि मधुकरि, भ्रम तजि कुमुदनि कौ, राजिवबर की आस।
सूरज प्रेम-सिंधु मैँ प्रफुलित, तहँ तलि करै निवास ॥३३९॥

राग देवगंधार

सुवा, चलि ता बन कौ रस पीजै।
जा बन राम-नाम अम्रित-रस, स्रवन-पात्र भरि लीजै।
को तेरौ पुत्र, पिता तू काकौ, घरनी, घर कौ तेरौ?
काग-सृगाल-स्वान कौ भोजन, तू कहै मेरौ-मेरौ!
बन बारानसि मुक्ति-क्षेत्र है, चलि तोकौँ दिखराऊँ।
सूरदास साधुनि की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊँ ॥३४०॥

राग बिलावल

या बिधि राजा करयौ, बिचारि। राज-साज सबहिँ कौँ डारि।
जीरन पट कुपीन तन धारि। चल्यौ सुरसरी, सीस उघारि।
पुत्र-कलत्र देखि सब रोवैँ। राजा तिनकी ओर न जोवैँ।
राजा चलत चले सब लोग। दुखित भए सब नृपति-बियोग।
नृपति सुरसुरी कैँ तट आइ। कियौ असनान मृत्तिका लाइ।
करि संकल्प अन्न-जल त्याग्यौ। केवल हरि-पद सौँ अनुराग्यौ।
अत्रि-बसिष्ठादिक तहँ आए। नारदादि मुनि बहुरि सिधाए।
कुस-आसन दै तिनहिँ बिठायौ। यौँ कहि पुनि तिनकौँ सिरनायौ।
धन्य भाग्य, तुम दरसन पाए। मम उद्धार करन तुम आए।
तुम देखत हरि-सुमिरन होइ। और प्रसंग चलै नहिँ कोइ।
आज्ञा होइ करौँ अब सोइ। जातैँ मेरी सदगति होइ।
कोउ कहै, तीरथ सेवन करौ। कोउ कहै, दान-जज्ञ बिस्तरौ।
काहूँ कह्यौ मंत्र-जप करना। काहूँ कछु, काहूँ कछु बरना।
राजा कह्यौ, सप्त दिन माहिँ। सिद्धि होति कछु दीसति नाहिँ।
इहिँ अंतर सुक मुनि तहँ आए। राजा देखि तुरत उठि धाए।
करि दंडवत कुसासन दीन्हौ। पुनि सनमान ऋषिनि सब कीन्हौ।
सुक कौ रूप कह्यौ नहिँ जाइ। सुक-हिय रह्यौ कृष्न-रस छाइ।
सुक की महिमा सुकही जानै। सूरदास कहि कहा बखानै ॥३४१॥

राग बिलावल

सुक नृप ओर कृपा करि देख्यौ। धन्य भाग तिन अपनौ लेख्यौ।
बिनती करी चरन सिर नाइ। सप्त दिवस सब मेरी आइ।
तउ कुटुंब कौ मोह न जात। तन-धन-लोभ आइ लपटात।
जानि बूझि मैँ होत अजान। उपजत नाहीँ मन मैँ ज्ञान।
अरु तनु छूटत बहु दुख होइ। तातैँ सोच रहै नहिँ कोइ।
बिना सोच सुमिरन क्यौँ होइ। आज्ञा होइ करौँ अब सोइ।
सुक कह्यौ, तन-धन कुटुँब बिहाइ। हरि-पद भजौ, न और उपाइ।
आयु भग्न-घट-जल ज्यौँ छीजै। अह-निसि हरि-हरि सुमिरन कीजै।
नृप षट्वांग पूर्ब इक भयौ। सु तौ द्वै घरी मैँ तरि गयौ।
सात दिवस तेरी तौ आइ। कहैँ भागवत, सुनि चित लाइ।
सुनि हरि-कथा धरौ हरि-ध्यान। सब जग जानौ स्वप्न समान।

या बिधि जौ हरि-पद उर धरिहौ। निस्संदेह सूर तौ तरिहौ ॥३४२॥

राग बिलावल

हरि-जस-कथा सुनौ चित लाइ। ज्यौं षट्वांग तरयौ गुन गाइ।
नृप षट्वांग भयौ भुव माहिँ। ताके सम द्वितिया कोउ नाहिँ।
इक दिन इंद्र तासु घर आयौ। राजा उठि कै सीस नवायौ।
धनि मम गृह, धनि भाग हमारे। जौ तुम चरन कृपा करि धारे।
अब मोकौँ जो आज्ञा होइ। आयसु मानि करौँ मैँ सोइ।
इंद्र कह्यौ, मम करौ सहाई। असुरनि सौँ है हमैँ लराई।
इंद्रपुरी षट्वांग सिधाए। नाम सुनत सो सकल पराए।
सुरपति सौं नृप आज्ञा माँगी। उन कह्यौ, लेहु कछू बर माँगी।
नृपति कह्यौ, कहौ मेरी आइ। बर लैहौँ पुनि सीस चढ़ाइ।
दोइ मुहूरति आयु बताई। नृप बोल्यौ तब सीस नवाई।
तुरत देहु मोहिँ घर पहुँचाइ। तरौँ जाइ तहँ हरि-गुन गाइ।
एक मुहूरत मैं भुव आयौ। एक मुहूरत हरि-गुन गायौ।
हरि-गुन गाइ परम पद लह्यौ। सूर नृपति सुनि धीरज गह्यौ ॥३४३॥

॥ प्रथम स्कंध समाप्त ॥

द्वितीय स्कंध

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि चरनारविंद उर धरौ।
सुकदेव हरि-चरननि सिर नाइ। राजा सौं बोल्यौ या भाइ।
तुम कह्यो सप्त दिवस मम आइ। कहौं हरि-कथा, सुनौ चित लाइ।
चिंता छाँड़ि, भजौ जदुराइ। सूर तरौ, हरि के गुन गाइ॥ १॥
॥३४४॥

राग सारंग

कह्यौ सुक श्रीभागवत बिचारि।
हरि की भक्ति जुगै जुग बिरधै, आन धर्म दिन चारि।
चिंता तजौ परीच्छित राजा, सुनि सिख साखि हमार।
कमल-नैन की लीला गावत, कटत अनेक बिकार।
सतजुग सत, त्रेता तप कीजै, द्वापर पूजा चारि।
सूर भजन कलि केवल कीजै, लज्जा-कानि निवारि॥ २॥
॥३४५॥

राग बिलावल

गोबिँद-भजन करौ इहिँ बार।
संकर पारबती उपदेसत, तारक मंत्र लिख्यौ स्रुति-द्वार।
अस्वमेध जज्ञहु जो कीजै, गया, बनारस अरु केदार।
राम नाम-सरि तऊ न पूजै, जौ तनु गारौ जाइ हिवार।
सहस बार जौ बेनी परसौ, चंद्रायन कीजै सौ बार।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, जम के दूत खरे हैं द्वार॥ ३॥
॥३४६॥

राग केदारौ

है हरि नाम कौ आधार।
और इहिँ कलिकाल नाहीँ, रह्यौ बिधि-ब्यौहार।

नारदादि सुकादि मुनि मिलि, कियौ बहुत बिचार।
सकल स्रुति-दधि मथत पायौ, इतोई घृत-सार।
दसौँ दिसि तैँ कर्म रोक्यौ, मीन कौँ ज्यौँ जार।
सूर हरि कौ सुजस गावत, जाहि मिटि भव-भार॥ ४॥
॥३४७॥

नाम-महिमा *राग बिलावल*

हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ। हरि हरि सुमिरत सब सुख होइ।
हरि-समान द्वितिया नहिँ कोइ। स्रुति-सुम्रिति देख्यौ सब जोइ।
हरि हरि सुमिरत होइ सु होइ। हरि चरननि चित राखौ गोइ।
बिनु हरि सुमिरन मुक्ति न होइ। कोटि उपाइ करौ जौ कोइ।
हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ। हरि सुमिरे तैँ सब सुख होइ।
सत्रु-मित्र हरि गनत न दोइ। जो सुमिरै ताकी गति होइ।
हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ। हरि के गुन गावत सब लोइ।
राव-रंक हरि गनत न दोइ। जो गावहि ताकी गति होइ।
हरि हरि हरि सुमिरौ सब काइ। हरि सुमिरे तैँ सब सुख होइ।
हरि हरि हरि सुमिरयौ जो जहाँ। हरि तिहिँ दरसन दीन्ह्यौ तहाँ।
हरि बिनु सुख नहिँ इहाँ न उहाँ। हरि हरि हरि सुमिरौ जहँ तहाँ।
सौ बातनि की एकै बात। सूर सुमिरि हरि-हरि दिन-रात॥५॥
॥३४८॥

राग सारंग

जो सुख होत गुपालहिँ गाएँ।
सो सुख होत न जप-तप कीन्हैँ, कोटिक तीरथ न्हाएँ।
दिएँ लेत नहिँ चारि पदारथ, चरन-कमल चित लाएँ।
तीनि लोक तृन-सम करि लेखत, नंद-नँदन उर आएँ।
बंसीबट, बृदाबन, जमुना तजि बैकुंठ न जावै।
सूरदास हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव-जल आवै॥ ६॥
॥३४९॥

राग केदारौ

सोइ रसना, जो हरि-गुन गावै।
नैननि की छबि यहै चतुरता, जौ मुकुंद-मकरंदहिँ ध्यावै।

निर्मल चित तौ सोई साँचौ, कृष्न बिना जिहिँ और न भावै।
स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधा-रस पावै।
कर तेई जे स्यामहिँ सेवैँ, चरननि चलि वृंदाबन जावै।
सरदास जैयै बलि वाकी, जो हरि जू सौँ प्रीति बढ़ावै॥ ७॥
॥३५०॥

राग सारंग

जब तैँ रसना राम कह्यौ।
मानौ धर्म साधि सब बैठ्यौ, पढ़िबे मैँ धौँ कहा रह्यौ।
प्रगट प्रताप ज्ञान-गुरु-गम तैँ दधि मथि, घृत लै, तज्यौ मह्यौ।
सार कौ सार, सकल सुख कौ सुख, हनूमान-सिव जानि गह्यौ।
नाम प्रतीति भई जा जन कौँ, लै आनँद, दुख दूरि दह्यौ।
सूरदास धनि-धनि वह प्रानी, जो हरि कौ व्रत लै निबह्यौ॥ ८॥
॥३५१॥

अनन्य भक्ति की महिमा *राग सारंग*

गोबिँद सौँ पति पाइ, कहँ मन अनत लगावै?
स्याम-भजन बिनु सुख नहीँ, जौ दस दिसि धावै।
पति कौ व्रत जो धरे तिय, सो सोभा पावै।
आन पुरुष कौ नाम लै, पतिव्रतहिँ लजावै।
गनिका उपज्यौ पूत, सो कौन कौ कहावै?
बसत सुरसरी तीर, मँदमति कूप खनावै।
जैसैँ स्वान कुलाल के, पाछैँ लगि धावै।
आन देव हरि तजि भजै, सो जनम गँवावै।
फल की आसा चित्त धरि, जो बृच्छ बढ़ाव।
महा मूढ़ सो मूल तजि, साखा जल नावै।
सहज भजै नँदलाल, कौँ, सो सब सचुपावै।
सूरदास हरि नाम ले, दुख निकट न आवै॥ ६॥
॥३५२॥

राग कान्हरौ

जाकौ मन लाग्यौ नँदलालहिँ, ताहिँ और नहिँ भावै (हो)।
जौ लै मीन दूध मैँ डारै, विनु जल नहिँ सचुपाव (हो)।

अति सुकुमार डोलत रस-भीनौ, सो रस जाहि पियावै (हो)।
ज्यौं गूँगौ गुर खाइ अधिक रस, सुख-सवाद न बतावै (हो)।
जैसैं सरिता मिलै सिंधु कौं, बहुरि प्रवाह न आवै (हो)।
ऐसैं सूर कमल-लोचन तैं, चित नहिं अनत डुलावै (हो) ॥१०॥
॥३५३॥

राग बिहाग

जौ मन कबहुँक हरि कौं जाँचै।
आन प्रसंग-उपासन छाँड़ै, मन-बच-क्रम अपनैं उर साँचै।
निसि-दिन स्याम सुमिरि जस गावै, कल्पन मेटि प्रेम रस माँचै।
यह व्रत धरे लोक मैं बिचरै, सम करि गनै महामनि-काँचै।
सीत-उष्न, सुख-दुख नहिं मानै, हानि-लाभ कछु सोच न राँचै।
जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि न उलटि जगत मैं नाचैं ॥११॥
॥३५४॥

राग बिलावल

जनम-जनम, जब-जब, जिहिं-जिहिं जुग, जहाँ-जहाँ जन जाइ।
तहाँ-तहाँ हरि चरन-कमल-रति सो दृढ़ होइ रहाइ।
स्रवन सुजस सारंग-नाद-बिधि, चातक-विधि सुख नाम।
नैन चकोर सतत दरसन ससि, कर अरचन अभिराम।
सुमति सुरूप सँचै स्रद्धा-विधि उर-अंबुज अनुराग।
नित प्रति अलि जिमि गुंज मनोहर, उड़त जु प्रेम-पराग।
औरौ सकल सुकृत श्रीपत-हित, प्रति फल-रहित सुप्रीति।
नाक निरै, सुख दुःख, सूर नहिं, जिहि की भजन प्रतीति ॥१२॥
॥३५५॥

हरिविमुख-निंदा

राग सारंग

अचंभौ इन लोगनि कौ आवै।
छाँड़ैं स्याम-नाम-अम्रित फल, माया-विष-फल भावै।
निंदत मूढ़ मलय चंदन कौं, राख अंग लपटावै।
मानसरोवर छाँड़ि हंस तट काग-सरोवर न्हावै।
पग तर जरत न जानै मूरख, घर तजि घूर बुझावै।
चौरासी लख जोनि स्वाँग धरि, भ्रमि-भ्रमि जमहिं हँसावै।

मृगतृष्ना आचार-जगत जल, ता सँग मन ललचावै।
कहतु जु सूरदास संतनि मिलि हरि जस काहे न गावै ! ॥१३॥
॥३५६॥

राग सारंग

भजन बिनु कूकर-सूकर जैसौ।
जैसैं घर बिलाव के मूसा, रहत विषय-बस वैसौ।
बग-बगुली अरु गीध-गीधिनी, आइ जनम लियौ तैसौ।
उनहूँ कैं गृह, सुत, दारा हैं, उन्हैं भेद कहु कैसौ ?
जीव मारि कै उदर भरत हैं, तिनकौ लेखौ ऐसौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, मनौ ऊँट-वृष- भैंसौ ॥१४॥
॥३५७॥

राग सारंग

भजन बिनु जीवत जैसैं प्रेत।
मलिन मंदमति डोलत घर-घर, उदर भरन कैं हेत।
मुख कटु बचन, नित्त पर-निंदा, संगति-सुजस न लेत।
कबहूँ पाप करैं पावत धन, गाड़ि धूरि तिहि देत।
गुरु-ब्राह्मन अरु संत-सुजन के, जात न कबहुँ निकेत।
सेवा नहिँ भगवंत-चरन की, भवन नील कौ खेत।
कथा नहीँ गुन गीत सुजस हरि, सब काहूँ दुख देत।
ताकी कहा कहौं सुनि सूरज, बूड़त कुटुब समेत ॥१५॥
॥३५८॥

राग सारंग

जिहिँ तन हरि भजिबौ न कियौ।
सो तन सूकर-स्वान-मीन ज्यौं, इहिँ सुख कहा जियौ ?
जो जगदीस ईस सबहिनि कौ, ताहि न चित्त दियौ।
प्रगट जानि जदुनाथ बिसार्‌यौ, आसा-मद जु पियौ।
चारि पदारथ के प्रभु दाता, तिन्हैं न मिल्यौ हियौ।
सूरदास रसना बस अपनैं, टेरि न नाम लियौ ॥१६॥
॥३५९॥

सत्संग-महिमा *राग केदारौ*

जा दिन संत पाहुने आवत ।
तीरथ कोटि सनान करैं फल जैसौ दरसन पावत ।
नयौ नेह दिन-दिन प्रति उनकैं चरन-कमल चित लावत ।
मन-बच कर्म और नहिं जानत, सुमिरत औ सुमिरावत ।
मिथ्याबाद-उपाधि-रहित ह्वै, विमल-बिमल जस गावत ।
बंधन कर्म कठिन जे पहिले, सोऊ काटि बहावत ।
संगति रहैं साधु की अनुदिन, भव-दुख दूरि नसावत ।
सूरदास संगति करि तिनकी, जे हरि-सुरति करावत ॥१७॥
॥३६०॥

भक्ति-साधन *राग धनाश्री*

हरि-रस तौऽब जाइ कहुँ लहियै ।
गएँ सोच आएँ नहिं आनँद, ऐसौ मारग गहियै ।
कोमल बचन, दीनता सब सौं, सदा अनंदित रहियै ।
बाद-बिवाद, हर्ष-आतुरता, इतौ द्वंद जिय सहियै ।
ऐसी जो आवै या मन मैं, तौ सुख कहँ लौं कहियै ।
अष्ट सिद्धि, नव निधि, सूरज प्रभु, पहुँचै जो कछु चहियै ॥१८॥
॥३६१॥

राग धनाश्री

जौ लौं मन-कामना न छूटै ।
तौ कहा जोग-जज्ञ-ब्रत कीन्हैं, बिनु कन तुस कौं कूटै ।
कहा सनान कियैं तीरथ के, अंग भस्म, जट-जूटै ?
कहा पुरान जु पढ़ैं अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटैं ।
जग सोभा की सकल बड़ाई, इनतैं कछू न खूटै ।
करनी और, कहै कछु औरै, मन दसहूँ दिसि टूटै ।
काम, क्रोध, मद, लोभ सत्रु हैं, जो इतननि सौं छूटै ।
सूरदास तबहीं तम नासै, ज्ञान-अगिनि-झर फूटै ॥१९॥
॥३६२॥

राग बिलावल

भक्ति-पंथ कौं जो अनुसरै । सुत-कलत्र सौं हित परिहरै ।

असन-बसन की चिंत न करै। बिस्वंभर सब जग कौं भरै।
पसु जाके द्वारे पर होइ। ताकौं पोषत अह-निसि सोइ।
जो प्रभु कैं सरनागत आवै। ताकौं प्रभु क्यौं करि बिसरावै ?
मातु-उदर मैं रस पहुँचावत। बहुरि रुधिर तैं छीर बनावत।
असन-काज प्रभु बन-फल करे। तृषा-हेत जल-झरना भरे।
पात्र स्थान हाथ हरि दीन्हे। बसन-काज बल्कल प्रभु कीन्हे।
सज्जा पृथ्वी करी बिस्तार। गृह गिरि-कंदर करे अपार।
तातैं सब चिंता करि त्याग। सूर करौ हरि-पद अनुराग ॥२०॥
॥३६३॥

राग बिलावल

भक्ति-पंथ कौं जो अनुसरै। सो अष्टांग जोग कौं करै।
यम, नियमासन, प्रानायाम। करि अभ्यास होइ निष्काम।
प्रत्याहार धारना ध्यान। करै जु छाँड़ि बासना आन।
क्रम-क्रम सौं पुनि करै समाधि। सूर स्याम भजि मिटै उपाधि ॥२१॥
॥३६४॥

वैराग्य-वर्णन *राग धनाश्री*

सबै दिन एकै से नहिं जात।
सुमिरन-भजन कियौ करि हरि कौ, जब लौं तन-कुसलात।
कबहूँ कमला चपल पाइ कै, टेढ़ैं टेढ़ैं जात।
कबहूँ मग-मग धूरि बटोरत, भोजन कौं बिलखात।
या देही कौ गरब करत, धन-जोबन के मदमात।
हौं बड़, हौं बड़, बहुत कहावत, सूधैं कहत न बात।
बाद-बिवाद सबै दिन बीतैं, खेलत ही अरु खात।
जोग न जुक्ति, ध्यान नहिं पूजा, बिरध भएँ पछितात।
तातैं कहत सँभारहि रे नर, काहे कौं इतरात ?
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, कहूँ नाहिँ सुख गात ॥२२॥
॥३६५॥

राग सारंग

गरब गोबिंदहिं भावत नाहीँ।
कैसी करी हिरनकस्यप सौं, प्रगट होइ छिन माहीँ !

जग जानै करतूति कंस की, वृष माख्यौ बल-बाहीँ।
ब्रह्मा इंद्रादिक पछिताने, गर्ब धारि मन माहीँ।
जौबन-रूप-राज-धन-धरती जानि जलद की छाहीँ।
सूरदास हरि भजौ गर्ब तजि, बिमुख अगति कौँ जाहीँ ॥२३॥
॥३६६॥

राग कान्हरौ

बिषया जात हरष्यौ गात।
ऐसे अंध, जानि निधि लूटत, परतिय सँग लपटात।
बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत, करि-करि जतन उड़ात।
परै अचानक त्यौँ रस-लंपट, तनु तजि जमपुर जात।
यह तौ सुनी व्यास के मुख तैँ, परदारा दुखदात।
रुधिर-मेद, मल-मूत्र, कठिन कुच, उदर गंध-गंधात।
तन-धन-जोबन ता हित खोवत, नरक की पाछैँ बात।
जो नर भलौ चहत तौ सो तजि, सूर स्याम गुन गात ॥२४॥
॥३६७॥

आत्मज्ञान *राग नट*

जौ लौँ सत-सरूप नहिँ सूझत।
तौ लौँ मृग मद नाभि बिसारे, फिरत सकल बन बूझत।
अपनौ मुख मसि-मलिन मंदमति, देखत दर्पन माहीँ।
ता कालिमा मेटिबे कारन, पचत पखारत छाहीँ।
तेल-तूल-पावक-पुट भरि धरि, बनै न बिना प्रकासत।
कहत बनाइ दीप की बतियाँ, कैसैँ धौँ तम नासत!
सूरदास यह मति आए बिन, सब दिन गए अलेखे।
कहा जानै दिनकर की महिमा, अंध नैन बिन देखे! ॥२५॥
॥३६८॥

राग नट

आपुनपौ आपुन ही बिसर्‍यौ।
जैसैँ स्वान काँच-मंदिर मैँ, भ्रमि-भ्रमि भूकि पर्‍यौ।
ज्यौँ सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम-तृन सूँघि फिर्‍यौ।
ज्यौँ सपने मैँ रंक भूप भयौ, तसकर अरि पकर्‍यौ।

ज्यौं केहरि प्रतिबिंब देखि कै, आपनु कूप परयौ।
जैसैं गज लखि फटिकसिला मैं, दसननि जाइ अरयौ।
मर्कट मूँठि छाँड़ि नहीं दीनी, घर-घर-द्वार फिरयौ।
सूरदास नलिनी कौ सुवटा, कहि कौनैं पकरयौ ॥२६॥

॥३६६॥

विराट-रूप-वर्णन *राग केदारौ*

नैननि निरखि स्याम-स्वरूप।
रह्यौ घट-घट ब्यापि सोई, जोति-रूप अनूप।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
सूर-चंद्र-नछत्र-पावक, सर्व तासु प्रकास ॥२७॥

॥३७०॥

आरती *राग केदारौ*

हरि जू की आरती बनी
अति बिचित्र रचना रचि राखी, परति न गिरा गनी।
कच्छप अध आसन अनूप अति, डाँड़ी सहस फनी।
मही सराव, सप्त सागर घृत, बाती सैल घनी।
रवि-ससि-ज्योति जगत परिपूरन, हरति तिमिर रजनी।
उड़त फूल उड़गन नभ अंतर, अंजन घटा घनी।
नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर-नर-असुर-अनी।
काल-कर्म-गुन-ओर-अंत नहिँ, प्रभु इच्छा रचनी।
यह प्रताप दीपक सुनिरंतर, लोक सकल भजनी।
सूरदास सब प्रगट ध्यान मैं अति बिचित्र सजनी ॥२८॥

॥३७१॥

नृप-विचार *राग गूजरी*

श्री सुक के सुनि बचन, नृप, लाग्यौ करन बिचार।
झूठे नाते जगत के, सुत-कलत्र-परिवार।
चलत न कोऊ सँग चलै, मोरि रहै मुख नारि।
आवत गाढ़ैं काम हरि, देख्यौ, सूर बिचारि ॥ २६ ॥

॥३७२॥

राग गूजरी

हरि बिनु कोऊ काम न आयौ।
इहिँ माया झूठी प्रपंच लगि, रतन सौ जनम गँवायौ ।
कंचन-कलस, बिचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायौ।
तामैँ तैँ ततछनही काढ़यौ, पल भर रहन न पायौ ।
हौँ तब संग जरौँगी, यौँ कहि, तिया धूति धान खायौ।
चलत रही चित चोरि, मोरि मुख, एक न पग पहुँचायौ।
बोलि बोलि सुत-स्वजन-मित्रजन, लीन्यौ सुजस सुहायौ।
परयौ जु काज अंत की बिरियाँ, तिनहुँ न आनि छुड़ायौ।
आसा करि करि जननी जायो, कोटिक लाड़ लड़ायौ ।
तोरि लयौ कटिहू कौ डोरा, तापर बदन जरायौ ।
पतित-उधारन, गनिका-तारन, सो मैँ सठ बिसरायौ ।
लियौ न नाम कबहुँ धोखैँ हूँ, सूरदास पछितायौ ।॥ ३० ॥
॥ ३७३ ॥

राग देवगंधार

सकल तजि, भजि मन चरन मुरारि।
स्रुति, सुम्रिति, मुनि जन सब भाषत, मैँ हूँ कहत पुकारि।
जैसैँ सुपनैँ सोइ देखियत, तैसैँ यह संसार ।
जात बिलै ह्वै छिनक मात्र मैँ, उघरत नैन-किवार।
बारंबार कहत मैँ तोसौँ, जनम-जुआ जनि हारि।
पाछैँ भई सु भई सूर जन, अजहूँ समुझि सँभारि ।॥३१॥
॥ ३७४ ॥

राग गूजरी

अजहूँ सावधान किन होहि।
माया विषम भुजंगिनि कौ विष, उतरयौ नाहिँ न तोहि।
कृष्न सुमंत्र जियावन मूरी, जिन जन मरत जिवायौ।
बारंबार निकट स्रवननि ह्वै, गुर-गारुड़ी सुनायौ ।
बहुतक जीव देह अभिमानी, देखत ही इन खायौ।
कोउ-कोउ उबरयौ साधु-संग, जिन स्याम सजीवनि पायौ।

जाकौ मोह,मैर अति छूटै, सुजस गीत के गाएँ।
सूर मिटै अज्ञान-मूरछा, ज्ञान-सुभेषज खाऐँ ॥३२॥
॥३७५॥

श्री शुकदेव के प्रति परीक्षित-बचन *राग गूजर*

नमो नमो हे कृपानिधान।
चितवत कृपा-कटाच्छ तुम्हारैँ, मिटि गयौ तम-अज्ञान।
मोह-निसा कौ लेस रह्यौ नहिँ, भयौ बिवेक,बिहान।
आतम-रूप सकल घट दरस्यौ, उदय कियौ रवि-ज्ञान।
मैँ-मेरी अब रही न मेरैँ, छुटयौ देह-अभिमान।
भावै परौ आजुही यह तन, भावै रहौ अमान।
मेरैँ जिय अब यहै लालसा, लीला श्री भगवान।
स्रवन करौँ निसि-बासर हित सौँ, सूर तुम्हारी आन ॥३३॥
॥३७६॥

श्री शुकदेव के वचन *राग सारंग*

कह्यौ सुक, सुनौ परीच्छित राव।
ब्रह्म अगोचर मन-बानी तैँ, अगम, अनंत-प्रभाव।
भक्तनि हित अवतार धारि जो, करी लीला संसार।
कहौँ ताहि जो सुनै चित्त दै, सूर तरै सो पार ॥३४॥
॥३७७॥

शुकदेव-कथित नारद ब्रह्मा-संबाद *राग बिलावल*

नारद ब्रह्मा कौँ सिर नाइ। कह्यौ, सुनौ त्रिभुवन-पति-राइ।
सकल सृष्टि यह तुमतैँ होइ। तुम सम द्वितीया और न कोइ।
तुमहूं धरत कौन कौ ध्यान? यह तुम मोसौँ करौ बखान।
कह्यौ, करता-हरता भगवान। सदा करत मैँ तिनकौ ध्यान।
नारद सौँ कह्यौ बिधि जिहिँ भाइ। सूर कह्यौ त्यौँ ही सुक गाइ ॥३५॥
॥३७८॥

चतुर्विंशत अवतार-वर्णन

ब्रह्मा-बचन नारद के प्रति *राग धनाश्री*

जो हरि करै सो होइ, करता राम हरी।
ज्यौँ दरपन-प्रतिबिंब, त्यौँ सब सृष्टि करी।

आदि निरंजन, निराकार, कोउ हुतौ न दूसर।
रचौं सृष्टि-बिस्तार, भई इच्छा इक औसर।
त्रिगुन प्रकृति तैं महत्तत्व, महत्तत्व तैं अहँकार।
मन - इन्द्री - सब्दादि - पँच, तातैं कियौ बिस्तार।
सब्दादिक तैं तंचभूत सुदर प्रगटाए।
पुनि सबकौ रचि अंड, आपु मैं आपु समाए।
तीनि लोक निज देह मैं, राखे करि विस्तार।
आदि पुरुष सोइ भयौ, जो प्रभु अगम अपार।
नाभि-कमल तैं आदि पुरुष मोकौं प्रगटायौ।
खोजत जुग गए बीति, नाल कौ अंत न पायौ।
तिन मोकौं आज्ञा करि, रचि सब सृष्टि बनाइ।
थावर-जंगम, सुर - असुर, रचे सबै मैं आइ।
मच्छ, कमच्छ, बाराह, बहुरि नरसिंह रूप धरि।
बामन, बहुरौ परसुराम, पुनि राम रूप करि।
बासुदेव सोई भयौ, बुद्ध भयौ पुनि सोइ।
सोई कल्की होइहै, और न द्वितिया कोइ।
ये दस हरि-अवतार, कहे पुनि और चतुरदस।
भक्तबछल भगवान, धरे तन भक्तनि कैं बस।
अज, अबिनासी, अमर प्रभु, जनमै-मरै न सोइ।
नटवत करत कला सकल, बूझै बिरला कोइ।
सनकादिक, पुनि व्यास, बहुरि भए हंस रूप हरि।
पुनि नारायन, ऋषभदेव, नारद, धनवंतरि।
दत्तात्रेयऽरु पृथु बहुरि, जज्ञपुरुष-बपु धार।
कपिल, मनू, हयग्रीव पुनि, कीन्हौ ध्रुव अवतार।
भूमिरेनु कोउ गनै, नछत्रिन गनि समुझावै।
कह्यौ चहै अवतार, अंत सोऊ नहिं पावै।
सूर कह्यौ क्यौं कहि सकै, जन्म - कर्म - अवतार।
कहे कछुक गुरु-कृपा तैं श्रीभागवतऽनुसार ॥३६॥
॥३७८॥

ब्रह्मा की उत्पत्ति *राग बिलावल*

ब्रम्हा यौं नारद सौं कह्यौ। जब मैं नाभि-कमल मैं रह्यौ।

खोजत नाल कितौ जुग गयौ। तौहू मैं कछु मरम न लयौ।
भई अकास बानी तिहिं बार। तू ये चारि श्लोक बिचार।
इन्हैं बिचारत ह्वै है ज्ञान। ऐसी भाँति कह्यौ भगवान।
ब्रह्मा सो नारद सौं कहे। ब्यास सोइ नारद सौं लहे।
ब्यास कह्यौ मोसौं बिस्तार। भयौ भागवत या परकार।
सोई अब मैं तोसौं भाषौं। तेरे हृदै न संसय राखौं।
मूल भागवत के येइ चारि। सूर भली बिधि इन्हैं बिचारि ॥३७॥
॥३८०॥

चतुःश्लोक श्रीमुख-वाक्य *राग कान्हरौ*

पहिलै हौं ही हो तब एक।
अमल, अकल; अज, भेद-बिवर्जित सुनि बिधि बिमल बिवेक।
सो हौं एक अनेक भाँति करि, सोभित नाना भेष।
ता पाछैं इन गुननि गए तैं, हौं रहिहौं अवसेष।
सत मिथ्या, मिथ्या सत लागत, मम माया सो जानि।
रवि, ससि, राहु सँजोग बिना ज्यौं, लीजतु है मन मानि।
ज्यौं गज फटिक मध्य न्यारौ बसि, पंच प्रपंच बिभूति।
ऐसैं मैं सबहिनि तैं न्यारौ, मनिनि ग्रथित ज्यौं सूत।
ज्यौं जल मसक जीव-घट अंतर, मम माया इमि जानि।
सोई जस सनकादिक गावत, नेति नेति कहि मानि।
प्रथम ज्ञान, बिज्ञानक द्वितिय मत, तृतिय भक्ति कौ भाव।
सूरदास सोई समष्टि करि, ब्यष्टि दृष्टि मन लाव ॥३८॥
॥३८१॥

॥ द्वितीय स्कंध समाप्त ॥

तृतीय स्कंध

श्री शुक-वचन *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
सुकदेव हरि-चरननि सिर नाइ। राजा सौं बोल्यौ या भाइ।
कहौं हरि-कथा, सुनो चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥३८२॥

उद्धव का पश्चात्ताप *राग सोरठि*

हरि जु सौं अब मैं कहा कहौं ?
प्रभु अंतरजामी सब जानत, हौं सुनि सोचि रहौं।
आयमु दियौ, जाउ बदरीबन, कहँ सो कियौ चहौं।
तन मन-बुधि जड़ देह दयानिधि, क्यौं करि लै निबहौं ?
अपनी करनी बिचारि गुसाईं, काहे न सूल सहौं।
मैं इहिं ज्ञान ठगीं ब्रजबनिता, दियौ सु क्यौं न लहौं ?
प्रगट पाप-संताप सूर अब, कापर हठै गहौं ?
और इहाँउ बिवेक-अगिनि के बिरह-बिपाक दहौं ॥ २ ॥
॥३८३॥

राग सोरठि

तुम्हरी गति न कछु कहि जाइ।
दीनानाथ, कृपाल, परम सुजान जादौराइ।
कहत पठवन बदरिका मोहिं, गूढ़ ज्ञान सिखाइ।
सकुचि साहस करत मन मैं, चलत परत न पाइ।
पिनाकहु के दंड लौं तन, लहत बल सतराइ।
कहा करौं चित चरन अटक्यौ, सुधा-रस कैं चाइ।
मेरी है इहिं देह कौ हरि, कठिन सकल उपाइ।
सूर सुनत न गयौ तबहीं खंड-खंड नसाई ॥ ३ ॥
॥३८४॥

मैत्रेय-बिदुर संवाद *राग बिलावल*

जब हरि जू भए अंतर्धान। कहि ऊधव सौं तत्त्वज्ञान॥
कह्यो मयत्रेय सौं समुझाइ। यह तुम बिदुरहिं कहियौ जाइ।
बदरिकासरम दोउ मिलि आइ। तीरथ करत दोउ अलगाइ।
ऊधव-बिदुर तहाँ मिलि गए। दोऊ कृष्न-प्रेम-बस भए।
ऊधव कह्यौ, हरि कह्यौ जो ज्ञान। कहिहैं तुम्हैं मयत्रेय आन।
यह कहि ऊधव आगैं चले। बिदुर मयत्रेय बहुरौ मिले।
जो कछु हरि सौं सुन्यौ सुज्ञान। कह्यौ मयत्रेय ताहि बखान।
सोइ माहिँ दियौ व्यास सुनाइ। कहौं सो सूर सुनौ चित लाइ॥४॥
॥३९५॥

बिदुर-जन्म *राग बिलावल*

बिदुर सु धर्मराइ अवतार। ज्यौं भयौ, कहौं, सुनौ चितधार।
मांडव ऋषि जब सूली दयौ। तब सो काठ हरौ ह्वै गयौ।
मांडव धर्मराज पै आयौ। क्रोधवंत यह बचन सुनायौ।
कौन पाप मैं ऐसौ कियौ। जातैं मोकौं सूली दियौ।
धर्मराज कह्यौ, सुनु ऋषिराइ। छमा करौ तौ देउँ बताइ।
बाल-अवस्था मैं तुम धाइ। उड़ति भँभीरी पकरी जाइ।
ताहि सूल पर सूली दयौ। ताकौ बदलौ तुमसौं लयौ।
ऋषि कह्यौ, बाल-दसा अज्ञान। भयौ पाप मोतैं बिनु जान।
बालापन कौ लगत न पाप। तातैं देउँ तुम्हैं मैं साप।
दासी-पुत्र होहु तुम जाइ। सूर बिदुर भयौ सो इहिं भाइ॥५॥
॥३९६॥

सनकादिक-अवतार *राग बिलावल*

ब्रह्मा ब्रह्मरूप उर धारि। मन सौं प्रगट किए सुत चारि।
सनक, सनंदन, सनतकुमार। बहुरि सनातन नाम ये चार।
ये चारौं जब ब्रह्मा किए। हरि कौ ध्यान धर्यौ तिन हिये।
ब्रह्मा कह्यौ, सृष्टि बिस्तारौ। उन यह बचन हृदय नहिं धारौ।
कह्यो, यहै हम तुमसैं चहैं। पाँच बरष के नितहीं रहैं।
ब्रह्मा सैं तिन यह बर पाइ। हरि-चरननि चित राख्यौ लाइ।
सुकदेव कह्यौ जाहि परकार। सूर कह्यौ ताही अनुसार॥६॥
॥३९७॥

रुद्र-उत्पत्ति *राग बिलावल*

सनकादिकनि कह्यौ नहिँ मान्यौ। ब्रह्मा क्रोध बहुत मन आन्यौ।
तब इक पुरुष भौँह तैँ भयौ। होत समय तिन रोदन ठयौ।
ताकौँ नाम रुद्र बिधि राख्यौ। तासौँ सृष्टि करन कौँ भाख्यौ।
तिन बहु सृष्टि तामसी करी। सो तामस करि मन अनुसरी।
ब्रह्मा मन सो भली न भाई। सूर सृष्टि तब और उपाई ॥७॥
॥३८८॥

सप्तऋषि, दच्छ प्रजापति तथा स्वायंभुव मनु की उत्पत्ति *राग बिलावल*

ब्रह्मा सुमिरन करि हरि-नाम। प्रगटे रिषय सप्त अभिराम।
भृगु, मरीचि, अंगिरा, बसिष्ठ। अत्रि, पुलह, पुलस्त्य अति सिष्ठ।
पुनि दच्छादि प्रजापति भए। स्वायंभुव सो आदि मनु जए।
इनतैँ प्रगटी सृष्टि अपार। सूर कहाँ लौँ करै बिस्तार ॥ ८ ॥
॥३८९॥

सुर-असुर-उत्पत्ति *राग बिलावल*

ब्रह्मा रिषि मरीचि निर्मायौ। रिषि मरीचि कस्यप उपजायौ।
सुर अरु असुर कस्यप के पुत्र। भ्रात बिमात आपु मैँ सत्रु।
सुर हरि-भक्त, असुर हरि-द्रोही। सुर अति छमी, असुर अति कोही।
उनमैँ नित उठि होइ लराई। करैँ सुरनि की कृष्न सहाई।
तिन हित जो-जो किये अवतार। कहौँ सूर भागवतऽनुसार ॥ ९ ॥
॥३९०॥

बाराह-अवतार *राग बिलावल*

ब्रह्मा सौँ स्वयंभु मनु भयौ। तासौँ सृष्टि करन कौँ कह्यौ।
तिन ब्रह्मा सौँ कह्यौ सिर नाइ। सृष्टि करौँ सो रहै किहिँ भाइ?
ब्रह्मा हरि-पद ध्यान लगायौ। तब हरि बपु-बराह धरि आयौ।
ह्वै बराह पृथ्वी ज्यौँ ल्यायौ। सूरदास त्यौँही सुक गायौ ॥१०॥
॥३९१॥

जय-विजय की कथा *राग धनाश्री*

हरि-गुन-कथा अपार, पार नहिँ पाइयै।
हरि सुमिरत सुख होइ, सु हरि-गुन गाइयै।

ब्रह्म-पुत्र सनकादि, गए बैकुंठ एक दिन।
द्वारपाल जय-विजय हुते, बरज्यौ तिनकौं तिन।
साप दियौ तब क्रोध ह्वै असुर होहु संसार।
हरि दरसन कौं जात क्यौं रोक्यौ बिना विचार ?
हरि-तिनसौं कह्यौ आइ, भली सिच्छा तुम दीनी।
बरज्यौ आवत तुम्हैं, असुर-बुधि इन यह कीनी।
तिन्हैं कह्यौ, संसार मैं असुर होहु अब जाइ।
तीजे जनम बिरोध करि, मोकौं मिलिहौ आइ।
कस्यप की दिति नारि, गर्भ ताकैं दोउ आए।
तिनकैं तेज-प्रताप, देवतनि बहु दुख पाए।
गर्भ माहिँ सत बर्ष रहि, प्रगट भए पुनि आइ।
तिन दोउनि कौं देखि कै, सुर सब गए डराइ।
हिरन्याच्छ इक भयौ, हिरनकस्यप भयौ दूजौ।
तिन के बल कौं इंद्र, बरुन, कोऊ नहिँ पूजौ।
हिरन्याच्छ तब पृथी कौं, लै राख्यौ पाताल।
ब्रह्मा विनती करि कह्यौ, दीनबंधु गोपाल !
तुम बिनु द्वितिया और कौन, जो असुर सँहारै।
तुम बिनु करुनासिंधु, और को पृथी उधारै ?
तब हरि धरि बाराह-बपु, ल्याए पृथी उठाइ।
हिरन्याच्छ लै कर गदा, तुरतहिँ पहुँच्यौ जाइ।
असुर क्रोध ह्वै कह्यौ, बहुत तुम असुर सँहारे।
अब लैहौं वह दाउँ, छाँड़िहौं नहिँ बिन मारे।
यह कहिकै मारी गदा, हरि जू ताहि सम्हारि।
गदा-युद्ध तासौं कियौ, असुर न मानै हारि।
तब ब्रह्मा करि बिनय कह्यौ, हरि, याहि सँहारौ।
तुम तौ लीला करत, सुरनि मन परयौ खँभारौ।
मारयौ ताहि प्रचारि हरि, सुर-नर भयौ हुलास।
सूरदास के प्रभु बहुरि गए बैकुंठ-निवास ॥११॥
॥३६२॥

राग बिलावल

स्वायंभुव मनु सुत भए दोइ। तनया तीनि, सुनौ अब सोइ।

दच्छ प्रजापति कौँ इक दई। इक रुचि, एक कर्दम-तिय भई।
कर्दम कैं भयौ कपिलऽवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार ॥१२॥
॥३६३॥

कपिलदेव-अवतार तथा कर्दम का शरीर-त्याग *राग बिलावल*

हरि हरि हरि सुमिरन नित करौ। हरि कौ ध्यान सदा हिय धरौ।
ज्यौं भयौ कपिलदेव-अवतार। कहौं सो कथा, सुनौ चित धार।
कर्दम पुत्र-हेत तप कियौ। तासु नारिहूँ यह व्रत लियौ।
हरि-सौ पुत्र हमारैं होइ। और जगत-सुख चहैं न कोइ।
नारायन तिनकौं बर दियौ। मोसौं और न कोऊ बियौ।
मैं लैहौं तुम गृह अवतार। तप तजि, करौ भोग संसार।
दुहुँ तब तीरथ माहिं नहाए। सुंदर रूप दुहूँ जन पाए।
भोग-समग्री जुरी अपार। बिचरन लागे सुख-संचार।
तिनके कपिलदेव सुत भए। परम सुभाग्य मानि तिन लए।
कर्दम कह्यौ तिन्हैं सिर नाइ। आज्ञा होइ, करौं तप जाइ।
अभिद अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।
मिथ्या तन् कौ मोह बिसार। जाहु रहौ भावै गृह-बार।
करत इंद्रिननि चेतन जोइ। मम स्वरूप जानौ तुम सोइ।
जब मम रूप देह तजि जाइ। तब सब इंद्री-सक्ति नसाइ।
ताकौं जानि मग्न ह्वै रहै। देहऽभिमान ताहि नहिं दहै।
तन-अभिमान जासु नसि जाइ। सो नर रहै सदा सुख पाइ।
और जो ऐसी जानै नाहिं। रहै सो सदा काल-भय माहिं।
यह सुनि कर्दम बनहिं सिधाए। उहाँ जाइ हरि-पद चित लाए।
हरि-स्वरूप सब घट यौं जान्यौ। ऊख माहिं ज्यौं रस है सान्यौ।
खोई तन, रस आतम-सार। ऐसी बिधि जान्यौ निरधार।
यौं लखि, गहि हरि-पद-अनुराग। मिथ्या तनु कौ कीन्यौ त्याग।
तनहिं त्यागि कै हरि-पद पायौ। नृप सुनि हरि-स्वरूप उर ध्यायौ।

देवहूति-कपिल संवाद

इहाँ कपिल सौं माता कह्यौ। प्रभु मेरौ अज्ञान तुम दह्यौ।
आतमज्ञान देहु समुझाइ। जातैं जनम-मरन-दुख जाइ।
कह्यौ कपिल, कहौं तुमसौं ज्ञान। मुक्त होइ नर ताकौं जान।

मुक्त नरनि के लच्छन कहैं। तेरे सब संदेहै दहैं।
मम सरूप जो सब घट जान। मगन रहै तजि उद्यम आन।
अरु सुख-दुख कछु मन नहिं ल्यावै। माता, सो नर मुक्त कहावै।
और जो मेरौ रूप न जानै। कुटुँब-हेत नित उद्यम ठानै।
जाकौ इहिं विधि जन्म सिराइ। सो नर मरिकै नरकहिं जाइ।
ज्ञानी-संगति उपजै ज्ञान। अज्ञानी-सँग होइ अज्ञान।
तातैं साधु-संग नित करना। जातैं मिटै जन्म अरु मरना।
थावर-जंगम मैं मोहिं जानै। दयासील, सब सैं हित मानै।
सत-सँतोष दृढ़ करै समाधि। माता ताकैं कहियै साध।
काम, क्रोध, लोभहिं परिहरै। द्वंद्व-रहित, उद्यम नहिं करै।
ऐसे लच्छन हैं जिन माहिं। माता, तिनसैं साधु कहाहिं।
जाकैं काम-क्रोध नित व्यापै। अरु पुनि लोभ सदा संतापै।
ताहि असाधु कहत सब लोइ। साधु-बेष धरि साधु न होइ।
संत सदा हरि के गुन गावैं। सुनि-सुनि लोग भक्ति कैं पावैं।
भक्ति पाइ पावैं हरि-लोक। तिन्हैं न व्यापै हर्षऽरु सोक।

भक्ति-विषयक प्रश्नोत्तर

देवहूति कह, भक्ति सो कहियै। जातैं हरि-पुर बासा लहियै।
अरु सो भक्ति कीजै किहिं भाइ। सोऊ मो कहँ देहु बताइ।
माता, भक्ति चारि परकार। सत, रज, तम गुन, सुद्धा सार।
भक्ति एक, पुनि बहु बिधि होइ। ज्यौं जल रँग-मिलि रंग सु होइ।
भक्ति सात्विकी, चाहत मुक्ति। रजोगुनी, धन-कुटुंबऽनुरक्ति।
तमोगुनी, चाहै या भाइ। मम बैरी क्यौंहूँ मरि जाइ।
सुद्धा भक्ति मोहिं कौं चाहै। मुक्तिहुँ कौं सो नहिं अवगाहै।
मन-क्रम-बच मम सेवा करै। मन तैं सब आसा परिहरै।
ऐसौ भक्त सदा मोहिं प्यारौ। इक छिन तातैं रहौं न न्यारौ।
ताकौं जो हित, मम हित सोइ। ता सम मेरैं और न कोइ।
त्रिविध भक्त मेरे हैं जोइ। जो माँगै तिहिं देउँ मैं सोइ।
भक्त अनन्य कछू नहिं माँगै। तातैं मोहिं सकुच अति लागै।
ऐसौ भक्त सु ज्ञानी होइ। ताके सत्रु-मित्र नहिं कोइ।
हरि-माया सब जग संतापै। ताकौं माया-मोह न व्यापै।
कपिल, कहौ हरि कौ निज रूप। अरु पुनि माया कौन स्वरूप ?

देवहूति जब या बिधि कह्यौ। कपिलदेव सुनि अति सुख लह्यौ।
कह्यौ, हरि कैं भय रवि-ससि फिरै। बायु बेग अतिसै नहिँ करै।
अगिनि दहै जाकैं भय नाहिँ। सो हरि माया जा बस माहिँ।
माया कौं त्रिगुनात्मक जानौ। सत-रज-तम ताके गुन मानौ।
तिन प्रथमहिँ महतत्त्व उपायौ। तातै अहंकार प्रगटायौ।
अहंकार कियौ तीनि प्रकार। सत तैं मन सुर सातऽरुचार।
रजगुन तै इंद्रिय विस्तारी। तमगुन तैं तन्मात्रा सारी।
तिनतैं पंचतत्व उपजायौ। इन सबकौ इक अंड बनायौ।
अंड सो जड़ चेतन नहिँ होइ। तब हरि-पद-छाया मन पोइ।
ऐसी बिधि बिनती अनुसारी। महाराज बिन सक्ति तुम्हारी।
यह अंडा चेतन नहिँ होइ। करहु कृपा सो चेतन होइ।
तामैँ सक्ति आपनी धरी। चच्छ्वादिक इंद्री बिस्तरी।
चौदह लोक भए ता माहिँ। ज्ञाना ताहि बिराट कहाहिँ।
आदि पुरुष चेतन कौं कहत। तीनौं गुन जामैँ नहिँ रहत।
जड़ स्वरूप सब माया जानौ। ऐसौ ज्ञान हृदै मैँ आनौ।
जब लगि है जिय मैँ अज्ञान। चेतन कौं सो सकै न जान।
सुत-कलत्र कौं अपनौ जानै। अरु तिनसौं ममत्व यहु ठानै।
ज्यौं कोउ दुख-सुख सपनै जोइ। सत्य मानि लै ताकौं सोइ।
जब जागै तब सत्य न मानै। ज्ञान भएँ त्यौंही जग जानै।
चेतन घट-घट है या भाइ। ज्यौं घट-घट रवि-प्रभा लखाइ।
घट उपजै, बहुरौ नसि जाइ। रवि नित रहै एकहीं भाइ।
जड़ तन कैं है जनमऽरु मरना। चेतन पुरुष अमर-अज बरना।
ताकैं ऐसौ जानै जोइ। ताकौ तिनसैं मोह न होइ।
जब लैं ऐसौ ज्ञान न होइ। बरन-धरम कैं तजै न सोइ।

भगवान् का ध्यान *राग बिलावल*

संतनि की संगति नित करै। पापकर्म मन तैं परिहरै।
अरु भोजन सो इहिँ बिधि करै। आधौ उदर अन्न सैं भरै।
आधे मैँ जल वायु समावै। तब तिहिँ आलस कबहुँ न आवै।
अरु जो परालब्ध सैं आवै। ताही कैं सुख सैं बरतावै।
बहुतै कौ उद्यम परिहरै। निर्भय ठौर बसेरौ करै।
तीरथ हू मैँ जौ भय होइ। ताहू ठाउँ परिहरै सोइ।

बहुरौ धरै हृदय महँ ध्यान। रूप चतुरभुज स्याम सुजान।
प्रथमैं चरन-कमल कौं ध्यावै। तासु महातम मन मैं ल्यावै।
गंगा प्रगट इनहिं तैं भई। सिव सिवता इनहीं तैं लई।
लछमी इनकौं सदा पलोवै। बारंबार प्रीति करि जोवै।
जंघनि कौं कदली सम जानै। अथवा कनकखंभ सम मानै।
उर अरु ग्रीव बहुरि हिय धारै। तापर कौस्तुभ मनिहिं बिचारै।
तहँ भृगु-लता, लच्छमी जान। नाभि-कमल चित धारै ध्यान।
मुख मृदु-हास देखि सुख पाव। तासौं प्रेम-सहित मन लावै।
नैन कमल-दल से अनियारे। दरसत तिन्हैं कटैं दुखभारे।
नासा-कीर, परम अति सुंदर। दरसत ताहि मिटै दुख-द्वंदर।
कूप समान स्रौन दोउ जानै। मुख कौ ध्यान याहि बिधि ठानै।
केसर-तिलक-रेख अति सोहै। ताकी पटतर कौं जग को है?
मृगमद-बिंदा तामैं राजै। निरखत ताहि काम सत लाजै।
मोर-मुकुट, पीतांबर सोहै। जो देखै ताकौ मन मोहै।
स्रवननि कुंडल परम मनोहर। नख-सिख ध्यान धरै यौं उर धर।
क्रम-क्रम करि यह ध्यान बढ़ावैं। मन कहुँ जाइ, फेरि तहँ ल्यावै।
ऐसैं करत मगन रहै सोइ। बहुरौ ध्यान सहज ही होइ।
चितवत चलन न चित तैं टरै। सुत-तिय-धन की सुधि बिसमरै।
तब आतम घट-घट दरसावै। मगन होइ, तन-सुधि बिसरावै।
भूख प्यास ताकौं नहिं ब्यापै। सुख-दुख तनिकौ तिहिं न सँतापै।
जीवन-मुक्त रहै या भाइ। ज्यौं जल-कमल-अलिप्त रहाइ!

चतुर्विध भक्ति

देवहूति यह सुनि पुनि कह्यौ। देह-ममत्व घेरि मोहिं रह्यौ।
कर्दम-मोह न मन तैं जाइ। तातैं कहियै सुगम उपाइ।
कपिल कह्यौ, तोहिं भक्ति सुनाऊँ। अरु ताकौ ब्यौरौ समुझाऊँ।
मेरी भक्ति चतुर्बिध करै। सनै-सनै तैं सब निस्तरै।
ज्यौं कोउ दूरि चलन कौं करै। क्रम-क्रम करि डग-डग पग धरै।
इक दिन सो उहाँ पहुँचै जाइ। त्यौं मम भक्त मिलै मोहिं आइ।
चलत पंथ कोउ थाक्यौ होइ। कहैं दूरि, डरि मरिहै सोइ।
जो कोउ ताकौं निकट बतावै। धीरज धरि सो ठिकानैं आवै।
तमोगुनी रिपु मरिबौ चाहै। रजोगुनी धन कुटुँबऽवगाहै।

भक्त सात्विकी सेवै संत। लखै तिन्हैँ मूरति भगवंत।
मुक्ति-मनोरथ मन मैँ ल्यावै। मम प्रसाद तैँ सो वह पावै।
निर्गुन मुक्तिहुँ कौं नहिँ चहै। मम दरसन ही तैँ सुख लहै।
ऐसौ भक्त सुमुक्त कहावै। सो बहुरयौ भव-जल नहिँ आवै।
क्रम-क्रम करि सबकी गति होइ। मेरौ भक्त नसै नहिँ कोइ।

हरि-विमुख की निंदा

हरि तैँ बिमुख होइ नर जोइ। मरिकै नरक परत है सोइ।
तहाँ जातना बहु बिधि पावै। बहुरौ चौरासी मैँ आवै।
चौरासी भ्रमि, नर-तन पावै। पुरुष-वीर्य सौं तिय उपजावै।
मिलि रज-वीर्य बेर-सम होइ। द्वितिय मास सिर धारै सोइ।
तीजे मास हस्त-पग होहिँ। चौथ मास कर-अँगुरी सोहिँ।
प्रान-बायु पुनि आइ समावै। ताकैँ इत-उत पवन चलावै।
पंचम मास हाड़ बल पावै। छठैँ मास इंद्री प्रगटावै।
सप्तम चेतनता लहै सोइ। अष्टम मास सँपूरन होइ।
नीचैँ सिर अरु ऊँचैँ पाव। जठर अग्नि कौ ब्यापै ताव।
कष्ट बहुत सो पावै उहाँ। पूर्वजन्म - सुधि आवै तहाँ।
नवम मास पुनि बिनती करै। महाराज, मम दुख यह टरै।
ह्याँ तैँ जौ मैँ बाहर परौँ। अहनिसि भक्ति तुम्हारी करौँ।
अब मोपै प्रभु, कृपा करीजै। भक्ति अनन्य आपुनी दीजै।
अरु यह ज्ञान न चित तैँ टरै। बार - बार यह बिनती करै।
दसम मास पुनि बाहर आवै। तब यह ज्ञान सकल बिसरावै।
बालापन दुख बहु बिधि पावै। जीभ बिना कहि कहा सुनावै।
कबहूँ विष्ठा मैँ रहि जाइ। कबहूँ माखी लागैँ आइ।
कबहूँ जुवाँ देहिँ दुख भारी। तितकौँ सो नहिँ सकै निवारी।
पुनि जब षष्ठ बरष कौ होइ। इत उत खेल्यौ चाहै सोइ।
माता-पिता निवारैँ जबहीँ। मन मैँ दुख पावै सो तबहीँ।
माता-पिता पुत्र तिहिँ जानैँ। वहऊ उनसौँ नातौ मानै।
बर्ष ब्यतीत दसक जब होइ। बहुरि किसोर होइ पुनि सोइ।
सुंदर नारी ताहि बिवाहै। असन-बसन बहुबिधि सो चाहै।
बिना भाग सो कहाँ तैँ आवै। तब वह मन मैँ बहु दुख पावै।
पुनि लछमी-हित उद्यम करै। अरु जब उद्यम खाली परै।

तब वह रहै बहुत दुख पाइ। कहँ लौं कहौं, कह्यौ नहिं जाइ।
बहुरौ ताहि बुढ़ापौ आवै। इंद्री-सक्ति सकल मिटि जावै।
कान न सुनै, आँखि नहिं सूझै। बात कहैं सो कछु नहिं बूझै।
खैवेहूँ कौं जब नहिं पावै। तब बहुबिधि मन मैं पछितावै।
पुनि दुख पाइ-पाइ सो मरै। बिनु हरि-भक्ति नरक मैं परै।
नरक जाइ पुनि बहु दुख पावै। पुनि-पुनि यौंहीं आवै-जावै।
तऊ नहीं हरि-सुमिरन करै। तातैं बार-बार दुख भरै।

भक्त-महिमा

भक्त सकामी हू जो होइ। क्रम-क्रम करिकै उधरै सोइ।
सनै-सनै बिधि-लोकहिँ जाइ। ब्रह्मा-सँग हरि-पदहिँ समाइ।
निष्कामी बैकुंठ सिधावै। जनम-मरन तिहिं बहुरि न आवै।
त्रिबिध भक्ति कहौं सुनि अब सोइ। जातैं हरि-पद प्रापति होइ।
एकै कर्म-जोग कौं करैं। बरन-आसरम धर बिस्तरैं।
अरु अधर्म कबहूँ नहिं करैं। ते नर याही बिधि निस्तरैं।
एकै भक्ति-जोग कौं करैं। हरि-सुमिरन पूजा बिस्तरैं।
हरि-पद-पंकज प्रीति लगावैं। ते हरि-पद कौं या बिधि पावैं।
एकै ज्ञान-जोग बिस्तरैं। ब्रह्म जानि सब सौं हित करैं।
ते हरि-पद कौं या बिधि पावैं। क्रम-क्रम सब हरि-पदहिं समावैं।
कपिल देव बहुरौ यौं कह्यौ। हमैं-तुम्हैं संबाद जु भयौ।
कलिजुग मैं यह सुनिहै जोइ। सो नर हरि-पद प्रापत होइ।
देवहूति सुज्ञान कौं पाइ। कपिलदेव सौं कह्यौ सिर नाइ।
आगैं मैं तुमकौं सुत मान्यौ। अब मैं तुमकौं ईश्वर जान्यौ।
तुम्हरी कृपा भयौ मोहिं ज्ञान। अब न ब्यापिहै मोहिं अज्ञान।
पुनि बन जाइ कियौ तन-त्याग। गहि कै हरि-पद सौं अनुराग।
कपिलदेव सांख्यहिँ जो गायौ। सो राजा मैं तुम्हैं सुनायौ।
याहि समुझि जो रहै लव लाइ। सूर बसै सो हरिपुर जाइ॥१३॥
॥३९४॥

तृतीय स्कंध समाप्त।

चतुर्थ स्कंध

दत्तात्रेय-अवतार *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि - चरनारबिंद उर धरौ।
सुक हरि-चरननि कौँ सिर नाइ। राजा सो बोल्यौ या भाइ।
कहौँ हरि-कथा, सुनौ चितलाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥३६५॥

राग बिभास

रुचि कैँ अत्रि नाम सुत भयौ। ब्याहि अनुसुया सौँ सो दयौ।
ताकैँ भयौ दत्त अवतार। सूर कहत भागवतऽनुसार ॥२॥
॥३६६॥

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
कहौँ अब दत्तात्रेय-अवतार। राजा, सुनौ ताहि चित धार।
अत्रि पुत्र-हित बहु तप कियौ। तासु नारिहूँ यह ब्रत लियौ।
तीनौँ देव तहाँ मिलि आए। तिनसौँ रिषि ये बचन सुनाए।
मैँ तौ एक पुरुष कौँ ध्यायौ। अरु एकहिँ सौँ चित्त लगायौ।
अपने आवन कौ कहौ कारन। तुम सकल जगत-उद्धारन।
कह्यौ तुम एक पुरुष जो ध्यायौ। ताकौ दरसन काहु न पायौ।
ताकी सक्ति पाइ हम करैँ। प्रतिपालैँ बहुरौ संहरैँ।
हम तीनौँ हैँ जग-करतार। माँगि लेहु हमसौँ बर सार।
कह्यौ, बिनय मेरी सुनि लीजै। पुत्र सुज्ञानवान मोहिँ दीजै।
बिष्नु-अंस सौँ दत्तऽवतरे। रुद्र - अंस दुर्वासा धरे।
ब्रह्मा - अंस चंद्रमा भयौ। अत्रिऽनुसूया कौँ सुख दयौ।
यौँ भयौ दत्तात्रेय अवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार ॥३॥
॥३६७॥

यज्ञपुरुष-अवतार *राग बिलावल*

दच्छ के उपजीँ पुत्री सात। तिन मैँ सती नाम बिख्यात।

महादेव कौं सो तिन दई। पुनि सो दच्छ-जज्ञ मैं मुई।
तहँ कियौ जज्ञपुरुष अवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार ॥४॥
॥३६८॥

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारविंद उर धरौ।
कहौं अब जज्ञपुरुष-अवतार। राजा, सुनौ ताहि चित धार।
सती दच्छ की पुत्री भई। दच्छ सो महादेव कौं दई।
ब्रह्मा, महादेव, रिषि सारे। इक दिन बैठे सभा मँझारे।
दच्छ प्रजापति हू तहँ आए। करि सनमान सबनि बैठाए।
काहूँ समाचार कछु पूछे। काहू सौं उनहूँ तब पूछे।
सिब की लागी हरि-पद तारी। तातैं नहिँ उन आँखि उघारी।
महादेव बैठे रहि गए। दच्छ देखि अतिसय दुख तए।
महादेव कौं भाषत साधु। मैं तौ देखौं बड़ौ असाधु।
जज्ञ-भाग याकौं नहिँ दीजै। मेरौ कह्यौ मानि करि लीजै।
नंदी-हृदय भयौ सुनि ताप। दियौ ब्राह्मननि कौं तिन साप।
स्रुति पढ़ि कै तुम नहिँ उद्धरिहौ। बिद्या बँचि जीविका करिहौ।
भृगु तब कोप होइ यौं कह्यौ। सुनत साप रिस तैं तनु दह्यौ।
महादेव-हित जो तप करिहै। सोऊ भव-जल तैं नहिँ तरिहै।
दच्छ प्रजापति जज्ञ रचायौ। महादेव कौं नाहिँ बुलायौ।
सुर-गंधर्व जे नेवति बुलाए। ते सब बधुनि सहित तहँ आए।
सती सबनि कौं आवत देखि। सिव सौं बोली बचन बिसेषि।
चलियै दच्छ-गेह हम जाहिँ। जद्यपि हमैं बुलायौ नाहिँ।
मोकौं तौ यह अचरज आयो। उन हमकौं कैसैं बिसरायौ।
गुरु-पितु-गृह बिनु बोलेहु जैऐ। है यह नीति नाहिँ सकुचैए।
सिव कह्यौ,तुम भली नीति सुनाई। पै वह मानत है सत्राई।
उहाँ गए जो होइ अपमान। तौ यह भली बात नहिँ जान।
दुर्जन-बचन सुनत दुख जैसौ। बान लगैं दुख होइ न तैसौ।
मम सत्राई हिरदैं आन। करिहै बह तेरौ अपमान।
भएँ अपमान उहाँ तू मरिहै। जौ मम बचन हृदय नहिँ धरिहै।
सती कह्यौ, मम भगिनी सात। सबै बुलाई ह्वैहैं तात।
मोहूँ कौं प्रभु, आज्ञा दीजै। महराज, अब बिलँब न कीजै।
बारंबार सती जब कह्यौ। तब सिव अंतर्गत यौं लह्यौ।

सती सदा मम आज्ञाकारी। कहति जो या बिधिबारंबारी।
दीखति है कछु होवनहारी। सो काहू पै जाइ न टारी।
गननि समेत सती तहँ गई। तासौं दच्छ बात नहिँ कही।
सती जानि अपनौ अपमान। सिव कौ बचन कियौ परमान।
कह्यौ, उहाँ अब गयौ न जाइ। बैठि गई सिर नीचैं नाइ।
सिव-आहुति-बेरा जब आई। बिप्रनि दच्छहिँ पूछ्यौ जाई।
सिव-निंदा करि तिनसौं भाष्यौ। मैँ तौ पहिलैं ही कहि राख्यौ।
मेरौ बचन मानि करि लेहु। सिव-निमित्त आहुति जनि देहु।
तब करि क्रोध सती तिहिँ कही। तैं सिव की महिमा नहिँ लही।
महादेव ईश्वर भगवान। सत्रु-मित्र उन एक समान।
तैं अज्ञान करी सत्राई। उनकी महिमा तैं नहिँ पाई।
पिता जानि तोकौँ नहिँ मारौँ। अपनौ ही मैँ प्रान सँहारौँ।
जोग धारना करि तनु त्याग्यौ। सिव-पद-कमल हृदय अनुराग्यौ।
बहुरि हिमाचल कैं अवतरी। समय पाइ सिव बहुरौ बरी।
इहाँ सिव-गननि उपद्रव कियौ। तब भृगु रिषि उपाइ यह ठयौ।
आहुति जज्ञकुंड मैँ डारी। कह्यौ, पुरुष उपजैं बल भारी।
पुरुष कुंड तैं प्रगट जो भए। भृगु कैं निकट सबै चलि गए।
भृगु कह्यौ, करत जब ये नास। इनकैं ह्याँतैं देहु निकास।
सिव के गन तिंन बहुतै मारे। ते गन सिव पै जाइ पुकारे।
सिव ह्वै क्रोध इक जटा उपारी। बीरभद्र उपज्यौ बलभारी।
बीरभद्र कौँ तहाँ पठायौ। तासैँ इहिँ बिधि कहि समुझायौ।
दछ-सिर काटि कुंड में डारि। आवौ बेगि न लावौ बार।
बीरभद्र तब दच्छहिँ मारयौ। अरु भृगुरिषि कौ केस उपारयौ।
हाथ-पाइँ बहुतनि के काट। आइ नवायौ सिवहिँ ललाट।
तब सुर रिषि ब्रह्मा पैं आइ। दियौ सकल वृत्तांत सुनाइ।
कह्यौ ब्रह्मा सिव निंदा जहाँ। बुरौ कियौ तुम बैठे तहाँ।
ब्रह्मा तिन लै सिव पहँ आए। सिव प्रनाम करि ढिग बैठाए।
सिव कौँ सबनि कियौ सनमान। भोलानाथ लियौ सो मान।
ब्रह्मा सिव कौँ बचन सुनायौ। दच्छ तुम्हारी मरम न पायौ।
जैसौ कियौ सो तैसौ पायौ। अब उहिँ चहियै फेरि जिवायौ।
सिव कह्यौ, मेरैं नहिँ सत्राई। सती मुएँ यह मन मैँ आई।
अब जा तुम्हरी आज्ञा होइ। छाँड़ि बिलंब करौँ मैँ सोइ।

ब्रह्मा, बिष्नु, रुद्र तहँ आए। भृगु रिषि केस आपने पाये।
घायल सबै नीक ह्वै गए। सुर-रिषि सबके भाए भए।
दच्छ-सीस जो कुण्ड मैं जर्‍यौ। ताके कदलैं अज-सिर धर्‍यौ।
महादेव तिहिं फेरि जिवायौ। दच्छ जानि यह सीस नवायौ।
विप्रनि यज्ञ बहुरि बिस्तार्‍यौ। बेद भली बिधि सौं उच्चार्‍यौ।
जज्ञपुरुष प्रसन्न तब भए। निकसि कुंड तैं दरसन दए।
सुंदर स्याम चतुर्भुज रूप। ग्रीवा कौस्तुभ-माल अनूप।
उठि कै सबहिन माथ नवायौ। दच्छ बहुरि यौं बिनय सुनायौ।
मैं अपमान रुद्र कौ कियौ। तब मम जज्ञ सांग नहिं भयौ।
अब मोहिं कृपा कीजियै सोइ। फिरि ऐसी दुरबुद्धि न होइ।
बहुरौ भृगु रिषि अस्तुति कीनी। महाराज मम बुधि भई हीनी।
दियौ क्रोध करि सिवहिं सराप। करौ कृपा जो मिटै यह दाप।
पुनि सिव ब्रह्मा अस्तुति करी। जज्ञ पुरुष बानी उच्चरी।
दच्छ कियौ सिव कौ अपमान। तातैं भई जज्ञ की हान।
बिष्नु, रुद्र, बिधि, एकहिं रूप। इन्हैं जानि मति भिन्न स्वरूप।
जातैं ये परगट भए आइ। ताकौं तू मन मैं निज ध्याइ।
यौं कहि पुनि बैकुंठ सिधारे। बिधि, हरि, महादेव, सुर सारे।
या बिधि जज्ञपुरुष अवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार ॥५॥
॥३९९॥

यज्ञपुरुष-अवतार (संक्षिप्त) *राग मारू*

जब प्रभु प्रगट दरसन दिखायौ।
बिष्नु-बिधि-रुद्र मम रूप ये तीनिहूँ, दच्छ सौं बचन यह कहि सुनायौ।
दच्छ रिस मानि जब जज्ञ आरंभ कियौ-सबनि कौं सहित पत्नी हँकार्‍यौ।
रुद्र-अपमान कियौ,सती तब जीव दियो,रुद्र के गननि ताकौं सँहार्‍यो।
बहुरि बिधि जाइ, छमवाइ कै रुद्र कौं,बिष्नु, बिधि, रुद्र तहँ तुरत आए।
जज्ञ आरंभ मिलि रिषिनि बहुरौ कियौ,सीस अज राखि कै दच्छ ज्याए।
कुंड तैं प्रगटि जग-पुरुष दरसन दियौ, स्याम सुंदर चतुरभुज मुरारी।
सूर प्रभु निरखि दंडवत सबहिनि कियौ, सुर-रिषिनि सबनि अस्तुति उचारी ॥६॥
॥४००॥

पार्वती-विवाह *राग बिलावल*

सती हियैँ धरि सिव कौ ध्यान। दच्छ-जज्ञ मैँ छाँड़े प्रान।
बहुरि हिमाचल कैँ सुभ घरी। पारवती ह्वै सो अवतरी।
पारबती बय-प्रापत भई। तबहिँ हिमाचल तासौँ कही।
तेरौ कासौँ कीजै ब्याह? तिन कह्यौ-मेरौ पति सिव आह।
कह्यौ हिमाचल, सिव प्रभु ईस। हमसौँ-उनसौँ कैसी रीस?
पारबती सिव-हित तप कर्यौ। तब सिव आइ तहाँ, तिहिँ बर्यौ।
पारवती-बिवाह ब्यवहार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार ॥७॥
॥४०१॥

ध्रुव-कथा *राग बिलावल*

स्वायंभू मनु के सुत दोइ। तिनकी कथा कहौँ, सुनि सोइ।
उत्तानपाद एक कौ नाम। द्वितिय प्रियव्रत अति अभिराम।
ध्रुब उत्तानपाद-सुत भयौ। हरि जू ताकौँ दरसन दयौ।
बहुरि दियौ ताकौँ अस्थान। देहिँ प्रदच्छिन जहँ ससि-भान।
कहौँ सो कथा, सुनौ चित धारि। सूर कह्यौ भागवतऽनुसारि ॥८॥
॥४०२॥

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
अब कहौँ ध्रुव वर देनऽवतार। राजा सुनौ ताहि चित धार।
उतानपाद पृथ्वीपति भयौ। ताकौ जस तीनो पुर छयौ।
नाम सुनीति बड़ी तिहिँ दार। सुरुचि दूसरी ताकी नार।
भयौ सुरुचि तैँ उत्तम क्वार। अरु सुनीति कैँ ध्रुव सुकुमार।
राजा हियैँ सुरुचि सौँ नेह। बसै सुनीति दूसरैँ गेह।
इक दिन नृपति सुरुचि-गृह आयौ। उत्तम कुँवर गोद बैठायौ।
ध्रुव खेलत-खेलत तहँ आए। गोद बैठिबे कौँ पुनि धाए।
राजा तिय-डर गोद न लयौ। ध्रुव सुकुमार रोइ तब दयौ।
तबहिँ सुरुचि ध्रुव कौँ समुझायौ। तैँ गोबिंद-चरन नहिँ ध्यायौ।
जो हरि कौ सुमिरन तू करतौ। मेरै गर्भ आनि अवतरतौ।
राजा तोकौँ लेतौ गोद। तबहिँ गोद मैँ करतौ मोद।
अजहूँ तू हरि-पद चित लाइ। होहिँ प्रसन्न तोहिँ जदुराइ।

सुरुचि के बचन बान सम लागे। ध्रुव आए माता पै भागे।
माता ताकैं रोवत देखि। दुख पायो मन माहिँ बिसेषि।
कह्यौ पुत्र, तोकैं किन मारयौ? ध्रुव अति दुःखित बचन उचारयौ।
माता ताकौं कंठ लगायो। तब ध्रुव सब बृत्तांत सुनायौ।
कह्यौ सुत, सुरुचि सत्य यह कह्यौ। बिनु हरि-भक्ति पुत्र मम भयौ।
अजहूँ जौ हरिपद चित लैहौ। सकल मनोरथ मन के पैहौ।
जिन-जिन हरि चरननि चित लायौ। तिन-तिन सकल मनोरथ पायौ।
प्रपिता तब ब्रह्मा तप कियौ। हरि प्रसन्न ह्वै तिहिँ बर दियौ।
तिन कीन्ह्यौ सब जग विस्तार। जाकौ नाहीँ पारावार।
बहुरि स्वयंभू मनु तप कीन्हौ। ताहू कैँ हरि जू बर दीन्हौ।
ताकैं भयौ बहुत परिवार। नर, पसु, कीट, गनत नहिँ पार।
तैँ हूँ जो हरि-हित तप करिहै। सकल मनोरथ तेरौ पुरिहै।
ध्रुव यह सुनि बन कैँ उठि चले। पंथ माहिँ तिन नारद मिले।
देख्यौ पाँच बरष कौ बाल। सुरुचि बचन नहिँ सक्यौ सँभार।
अब मैँ हूँ याकैँ दृढ़ देखैँ। लखि बिस्वास, बहुरि उपदेसौं।
ध्रुव सैँ कह्यौ क्रोध परिहरौ। मैँ जो कहौं सो चित मैं धरौ।
मेरैँ सँग राजा पै आउ। द्याऊँ तोहिँ राज-धन-गाउँ।
भक्ति-भाव की जो तोहिँ चाह। तोसैँ नहिँ ह्वैहै निर्वाह।
बहुतक तपसी पचि-पचि मुए। पै तिन हरि-दरसन नहिँ हुए।
मैँ हरि-भक्त, नाम मम नारद। मोसैँ कहि अपनौ हारद।
राजा पास कहौं जौ जाइ। लैहै मानि नृपति सत-भाइ।
ध्रुव बिचार तब मन मैँ कियौ। सुमिरत नारद दरसन दियौ।
जब मैँ भक्ति स्याम की कैहौं। जानत नहीँ कहा मैँ पैहौं।
कह्यौ नारद सौं, करौ सहाइ। करौं भक्ति हरि की चित लाइ।
तुम नारायन-भक्त कहावत। केहिँ कारन हमकौँ भरमावत?
तब नारद ध्रुव कौं दृढ़ देखि। कहौ, देउँ मैँ ज्ञान बिसेषि।
मथुरा जाइ सु सुमिरन करौ। हरि कौ ध्यान हृदय मैँ धरौ।
द्वादस अच्छर मंत्र सुनायौ। और चतुर्भुज रूप बतायौ।
मथुरा जाइ सोइ उन कियौ। तब नारायन दरसन दियौ।
ध्रुव अस्तुति कीन्ही बहु भाइ। तब हरिजू बोले मुसुकाइ।
ध्रुव, जो तेरी इच्छा होइ। माँगि लेहि अब मोपै सोइ।
प्रभु, मैँ तुम्हरौ दरसन लह्यौ। माँगन कौं पाछैँ कहा रह्यौ?

हरि कह्यौ, राज-हेत तप कियौ। ध्रुव, प्रसन्न ह्वै मैँ तोहिँ दियौ।
अरु तेरैँ हित कियौ अस्थान। देहि प्रदच्छिन जहँ ससि-भान।
ग्रह-नछत्रहू सबही फिरैँ। तू भयौ अटल, न कबहूँ टरै।
अरु पुनि महा-प्रलय जब होई। मुक्ति स्थान पाइहै सोइ।
यह कहि हरि निज लोक सिधारे। ध्रुव निज पुर कौँ पुनि पग धारे।
जब ध्रुव पुर कैँ बाहर आयौ। लोगनि नृप कौँ जाइ सुनायौ।
उनके कहैँ न मन मैँ आई। तब नारद कह्यो नृप सौँ जाई।
ध्रुव आयो हरि सैँ बर पाइ। राजा, जाइ ताहिँ मिलि धाइ।
नृप सुनि मन आनंद बढ़ायौ। अंतःपुर मैँ जाइ सुनायौ।
पुनि नृप कुटुँब सहित तहँ आए। नगर-लोग सब सुनि उठि धाए।
ध्रुव राजा के चरननि पर्‌यौ। राजा कंठ लाइ हित कर्‌यौ।
पुनि सो सुरुचि कैँ चरननि पर्‌यौ। तासैँ बचन मधुर उच्चर्‌यौ।
तव उपदेस मैँ हरि कौँ ध्यायौ। यह उपकार न जात मिटायौ।
पुनि माता के पायनि पर्‌यौ। माता ध्रुव कौँ अंकम भर्‌यौ।
ध्रुव निज सिंहासन बैठाए। नृप तप-कारन बनहिँ सिधाए।
सातौं द्वीप राज ध्रुव कियौ। सीतल भयौ मातु कौ हियौ।
यौँ भयौ ध्रुव-बर-देनऽवतार। सूर कह्यौ भागवतऽनुसार॥ ९॥
॥४०३॥

संक्षिप्त ध्रुव-कथा *राग आसावरी*

ध्रुव बिमाता-वचन सुनि रिसायौ।
दीन के द्याल गोपाल, करुनामयी मातु सौँ सुनि, तुरत सरन आयौ।
बहुरि जब बन चल्यौ, पंथ नारद मिल्यौ, कृष्न-निज-धाम मथुरा बतायौ।
मुकुट सिर धरैँ, वनमाल कौस्तुभ गरैँ, चतुर्भुज स्याम सुंदरहिँ ध्यायौ।
भए अनुकूल हरि, दियौ तिहिँ तुरत बर, जगत करि राजपद अटल पायौ।
सूर के प्रभु की सरन आयौ जो नर, करि जगत-भोग बैकुंठ सिधायौ॥१०॥
॥४०४॥

पृथु-अवतार *राग बिलावल*

धारि पृथु-रूप हरि राज कीन्हौ।
बिष्नु की भक्ति परवर्त जग मैँ करी, प्रजा कौँ सुख सकल भाँति दीन्हौ।
देनु नृप भयौ बलवंत जब पृथीपर, रिषिनि सौँ कह्यौ जप-तप निवारौ।

मोहिँ विधि, बिष्नु, सिव, इंद्र, रबि-ससि गनौ, नाम मम लेइ आहुतिनि डारै।
जज्ञ मैँ करत तब मेघ बरसत मही, बीज अंकुर तबै जमत सारौ।
होइ तिन क्रोध तब साप ताकौँ दयौ, मारिकै ताहि जग-दुःख टारौ।
भयौ आराज जब, रिषिनि तब मंत्र करि, बेनु की जाँघ कौ मथन कीन्हौ।
जाँघ के मथे तैँ पुरुष परगट भयो, स्याम निहिँ भील कौ राज दीन्हौ।
बहुरि जब रिषिनि भुज दच्छिन कीन्ही मथन, लच्छमी सहित पृथु दरस दीन्हौ।
पहिरि सब आभरन, राज्य लागे करन, आनि सब प्रजा दंडवत कीन्हौ।
बहुरि बंदीजननि आइ अस्तुति करी, इंद्र अरु बरुन तुम तुल्य नाहीँ।
कह्यौ नृप, बिनु पराक्रम न अस्तुति करौ, बिना किये मूढ़ सो हर्षि जाहीँ।
करौ भगवान कौ जस गुनीजन सदा, जो जगत-सिंधु तैँ पार तारै।
कियैँ नर की स्तुती कौन कारज सरै, करै सो आपनौ जन्म हारै।
कह्यौ तिन, तिन्हैँ हम मनुष जानत नहीँ, जगतपति जगतहित देह धार्यौ।
करौगे काज जो कियौ न काहू नृपति, कियैँ जस जाइ हम दुःख सारौ।
बहुरि सब प्रजा मिलि आइ नृप सौँ कह्यौ, बिना आजीविका मरत सारी।
नृप धनुष-बान धरि पृथी पर कोप कियौ, तिन गऊ रूप बिनती उचारी।
बेनु के राज मैँ औषधी गिलि गईँ, होइहैँ सकल किरपा तुम्हारी।
पर्बतनि जहाँ तहँ रोकि मोकौँ लियौ, देहु करि कृपा इक दिसा टारी।
धनुष सौँ टारि पर्बत किए एक दिसि, पृथी सम करि, प्रजा सब बसाई।
सुर-रिषिनि नृपति पुनि पृथी दोहन करी, आपनी जीविका सबनि पाई।
बहुरि नृप जज्ञ निन्यानबे करि, सतम जज्ञ कौँ जबहिँ आरंभ कीन्हौ।
इंद्र भय मानि, हय-गहन सुत सौँ कह्यौ, सो न लै सक्यौ, तब आप लीन्हौ।
नृपति सुत सौँ कह्यौ, जाइ हय ल्याइ अब, इंद्र तिहिँ देखि हय छाँड़ि दीन्हौ।
नृप कह्यौ सुरनि के हेतु मैँ जज्ञ कियौ, इंद्र मम अस्व किहिँ काज लीन्हौ?
रिषिनि कह्यौ, तुव सतम जज्ञ आरंभ लखि, इंद्र कौ राज-हित कँप्यौ हीयौ।
नृप कह्यौ, इंद्रपुर की न इच्छा हमैँ, रिषिनि तब पूरनाहुती दीयौ।
पुरुष कह्यौ, कुंडतैँ निकसि पूरन भयौ, इंद्र जिमि बर कछू माँगि लीजै।
पृथु कह्यौ, नाथ, मेरैँ न कछु सत्रुता, अरु न कछु कामना; भक्ति दीजै।
जग-पुरुष गए बैकुंठ धामहिँ जबै, न्यौति नृप प्रजा कौँ तब हँकारौ।
तिन्है संतोषि कह्यौ, देहु माँगै हमैँ, बिष्नु की भक्ति सब चित्त धारौ।

सुनत यह बात सनकादि आए तहाँ, मान दै कह्यौ, मोहिं ज्ञान दीजै।
कह्यौ, यह ज्ञान, यह ध्यान सुमिरन यहै, निरखि हरि रूप मुख नाम लीजै।
पुनि कह्यौ, देहु आसीस मम प्रजा कौं, सबै हरि-भक्ति निज चित्त धारैं।
कृपा तुम करी, मैं भेंट कौं मन धरी, नहीं, कछु बस्तु ऐसी हमारैं।
बहुरि सनकादि गए आपुने धाम कौं, नृपति, सब लोग, हरि-भक्ति लाए।
सूर प्रभु-चरित अगनित, न गनि जाहिं, कछु जथामति आपनी कहि सुनाए ॥११॥
॥४०५॥

पुरंजन-कथा

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
कथा पुरंजन की अब कहौं। तेरे सब संदेहनि दहौं।
प्राचीनबर्हि भूप इक भए। आयु प्रजंत जज्ञ तिन ठए।
ताकैं मन उपजी, तब ग्लानि। मैं कीन्ही बहु जिय की हानि।
यह मम दोष कौन बिधि टरै। ऐसी भाँति सोच मन करै।
इहिं अंतर नारद तहँ आए। नृप सौं यौं कहि बचन सुनाए।
मैं अबहीं सुरपुर तैं आयौ। मग मैं अद्भुत चरित लखायौ।
जज्ञ माहिं तुम पसु जे मारे। ते सब ढाढ़े सस्त्रनि धारे।
जोहत हैं वे पंथ तिहारौ। अब तुम आपनौ आप सँभारौ।
नृप कह्यौ, मैं ऐसोई कियौ। जज्ञ-काज मैं तिनि दुख दियौ।
रसनाहू कौ कारज सार्‍यौ। मैं यौं अपनौ काज बिगार्‍यौ।
अब मैं यहै बिनै उच्चरौं। जो कछु आज्ञा होइ सो करौं।
कह्यौ, कहौं इक नृप की कथा। उन जो कियौ, करौ तुम तथा।
ताहि सुनौ तुम भलैं प्रकार। पुनि मन मैं देखौ जु बिचार।
ता नृप कौ परमातम मित्र। इक छिन रहत न सो अन्यत्र।
खान-पान सो सब पहुँचावै। पै नृप तासौं हित न लगावै।
नृप चौरासी लछ फिरि आयौ। तब इहिं पुर मानुष तन पायौ।
पुर कौं देखि परम सुख लह्यौ। रानी सौं मिलाप तहँ भयौ।
तिन पूछ्यौ, तू काकी धी है? उन कह्यौ नहिं सुमिरन मम ही है।
पुनि कह्यौ नाम कहा है तेरौ? कह्यौ, न आव नाम मोहिं मेरौ।
तन पुर, जीव पुरंजन राव। कुमति तासु रानी कौ नाँव।
आँखि, नाक, मुख, मूल दुवार। मूत्र, स्रौन, नव पुर कौ द्वार।

लिंग-देह नृप कौ निज गेह। दस इंद्रिय दासी सौं नेह।
कारन तन सो सैन-अस्थान। तहाँ अविद्या नारि प्रधान।
कामादिक पाँचौ प्रतिहार। रहैं सदा ठाढ़े दरबार।
संतोषादि न आवन पावैं। विषय भोग हिरदै हरषावैं।
जा द्वारे पर इच्छा होइ। रानी सहित जाइ नृप सोइ।
तहाँ-तहाँ कौ कौतुक देखि। मन मैं पावै हर्ष बिसेषि।
इंद्री दासी सेवा करैं। तृप्ति न होइ, बहुरि बिस्तरैं।
इन इंद्रिनि कौ यहै सुभाइ। तृप्ति न होइ कितौ हूँ खाइ।
निद्रा बस जो कबहूँ सोवै। मिलि सो अबिद्या सुधि-बुधि खोवै।
उनमत ज्यौं सुख-दुख नहिं जानै। जागैं वहै रीति पुनि ठानै।
संत दरस कबहूँ जौ होइ। जग-सुख मिथ्या जानै सोइ।
पै कुबुद्धि ठहरान न देइ। राजा कौं अंकम भरि लेइ।
राजा पुनि तब क्रीड़ा करै। छिन भरहू अंतर नहिं धरै।
जब अखेट पर इच्छा होइ। तब रथ साजि चलै पुनि सोइ।
जा बन की नृप इच्छा करै। ताही द्वार होइ निस्सरै।
चच्छादिक इंद्री दर जानौ। रूपादिक सब बन सम मानौ।
मन मंत्री सो रथ हँकवैया। रथ तन, पुन्य-पाप दोउ पैया।
अस्व पाँच ज्ञानेंद्रिय पाँच। विषय अखेटक नृप-मन राँच।
राजा मंत्री सौं हित मानै। ताकैं दुख-दुख, सुख-सुख जानै।
नरपति ब्रह्म-अंस, सुख रूप। मन मिलि पर्यौ दुःख कैं कूप।
ज्ञानी संगति उपजै ज्ञान। अज्ञानी सँग होइ अज्ञान।
मंत्री कहैं अखेट सो करै। बिषय-भोग जीवन संहरै।
निसि भएँ रानी पैं फिर आवै। सोवति सो तिहिं बात सुनावै।
आजु कहा उद्यम करि आए। कहै वृथा भ्रमि-भ्रमि स्रम पाए।
काल्हि जाइ अस उद्यम करौं। तेरै सब भंडारनि भरौं।
सब निसि याही भाँति बिहाइ। दिन भए बहुरि अखेटक जाइ।
तहाँ जीव नाना संहरै। विषय-भोग तिनके हित करै।
बिषय-भोग कबहूँ न अघाइ। यौंही नित-प्रति आवै जाइ।
इक दिन नृप निज मंदिर आयौ। रानी सौं अह-निसि मन लायौ।
ताके पुत्र-सुता बहु भए। बिसय-बासना नाना रए।
कान लागि केसनि कह्यौ जाई। जरा काल-कन्या पुर आइ।
"कहौ प्रिया, अब कीजै सोइ?" "राजा, देखि, कहा धौं होइ।"

नगर-द्वार तिन सबै गिराए। लोगनि नृप कौं आनि सुनाए।
"कहौ प्रिया, अब कीजै सोइ?" "राजा, देखि, कहा धौं होइ।"
कान न सुनै आँखि नहिँ सूझै। कहै और औरै कछु बूझै।
"कहौ प्रिया, अब कीजै सोइ?" "देखौ नृपति कहा धौं होइ।
तृष्ना करि कियौ चाहै भोग। भोग न होइ, होइ तन रोग।
"कहौ प्रिया, अब कीजै सोइ?" "देखौ नृपति, कहा धौं होइ।"
देह सिथिल भई, रह्यौ न जाइ। मानौ दीन्यौ कोट गिराइ।
"कहौ प्रिया, अब कीजै सोइ?" "देखौ नृपति, कहा धौं होइ।
पुनि जुरि दौ दीनी पुर लाइ। जरन लगे पुर-लोग - लुगाइ।
"कह्यौ, प्रिया अब कीजै सोइ?" "देखौ नृपति, काह धौं होइ।"
मरन अवस्था कौं नृप जानै। तौ हू धरै न मन मैं ज्ञानै।
मम कुटुंब की कहा गति होइ। पुनि-पुनि मूरख सोचै सोइ!
काल तहाँ तिहिं पकरि निकार्‍यौ। सखा प्रानपति तउ न सँभार्‍यौ।
रानी ही मैं मन रहि गयौ। मरि विदर्भ की कन्या भयौ।
वहुरौ तिन सत-संगति पाई। कहौं सो कथा, सुनौ चित लाई।
मेघध्वज सौं भयौ बिवाह। बिष्नु-भक्ति कौ तिहिं उत्साह।
ता संगति नव सुत तिन आए। स्रवनादिक मिलि हरि-गुन गाए।
इहिं बिधि तिन निज आयु बिताई। पूर्व-पाप सब गए बिलाई।
मरन-अवस्था जब नियराई। ईस सखा कैं मन यह आई।
बहुत जन्म इहिं बहु भ्रम कीन्ह्यौ। पै इन मोकौं कबहुँ न चीन्ह्यौ।
तब दयालु ह्वै दरसन दीन्ह्यौ। कह्यौ, मूढ़ तैं मोहिं न चीन्ह्यौ।
बिषय-भोग ही मैं पगि रह्यौ। जान्यौ मोहिं और कहुँ गयौ।
मैं तौ निकट सदाही रहौं। तेरे सकल दुखनि कौ दहौं।
यह सुनि कै तिहिं उपज्यौ ज्ञान। पायौ पुनि तिहिं पद-निर्वान।
यह कहि नारद नृप सौं कही। तेरी हू तैसी गति भई।
मैं जो कह्यौ सो देखि बिचार। बिन हरि-भजन नाहिँ निस्तार।
हरि की कृपा मनुष-तन पावै। मूरख विषय-हेतु सो गँवावै।
तिन अंगनि कौ सुनौ विवेक। खरचै लाख, मिलै नहिँ एक।
नैन दरस देखन कौं दिए। मूढ़ देखि परनारी जिए।
स्रवन कथा सुनिबे कौं दीन्हे। मूरख पर-निंदा-हित कीन्हे।
हाथ दए हरि-पूजा हेत। तिहिँ कर मूरख पर-धन लेत।
पग दिए तीरथ जैबैं काज। तिन सौं चलि नित करै अकाज।

रसना हरि-सुमिरन कौँ करी। तासैँ पर-निंदा उच्चरी।
यह सुनि नृप कीन्हौ अनुमान। मैँ सोइ नृपति न दूसर आन।
नारद जू तुम कियौ उपकार। बूड़त मोहिँ उतारयौ पार।
नृपति पाइ यह आतम-ज्ञान। राज छाँड़ि कै गयौ उद्यान।
यह लीला जो सुनै-सुनावै। सो हरि-कृपा ज्ञान कौँ पावै।
सुक ज्यौँ राजा कौँ समुझायौ। सूरदास त्यौँही कहि गायौ ॥१२॥
॥४०६॥

राग बिलावल

आपुनपौ आपुन ही मैँ पायौ।
सब्दहि सब्द भयौ उजियारौ, सतगुरु भेद बतायौ।
ज्यौँ कुरंग-नाभी कस्तूरी, ढूँढ़त फिरत भुलायौ।
फिरि चितयौ जब चेतन ह्वै करि, अपनैँ ही तन छायौ।
राज-कुमारि कंठ-मनि-भूषन भ्रम भयौ कहूँ गँवायौ।
दियौ बताइ और सखियनि तब, तनु कौ ताप नसायौ।
सपने माहिँ नारि कौँ भ्रम भयौ, बालक कहूँ हिरायौ।
जागि लख्यौ, ज्यौँ कौ त्यौँ ही है, ना कहुँ गयौ न आयौ।
सूरदास समुझे की यह गति, मनहीँ मन मुसुकायौ।
कहि न जाइ या सुख की महिमा, ज्यौँ गूँगैँ गुर खायौ ॥१३॥
॥४०७॥

॥ चतुर्थ स्कंध समाप्त ॥

पंचम स्कंध

राग बिलावल

हरि-हरि, हरि-हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि-चरननि सुकदेव सिर नाइ। राजा सौं बोल्यौ या भाइ।
कहौं हरि-कथा, सुनौ चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥४०८॥

ऋषभदेव-अवतार *राग बिलावल*

ज्यौं भयौ रिषभदेव-अवतार। कहौं, सुनौ सो अब चित धार।
सुक बरन्यौ जैसैं परकार। सूर कहै ताही अनुसार।
ब्रह्मा स्वायंभुव मनु जायौ। तातैं जन्म प्रियव्रत पायौ।
प्रियव्रत कैं अग्नीध्र सु भयौ। नाभि जन्म ताही तैं लयौ।
नाभि नृपति सुत-हित जग कियौ। जज्ञ-पुरुष तब दरसन दियौ।
बिप्रनि अस्तुति बिबिध सुनाई। पुनि कह्यौ सुनियै त्रिभुवनराई।
तुम सम पुत्र नाभि कैं होइ। कह्यौ, मो सम जग और न कोइ।
मैं हरता - करता - संसार। मैं लैहौं नृप-गृह अवतार।
रिषभदेव तब जनमे आइ। राजा कै गृह बजी बधाइ।
बहुरौ रिषभ बड़े जब भए। नाभि राज दै बन कौं गए।
रिषभ-राज परजा सुख पायौ। जस ताकौ सब जग मैं छायौ।
इंद्र देखि, इरषा मन लायौ। करि कै क्रोध न जल बरसायौ।
रिषभदेव तबहीं यह जानी। कह्यौ, इंद्र यह कहा मन आनी ?
निज बल जोग नीर बरसायौ। प्रजा लोग अतिहीं सुख पायौ।
रिषभ राज सब मन उतसाह। कियौ जयंती सौं पुनि ब्याह।
तासौं सुत निन्यानबै भए। भरतादिक सब हरि-रँग रए।
तिनमैं नव नव-खँड-अधिकारी। नब जोगेस्वर ब्रह्म-बिचारी।
असी-इक कर्म बिप्र कौ लियौ। रिषभ ज्ञान सबही कौं दियौ।
दृस्यमान बिनास सब होइ। साच्छी ब्यापक, नसै न सोइ।
ताही सौं तुम चित्त लगावहु। ताकौं सेइ परम गति पावहु।
ज्ञानी-संगति उपजै ज्ञान। अज्ञानी - सँग बढ़ै अज्ञान।

तातैं संत-संग नित करना। संत-संग सेवौ हरि-चरना।
बहुरौ भरतहिँ दै करि राज। रिषभ ममत्व देह कौ त्याज।
उनमत की ज्यौँ बिचरन लागे। असन-बसन की सुरतिहिँ त्यागे।
कोउ खवावै तौ कछु खाहिँ। नातरु बैठेही रहि जाहिँ।
मूत्र पुरीष अंग लपटावै। गंध बास दस जोजन छावै।
अष्ट-सिद्धि बहुरौ तहँ आईं। रिषभदेव ते मुँह न लगाईं।
राजा रहत हुतौ तहँ एक। भयौ स्त्रावगी रिषभहिँ देखि।
बेद धर्म तजि कै न अन्हावै। प्रजा सकल कौं यहै सिखावै।
अजहूँ स्त्रावग ऐसोहि करैं। ताही कौ मारग अनुसरैं।
अंतर क्रिया रहित नहिँ जानैं। बाहर क्रिया देखि मन मानैं।
बरन्यौ रिषभदेव-अवतार। सूरदास भागवतऽनुसार ॥२॥
॥४०६॥

जड़भरत-कथा *राग बिलावल*

हरि-हरि, हरि-हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
रिषभदेव जब बन कौं गए। नव सुत नवौ-खंड-नृप भए।
भरत सो भरत-खंड कौ राव। करै सदाही धर्मऽरु न्याव।
पालै प्रजा सुतनि की नाईं। पुरजन बसैं सदा सुख पाई।
भरतहु दै पुत्रनि कौं राज। गए बन कौं तजि राज-समाज।
तहाँ करी नृप हरि की सेव। भए प्रसन्न देवनि के देव।
एक दिवस गंडकि-तट जाइ। करन लगे सुमिरन चितलाइ।
गर्भवती हिरनी तहँ आई। पानी सो पीवन नहिँ पाई।
सुनि कै सिंह-भयान आवाज। मारि फलाँग चली सो भाज।
कूदत ताकौ तन छुटि गयौ। ताके छौना सुंदर भयौ।
भरत दया ता ऊपर आई। ल्याए आस्रम ताहि लिवाई।
पोषैं ताहि पुत्र की नाईं। खाहिँ आप तब. ताहि खवाई।
सोवैं तव जब वाहि सुवावैं। तासौं क्रीड़त बहु सुख पावैं।
सुमिरन भजन बिसारि सब गयौ। इक दिन मृगछौना कहुँ गयौ।
भरत मोह-बस ताकैं भयौ। सब दिन बिरह-अगिनि अति तयौ।
संध्या समय निकट नहिँ आयौ। ताके ढूँढ़न कौं उठि धायौ।
पग कौ चिन्ह पृथी पर देख। कह्यौ, पृथी धनि जहँ पग-रेख।
बहुरौ देख्यौ ससि की ओर। तामैं देखि स्यामता-कोर।

कहन लग्यौ, मम सुत ससि-गोद। ता सेती ससि करत बिनोद।
ढूँढ़त-ढूँढ़त बहु स्रम पायौ। पै मृगछौना नहिँ दरसायौ।
मृग कौ ध्यान हृदय रहि गयौ। भरत देह तजि कै मृग भयौ।
पूरब जनम ताहि सुधि रही। आप-आप सौँ तब यौँ कही।
मैँ मृगछौना मैँ चित दयौ। तातैँ मैँ मृगछौना भयौ।
अब काहू सौँ संग न करौँ। हरि-चरनारबिंद उर धरौँ।
संग मृगनिहू कौ नहिँ करै। हरी घासहू सो नहिँ चरै।
सूखे पात और तृन खाइ। या बिधि डाख्यौ जनम बिताइ।
मृग-तन तजि, ब्राह्मन-तन पायौ। पूर्ब-जन्म-सुमिरत तहँ आयौ।
मन मैँ यहै बात ठहराई। होइ असंग भजौँ जदुराई।
पिता पढ़ावै सो नहिँ पढ़ै। मन मैँ राम-नाम नित रढ़ै।
पिता सो तासु काल-बस भयौ। भ्रातनि हूँ स्रम बहु बिधि ठयौ।
पै सो हरि-हरि सुमिरत रहै। और कछू बिद्या नहिँ गहै।
जड़-स्वरूप सौँ जहँ-तहँ फिरै। असन-बसन की सुधि नहिँ धरै।
जैसौ देहिँ सो तैसौ खाइ। नाहिँ तौ भूखौ ही रहि जाइ।
कृषि-रच्छक भाइनि तब कीन्हौ। उन तहँ हरि-चरननि-चित दीन्हौ।
तहँही अन्न देहिँ पहुँचाइ। जौ न देहिँ भूखौ रहि जाइ।
भील-राव निज लोगनि कह्यौ। मैँ काली सौँ यह प्रन गह्यौ।
तुव प्रसाद मम गृह सुत होइ। नर बलि देहुँ, भयौ बर सोइ।
तुम काहूँ धन दै लै आवहु। मेरे मन की आस पुजावहु।
ते खोजत-खोजत तहँ आए। जहँ जड़भरत कृषी मैँ छाए।
देख्यौ भरत तरुन अति सुंदर। थूल सरीर, रहित सब दुंदर।
निज नृप पास बाँधि लै आए। नृप तिहिँ देखि बहुत सुख पाए।
बिप्रनि कह्यौ याहि अन्हवावहु। याकैँ अंग सुगंध लगावहु।
देवी-मंदिर तिहिँ लै गए। खड्ग राव के कर मैँ दए।
जब राजा तिहिँ मारन लग्यौ। देवी काली-मन डगडग्यौ।
हरि-जन मारैँ हत्या होइ। ज्यौँ नहिँ मरै करौँ अब सोइ।
देवी निकसि राव कौँ मार्‌यौँ। भरत-साथ यह बचन उचार्‌यौ।
जानैँ बिना चूक यह भई। मैँ उनसौँ ऐसी नहिँ कही।
बिप्रनि बेद-धर्म नहिँ जान्यौ। तातैँ उन ऐसौ बलि ठान्यौ।
यह सुनि ह्वाँ तैँ भरत सिधायौ। राजा सौँ सुक कहि समुझायौ।
नहीँ त्रिलोकी ऐसौ कोइ। भक्तनि कौँ दुख दै सकै जोइ।

ज्यौं सुक नृप सौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौं ही कहि गायौ ॥३॥
॥४१०॥

जड़भरत-रहूगण-संवाद *राग बिलावल*

हरि-हरि, हरि-हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
नृपति रहूगन कैं मन आई। सुनियै ज्ञान कपिल सौं जाई।
चढ़ि सुख-आसन नृपति सिधायौ। तहाँ कहार एक दुख पायौ।
भरत पंथ पर देख्यौ खरौ। वाकैं बदले ताकौं धरौ।
तिहिं सौं भरत कछू नहिं कह्यो। सुख-आसन काँधे पर गह्यो।
भरत चलै पथ जीव निहार। चलै नहीं ज्यौं चलैं कहार।
नृपति कह्यौ मारग सम आह। चलत न क्यौं तुम सूधैं राह।
कह्यौ कहारनि, हमैं न खोरि। नयौ कहार चलत पग झोरि।
कह्यौ नृपति, मोटौ तू आहि। बहुत पंथहू आयौ नाहिं।
तू जो टेढ़ौ-टेढ़ौ चलत। मरिबे कौं नहिं हिय भय धरत।
ऐसी भाँति नृपति बहु भाषी। सुनि जड़ भरत हृदय महँ राखी।
मम मन लाग्यौ करन विचार। हर्ष-सोक तनु कौ व्यवहार।
जैसौ करे सो तैसौ लहै। सदा आतमा न्यारौ रहै।
नृप कह्यौ, मैं उत्तर नहिं पायौ। मेरौ कह्यौ न मन मैं ल्यायौ।
नृप-दिसि देखि भरत मुसुकाइ। बहुरौ या बिधि कह्यौ समुझाइ।
तुम कह्यौ, तैं है बहुत मोटायौ। अरु बहु मारग हू नहिं आयौ।
टेढ़ौ-टेढ़ौ तू क्यौं जात। सुनौ नृपति, मोसौं यह बात।
जिय करि कर्म, जन्म बहु पावै। फिरत-फिरत बहुतै स्रम आवै।
अरु अजहूँ न कर्म परिहरे। जातैं याकौ फिरिबौ टरे।
तन स्थूल अरु दूबर होइ। परमातम कौं ये नहिं दोइ।
तनु मिथ्या, छन-भंगुर जानौ। चेतन जीव, सदा थिर मानौ।
जिय कौं सुख-दुख तन सँग होइ। जौ बिचरै तन कैं सँग सोइ।
देहऽभिमानी जीवहिं जानै। ज्ञानी तन अलिप्त करि मानै।
तुम कह्यौ मरिबे की तोहिं चाह। सब काहू कौं है यह राह।
कहा जानि तुम मोसौं कह्यो ? यह सुनि, रिषि-स्वरूप नृप लह्यो।
तजि सुखपाल रह्यौ गहि पाइ। मैं जान्यौ, तुम हौ रिषिराइ।
भृगु, कै दुर्वासा तुम होहु। कपिल, कै दत्त, कहौ तुम मोहु।
कबहूँ सुर, कबहूँ नर होइ। कबहूँ राव रंक जिय सोइ।

जीव कर्म करि बहु तन पावै। अज्ञानी तिहिँ देखि भुलावै।
ज्ञानी सदा एक रस जानै। तन कैँ भेद भेद नहिँ मानै।
आतम, अजन्म सदा अबिनासी। ताकौँ देह-मोह बड़ फाँसी।
रिषभ-सुपुत्र, भरत मम नाम। राज छाँड़ि, लियौ बन-बिस्राम।
तहँ मृगछौना सौँ हित भयौ। नर-तन तजि कै मृग-तन लयौ।
अब मैँ जन्म बिप्र कौ पायौ। सब तजि, हरि-चरननि चित लायौ।
तातैँ ज्ञानी मोह न करै। तन-कुटुंब सौँ हित परिहरै।
जब लगि भजै न चरन मुरारि। तब लगि होइ न भव-जल पार।
भव-जल मैँ नर बहु दुख लहै। पै बैराग-नाव नहिँ गहै।
सुत-कलत्र दुर्बचन जो भाषैं। तिन्हैँ मोह-बस मन नहिँ राखै।
जो वै बचन और कोउ कहै। तिनकौँ सुनि कै सहि नहिँ रहै।
पुत्र अन्याइ करै बहुतेरे। पिता एक अवगुन नहिँ हेरै।
और जो एक करै अन्याइ। तिहिँ बहु अवगुन देह लगाइ।
इक मन अरु ज्ञानेंद्री पाँच। नर कौँ सदा नचावैँ नाच।
ज्यौँ मग चलत चोर धन हरैँ। त्यौँ ये सुकृत-बनहिँ परिहरैँ।
तस्कर ज्यौँ सुक्रित-धन लेहिँ। अरु हरि-भजन करन नहिँ देहिँ।
ज्ञानी इनकौ संग न करै। तस्कर जानि दूरि परिहरै।
नृप यह सुनि भरतहिँ सिर नाइ। बहुरि कह्यौ या भाँति सुनाइ।
नर सरीर सुर ऊपर आहि। लहै ज्ञान कहियै कहा ताहि?
तातैँ तुमकौँ करत दँडौत। अरु सब नरहूँ कौ परिनौत।
सुक कह्यौ सुनि यह नृपति सुजान। लह्यौ ज्ञान तजि देहऽभिमान।
जो यह लीला सुनै-सुनावै। सोऊ ज्ञान भक्ति कौँ पावै।
सुकदेव ज्यौँ दियौ नृपहिँ सुनाइ। सूरदास कह्यौ ताही भाइ ॥४॥
॥४११॥

॥ पंचम स्कंध समाप्त ॥

षष्ठ स्कंध

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। आधे पलकहुँ जनि बिसरौ।
सुक हरि-चरननि कैँ सिर नाइ। राजा सौँ बोल्यौ या भाइ।
कहैँ हरि-कथा, सुनौ चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ॥ १॥
॥४१२॥

परीच्छित-प्रश्न *राग बिलावल*

सुक सौँ कह्यौ परीच्छित राइ। भरत गयौ बन, राज बिहाइ।
तहाँ जाइ मृग सौँ चित लायौ। तातैँ मरि फिरि मृग-तन पायौ।
जिनकौँ पाप करत दिन जाइ। ते तौ परैँ नरक मैँ धाइ।
सो छूटै किहिँ बिधि रिषिराई। सूर कहो मोसौँ समुझाइ॥ २॥
॥४१३॥

श्रीशुक-उत्तर *राग बिलावल*

सुकदेव कह्यौ, सुनौ हो राउ। पतित-उधारन है हरि-नाउ।
अंतकाल हरि हरि जिन कह्यौ। ततकालहिँ तिन हरि-पद लह्यौ।
तिन मैँ कहौँ एक की कथा। नारायन कहि उधर्यौ जथा।
ताहि सुनै जो कोउ चितलाइ। सूर तरै सोऊ गुन गाइ॥ ३॥
॥४१४॥

अजामिलोद्धार *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि हरि कहत अजामिल तर्यौ। जाकौ जस सब जग बिस्तर्यौ।
कहौँ सो कथा, सुनौ चित लाइ। कहै-सुनै सो नर तरि जाइ।
अजामिल बिप्र कनौज-निवासी। सो भयौ वृषली कैँ गृहवासी।
जाति-पाँति तिन सब बिसराई। भच्छ-अभच्छ सबै सो खाई।
ता भीलिनि कैँ दस सुत भए। पहिले पुत्र भूलि तिहिं गए।

लघुसुत-नाम नरायन धर्‌यौ। तासैँ हेत अधिक तिन कर्‌यौ।
काल-अवधि जब पहुँची आइ। तब जम दीन्हे दूत पठाइ।
नारायन सुन-नाम उचार्‌यौ। जम-दूतनि हरि-गननि निवार्‌यौ।
दूतनि कह्यौ बड़ौ यह पापी। इन तौ पाप किए हैँ धापी।
बिप्र जन्म इन जूवैँ हार्‌यौ। काहे तैँ तुम हमैं निवार्‌यौ?
गननि कह्यौ, इन नाम उचार्‌यौ। नाम-महातम तुम न बिचार्‌यौ।
ज्ञान-अज्ञान नाम जो लेइ। हरि बैकुंठ-बास तिहिँ देइ।
बिन जानैँ कोउ औषध खाइ। ताकौ रोग सकल नसि जाइ।
त्यौँ जो हरि बिन जानैँ कहै। सो सब अपने पापनि दहै।
अगिनि बिना जानैँ जो गहै। तातकाल सो ताकौँ दहै।
दोइ पुरुष कौ नाम इक होइ। एक पुरुष कौँ बोलै कोइ।
दोऊ ताकी ओर निहारैँ। हरिहू ऐसैँ भाव बिचारैँ।
हाँसी मैँ कोउ नाम उचारे। हरि जू ताकौँ सत्य बिचारैँ।
भयहूँ करि कोउ लेइ जो नाम। हरि जू देहि ताहि निज-धाम।
जा बन केहरि-सब्द सुनाइ। ता बन तैँ मृग जाहिँ पराइ।
नाम सुनत त्यौँ पाप पराहिँ। पापी हू बैकुंठ सिधाहिँ।
यह सुनि दूत चले खिसियाइ। कह्यौ तिन धर्मराज सौँ जाइ।
अब लौँ हम तुमहीँ कौँ जानत। तुमहीँ कौँ दँड-दाता मानत।
आजु गह्यौ हम पापी एक। तिन भय मान्यौ हमकौ देख।
नारायन सुत-हेत उचार्‌यौ। पुरुष चतुरभुज हमैं निवार्‌यौ।
उनसौँ हमारौ कछु न बसायौ। तातैँ तुमकौँ आनि सुनायौ।
औरौ डँड-दाता कोउ आहि। हमसौँ क्यौँ न बतावौ ताहि?
धर्मराज करि हरि कौ ध्यान। निज दूतनि सौँ कह्यौ बखान।
नारायन सबके करतार। पालत अरु पुनि करत सँहार।
ता सम दुतिया और न कोइ। जो चाहै सो साजै सोइ।
ताकौ उन जब नाम उचार्‌यौ। तब हरि-दूतनि तुम्हैँ निवार्‌यौ।
हरि के दूत जहाँ-तहाँ रहैँ। हम तुम उनकी सोध न लहैँ।
जो-जो मुख हरि-नाम उचारैँ। हरि-गन तिहिँ-तिहिँ तुरत उधारैँ।
नाम-महातम तुम नहिँ जानौ। नाम-महातम सुनौ, बखानौँ।
ज्यौँ-त्यौँ कोउ हरि-नाम उच्चरै। निस्चय करि सो तरै पै तरै।
जाके गृह मैँ हरि-जन जाइ। नाम-कीरतन करै सो गाइ।
जद्यपि वह हरि-नाम न लेइ। तद्यपि हरि तिहिँ निज-पद देइ।

कैसौहू पापी किन होइ। राम-नाम मुख उचरै सोइ।
तुम्हरौ नहीँ तहाँ अधिकार। मैँ तुमसैाँ यह कहैाँ पुकार।
अजामील हरि-दूतनि देखि। मन मैं कीन्हौ हर्ष बिसेषि।
जम-दूतनि कौँ इनहिँ निवार्यो। वा भय तैँ मोहिँ इनहिँ उबार्यौ।
तब मन माहिँ आनि बैराग। पुत्र-कलत्र-मोह सब त्याग।
हरि-पद सैाँ उन ध्यान लगायौ। तातकाल बैकुंठ सिधायौ।
अंतकाल जो नाम उचारै। सो सब अपने पापनि जारै।
ज्ञान-बिराग तुरत तिहिँ होइ। सूर बिष्नु-पद पावै सोइ॥ ४॥
॥४१५॥

श्री गुरु-महिमा *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि-गुरु एक रूप नृप जानि। यामैँ कछु संदेह न आनि।
गुरु प्रसन्न, हरि परसन होइ। गुरु कैँ दुखित दुखित हरि जोइ।
कहैाँ सो कथा, सुनौ चित धार। कहै-सुनै सो तरै भव पार।
इंद्र एक दिन सभा मँझारि। बैठ्यौ हुतो सिंहासन डारि।
सुर, रिषि, सब गँधर्ब तहँ आए। पुनि कुबेरहू तहाँ सिधाए।
सुर-गुरुहू तिहिँ औसर आयौ। इंद्र न तिहिँ उठि सीस नवायौ।
सुर-गुरु, जानि गर्ब तिहिँ भयौ। तहँ तैँ फिरि निज आस्रम गयौ।
सुर-पति तब लाग्यौ पछितान। मैँ यह कहा कियौ अज्ञान।
पुनि निज गुरु-आस्रम चलि गयौ। पै सुर-गुरु दरसन नहिँ दयौ।
यह सुनि असुर इंद्र-पुर आइ। कियौ इंद्र सैाँ जुद्ध बनाइ।
इंद्र-सहित तब सब सुर भागे। आस्रम अपने सबहिनि त्यागे।
पुनि सब सुर ब्रह्मा पै जाइ। कह्यौ बृत्तांत सकल, सिर नाइ।
ब्रह्मा कह्यौ, बुरौ तुम कियौ। निज गुरु कौँ आदर नहिँ दियौ।
अब तुम बिस्वरूप गुरु करौ। ता प्रसाद या दुख कौँ तरौ।
सुरपति बिस्वरूप पै जाइ। दोउ कर जोरि कह्यौ सिर नाइ।
कृपा करौ, मम प्रोहित होहु। कियौ बृहस्पति मो पर कोहु।
कह्यौ, पुरोहित होत न भलौ। बिनसि जात तेज-तप सकलौ।
पै तुम बिनती बहु बिधि करी। तातैँ मैँ मन मैँ यह धरी।
यह कहि इंद्रहिँ जज्ञ करायौ। गयौ राज अपनौ तिन पायौ।
असुरनि बिस्वरूप सैाँ कह्यौ। भली भई, तू सुरगुरु भयौ।

तुव ननसाल माहिँ हम आहिँ। आहुति हमैँ देत क्यौँ नाहिँ ?
तिहिँ निमित्त तिन आहुति दई। सुरपति बात जानि यह लई।
करि कै क्रोध तुरत तिहिँ मार्‍यौ। हत्या हित यह मंत्र बिचार्‍यौ।
चारि अंस हत्या के किए। चारौँ अंस बाँटि पुनि दिए।
एक अंस पृथ्वी कौँ दयौ। ऊसर तामैँ तातैँ भयौ।
एक अंस बृच्छनि कौँ दीन्हैौँ। गौँद होइ प्रकास तिन कीन्हैौँ।
एक अंस जल कौँ पुनि दयौ। ह्वैकै काई जल कौँ छयौ।
एक अस सब नारिनि पायौ। तिनकौँ रजस्वला दरसायौ।
त्वष्टा बिस्वरूप कौ बाप। दुखित भयौ सुनि सुत-संताप।
क्रुद्ध होइ इक जटा उपारी। बृत्रासुर उपज्यौ बल भारी।
सो सुरपति कौँ मारन धायौ। सुरपति हू ता सन्मुख आयौ।
जेतक सस्त्र सो किए प्रहार। सो करि लिए असुर आहार।
तब सुरपति मन मैँ भय मान। गयो तहाँ जहाँ श्री भगवान।
नमस्कार करि बिनय सुनाई। राखि राखि असरन-सरनाई।
कह्यौ भगवान, उपाय न आन। रिषा दधीचि-हाड़ लै दान।
ताकौ तू निज बज्र बनाउ। मरिहै असुर ताहि कैँ घाउ।
तब सुरपति रिषि कैँ ढिग जाइ। करी बिनय बहु सीस नवाइ।
बहुरि कही अपनी सब कथा। हरि जो कह्यौ, कह्यौ पुनि तथा।
तिन कह्यौ देह-मोह अति भारी। सुर-पति, तब यह देखि बिचारी।
यह तन क्यौँ हूँ दियौ न जावै। और देत कछु मन नहिँ आवै।
पै यह अंत न रहिहै भाई। परहित देहु तौ होइ भलाई।
तन दैबे तैँ नाहिँ न भजैँ। जोग धारना करि इहि तजैँ।
गउ चटाइ, मम त्वचा उपारौ। हाड़नि को तुम बज्र सँवारौ।
सुरपति रिषि की आज्ञा पाइ। लिए हाड़, कियौ बज्र बनाइ।
गा-मुख असुचि तबहिँ तैँ भयौ। रिषि सुकदेव नृपति सौँ कह्यौ।
इंद्र आइ तब असुर प्रचार्‍यौ। कियौ युद्ध पै असुर न हार्‍यौ।
इंद्र-हाथ तैँ बज्र छिनाइ। मार्‍यौ ऐरावत कौँ धाइ।
ऐरावत घायल ह्वै गयौ। तब बृत्रासुर कौँ सुख भयौ।
ऐरावत अंमृत कैँ प्याए। भयो सचेत, इंद्र तब धाए।
बृत्रासुर कौँ बज्र प्रहार्‍यौ। तिन त्रिसूल सुरपति कौँमार्‍यौ।
लगत त्रिसूल इंद्र मुरझायौ। कर तैँ अपनौ बज्र गिरायौ।
कह्यौ असुर, सुरपति संभारि। लै करि बज्र मोहिँ परहारि।

जौ मरिहैँ तौ सुरपुर जैहैँ। जीते जगत माहिँ जस लैहैँ।
हार-जीति नहिँ जिय कैँ हाथ। कारन-करता आनहिँ नाथ।
हमैँ-तुम्हैँ पुतरी कैँ भाइ। देखत कौतुक बिविध नचाइ।
तब सुरपति लै वज्र संहारयौ। जै-जै सब्द सुरनि उच्चारयौ।
पै इंद्रहिँ संतोष न भयौ। ब्राह्मन-हत्या कैँ दुख तयौ।
सो हत्या तिहिँ लागी धाइ। छिप्यौ सो कमलनाल मैँ जाइ।
सुरगुरु जाइ तहाँ तैँ ल्यायौ। तासैँ हरि-हित जज्ञ करायौ।
जज्ञ तैँ हत्या गई बिलाइ। पुनि नृप भयौ इंद्रपुर आइ।
नृप यह सुनि सुक सैँ यौँ कही। ज्ञान-बुद्धि असुरहिँ क्यौँ भई ?
सुक कह्यौ सुनौ परीच्छित राइ। देहुँ तोहिँ बृत्तांत सुनाइ।
चित्रकेतु पृथ्वीपति राउ। सुत-हित भयौ तासु चित-चाउ।
जद्यपि रानी बरी अनेक। पै तिनतैँ सुत भयौ न एक।
ता गृह रिषि अंगिरा सिधाए। अर्धासन दै तिन बैठाए।
रिषि सैँ नृप निज बिथा सुनाई। कहौ मोहिँ, सो करौ उपाई।
रिषि कह्यौ, पुत्र न तेरैँ होइ। होइ कहूँ, तौ दुख दै सोइ।
नृप कह्यौ, एक बार सुत होइ। पाछैँ होनी होइ सो होइ।
रिषि ता नृप सैँ यज्ञ करायौ। दै प्रसाद यह बचन सुनायौ।
जा रानी कैँ तू यह दैहै। ता रानी सैँती सुत ह्वैहै।
पटरानी कैँ सो नृप दियौ। तिन प्रनाम करि भोजन कियौ।
रिषि-प्रसाद तैँ तिन सुत जायौ। सुत लहि दंपति अति सुख पायौ।
बिप्र-जाचकनि दीन्हौ दान। कियौ उत्सव, कहा करौँ बखान।
ता रानी सैँ नृप-हित भयौ। और तियनि कौ मन अति तयौ।
तिन सबहिनि मिलि मंत्र उपायौ। नृपति-कुँवर कैँ जहर पियायौ।
बहुत बार भई, कुँअर न जाग्यौ। दासी सैँ रानी तब माँग्यौ।
ल्याउ कुँअर कैँ बेगि जगाइ। दूध प्याइ कै बहुरि सुवाइ।
दासी कुँवर जगावन आई। देख्यौ कुँवर मृतक की नाईं।
दासी बालक मृतक निहारि। परी धरनि पर खाइ पछारि।
रानी तब तहँ आई धाइ। सुत मृत देखि परी मुरझाइ।
पुनि रानी जब सुरति सँभारी। रुदन करन लागी अति भारी।
रुदन सुनत राजा तहँ आयौ। देखि कुँवर कैँ अति दुख पायौ।
कबहूँ मुर्छित ह्वै नृप परै। कबहुँक सुत कैँ अंकम भरै।
रिषि नारद, अँगिरा तहँ आए। राजा सैँ ये बचन सुनाए।

को तू, को यह, देखि बिचार। स्वप्न-स्वरूप सकल संसार।
सोयौ होइ सो इहिं सत मानै। जो जागै सो मिथ्या जानै।
तातैं मिथ्या-मोह बिसारि। श्रीभगवान-चरन उर धारि।
हम तुम सौं पहिलैं ही कही। नृप सो बात आज भई सही।
नृप कौं सुनि उपज्यौ बैराग। बन कौं गयौ राज सब त्याग।
बन मैं जाइ तपस्या करी। मरि गंधर्ब-देह तिन धरी।
इक दिन सो कैलास सिधायौ। सिव कौ दरसन तहँ तिहिं पायौ।
उमा नगन देखी तिहिं राइ। उन दियौ साप ताहि या भाइ।
तू अब असुर-देह धरि जाइ। मेरो कह्यौ न मिथ्या आइ।
उमा साप ताकौं जब दयौ। बृत्रासुर सो या बिधि भयौ।
हरि की भक्ति बृथा नहिं जाइ। जन्म-जन्म सो प्रगटे आइ।
तातैं हरि-गुरु-सेवा कीजै। मेरौ बचन मानि यह लीजै।
ज्यौं सुक नृप सौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ ॥५॥
॥४१६॥

राग सारंग

गुरु बिनु ऐसी कौन करै ?
माला-तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र धरै।
भवसागर तैं बूड़त राखै, दीपक हाथ धरै।
सूर स्याम गुरु ऐसौ समरथ, छिन मैं लै उधरै ॥ ६ ॥
॥४१७॥

सदाचार-शिक्षा (नहुष की कथा) *राग बिलावल*

सुरपति कौं सँताप जब भयौ। सो सुरपुर भय तैं नहिं गयौ।
नहुष नृपति पै रिषि सब आइ। कह्यौ सुर-राज करौ तुम राइ।
नहुष इंद्र-राजहिं जब पायौ। इंद्रानी कौं देखि लुभायौ।
कह्यौ इंद्रानी मो पै आवै। नृप सौं ताकौ कहा बसावै।
सुरगुरु सौं यह बात सुनाई। अवधि करन तिहिं कहि समुझाई।
सची नृपति सौं यह कहि भाषी। नृप सुनिकै हिरदै मैं राखी।
सची अग्नि कौं तुरत पठायौ। सुरपति दसा देखि सो आयौ।
इंद्रानी सुनि ब्याकुल भई। अवधि घरी ब्यतीत ह्वै गई।
तब तिन ऐसी बुद्धि उपाई। इहिं अंतर सो नहुष बुलाई।
कह्यौ तुम अस्वमेध नहिं किए। रिषि-आज्ञा तैं सुरपति भए।

बिप्रनि पै चढ़ि कै जौ आवहु। तौ तुम मेरौ दरसन पावहु।
नृपति रिषिनि पर ह्वै असवार। चल्यौ तुरत सची कैँ द्वार।
काम अंध कछु रहि न सँभारि। दुर्बासा रिषि कौँ पग मारि।
सर्प-सर्प कह्यौ बारंबार। तब रिषि दीन्हैा ताकौँ डार।
कह्यौ सर्प तैँ भाष्यौ मोहिँ। सर्प रूप तूही नृप होहि।
जबै साप रिषि सौँ नृप पायौ। तब रिषि-चरनन माथौ नायौ।
इहिँ सराप सौँ मुक्ति ज्यौँ होइ। रिषि कृपालु भाषौ अब सोइ।
कह्यौ जुधिष्ठिर देखे जोइ। तब उधार नृप तेरौ होइ।
नृप ऐसो है परतिय-प्यार। मूरख करै सो बिना बिचार।
ज्यौँ सुक नृप सौँ कहि समुझायौ। सूरदास त्यौँही कह गायौ ॥७॥
॥४१८॥

इंद्र-अहिल्या-कथा *राग बिलावल*

सुरपति गौतम-नारि निहारि। आतुर ह्वै गयौ बिना बिचारि।
काग-रूप करि रिषि गृह आयौ। अर्धनिसा तिहिँ बोल सुनायौ।
गौतम लख्यौ, प्रात है भयौ। न्हान काज सो सरिता गयौ।
तब सुरपति मन माहिँ बिचारी। पतिव्रता है गौतम-नारी।
गौतम-रूप बिना जौ जैयै। ताके साप अग्नि सौँ तैयै।
गौतम-रूप धारि तहँ आयौ। मूर्च्छित भयौ अहिल्या पायौ।
कह्यौ अहिल्या, तू को आहि? बेगि इहाँ तैँ बाहिर जाहि।
इहिँ अंतर गौतम गृह आयौ। इंद्र जानि यह बचन सुनायौ।
मूरख तैँ पर-तिय मन लायौ। इंद्रानी तजिकै ह्याँ आयौ।
इक भग की तोहिँ इच्छा भई। भग सहस्र मैँ तोकौँ दई।
इंद्र शरीर सहस भग पाइ। छप्यौ सो कमल-नाल मैँ जाइ।
काल बहुत ता ठौर बितायौ। सुरगुरु रिषिनि सहित तहँ आयौ।
जज्ञ कराइ प्रयाग न्हवायौ। तौहूँ पूरब तन नहिँ पायौ।
तब सब रिषिनि दई आसीस। भग तैँ नेत्र करौ जगदीस।
भग अस्थान नेत्र तब भए। रिषि इंद्रहिँ लै सुरपुर गए।
परतिय-मोह इंद्र दुख पायौ। सो नृप मैँ तोहिँ कहि समुझायौ।
परतिय-मोह करै जो कोइ। जीवत नरक परत है सोइ।
सुक नृप सौँ ज्यौँ कहि समुझायौ। सूरदास त्यौँहीँ कहि गायौ ॥८॥
॥४१९॥

११ षष्ठ स्कंध समाप्त

सप्तम स्कंध

श्री नृसिंह-अवतार *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि-चरननि सुकदेव सिर नाइ। राजा सौं बोल्यौ या भाइ।
कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥४२०॥

राग बिलावल

नरहरि, नरहरि, सुमिरन करौ। नरहरि-पद नित हिरदय धरौ।
नरहरि-रूप धर्‌यौ जिहिं भाइ। कहौं सो कथा, सुनौ चित लाइ।
हरि जब हिरन्याच्छ कौं मार्‌यौ। दसन-अग्र पृथ्वी कौं धार्‌यौ।
हिरनकसिप सौं दिति कह्यौ आइ। भ्राता-बैर लेहु तुम जाइ।
हिरनकसिप दुस्सह तप कियौ। ब्रह्मा आइ दरस तब दियौ।
कह्यौ तोहिं इच्छा जो होइ। माँगि लेहि हमसौं बर सोइ।
राति-दिवस नभ-धरनि न मरौं। अस्त्र-सस्त्र-परहार न डरौं।
तेरी सृष्टि जहाँ लगि होइ। मोकौं मारि सकै नहिं कोइ।
ब्रह्मा कह्यौ, ऐसियै होइ। पुनि हरि चाहै करिहै सोइ।
यह कहि ब्रह्मा निज पुर आए। हिरनकसिप निज भवन सिधाए।
भवन आइ त्रिभुवनपति भए। इंद्र, बरुन, सबही भजि गए।
ताकौ पुत्र भयौ प्रहलाद। भयौ असुर-मन अति अहलाद।
पाँच बरस की भई जब आइ। संडामर्कहिं लियौ बुलाइ।
तिनकैं सँग चटसार पठायौ। राम-नाम सौं तिन चित लायौ।
संडामर्क रहे पचि हारि। राजनीति कहि बारंबार।
कह्यौ प्रहलाद, पढ़त मैं सार। कहा पढ़ावत और जँजार।
जब पाँड़े इत-उत कहुँ गए। बालक सब इकठौरे भए।
कह्यौ, "यह ज्ञान कहाँ तुम पायौ?" "नारद माता-गर्भ सुनायौ"।
सबनि कह्यौ, देउ हमैं सिखाइ। सबहिनि कैं मन ऐसी आइ।
कह्यौ सबनि सौं तब समुझाइ। सब तजि, भजौ चरन रघुराइ।

रामहिं राम पढ़ौ रे भाई। रामहिँ जहँ-तहँ होत सहाई।
इहाँ कोउ काहू कौ नाहीँ। रिन-संबंध मिलन जग माहीँ।
काल-अवधि जब पहुँचै आइ। चलत बार कोउ संग न जाइ।
सदा सँघाती श्री जदुराइ। भजियै ताहि सदा लव लाइ।
हर्त्ता - कर्त्ता आपै सोइ। घट-घट व्यापि रह्यौ है जोइ।
तातैँ द्वितिया और न कोइ। ताके भजैँ सदा सुख होइ।
दुर्लभ जन्म सुलभ ही पाइ। हरि न भजै सो नरकहिँ जाइ।
यह जिय जानि विषय परिहरौ। रामहि-राम सदा उच्चरौ।
सत संबत मानुष की आइ। आधा तौ सोवत ही जाइ।
कछु बालापन ही मैँ बीतै। कछु बिरधापन माहिँ बितीतै।
कछु नृप-सेवा करत बिहाइ। कछु इक बिषय-भोग मैँ जाइ।
ऐसैँ हीँ जो जनम सिराइ। विनु हरि-भजन नरक महँ जाइ।
बालपनौ गए ज्वानी आवै। वृद्ध भए मूरख पछितावै।
तीनौँपन ऐसैँहीँ जाइ। तातैँ अबहिँ भजौ जदुराइ।
बिषै-भोग सब तन मैँ होइ। बिनु नर-जन्म भक्ति नहिँ होइ।
जौ न करै तौ पसु सम होइ। तातैँ भक्ति करौ सब कोइ।
जब लगि काल न पहुँचै आइ। हरि की भक्ति करौ चित लाइ।
हरि व्यापक है सब संसार। ताहि भजौ अब सोचि-बिचार।
सिसु, किसोर, बिरधौ तनु होइ। सदा एकरस आतम सोइ।
ऐसौ जानि मोह कौँ त्यागौ। हरि-चरनारबिंद अनुरागौ।
माटी मैँ ज्यौँ कंचन परै। त्यौँहीँ आतम तन संचरै।
कंचन लै ज्यौँ माटी तजै। त्यौँ तन-मोह छाँड़ि, हरि भजै।
नर-सेवा तैँ जौ सुख होइ। छनभंगुर थिर रहै न सोइ।
हरि की भक्ति करौ चित लाइ। होइ परम सुख, कबहुँ न जाइ।
ऊँच-नीच हरि गिनत न दोइ। यह जिय जानि भजौ सब कोइ।
असुर होइ, भावै सुर होइ। जो हरि भजै पियारौ सोइ।
रामहिँ राम कहौ दिन-रात। नातरु जन्म अकारथ जात।
सौ बातनि की एकै बात। सब तजि भजौ जानकी-नाथ।
सब चेटुअनि मन ऐसी आई। रहे सबै हरि-पद चित लाई।
हरि-हरि नाम सदा उच्चारैँ। बिद्या और न मन मैँ धारैँ।
तब संडामर्का संकाइ। कह्यौ असुरपति सौँ यौँ जाइ।
तुव सुत कौँ पढ़ाइ हम हारे। आपु पढ़ै नहिँ, और बिगारै।

राम-नाम नित रटिबौ करै। राजनीति नहिं मन मैं धरै।
तातैं कही तुम्हैं हम आइ। करिबे होइ सु करौ उपाइ।
हरिनकसिप तब सुतहिं बुलाइ। कछुक प्रीति, कछु डर दिखराइ।
बहुरौ गोद माहिँ बैठार। कह्यौ, पढ़े कहा बिद्या-सार ?
"सार बेद चारौं कौ जोइ। छेऊ सास्त्र-सार पुनि सोइ।
'सर्व पुरान माहिँ जो सार। राम नाम मैं पढ़्यौ बिचार।"
कह्यौ, याहि ले जाउ उठाइ। सुमिरत मो रिपु कौं चित लाइ।
मेरी ओर न कछू निहारै। याकौं पावक भीतर डारौ।
जौ ऐसी करतहुँ नहिं मरै। डारि देहु गज मैमत-तरैं।
पर्वत सौं इहिं देहु गिराइ। मरै जौन बिधि मारौ जाइ।
नृप-आज्ञा लयौ कुँवर उठाइ। कुँवर रह्यौ हरि-पद चित लाइ।
असुर चले तब कुँवर लिवाइ। हरि जू ताकी करी सहाइ।
असुरनि गिरि तैं दियौ गिराइ। राखि लियौ तहँ त्रिभुनराइ।
पुनि गज मैमत आगैं डारयौ। राम-नाम तब कुँवर उचारयौ।
गज दोउ दंत टूटि धर परे। देखि असुर यह अचरज डरे।
बहुरौ दीन्हे नाग ढुकाइ। जिनकी ज्वाला गिरि जरि जाइ।
हरि जू तहँ हूँ करी सहाइ। नाँग रहे सिर नीचैं नाइ।
पुनि पावक मैं दियौ गिराइ। हरि जू ताकी करी सहाइ।
करैं उपाइ सो बिरथा जाइ। तब सब असुर रहे खिसिआइ।
कह्यौ असुर-पति सौं उन जाइ। मरत नहीं बहु किए उपाइ।
हम तौ बहुत भाँति पचिहारे। इन तौ रामहिं नाम उचारे।
नृप कह्यौ' "मंत्र-जंत्र कछु आहि। कै छल करत कछू तू आहि।
'तोकौं कौन बचावत आइ। सो तू मोकौं देहि बताइ"।
"मंत्र-जंत्र मेरैं हरि-नाम। घट-घट मैं जाकौ बिस्राम।
'जहाँ-तहाँ सोइ करत सहाइ। तासौं तेरी कछु न बसाइ"।
कह्यौ, "कहाँ सो मोहिं बताइ। ना तरु तेरौ जिय अब जाइ"।
"सो सब ठौर"; "खंभहूँ होइ ?" कह्यौ प्रहलाद, "आहि, तू जोइ।
हिरनकसिप क्रोधहिं मन धारयौ। जाइ खंभ कौं मुष्टिक मारयौ।
फटि तब खंभ भयौ द्वै फारि। निकसे हरि नरहरि-बपु धारि।
देखि असुर चक्रित ह्वै गयौ। बहुरि गदा लै सन्मुख भयौ।
हरि तासौं कियौ जुद्ध बनाइ। तब सुर मुनि सब गए डराइ।
संध्या समय भयो जब आइ। हरि जू ताकौं पकरयौ धाइ।

निज जंघनि पर ताहि पछार्यौ। नख-प्रहार तिहिँ उदर बिदार्यौ।
जै-जैकार दसौँ दिसि भयौ। असुर देह तजि, हरि-पुर गयौ।
ब्रह्मादिक सब रहे अरगाइ। क्रोध देखि कोउ निकट न जाइ।
बहुरौ ब्रह्मा सुरनि समेत। नरहरि जू कैँ जाइ निकेत।
करि दंडवत बिनय उच्चारी। "तुम अनंत बिक्रम बनवारी।
'तुमही करत त्रिगुन बिस्तार। उतपति, थिति, पुनि करत सँहार।
करौ छमा कियौ असुर-सँहार।" गयौ न क्रोध, गयौ सो निहार।
महादेव पुनि बिनय उचारी। "नमो-नमो भक्तनि-भयहारी।
'भक्त-हेत तुम असुर संहारौ। श्री नरहरि, अब क्रोध निवारौ"।
क्रोध न गयौ, तब ऐसैँ कह्यौ। "छमौ प्रलय कौ समय न भयौ"।
तबहूँ गयौ न क्रोध-बिकार। महादेव हू फिरे निहार।
बहुरि इंद्र अस्तुति उच्चारी। "मुयौ असुर, सुर भए सुखारी।
'ह्वैहैँ जज्ञ अब देव मुरारी। छमियै क्रोध सुरनि सुखकारी"।
पुनि लछमी यौँ बिनय सुनाई। "डरौँ देखि यह रूप नवाई।
'महाराज, यह रूप दुरावहु। रूप चतुर्भुज मोहिँ दिखावहु"।
बरुन, कुबेरादिक पुनि आइ। करी बिनय तिनहूँ बहु भाइ।
तौहू क्रोध छमा नहिँ भयौ। तब सब मिलि प्रहलादहिँ कह्यौ।
तुम्हरैँ हेत लियौ अवतार। अब तुम जाइ करौ मनुहार।
तब प्रहलाद निकट-हरि आइ। करि दंडवत पर्यौ गहि पाइ।
तब नरहरि जू ताहि उठाइ। ह्वै कृपाल बोले या भाइ।
"कहु जो मनोरथ तेरौ होइ। छाँड़ि बिलंब करौँ अब सोइ।"
"दीनानाथ, दयाल, मुरारि। मम हित तुम लीन्हौ अवतार।
'असुर असुचि है मेरी जाति। मोहिँ सनाथ कियौ सब भाँति।
'भक्त तुम्हारी इच्छा करैँ। ऐसे असुर किते संहरैँ।
'भक्तनि हित तुम धारी देह। तरिहैँ गाइ-गाइ गुन एह।
'जग-प्रभुत्व प्रभु, देख्यौ जोइ। सपन-तुल्य छनभंगुर सोइ।
'इंद्रादिक जातैँ भय कर्‌यौ। सो मम पिता मृतक ह्वै पर्‌यौ।
'साधु-संग प्रभु, मोकौँ दीजै। तिहि संगति निज भक्ति करीजै।
'और न मेरी इच्छा कोइ। भक्ति अनन्य तुम्हारी होइ।
'और जो मो पर किरपा करौ। तौ सब जीवनि कौँ उद्धरौ।
'जो कहौ, कर्मभोग जब करिहैँ। तब ये जीव सकल निस्तरिहैँ।
'मम कृत इनके बदलैँ लेहु। इनके कर्म सकल मोहिँ देहु।

'मोकौं नरक माहिँ ले डारौ। पै प्रभु जू, इनकौं निस्तारौ।"
पुनि कह्यौ, "जीव दुखित संसार। उपजत-बिनसत बारंबार।
'बिना कृपा निस्तार न होइ। करौ कृपा, मैं माँगत सोइ।
'प्रभु, मैं देखि तुम्हैं सुख पावत। पै सुर देखि सकल डर पावत।
'तातैं महा भयानक रूप। अंतर्धान करौ सुर-भूप।"
हरि कह्यौ, "मोहिं बिरद की लाज। करौ मन्वंतर लौं तुम राज।
'राज-लच्छमी-मद नहिं होइ। कुल इकीस लौं उधरै सोइ।
'जो मम भक्त के मग मैं जाइ। होइ पवित्र ताहि परसाइ।
'जा कुल माहिँ भक्त मम होइ। सप्त पुरुष लौं उधरै सोइ।"
पुनि प्रहलाद राज बैठाए। सब असुरनि मिलि सीस नवाए।
नरहरि देखि हर्ष मन कीन्हौ। अभयदान प्रहलादहिं दीन्हौ।
तब ब्रह्मा बिनती अनुसारी। "महाराज, नरसिंह, मुरारी।
'सकल सुरनि कौ कारज सरौ। अंतर्धान रूप यह करौ।"
तब नरहरि भए अंतर्धान। राजा सौं सुक कह्यौ बखान।
जो यह लीला सुनै-सुनावै। सूरदास हरि भक्ति सो पावै ॥२॥
॥४२१॥

राग रामकली

पढ़ौ भाइ, राम-मुकुंद-मुरारि।
चरन-कमल मन-सनमुख राखौ, कहूँ न आवै हारि।
कहै प्रहलाद सुनौ रे बालक, लीजै जनम सुधारि।
को है हिरनकसिप अभिमानी, तुम्हैं सकै जो मारि।
जनि डरपौ जड़मति काहू सौं भक्ति करौ इकसारि।
राखनहार अहै कोउ औरै, स्याम धरे भुज चारि।
सत्य स्वरूप देव नारायन, देखौ हृदय बिचारि।
सूरदास प्रभु सबमैं व्यापक, ज्यौं धरनी मैं वारि ॥ ३ ॥
॥४२२॥

राग कान्हरौ

जो मेरे भक्तनि दुखदाई।
सो मेरे इहिं लोक बसौ जनि, त्रिभुवन छाँड़ि अनत कहुँ जाई।
सिव-बिरंचि-नारद मुनि देखत, तिनहुँ न मोकौं सुरति दिवाई।
बालक अबल, अजान रह्यौ वह; दिन-दिन देत त्रास अधिकाई।

खंभ फारि, गल गाजि मत्त बल, क्रोधमान छबि बरनि न आई।
नैन अरुन, बिकराल दसन अति, नख सौं हृदय बिदार्‌यौ जाई।
कर जोरे प्रहलाद जो बिनवै बिनय सुनौ असरन-सरनाई!
अपनी रिस निवारि प्रभु, पितु मम अपराधी, सो परम गति पाई।
दीनदयाल, कृपानिधि, नरहरि, अपनौ जानि हियैं लियौ लाई।
सूरदास प्रभु पूरन ठाकुर, कह्यौ, सकल मैं हूँ नियराई॥ ४॥
॥४२३॥

राग धनाश्री

तब लगि हौं बैकुंठ न जैहौं।

सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी, जब लगि तब सिर छत्र न दैहौं।
मन-बच-कर्म जानि जिय अपनै, जहाँ-जहाँ जन तहँ-तहँ ऐहौं।
निर्गुन-सगुन होइ सब देख्यौ, तोसौं भक्त कहूँ नहिं पैहौं।
मो देखत मो दास दुखित भयौ, यह कलंक हौं कहाँ गँवैहौं!
हृदय कठोर कुलिस तैं मेरौ, अब नहिं दीनदयालु कहैहौं।
गहि तन हिरनकसिप कौ चीरौं, फारि उदर तिहिं रुधिर नहैहौं!
यह हित मनै कहत सूरज प्रभु, इहिं कृति कौ फल तुरत चखैहौं॥५॥
॥४२४॥

राग मारू

ऐसी को सकै करि बिनु मुरारी।

कहत प्रहलाद के धारि नरसिंह बपु, निकसि आए तुरत खंभ फारी।
हिरनकस्यप निरखि रूप चकित भयौ, बहुरि कर लै गदा असुर-धायौ।
हरि गदा-जुद्ध तासौं कियौ भली बिधि बहुरि संध्यासमय हान आयौ।
गहि असुर धाइ, पुनि नाइ निज जंघ पर, नखनि सौं उदर डार्‌यौ बिदारौ।
देखि यह सुरनि वर्षा करी पुहुप की, सिद्ध-गंधर्ब जय-धुनि उचारी।
बहुरि बहु भाइ प्रह्लाद अस्तुति करी, ताहि दै राज बैकुंठ सिधाए।
भक्त कैं हेत हरि धर्‌यौ नरसिंह-बपु, सूर जन जानि यह सरन आए॥६॥
॥४२५॥

भगवान् का श्री शिव को साहाय्य-प्रदान *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।

हरि ज्यौँ सिव की करी सहाइ। कहौँ सो कथा, सुनौ चित लाइ।
एक समय सुर-असुर प्रचारि। लरे भई असुरनि की हारि।
तिन ब्रह्मा कैँ हित तप कीन्हौ। ब्रह्म प्रगटि दरस तिन्ह दीन्हौ।
तब ब्रह्मा सौँ कह्यौ सिर नाइ। हमरी जय ह्वैहै किहिँ भाइ।
ब्रह्मा तब यह बचन उचारौ। मय माया-मय कोट सँवारौ।
तामैँ बैठि सुरनि जय करौ। तुम उनके मारैँ नहिं मरौ।
असुरनि यह मय कौँ समुझाई। तब मय दीन्हौ कोट बनाई।
लोह तरैँ, मधि रूपा लायौ। ताके ऊपर कनक लगायौ।
जहँ लै जाइ तहाँ वह जाइ। त्रिपुर नाम सो कोट कहाइ।
गढ़ कैँ बल असुरनि जय पाइ। लियौ सुरनि सैँ अमृत छिनाइ।
सुर सब मिलि गए सिव-सरनाइ। सिव तब तिनकी करी सहाइ।
पै सिव जाकैँ मारैँ धाइ। अमृत प्याइ तिहिँ लेहिँ जिवाइ।
तब सिव कीन्हौ हरि कौ ध्यान। प्रगट भए तहँ श्रीभगवान।
सिव हरि सैँ सब कथा सुनाई। हरि कह्यौ, अब मैँ करौँ सहाइ।
सुंदर गऊ-रूप हरि कीन्हौ। बछरा करि ब्रह्मा सँग लीन्हौ।
अमृत-कुंड मैँ पैठे जाइ। कह्यौ असुरनि, मारौ इहिँ गाइ।
एकनि कह्यौ, याहि मत मारौ। याकौ सुंदर रूप निहारौ।
केतिक अमृत पिए यह भाई। हरि मति तिनकी यौँ भरमाई।
हरि अमृत लै गए अकास। असुर देखि यह भए उदास।
कह्यौ, इनहीँ हिरनाच्छहिँ मारयौ। हिरनकसिप इनहीँ संहारयौ।
यासैँ हमरौ कछु न बसाइ। यह कहि असुर रहे खिसियाइ।
बान एक हरि सिव कैँ दियौ। तासैँ सब असुरनि छय कियौ।
या बिधि हरि जू करी सहाइ। मैँ सो तुमकैँ दई सुनाइ।
सुक ज्यौँ नृप कैँ जहि समुझायौ। सूरदास जन त्यौँही गायौ ॥७॥
॥४२६॥

नारद उत्पत्ति-कथा *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि भजि जैसैँ नारद भयौ. नारद ब्यासदेव सैँ कह्यौ।
कहैँ सो कथा, सुनौ चित धार। नीच-ऊँच हरि कैँ इकसार।
गंध्रब ब्रह्मा-सभा मँझारि। हँस्यौ अप्सरा-ओर निहारि।
कह्यौ ब्रह्मा, दासी-सुत होहि। सकुच न करी देखि तैँ मोहिँ।

भयौ दासी-सुत ब्राह्मन-गेह। तुरत छाँड़िकै गंध्रब - देह।
ब्राह्मन-गृह हरि के जन छाए। दासी - दास - सेव - हित लाए।
हरि - जन हरि-चरचा जो करै। दासी-सुत सो हिरदैं धरै।
सुनत-सुनत उपज्यौ बैराग। कह्यौ, जाउँ क्यौं माता त्याग।
ताकी माता खाई कारैं। सो मरि गई साँप के मारैं।
दासी - सुत बन - भीतर जाइ। करी भक्ति हरि-पद चित लाइ।
ब्रह्म-पुत्र तन तजि सो भयौ। नारद यौं अपनैं मुख कह्यौ।
हरि की भक्ति करै जो कोइ। सूर नीच सैं ऊँच सो होइ।।८।।
।।४२७।।

॥ सप्तम स्कंध समाप्त ॥

अष्टम स्कंध

राग बिलावल

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि-चरननि सुकदेव सिर नाइ। राजा सौँ बोल्यौ या भाइ।
कहौँ हरि-कथा, सुनौ चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥४२८॥

गज-मोचन-अवतार *राग बिलावल*

गज-मोचन ज्यौँ भयौ अवतार। कहौँ, सुनौ सो अब चित धार।
गंध्रब एक नदी मैँ जाइ। देवल रिषि कौँ पकर्‌यौ पाइ।
देवल कह्यौ, ग्राह तू होहि। कह्यौ गंधर्ब दया करि मोहिँ।
जब गजेंद्र कौ पग तू गैहै। हरि जू ताकौ आनि छुटैहै।
भएँ अस्पर्स देव-तन धरिहै। मेरौ कह्यौ नाहिँ यह टरिहै।
राजा इंद्रद्युम्न कियौ ध्यान। आए अगस्त्य, नहीँ तिन जान।
दियौ साप गजेंद्र तू होहि। कह्यौ नृप, दया करौ रिषि मोहिँ।
कह्यौ, तोहिँ ग्राह आनि जब गैहै। तू नारायन सुमिरन कैहै।
याही बिधि तेरी गति होइ। भयो त्रिकूट पर्बत गज सोइ।
कालहिँ पाइ ग्राह गज गह्यौ। गज बल करि-करिकै थकि रह्यो।
सुत पत्नीहू बल करि रहे। छूट्यौ नहीँ ग्राह के गहे।
ते सब भूखे, दुःखित भए। गज कौ मोह छाँड़ि उठि गए।
तब गज हरि की सरनहिँ आयौ। सूरदास प्रभु ताहि छुड़ायौ ॥२॥
॥४२९॥

राग बिलावल

माधौ जू, गज ग्राह तैँ छुड़ायौ।
निगमनि हूँ मन-बचन-अगोचर, प्रगट सो रूप दिखायौ।
सिव-बिरंचि देखत सब ठाड़े, बहुत दीन दुख पायौ।
बिन बदलैँ उपकार करै को, काहूँ करत न आयौ।

चिंतत ही चित मैं चिंतामनि, चक्र लिए कर धायौ।
अति करुना-कातर करुनामय गरुड़हु कौं छुटकायौ।
सुनियत सुजस जो निज जन कारन कबहुँ न गहरु लगायौ।
ना जानौं सूरहिं इहिं औसर, कौन दोष बिसरायौ ॥३॥
॥४३०॥

राग बिलावल

हरबर चक्र धरे हरि धावत।
गरुड़ समेत सकल सेनापति, पाछैं लागे आवत।
चलि नहिँ सकत गरुड़ मन डरपत, बुधि बल बलहिँ बढ़ावत।
मनहूँ तैं अति बेग अधिक करि, हरिजू चरन चलावत।
को जानै प्रभु कहाँ चले हैं, काहूँ कछु न जनावत।
अति व्याकुल गति देखि देव-गन, सोचि सकल दुख पावत।
गज-हित धावन, जन-मुकरावन, बेद बिमल जग गावत।
सूर समुझि समुझाइ अनाथनि, इहिं बिधि नाथ छुड़ावत ॥४॥
॥४३१॥

राग सारंग

झाईं न मिटन पाई, आए हरि आतुर ह्वै,
जान्यौ जब गज ग्राह लिए जात जल मैं।
जादौपति, जदुनाथ, छाँड़ि खगपति-साथ,
जानि जन विह्वल, छुड़ाइ लीन्हौ पल मैं।
नीरहू तैं न्यारौ कीनौ, चक्र नक्र-सीस छीनौ,
देवकी के प्यारे लाल ऐंचि लाए थल मैं।
कहै सूरदास, देखि नैननि की मिटी प्यास,
कृपा कीन्ही गोपीनाथ, आए भुव-तल मैं ॥ ५ ॥
॥ ४३२ ॥

राग बिलावल

अब हौं सब दिसि हेरि रह्यौ।
राखत नाहिँ कोउ करुनानिधि, अति बल ग्राह गह्यौ।
सुर, नर, सब स्वारथ के गाहक, कत स्रम आनि करैं।
उड़गन उदित तिमिर नहिँ नासत, बिन रवि रूप धरैं।

इतनी बात सुनत करुनामय, चक्र गहे कर धाए।
हति गज-सत्रु सूर के स्वामी, ततछन सुख उपजाए ॥ ६ ॥
॥ ४३३ ॥

कूर्म-अवतार *राग बिलावल*

जैसैं भयौ कूर्म – अवतार। कहौं, सुनौ सो अब चित धार।
नरहरि हिरनकसिप जब मारयौ। अरु प्रहलाद राज बैठारयौ।
ताकौ पुत्र बिरोचन रयौ। ताकैं बहुरि पुत्र बलि भयौ।
बलि सुरपति कौं बहु दुख दयौ। तब सुरपति हरि-सरनैं गयौ।
हरि जू अपनौ बिरद सँभारयौ। सूरज-प्रभु कूरम-तनु धारयौ ॥ ७ ॥
॥ ४३४ ॥

राग मारू

सुरनि हित हरि कच्छप-रूप धारयौ।
मथन करि जलधि, अंमृत निकारयौ।
चतुर्मुख त्रिदसपति बिनय हरि सौं करी, बलि असुर सौं सुरनि दुःख पायौ।
दीनबंधू, दयाकरन, असरन-सरन, मंत्र यह तिनहिँ निज मुख सुनायौ।
बासुकी नेति अरु मंदराचल रई, कमठ मैं आपनी पीठि धारौं।
असुर सौं हेत करि, करौ सागर मथन, तहाँ तैं अमृत कौं पुनि निकारौं।
रतन चौदह तहाँ तै प्रगट होहिँ तब, असुर कौं सुरा, तुम्हैं अमृत प्याऊँ।
जीतिहौ तब असुर महा बलवंत कौं, मरैं नहिँ देवता, यौं जिवाऊँ।
इंद्र मिलि सुरनि बलि-पास आए बहुरि, उन कह्यौ, कहौ किहिँ काज आए?
त्रिदसपति समुद के मथन के बचन जो, सो सकल ताहि कहिकै सुनाए।
बलि कह्यौ, बिलँब अब नैंकु नहिँ कीजियै, मंदराचल अचल चले धाई।
दोउ इक मंत्र ह्वै जाइ पहुँचे तहाँ, कह्यौ, अब लीजियै इहिँ उचाई।
मंदराचल उपारत भयौ स्रम बहुत, बहुरि लै चलन कौं जब उठायौ।
सुर-असुर बहुत ता ठौरहीं मरि गए, दुहुनि कौ गर्व यौं हरिं नसायौ।
तब दुहुँनि ध्यान भगवान कौ धरि कह्यौ, बिन तुम्हारी कृपा गिरि न जाई।
बाम कर सौं पकरि, गरुड़ पर राखि हरि, छीर कैं जलधि तट धरयौ ल्याई।

कह्यौ भगवान अब बासुकी ल्याइयै, जाइ तिन बासुकी सौँ सुनायौ।
मानि भगवंत-आज्ञा सो आयो तहाँ, नेति करि अचल कौँ सिंधु नायौ।
मंदराचल समुद माहिं बूड़न लग्यौ, तब सबनि बहुरि अस्तुति सुनाई।
कूर्म कौ रूप धरि, धर्‌यौ गिरि पीठि पर, सुर-असुर सबनि कै मन बधाई।
पूँछ कौँ तजि असुर दौरिकै मुख गह्यौ, सुरनि तब पूँछ की ओर लीन्ही।
मथत भए छीन, तब बहुरि बिनती करी, श्रीमहाराज निज सक्ति दीन्ही।
भयो हलाहल प्रगट प्रथमहीँ मथत जब, रुद्र कैँ कंठ दियौ ताहि धारी।
चंद्रमा बहुरि जब मथत आयौ निकसि, सोउ करि कृपा दीन्हौ मुरारी।
कामनाधेनु पुनि सप्तरिषि कौँ दई, लई उन बहुत मन हर्ष कीन्हे।
अप्सरा, पारिजातक, धनुष, अस्व, गज स्वेत, ये पाँच सुरपतिहिँ दीन्हे।
संख, कौस्तुभमनी, लई पुनि आप हरि, लच्छमी बहुरि तहँ दइ दिखाई।
परम सुंदर, मनौ तड़ित है दूसरी, कमल की माल कर लियैँ आई।
सकल भूषन मनिनि के बने सकल अंग, बसन बर अरुन सुंदर सुहायौ।
देखि सुर-असुर सब दौरि लागे गहन, कह्यौ मैँ बर बरौँ आप-भायौ।
जो चहै मोहिँ मैँ ताहि नाहीँ चहौँ, असुर को राज थिर नाहिँ देखौँ।
तपसियनि देखि कह्यौ, क्रोध इनमैँ बहुत, ज्ञानियनि मैँ न आचार पैखौँ।
सुरनि कौँ देखि कह्यौ, ये पराधीन सब, देखि बिधि कौँ कह्यौ, यह बुढ़ायौ।
चिरंजीवीनि कौँ देखि कह्यौ निडर ये, लोक तिहुँ माहिँ कोउ चित न आयौ।
बहुरि भगबान कौँ निरखि सुंदर परम, कह्यौ, इन माहिँ गुन हैँ सुभाए।
पै न इच्छा इन्हैँ है कछू वस्तु की, अरु न ये देखि कै मोहिँ लुभाए।
कबहुँ कियैँ भक्ति हू के न ये रीझहीँ, कवहुँ कियैँ बैर के रीझि जाहीँ।
हरि कह्यौ, मम हृदय माहिँ तू रहि सदा, सुरनि मिसि देव-दुंदुभि बजाई।
धन्य-धनि कह्यौ पुनि लच्छमी सौँ सबनि, सिद्ध-गंधर्व जय-ध्वनि सुनाई।
बहुरि धन्वंत्रि आयौ समुद सौँ निकसि, सुरा अरु अमृत निज संग लायौ।
भयौ आनंद सुर-असुर कौँ देखि कै, असुर तब अमृत करि बल छिनायौ।
सुरनि भगवान सौँ आनि बिनती करी, असुर सब अमृत लै गए छिनाई।
कह्यौ भगवान्, चिंता न कछु मन धरौ, मैँ करौँ अब तुम्हारी सहाई।
परसपर असुर तब जुद्ध लागे करन, होइ बलवंत सोइ लै छिनाई।
मोहिनी रूप धरि स्याम आए तहाँ, देखि सुर-असुर सब रहे लुभाई।
आइ असुरनि कह्यौ, लेहु यह अमृत तुम, सबनि कौँ बाँटि, मेटौ लराई।

हँसि कह्यौ, नहीँ हम-तुम्हैँ कछु मित्रता, बिना बिस्वास बाँट्यौ न जाई।
कह्यौ, तुम-बाँटि पर हमैँ बिस्वास है, देहु तुम बाँटि जो धर्म होई।
कह्यौ, सब सुर-असुर मथन कीन्ह्यो जलधि, सबनि देउँ बाँटि, है धर्म सोई।
कह्यौ, जो करौ सो हमैँ परमान है, असुर-सुर पाँति करि तब बिठाई।
असुर-दिसि चिते मुसुक्याइ मोहे सकल, सुरनि कौँ अमृत दीन्ह्यो पियाई।
राहु ससि-सूर के बीच मैँ बैठि कै, मोहिनी सौँ अमृत माँगि लीन्ह्यौ।
सूर-ससि कह्यौ, यह असुर, तब कृष्नजू लै सुदरसन सु द्वै टूक कीन्ह्यौ।
राहु सिर, केतु धर कौ भयौ तबहिँ तैँ, सूर-ससि कौँ सदा दुःखदाई।
करत भगवान रच्छा जो ससि-सूर की, होत है नित सुदरसन सहाई।
करि अतरधान हरि मोहिनी-रूप कौँ गरुड़ असबार ह्वै तहाँ आए।
असुर चक्रित भए, गई वह नारि कह, सुर-असुर जुद्ध-हित दोउ धाए।
सुरनि की जीति भई, असुर मारे बहुत, जहाँ-तहँ गए सबही पराई।
सूर प्रभु जिहिँ करै कृपा, जीतै सोई, बिनु कृपा जाइ उद्यम बृथाई ॥८॥ ॥४३५॥

राग बिहागरौ

ऐसी को सकै करि तुम बिनु मुरारी।
सुरनि के कहत ही, धारि कूरम तनहिँ, मंदराचल लियौ पीठि धारी।
सिंधु मथि सुरा-सुर अमृत बाहर कियौ, बलि असुर लै चल्यौ सो छिनाई।
मोहिनी-रूप तुम दरस तिनकौँ दियौ, आनि तब सबनि विनती सुनाई।
अमृत यह बाँटि कै देहु तुम सबनि कौँ, कृपा करि रारि डारौ मिटाई।
सुर-असुर-पाँति करि, सुरा असुरनि दई, सुरनि कौँ अमृत दीन्हौ पियाई।
राहु-सिर, केतु धर भयौ यह तबहिँ तैँ, सूर-ससि दियौ ताकौँ बताई।
चक्र सौँ काटि सिर, कियौ द्वै टूक तब, असुरहूँ देवगति तुरत पाई।
भक्तबच्छल, कृपाकरन, असरन-सरन, पतित-उद्धरन कहै वेद गाई।

चारहूँ जुग करी कृपा परकार जेहि, सूरहू पर करौ तेहिँ सुभाई ॥९॥
॥४३६॥

मोहिनी-रूप, शिव-छलन *राग मारू*

हरि कृपा करै जिहिँ, जितै सोई। बादि अभिमान जनि करौ गोई।
पाइ सुधि मोहिनी की सदासिव चले, जाइ भगवान सौँ कहि सुनाई।
असुर अजितेंद्रि जिहिँ देखि मोहित भए, रूप सो मोहिँ दीजै दिखाई।
हरि कह्यौ, "ब्रह्म व्यापक निराकार सौँ मगन तुम, सगुन लै कहा करिहौ" ?
पुनि कह्यौ," बिनय मम मानि लीजै प्रभो, उमा देख्यौ चहति, । कृपा धरिहौ" ?
हँसि कह्यौ, "तुन्हँ दिखराइहौं रूप वह, करौ बिस्राम इस ठौर जाई
बैठि एकांत जोहन लगे पंथ सिव, मोहिनी रूप कब दै दिखाई।
ह्वै अँतरधान हरि, मोहिनी रूप धरि, जाइ बन माहिँ दीन्हें दिखाई।
सूर-ससि किधौँ चपला परम सुंदरी, अंग-भूषननि छबि कहि न जाई।
हाव अरु भाव करि चलत, चितवत जबै, कौन ऐसौ जो मोहित न होई !
उमा कौँ छाँड़ि अरु डारि मृगचर्म कौं, जाइकै निकट रहे रुद्र जोई।
रुद्र कौं देखि के मोहिनी लाज करि, लियौ अँचल, रुद्र तब अधिक मोह्यौ।
उमाहूँ देखि पुनि ताहि मोहिनी भई, तासु सम रूप अपनौ न जोह्यौ।
रुद तजि धीर जब जाइ ताकौं गह्यौ, सो चली आपु कौं तब छुड़ाई।
रुद्रकौ बीर्य खसि कै पर्‍यौ धरनि पर, मोहिनी रूप हरि लियौ दुराई।
देखिकै उमा कौं रुद्र लज्जित भए, कह्यौ मैँ कौन यह काम कीनौ।
इंद्रि-जित हौं कहावत हुतौ, आपु कौं समुझि मन माहिँ ह्वै रह्यौ खीनौ।
चतुरभुज रूप धरि आइ दरसन दियौ, कह्यौ, सिव सोच हीजै बिहाई।
सम तुम्हारे नहीँ दूसरौ जगत मैँ, कह्यौ तुम रूप तब दियौ दिखाई।
नारि के रूप कौं देखि मोहै न जो, सो नहीं लोक तिहुँ माहिँ जायौ।
सूर स्वामी सरन रहित माया सदा, को जगत जो न कपि ज्यौं नचायौ ॥ १० ॥
॥४३७॥

सुन्द- उपसुन्द-बध *राग मारू*

असुर द्वै हुते बलवंत भारी। सुन्द-उपसुंद स्वेच्छा-बिहारी।
भगवती तिन्हैँ दीन्ही दिखाई। देखि सुंदरि रहे दोउ लुभाई।
भगवती कह्यौ तिनकौँ सुनाई। जुद्ध जीते सो मोहिं बरै आई।
तब दुहुँनि जुद्ध कीन्हौ बनाई। लरि मुए तुरत ही दोउ भाई।
देखिकै नारि मोहित जो होवै। आपनौ मल या बिधि सो खोवै।
सुक नृपति पाहिँ जिहिँ बिधि सुनाई। सूर जनहूँ तिहीँ भाँति गाई ॥११॥
॥४३८॥

वामन-अवतार *राग बिलावल*

जैसैँ भयो बावन अवतार। कहौँ, सुनौ सो अब चित धार।
हरि जब अंमृत सरनि पियायौ। तब बलि असुर बहुत दुख पायौ।
सुक्र ताहि पुनि जज्ञ करायौ। सुर-जय, राज-त्रिलोकी पायौ।
निन्यानबे यज्ञ जब किये। तब दुख भयौ अदिति के हिये।
हरि-हित उन पुनि बहु तप कर्‍यौ। सूर स्याम बामन-बपु धर्‍यौ ॥१२॥
॥ ४३९ ॥

राग मलार

द्वारैँ ठाढ़े हैँ द्विज बावन।
चारौ बेद पढ़त मुख आगर, अति सुकंठ-सुरगावन।
बानी सुनी बलि पूछन लागे, इहा बिप्र कत आवन?
चरचित चंदन नील कलेवर, बरषत बूँदनि सावन।
चरन धोइ चरनोदक लीन्हौ, कह्यौ माँगु मन-भावन।
तीनि पैँड बसुधा हौँ चाहौँ, परनकुटी कौँ छावन।
इतनौ कहा बिप्र तुम माँग्यौ, बहुत रतन देउँ गाँवन।
सूरदास प्रभु बोलि छले बलि, धर्‍यौ पीठि पद पावन ॥१३॥
॥ ४४० ॥

राग मलार

राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी।
चारौ बेद पढ़त मुख आगर, ह्वै बावन-बपु-धारी।
अपद-दुपद-पसु-भाषा बूझत, अबिगत अल्प-अहारी।

नगर सकल-नर-नारी मोहे, सूरज जोति बिसारी।
सुनि सानँद चले बलि राजा, आहुति जज्ञ बिसारी।
देखि सुरूप सजल कृष्नाकृति, कीनी चरन-जुहारी।
चलियै विप्र जहाँ जग-वेदी, बहुत करी मनुहारी।
जो माँगौ सो देहुँ तुरतहीं, हीरा-रतन-भँडारी।
रहु-रहु राजा, यौं नहिं कहियै, दूषन लागै भारी।
तीन पैग बसुधा दै मोकौं, तहाँ रचौं ध्रमसारी।
सुक्र कह्यौ, सुनि हो बलि राजा, भूमि कौ दान निवारी।
ये तौ विप्र होहिं नहिं राजा, आए लछन मुरारी।
कहि धौं सुक्र, कहा अब कीजै, आपुन भए भिखारी।
जब हीं उदक दियौ बलि राजा, बावन देह पसारी।
जै-जै-कार भयौ भुव मापत, तीनि पैंड़ भइ सारी।
आध पैंड़ि बसुधा दै राजा ना तरु चलि सत हारी।
अब सत क्यौं हारौं जग-स्वामी मापौ देह हमारी।
सूरदास बलि सरबस दीन्हौ, पायौ राज पतारी ॥१४॥
॥४४१॥

हरि तुम बलि कौं छलि कहा लीन्यौ ?
बाँधन गए बँधाए आपुन, कौन सयानप कीन्यौ ?
लए लकुटिया द्वारै ठाढे, मन अति रहत अधीन्यौ।
तीनि पैंड़ बसुधा कैं कारन, सरबस अपनौ दीन्यौ।
जो जस करै सो पावै तैसी, बेद पुरान कहीन्यौ।
सूरदास स्वामी पन तजि कै, सेबक-पन रस भीन्यौ ॥१५॥
॥४४२॥

मत्स्य-अवतार *राग मारू*

स्रुतिनि हित हरि मच्छ रूप धारयौ। सदा ही भक्त-संकट निवारयौ।
चतुरसुख कह्यौ, सँख असुर स्रुति लै गयौ,सत्यव्रत कह्यौ परलै दिखायौ।
भक्त-बत्सल, कृपाकरन, असरन-सरन, मत्स्य कौ रूप तब धारि आयौ।
स्नान करि अंजली जल जबै नृप लियौ,मत्स्य जौं देखि कह्यौ डारि दीजै।
मत्स्य कह्यौ, मैं गही आइ तुम्हरी सरन, करि कृपा मोहिं अब राखि लीजै।

नृप सुनत बचन, चक्रित प्रथम ह्वै रह्यौ, कह्यौ, मछ बचन किहिँ भाँति भाष्यौ।
पुनि कमंडल धर्‍यौ, तहाँ सो बढि गयौ, कुंभ धरि बहुरि पुनि माट राख्यौ।
पुनि धर्‍यो खाड़, तालाब मैँ पुनि धर्‍यौ, नदी मै बहुरि पुनि डारि दीन्हौ।
बहुरि जब बढ़ि गयौ, सिंधु तब लै गयौ, तहाँ हरि-रूप नृप चीन्हि लीन्हौ।
कह्यौ करि बिनय तुम ब्रह्म जो अनंत हौ, मत्स्य कौ रूप किहिँ काज कीन्हौ?
बेदी बिधि चहत, तुम प्रलय देखन कहत, तुम दुहुँनि हेत अवतार लीन्हौ।
कबहुँ बाराह, नरसिंह कबहूँ भयौ, कबहुँ मैँ कच्छ कौ रूप लीन्हौ।
कबहुँ भयौ राम, बसुदेव-सुत कबहुँ भयौ, और बहु रूप हित-भक्त कीन्हौ।
सातवैँ दिवस दिखराइहौँ प्रलय तोहिँ सप्त-रिषि नाव मैँ बैठि आवैँ।
तोहिँ बैठारिहौँ नाव मैँ हाथ गहि, बहुरि हम ज्ञान तोहिँ कहि सुनावैँ।
सर्प इक आइहै बहुरि तुम्हरैँ निकट, ताहि सौँ नाव मम सृंग बाँधौ।
यहै कहि भए अँतरधान तब मत्स्य प्रभु, बहुरि नृप आपनौ कर्म साधौ।
सातवैँ दिवस आयौ निकट जलधि जब, नृप कह्यौ अब कहाँ नाव पावैँ।
आइ गइ नाव, तब रिषिन तासौँ कह्यौ, आउ हम नृपति तुमकौँ बचावैँ।
पुनि कह्यौ, मत्स्य हरि अब कहाँ पाइय, रिषिन कह्यौ, ध्यान चित माहिँ धारौ।
मत्स्य अरु सर्पु तिहिँ ठौर परगट भए, बाँधि नृप नाव यौँ कहि उचारौ।
ज्यौँ महाराज या जलधि तैँ पार कियौ, भव-जलधि पार त्यौँ करौ स्वामी।
अहं-ममता हमैँ सदा लागी रहै, मोह-मद-क्रोध-जुत मंद कामी।
कर्म सुख-हित करत, होत तहँ दुःख नित, तऊ नर मूढ नाहीँ सँभारत।
करन-कारन महराज हैँ आप ही, ध्यान प्रभु कौ न मन माहिँ धारत।
बिन तुम्हारी कृपा गति नहीँ नरनि की, जानि मोहिँ आपनौ कृपा कीजै।
जनम अरु मरन मैँ सदा दुःखित देहु मोहिँ ज्ञान जिहिँ सदा जीजै।
मत्स्य भगवान कह्यौ ज्ञान पुनि नृपति सौँ, भयौ सो पुरान सब जगत जान्यौ।

लह्यौ नृप ज्ञान, कह्यौ आँखि अब मीचि तू, मत्स्य कह्यौ सो नृपति मान्यौ।
आँखि कौं खोलि जब नृपति देख्यौ बहुरि, कह्यौ, हरि प्रलय-माया दिखाई।
कह्यौ जो ज्ञान भगवान, सो आनि उर, नृपति निज आपु इहिँ बिधि बिताई।
बहुरि संखासुरहि मारि, बेदाऽनि दिए, चतरमुख बिविध अस्तुति सुनाई।
सूर के प्रभू की नित्य लीला नई, सकै कहि कौन, यह कछुक गाई!
॥१६॥ ४४३॥

राग मारू

ऐसी कौ सकै करि बिन मुरारी।
कहत ही ब्रह्म के बेद-उद्धरन हित, गए पाताल तन-मत्स्य धारी।
संखासुर मारि कै, बेद उद्धारि कै, आपदा चतुरमुख की निवारी।
सुरनि आकास तैं पुहुप-बरषा करी, सूर सुनि सुजस कीरति उचारी।
॥ १७ ॥ ४४४ ॥

अष्टम स्कंध समाप्त

नवम स्कंध

राग बिलावल

हरि हरि, हरि, हरि सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
सुकदेव हरि-चरननि सिर नाइ। राजा सौँ बोल्यौ या भाइ।
कहौँ हरि-कथा, सुनौ चित लाइ। सूर तरौ हरि के गुन गाइ ॥१॥
॥४४५॥

राजा पुरूरवा का वैराग्य *राग बिलावल*

सुकदेव कह्यौ, सुनौ हो राव। नारी-नागिनि एक सुभाव।
नागिनि के काटैँ बिष होइ। नारी चितवत नर रहै भोइ।
नारी सौँ नर प्रीति लगावै। पै नारी तिहिँ मन नहिँ ल्यावै।
नारी संग प्रीति जो करै। नारी ताहि तुरत परिहरै।
नरपति एक पुरुरवा भयौ। नारी-संग हेत तिन ठयौ।
नृप सौँ उन कटु बचन सुनाए। पै ताकै मन कछू न आए।
बहुरौ तिहिँ उपज्यौ बैराग। कियौ उरबसी कौँ सो त्याग।
हरि की भक्ति करत गति पाई। कहौँ सो कथा, सुनौ चितलाई।
एक बार महा-परलै भयौ। नारायन आपुहिँ रहि गयौ।
नारायन जल मैँ रहे सोइ। जागि कह्यौ, बहुरौ जग होइ।
नाभि-कमल तैँ ब्रह्मा भयौ। तिन मन तैँ मरीचि कौँ ठयौ।
पुनि मरीचि कस्यप उपजायौ। कस्यप की तिय सूरज जायौ।
सूरज कैँ वैवस्वत भयौ। सुत-हित सो बसिष्ठ पै गयौ।
ताकी नारि सुता-हित भाष्यौ। सुनि बसिष्ठ अपनैँ जन राख्यौ।
रिषि नृप सौँ जग-बिधि करवाई। इला सुता काकैँ गृह जाई।
नृप कह्यौ, पुत्र-हेत जग ठयौ। पुत्री भइ, यह अचरज भयौ।
रिषि कहौ, रानी पुत्री चही। मेरे मन मैँ सोई रही।
तातैँ पुत्री उपजी आइ। करिहैँ पुत्र ताहि हरिराइ।
हरि ता पुत्री कौँ सुत कर्‌यौ। नाम सुद्युम्न ताहि रिषि धर्‌यौ।
एक दिवस सो अखेटक गयौ। जाइ अंबिका-बन तिय भयौ।

बुध कैं आस्रम सो पुनि आयौ। तासौं गंध्रब-व्याह करायौ।
बहुरौ एक पुत्र तिन जायौ। नाम पुरुरवा ताहि धरायौ।
पुनि सुद्युम्न बसिष्ठ सौं कह्यो। अंबा-बन मैं तिय ह्वै गयौ।
रिषि सिव सैाँ बहु बिनती करी। तब सिव यह बानी उच्चरी।
एक मास यह ह्वैहै नारि। दूजे मास पुरुष आकारि।
तब सुद्युम्न अपनैं गृह आयौ। राज-समाज माहिँ सुख पायौ।
तीनि पुत्र तिन और उपाए। दच्छिन राज करन सो पठाए।
दस सुत मनु के उपजे और। भयौ इच्छ्वाकु सबनि सिरमौर।
सूरजबंसी सो कहवाए। रामचंद्र ताही कुल आए।
सोमवंस पुरुरवा सैाँ भयौ। सकल देस नृप ताकौँ दयौ।
तासु बंस लियौ कृष्नऽअवतार। असुर मारि, कियौ सुर-उद्धार।
कहिहौँ कथा सो करि बिस्तार। पुरुरवा-कथा सुनौ चित धार।
पुरुरवा - गेह उरबसी आई। मित्रबरुन के सापहिँ पाई।
नृपति देखि तिहिँ मोहित भयौ। तिनि यह बचन नृपति सौँ कह्यौ।
बिन रतिकाल नगन नहिँ होवहु। अरु मम मैँढ़नि कौँ मति खोवहु।
तब लौँ मैँ तुम्हरौ सँग करौँ। बचन-भंग भए तैँ परिहरौँ।
नृपति कह्यौ, तुम कह्यौ सो करिहौँ। तुम्हरी आज्ञा मैँ अनुसरिहौँ।
तासौँ मिलि नृप बहु सुख माने। अष्ट पुत्र तासौँ उतपाने।
सुरपुर तैँ गंध्रब तब आए। उरबसि सैाँ यह बचन सुनाए।
अब तुम इद्रलोक कौं चलौ। तुम बिन सुरपुर लगत न भलौ।
तिन्ह उरबसी कह्यौ या भाइ। बल करि सकौ नहीँ लै जाइ।
मम चलिबे कौ यहै उपाव। छल करि मैँढ़नि निसि लै जाव।
गंध्रब मैँढ़नि निसि लै धाए। सोवत नृप उरबसी जगाए।
मम मैँढ़नि कौँ ले गयौ कोइ। देखौ ता पुरुषहिँ तुम जोइ।
अर्द्ध-निसा नृप नाँगौ धायौ। पै मैँढ़नि कौँ कहूँ न पायौ।
इत-उत देखि नृपति जब आयौ। तब उरबसि यह बचन सुनायौ।
राजा, बचन तुम्हारौ टर्यौ। तातैँ मैँ तुमकौँ परिहर्यौ।
यह कहिकै सो चली पराइ। जैसैँ तड़ित अकासैँ जाइ।
ताकै बिरह नृपति बहु तयौ। नगन पगन ता पाछैँ गयौ।
भ्रमत भ्रमत नृप बहु दुख पायौ। बहुरौ कुरुच्छेत्र मैँ आयौ।
तहाँ उरबसी सखिनि समेत। आई हुती स्नान कैँ हेत।
पै उनकौँ कोउ देखै नाहिँ। उनकौँ सकल लोक दरसाहिँ।

उरबसि सौँ तिलोत्तमा कह्यौ। कौन पुरुष तुम भुव मैँ लह्यौ।
ताके देखन की मोहिँ चाह। कह्यौ, पुरुष वह ठाढ़ौ आह।
नृप कौँ देखि सो बिस्मित भई। कह्यौ, तब बिरह नृप-सुधि गई।
बहुत दुखित है तेरैँ नेह। एक बेर इहिँ दरसन देह।
तिन माया आकरषन करी। तब वह दृष्टि नृपति कैँ परी।
राजा निरखि प्रफुल्लित भयौ। मानौ मृतक बहुरि जिय लह्यौ।
उरबसि-निकट नृपति चलि आए। करि बिनती तिहिँ बचन सुनाए।
तुम मोकौँ काहँ बिसरायौ। मैँ तुम बिन बहुतै दुख पायौ।
तुम बिन भूख नींद नहिँ आवै। पल-पल जुग सम मोहिँ बिहावै।
मेरैँ गेह कृपा करि चलौ। वाही बिधि मोसौँ हिलिमिलौ।
कह्यौ, नेह हमैँ कासौँ आह! बिना काम हमरैँ नहिँ चाह।
हमसौँ सहस बरस हित धरैँ। हम तिनकौँ छिन मैँ परिहरैँ।
बिनु अपराध पुरुष हम मारैँ। माया-मोह न मन मैँ धारैँ।
हमैँ कहौ केतौ किन कोइ। चाहैँ करन करैँ हम सोइ।
नृप पुनि बिनती बहु बिधि करी। तब उरबसी बात उच्चरी।
बरष सात बीतैँ हौँ ऐहौँ। एक रात्रि तोकौँ सुख दैहौँ।
बरष सात बीतैँ सो आई। नृप तासौँ मिलि रैनि बिताई।
प्रात होत चलिबे कौँ चह्यौ। तब राजा तासौँ यौँ कह्यौ।
तू मोकौँ छाँड़े कत जाइ। मोकौँ तुव बिन छिन न सुहाइ।
जब या भाँति नृपति बहु कह्यौ। तब उरबसि उत्तर यौँ दयौ।
यह तौ होनहार है नाहीँ। सुरपुर छाँड़ि रहौँ भुव माहीँ!
जौ तुम मेरी इच्छा धरौ। गंधर्बनि कैँ हित तप करौ।
तप कीन्हैँ सो दैहैँ आग। ता सेती तुम कीनौ जाग।
जज्ञ कियैँ गंध्रबपुर जैहौ। तहाँ आइ मोकौँ तुम पैहौ।
नृप जग करि तिहिँ लोक सिधायौ। मिलि उरबसी बहुत सुख पायौ।
जब या बिधि बहु काल गँवायौ। तब बैराग नृपति मन आयौ।
बहुतै काल भोग मैँ किए। पै संतोष न आयौ हिए।
श्रीनारायन कौँ बिसरायौ। विषय-हेत सब जनम गँवायौ।
या बिधि जब बिरक्त नृप भयौ। छाँड़ि उरबसी, बन कौँ गयौ।
बन मैँ जाइ तपस्या करी। बिषय-बासना सब परिहरी।
हरि-पद सौँ नृप ध्यान लगायौ। मिथ्या तनु कौ मोह भुलायौ।
हरि व्यापक सब जग मैँ जान। हरि-प्रसाद पायौ निरवान।

तातैं बुध तिय-संगति तजैं। श्रीनारायन कौं नित भजैं।
सुक जैसैं नृप कौं समुझायौ। सूरदास त्यौं ही कहि गायौ ॥२॥
॥४४६॥

च्यवन ऋषि की कथा *राग बिलावल*

सुकदेव कह्यौ, सुनौ हो राव। जैसौ है हरि-भक्ति-प्रभाव।
हरि कौ भजन करै जो कोइ। जग-सुख पाइ मुक्ति लहै सोइ।
च्यवन रिषीस्वर बहु तप कियौ। ता सम और जगत नहिँ बियौ।
बामी ताकौं लियौ छिपाइ। तासौं रिषि नहिँ देइ दिखाइ।
ता आस्रम स्रजात नृप गयौ। तहाँ जाइ कै डेरा दयौ।
छाँड़ि तहाँ सब राज-समाज। राजा गयौ अखेटक-काज।
नृप-कन्या तहँ खेलन गई। रिषि-दृग चमकत देखत भई।
पै तिहिँ रिषि-दृग जाने नाहिँ। खेलत सूल दए तिन माहिँ।
रुधिर-धार रिषि-आँखिनि ढरी। नृप-कन्या सो देखत डरी।
सूल-व्यथा सब लोगनि भई। राजा कह्यौ, कहा भइ दई!
तहँ के वासी नृपति बुलाइ। बूझयौ, तब तिन कही सुनाइ।
च्यवन रिषि-आस्रम इहिं राइ। बिनती उनसौं कीजै जाइ।
नृप खोजत रिषि-आस्रम आयौ। रिषि-दृग देखत बहुत डरायौ।
कह्यौ, कियौ किन ऐसौ काज? कन्या कह्यौ, सुनौ महराज।
मोतैं बिन जानैं यह भयौ। रिषि के दृगनि सूल हौं दयौ।
नृप मनहीं मन बहु पछितायौ। रिषि सौं पुनि यह बचन सुनायौ।
महाराज, तुम तौ हौ साध। मम कन्या तैं भयौ अपराध।
या कन्या कौं प्रभु तुम बरौ। कटक-सूल किरपा करि हरौ।
लोग सकल नीके जब भए। नृप कन्या दै, गृह कौं गए।
रिषि समाधि हरि-चरन लगाई। कन्या रिषि-चरननि लौ लाई।
सुरपति ताकैं रूप लुभायौ। बहुरि कुबेर तहाँ चलि आयौ।
पै तिन तिहिँ दिसि देख्यौ नाहिँ। गए खिस्याइ दोउ मन माहिँ।
चौदह बरष भए या भाइ। तब रिषि देख्यौ सीस उठाइ।
हाड़-चाम तन पर रहि गए। कृपावंत रिषि तापर भए।
अस्विनि-सुत इहिँ अवसर आए। करि प्रनाम, यह बचन सुनाए।
जो कछु आज्ञा हमकौं होइ। छाँड़ि बिलंब, करैं अब सोइ।
कह्यौ- दृगनि कौ करौ उपाइ। तुरत नेत्र तिन दिए बनाइ।

कह्यौ, हम जज्ञ-भाग नहिँ पावत। बैद्य जानि हमकौँ बहरावत।
रिषि कह्यौ, मैं करिहौँ जहँ जाग। दैहौँ तुमहिँ अवसि करि भाग।
नृप-कन्या सौँ रिषि यौँ कह्यौ। तुव ऊपर प्रसन्न मैं भयौ।
जद्यपि कछु इच्छा नहिँ मेरैँ। तदपि उपाइ करौँ हित तेरैँ।
दुहुँ मिलि तीरथ माहिँ नहाए। सुंदर रूप दुहूँ जन पाए।
दासी सहस प्रगट तहँ भईँ। इंद्रलोक-रचना रिषि ठई।
तिय कौँ सुख रिषि बहु बिधि दियौ। तासु मनोरथ पूरन कियौ।
तब स्रजात रानी सौँ कही। जब तैँ कन्या रिषि कौँ दई।
तब तैँ मैँ सुधि कछू न पाई। बिनु प्रसंग तहँ गयौ न जाई।
जग अरंभ करि, नृप तहँ गयौ। लखि रिषि-आस्रम बिस्मय भयौ।
कह्यौ, यह बिभव कहाँ तैँ आयौ? किन यह ऐसौ भवन बनायौ?
इहिँ अंतर नृप-तनया आई। पिता देखि, मिलिबे कौँ धाई।
नृप ताकौँ आदर नहिँ दियौ। तैँ यह कर्म कौन है कियौ?
बृद्ध रिषीस्वर कौँ कहा भयौ? कुल कलंक तैँ किहिँ मिलि दयौ।
कह्यौ, जोग-बल रिषि सब कीनौ। मोहिँ सुख सकल भाँति कौ दीनौ।
नृप प्रसन्न ह्वै रिषि पै आयौ। जग-प्रसंग कहिकै गृह ल्यायौ।
रानी सुता देखि सुत मान्यौ। धन्य जन्म अपनौ करि जान्यौ।
च्यवन नृपति कौँ जज्ञ करायौ। अस्विनि-सुत-हित भाग उठायौ।
इंद्र क्रोध ह्वै रिषि सौँ कह्यौ। ताहि भाग तुम काहैँ दयौ?
पुनि मारन कौँ बज्र उठायौ। पै रिषि कौँ मारन नहिँ पायौ।
इंद्र-हाथ ऊपर रहि गयौ। तिन कह्यौ, दई कहा यह भयौ?
कह्यौ, सुरनि तुम रिषिहिँ सतायौ। तातैं कर रहि गयौ उचायौ।
इंद्र बिनय रिषि सौँ बहु करी। तब रिषि कृपा ताहि पर धरी।
सुरपति-कर तब नीचैँ आयौ। अस्विनि-सुत बलि सुर मैँ पायौ।
ऐसौ है हरि-भक्ति-प्रभाव। बरनि कह्यौ मैँ तुमसौँ राव।
हरि की भक्ति करै जो कोइ। दुहूँ लोक कौ सुख तिहिँ होइ।
सुक ज्यौँ नृपसौँ कहि-समुझायौ। सूरदास त्यौँ ही कहि गायौ ॥३॥
॥४४७॥

हलधर-विवाह *राग भैरो*

रविबंसी भयो रैवत राजा। ता सम जग दुतिया न बिराजा।
वा गृह जन्म रेवती लयौ। ताकौँ लै सो ब्रह्मपुर गयौ।

बिधि तिहिँ आदर दै बैठायौ। तब नृप मन मैँ अति सुख पायौ।
तहाँ देखि अप्सरा-अखारा। नृपति कछू नहिँ बचन उचारा।
जब अप्सरा नृत्य करि रही। तब राजा ब्रह्मा सौँ कही।
मम पुत्री बय-प्रापत आहि। आज्ञा होइ, देउँ तिहिँ ब्याहि।
ब्रम्हा कह्यौ, सुनौ नर-नाह। तुमसौँ नृप जग मैँ अब नाह।
हलधर कौँ तुम देहु बिवाहि। ब्याह-जोग अब सोई आहि।
रैवत ब्याह कियौ भुवि आइ। आप कियौ तप बन मैँ जाइ।
हलधर-ब्याह भयौ या भाइ। सूरदास जन दियौ सुनाइ॥ ४॥
॥४४८॥

राजा अंबरीष की कथा *राग बिलावल*

हरि हरि-हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
हरि-पद अंबरीष चित लायौ। रिषि-सराप तैँ ताहि बचायौ।
रिषि कौँ तापै फेरि पठायौ। सुक नृप कौँ यौँ कहि समुझायौ।
अंबरीष राजा हरि-भक्त। रहै सदा हरि-पद अनुरक्त।
स्रवन - कीरतन - सुमिरन - करै। पद-सेवन-अरचन उर धरै।
बंदन दासपनौ सो करै। भक्तनि सख्य-भाव अनुसरै।
काय - निवेदन सदा बिचारै। प्रेम - सहित नवधा बिस्तारै।
नौमी - नेम भली बिधि करै। दसमी कौँ संजम बिस्तरै।
एकादसी करे निरहार। द्वादसि पोषै लै आहार।
पतिव्रता ता नृप की नारी। अह-निसि नृप की आज्ञाकारी।
इंद्री सुख कौँ दोऊ त्यागि। धरैँ सदा हरि-पद अनुराग।
ऐसी बिधि हरि पूजैँ सदा। हरि-हित लावैँ सब संपदा।
राज-काज कछु मन नहिँ धरै। चक्र सुदरसन रच्छा करै।
घटिका दोइ द्वादसी जानि। रिषि आयौ, नृप कियौ सन्मान।
कह्यौ भोजन कीजै रिषिराइ। रिषि कह्यौ, आवत हौँ मैँ न्हाइ।
यह कहिकै रिषि गए अन्हान। काल बितायौ करत स्नान।
राजा कह्यौ, कहा अब कीजै। द्विजनि कह्यौ, चरनोदक लीजै।
राजा तब करि देख्यौ ज्ञान। या बिधि होइ न रिषि-अपमान।
लै चरनोदक निज ब्रत साध्यौ। ऐसी बिधि हरि कौँ आराध्यौ।
इहिँ अंतर दुरबासा आए। अंबरीष सौँ बचन सुनाए।
सुनि राजा, तेरौ ब्रत टरौ। क्यौँ करि तेरैँ भोजन करौँ?

कह्यौ नृपति, सुनियै रिषिराइ। मैँ व्रत-हित यह कियौ उपाइ।
चरनोदक लै व्रत प्रतिपारयौ। अब लौँ अन्न न मुख मैँ डारयौ।
रिषि सक्रोध इक जटा उपारी। सो कृत्या भइ ज्वाला भारी।
जब नृप ओर दृष्टि तिहिँ करी। चक्र सुदरसन सो संहरी।
पुनि रिषिहू कैँ जारन लाग्यौ। तब रिषि आपन जिय लै भाग्यौ।
ब्रह्म - रुद्र - लोकहूँ गयौ। उनहूँ ताहि अभय नहिँ दयौ।
बहुरौ रिषि बैकुन्ठ सिधायौ। करि प्रनाम यह बचन सुनायौ।
मैँ अपराध भक्त कौ कीनौ। चक्र सुदसरन अति दुख दीनौ।
और कहूँ मैँ ठौर न पायौ। असरन-सरन जानि कै आयौ।
महाराज अब रच्छा कीजै। मोकैँ जरत राखि प्रभु लीजै।
हरि जू कह्यौ, सुनौ रिषिराइ। मो पै तू राख्यो नहिँ जाइ।
तैँ अपराध भक्त कौ कीनौ। मैँ निज भक्तनि कैँ आधीनौ।
मम-हित भक्त सकल सुख तजैँ। और सकल तजि मोकौँ भजैँ।
बिन मम चरन न उनकैँ आस। परम दयालु सदा मम दास।
उनकैँ भय नाहीँ सत्राइ। तातैँ कहो-जनहिँ सैँ जाइ।
तुमकौँ लेहैँ वेइ बचाइ। नाहीँ या बिन और उपाइ।
इहाँ नृपति अतिहीँ दुख छयौ। रिषि मम द्वारे तैँ फिरि गयौ।
रिषि मम जीवत बर्ष बितायौ। पै भोजन तौहूँ न सिरायौ।
अंबरीष पै तब रिषि आयौ। हाथ जोरि पुनि सीस नवायौ।
रिषिहिँ देखि नृप कह्यौ या भाइ। लेहु सुदरसन याहि बचाइ।
ब्राह्मन हरि हरि-भक्तनि प्यारौ। तातैँ अब याकैँ मति जारौ।
चक्र सुदरसन सीतल भयौ। अभय-दान दुरबासा लयौ।
पुनि नृप तिहिँ भोजन करवायौ। रिषि नृप सैँ यह बचन सुनायौ।
मैँ नहिँ भक्त महातम जान्यौ। अब तैँ भली भाँति पहिचान्यौ।
सुक राजा सौँ ज्यौँ समुझायौ। सूरदास त्यौँहीँ करि गायौ।
जो यह लीला सुनै-सुनावै। सो हरि-भक्ति पाइ सुख पावै॥ ५॥
॥४४६॥

राग गूजरी

फिरत-फिरत बलहीन भयौ।
कहा करौँ इहिँ त्रास कृपानिधि, जप-तप कौ अभिमान गयौ।
धायौ धर-सर-सैल, बिदिसि-दिसि, चक्र तहाँ हूँ जाइ लयौ।
जाँचे सिव-बिरंचि-सुरपति सब, नैँकु न काहूँ सरन दयौ।

भाज्यौ फिन्यौ लोक-लोकनि मैँ, पत्र पुरातन पवन दयौ
सूरदास द्विज दीन जानि प्रभु, तव निज जन सनमुख पठयौ ॥६॥
॥४५०॥

राग भोपाली

जन कौ हौँ आधीन सदाई।
दुरवासा बैकुंठ गए जब, तब यह कथा सुनाई।
विदित बिरद ब्रह्मन्य देव, तुम करुनामय सुखदाई।
जारत है मोहिँ चक्र सुदरसन, हा प्रभु लेहु बचाई।
जिन तन-धन मोहिँ प्रान समरपे, सील, सुभाव, बड़ाई।
ताकौ बिषम बिषाद अहो मुनि मोपै सह्यौ न जाई।
उलटि जाहु नृप-चरन-सरन मुनि वहै राखिहै भाई।
सूरदास दास की महिमा श्रीपति श्रीमुख गाई ॥७॥
॥४५१॥

सौभरि ऋषि की कथा *राग बिलावल*

सुकदेव कह्यौ, सुनौ हो राव। जैसौ है हरि-भक्ति प्रभाव।
हरि कौ भजन करै जो कोइ। जग-सुख पाइ मुक्ति लहै सोइ।
सौभरि रिषि जमुना-तट गयौ। तहाँ मच्छ इक देखत भयौ।
सहित कुटुँब सो क्रीड़ा करै। अति उत्साह हृदय मैँ धरै।
ताहि देखि रिषिकैँ मन आई। गृह-आस्रम है अति सुखदाई।
तप तजि कै गृह-आस्रम करौँ। कन्या एक नृपति की बरौँ।
कह्यौ मानधाता सौँ जाइ। पुत्री एक देहु मोहिँ राइ।
नृप कह्यौ देखि वृद्ध रिषि-देह। हैँ पचास पुत्री मम गेह।
अंतःपुर भीतर तुम जाहु। बरै तुम्हैँ तिहिँ करौँ बिवाहु।
तब रिषि मन मैँ कियौ बिचार। बिरध पुरुष कौँ बरे न नार।
तप-बल कियौ रूप अति सुंदर। गयौ तहाँ जहँ नृप कौ मंदिर।
सब कन्यनि सौभरि कौँ बरयौ। रिषि बिवाह सबहिनि सौँ करयौ।
रिषि तिनकैँ हित गेह बनाए। तिनकैँ भीतर बाग लगाए।
भोग समग्री भरे भँडार। दासी-दास गनत नहिँ पार।
रिषि नारिनि मिलि बहु सुख पाए। सहस पचास पुत्र उपजाए।
तिनकैँ बहुत भई संतान। कहँ लगि तिनकौँ करौँ बखान।

बहुत काल या भाँति बितायौ। पै रिषि मन संतोष न आयौ।
कह्यौ बिषय सौँ तृप्ति न होइ। केतौ भोग करौ किन कोइ।
या बिधि जब उपज्यौ बैराग। तब तप करि कीन्हौ तन-त्याग।
सब नारिनि सहगामिनि कियौ। हरि जू तिनकौँ निज पद दियौ।
तातैँ बुध हरि-सेवा करैँ। हरि-चरननि नितही चित धरैँ।
सुक नृप सौँ ज्यौँ कहि समुझायौ। सूरदास त्यौँही कहि गायौ ॥८॥
॥४५२॥

श्री गंगा-आगमन *राग भैरौ*

सुकदेव कह्यौ, सुनौ नर-नाह। गंगा ज्यौँ आई जग माहँ।
कहौँ सो कथा, सुनौ चित लाइ। सुनै सो भव तरि हरि-पुर जाइ।
सौवाँ जज्ञ सगर जब ठयौ। इंद्र अस्व कौँ हरि लै गयौ।
कपिलास्रम लै ताकौँ राख्यौ। सगर-सुतनि तब नृप सौँ भाष्यौ।
हम तिहुँ लोक माहिँ फिर आए। अस्व-खोज कतहूँ नहिँ पाए।
आज्ञा होइ जाहिँ पाताल। जाहु, तिन्हैँ भाष्यौ भूपाल।
तिनके खोदैँ सागर भए। कपिलाश्रम कौँ ते पुनि गए।
अस्व देखि कह्यौ, धावहु-धावहु। भागि जाहि मति, बिलँब न लावहु।
कपिल कुलाहल सुनि अकुलायौ। कोप-दृष्टि करि तिन्हैँ जरायौ।
सगर नृपति जब यह सुधि पाई। अंसुमान कौँ दियौ पठाई।
कपिल-स्तुति तिहिँ बहुबिधि कीन्ही। कपिल ताहि यह आज्ञा दीन्ही।
जज्ञ के हेतु अस्व यह लेहु। पितर तुम्हारे भए जु खेहु।
सुरसरि जब भुव ऊपर आवै। उनकौँ अपनौ जल बरसावै।
तबहीँ उन सबकी गति होइ। ता बिन और उपाइ न कोइ।
अंसुमान राजा ढिग आइ। साठि सहस की कथा सुनाइ।
घोरा सगर राइ कौँ दयौ। हर्ष-विषाद हृदय अति भयौ।
सगर राज मख पूरन कियौ। राज सो अंसुमान कौँ दियौ।
अंसुमान पुनि राज बिहाइ। गंगा हेत कियौ तप जाइ।
याही बिधि दिलीप तप कीन्हौ। तै गंगा जू बर नहिँ दीन्हौ।
बहुरि भगीरथ तप बहु कियौ। तब गंगा जू दरसन दियौ।
कह्यौ, मनोरथ तेरौ करौ। पै मैँ जब अकास तैँ परौँ।
मोकौँ कौन धारना करै? नृप कह्यौ, संकर तुमकौँ धरै।
तब नृप सिव की सेवा कीनी। सिव प्रसन्न ह्वै आज्ञा दीनी।

गंगा सौं नृप जाइ सुनाई। तब गंगा भूतल पर आई।
साठ सहस्र सगर के पुत्र। कीने सुरसरि तुरत पवित्र।
गंग-प्रवाह माहिँ जो न्हाइ। सो पवित्र ह्वै हरिपुर जाइ।
गंगा इहिँ बिधि भुव पर आई। नृप मैँ तुमसौँ भाषि सुनाई।
सुक नृप सौँ ज्यौँ कहि समुझायौ। सूरदास त्यौँ ही कहि गायौ॥ ६॥

॥४५३॥

श्री गंगा-बिष्णु-पादोदक-स्तुति *राग बिलावल*

पिउ पद-कमल कौ मकरंद।
मलिन-मति मन-मधुप, परिहरि, बिषय नीरस मंद।
अमृत हूँ तैं अमल अति गुन, स्रवत निधि-आनंद।
परम सीतल जानि संकर, सिर धर्यौ ढिग चंद।
नाग-नर-पसु सबनि चाह्यौ सुरसरी कौ बुंद।
सूर तीनौ लोक परस्यौ, सुरसरी जस-छंद॥१०॥

॥ ४५४ ॥

राग भैरौ

जय जय, जय जय, माधव-बेनी।
जग हित प्रगट करी करुनामय, अगतिनि कौँ गति देनी।
जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप, संग सजी अघ-सैनी।
जनु ता लागि तरवारि त्रिबिक्रम, धरि करि कोप उपैनी।
मेरु मूठि, बर-बारि पाल-छिति, बहुत बित्त की लैनी।
सोभित अंग तरंग त्रिसंगम, धरी धार अति पैनी।
जा परसैँ जीतैं जम-सैनी, जमन, कपालिक, जैनी।
एकै नाम लेन सब भाजै, पीर सो भव-भय-सैनी।
जा जल-सुद्ध निरखि सन्मुख ह्वै, सुन्दरि सरसिज-नैनी।
सूर परस्पर करत कुलाहल, गर-स्रग-पहरावैनी॥११॥

॥४५५॥

राग बिलावल

गंग-तरंग बिलोकत नैन।
अतिहिँ पुनीत बिष्नु-पादोदक, महिमा निगम पढ़त गुनि चैन।

परम पवित्र, मुक्ति की दाता, भागीरथहिँ भव्य बर दैन।
द्वादस बष सेए निसिबासर, तब संकर भाषी है लेन।
त्रिभुवन-हार सिँगार भगवती, सलिल चराचर जाके ऐन।
सूरजदास बिधाता कै तप प्रगट भई संतनि सुख दैन ॥१२॥
॥ ४५६ ॥

परशुराम-अवतार *राग बिलावल*

ज्यौँ भयौ परशुराम अवतार। कहौँ सो कथा, सुनौ चित धार।
सहसबाहु रांवबंसी भयौ। सरिता-तट इक दिन सो गयौ।
निज भुज-बल तिन सरिता गही। बढ़ि गयौ जल, तब रावन कही।
नृष तुम हमसौँ करौ लराइ। कह्यौ, करौँ मध्यान बिताइ।
बहुरौ क्रोधवंत जुध चह्यौ। सहसबाहु तब ताकौँ गह्यौ।
बहुरौ नृप करिके मध्यान। दोनौ ताकौँ छाँड़ि निदान।
फिरि नृप जमदग्न्यास्रम आयौ। कामधेनु बल करिकै धायौ।
परशुराम जब यह सुधि पाई। मारयौ ताहि तुरतहीँ धाई।
तासु सुतनि जमदग्निहिँ मार्‌यौ। परशुराम रेनुका हँकार्‌यौ।
मारे छत्री इकइस बार। यौँ भयौ परशुराम अवतार।
सुक नृप सैाँ ज्यौँ कहि समुझायौ। सूरदास त्यौँ ही कहि गायौ।
॥ १३ ॥ ४५७ ॥

राग धनाश्री

परशुराम जमदग्नि-गेह लीनौ अवतारा।
माता ताकी गई जमुन जल कौँ इक बारा।
लागी तहाँ अबार तिहिँ, रिषि करि क्रोध अपार।
परशुराम सौँ यौँ कही, माँकौँ बेगि सँहार।
और सुतनि तब कही, पिता, नहिँ कीजै ऐसी।
क्रोधवंत रिषि कह्यौ, करौ इनहूँ सौँ वैसी।
परसुराम तिन सबनि कौँ, मार्‌यौ खड्ग-प्रहार।
रिषि कह्यौ होइ प्रसन्न, बर माँगौ देउँ, कुमार।
परसुराम तब कह्यौ, यहै बर देहु तात अब।
जानैँ नाहिँन मुए, फेरिकै जीवैँ ये सब।
रिषि कह्यौ, यह बर दियौ मैँ, इनकौँ देहु उठाइ।
परशुराम उनकौँ दियौ, सोवत मनौ जगाइ।

परसुराम बन गए, तहाँ दिन बहुत लगाए।
सहसबाहु तिहिं समय जमदगिनि-आश्रम आए।
कामधेनु जमदग्नि की, लै गयौ नृपति छिनाइ।
परसुराम कौं बोलि रिषि दियौ बृत्तांत सुनाइ।
परसुराम सुनि पिता-बचन, ताकौं संहारयौ।
कामधेनु दइ आनि, बचन रिषि कौ प्रतिपारयौ।
सहसबाहु के सुतनि पुनि, राखी घात लगाइ।
परसुराम जब बन गयौ, मारयौ रिषि कौं धाइ।
रिषि की यह गति देखि, रेनुका रोइ पुकारी।
परसुराम, तुम आइ लगत क्यौं नहीं गोहारी।
यह सुनि कै आयौ तुरत, मारयौ तिन्हैं प्रचारि।
बहुरौ जिय धरि क्रोध हते, छत्री इक्इस बार।
जग अराज ह्वै गयौ, रिषिनि तब अति दुख पायौ।
लै पृथ्वी कौ दान, ताहि फिरि बनहिं पठायौ।
बहुरि राज दियौ छत्रियनि, भयौ रिषिनि आनंद।
सूरदास पावत हरष, गावत गुन गोबिंद ॥१४॥
॥४५८॥

रामावतार *राग बिलावल*

हरि हरि, हरि हरि, सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
जय अरु बिजय पारषद दोइ। बिप्र-सराप असुर भए सोइ।
एक बराह रूप धरि मारयौ। इक नरसिंह - रूप संहारयौ।
रावन - कुंभकरन सोइ भए। राम जनम तिनकैं हित लए।
दसरथ नृपति अजोध्या - राव। ताकैं गृह कियौ आविर्भाव।
नृप सौं ज्यौं सुकदेव सुनायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ ॥१५॥
॥ ४५९ ॥

श्रीराम जन्म (बालकांड) *राग कान्हरौ*

आजु दसरथ कैं आँगन भीर।
ये भू-भार उतारन कारन प्रगटे स्याम-सरीर।
फूले फिरत अयोध्या-बासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरंभन हँसि देत परसपर, आनँद-नैननि नीर।

त्रिदस-नृपति, रिषि व्यौम-बिमाननि-देखत रह्यौ न धीर।
त्रिभुवन-नाथ दयालु दरस दै, हरी सबनि की पीर।
देत दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर।
भए निहाल सूर जब जाचक, जे जाँचे रघुबीर॥१६॥
॥४६०॥

राग कान्हरौ

अयोध्या बाजति आजु बधाई।
गर्भ मुच्यौ कौसिल्या माता, रामचंद्र निधि आई।
गाव सखी परसपर मंगल, रिषि अभिषेक कराई।
भीर भई दसरथ कैं आँगन, सामबेद-धुनि छाई।
पूछत रिषिहिँ अजोध्या कौ पति, कहियै जनम गुसाईँ।
भौम वार, नौमी तिथि नीकी, चौदह भुवन बड़ाई।
चारि पुत्र दसरथ कैं उपजे, तिहूँ लोक ठकुराई।
सदा-सर्वदा राज राम कौ, सूर दादि तहँ पाई॥१७॥
॥४६१॥

राग कान्हरौ

रघुकुल प्रगटे हैँ रघुबीर।
देस-देस त टीकौ आयौ, रतन-कनक-मनि-हीर।
घर-घर मंगल होत बधाई, अति पुरबासिनि भीर।
आँनँद-मगन भए सब डोलत, कछू न सोध सरीर।
मागध-बंदी-सूत लुटाए, गो-गयंद-हय-चीर।
देत असीस सूर, चिरजीवौ रामचंद्र रनधीर॥१८॥
॥४६२॥

शर-क्रीड़ा *राग बिलावल*

करतल-सोभित बान धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरे लाल पनहियाँ।
दसरथ-कौसिल्या के आगैँ, लसत सुमन की छहियाँ।
मानौ चारि हंस सरवर तैँ बैठे आइ सदेहियाँ।
रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि, प्रगटे भूतल महियाँ।
आए ओप देन रघुकुल कौँ, आनँद-निधि सब कहियाँ।

यह सुख तीनि लोक मैं नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ।
सूरदास हरि बोलि भक्त कौं, निरबाहत गहि बहियाँ ॥१६॥
॥ ४६३ ॥

राग बिलावल

धनुहीं-बान लए कर डोलत।
चारौ बीर संग इक सोभित, बचन मनोहर बोलत।
लछिमन भरत सत्रुहन सुंदर, राजिवलोचन राम।
अति सुकुमार, परम पुरुषारथ, मुक्ति-धर्म-धन-धाम।
कटि-तट पीत पिछौरी बाँधे, काकपच्छ धरे सीस।
सर-क्रीड़ा दिन देखन आवत, नारद, सुर तैंतीस।
सिव-मन सकुच, इंद्र-मन आनँद, सुख-दुख बिधिहिँ समान।
दिति दुर्बल अति, अदिति हृष्टचित, देखि सूर संधान ॥२०॥
॥३६४॥

विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा *राग सारंग*

दसरथ सौं रिषि आनि कह्यौ।
असुरनि सौं जग होन न पावत राम-लषन तब संग दयौ।
मारि ताड़का, यज्ञ करायौ, बिस्वामित्र अनंद भयौ।
सीय-स्वयंबर जानि सूर-प्रभु कौं लै रिषि ता ठौर गयौ ॥२१॥
॥४६५॥

अहेल्योद्धार *राग सारंग*

गंगा-तट आए श्रीराम।
तहाँ पषान रूप पग परसे, गौतम रिषि की बाम।
गई अकास देव तन धरिकै, अति सुंदर अभिराम।
सूरदास प्रभु पतित-उधारन-बिरद, कितौ यह काम! ॥२२॥
॥४६६॥

धनुष-भंग *राग सारंग*

चितै रघुनाथ-बदन की ओर।
रघुपति सौं अब नेम हमारौ, बिधि सौं करति निहोर।

यह अति दुसह पिनाक पिता-प्रन, राघव-बयस किसोर।
इन पै दीरघ धनुष चढ़ै क्यौं, सखि, यह संसय मोर।
सिय-अंदेस जानि सूरज-प्रभु, लियौ करज की कोर।
टूटत धनु नृप लुके जहाँ-तहँ, ज्यौं तारागन भोर ॥२३॥
॥४६७॥

दशरथ का जनकपुर-आगमन *राग सारंग*

महाराज दसरथ तहँ आए।
बैठे जाइ जनक-मंदिर महँ, मोतिनि चौक पुराए।
बिप्र लगे धुनि बेद उचारन, जुवतिनि मंगल गाए।
सुर-गंधर्ब-गन कोटिक आए, गगन बिमाननि छाए।
राम-लषन अरु भरत-सत्रुहन ब्याह निरखि सुख पाए।
सूर भयौ आनंद नृपति-मन, दिवि दुंदुभी बजाए ॥२४॥
॥४६८॥

कंकरण-मोचन *राग आसावरी*

कर कंपै, कंकन नहिं छूटै।
राम सिया-कर-परस मगन भए, कौतुक निरखि सखी सुख लूटैं।
गावत नारि गारि सब दै दै, तात-भ्रात की कौन चलावै।
तब कर-डोरि छुटै रघुपति जू, जब कौसिल्या माता आवै।
पूँगी-फल-जुत जल निरमल धरि, आनी भरि कुंडी जो कनक की।
खेलत जूप सकल जुवतिनि मैं, हारे रघुपति, जिती जनक की।
धरे निसान अजिर गृह मंगल, बिप्र बेद-अभिषेक करायौ।
सूर अमित आनंद जनकपुर, सोइ सुकदेव पुराननि गायौ ॥२५॥
॥४६९॥

धनुष-भंग; पाणिग्रहण *राग नट*

ललित गति राजत अति रघुबीर।
नरपति-सभा-मध्य मनौ ठाढ़े, जुगल हंस मति धीर।
अलख-अनंत-अपरिमित महिमा, कटि-तट कसे तुनीर।
कर धनु, काकपच्छ सिर सोभित, अंग-अंग दोउ बीर।
भूषन बिबिध बिसद अंबर जुत, सुंदर स्याम सरीर।
देखत मुदित चरित्र सबै सुर, ब्यौम-बिमाननि भीर।

प्रमुदित जनक निरखि मुख-अंबुज, प्रगट नैन मधि नीर।
तात कठिन-प्रन जानि-जानकी, आनति नहिँ उर धीर।
करुनामय जब चापि लियौ कर बाँधि सुदृढ़ कटि-चीर।
भूभृत सीस नमित जो गर्बगत, पावक सींच्यौ नीर।
डोलत महि अधीर भयौ फनिपति, कूरम अति अकुलान।
दिग्गज चलित, खलित मुनि-आसन, इंद्रादिक भय मान।
रवि मग तज्यौ, तरकि ताके हय, उत्पथ लागे जान।
सिव-बिरंचि ब्याकुल भए धुनि सुनि, जब तोर्‌यौ भगवान।
भंजन-सब्द प्रगट अति अद्‌भुत, अष्ट दिसा नभ-पूरि।
स्रवन-हीन सुनि भए अष्टकुल नाग गरब भय चूरि।
इष्ट-सुरनि बोलत नर तिहिँ सुनि, दानव-सुर बड़ सूर।
मोहित बिकल जानि जिय सबहीँ, महा प्रलय कौ मूर।
पानि-ग्रहन रघुबर बर कीन्ह्यौ, जनकसुता सुख दीन।
जय-जय-धुनि सुनि करत अमरगन, नर-नारी लवलीन।
दुष्टनि दुख, सुख संतनि दीन्हौ, नृप-व्रत पूरन कीन।
रामचंद्र दसरथहिँ बिदा करि सूरदास रस-भीन ॥२६॥
॥४७०॥

दशरथ-विदा *राग सारंग*

दसरथ चले अवध आनंदत।
जनकराइ बहु दाइज दै करि, बार-बार पद बंदत।
तनया जामातनि कौँ समदत, नैन नीर भरि आए।
सूरदास दसरथ आनंदित, चले निसान बजाए ॥२७॥
॥४७१॥

परशुराम-मिलाप *राग सारंग*

परसुराम तेहिँ औसर आए।
कठिन पिनाक कहौ किन तोर्‌यौ, क्रोधित बचन सुनाए।
बिप्र जानि रघुबीर धीर दोउ, हाथ जोरि, सिर नायौ।
बहुत दिननि कौ हुतौ पुरातन, हाथ छुअत उठि आयौ।
तुम तौ द्विज, कुल-पूज्य हमारे, हम-तुम कौन लराई ?
क्रोधवंत कछु सुन्यौ नहीँ, लियौ सायक-धनुष चढ़ाई।

तबहूँ रघुपति न कीन्हौ, धनुष न बान सँभारयौ।
सूरदास प्रभु-रूप समुझि, बन परसुराम पग धारयौ ॥२८॥
॥४७२॥

अवधपुरी-प्रवेश *राग सारंग*

अवधपुर आए दसरथ राइ।
राम, लषन अरु भरत, सत्रुहन, सोभित चारौ भाइ।
घुरत निसान, मृदंग-संख-धुनि, भेरि-झाँझ-सहनाइ।
उमगे लोग नगर के निरखत, अति सुख सबहिनि पाइ।
कौसिल्या आदिक महतारी, आरति करहिं बनाइ।
यह सुख निरखि मुदित सुर-नर-मुनि, सूरदास बलि जाइ ॥२९॥
॥४७३॥

(अयोध्या कांड)

राम-वन-गमन *राग सारंग*

महाराज दसरथ मन धारी।
अवधपुरी कौ राज राम दै, लीजै व्रत बनचारी।
यह सुनि बोली नारि कैकई, अपनौ बचन सँभारौ।
चौदह वर्ष रहैं बन राघव, छत्र भरत-सिर धारौ।
यह सुनि नृपति भयौ अति ब्याकुल, कहत कछू नहिं आई।
सूर रहे समुझाइ बहुत, पै कैकई-हठ नहिं जाई ॥३०॥
॥४७४॥

राग कान्हरौ

महाराज दसरथ यौं सोचत।
हा रघुनाथ, लछन, बैदेही, सुमिरि नीर दृग मोचत।
त्रिया-चरित मतिमंत न समुझत, उठि प्रछालि मुख धोवत।
अति बिपरीत रीति कछु औरै, बार-बार मुख जोवत!
परम कुबुद्धि कह्यौ नहिं समुझति, राम-लछन हँकराए।
कौसिल्या सुनि परम दीन ह्वै, नैन नीर ढरकाए।

बिह्वल तन-मन, चक्रृत भई सो, यह प्रतच्छ सुपनाए !
गदगद-कंठ सूर कोसलपुर सोर सुनत दुख पाए ॥३१॥
॥ ४७५ ॥

कैकेयी-वचन, श्रीराम के प्रति *राग सारंग*

सकुचनि कहत नहीँ महराज
चौदह बर्ष तुम्हैँ बन दीन्हौँ, मम सुत कौँ निज राज।
पितु-आयसु सिर धरि रघुनायक, कौसिल्या ढिग आए।
सीस नाइ बन-आज्ञा माँगी, सूर सुनत दुख पाए ॥ ३२ ॥
॥४७६॥

दसरथ-विलाप *राग सारंग*

रघुनाथ पियारे, आजु रहौ (हो)।
चारि जाम बिस्राम हमारैँ, छिन-छिन मीठे बचन कहौ (हो)।
बृथा होहु बर बचन हमारौ, कैकई जीव कलेस सहौ (हो)।
आतुर ह्वै अब छाँड़ि अपधपुर, प्रान-जिवन कित चलन कहौ (हो)।
बिछुरत प्रान पयान करैँगे, रहौ आजु पुनि पंथ गहौ (हो)।
अब सूरज दिन दरसन दुरलभ, कलित कमल कर कंठ गहौ (हो) ॥३३॥
॥४७७॥

श्रीराम-बचन, जानकी के प्रति *राग गूजरी*

तुम जानकी, जनकपुर जाहु ।
कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहवर बन दुख-सिंधु अथाहु।
तजि वह जनक-राज-भोजन-सुख, कत तृन-तलप, बिपिन-फल, खाहु !
ग्रीषम कमल-बदन कुम्हिलैहै, तजि सर निकट दूरि कित न्हाहु।
जनि कछु प्रिया, सोच मन करिहौ, मातु-पिता-परिजन-सुख लाहु।
तुम घर रहौ सीख मेरी सुनि, नातरु बन बसिकै पछिताहु।
हौँ पुनि मानि कर्म कृत रेखा, करिहौँ तात-बचन-निरबाहु।
सूर सत्य जो पतिब्रत राखो, चलौ संग जनि, उतहीँ जाहु ॥३४॥
॥ ४७८ ॥

जानकी-बचन, श्रीराम के प्रति *राग केदारौ*

ऐसौ जियन धरौ रघुराइ।
तुम-सौ प्रभु तजि मो सी दासी, अनत न कहूँ समाइ।

तुम्हरौ रूप अनूप भानु ज्यौं, जब नैनिन भरि देखौं।
ता छिन-हृदय-कमल-प्रफुलित ह्वै, जनम-सफल-करि लेखौं।
तुम्हरैं चरन-कमल सुख-सागर, यह व्रत हौं प्रतिपलिहौं।
सूर सकल सुख छाँड़ि आपनौ, बन-बिपदा-सँग चलिहौं ॥ ३५ ॥
॥४७६॥

श्रीराम-वचन, लक्ष्मण के प्रति *राग गूजरी*

तुम लछिमन निज पुरहिं सिधारौ।
बिछुरन-भेंट देहु लघु बंधू, जियत न जैहै सूल तुम्हारौ।
यह भावी कछु और काज है, को जो याकौं मेटनहारौ।
याकौं कहा परेखौ-निरखौ, मधु छीलर, सरितापति खारौ।
तुम मति-करौ अवज्ञा नृप की, यह दुख तौ आगे कौं भारौ।
सूर सुमित्रा अङ्क दीजियौ, कौसिल्यहिं प्रनाम हमारौ ॥३६॥
॥४८०॥

लक्ष्मण का उत्तर *राग सारंग*

लछिमन नैन नीर भरि आए।
उत्तर कहत कछू नहिं आयौ, रहे चरन लपटाए।
अंतरजामी प्रीत जानि कै, लछिमन लीन्हे साथ।
सूरदास रघुनाथ चले बन, पिता-बचन धरि माथ ॥ ३७ ॥
॥३८१॥

महराज दशरथ का पश्चाताप *राग कान्हरी*

फिरि-फिरि नृपति चलावत बात।
कहु री! सुमति कहा तोहिं पलटी, प्रान-जिवन कैसैं बन जात!
ह्वै बिरक्त, सिर जटा धरैं, द्रुम-चर्म, भस्म सब गात।
हा हा राम, लछन अरु सीता, फल भोजन जु डसावैं पात।
बिन रथ रूढ़, दुसह दुख मारग, बिन पद-त्रान चलैं छोउ भ्रात।
इहिं बिधि सोच करत अतिहो नृप, जानकी-ओर निरखि बिलखात।
इतनी सुनत सिमिटि सब आए, प्रेम सहित धारे अँसुपात।
ता दिन सूर सहर सब चक्रित, सबर-सनेह तज्यौ पितु-मात ॥३८॥
॥४८२॥

राम-वन-गमन *राग नट*

आजु रघुनाथ पयानो देत।
बिह्वल भए स्रबन सुनि पुरजन, पुत्र-पिता कौ हेत।
ऊँचे चढ़ि दसरथ लोचन भरि सुत-मुख देखे लेत।
रामचंद्र से पुत्र बिना मैं भूँजब क्यौं यह खेत।
देखत गमन नैन भरि आए, गात गह्यौ ज्यौं केत।
तात-तात कहि बैन उचारत, ह्वै गए भूप अचेत।
कटि तट तून, हाथ सायक-धनु, सीता बंधु समेत।
सूर गमन गह्वर कौ कीन्हौं जानत पिता अचेत ॥३६॥
॥४८३॥

लछमण-केवट-संवाद *राग मारू*

लै भैया केवट, उतराई।
महाराज रघुपति इत ठाढ़े, तैं कत नाव दुराई?
अबहिं सिला तैं भई देव-गति, जब पग-रेनु छुबाई।
हौं कुटुंब काहैं प्रतिपारौं, वैसी मति ह्वै जाई।
जाकी चरन-रेनु की महि मैं, सुनियत अधिक बड़ाई।
सूरदास प्रभु अगनित महिमा, वेद पुराननि गाई ॥४०॥
॥४८४॥

केवट विनय *राग कान्हरौ*

नौका हौं नाहीं लै आऊँ।
प्रगट प्रताप चरन- कौ देखौं, ताहि कहाँ पुनि पाऊँ?
कृपासिंधु पै केवट आयौ, कंपत करत सो बात।
चरन परसि पाषान उड़त है, कत बेरी उड़ि जात?
जो यह बधू होइ काहू की, दारु-स्वरूप धरे।
छूटै देह, जाइ सरिता तजि, पग सौं परस करे।
मेरी सकल जीविका यामैं, रघुपति मुक्त न कीजै।
सूरजदास चढ़ौ प्रभु पाछैं, रेनु पखारन दीजै ॥ ४१ ॥
॥४८५॥

राग रामकली

मेरी नौका जनि चढ़ौ त्रिभुवनपति राई।

मो देखत पाहन तरे, मेरी काठ की नाई।
मैं खेई ही पार कौं, तुम उलटि मँगाई।
मेरौ जिय यौंही डरै, मति होहि सिलाई।
मैं निरबल बित-बल नहीं, जो और गढ़ाऊँ।
मो कुटुंब याही लग्यौ, ऐसी कहँ पाऊँ?
मैं निर्धन, कछु धन नहीं, परिवार घनेरौ।
सेमर ढाकहिं काटि कै, बाँधौं तुम बेरौ।
बार-बार श्रीपति कहैं, धीवर नहिं मानै।
मन प्रतीति नहिं आवई, उड़िबौ ही जानै।
नेरैं ही जलथाह है, चलौ तुम्हैं बताऊँ।
सूरदास की बिनती, नीकैं पहुँचाऊँ ॥४२॥
॥ ४८६ ॥

पुरवधू-प्रश्न *राग रामकली*

सखी री, कौन तिहारे जात।
राजिवनैन धनुष कर लीन्हे, बदन मनोहर गात?
लज्जित होहिं पुरवधू पूछैं, अंग-अंग मुसकात।
अति मृदु चरन पंथ-बन-बिहरत, सुनियत अद्भुत बात।
सुंदर तन, सुकुमार दोउ जन, सूर-किरिन कुम्हिलात।
देखि मनोहर तीनौं मूरति, त्रिबिध-ताप-तन जात ॥४३॥
॥ ४८७ ॥

राग गौरी

अरी अरी सुंदरि नारि सुहागिनि, लागैं तेरैं पाउँ।
किहिं घाँ के तुम बीर बटाऊ, कौन तुम्हारौ गाउँ।
उत्तर दिसि हम-नगर अजोध्या, है सरजू कैं तीर।
बड़ कुल, बड़े भूप दसरथ सखि, बड़ौ नगर गंभीर।
कौनैं गुन बन चली बधू तुम, कहि मोसौं सति भाउ।
बह घर-द्वार छाँड़ि कै सुंदरि, चली पियादे पाँउ!
सासु की सौति सुहागिनि सो सखि, अतिहीं पिय की प्यारी।
अपने सुत कौं राज दिवायौ, हमकौं देस निकारी।
यह बिपरीति सुनी जब सबहीं, नैनन ढारयौ नीर।

आजु सखी चलु भवन हमारैं, सहित दोउ रघुबीर।
बरष चतुरदस भवन न बसिहैं, आज्ञा दीन्ही राइ।
उनके बचन सत्य करि सजनी, बहुरि मिलैंगे आइ।
बिनती बिहँसि सरस मुख सुंदरि, सिय सौं पूछी गाथ।
कौन बरन तुम देवर सखि री, कौन तिहारौ नाथ?
कटि तट पट पीतांबर काछे, धारे धनु-तूनीर।
गौर बरन मेरे देवर सखि, पिय मम स्याम सरीर।
तीनि जने सोभा त्रिलोक की, छाँड़ि सकल पुरधाम।
सूरदास-प्रभु-रूप चकित भए, पंथ चलत नर-बाम ॥४४॥
॥४८८॥

राग धनाश्री

कहि धौं सखी बताऊ को हैं?
अद्भुत बधू लिए सँग डोलत देखत त्रिभुवन मोहैं।
परम सुसील सुलच्छन जोरी, बिधि की रची न होइ।
काकी तिनकौं उपमा दीजै, देह धरे धौं कोइ।
इनमैं को पति आहिं तिहारे, पुरजनि पूछैं धाइ।
राजिवनैन मैन की मूरति, सैननि दियौ बताइ।
गईं सकल मिलि संग दूरि लौं, मन न फिरत पुर-बास।
सूरदास स्वामी के बिछुरत, भरि भरि लेतिं उसास ॥४५॥
॥४८९॥

दशरथ-तनु-त्याग *राग धनाश्री*

तात बचन रघुनाथ माथ धरि, जब बन गौन कियौ।
मंत्री गयौ फिराबन रथ लै, रघबर फेरि दियौ।
भुजा छुड़ाइ, तोरि तृन ज्यौं हित, कियौ प्रभु निठुर हियौ।
यह सुनि भूप तुरत तनु त्याग्यौ, बिछुरन-ताप-तयौ।
सुरति-साल-ज्वाला उर अंतर, ज्यौं पावकहिं पियौ।
इहिं बिधि बिकल सकल पुरबासी, नाहिंन चहत जियौ।
पसु-पंछी तृन-कन त्याग्यौ अरु बालक पियौ न पयौ।
सरदास रघपति के बिछुरैं, मिथ्या जनम भयौ ॥४६॥
॥४९०॥

कौशल्या-बिलाप, भरत-आगमन *राग गूजरी*

रामहिं राखौ कोऊ जाइ।
जब लगि भरत अजोध्या आवैं कहति कौसिला माइ।
पठवौ दूत भरत कौं ल्यावन, बचन कह्यौ बिलखाइ।
दसरथ-बचन राम बन गवने, यह कहियौ अरथाइ।
आए भरत, दीन ह्वै बोले, कहा कियौ कैकइ माइ?
हम सेवक वै त्रिभुवनपति, कत स्वान सिंह-बलि खाइ।
आजु अजोध्या जल नहिं अँचवौं, मुख नहिं देखौं माइ।
सूरदास राघव-बिछुरन तैं मरन भलौ दव लाइ॥४७॥
॥४६१॥

भरत-बचन माता के प्रति *राग केदारौ*

तैं कैकई कुमंत्र कियौ।
अपने कर करि काल हँकारयौ, हठ करि नृप-अपराध लियौ।
श्रीपति चलत रह्यौ कहि कैसैं तेरौ पाहन-कठिन हियौ।
मो अपराधी के हित कारन, तैं रामहिं बनबास दियौ।
कौन काज यह राज हमारैं इहिं पावक परि कौन जियौ?
लोटत सूर धरनि दोउ बंधू, मनौ तपत-विष बिषम पियौ॥४८॥
॥४६२॥

राग सोरठ

राम जू कहाँ गए री माता?
सूनौ भवन, सिंहासन सूनौ, नाहीं दसरथ ताता।
धृग तब जन्म, जियन धृग तेरौ, कही कपट-मुख बाता।
सेवक राज, नाथ बन पठए, यह कब लिखी बिधाता।
मुख अरबिंद देखि हम जीवत, ज्यौं चकोर ससि राता।
सूरदास श्रीरामचंद्र बिनु कहा अजोध्या नाता॥४९॥
॥४६३॥

महाराज दशरथ की अंत्येष्टि *राग कान्हरौ*

गुरु बसिष्ठ भरतहिँ समुझायौ।
राजा कौ परलोक सँवारौ, जुग-जुग यह चलि आयौ।

चंदन अगर सुगंध और घृत, बिधि करि चिता बनायौ।
चले बिमान संग गुरु-पुरजन, तापर नृप पौढ़ायौ।
भस्म अंत तिल-अंजलि दीन्हीँ, देव बिमान चढ़ायौ।
दिन दस लौँ जलकुंभ साजि सुचि, दीप-दान करवायौ।
जानि एकादस बिप्र बुलाए, भोजन बहुत करायौ।
दीन्हौ दान बहुत नाना बिधि, इहिँ बिधि कर्म पुजायौ।
सब करतूति कैकई कैँ सिर जिन यह दुख उपजायौ।
इहिँ बिधि सूर अयोध्या-बासी, दिन-दिन काल गँवायौ ॥५०॥
॥४६४॥

भरत का चित्रकूट-गमन *राग सारंग*

राम पै भरत चले अतुराइ।
मनहीँ मन सोचत मारग मैँ, दई, फिरैँ क्यौँ रावबराइ!
देखि दरस चरननि लपटाने, गदगद कंठ न कछु कहि जाइ।
लीनौ हृदय लगाइ सूर प्रभु, पूछत भद्र भए क्यौँ भाइ? ॥५१॥
॥४६५॥

राग केदारौ

भ्रात-मुख निरखि राम बिलखाने।
मुंडित केस-सीस, बिह्वल दोउ, उमँगि कंठ लपटाने।
तात-मरन सुनि स्रवन कृपानिधि धरनि परे मुरझाइ।
मोह-मगन, लोचन जल-धारा, बिपति न हृदय समाइ।
लोटति धरनि परी सुनि सीता, समुझति नहिँ समुझाई।
दारुन दुख दवारि ज्यौँ तृन-बन, नाहिँन बुझति बुझाई।
दुरलभ भयौ दरस दसरथ कौ, सो अपराध हमारे।
सूरदास स्वामी करुनामय, नैन न जात उघारे ॥५२॥
॥ ४६६ ॥

श्रीराम-भरत-संबाद *राग केदारौ*

तुमहिँ बिमुख रघुनाथ, कौन बिधि जीवन कहा बनै।
चरन-सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै।
हठ करि रहे, चरन नहिँ छाँड़े, नाथ, तजौ निठुराई।
परम दुखी कौसल्या जननी, चलौ सदन रघुराई।

चोदह बरष तात की आज्ञा, मोपै मेटि न जाई।
सूर स्वामि की पाँवरि सिर धरि, भरत चले बिलखाई ॥५३॥
॥४६७॥

रामोपदेश भरत-प्रति *राग मारू*

बंधू, करियौ राज सँभारे।
राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-बिप्र प्रतिपारे।
कोसल्या - कैकई - सुमित्रा - दरसन साँझ - सबारे।
गुरु बसिष्ट अरु मिलि सुमंत सौँ, परजा-हेतु बिचारे।
भरत गात सीतल ह्वै आयौ, नैन उमँगि जल ढारे।
सूरदास प्रभु दई पाँवरी, अवधपुरी पग धारे ॥५४॥
॥ ४६८ ॥

भरत-बिदा *राग सारंग*

राम यौँ भरत बहुत समुझायौ।
कौसिल्या, कैकई, सुमित्रहिँ, पुनि-पुनि सीस नवायौ।
गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौँ, अतिहीँ प्रेम बढ़ायौ।
बालक प्रतिपालक तुम दोऊ, दसरथ-लाड़ लड़ायौ।
भरत-सत्रुहन कियौ प्रनाम, रघुबर तिन्ह कंठ लगायौ।
गदगद गिरा, सजल अति लोचन, हिय सनेह-जल छायौ।
कीजै यहै बिचार परसपर, राजनीति समुझायौ।
सेवा मातु, प्रजा-प्रतिपालन, यह जुग-जुग चलि आयौ।
चित्रकूट तैँ चले खीन-तन, मन बिस्राम न पायौ।
सूरदास बलि गयौ राम कैँ, निगम नेति जिहिँ गायौ ॥५५॥
॥ ४०६ ॥

(अरण्यकांड)

सूर्पणखा-नासिकोच्छेदन *राग मारू*

काम-विवस ब्याकुल-उर-अंतर, राच्छसि एक तहाँ चलि आई।
हँसि कहि कछू राम सीता सौँ, तिहिँ लछिमन कैँ निकट पठाई।
भृकुटी कुटिल, अरुन अति लोचन, अगिनि-सिखा-मुख कह्यौ फिराई।

री बौरी, सठ भई मदन-बस, मेरैं ध्यान चरन रघुराई।
बिरह-बिथा तन गई लाज छुटि, बारंबार उठै अकुलाई।
रघुपति कह्यौ, निलज्ज निपट तू, नारि राच्छसी ह्याँ तैं जाई।
सूरदास प्रभु इक पतिनीव्रत, काटी नाक गई खिसिआई ॥५६॥
॥५००॥

खर-दूषण वध *राग सारंग*

खर-दूषण यह सुनि उठि धाए।
तिनकैं संग अनेक निसाचर, रघुपति आस्रम आए।
श्रीरघुनाथ-लछन ते मारे, कोउ एक गए पराए।
सूर्पनखा ये समाचार सब, लंका जाइ सुनाए।
दसकंधर-मारीच निसाचर, यह सुनि कै अकुलाए।
दंडक बन आए छल करि कै, सूर राम लखि धाए ॥५७॥
॥५०१॥

राग सारंग

राम धनुष अरु सायक साँधे।
सिय-हित मृग पाछैं उठि धाए, बलकल बसन, फट दृढ़ बाँधे।
नव-धन, नील-सरोज बरन बपु, विपुल बाहु, केहरि-फल-काँधे।
इंदु-बदन, राजीव-नैन बर, सीस जटा सिव-सम सिर बाँधे।
पालत, सृजत, सँहारत, सैंतत, अंड अनेक अवधि पल आधे।
सूर भजन-महिमा दिखरावत, इमि अति सुगम चरन आराधे ॥५८॥
॥ ५०२ ॥

सीता-हरण *राग केदारौ*

सीता पुहुप-बाटिका लाई।
बारंबार सराहत तरुबर, प्रेम-सहित सींचे रघुराई।
अंकुर-मूल भए सो पोषे, क्रम-क्रम लगे फूल फल आई।
नाना भाँति पाँति सुन्दर मनौं कंचन की है लता बनाई।
मृग-स्वरूव मारीच धर्‌यौ तब, फेरि चल्यौ बारक जो दिखाई।
श्रीरघुनाथ धनुष कर लीन्हौ, लागत बान देव-गति पाई।
हा लछिमन, सुनि टेर जानकी, बिकल भई, आतुर उठि धाई।
रेखा खैंचि, बारि बंधन मय, हा रघुबीर कहाँ हौ भाई।

रावन तुरत बिभूति लगाए, कहत आइ, भिच्छा दै माई।
दीन जानि, सुधि आनि भजन की, प्रेम सहित भिच्छा लै आई।
हरि सीता लै चल्यौ डरत जिय, मानौ रंक महानिधि पाई।
सूर सीय पछितात यहै कहि, करम-रेख मेटी नहिँ जाई ॥५६॥
॥ ५०३ ॥

राग मारू

इहिँ बिधि बन बसे रघुराइ।
डासि कै तृन भूमि सोवत, द्रुमनि के फल खाइ।
जगत-जननी करी बारी, मृगा चरि चरि जाइ।
कोपि कै प्रभु बान लीन्हैाँ, तबहिँ धनुष चढ़ाइ।
जनक-तनया धरी अगिनि मैँ, छाया रूप बनाइ।
यह न कोऊ भेद जानै, बिना श्री रघुराइ।
कह्यौ अनुज सौँ, रहौ ह्याँ तुम, छाँड़ि जनि कहुँ जाइ।
कनक-मृग मारीच मारयो, गिरयौ, लषन सुनाइ।
गयौ सो दै रेख, सीता कह्यौ सो कहि नहिँ जाइ।
तबहिँ निसिचर गयौ छल करि, लई सीय चुराइ।
गीध ताकौँ देखि धायौ, लरयौ सूर बनाइ।
पंख काटैँ गिरयौ, असुर तब गयौ लंका धाइ ॥६०॥
॥५०४॥

सीता का अशोक-वन-वास *राग सारंग*

बन असोक मैँ जनक-सुता कौँ रावन राख्यौ जाइ।
भूखऽरु प्यास, नींद नहिँ आवै, गई बहुत मुरझाइ।
रखवारी कौँ बहुत निसाचरि, दीन्हीँ तुरत पठाइ।
सूरदास सीता तिन्ह निरखत, मनहीँ मन पछिताइ ॥६१॥
॥५०५॥

राग केदारौ

राम-बिलाप

रघुपति कहि प्रिय नाम पुकारत।
हाथ धनुष लीन्हे, कटि भाथा, चकित भए दिसि-बिदिसि निहारत।
निरखत सून भवन जड़ ह्वै रहे, खिन लोटत धर, वपु न सँभारत।
हा सीता, सीता कहि सियपति, उमड़ि नयन जल भरि-भरि ढारत।

लगत सेष-उर बिलखि जगत गुरु, अद्भुत गति नहिँ परति बिचारत।
चितत चित्त सूर सीतापति, मोह-मेरु-दुख टरत न टारत॥६२॥
॥५०६॥

राग केदारौ

सुनौ अनुज, इहिँ बन इतननि मिलि जानकी प्रिया हरी।
कछु इक अंगनि की सहिदानी, मेरी दृष्टि परी।
कटि केहरि, कोकिल कल बानी, ससि मुख-प्रभा धरी।
मृग मूसी नैननि की सोभा, जाति न गुप्त करी।
चंपक-बरन, चरन-कर कमलनि, दाड़िम दसन लरी।
गति मराल अरु बिंब अधर-छबि, अहि अनूप कबरी।
अति करुना रघुनाथ गुसाईँ, जुग ज्यौँ जाति घरी।
सूरदास प्रभु प्रिया प्रेम-बस, निज महिमा बिसरी॥६३॥
॥५०७॥

राग केदारौ

फिरत प्रभु पूछत बन-द्रुम-बेली।
अहो बंधु, काहूँ अवलोकी इहिँ मग बधू अकेली?
अहो बिहंग, पन्नग-नृप, या कंदर के राइ।
अबकैँ मेरी बिपति मिटावौ, जानकि देहु बताइ।
चंपक - पुहुप - बरन-तन - सुंदर, मनौ चित्र-अवरेखी।
हो रघुनाथ, निसाचर कैँ सँग अबै जात हौँ देखी।
यह सुनि धावत धरनि, चरन की प्रतिमा पथ मैँ पाई।
नैन - नीर रघुनाथ सानि सो, सिव ज्यौँ गात चढ़ाई।
कहुँ हिय-हार, कहूँ कर-कंकन, कहुँ नूपुर कहुँ चीर।
सूरदास बन - बन अवलोकत, बिलख बदन रघुबीर॥६४॥
॥ ५०८ ॥

गृद्ध-उद्धरण

राग केदारौ

तुम लछिमन या कुंज-कुटी मैँ देखौ जाइ निहारि।
कोउ इक जीव नाम मम लै-लै उठत पुकारि-पुकारि।
इतनी कहत कंध तैँ कर गहि लीन्हौ धनुष सँभारि।

कृपानिधान नाम हित धाए, अपनी बिपति बिसारि।
अहो बिहंग, कहौ अपनौ दुख, पूछत ताहि खरारि।
किहिँ मति मूढ़ हत्यौ तनु तेरौ, किधौँ बिछोही नारि?
श्रीरघुनाथ-रमनि, जग-जननी, जनक-नरेस कुमारि।
ताकौँ हरन कियौ दसकंधर, हौँ तिहिँ लग्यौ गुहारि।
इतनी सुनि कृपालु कोमल प्रभु, दियौ धनुष कर झारि।
मानौ सूर प्रान लै रावन गयौ देह कौँ डारि ॥६५॥
॥ ५०६ ॥

गृद्ध-हरि-पद-प्राप्ति *राग केदारौ*

रघुपति निरखि गीध सिर नायौ।
कहिकै बात सकल सीता की, तन तजि चरन-कमल चित लायौ।
श्री रघुनाथ जानि जन अपनौ, अपनैँ कर करि ताहि जरायौ।
सूरदास प्रभु दरस परस करि, ततछन हरि कैँ लोक सिधायौ ॥६६॥
॥ ५१० ॥

शबरी-उद्धार *राग केदारौ*

सबरी-आस्रम रघुबर आए। अरधासन दै प्रभु बैठाए।
खाटे फल तजि मीठे ल्याई। जूँठे भए सो सहज सुहाई।
अंतरजामी अति हित मानि। भोजन कीने, स्वाद बखानि।
जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति-भाव हरि जुग-जुग मानत।
करि दंडवत भई बलिहारी। पुनि तन तजि हरि-लोक सिधारी।
सूरज प्रभु अति करुना भई। निज कर करि तिल-अंजलि दई।
॥ ६७ ॥ ५११ ॥

किष्किंधा कांड

सुग्रीव-मिलन *राग सारंग*

रिष्यमूक परबत बिख्याता।
इक दिन अनुज-सहित तह आए, सीतापति रघुनाथा।
कपि सुग्रीव बालि के भय तैँ बसत हुतौ तहँ आइ।
त्रास मानि तिहिँ पवन-पुत्र कौँ दीनौ तुरत पठाइ।

को ये बीर फिरैं बन बिचरत, किहिँ कारन ह्याँ आए।
सूरज-प्रभु कैँ निकट आइ कपि, हाथ जोरि सिर नाए ॥६८॥
॥ ५१२ ॥

हनुमत-राम-संवाद *राग मारू*

मिले हनु, पूछी प्रभु यह बात।
महा मधुर प्रिय बानी बोलत, साखामृग, तुम किहि के तात?
अंजनि कौ सुत, केसरि कैँ कुल पवन-गवन उपजायौ गात।
तुम को बीर, नीर भरि लोचन, मीन हीन-जल ज्यौँ मुरझात?
दसरथ-सुत कोसलपुर-बासी, त्रिया हरी तातैं अकुलात।
इहिँ गिरि पर कपिपति सुनियत है, बालि-त्रास कैसैँ दिन जात!
महादीन, बलहीन, बिकल अति, पवन-पूत देखे बिखलात।
सूर सुनत सुग्रीव चले उठि, चरन गहे पूछी कुसलात ॥६६॥
॥५१३॥

बालि-बध *राग मारू*

बड़े भाग्य इहिँ मारग आए।
गदगद कंठ, सोक सौँ रोवत, बारि बिलोचन छाए।
महाधीर गंभीर बचन सुनि, जामवंत समुझाए।
बढ़ी परस्पर प्रीति रीति तब भूषन-सिया दिखाए।
सप्त ताल सर साँधि, बालि हति, मन अभिलाष पुजाए।
सूरदास प्रभु-भुज के बलि-बलि, बिमल-बिमल जस गाए ॥७०॥
॥ ५१४ ॥

सुग्रीव को राज्य-प्राप्ति *राग सारंग*

राज दियौ सुग्रीव कौँ, तिन हरि-जस गायौ।
पुनि अंगद कौँ बोलि ढिग, या बिधि समुझायौ।
होनहार सो होत है, नहिँ जात मिटायौ।
चतुरमास सूरज प्रभू, तिहिँ ठौर बितायौ ॥ ७१ ॥
॥ ५१५ ॥

सीता-शोध *राग सारंग*

श्री रघुपति सुग्रीव कौँ, निज निकट बुलायौ।
लीजै सुधि अब सीय की, यह कहि समुझायौ।

जामवंत-अंगद-हनू, उठि माथौ नायौ।
हाथ मुद्रिका प्रभु दई, संदेस सुनायौ।
आए तीर समुद्र के, कछु सोध न पायौ।
सूर सँपाती तहँ मिल्यौ, यह बचन सुनायौ ॥ ७२ ॥
॥ ५१६ ॥

संपाती-वानर-संवाद *राग सारंग*

बिछुरी मनौ संग तैं हिरनी।
चितवत रहत चकित चारौं दिसि, उपजी बिरह तन जरनी।
तरुवर-मूल अकेली ठाढ़ी, दुखित राम की घरनी।
बसन कुचील, चिहुर लपिटाने, बिपति जाति नहिँ बरनी।
लेति उसास नयन जल भरि-भरि, धुकि सो परै धरि धरनी।
सूर सोच जिय पोच निसाचर, राम नाम की सरनी ॥ ७३ ॥
॥ ५१७ ॥

सुंदरकांड

राग केदारौ

तब अंगद यह बचन कह्यौ।
को तरि सिंधु सिया-सुधि ल्यावे, किहिँ बल इतो लह्यौ ?
इतनौ बचन स्रवन सुनि हरष्यौ, हँसि बोल्यौ जमुवंत।
या दल मध्य प्रगट केसरि-सुत, जाहि नाम हनुमंत।
वहै ल्याइहै सिय-सुधि छिन मैं, अरु आइहै तुरंत।
उन प्रताप त्रिभुवन कौ पायौ, वाके बलहिँ न अंत।
जौ मन करै एक बासर मैँ, छिन आवै छिन जाइ।
स्वर्ग- पताल माहिँ गम ताकौ, कहियै कहा बनाइ !
केतिक लंक, उपारि बाम कर, लै आवै उचकाइ।
पवन-पुत्र बलवंत बज्र-तनु, कानँ हटक्यौ जाइ।
लियौ बुलाइ मुदित चित ह्वैकै, कह्यौ, तंबोलहिँ लेहु।
ल्यावहु जाइ जनक - तनया - सुधि, रघुपति कौँ सुख देहु।
पौरि-पौरि प्रति फिरौ विलोकत, गिरि कंदर - बन - गेहु।
समय बिचारि मुद्रिका दीजौ, सुनौ मंत्र सुत एहु।

लियौ तँबोल माथ धरि हनुमत, कियौ चतुरगुन गात।
चढ़ि गिरि-सिखर सब्द इक उचर्यौ, गगन उठ्यौ आघात।
कंपत कमठ - सेष - बसुधा - नभ, रवि-रथ भयौ उतपात।
मानौ पच्छ सुमेरहिँ लागे, उड़्यौ अकासहिँ जात।
चकित सकल परस्पर बानर बीच परी किलकार।
तहँ इक अदभुत देखि निसिचरी, सुरसा-मुख-बिस्तार।
पवन-पुत्र मुख पैठि पधारे, तहाँ लगी कछु बार।
सूरदास स्वामी-प्रताप-बल, उतर्यौ जलनिधि पार ॥७४॥
॥ ५१८ ॥

राग धनाश्री

लखि लोचन, सोचै हनुमान।
चहुँ दिसि लंक-दुर्ग दानवदल, कैसैँ पाऊँ जान।
सौ जोजन बिस्तार कनकपुरि, चकरी जोजन बीस।
मनौ बिस्वकर्मा कर अपुनैँ, रचि राखी गिरि-सीस।
गरजत रहत मत्त गज चहुँदिसि, छत्र-धुजा चहुँ दीस।
भरमित भयौ देखि मारुत-सुत, दियौ महाबल ईस!
उड़ि हनुमंत गयौ आकासहिँ, पहुँच्यौ नगर मँझारि।
बन-उपबन, गम-अगम-अगोचर-मंदिर, फिर्यौ निहारि।
भई पैज अब हीन हमारी, जिय मैँ कहै बिचारि।
पटकि पूँछ, माथौ धुनि लोटै, लखी न राघव-नारि।
नाना रूप निसाचर अद्भुत, सदा करत मद-पान।
ठौर ठौर अभ्यास महाबल करत कुंत-असि-बान।
जिय सिय-सोच करत मारुत-सुत, जियति न मेरैँ जान।
कै वह भाजि सिंधु मैँ डूबी, कै उहिँ तज्यौ परान।
कैसैँ नाथहिँ मुख दिखराऊँ जौ बिनु देखे जाउँ।
बानर बीर हँसैँगे मोकौँ, तैँ बोर्यौ पितु-नाउँ।
रिच्छप तर्क बोलिहै मोसौँ, ताको बहुत डराउँ।
भलैँ राम कौँ सीय मिलाई, जीति कनकपुर गाउँ।
जब मोहिँ अंगद कुसल पूछिहै, कहा कहौँगो वाहि।
या जीवन तैँ मरन भलौ है, मैँ देख्यौ अवगाहिं।
मारौँ आजु लंक लंकापति, लै दिखराऊँ ताहि।
चौदह सहस जुवति अंतःपुर, लैहैँ राघव चाहि।

मंदिर की परछाया बैठ्यौ, कर मीजै पछिताइ।
पहिलैँ हूँ न लखी मैँ सीता, क्यौँ पहिचानी आइ।
दुर्बल दीन-छीन चिंतित अति जपत नाइ रघुराइ।
ऐसी बिधि देखिहौँ जानकी, रहिहौँ सीस नवाइ।
बहुरि बीर जब गयौ अवासहिँ, जहाँ बसै दसकंध।
नगनि जटित मनि-खंभ बनाए, पूरन बात-सुगंध!
स्वेत छत्र फहरात सीस पर, मनौ लच्छि कौ वंध।
चौदह सहस नाग-कन्या-रति, पर्यौ सो रत मति अंध।
बीना - झाँझ - पखाउज - आउज, और राजसी भोग।
पुहुप-प्रजंक परी नवजोबनि, सुख-परिमल-संजोग।
जिय जिय गढ़ै, करै बिस्वासहिँ, जानै लंका लोग।
इहिँ सुख-हेत हरी है सीता, राघव बिपति-बियोग!
पुनि आयौ सीता जहँ बैठी, बन असोक के माहिँ।
चारौँ ओर निसिचरी घेरे, नर जिहिँ देखि डराहिँ।
बैठ्यौ जाइ एक तरुवर पर, जाकी सीतल छाहिँ।
बहु निसाचरी मध्य जानकी, मलिन बसन तन माहिँ।
बारंबार बिसूरि सूर दुख, जपत नाम रघुनाहु।
ऐसी भाँति जानकी देखी, चंद गह्यौ ज्यौँ राहु॥ ७५॥
॥५१६॥

राग मारू

गयौ कूदि हनुमंत जब सिंधु-पारा।
सेष के सीस लागे कमठ पीठि सौँ, धँसे गिरिबर सबै तासु भारा।
लंक गढ माहिं आकास मारग गयौ चहूँ दिसि बज्र लागे किवारा।
पौरि सब देखि सो असोक बन मैँ गयौ, निरखि सीता छप्यौ बृच्छ-डारा।
सोच लाग्यौ करन, यहै धौँ जानकी, कै कोऊ और, मोहिं नहिँ चिन्हारा।
सूर आकासबानी भई तबै तहँ, यहै बैदेहि है, करु जुहारा॥ ७६॥
॥ ५२०॥

निशिचरी-वचन, जानकी-प्रति *राग मारू*

समुझि अब निरखि जानकी मोहिँ।
बड़ौ भाग गुनि, अगम दसानन, सिव बर दीनौ तोहिँ।

केतिक राम कृपन, ताकी पितु-मातु घटाई कानि।
तेरौ पिता जो जनक जानकी, कीरति कहैाँ बखानि।
बिधि संजोग टरत नहिँ टारैँ, बन दुख देख्यौ आनि।
अब रावन घर बिलसि सहज सुख, कह्यौ हमारौ मानि।
इतनौ बचन सुनत सिर धुनिकै, बोली सिया रिसाइ।
अहो ढीठ, मति मुग्ध निसिचरी, बैठी सनमुख आइ।
तब रावन कौ बदन देखिहौँ, दससिर-स्रोनित न्हाइ।
कै तन देउँ मध्य पावक के, कै बिलसैँ रघुराइ।
जो पै पतिव्रता व्रत तेरैँ, जीवति बिछुरी काइ?
तब किन मुई, कहौ तुम मोसौँ भुजा गही जब राइ?
अब झूठौ अभिमान करति हौ, झुकति जो उनकैँ नाउँ।
सुखहीँ रहसि मिलौ रावन कौँ, अपनैँ सहज सुभाउ।
जौ तू रामहिँ दोष लगावै, करौँ प्रान कौ घात।
तुमरे कुल कौँ बेर न लागै, होत भस्म संघात।
उनकैँ क्रोध जरे लंकापति, तेरैँ हृदय समाइ।
तौ पै सूर पतिव्रत साँचौ, जौ देखैाँ रघुराइ ॥७७॥
॥५२१॥

निशिचरी-रावण-संवाद *राग धनाश्री*

सुनौ किन कनकपुरी के राइ।
हौँ बुधि-बल-छल करि पचि हारी, लख्यौ न सीस उचाइ।
डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलटि जग परई।
नसै धर्म मन बचन काय करि, सिंधु अचंभौ करई।
अचला चलै चलत पुनि थाके, चिरंजीवि सो मरई।
श्री रघुनाथ-प्रताप पतिव्रत, सीता-सत नहिँ टरई।
ऐसी तिया हरत क्यौँ आई, ताकौ यह सतिभाउ।
मन-बच-कर्म और नहिँ दूजौ, बिन रघुनंदन राउ।
उनकैँ क्रोध भस्म ह्वै जैहौ, करौ न सीता चाउ।
तब तुम काकी सरन उबरिहौ, सो बलि मोहिँ बताउ?
"जौ सीता सत तैँ बिचलै तौ श्रीपति काहि सँभारै?
'मोसे मुग्ध महापापी कौँ कौन क्रोध करि तारै?

'ये जननी, वै प्रभु रघुनंदन, हौँ सेवक प्रतिहार।
'सीता-राम सूर संगम बिनु कौन उतारै पार ?" ॥ ७८ ॥
॥५२२॥

रावरण-वचन, सीता-प्रति *राग मारू*

जनकसुता, तू समुझि चित्त मैँ, हरषि मोहिँ तन हेरि।
चौदह सहस किन्नरी जेती, सब दासी हैँ तेरी।
कहै तौ जनक गेह दै पठवौँ, अरध लंक कौ राज।
तोहिँ देखि चतुरानन मोहै, तू सुंदरि-सिरताज।
छाँड़ि राम तपसी के मोहैँ, उठि आभूषन साजु।
चौदह सहस तिया मैँ तोकौँ, पटा बँधाऊँ आजु।
कठिन बचन सुनि स्रवन जानकी, सकी न बचन सँभारि।
तृन-अंतर दै दृष्टि तरौँधी, दियौ नयन जल ढारि।
पापी, जाउ जीभ गरि तेरी, अजुगुत बात बिचारी।
सिंह कौ भच्छ सृगाल न पावै, हौँ समरथ की नारी।
चौदह सहस सेन खरदूषन, हती राम इक बान।
लछिमन-राम-धनुष-सन्मुख परि काके रहिहैँ प्रान ?
मेरौ हरन मरन है तेरौ, स्यौँ कुटुंब - संतान।
जरिहै लंक कनकपुर तेरौ, उदवत रघुकुल-भान।
तोकौँ अबध कहत सब कोऊ, तातैँ सहियत बात।
बिना प्रयास मारिहौँ तोकौँ, आजु रैनि कै प्रात।
यह राकस की जाति हमारी, मोह न उपजै गात।
परतिय रमैँ, धर्म कहा जानैँ, डोलत मानुष खात।
मन मैँ डरी, कानि जिनि तोरै, मोहिँ अबला जिय जानि।
नख-सिख-बसन सँभारि, सकुच तनु, कुच-कपोल गहि पानि।
रे दसकंध, अंधमति, तेरी आयु तुलानी आनि।
सूर राम की करत अवज्ञा, डारैँ सब भुज भानि ॥ ७६ ॥
॥५२३॥

त्रिजटा-सीता-संवाद *राग मारू*

त्रिजटी सीता पै चलि आई।
मन मैँ सोच न करि तू माता, यह कहि कै समुझाई।

नलकूबर कौ साप रावनहिँ, तो पर बल न बसाई।
सूरदास मनु जरी सजीवनि श्री रघुनाथ पठाई ॥ ८० ॥
॥ ५२४ ॥

राग कान्हरौ

सो दिन त्रिजटी, कहु कब ऐहै ?
जा दिन चरनकमल रघुपति के हरषि जानकी हृदय लगैहै।
कबहुँक लछिमन पाइ सुमित्रा, माइ-माइ कहि मोहिँ सुनैहै।
कबहुँक कृपावंत कौशिल्या, बधू-बधू कहि मोहिँ बुलैहै।
जा दिन कंचनपुर प्रभु ऐहैँ बिमल ध्वजा रथ पर फहरैहै।
ता दिन जनम सफल करि मानौं, मेरी हृदय-कालिमा जैहै।
जा दिन राम रावनहिँ मारैँ, ईसहिँ लै दससीस चढ़ैहैँ।
ता दिन सूर राम पै सीता सरबस वारि बधाई दैहै ॥८१॥
॥ ५२५ ॥

राग सारंग

मैँ तो राम-चरन चित दीन्हौँ।
मनसा, बाचा और कर्मना, वहुरि मिलन कौँ आगम कीन्हौँ।
डुलै सुमेरु सेष-सिर कंपै, पच्छिम उदै करै बासर-पति।
सुनि त्रिजटी, तौहुँ नहिँ छाड़ौँ मधुर मूर्ति रघुनाथ-गात-रति।
सीता करति विचार मनहिँ मन, आजु-काल्हि कोसलपति आवैँ।
सूरदास स्वामी करुनामय, सो कृपालु मोहिँ क्यौँ बिसरावैँ ! ॥८२॥
॥ ५२६ ॥

त्रिजटा-स्वप्न; हनुमान-सीता-मिलन *राग धनाश्री*

सुनि सीता, सपने की बात।
रामचंद्र-लछिमन मैँ देखे, ऐसी बिधि परभात।
कुसुम-बिमान बैठी बैदेही, देखी राघव पास।
स्वेत छत्र रघुनाथ-सीस पर, दिनकर-किरन प्रकास।
भयौ पलायमान दानवकुल ब्याकुल सायक-त्रास।
परजत धुजा, पताक, छत्र, रथ, मनिमय कनक-अवास।
रावन-सीस पुहुमि पर लोटत, मंदोदरि बिलखाइ।
कुंभकरन-तन पंक लगाई, लंक बिभीषन पाइ।

प्रगटयौ आइ लंक दल कपि कौ, फिरी रघुबीर दुहाइ।
या सपने कौ भाव सिया सुनि, कबहुँ बिफल नहिं जाइ।
त्रिजटी बचन सुनत बैदेही अति दुख लेति उसास।
हा हा रामचंद्र, हा लछिमन, हा कौसिल्या सास।
त्रिभुवननाथ नाह जो पावै, सहै सो क्यौं बनबास ?
हा कैकेई, सुमित्रा जननी, कठिन निसाचर-त्रास !
कौन पाप मैं पापिन कीन्हौ, प्रगटयौ जो इहिं बार।
धिक धिक जीवन है अब यह तन, क्यौं न होइ जरि छार।
द्वै अपराध मोहिं ये लागे, मृग-हित दियौ हथियार।
जान्यो नहीं निसाचर कौ छल, नाध्यौ धनुष-प्रकार।
पंछी एक सुहृद जानत हौं, करयौ निसाचर भंग।
तातैं बिरमि रहे रघुनंदन, करि मनसा-गति पंग।
इतनौ कहत नैन उर फरके, सगुन जनायौ अंग।
आजु लहौं रघुनाथ सँदेसौ, मिटै बिरह दुख संग।
तिहिं छिन पवन-पूत तहँ प्रगटयौ, सिया अकेली जानि।
"श्री दसरथकुमार दोउ बंधू, धरे धनुष-सर पानि।
'प्रिया-बियोग फिरत मारे मन, परे सिंधु-तट आनि।
'ता सुंदरि-हित मोहिं पठायौ, सकौं न हौं पहिचानि।"
बारंबार निरखि तरुबर तन, कर मीड़ति पछिताइ।
दनुज, देव, पसु, पच्छी, को तू, नाम लेत रघुराइ ?
बोल्यो नहीं, रह्यो दुरि बानर, द्रुम मैं देहि छपाइ।
कै अपराध ओड़ि तू मेरौ, कै तू देहि दिखाइ।
तरुवर त्यागि चपल साखामृग, सम्मुख बैठ्यौ आइ।
माता, पुत्र जानि दै उत्तर, कहु किहिं बिधि बिलखाइ ?
किन्नर-नाग देबि सुर-कन्या, कासौं हुति उपजाइ ?
कै तू जनक-कुमारि जानकी, राम-बियोगिनि आइ ?
राम नाम सुनि उत्तर दीन्हौ, पिता बंधु मम होहि।
मैं सीता, रावन हरि ल्यायौ, त्रास दिखावत मोहिं।
अब मैं मरौं सिंधु मैं बूड़ौं, चित मैं आवै कोह।
सुनौ बच्छ, धिक जीवन मेरौ, लछिमन-राम-बिछोह।
कुसल जानकी, श्रीरघुनंदन, कुसल लच्छिमन भाइ।
तुम-हित नाथ कठिन व्रत कीन्हो, नहिं जल-भोजन खाइ।

मुरे न अंग कोउ जो काटै, निसि-बासर सम जाइ।
तुम घट प्रान देखियत सीता, बिना प्रान रघुराइ।
बानर बीर चहूँ दिसि धाए, ढूँढैं गिरि-बन-झार।
सुभट अनेक सबल दल साजे, परे सिंधु के पार।
उद्यम मेरौ सफल भयौ अब, तुम देख्यौ जो निहारि।
अब रघुनाथ मिलाऊँ तुमकौं सुंदरि सोक निवारि।
यह सुनि सिय मन संका उपजी, रावन-दूत बिचारि।
छल करि आयौ निसिचर कोऊ, बानर रूपहिं धारि।
स्रवन मूँदि, मुख आँचर ढाँप्यौ अरे निसाचर, चोर।
काहे कौं छल करि-करि आवत, धर्म बिनासन मोर?
पावक परौं, सिंधु महँ बूड़ौं, नहिं मुख देखौं तोर।
पापी क्यौं न पीठि दै मोकौं, पाहन सरिस कठोर।
जिय अति डरयौ, मोहिं मति सापै, ब्याकुल बचन कहंत।
मोहिं बर दियौ सकल देवनि मिलि, नाम धरयौ हनुमंत।
अंजनि-कुँवर राम कौ पायक, ताकैं बल गर्जंत।
जिहिं अंगद-सुग्रीव उबारे, बध्यौ बालि बलवंत।
लेहु मातु, सहिदानि मुद्रिका, दई प्रीति करि नाथ।
सावधान ह्वै सोक निवारहु, ओड़हु दच्छिन हाथ।
खिन मुँदरी, खिनहीं हनुमत सौं, कहति बिसूरि-बिसूरि।
कहि मुद्रिके, कहाँ तैं छाँड़े मेरे जीवन-मूरि?
कहियौ बच्छ, सँदेसौ इतनौ जब हम वै इक थान।
सोवत काग छुयौ तन मेरौ, बरहहिं कीनौ बान।
फोरयौ नयन काग नहिं छाँड़यौ सुरपति के बिदमान!
अब वह कोप कहाँ रघुनंदन, दससिर-बेर बिलान?
निकट बुलाइ बिठाइ निरखि मुख, अंचर लेत बलाइ।
चिरजीवौ सुकुमार पवन-सुत, गहति दीन ह्वै पाइ।
बहुत भुजनि बल होइ तुम्हारैं, ये अंमृत फल खाहु।
अब की बेर सूर प्रभु मिलवहु, बहुरि प्रान किन जाहु॥ ८३॥
॥५२७॥

हनुमान-कृत सीता-समाधान *राग मारू*

जननी, हौं अनुचर रघुपति कौ।
मति माता करि कोप सरापै, नहिं दानव ठग मति कौ।

आज्ञा होइ, देउँ कर-मुँदरी, कहौँ सँदेसौ पति कौ।
मति हिय बिलख करौ सिय, रघुबर हतिहैँ कुल दैयत कौ।
कहौ तौ लंक उखारि डारि देउँ, जहाँ पिता संपति कौ।
कहौ तौ मारि-सँहारि निसाचर, रावन करौँ अगति कौ।
सागर-तीर भीर बनचर की, देखि कटक रघुपति कौ।
अबै मिलाऊँ तुम्हैँ सूर प्रभु, राम-रोष डर अति कौ॥ ८४॥
॥५२८॥

राग मारू

अनुचर रघुनाथ कौ तब दरस-काज आयौ।
पवन-पूत कपिस्वरूप, भक्तनि मैँ गायौ।
आयसु जौ होइ जननि, सकल असुर मारौँ।
लंकेस्वर बाँधि राम-चरननि तर डारौँ।
तपसी तप करैँ जहाँ, सोई बन झाँखौ।
जाकी तुम बैठी छाहँ, सोई द्रुम राखौँ।
चढ़ि चलौ जौ पीठि मेरी, अबहिँ लै मिलाऊँ।
सूर श्री रघुनाथ जू की, लीला नित गाऊँ॥ ८५॥
॥५२६॥

राग मारू

तुम्हैँ पहिचानति नाहीँ बीर।
इन नैननि कबहूँ नहिँ देख्यौ, रामचंद्र कैँ तीर।
लंका बसत दैत्य अरु दानव, उनके अगम सरीर।
तोहिँ देखि मेरौ जिय डरपत, नैननि आवत नीर।
तब कर काढ़ि अँगूठी दीन्हीँ, जिहिँ जिय उपज्यौ धीर।
सूरदास प्रभु लंका-कारन, आए सागर-तीर॥ ८६॥
॥ ५३०॥

राग सारंग

जननी, हौँ रघुनाथ पठायौ।
रामचंद्र आए की तुमकौँ देन बधाई आयौ।
हौँ हनुमंत, कपट जिनि समझौ, बात कहत सतभाई।
मुँदरी दूत धरी लै आगैँ, तब प्रतीति जिय आई।

अति सुख पाइ उठाइ लई तब, बार-बार उर भेँटै।
ज्यौँ मलयागिरि पाइ आपनी जरनि हृदै की मेटै
लछिमन पालागन कहि पठयौ, हेत बहुत करि माता !
दई असीस तरनि-सन्मुख ह्वै चिरजीवौ दोउ भ्राता।
बिछुरन कौ संताप हमारौ, तुम दरसन दै काट्यौ।
ज्यौँ रबि-तेज पाइ दसहूँ दिसि, दोष कुहर कौ फाट्यौ।
ठाढ़ौ बिनती करत पवन-सुत, अब जो आज्ञा पाऊँ।
अपनैँ देखि चले कौ यह सुख, उनहूँ जाइ सुनाऊँ।
कल्प-समान एक छिन राघव, क्रम-क्रम करि हैँ बितवत।
तातैँ हौँ अकुलात, कृपानिधि ह्वैहैँ पैँड़ो चितवत।
रावन हति, लै चलौँ साथही, लंका धरौँ अपूठी।
यातैँ जिय सकुचात, नाथ की होइ प्रतिज्ञा झूठी।
अब ह्याँ की सब दसा हमारी, सूर सो कहियौ जाइ।
बिनती बहुत कहा कहौँ, जिहिँ बिधि देखौँ रघुपति-पाइ ॥८७॥

॥ ५३१ ॥

राग मलार

बनचर, कौन देस तैँ आयौ ?
कहाँ वै राम, कहाँ वै लछिमन, क्यौँ करि मुद्रा पायौ ?
हौँ हनुमंत, राम कौ सेवक, तुम सुधि लैन पठायौ।
रावन मारि, तुम्हैँ लै जातौ, रामाज्ञा नहिँ पायौ।
तुम जनि डरपौ मेरी माता, राम जोरि दल ल्यायौ।
सूरदास रावन कुल-खोवन, सोवत सिंह जगायौ ॥८८॥

॥ ५३२ ॥

राग सारंग

कहौ कपि, कैसैँ उतरे पार ?
दुस्तर अति गंभीर बारि-निधि, सत जोजन बिस्तार।
इत उत दैत्य क्रुद्ध मारन कौँ, आयुध धरे अपार।
हाटकपुरी कठिन पथ, बानर, आए कौन अधार।
राम-प्रताप, सत्य सीता कौ, यहै नाव - कनधार।
तिहिँ अधार छिन मैँ अवलंघ्यौ, आवत भई न बार।

पृष्ठभाग चढ़ि जनक-नंदिनी, पौरुष देखि हमार।
सूरदास लै जाउँ तहाँ, जहँ रघुपति कंत तुम्हार ॥८६॥
॥ ५३३ ॥

राग मारू

हनुमत, भली करी तम आए।
बारंबार कहति बैदेही, दुख-संताप मिटाए।
श्री रघुनाथ और लछिमन के समाचार सब पाए।
अब परतीति भई मन मेरैँ, संग मुद्रिका लाए।
क्यौं करि सिंधु-पार तुम उतरे, क्यौं करि लंका आए।
सूरदास रघुनाथ जानि जिय, तव बल इहाँ पठाए ॥९०॥
॥ ५३४ ॥

राग कान्हरौ

सुनु कपि, वै रघुनाथ नहीँ?
जिन रघुनाथ पिनाक पिता-गृह तोर्‍यौ निमिष महीँ।
जिन रघुनाथ फेरि भृगुपति-गति डारी काटि तहीँ।
जिन रघुनाथ-हाथ खर-दूषन-प्रान हरे सरहीँ।
कै रघुनाथ तज्यौ प्रन अपनौ, जोगिनि दसा गही?
कै रघुनाथ दुखित कानन, कै नृप भए रघुकुलहीँ।
कै रघुनाथ अतुल बल राच्छस दसकंधर डरहीँ?
छाँड़ी नारि बिचारि पवन-सुत लंक बाग बसहीँ।
कै हैं कुटिल, कुचील, कुलच्छनि, तजी कंत तबहीँ!
सूरदास स्वामी सौँ कहियौ अब बिरमाहिँ नहीँ ॥९१॥
॥ ५३५ ॥

सीता-संदेश, श्रीराम-प्रति *राग कान्हरौ*

यह गति देखे जात, सँदेसौ कैसैँ कै जु कहौँ?
सुनु कपि, अपने प्रान कौ पहरौ, कब लगि देति रहौँ?
ये अति चपल, चल्यौ चाहत हैं, करत न कछू बिचार।
कहि धौँ प्रान कहाँ लौँ राखौँ, रोकि देह मुख द्वार?

इतनी बात जनावति तुमसौं, सकुचति हैं हनुमंत।
नाहिँ सूर सुन्यौ दुख कबहूँ, प्रभु करुनामय कंत! ॥६२॥
॥ ३३६ ॥

राग मारू

कहियौ कपि, रघुनाथ राज सौं सादर यह इक बिनती मेरी।
नाहिँ सही परति मोपै अब, दारुन त्रास निसाचर केरी।
यह तौ अंध बीसहूँ लोचन, छल,बल करत आनि मुख हेरी।
आइ सृगाल सिंह बलि चाहत, यह मरजाद जाति प्रभु तेरी।
जिहिं भुज परसुराम बल करष्यौ, ते भुज क्यौं न सँभारत फेरी।
सूर सनेह जानि करुनामय, लेहु छुड़ाय जानकी चेरी ॥६३॥
॥ ५३७ ॥

राग मारू

मैं परदेसिन नारि अकेली।
बिनु रघुनाथ और नहिं कोऊ, मातु-पिता न सहेली।
रावन भेष जरयो तपसी कौ, कत मैं भिच्छा मेली।
अति अज्ञान मूढ़-मति मेरी, राम-रेख पग पेली।
बिरह-ताप तन अधिक जरावत, जैसैं देव द्रुम बेली।
सूरदास प्रभु बेगि मिलावौ, प्रान जात हैं खेली ॥६४॥
॥ ५३८ ॥

सीता-परितोष *राग मारू*

तू जननी अब दुख जनि मानहि।
रामचंद्र नहिं दूरि कहूँ, पुनि भूलिहु चिंता नहिं आनहिं।
अबहिं लिवाइ जाउँ सब रिपु हति, डरपत हैं आज्ञा-अपमानहिं।
राख्यौ सुफल सँवारि, सान दै, कैसैं निफल करौं वा बानहिं?
हैं केतिक ये तिमिर-निसाचर, उदित एक रघुकुल के भानहिं।
काटन दै दस सीस बीस भुज, अपनौ कृत येऊ जो जानहिं।
देहिं दरस सुभ नैननि कहुँ प्रभु, रिपु कौं नासि सहित संतानहिं।
सूर सपथ मोहिं, इनहिं दिननि मैं, लैजु आइहैं कृपानिधानहिं ॥६५॥
॥ ५३९ ॥

अशोक-वन-भंग राग मारू

हनुमत बल प्रगट भयौ, आज्ञा जब पाई।
जनक-सुता-चरन बंदि, फूल्यौ न समाई।
अगनित तरु-फलसुगंध-मृदुल-मिष्ट-खाटे।
मनसा करि प्रभुहिँ अर्पि, भोजन करि डाटे।
द्रुम गहि उतपाटि लिए, दै-दै किलकारी।
दानव बिन प्रान भए, देखि चरित भारी।
बिह्वल-मति कहन गए, जोरे सब हाथा।
बानर बन बिघन कियौ, निसिचर-कुल-नाथा।
वह सिसंक, अतिहिँ ढीठ, बिडरे नहिँ भाजै।
मानौ बन-कदलि-मध्य उनमत गज गाजै।
भानै मठ, कूप, बाइ, सरवर कौ पानी।
गौरि-कंत पूजत जहँ नूतन जल जानी।
पहुँची तब असुर-सैन साखामृग जान्यौ।
मानौ जल-जीव सिमिटि जान मैँ समान्यौ।
तरुवर तब इक उपाटि हनुमत कर लीन्यौ।
किंकर कर पकरि बान तीनि खंड कीन्यौ।
जोजन बिस्तार सिला पवन-सुत उपाटी।
किंकर करि बान लच्छ अंतरिच्छ काटी।
आगर इक लोह जटित, लीन्ही बरिवंड।
दुहूँ करनि असुर हयौ, भयौ मांस-पिंड।
दुधर परहस्त-सग आइ सैन भारी।
पवन-पूत दानव-दल ताड़े दिसिचारी।
राम-राम हनूमंत लच्छ-लच्छ बान।
जहाँ-तहाँ दीसत, कपि करत राम-आन।
मंत्री-सुत पाँच सहित अछयकुँबर सूर।
सैन सहित सबै हते झपटि कै लँगूर।
चतुरानन-बल सँभारि मेघनाद आयो।
मानौ घन पावस मैँ नागपति है छायौ।
देख्यौ जब, दिब्यबान निसिचर कर तान्यौ।
छाँड़्यौ तव सूर हनू ब्रह्म-तेज मान्यौ ॥९६॥
॥५४०॥

हनुमान-रावण-संवाद *राग मारू*

सीतापति-सेवक तोहिँ देखन कौँ आयौ।
काक बल बैर तैँ जु राम तैँ बढ़ायौ?
जे-जे तुव सूर सुभट, कीट सम न लेखौँ।
तोकौँ दसकंध अंध, प्राननि बिनु देखौँ।
नख-सिख ज्यौँ मीन-जाल, जड़्यौ अंग-अंगा।
अजहुँ नाहिँ संक धरत, वानर मति-भंगा!
जोइ सोइ मुखहिँ कहत, मरन निज न जानै।
जैसैँ नर सन्निपात भएँ बुध बखानैँ।
तब तू गयौ सून भवन, भस्म अंग पोते।
करते बिन प्रान तोहिँ, लछिमन जौ होते।
पाछे तैँ हरी सिया, न मरजाद राखी।
जौ पै दसकंध बली, रेख क्यौँ न नाखी?
अजहूँ सिय सौँपि नतरु बीस भुजा भानै।
रघुपति यह पैज करी, भूतल धरि पानैँ।
ब्रह्मबान कानि करी, बल करि नहिँ बाँध्यौ।
कैसैँ परताप घटै, रघुपति आराध्यौ!
देखत कपि बाहु-दंड तन प्रस्वेद छूटे।
जै-जै रघुनाथ कहत, बंधन सब टूटे।
देखत बल दूरि कर्‌यौ, मेघनाद गारौ।
आपुन भयौ सकुचि सूर बंधन तैँ न्यारौ ॥९७॥
॥५४१॥

लंका-दहन *राग मारू*

मंत्रिनि नीकौ मंत्र बिचार्‌यौ।
राजन कह्यौ, दूत काहू कौ, कौन नृपति है मार्‌यौ?
इतनी सुनत बिभीषन बोले, बंधू पाइ परौँ।
यह अनरीति सुनी नहिँ स्रवननि, अब नई कहा करौ?
हरी विधाता बुद्धि सबनि की, अति आतुर ह्वै धाए।
सन अरु सूत, चीर-पाटंबर, लै लंगूर बँधाए।
तेल - तूल - पावक - पुट धरिकै, देखन चहैँ जरौ।
कपि मन कह्यौ भली मति दीनी, रघुपति-काज करौ।

बंधन तोरि, मोरि मुख असुरनि ज्वाला प्रकट करी।
रघुपति-चरन-प्रताप सूर तब, लंका सकल जरी ॥ ६८ ॥
॥५४२॥

राग धनाश्री

सोचि जिय पवन-पूत पछिताइ।
अगम अपार सिंधु दुस्तर तरि, कहा कियौ मैं आइ?
सेवक कौ सेवापन एतौ, आज्ञाकारी होइ।
बिन आज्ञा मैं भवन पजारे, अपजस करिहैं लोइ।
वे रघुनाथ चतुर कहियत हैं, अंतरजामी सोइ।
या भयभीत देखि लंका मैं, सीय जरी मति होइ।
इतनी कहत गगनबानी भई, हनू सोच कत करई?
चिरंजीवि सीता तरुवर तर, अटल न कबहूँ टरई।
फिरि अवलोकि सूर सुख लीजै, पुहुमी रोम न परई।
जाकैं हिय-अंतर रघुनंदन, सो क्यौं पावक जरई ॥ ६६ ॥
॥५४३॥

राग मारू

लंका हनूमान सब जारी।
राम-काज सीता की सुधि लगि, अंगद-प्रीति बिचारी।
जा रावन की सकति तिहूँ पुर, कोउ न आज्ञा टारी।
ता रावन कैं अछत अछयसुत-सहित सैन संहारी।
पूँछ बुझाइ गए सागर-तट, जहँ सीता की बारी।
करि दंडवत प्रेम पुलकित ह्वै, कह्यौ, सुनि राघव-प्यारी।
तुम्हरेहिं तेज-प्रताप रही बचि, तुम्हरी यहै अटारी।
सूरदास स्वामी के आगैं, जाइ कहौं सुख भारी ॥१००॥
॥५४४॥

सीता का चूड़ामणि-प्रदान *राग सारंग*

मेरी कैंती बिनती करनी।
पहिलैं करि प्रनाम, पाइनि परि, मनि रघुनाथ हाथ लै धरनी।
मंदाकिनि-तट फटिक-सिला पर, मुख-मुख जोरि तिलक की करनी।
कहा कहौं, कछु कहत न आवै, सुमिरत प्रीति होइ उर अरनी।

तुम हनुमंत, पवित्र पवन-सुत, कहियौ जाइ जोइ मैं बरनी ।
सूरदास प्रभु आनि मिलावहु, मूरति दुसह दुःख-भय-हरनी ॥१०१॥
॥ ५४५ ॥

हनुमान-प्रत्यागमन

राग मारू

हनूमान अंगद के आगैं लंक-कथा सब भाषी ।
अंगद कही, भली तुम कीनी, हम सबकी पति राखी ।
हरषवंत ह्वै चले तहाँ तैं मग मैं बिलम न लाई ।
पहुँचे आइ निकट रघुबर कैं सुग्रिव आयौ धाई ।
सबनि प्रनाम कियौ रघुपति कौं अंगद बचन सुनायौ ।
सूरदास प्रभु-पद-प्रताप करि, हनू सीय सुधि ल्यायौ ॥१०२॥

राग मारू

हनु, तैं सबकौ काज सँवारयौ ।
बार-बार अंगद यौं भाषै, मेरौ प्रान उबारयौ ।
तुरतहिं गमन कियौ सागर तैं, बीचहिं बाग उजारयौ ।
कीन्हौ मधुबन चौर चहूँदिसि, माली जाइ पुकारयौ ।
धनि हनुमत, सुग्रीव कहत हैं, रावन कौ दल मारयौ ।
सूर सुनत रघुनाथ भयौ सुख, काज आपनी सारयौ ॥१०३॥
॥ ५४६ ॥

हनुमान-राम-संवाद

राग मारू

कहौ कपि, जनक-सुता-कुसलात ।
आवागमन सुनावहुँ अपनौ, देहु हमैं सुख-गात ।
सुनौ पिता, जल-अंतर ह्वै कै रोक्यौ मग इक नारि ।
धर-अंबर लौं रूप निसाचरि, गरजी बदन पसारि ।
तब मैं डरपि कियौ छोटौ तनु पैठ्यौ उदर-मँझारि ।
खरभर परी, दियौ उन पैंड़ौ, जीती पहिली रारि ।
गिरि मैनाक उदधि मैं अद्भुत, आगैं रोक्यौ जात ।
पवन-पिता कौ मित्र न जान्यौ, धोखैं मारी लात ।
तबहूँ और रह्यौ सरितापति आगैं जोजन सात ।
तुव प्रताप परली दिसि पहुँच्यौं, कौन बढ़ावै बात ।

लंका पौरि-पौरि मैं ढूँढ़ी अरु बन-उपबन जाइ।
तरु असोक-तर देखि जानकी, तब हौं रह्यौ लुकाइ।
रावन कह्यौ सो कह्यौ न जाई, रह्यौ क्रोध अति छाइ।
तब ही अवध जानि कै राख्यौ मंदोदरि समुझाइ।
पुनि हौं गयौ सुफलबारी मैं, देखी दृष्टि पसारि।
असी सहस किंकर-दल तेहि के, दौरे मोहिं निहारि।
तुव प्रताप तिनकौं छिन भीतर जूझत लगी न बार।
उनकौं मारि तुरत मैं कीन्ही मेघनाद सौं रार।
ब्रह्म-फाँस उन लई हाथ करि, मैं चितयौ कर जोरि।
तज्यौ कोप मरजादा राखी, बँध्यौ आपही भोरि।
रावन पै लै गए सकल मिलि, ज्यौं लुब्धक पसु जाल।
करुवौ बचन स्रवन सुनि मेरौ, अति रिस गही भुवाल।
आपुन ही मुगदर लै धायौ, करि लोचन बिकराल।
चहुँदिसि सूर सोर करि धावैं, ज्यौं करि हेरि सृगाल ॥१०४॥
॥ ५४८ ॥

राग मारू

कैसैं पुरी जरी कपिराइ।
बड़े दैत्य कैसैं कै मारे, अंतर आप बचाइ?
प्रगट कपाट बिकट दीन्हे हे, बहु जोधा रखवारे।
तैंतिस कोटि देव बस कीन्हे, ते तुमसौं क्यौं हारे?
तीनि लोक डर जाकैं काँपै, तुम हनुमान न पेखे?
तुम्हरैं क्रोध, स्राप सीता कैं, दूरि जरत हम देखे।
हौ जगदीस, कहा कहौं तुमसौं, तुम बल-तेज मुरारी।
सूरजदास सुनौ सब संतौ, अबिगत की गति न्यारी ॥१०५॥
॥ ५४९ ॥

(लंका कांड)

सिंधु-तट-वास *राग मारू*

सीय-सुधि सुनत रघुबीर धाए।
चले तब लखन, सुग्रीव, अंगद, हनू, जामवँत, नील, नल, सबै आए।

भूमि अति डगमगी, जोगिनी सुनि जगी, सहस-फन सेस कौ सीस काँप्यौ।
कटक अगिनित जुरयौ, लंक खरभर परयौ, सूर कौ तेज धर-धूरि-ढाँप्यौ।
चलधि-तट आइ रघुराइ ठाढ़े भए, रिच्छ-कपि गरजि कै धुनि सुनायौ।
सूर रघुराइ चितए हनूमान-दिसि, आइ तिन तुरत ही सीस नायौ।
॥ १०६ ॥ ५५० ॥

हनुमंत-वचन *राग केदारौ*

राघौ जू, कितिक बात, तजि चित।
केतिक रावन-कुंभकरन-दल, सुनियै देव अनंत।
कहौ तौ लंक लकुट ज्यौँ फेरौँ, फेरि कहूँ लै डारौँ।
कहौ तौ परबत चाँपि चरन तर, नीर-खार मैँ गारौँ।
कहौ तो असुर लगूर लपेटौँ, कहौ तौ नखनि बिदारौँ।
कहौ तौ सैल उपारि पेड़ि तैँ दै सुमेरु सौँ मारौँ।
जेतिक सैल-सुमेरु धरनि मैँ, भुज भरि आनि मिलाऊँ।
सप्त समुद्र देउँ छाती तर, एतिक देह बढ़ाऊँ।
चली जाउ सैना सब मोपर धरौ चरन रघुबीर।
मोहिँ असीस जगत-जननी की, नवत न बज्र-सरीर।
जितिक बोल बोल्यौ तुम आगैँ, राम, प्रताप तुम्हारैँ।
सूरदास प्रभु की सौँ साँचे, जन करि पैज पुकारै॥१०७॥
॥५५१॥

राग मारू

रावन से गहि कोटिक मारौँ।
जो तुम आज्ञा देहु कृपानिधि, तौ यह परिहस सारौँ।
कहौ तौ जननि जानकी ल्याऊँ, कहौ तौ लंक बिदारौँ।
कहौ तो अबहीँ पैठि सुभट हति, अनल सकल पुर जारौँ।
कहौ तौ सचिव-सबंधु सकल अरि, एकहिँ एक पछारौँ।
कहौ तौ तुव प्रताप श्री रघुबर, उदधि पखाननि तारौँ।
कहौ तौ दसौ सीस, बीसौ भुज, काटि छिनक मैँ डारौँ।
कहौ तौ ताकौँ तृन गहाइ कै, जीवत पाइनि पारौँ।
कहौ सैना चारु रचौँ कपि, धरनी-ब्योम-पतारौ।
सैल-सिला-द्रुम बरषि, ब्योम चढ़ि, सत्रु-समूह सँहारौँ।

बार-बार पद परसि कहत हौँ, हौँ कबहूँ नहिँ हारौँ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे बचन लगि, सिव, बचननि कौँ टारौँ ॥१०८॥
॥ ५५२ ॥

राग मारू

हौँ प्रभु जू कौ आयसु पाऊँ।
अबहीँ जाइ, उपारि लंक गढ़, उदधि-पार लै आऊँ।
अबहीँ जंबू द्वीप इहाँ तैँ लै लंका पहुँचाऊँ।
सोखि समुद्र उतारौँ कपि-दल छिनक बिलंब न लाऊँ।
अब आवैँ रघुवीर जीति दल, तौ हनुमंत कहाऊँ।
सूरदास सुभ पुरी अजोध्या, राघव सुबस बसाऊँ ॥१०९॥
॥ ५५३ ॥

राग सारंग

रघुपति, बेगि जतन अब कीजै।
बाँधै सिंधु सकल सैना मिलि, आपुन आयसु दीजै।
तब लौँ तुरत एक तौ बाँधौ, द्रुम-पाखाननि छाइ।
द्वितिय सिंधु सिय-नैन-नीर ह्वै, जब लौँ मिलै न आइ।
यह बिनती हौँ करौँ कृपानिधि, बार-बार अकुलाइ।
सूरजदास अकाल प्रलय प्रभु, मेटौ दरस दिखाइ ॥११०॥
॥ ५५४ ॥

विभीषण-रावण-संवाद *राग मारू*

लंकापति कौँ अनुज सीस नायौ।
परम गंभीर, रनधीर दसरथ-तनय, कोप करि सिंधु के तीर आयो।
सीय कौँ लै मिलौ, यह मतौ है भलौ कृपा करि मम बचन मानि लीजै।
ईस कौ ईस, करतार संसार कौ, तासु पद-कमल पर सीस दीजै।
कह्यौ लंकेस दै ठेस पग की तबै, जाहि मति-मूढ़, कायर, डरानौ।
जानि असरन-सरन सूर के प्रभू कौँ, तुरतहीँ आइ द्वारैँ तुलानौ।
॥ १११ ॥ ५५५ ॥

राग सारंग

आइ विभीषण सीस नवायौ।
देखत ही रघुबीर धीर, कहि लंकापती, बुलायौ।

कह्यौ सो बहुरि कह्यौ नहिँ रघुबर, यहै बिरद चलि आयौ।
भक्तबछल करुनामय प्रभु कौ, सूरदास जस गायौ ॥११२॥
॥ ५५६ ॥

राम-प्रतिज्ञा *राग मारू*

तब हौँ नगर अजोध्या जैहौँ।
एक बात सुनि निस्चय मेरी, राज्य बिभीषन दैहौँ।
कपि-दल जोरि और सब सेना, सागर सेतु बँधैहौँ!
काटि दसौ सिर, बीस भुजा तब दसरथ-सुत जु कहैहौँ।
छिन इक माहिँ लंक गढ़ तोरौँ, कंचन-कोट ढहैहौँ।
सूरदास प्रभु कहत बिभीषन, रिपु हति सीता लैहौँ ॥११३॥
॥ ५५७ ॥

रावण-मंदोदरी-संवाद *राग मारू*

वै लखि आए राम रजा।
जल कैँ निकट आइ ठाढ़े भए, दीसति बिमल ध्वजा।
सोवत कहा चेत रे रावन, अब क्यौँ खात दगा?
कहति मँदोदरि, सुनु पिय रावन, मेरी बात अगा।
तृन दसननि लै मिलि दसकंधर, कंठनि मेलि पगा।
सूरदास प्रभु रघुपति आए, दहपट होइ लका ॥११४॥
॥ ५५८ ॥

राग मारू

सरन परि मन-बच-कर्म बिचारि।
ऐसौ और कौन त्रिभुवन मैँ, जो अब लेइ उबारि?
सुनु सिख कंत, दंत तृन धरि कै, स्यौँ परिवार सिधारौ।
परम पुनीत जानकी सँग ले, कुल-कलंक किन टारौ!
ये दससीस चरन पर राखौ, मेटौ सब अपराध।
हैँ प्रभु कृपा करन रघुनंदन, रिस न गहैँ पल आध।
तोरि धनुष, मुख मोरि नृपनि कौ, सीय स्वयंबर कीनौ।
छिन इक मैँ भृगुपति-प्रताप-बल करषि, हृदय धरि लीनौ।
लीला करत कनक-मृग मारयौ, वध्यौ बालि अभिमानी।
सोइ दसरथ-कुलचंद अमित बल, आए सारँग पानी।

जाकैँ दल सुग्रीव सुमंत्री, प्रबल जूथपति भारी।
महा सुभट रनजीत पवन-सुत, निडर बज्र-बपु-धारी।
करिहै लंक पंक छिन भीतर, बज्र-सिला लै धावै।
कुल-कुटुंब-परिबार सहित तोहिँ बाँधत बिलम न लावै।
अजहूँ बल जनि करि संकर कौ, मानि बचन हित मेरौ।
जाइ मिलौ कोसल-नरेस कौँ भ्रात बिभीषन तेरौ।
कटक सोर अति घोर दसौँ दिसि, दीसति बनचर-भीर।
सूर समुझि, रघुबंस-तिलक दोउ उतरे सागर-तीर ॥११५॥
॥ ५५९ ॥

राग मारू

काहे कौँ परतिय हरि आनी ?
यह सीता जो जनक की कन्या, रमा आपु रघुनंदन-रानी।
रावन मुग्ध, करम के हीने, जनक-सुता तैँ तिय करि मानी !
जिनकैँ क्रोध पुहुमि-नभ पलटैं, सूखैं सकल सिंधु कर पानी।
मूरख सुख निद्रा नहिँ आवै, लैहैँ लंक बीस भुज भानी।
सूर न मिटै भाल की रेखा, अल्प मृत्यु तुव आइ तुलानी ॥११६॥
॥ ५६० ॥

राग मारू

तोहिँ कवन मति रावन आई ?
जाकी नारि सदा नवजोबन, सो क्यौँ हरै पराई !
लंक सौ कोट देखि जनि गरबहि, अरु समुद्र सी खाई।
आजु-काल्हि, दिन चारि-पाँच मैँ, लंका होति पराई।
जाकैँ हित सैना सजि आए, राम लछन दोउ भाई।
सूरदास प्रभु लंका तोरैँ, फेरैँ राम-दुहाई ॥११७॥
॥ ५६१ ॥

राग मारू

आयौ रघुनाथ बली, सीख सूनौ मेरी।
सीता लै जाइ मिलौ बात रहै तेरी।
तैँ जु बुरौ कर्म कियौ, सीता हरि ल्यायौ।
घर बैठे बैर कियौ, कोपि राम आयौ।

चेतत क्यौँ नाहिँ मूढ़, सुनि सुबात मेरी।
अजहूँ नहिँ सिंधु बँध्यौ, लंका है तेरी।
सागर कौ पाज बाँधि, पार उतरि आवैँ।
सैना कौ अंत नाहिं, इतनौ दल ल्यावैँ।
देखि तिया कैसौ बल, करि तोहिँ दिखराऊँ।
रीछ कीस बस्य करौँ, रामहिँ गहि ल्याऊँ।
जानति हौँ, बली बालि सौँ न छूटि पाई।
तुम्है कहा दोष दीजै, काल-अवधि आई।
बलि जब बहु जज्ञ किए, इंद्र सुनि सकायौ।
छल करि लइ छीनि मही, बामन ह्वै धायो।
हिरनकसिप अति प्रचंड, ब्रह्मा बर पायो।
तब नृसिंह रूप धर्यौ, छिन न बिलँब लायौ।
पाहन सौँ बाँधि सिंधु, लंका गढ़ घेरैँ।
सूर मिलि बिभीषनै दुहाइ राम फेरैँ ॥११८॥
॥५६२॥

राग धनाश्री

रे पिय लंका बनचर आयौ।
करि परपंच हरी तैँ सीता, कंचन-कोट ढहायौ।
तब तैँ मूढ़ मरम नहिँ जान्यौ, जब मैँ कहि समझायौ।
बेगि न मिलौ जानकी लै कै, रामचंद्र चढ़ि आयौ।
ऊँची धुजा देखि रथ ऊपर, लछिमन धनुष चढ़ायो।
गहि पद सूरदास कहै भामिनि, राज बिभीषन पायौ ॥११९॥
॥५६३॥

राग सारंग

सुक-सारन द्वै दूत पठाए।
बानर-बेष फिरत सैना मैँ, जानि बिभीषन तुरत बँधाए।
बीचहिँ मार परी अति भारी, राम लछन तब दरसन पाए।
दीनदयालु बिहाल देखि कै, छोरी भुजा, कहाँ तैँ आए?
हम लंकेस-दूत प्रतिहारी, समुद-तीर कौँ जात अन्हाए।
सूर कृपाल भए करुनामय, अपनैँ हाथ दूत पहिराए ॥१२०॥
॥५६४॥

राम-सागर-संवाद राग धनाश्री

रघुपति जबै सिंधु-तट आए।
कुस-सारथी बैठि इक आसन, बासर तीनि बिताए।
सागर गरब धर्यौ उर भीतर, रघुपति नर करि जान्यौ।
तब रघुबीर धीर अपनैं कर, अगिनि-बान गहि तान्यौ।
तब जलनिधि खरभर्यौ त्रास गहि, जंतु उठे अकुलाइ।
कह्यौ, न नाथ बान मोहिं जारौ, सरन पर्यौ हौं आइ।
आज्ञा होइ, एक छिन भीतर जल इक दिसि करि डारौं।
अंतर मारग होइ, सबनि कौं इहि बिधि पार उतारौं।
और मंत्र जो करौं देवमनि, बाँध्यौ सेतु बिचार।
दीन जानि, धरि चाप, बिहँसि कै, दियौ कंठ तैं हार।
यहै मंत्र सबहीं परधान्यौं, सेतु बंध प्रभु कीजै।
सब दल उतरि होइ पारंगत, ज्यौं न कोउ इक छीजै।
यह सुनि दूत गयौ लंका मैं, सुनत नगर अकुलानौ।
रामचंद्र-परताप दसौं दिसि, जल पर तरत पखानौ।
दस सिर बोलि निकट बैठायौ, कहि धावन सति भाउ।
उद्यम कहा होत लंका कौं, कौनैं कियौ उपाउ?
जामवंत-अंगद बंधू मिलि, कैसैं इहिं पुर ऐहैं।
मो देखत जानकी नयन भरि, कैसैं देखन पैहैं।
हौं सति भाउ कहौं लंकापति, जौ जिय आयसु पाऊँ।
सकल भेव ब्योहार कटक कौ, परगट भाषि सुनाऊँ।
बार-बार यौं कहत सकात न, तोहिं हति लैहैं प्रान।
मेरैं जान कनकपुरि फिरिहै रामचंद्र की आन।
कुंभकरन हूँ कह्यौ सभा मैं, सुनौ आदि उत्पात।
एक दिवस हम ब्रह्म लोक मैं चलत सुनी यह बात।
काम-अंध ह्वै सब कुटुंब-धन, जैहै एकै बार।
सो अब सत्य होत इहिं औसर, को है मेटनहार।
और मंत्र अब उर नहिं आनौं, आजु बिकट रन माँड़ौं।
गहौं बान रघुपति कैं सन्मुख ह्वै करि यह तन छाँड़ौं।
यह जस जीति परम पद पावौं, उर संसे सब खोई।
सूर सकुचि जौ सरन सँभारौं, छत्री-धर्म न होई ॥१२१॥
॥५६५॥

सेतु-बंधन

राग धनाश्री

रघुपति चित्त विचार कर्‌यौ।
नातौ मानि सगर सागर सौं, कुस-साथरी पर्‌यौ।
तीनि जाम अरु बासर बीते, सिंधु गुमान भर्‌यौ।
कीन्हौ कोप कुँवर कमलापति, तब कर धनुष धर्‌यौ।
ब्रह्म-वेष आयौ अति व्याकुल, देखत बान डर्‌यौ।
द्रुम-पषान प्रभु बेगि मँगायौ, रचना सेतु कर्‌यौ।
नल अरु नील बिस्वकर्मा-सुत, छुवत पषान तर्‌यौ।
सूरदास स्वामी प्रताप तैं, सब संताप हर्‌यौ॥१२२॥
॥५६६॥

राग मारू

आपुन तरि तरि औरनि तारत।
अस्म अचेत प्रगट पानी मैं, बनचर लै-लै डारत।
इहिं बिधि उपलै तरत पात ज्यौं, जदपि सैल अति भारत।
बुद्धि न सकति सेतु रचना रचि, राम-प्रताप बिचारत।
जिहिं जल तृन, पसु, दारु बूड़ि अपनैं सँग औरनि पारत।
तिहिं जल गाजत महाबीर सब, तरत आँखि नहिं मारत।
रघुपति-चरन-प्रताप प्रगट सुर, व्योम बिमाननि गावत।
सूरदास क्यौं बूड़त कलऊ, नाम न बूड़न पावत॥१२३॥
॥५६७॥

जलनिधि-तरण

राग धनाश्री

सिंधु तट उतरे राम उदार।
रोष विषम कीन्हौ रघुनंदन, सिय की बिपति बिचार।
सागर पर गिरि, गिरि पर अंबर, कपि घन कैं आकार।
गरज किलक आघात उठत, मनु दामिनि पावक झार।
परत फिराइ पयोनिधि भीतर, सरिता उलटि बहाईं।
मनु रघुपति भयभीत सिंधु पत्नी प्यौसार पठाई।
बाला-बिरह दुसह सबही कौं, जान्यौ राजकुमार।
बानबृष्टि स्रोनित करि सरिता, ब्याहत लगी न बार।
सुबरन लंक-कलस-आभूषन, मनि-मुक्ता-गन हार।
सेतु-बंध करि तिलक, सूर प्रभु रघुपति उतरे पार॥१२४॥
॥५६८॥

मंदोदरी-वचन रावण-प्रति *राग धनाश्री*

देखि रे, वह सारँगधर आयौ।
सागर-तीर भीर बानर की, सिर पर छत्र तनायौ।
संख-कुलाहल सुनियन लागे, लीला-सिंधु बँधायौ।
सोवत कहा लंक गढ़ भीतर, अति कै कोप दिखायौ।
पदुम कोटि जिहिं सैना सुनियत, जंतु जु एक पठायौ।
सूरदास हरि बिमुख भए जे, तिनि केतिक सुख पायौ ! ॥ १२५॥
॥५६९॥

राग मारू

मो मति अजहुँ जानकी दीजै।
लंकापति-तिय कहति पिया सौं, यामैं कछू न छीजै।
पाहन तारे, सागर बाँध्यौ तापर चरन न भीजै।
बनचर एक लंक तिहिं जारी, ताकी सरि क्यों कीजै !
चरन टेकि दोउ हाथ जोरि कै, बिनती क्यौं नहिं कीजै ?
वै त्रिभुवन पति, करहिं कृपा अति, कुटुँब-सहित सुख जीजै।
आवत देखि बान रघुपति के, तेरौ मन न पतीजै।
सूरदास प्रभु लंक जारि कै, राज बिभीषन दीजै ॥१२६॥
॥५७०॥

रावण-बचन मंदोदरी-प्रति *राग मारू*

कहा तू कहति तिय, बार बारी।
कोटि तैंतीस सुर सेव अहनिसि करैं, राम अरु लच्छमन हैं कहा री।
मृत्यु कौं बाँधि मैं राखियौ कूप मैं, देहि आवन, कहा डरति नारी !
कहति मंदोदरी, मेटि को सकै तिहिं, जो रची सूर प्रभु होनहारी ॥
॥१२७॥५७१॥

अंगद-दूतत्व *राग मारू*

लंकपति पास अंगद पठायौ।
सुनि अरे अंध दसकंध, लै सीय मिलि, सेतु करि बंध रघुबीर आयौ।
यह सुनत पर जरयौ, बचन नहिं मन धरयौ, कहा तैं राम सौं मोहिं डरायौ ?
सुर-असुर जीति मैं सब किए आप बस, सूर मन सुजस तिहुँ लोक छायौ ॥ १२८ ॥ ५७२ ॥

राग मारू

बालि-नंदन बली, बिकट बनचर महा, द्वार रघुबीर कौ बीर आयौ।
पौरि तैं दौरि दरवान, दससीस सौं जाइ सिर नाइ, यौं कहि सुनायौ।
सुनि स्रवन, दस बदन सदन-अभिमान, कै नैन की सैन अंगद बुलायौ।
देखि लंकेस कपि भेष हर हर हँस्यौ, सुनौ भट, कटक कौ पार पायौ!
बिबिध आयुध धरे, सुभट सेवत खरे, छत्र की छाहँ निरभय जनायौ।
देव-दानव-महाराज-रावन-सभा, कहन कौं मंत्र इहँ कपि पठायौ!
रंक रावन कहा ऽतंक तेरौ इतौ, दोउ कर जोरि बिनती उचारौं।
परम अभिराम रघुनाथ के नाम पर, बीस भुज सीस दस वारि डारौं।
झटकि हाटक मुकुट, पटकि भट भूमि सौं, झारि तरवारि तव सिर सँहारौं।
जानकीनाथ कैं हाथ तेरौ मरन, कहा मति-मंद तौहिं मध्य मारौं।
पाक पावक करै, बार सुरपति भरै, पौन पावन करै द्वार मेरे।
गान नारद करै, बार सुरगुरु कहै, बेद ब्रह्मा पढ़े पौरि टेरे।
जच्छ, मृत, बासुकी नाग, सुनि गंधरब, सकल बसु, जीति मैं किए चेरे।
सुनि अरे संठ, दसकंठ कौं कौन डर, राम तपसी दए आनि डेरे।
तप बली, सत्य तापस बली, तप बिना, बारि पर कौन पाषान तारै?
कौन ऐसौ बली सुभट जननी जन्य, एकहीं बान तकि बालि मारै!
परम गंभीर, रनधीर दसरथ-तनय, सरन गएँ कोटि अवगुन बिसारैं।
जाइ मिलि अंध दसकंध, गहि दंत तृन, तौ भलैं मृत्यु-मुख तैं उबारैं।
कोपि करबार गहि कह्यो लंकाधिपति, मूढ़, कहा राम कौं सीस नाऊँ।
संभु की सपथ, सुनि कुकपि कायर कृपन, स्वास आकास बनचर उड़ाऊँ।
होइ सनमुख भिरौं, संक नहिं मन धरौं, मारि सब कटक सागर बहाऊँ।
कोटि तैंतीस मम सेव निसिदिन करत, कहा अब राम नर सौं डराऊँ।
परैं भहराइ भभकंत रिपु घाइ सौं, करि कदन रुधिर भैरौं अघाऊँ।
सूर साजौं सबै, देहुँ डौंड़ी अबै, एक तैं एक रन करि बताऊँ ॥१२६॥ ।५७३॥

राग मारू

रावन तब लौं ही रन गाजत।
जब लौं सारँगधर-कर नाहीं सारँग-बान बिराजत।

जमहु कुबेर इंद्र है जानत, रचि रचि कै रथ साजत ?
रघुपति-रवि-प्रकास सौं देखौं, उडुगन ज्यौं तोहिं भाजत।
ज्यौं सहगमन सुंदरी कैं सँग बहु बाजन हैं बाजत।
तैसैं सूर असुर आदिक सब, सँग तेरे हैं गाजत ॥१३०॥
॥५७४॥

अंगद-कथित श्रीराम संदेश *राग मारू*

जानौं हौं बल तेरौं रावन !
पठवौं कुटुँब-सहित जम-आलय, नैंकु देहि धौं मोकौं आवन।
अगिनि-पुंज सित बान धनुष धरि, तोहिं असुर-कुल-सहित जरावन।
दारुन कास सुभट बर सन्मुख, लैहौं संग त्रिदस-बल पावन।
करिहौं नाम अचल पसुपति कौ, पूजा-बिधि कौतुक दिखरावन।
दस मुख छेदि सुपक नव फल ज्यौं, संकर-उर दससीस चढ़ावन।
दैहौं राज बिभीषन जन कौं, लंकपुर रघु-आन चलावन।
सूरदास निस्तरिहैं यह जस करि करि दीन-दुखित जन गावन ॥१३१॥
॥५७५॥

राग मारू

मोकौं राम रजायसु नाहीं।
नातरु सुनि दसकंध निसाचर, प्रलय करौं छिन माहीं।
पलटि धरौं नव खंड पुहुमि तल, जौ बल भुजा सम्हारौं।
राखौं मेलि भँडार सूर-ससि, नभ कागद ज्यौं फारौं।
जारौं लंक, छेदि दस मस्तक, सुर-संकोच निवारौं।
श्रीरघुनाथ-प्रताप-चरन करि उर तैं भुजा उपारौं।
रे रे चपल, बिरूप, ढीठ, तू बोलत बचन अनेरौ।
चितवै कहा पानि-पल्लव-पुट, प्रान प्रहारौं तेरौ।
केतिक संख जुगै जुग बीते मानव असुर-अहेरौ।
तीनि लोक बिख्यात बिसद जस, प्रलय नाम है मेरौ।
रे रे अंध बीसहू लोचन, पर-तिय-हरन बिकारी।
सूनैं भवन गवन तैं कीन्हौ, सेष-रेख नहिं टारी।
अजहूँ कह्यौ सुनै जौ मेरौ, आए निकट मुरारी।
जनक-सुता तैं चलि, पाइनि परि, श्रीरघुनाथ-पियारी।

"संकट परैं जो सरन पुकारौं, तौ छत्री न कहाऊँ।
जन्महि तैं तामस आराध्यौ, कैसैं हित उपजाऊँ?
अब तौ सूर यहै बनि आई, हर कौ निज पद पाऊँ।
ये दससीस ईस-निरमायल, कैसैं चरन छुवाऊँ"?॥१३२॥
॥५७६॥

राग मारू

मूरख, रघुपति-सत्रु कहावत?
जाके नाम, ध्यान, सुमिरन तैं, कोटि जज्ञ-फल पावत!
नारदादि सनकादि महामुनि, सुमिरत मन-बच ध्यावत।
असुर तिलक प्रह्लाद, भक्त बलि, निगम नेति जस गावत।
जाकी घरनि हरी छल-बल करि, लायो बिलब न आवत।
दस अरु आठ पदुम बनचर लै, लीला सिंधु बँधावत!
जाइ मिलौ कौसल-नरेस कौं, मन अभिलाष बढ़ावत।
दै सीता अवधेस पाइँ परि, रहु लंकेस कहावत।
तू भूल्यौ दससीस बीस भुज, मोहिं गुमान दिखावत।
कंध उपारि डारिहौं भूतल, सूर सकल सुख पावत॥१३३॥
॥५७७॥

राग मारू

रे कपि, क्यौं पितु-बैर बिसार्‌यौ?
तो समतुल कन्या किन उपजी, जो कुल-सत्रु न मार्‌यौ!
ऐसौ सुभट नहीं महिमंडल देख्यौ बालि-समान।
तासौं कियौ बैर मैं हार्‌यौ, कीन्हीं पैज प्रमान।
ताकौ बध कीन्हौ इहिं रघुपति, तुव देखत बिदमान।
ताकी सरन रह्यौ क्यौं भावै, सब्द न सुनियै कान!
"रे दसकंध, अंध-मति, मूरख, क्यौं भूल्यौ इहिं रूप?
सूझत नहीं बीसहू लोचन, पर्‌यौ तिमिर कैं कूप!
धन्य पिता, जापर परफुल्लित राघव-भुजा अनूप।
वा प्रताप की मधुर बिलोकनि पर वारौं सब भूप"।
"जौ तोहिं नाहिं बाहु-बल-पौरुष, अर्ध राज देउँ लंक।
मो समेत ये सकल निसाचर, लरत न मानैं संक।

जब रथ साजि चढ़ौं रन-सन्मुख, जीय न आनौं तंक।
राघव सेन समेत सँहारौं, करौं रुधिरमय पंक"।
"श्रीरघुनाथ-चरन-व्रत उर धरि, क्यौं नहिं लागत पाइ ?
सबके ईस, परम करुनामय, सबही कौं सुखदाइ।
हौं जु कहत, लै चलौ जानकी, छाँड़ौ सबै ढिठान।
सनमुख रांइ सूर के स्वामी, भक्तनि कृपा-निधान" ॥१३४॥
॥५७८॥

राग मारू

लंकपति इंद्रजित कौं बुलायौ।
कह्यौ तिहिं, जाइ रनभूमि दल साजि कै, कहा भयौ राम कपि जोरि ल्यायौ।
कोपि अंगद कह्यौ, धरौं धर चरन मैं, ताहि जो सकै कोऊ उठाई।
तौ बिना जुद्ध कियँ जाहिं रघुबीर फिरि, सुनत यह उठे जोधा रिसाई।
रहे पचिहारि, नहिं टारि कोऊ सक्या, उठ्यौ तब आपु रावन खिस्याई।
कह्यौ अंगद, कहा मम चरन कौं गहत, चरन रघुबीर गहि क्यौं न जाई।
सुनत यह सकुचि कियौ गवन निज भवन कौं, बालि-सुतहू तहाँ तैं सिधायौ।
सूर के प्रभू कौं नाइ सिर यौं कह्यौ, अंध दसकंध कौ काल आयौ॥
॥१३५॥५७९॥

राग मारू

बालि-नंदन आइ सीस नायौ।
अंध दसकंध कौं काल सूझत न प्रभु, ताहि मैं बहुत बिधि कहि जनायौ।
इंद्रजित चढ़्यौ निज सैन सब साजि कै, रावरी सैनहूँ साज कीजै।
सूर प्रभु मारि दसकंध, थपि बंधु तिहिं, जानकी छोरि जस जगत लीजै ॥१३६॥५८०॥

लक्ष्मण-वचन *राग मारू*

रघुपति, जौ न इंद्रजित मारौं।
तौ न होउँ चरननि कौ चेरौ, जौ न प्रतिज्ञा पारौं।

यह दृढ़ बात जानियै प्रभु जू, एकहिँ बान निवारौँ।
सपथ राम परताप तिहारैँ, खंड खंड करि डारौँ।
कुंभकरन, दससीस बीसभुज, दानव-दलहिँ विदारौँ।
तबै सूर संधान सफल हौँ, रिपु कौ सीस उतारौँ ॥१२७॥
॥५८१॥

लक्ष्मण-युद्धगमन

राग मारू

लखन दल संग लै लंक घेरी।
पृथ्वी भइ षष्ट अरु अष्ट आकास भए, दिसि-विदिस कोउ नहिँ जात हेरी।
रीछ लंगूर किलकारि लागे करन, आन रघुनाथ की जाइ फेरी।
पाट गए टूटि, परी लूटि सब नगर मैँ, सूर दरवान कह्यौ जाइ टेरी ॥
॥१३८॥५८२॥

मंदोदरी-वचन रावण के प्रति

राग मारू

रावन, उठि निरखि देखि, आजु लंक घेरी।
कोटि जतन करि रही, सिख मानी नहिँ मेरी।
गहगहात किलकिलात, अंधकार आयौ।
रबि कौ रथ सूझत नहिँ, धरनी-गगन छायौ।
पौरि-पाट टूटि परे, भागे दरवाना।
लंका मैँ सोर पर्यौ अजहुँ तैँ न जाना!
फोरि फारि, तोरि तारि, गगन होत गाजैँ।
सूरदास लंका पर चक्र संख बाजैँ ॥ १३६ ॥
॥५८३॥

राग मारू

लंका फिरि गइ राम-दुहाई।
कहति मँदोदरि सुनि पिय रावन, तैँ कहा कुमति कमाई?
दस मस्तक मेरे बीस भुजा हैँ, सौ जोजन की खाई।
मेघनाद से पुत्र महाबल, कुंभकरन से भाई।
रहि रहि अबला बोल न बोलै, उनकी करति बड़ाई।
तीनि लोक तैँ पकरि मँगाऊँ, वै तपसी दोउ भाई।

तुम्हैँ मारि महिरावन मारैँ, देहिँ बिभीषन गाई।
पवन कौ पूत महाबल जोधा, पल मैँ लंक जराई!
जनकसुता-पति हैँ रघुबर से सँग लछिमन से भाई।
सूरदास प्रभु कौ जस प्रगट्यौ, देवनि बंदि छुड़ाई॥१४०॥
॥५८४॥

राग मारू

मेघनाद ब्रह्मा-बर पायौ।
आहुति अगिनि जिँवाइ सँतोषी, निकस्यौ रथ बहु रतन बनायौ।
आयुध धरैँ समस्त कवच सजि, गरजि चढ़्यौ, रन-भूमिहिँ आयौ।
मनो मेघनायक रितु पावस, बान-बृष्टि करि सैन कँपायौ।
कीन्हौ कोप कुँवर कौसलपति, पंथ अकास सायकनि छायौ।
हँसि-हँसि नाग-फाँस सर साँधत, बंधु-समेत बँधायौ।
नारद स्वामी कह्यौ निकट ह्वै, गरुड़ासन काहैँ बिसरायौ?
भयौ तोष दसरथ के सुत कौँ, सुनि नारद कौ ज्ञान लखायौ।
सुमिरन ध्यान जानि कै अपनौ, नाग-फाँस तैँ सेन छुड़ायौ।
सूर बिमान चढ़े सुरपुर सौँ, आनँद अभय-निसान बजायौ॥१४१॥
॥५८५॥

कुंभकरण-रावण-संवाद *राग मारू*

लंकपति अनुज सोवत जगायौ।
लंकपुर आइ रघुराइ डेरा दियौ, तिया जाकी सिया मैँ लै आयौ।
तैँ बुरी कीन्ही, कहा तोहिँ कहौँ, छाँड़ि जस, जगत अपजस बढ़ायौ।
सूर अब डर न करि, जुद्ध कौ साज करि, हौइहै सोइ जो दई-भायौ
॥ १४२ ॥ ५८६ ॥

राग मारू

लछन कह्यौ, करवार सम्हारौँ।
कुंभकरन अरु इंद्रजीत कौँ टूक-टूक करि डारौँ।
महाबली रावन जिहिँ बोलत, पल मैँ सीस सँहारौँ।
सब राच्छस रघुबीर-कृपा तैँ, एकहिँ बान निवारौँ।

हँसि-हँसि कहत बिभीषन सौं प्रभु महाबली रन भारौ।
सूर सुनत रावन उठि धायौ, क्रोध अनल उर धारौ ॥१४३॥
॥५८७॥

राग मारू

रावन चल्यौ गुमान भरयौ।
श्रीरघुनाथ अनाथबंधु सौं, सनमुख खेत खरयौ।
कोप करयौ रघुबीर धीर तब, लछिमन पाइ परयौ।
तुम्हरैं तेज-प्रताप नाथ जू, मैं कर-धनुष धरयौ।
सारथि सहित अस्व बहु मारे, रावन क्रोध जरयौ।
इंद्रजीत लीन्ही तब सक्ती, देवनि हहा करयौ।
छूटी बिज्जु-रासि वह मानौ, भूतल बंधु परयौ।
करुना करत सूर कोसलपति, नैननि नीर झरयौ ॥१४४॥
॥५८८॥

राग मारू

निरखि मुख राघव धरत न धीर।
भए अति अरुन, बिसाल कमल-दल-लोचन मोचत नीर।
बारह बरष नींद है साधी तातैं बिकल सरीर।
बोलत नहीं मौन कहा साध्यौ, बिपति-बँटावन बीर!
दसरथ-मरन, हरन सीता कौ, रन बैरिनि की भीर।
दूजौ सूर सुमित्रा-सुत बिनु, कौन धरावै धीर? ॥१४५॥
॥५८९॥

राग मारू

अब हौं कौन कौ मुख हेरौं?
रिपु-सैना-समूह-जल उमड़यौ, काहि संग लै फेरौं?
दुख-समुद्र जिहिं वार-पार नहिं, तामैं नाव चलाई।
केवट थक्यौ, रही अधबीचहिं, कौन आपदा आई?
नाहीं भरत-सत्रुघन सुंदर, जिनसौं चित्त लगायौ।
बीचहिं भई और की औरै, भयौ सत्रु कौ भायौ।
मैं निज प्रान तजौंगी सुनि कपि, तजिहि जानकी सुनिकै।
ह्वैहै कहा बिभीषन की गति, यहै सोच जिय गुनि कै।

बार बार सिर लै लछिमन कौ, निरखि गोद पर राखैं।
सूरदास प्रभु दीन बचन यौं, हनूमान सौं भाषैं ॥१४६॥
॥५६०॥

राग मारू

कहाँ गयौ मारुत-पुत्र कुमार।
ह्वै अनाथ रघुनाथ पुकारे, संकट-मित्र हमार।
इतनी बिपति भरत सुनि पावैं आवैं साजि बरूथ।
कर गहि धनुष जगत कौं जीतैं, कितिक निसाचर जूथ।
नाहिंन और बियौ कोउ समरथ, जाहि पठावैं दूत।
को अब है पौरुष दिखरावै, बिना पौन के पूत?
इतनौ बचन स्रवन सुनि हरष्यौ, फूल्यौ अंग न मात।
लै-लै चरन-रेनु निज प्रभु की, रिपु कैं स्रोनित न्हात।
अहो पुनीत मीत केसरि-सुत, तुम हित बंधु हमारे।
जिह्वा रोम-रोम-प्रति नाहीं, पौरुष गनौं तुम्हारे!
जहाँ-जहाँ जिहिं काल सँभारे, तहँ-तहँ त्रास निवारे।
सूर सहाइ कियौ बन बसि कै, बन-बिपदा-दुख टारे ॥१४७॥
॥५६१॥

हनुमान-बचन श्रीराम-प्रति *राग मारू*

रघुपति, मन संदेह न कीजै।
मो देखत लछिमन क्यौं मरिहैं, मोकौं आज्ञा दीजै।
कहौ तौ सूरज उगन देउँ नहिं, दिसि-दिसि बाढ़ै ताम।
कहौ तौ गन समेत ग्रसि खाऊँ, जमपुर जाइ न, राम।
कहौ तौ कालहिं खंड-खंड करि टूकटूक करि काटौं।
कहौ तौ मृत्युहिं मारि डारि कै, खोदि पतालहिं पाटौं।
कहौ तौ चंद्रहिं लै अकास तैं, लछिमन मुखनिं निचोरौं।
कहौ तौ पैठि सुधा कैं सागर, जल समस्त मैं घोरौं।
श्रीरघुबर, मोसौं जन जाकैं, ताहि कहा सँकराई?
सूरदास मिथ्या नहिं भाषत, मोहिं रघुनाथ-दुहाई ॥१४८॥
॥५६२॥

राग मारू

कह्यौ तब हनुमत सौं रघुराई।
दौनागिरि पर आहि सँजीवनि, बैद सुषेन बताई।

तुरत जाइ लै आउ उहाँ तैँ, बिलँब न करि मो भाई।
सूरदास प्रभु-बचन सुनतहीँ, हनुमत चल्यौ अतुराई ॥१४९॥
॥५६३॥

राग मारू

दौनागिरि हनुमान सिधायौ।
संजीवनि को भेद न पायौ, तब सब सैल उठायौ।
चितै रह्यौ तब भरत देखि कै, अवधपुरी जब आयौ।
मन मैँ जानि उपद्रव भारी, बान अकास चलायौ।
राम-राम यह कहत पवन-सुत, भरत निकट तब आयौ।
पूछ्यौ सूर कौन है कहि तू, हनुमत नाम सुनायौ ॥१५०॥
॥५६४॥

राग मारू

कहौ कपि रघुपति को संदेस।
कुसल बंधु लछिमन, बैदेही, श्रीपति सकल-नरेस।
जनि पूछौ तुम कुसल नाथ की, सुनौ भरत बलबीर।
बिलख-बदन, दुख भरे सिया के, हैँ जलनिधि कैँ तीर।
बन मैँ बसत, निसाचर छल करि, हरी सिया मम मात।
ता कारन लछिमन सर लाग्यौ, भए राम बिनु भ्रात।
यह सुनि कौसिल्या सिर ढोरयौ, सबनि पुहुमि तन जोयौ।
त्राहि-त्राहि कहि, पुत्र-पुत्र कहि, मातु सुमित्रा रोयौ।
धन्य सुपुत्र पिता-पन राख्यौ, धनि सुबधू कुल-लाज।
सेवक धन्य अंत अवसर जो आवै प्रभु कैँ काज।
पुनि धरि धीर कह्यौ, धनि लछिमन, राम काज जो आवै।
सूर जियै तौ जग जस पावै, मरि सुरलोक सिधावै ॥१५१॥
॥५६५॥

राम मारू

धनि जननी जो सुभटहिँ जावै।
भीर परैँ रिपु को दल दलि-मलि, कौतुक करि दिखरावै।
कौसिल्या सौँ कहति सुमित्रा, जनि स्वामिनि दुख पावै।
लछिमन जनि हौँ भई सपूती, राम-काज जो आवै।

जीवै तो सुख बिलसे जग मैँ। कीरति लोकनि गावे।
मरै तौ मंडल भेदि भानु कौ, सुरपुर जाइ बसावै।
लोह गहैँ लालच करि जिय कौ, औरौ सुभट लजावै।
सूरदास प्रभु जीति सत्रु कौं, कुसल-छेम घर आवै ॥१५२॥
॥५६६॥

राग मारू

सुनौ कपि, कौसिल्या की बात।
इहिँ पुर जनि आवहिँ मम बत्सल, बिनु लछिमन लघु भ्रात।
छाँड़्यौ राज-काज, माता-हित, तुव चरननि चित लाइ।
ताहि बिमुख जीवनाधिक रघुपति, कहियौ कपि समुझाइ।
लछिमन सहित कुसल बैदेही, आनि राज पुर कीजै।
नातरु सूर सुमित्रा-सुत पर वारि अपुनपौ दीजै ॥१५३॥
॥५६७॥

राग मारू

बिनती कहियौ जाइ पवनसुत, तुम रघुपति के आगे।
या पुर जनि आपहु बिनु लछिमन, जननी-लाजनि लागे।
मारुतसुतहिँ सँदेस सुमित्रा ऐसे कहि समुझावै।
सेवक जूझि परै रन भीतर, ठाकुर तउ घर आवै।
जब तैँ तुम गवने कानन कौँ, भरत भोग सब छाँड़े।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, दुख-समूह उर गाड़े ॥१५४॥
॥५६८॥

राग मारू

पवन-पुत्र बोल्यौ सतिभाइ।
जानि सिराति राति बातनि मैँ, सुनौ भरत, चित लाइ।
श्रीरघुनाथ सँजीवनि कारन, मोकौँ इहाँ पठायौ।
भयौ अकाज अर्द्ध निसि बीती, लछिमन-काज नसायौ।
स्यौँ परबत सत बैठि पवनसुत, ह्वाँ प्रभु पै पहुँचाऊँ।
सूरदास प्रभु-पाँवरि मम सिर इहिँ बल भरत कहाऊँ ॥१५५॥
॥५६९॥

राग सारंग

हनूमान संजीवनि ल्यायौ।
महाराज रघुबीर धीर कौं हाथ जोरि सिर नायौ।
परबत आनि धरयौ सागर-तट, भरत सँदेस सुनायौ।
सूर सँजीवनि दै लछिमन कौं मूर्छित फेरि जगायौ ॥१५६॥
॥६००॥

राग टोड़ी

दूसरैं कर बान न लैहौं।
सुनि सुग्रीव, प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं बान असुर सब हैहौं।
सिव-पूजा जिहिं भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं।
दैत्य प्रहारि पाप-फल-प्रेरित, सिर माला सिव-सीस चढ़ैहौं।
मनौ तूल-गन परत अगिनि-मुख, जारि जड़नि जम-पंथ पठैहौं।
करिहौं नाहिं बिलंब कछू अब, उठि रावन सन्मुख ह्वै धैहौं।
इमि दमि दुष्ट देव-द्विज मोचन, लंक विभीषन, तुमकौं दैहौं।
लछिमन, सिया समेत सूर कपि, सब सुख सहित अजोध्या जैहौं।
॥ १५७ ॥ ६०१ ॥

राग मारू

आजु अति कोपे हैं रन राम।
ब्रह्मादिक आरूढ़ बिमाननि, देखत हैं संग्राम।
घन तन दिव्य कवच सजि करि अरु कर धारयौ सारंग।
सुचि करि सकल बान सूधे करि, कटि-तट कस्यौ निषंग।
सुरपुर तैं आयौ रथ सजि कै, रघुपति भए सवार।
काँपी भूमि कहा अब ह्वै है, सुमिरत नाम मुरारि।
छोभित सिंध, सेष-सिर कंपित, पवन भयौ गति पंग।
इंद्र हँस्यौ, हर हिय बिलखान्यौ, जानि बचन कौ भंग।
धर-अंबर, दिसि-बिदसि, बढ़े अति सायक किरन-समान।
मानौ महा-प्रलय के कारन उदित उभय षट भान।
टूटत धुजा-पताक-छत्र-रथ, चाप-चक्र-सिरत्रान।
जूझत सुभट जरत ज्यौं दव द्रुम बिनु साखा बिनु पान।
स्रोनित छिंछ उछरि आकासहिं, गज-बाजिनि-सिर लागि।
मानौ निकरि तरनि रध्रनि तैं, उपजी है अति आगि।

परि कवंध भहराइ रथनि तैं, उठत मनौ झर जागि।
फिरन सृगाल सज्यौ सब काटत चलत सो सिर लै भागि।
रघुपति रिस पावक प्रचंड अति, सीता-स्वास समीर।
रावन-कुल अरु कुंभकरन बन सकल सुभट रनधीर।
भए भस्म कछु बार न लागी, ज्यौं ज्वाला पट चीर।
सूरदास प्रभु आपु बाहुबल कियौ निमिष मैं कीर ॥१५८॥
॥६०२॥

राग मारू

रघुपति अपनौ प्रन प्रतिपारयौ।
तोरयौ कोपि प्रबल गढ़, रावन टूक-टूक करि डारयौ।
कहुँ भुज, कहुँ धर, कहुँ सिर लोटत, मानौ मद-मतवारौ।
भभकत, तरफत स्रोनित मैं तन नाहीँ परत निहारौ।
छोरे और सकल सुख-सागर, बाँधि उदधि जल खारौ।
सुर-नर-मुनि सब सुजस बखानत, दुष्ट दसानन मारौ।
डरपत बरुन-कुबेर इंद्र-जम, महा सुभट पन धारौ।
रह्यौ माँस कौ पिंड, प्रान लै गयौ बान अनियारौ!
नव ग्रह परे रहैं पाटी-तर, कूपहिँ काल उसारौ।
सो रावन रघुनाथ छिनक मैं कियौ गीध कौ चारौ!
सिर सँभारि लै गयौ उमापति, रह्यौ रुधिर कौ गारौ।
दियौ बिभीषन राज सूर प्रभु, कियौ सुरनि निस्तारौ ॥१५९॥
॥६०३॥

राग मारू

करुना करति मँदोदरि रानी।
चौदह सहस सुंदरी उमहीँ, उठै न कंत महा अभिमानी।
बार-बार बरज्यौ, नहिँ मान्यौ, जनक-सुता तैं कत घर आनी।
ये जगदीस ईस कमलापति, सीता तिय करि तैं कत जानी?
लीन्हे गोद बिभीषन रोवत, कुल कलंक ऐसी मति ठानी।
चोरी करी, राजहूँ खोयौ, अल्प मृत्यु तब आइ तुलानी।
कुंभकरन समुझाइ रहे पचि, दै, सीता, मिलि सारँगपानी।
सूर सबनि कौ कह्यौ न मान्यौ, त्यौं खोई अपनी रजधानी ॥१६०॥
॥६०४॥

राग मारू

लछिमन सीता देखी जाइ।
अति कुस, दीन, छीन-तन प्रभु बिनु, नैननि नीर बहाइ।
जामवंत - सुग्रीव - बिभीषन करी दंडवत आइ।
आभूषन बहुमोल पटंबर, पहिरौ मातु बनाइ।
बिनु रघुनाथ मोहिं सब फीके, आज्ञा मेटि न जाइ।
पुहुप बिमान बैठी बैदेही, त्रिजटी सब पहिराइ।
देखत दरस राम मुख मोर्‌यौ, सिया परी मुरझाइ।
सूरदास स्वामी तिहुँ पुर के, जग-उपहास डराइ ॥१६१॥
॥६०५॥

राग सोरठ

लछिमन, रचौ हुतासन भाई!
यह सुनि हनूमान दुख पायौ, मोपै लख्यौ न जाई।
आसन एक हुतासन बैठी, ज्यौं कुंदन-अरुनाई।
जैसैं रवि इक पल घन भीतर बिनु मारुत दुरि जाई।
लै उछंग उपसंग हुतासन, "निहकलंक रघुराई!"
लई बिमान चढ़ाइ जानकी, कोटि मदन छबि छाई।
दसरथ कह्यौ देवहू भाष्यौ, व्योम बिमान टिकाई।
सिया राम लै चले अवध कौं, सूरदास बलि जाई ॥१६२॥
॥६०६॥

राग मारू

सुरपतिहिं बोलि रघुबीर बोले।
अमृत की बृष्टि रन-खेत ऊपर करौ, सुनत तिन अमिय-भंडार खोले।
उठे कपि-भालु ततकाल जै-जै करत, असुर भए मुक्त, रघुबर निहारे।
सूर प्रभु अगम-महिमा न कछु कहि परति, सिद्ध गंधर्व जै-जै उचारे।
॥ १६३ ॥ ६०७ ॥

राग सारंग

बैठी जननि करति सगुनौती।
लछिमन-राम मिलैं अब मोकौं, दोउ अमोलक मोती।
इतनी कहत, सुकाग उहाँ तैं हरी डार उड़ि बैठ्यौ।
अंचल गाँठि दई, दुख भाज्यौ, सुख जु आनि उर पैठ्यौ।

जब लौं हैाँ जीवौं जीवन भर, सदा नाम तब जपिहैाँ।
दधि-ओदन दोना भरि दैहौँ, अरु भाइनि मैँ थपिहौँ।
अब कैँ जौ परचौ करि पावौँ अरु देखौँ भरि आँखि।
सूरदास सोने कैँ पानी मढ़ौँ चौंच अरु पाँखि ॥१६४॥

॥६०८॥

राग मारू

हमारी जन्मभूमि यह गाउँ।
सुनहु सखा सुग्रीव-बिभीषन, अवनि अजोध्या नाउँ।
देखत बन-उपवन-सरिता-सर, परम मनोहर ठाउँ।
अपनी प्रकृति लिए बोलत हौँ, सुरपुर मैँ न रहाउँ।
ह्याँ के बासी अवलोकत हौँ, आनँद उर न समाउँ।
सूरदास जौ बिधि न सँकोचै, तौ बैकुंठ न जाउँ ॥१६५॥

॥६०९॥

राग बसंत

राघव आवत हैँ अवध आज। रिपु जीने, साधे देव-काज।
प्रभु कुसल बंधु-सीता समेत। जस सकल देस आनंद देत।
कपि सोभित सुभट अनेक संग। ज्यौँ पूरन ससि सागर-तरंग।
सुग्रीब - बिभीषन - जामवंत। अंगद - सुषेन - केदार संत।
नल-नील - द्विविद-केसरि-गवच्छ। कपि कहे कछुक, हैँ बहुत लच्छ।
जब कही पवन-सुत बंधु-बात। तब उठी सभा सब हरष-गात।
ज्यौँ पावस रितु घन-प्रथम-घोर। जल जीवक, दादर रटत मोर।
जब सुन्यौ भरत पुर-निकट भूप। तब रची नगर-रचना अनूप।
प्रति-प्रति-गृह तोरन ध्वजा-धूप। सजे सजल कलस अरु कदलि-यूप।
दधि-दूब-हरद फल-फूल-पान। कर कनक-थार तिय करतिँ गान।
सुनि भेरि-बेद-धुनि संख-नाद। सब निरखत पुलकित अति प्रसाद।
देखत प्रभु की महिमा अपार। सब बिसरि गए मन-बुधि-बिकार।
जै-जै दसरथ-कुल-कमल-भान। जै कुमुद-जननि-ससि, प्रजा-प्रान।
जै दिवि भूतल सोभा समान। जै-जै-जै सूर, न सब्द आन ॥१६६॥

॥६१०॥

राग मारू

वै देखौ रघुपति हैँ आवत।
दूरिहिँ तैँ दुतिया कै ससि ज्यौँ, ब्योम बिमान महा छबि छावत।

सीय सहित वर बीर बिराजत, अवलोकत आनंद बढ़ावत।
चारु चाप कर परस सरस सिर मुकुट धरे सोभा अति पावत।
निकट नगर जिय जानि धँसे धर, जन्मभूमि की कथा चलावत।
ये मम अनुज परे दोउ पाइनि, ऐसी बिधि कहि कहि समुझावत।
ये बसिष्ट कुल-इष्ट हमारे, पालागन कहि सखनि सिखावत।
ये स्वामी, सुग्रीव-बिभीषन, भरतहुँ तैँ हमकौँ जिय भावत।
रिपु-जय, देव-काज, सुख-संपति सकल सूर इनही तैँ पावत।
ये अंगद हनुमान कृपानिधि पुर पैठत जिनकौ जस गावत ॥१६७॥
॥६११॥

राग मारू

देखौ कपिराज, भरत वै आए।
मम पाँवरी सीस पर जाकैँ, कर-अँगुरी रघुनाथ बताए।
छीन सरीर बीर के बिछुरैँ, राज-भोग चित तैँ बिसराए !
तप अरु लघु-दीरघता, सेवा, स्वामि-धर्म सब जगहिँ सिखाए।
पुहुप विमान दूरिहीँ छाँड़े, चपल चरन आवत प्रभु धाए।
आनँद-मगन पगनि केकइ-सुत कनक-दंड ज्यौँ गिरत उठाए।
भेँटत आँसू परे पीठि पर, बिरह-अगिनि मनु जरत बुझाए।
ऐसेहिँ मिले सुमित्रा-सुत कौँ, गदगद गिरा नैन जल छाए।
जथाजोग भेँटे पुरवासी, गए सूल, सुख-सिंधु नहाए।
सिया-राम-लछिलन मुख निरखत, सूरदास के नैन सिराए ॥१६८॥
॥६१२॥

राग मारू

अति सुख कौसिल्या उठि धाई।
उदित बदन मन मुदित सदन तैँ, आरति साजि सुमित्रा ल्याई।
जनु सुरभी बन बसति बच्छ बिनु, परबस पसुपति की बहराई।
चली साँझ समुहाइ स्रवत थन, उमँगि मिलन जननी दोउ आई।
दधि-फल-दूब कनक-कोपर भरि, साजत सौँज बिचित्र बनाई।
अमी-वचन सुनि हात कुलाहल, देवनि दिवि दुंदुभी बजाई।
बरन-बरन पट परत पाँवड़े, बीथिनि सकल सुगंध सिँचाई।
पुलकित-रोम, हरष-गदगद-स्वर, जुवतिनि मंगल-गाथा गाई।

निज मंदिर मैं आनि तिलक दै, द्विज-गन मुदित असीस सुनाई।
सिया-सहित सुख बसौ इहाँ तुम, सूरदास नित उठि बलि जाई।
॥ १६६ ॥ ६१३ ॥

राम-दर्शन *राग बिलावल*

देखन कौं मंदिर आनि चढ़ी।
रघुपति-पूरनचंद बिलोकत, मनु पुर-जलधि-तरंग बढ़ी।
प्रिय-दरसन-प्यासी अति आतुर, निसि-बासर गुन-ग्राम रढ़ी।
रही न लोक-लाज मुख निरखत, सीस नाइ आसीस पढ़ी।
भई देह जो खेह करम-बस, जन तट गंगा अनल दढ़ी।
सूरदास प्रभु दृष्टि सुधानिधि, मानौ फेरि बनाइ गढ़ी ॥१७०॥
॥६१४॥

राग मारू

मनिमय आसन आनि धरे।
दधि-मधु नीर कनक के कोपर आपुन भरत भरे।
प्रथम भरत बैठाइ बंधु कौं, यह कहि पाइ परे।
हौं पावौं प्रभु-पाइ पखारन, रुचि करि सो पकरे।
निज कर चरन पखारि प्रेम-रस आनँद-आँसु ढरे।
जनु सीतल सौं तप्त सलिल दै, सुखित समोइ करे।
परसत पानि-चरन-पावन, दुख अँग-अँग सकल हरे।
सूर सहित आमोद चरन-जल लै करि सीस धरे ॥१७१॥
॥६१५॥

राग आसावरी

बिनती किहिं बिधि प्रभुहिं सुनाऊँ ?
महाराज रघुबीर धीर कौं, समय न कबहूँ पाऊँ !
जाम रहत जामिनि के बीतैं, तिहिं औसर उठि धाऊँ।
सकुच होत सुकुमार नींद मैं, कैसैं प्रभुहिं जगाऊँ।
दिनकर-किरनि-उदित, ब्रह्मादिक-रुद्रादिक इक ठाऊँ।
अगनित भीर अमर-मुनि गन की, तिहिं तैं ठौर न पाऊँ।
उठत सभा दिन मधि, सैनापति-भीर देखि, फिरि आऊँ।
न्हात-खात सुख करत साहिबी, कैसैं करि अनखाऊँ।

रजनी-मुख आवत गुन-गावत, नारद तुंबुर नाऊँ।
तुमहीँ कहौ कृपा निधि रघुपति, किहिं गिनती मैँ आऊँ ?
एक उपाउ करौ कमलापति, कहौ तौ कहि समुझाऊँ।
पतित-उधारन नाम सूर प्रभु, यह रुक्का पहुँचाऊँ ॥१७२॥
॥६१६॥

कच-देवयानी-कथा *राग भैरो*

अविगत-गति कछु समुझि न परै। जो कछु प्रभु चाहै सो करै।
जिव कौ कियौ कछू नहिं होइ। कोटि उपाव करौ किन कोइ।
एक बार सुरपति-मन आई। सुक्र असुर कौँ लेत जिवाई।
मम गुरुहू विद्या पढ़ि आवै। मृतक सुरनि कौँ फेरि जिवावै।
निज गुरु सौँ भाष्यौ तिन जाइ। सुक्र असुर कौँ लेत जिवाइ।
तुमहूँ यह विद्या पढ़ि आवौ। मृतक सुरनि कौँ तुमहुँ जिवावौ।
तब तिन कच कौँ दियौ पठाइ। कह्यौ सुक्र कौँ तिन सिर नाइ।
मैं आयौ तुम पै रिषिराइ। तुम मोहिँ बिद्या देहु पढ़ाइ।
सुक्र कह्यौ तासौँ या भाइ। देहौँ विद्या तोहिँ पढ़ाइ।
विद्या पढ़ै करै गुरु सेव। सब विधि सोधै ताकी टेव।
सुक्र-सुता देवयानी नाम। सब गुन-पूर्न रूप-अभिराम।
सुरगुरु-सुत कौँ देखि लुभाई। देखै ताहि पुरुष की नाईँ।
काल बितीत कितिक जब भयौ। गाइ चावन कौँ सो गयौ।
असुरनि मिलि यह कियौ बिचार। सुरगुरु-सुत कौँ डारैँ मार।
जौ यह संजीवनि पढ़ि जाइ। तौ हम-सत्रुनि लेइ जिवाइ।
यह विचार करि कच कौँ मार्‌यौ। सुक्र-सुता दिन पंथ निहार्‌यौ।
साँझ भएँ हूँ जब नहिँ आयौ। सुक्र पास तिनि जाइ सुनायौ।
सुक्र हृदय मैँ कियौ विचार। कह्यौ असुरनि उहिँ डार्‌यौ मार।
सुता कह्यौ तिहि फेरि जिवावौ। मेरे जिय कौ सोच मिटावौ।
सुक्र ताहि पढ़ि मंत्र जिवायौ। भयौ तासु तनया कौ भायौ।
पुनि हति मदिरा माहिँ मिलाइ। दियौ दानवनि रिषिहिँ पियाइ।
तब तैँ हत्या मद कौँ लागी। यहै जानि सब सुर-मुनि त्यागी।
साप दियौ ताकौँ इहिँ भाइ। जो तोहिँ पियै सो नरकहिँ जाइ।
कच बिनु सुक्र-सुता दुख पायौ। तब रिषि तासौँ कहि समुझायौ।
मार्‌यौ कच कौ असुरनि धाइ। मदिरा मैँ मोहि दियौ पियाइ।

ताहि जिवाऊँ तौ मैं मरौं। जो तुम कहौ सो अब मैं करौं।
कह्यौ बिनय करि सुनु रिषिराइ। दोउ जीबैं सो करौ उपाइ।
संजीवनि तब कचहिँ पढ़ाई। तासौं पुनि यौं कह्यौ बुझाई।
जब तुम निकसि उदर तैं आवहु। या विद्या करि मोहिं जिवावहु।
उदर फारि तिहिँ बाहर कियौ। मिरतक कच ऐसी विधि जियौ।
सो जब उदर तैं बाहर आयौ। संजीवनी पढ़ि सुक्र जिवायौ।
बहुतक काल बीति जब गयौ। कच रिषि रिषि-तनया सौं कह्यौ।
अब मैं तुम्हरी आज्ञा पाइ। तात-मातु कौं देखौं जाइ।
रिषि-तनया कह्यौ मोहिं बिवाहि। कच कह्यो तू गुरु-भागिनी आहि।
तब तिन साप दियौ या भाइ। विद्या पढ़ी सो विरथा जाइ।
कचहूँ ताहि कही या भाइ। बिप्र पुरुष तोहिं मिलै न आइ।
यह कहि कच अपनैं गृह आयौ। पिता - पास वृत्तांत्त सुनायौ।
सुक नृप सौं ज्यौं कहि समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ।
॥ १७३ ॥ ६१७ ॥

देवयानी-ययाति-विवाह *राग भैरो*

दानव बृषपर्वा बल भारी। नाम स्रमिष्ठा तासु कुमारी।
तासु देवयानी सौं प्यार। रहै न तासौं पल भर न्यार।
एक बार ताकैं मन आई। न्हावन-काज तड़ाग सिधाई।
ता सँग दासी गईं अपार। न्हान लगीं सब बसन उतार।
अँधियारी आई तहँ भारी। दनुज-सुता तिहिं तैं न निहारी।
बसन सुक्र-तनया के लीन्हे। करत उतावलि परे न चीन्हे।
सुक्र-सुता जब आई बाहर। बसन न पाए तिन ता ठाहर।
असुर-सुता कौं पहिरे देखि। मन मैं कीन्हौ क्रोध बिसेषि।
कह्यौ मम बसन नहीं तुव जोग। तुम दानव, हम तपसी लोग।
मम पितु दियौ राज नृप करत। तू मम बसन हरत नहिं डरत।
तिन कह्यौ, तुव पितु भिच्छा खात। बहुरि कहति हमसौं यौं बात!
या बिधि कहि, करि क्रोध अपार। दीन्यौ ताहि कूप मैं डार।
नृपति जजाति अचानक आयौ। सुक्र-सुता कौ दरसन पायौ।
दियौ तब बसन आपनौ डारि। हाथ पकरि कै लियौ निकारि।
बहुरि नृपति निज गेह सिधायौ। सुता सुक्र सौं जाइ सुनायौ।
सुक्र क्रोध करि नगरहिं त्याग्यौ। असुर नृपति सुनि रिषि-सँग लाग्यौ।

जब बहु भाँति विनय नृप करी। तब रिषि यह बानी उच्चरी।
मम कन्या प्रसन्न ज्यौं होइ। करौ असुर-पति अब तुम सोइ।
सुक्र सुता सौं कह्यौ तिन आइ। आज्ञा होइ सो करौं उपाइ।
जो तुम कहौ करौं अब सोइ। तव पुत्री मम दासी होइ।
नृप पुत्री दासी करि ठई। दासी सहस ताहि सँग दई।
सो सब ताकी सेवा करै। दासी भाव हृदय मैं धरै।
इक दिन सुक्र सुता मन आई। देखौं जाइ फूल फुलवाई।
लै दासिनि फुलवारी गई। पुहुप-सेज रचि सोवत भई।
असुर-सुता तिहिं ब्यजन डुलावै। सोवत सेज सो अति सुख पावै।
तिहिं सवसर जजाति नृप आयौ। सुक्र सुता तिहिं वचन सुनायौ।
नृप मम पानि-ग्रहन तुम करौ। सुक्र सँकोच हृदय मति धरौ।
कच कौं प्रथम दियौ मैं साप। उनहूँ मोहिं दियौ करि दाप।
ताकौं कोउ न सकै मिटाई। तातैं ब्याह करौ तुम राइ।
नृप कह्यौ कहौ सुक्र सौं जाइ। करिहौं जो कहिहैं रिषि राइ।
तब तिनि कह्यौ सुक्र सौं जाइ। कियौ ब्याह रिषि नृपति बुलाई।
असुर-सुता ताक सँग दई। दासी सहस ताहि सँग भई।
दंपति भोग करत सुख पाए। सुक्र-सुता पुनि द्वै सुत जाए।
कह्यौ सरमिष्ठा अवसर पाइ। रति कौ दान देहु मोहिं राइ।
नृप ताहू सौं कीन्यौ भोग। तीनि पुत्र भए बिधि संजोग।
सुक्र-सुता तिन पुत्रनि देखि। मन मैं कीन्यौ क्रोध बिसेषि।
कह्यौ, सरमिष्ठा सुत कहँ पाए? उनि कह्यौ, रिषि-किरपा तैं जाए।
बहुरि कह्यौ, रिषि कौ कहि नाम। कह्यौ स्वप्न देख्यौ अभिराम।
पुनि पुत्रनि उन पूछ्यौ जाइ। पिता-नाम मोहिं कहौ बुझाइ।
बड़ै पुत्र भाष्यौ यौं ताहि। नृपति जजाति पिता मम आहि।
सुनि नृप सैौं कियौ जुद्ध बनाइ। बहुरि सुक्र सैंती कह्यौ जाइ।
पाछे तैं जजातिहूँ आयौ। रिषि तासौं यह बचन सुनायौ।
तैं जोबन मद तैं यह कीन्यौ। तातैं साप तोहिं मैं दीन्यौ।
जरा अबहिं तोहिं ब्यापै आइ। बिरध भयौ तब कह्यौ सिर नाइ।
रिषि, तुम तौ सराप मोहिं दयौ। पूरनकाम नाहिं मैं भयौ।
तातैं जो मोहिं आज्ञा होइ। आयसु मानि करौं अब सोइ!
कह्यो, जरा तेरी सुत लेइ। अपनी तरुनापौ तोहिं देइ।

भोगि मनोरथ तब तू पावै। मेरौ बचन बृथा नहिँ जावै।
बड़े पुत्र जदु सौँ कह्यौ आइ। उन कह्यौ- वृद्ध भयौ नहिँ जाइ।
नृप कह्यौ, तोहिँ राज नहिँ होइ। बृद्धपनौ लै राजा सोइ।
औरनिहूँ सौँ नृप जब भाष्यौ। नृपति बचन काहूँ नहिँ राख्यौ।
लघु सुत नृपति-बुढ़ापौ लयौ। अपनौ तरुनापौ तिहिँ दयौ।
बरष सहस्र भोग नृप किये। पै संतोष न आयौ हिये।
कह्यौ, विषय तैँ तृप्ति न होइ। भोग करौ कितनौ किन कोइ।
तब तरुनापौ सुत कौँ दीन्हौ। बृद्धपनौ अपनौ फिरि लीन्हौ।
बन मैँ करी तपस्या जाइ। रह्यौ हरि-चरननि सौँ चित लाइ।
या बिधि नृपति कृतारथ भयौ। सो राजा मैँ तुमसौँ कह्यौ।
सुक ज्यौँ नृप कौँ कहि समुझायौ। सूरदास त्यौँही कहि गायौ ॥१७४॥
॥३१८॥

॥ नवम स्कंध समाप्त ॥

दशम स्कंध

राग सारंग

व्यास कह्यौ सुकदेव सौं, श्रीभागवत बखानि।
द्वादस स्कंध परम सुभ, प्रेम-भक्ति की खानि।
नव स्कध नृप सौं कहे, श्रीसुकदेव सुजान।
सूर कहत अब दसम कौं, उर धरि हरि कौ ध्यान॥ १ ॥

॥६१६॥

राग बिलावल

हरि-हरि हरि-हरि सुमिरन करौ। हरि-चरनारबिंद उर धरौ।
जय अरु बिजय पारपद दोइ। बिप्र-सराप असुर भए सोइ।
दोउ जन्म ज्यौं हरि उद्धारे। सो तौ मैं तुमसौं उच्चारे।
दंतबक्र - सिसुपाल जो भए। बासुदेव ह्वै सो पुनि हुए।
औरौ लीला बहु बिस्तार। कीन्हौ जीवनि कौ निस्तार।
सो अब तुमसौं सकल बखानौं। प्रेम सहित सुनि हिरदै आनौ।
जो यह कथा सुनै चित लाइ। सो भव तरि बैकुंठहिं जाइ।
जैसैं सुक नृप कौं समुझायौ। सूरदास त्यौंही कहि गायौ॥ २ ॥

॥६२०॥

राग गौड़ मलार

आदि सनातन, हरि अबिनासी। सदा निरंतर घट-घट-बासी।
पूरन ब्रह्म, पुरान बखानैं। चतुरानन, सिव, अंत न जानैं।
गुन-गन अगम, निगम नहिं पावै। ताहि जसोदा गोद खिलावै।
एक निरंतर ध्यावै ज्ञानी। पुरुष पुरातन सो निर्बानी।
जप-तप-संजम-ध्यान न आवै। सोइ नंद कैं आँगन धावै।
लोचन-स्रवन न रसना-नासा। बिनु पद-पानि करै परगासा।
विस्वंभर निज नाम कहावै। घर-घर गोरस सोइ चुरावै।
सुक-सारद से करत बिचारा। नारद से पावहिं नहिं पारा।
अबरन, बरन सुरति नहिं धारै। गोपिनि के सो बदन निहारै।
जरा-मरन तैं रहित, अमाया। मातु, पिता, सुत, बंधु न जाया।
ज्ञान-रूप हिरदै मैं बोलै। सो बछरनि के पाछैं डोलै।

जल,धर, अनिल, अनल, नभ, छाया। पंचतत्त्व तैं जग उपजाया।
माया प्रगटि सकल जग मोहै। कारन करन करै सो सोहै।
सिव-सभाधि जिहि अंत न पावै। सोइ गोप की गाइ चरावै।
अच्युत रहै सदा जल-साई। परमानंद परम सुखदाई।
लोक रचै राखै अरु मारै। सो ग्वालनि सँग लीला धारै।
काल डरै जाकैं डर भारी। सो ऊखल बाँध्यौ महतारी।
गुन अतीत, अविगत, न जनावै। जस अपार, स्तुति पार न पावै।
जाकी महिमा कहत न आवै। सो गोपिनि सँग रास रमावै।
जाकी माया लखै न कोई। निर्गुन-सगुन धरै वपु सोई।
चौदह भुवन पलक मैं टारै। सो बन-बीथिनि कुटी सँवारै।
चरन-कमल नित रमा पलोवै। चाहति नैंकु नैन भरि जोवै।
अगम, अगोचर, लीला-धारी। सो राधा-बस कुंज-बिहारी।
बड़भागी वै सब ब्रजबासी। जिनकैं सँग खेलैं अबिनासी।
जा रस ब्रह्मादिक नहिं पावैं। सो रस गोकुल-गलिनि बहावैं।
सूर सुजस कहि कहा बखानै। गोबिंद की गति गोबिंद जानै ॥३॥
॥६२१॥

राग सारंग

बाल-बिनोद भावती लीला, अति पुनीत मुनि भाषी।
सावधान ह्वै सुनौ परीच्छित, सकल देव मुनि साखी।
कालिंदी कैं कूल बसत इक मधुपुरि नगर रसाला।
कालनेमि अरु उग्रसेन - कुल, उपज्यौ कंस भुवाला।
आदि - ब्रह्म - जननी, सुर-देवी, नाम देवकी बाला।
दई बिवाहि कंस बसुदेवहिं, दुख-भंजन, सुख-माला।
हय - गय - रतन - हेम-पाटंबर, आनँद-मंगलचारा।
समदत भई अनाहत बानी, कंस - कान झनकारा।
याकी कोखि औतरै जो सुत, करै प्रान-परिहारा।
रथ तैं उतरि, केस गहि राजा, कियौ खड्ग पटतारा।
तब बसुदेव दीन ह्वै भाष्यौ, पुरुष न तिय-बध करई।
मोकौं भई अनाहत बानी, तातैं सोच न टरई।
आगैं वृच्छु फरै जो बिष-फल, बृच्छ बिना किन सरई।
याहि मारि, तोहि और बिवाहौं, अग्र-सोच क्यौं मरई।

यह सुनि सकल देव-मुनि भाष्यौ, राय, न ऐसी कीजै।
तुम्हरे मान्य बसुदेव-देवकी, जीव-दान इहिँ दीजै।
कीन्यौ जज्ञ होत है निष्फल, कह्यौ हमारौ कीजै।
याकैँ गर्भ अवतरैँ जे सुत, सावधान ह्वै लीजै।
पहिलौ पुत्र देवकी जायौ, लै बसुदेब दिखायौ।
बालक देखि कंस हँसि दीन्यौ, सब अपराध छमायौ।
कंस कहा लरिकाई कीनी, कहि नारद समुझायौ।
जाकौ भरम करत हौ राजा, मति पहिलैं सो आयौ!
यह सुनि कंस पुत्र फिरि माँग्यौ, इहिँ बिधि सबनि सँहारौ।
तब देवकी भई अति व्याकुल, कैसैं प्रान प्रहारैाँ।
कंस वंस को नास करत है, कहँ लौँ जीव उबारौँ।
यह बिपदा कब मेटहिँ श्रीपति अरु हौँ काहिं पुकारौँ।
धेनु-रूप धरि पुहुमि पुकारी, सिव-बिरंचि कैं द्वारा।
सब मिलि गए जहाँ पुरुषोत्तम, जिहिँ गति अगम अपारा।
छीर-समुद्र-मध्य तैं यौं हरि, दीरघ बचन उचारा।
उघरौं धरनि, असुर-कुल मारौं, धरि नर-तन-अवतारा।
सुर, नर नाग तथा पसु-पच्छी, सब कौं आयसु दीन्हौ।
गोकुल जनम लेहु सँग मेरैं, जो चाहत सुख कीन्हौ।
जेहिँ माया बिरंचि-सिव मोहे, बहै बानि करि चीन्हौ।
देवकि गर्भ अकर्षि रोहिनी, आप बास करि लीन्हौ।
हरि कैं गर्भ-बास जननी कौ बदन उजारौ लाग्यौ।
मानहुँ सरद-चंद्रमा प्रगट्यौ, सोच-तिमिर तन भाग्यौ।
तिहिं छन कंस आनि भयौ ठाढ़ौ, देखि महातम जाग्यौ।
अबकी बार आपु आयौ है अरी, अपुनपौ त्याग्यौ।
दिन दस गएँ देवकी अपनो बदन बिलोकन लागी।
कंस-काल जिय जानि गर्भ मैं, अति आनंद सभागी।
सुर-नर-देव बंदना आए, सोवत तैं उठि जागी।
अविनासी कौ आगम जान्यौ, सकल देव अनुरागी।
कछु दिन गएँ गर्भ कौ आलस, उर-देवकी जनायौ।
कासौँ कहैाँ सखी कोउ नाहिंन, चाहति गर्भ दुरायौ।
बुध-रोहिनी-अष्टमी-संगम, वसुदेव निकट बुलायौ।
सकल लोकनायक, सुखदायक, अजन, जन्म धरि आयौ।

गोपी ... का
मूल स्वरूप

माथैं मुकुट, सुभग पीतांबर, उर सोभित भृगु-रेखा।
संख-चक्र-गदा-पद्म बिराजत, अति प्रताप सिसु-भेषा।
जननी निरखि भई तन ब्याकुल, यह न चरित कहुँ देखा।
बैठी सकुचि, निकट पति बोल्यौ, दुहुँनि पुत्र-मुख पेखा।
सुनि देवकि, इक आन जन्म की, तोकौं कथा सुनाऊँ।
तैं माँग्यौ, हौं दियौ कृपा करि, तुम सौ बालक पाऊँ।
सिव-सनकादि आदि ब्रह्मादिक ज्ञान ध्यान नहिं आऊँ।
भक्तबछल बानौ है मेरौ, बिरुदहिं कहा लजाऊँ।
यह कहि मया मोह अरुझाए, सिसु ह्वै रोवन लागे।
अहो बसुदेव जाहु लै गोकुल, तुम हौ परम सभागे।
घन-दामिनि धरती लौं कौंधै, जमुना-जल सौं पागे।
आगैं जाउँ जमुन-जल गहिरौ, पाछैं सिंह जु लागे।
लै बसुदेव धसे दह सूधे, सकल देव अनुरागे।
जानु, संघ, कटि, ग्रीव, नासिका, तब लियौ स्याम उछाँगे।
चरन पसारि परसी कालिंदी, तरवा नीर तियागे।
सेष सहस फन ऊपर छायौ, ले गोगुल कौं भागे।
पहुँचे जाइ महर-मंदिर मैं, मनहिं न संका कीनी।
देखी परी जोगमाया, बसुदेव गोद करि लीनी।
लै बसुदेव मधुपुरी पहुँचे प्रगट सकल पुर कीनी।
देवकी-गर्भ भई है कन्या, राइ न बात पतीनी।
पटकत सिला गई, आकासहिं, दोउ भुज चरन लगाई।
गगन गई, बोली सुरदेवी, कंस, मृत्यु नियराई।
जैसैं मीन जाल मैं क्रीड़त, गनै न आपु लखाई।
तैसैंहि, कंस, काल उपज्यौ है, ब्रज मैं जादवराई।
यह सुनि कंस देवकी आगैं रह्यौ चरन सिर नाई।
मैं अपराध कियौ सिसु मारे, लिख्यौ न मेट्यौ जाई।
काकैं सत्रु जन्म लीन्यौ है, बूझै मतौ बुलाई।
चारि पहर सुख-सेज परे निसि, नेकु नींद नहिं आई।
जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, आनँद-तूर बजायौ।
कंचन-कलस, होम, द्विज-पूजा, चंदन भवन लिपायौ।
बरन-बरन रँग ग्वाल बने, मिलि गोपिन मंगल गायौ।
बहु बिधि ब्योम कुसुम सुर बरषत, फूलनि गोकुल छायौ।

आनँद भरे करत कौतूहल, प्रेम-मगन नर-नारी।
निर्भर अभय-निसान बजावत, देत महरि कौं गारी।
नाचत महर मुदित मन कीन्हे, ग्वाल बजावत तारी।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मथुरा-गर्व-प्रहारी॥ ४॥
॥६२२॥

राग बिलावल

हरि-मुख देखि हो बसुदेव!
कोटि-काल-स्वरूप सुंदर, कोउ न जानत भेव।
चारि भुज जिहिँ चारि आयुध, निरखि कै न पत्याउ।
अजहुँ मन परतीति नाहीँ नंद-घर लै जाउ।
स्वान सूते, पहरुवा सब, नीँद उपजी गेह।
निसि अँधेरी, बीजु चमकै, सघन बरषै मेह।
बंदि बेरी सबै छूटी, खुले बज्र-कपाट।
सीस धरि श्रीकृष्न लीने, चले गोकुल-बाट।
सिंह-आगैँ, सेष पाछैँ, नदी भई भरिपूरि।
नासिका लौँ नीर बाढ्यौ, पार पैलो दूरि।
सीस तैँ हुंकार कीनी, जमुन जान्यौ भेव।
चरन परसत थाह दीन्ही, पार गए बसुदेव।
महरि-ढिग उन जाइ राखे, अमर अति आनंद।
सूरदास बिलास ब्रज-हित, प्रगटे आनँद-कंद॥ ५॥ ६२३॥

राग बिलावल

आनंदै आनंद बढ़्यौ अति।
देवनि दिवि दुंदुभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति।
विद्याधर-किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन, नाचतिँ सब सुर-नारि रसिक अति।
बरषत सुमन सुदेस सूर सुर, जय-जयकार करत, मानत रति।
सिव-बिरंचि-इंद्रादि अमर मुनि, फूले सुख न समात मुदित मति॥ ६॥
॥ ६२४॥

राग बिलावल

कमल-नैन ससि-बदन मनोहर, देखे हो पति अति बिचित्र गति।
स्याम सुभग तन, पीत-बसन-द्युति, सोहै बनमाला अदभुत अति।

नव-मनि-मुकुट-प्रभा अति उदित, चित्त-चकित अनुमान न पावति।
अति प्रकास निसि विमल, तिमिर छर, कर मलि-मलि निज पतिहिँ
जगावति।
दरसन-सुखी, दुखी अति सोचति, षट सुत-सोक-सुरति, उर आवति।
सूरदास प्रभु होहु पराकृत, अस कहि भुज के चिह्न दुरावति ॥७॥
॥५२६॥

राग बिहागरौ

देवकी मन-मन चकित भई।
देखहु आइ पुत्र-मुख काहे न, ऐसी कहुँ देखी न दई।
सिर पर मुकुट, पीत उपरैना, भृगु-पद उर, भुज चारि धरे।
पूरब कथा सुनाइ कही हरि, तुम माँग्यौ इहिँ भेष करे।
छोरे निगड़, सोआए पहरू, द्वारे कौ कपाट उघर्यौ।
तुरत मोहिं गोकुल पहुँचावहु, यह कहि कै सिसु बेष धर्यौ।
तब बसुदेव उठे यह सुनतहिँ, हरषवंत नँद-भवन गए।
बालक धरि, लै सुरदेवी कौं, आइ सूर मधुपुरी ठए ॥८॥
॥६२६॥

राग केदारौ

अहो पति सो उपाइ कछु कीजै।
जिहिँ उपाइ अपनौ यह बालक, राखि कंस सौं लीजै!
मनसा, बाचा, कहत कर्मना, नृप कबहूँ न पतीजै।
बुधि,, बल, छल कल, कैसैँहु करिकै, काढ़ि अनतहीँ दीजै।
नाहिँ न इतनौ भाग जो यह रस, नित लोचन-पुट पीजै।
सूरदास ऐसे सुत कौ जस, स्रवननि सुनि-सुनि जीजै ॥९॥
॥६२७॥

राग केदारौ

सुनि देवकी को हितू हमारै।
असर कंस अपबंस बिनासन, सिर ऊपर बैठे रखवारै।
ऐसौ को समरथ त्रिभुवन मैँ, जो यह बालक नैँकु उबारै।
खड़ग धरे आवै, तुव देखत, आनैँ कर छिन माहँ पछारै।

यह सुनतहिँ अकुलाइ गिरी धर, नैन नीर भरि-भरि दोउ ढारे।
दुखित देखि बसुदेव-देवकी-प्रगट भए धरि कै भुज चारै।
बोलि उठे परतिज्ञा करि प्रभु, मोतैं उबरै तब मोहिँ मारै।
अति दुख मैं सुख दै पितु-मातहिँ, सूरज-प्रभु-नँद-भवन सिधारे ॥१०॥
॥६२८॥

राग केदारौ

भादौं की अध-रात अँध्यारी।
द्वार-कपाट-कोट भट रोके, दस दिसि कंत कंस-भय भारी।
गरजत मेघ, महा डर लागत, बीच बढ़ी जमुना जल कारी।
तातैं यहै सोच जिय मोरैं, क्यौं दुरिहै ससि-बदन उज्यारी।
तब कत कंस रोकि राख्यौ पिय, बरु बाही दिन काहैं न मारी।
कहि, जाकौ ऐसौ सुत बिछुरै, सो कैसैं जीवै महतारी?
सुनि-सुनि दीन बचन जननी के, दीनबंधु भक्तनि-भयहारी।
छोरे निगड़, कपाट उघारे, सूर सु मघवा बृष्टि निवारी ॥११॥
६२६

राग धनाश्री

अँधियारी भादौं की रात।
बालक हित बसुदेव देवकी, बैठि बहुत पछितात।
बीच नदी, घन गरजत बरषत, दामिनि कौंधति जात।
बैठत-उठत सेज-सोवत मैं कंस-डरनि अकुलात।
गोकुल बाजत सुनी बधाई, लोगनि हियैं सुहात।
सूरदास आनंद नंद कैं, देत कनक नग दात ॥१२॥
॥६३०॥

राग बिलावल

गोकुल प्रगट भए हरि आइ।
अमर-उधारन, असुर-सँहारन, अंतरजामी त्रिभुवन राइ।
माथैं धरि बसुदेव जु ल्याए, नंद-महर-घर गए पहुँचाइ।
जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मैं न समाइ।
गदगद कंठ, बोलि नहिँ आवै, हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ।
आवहु कंत, देव परसन भए, पुत्र भयौ, मुख देखौ धाइ।

दौरि नंद गए, सुत-मुख देख्यौ, सो सुख मोपै बरनि न जाइ।
सूरदास पहिलैं ही माँग्यौ, दूध पियावन जसुमति माइ ॥१३॥
॥६३१॥

राग गांधार

उठीं सखी सब मंगल गाइ।
जागु जसोदा, तेरैं बालक उपज्यौ, कुँवर कन्हाइ।
जो तू रच्यौ-सच्यौ या दिन कौं, सो सब देहि मँगाइ।
देहि दान बंदी जन गुनि-गन, ब्रज-बासिनि पहिराइ।
तब हँसि कहत जशोदा ऐसैं, महरहिं लेहु बुलाइ।
प्रगट भयौ पूरब तप कौ फल, सुत-मुख देखौ आइ।
आए नंद हँसत तिहिं औसर, आनँद उर न समाइ।
सूरदास ब्रज बासी हरषे, गनत न राजा-राइ ॥१४॥
॥६३२॥

राग नायकी

जसुदा, नार न छेदन दैहौं।
मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, वहै आजु हौं लैहौं।
औरनि कै हैं गोप-खरिक बहु, मोहिं गृह एक तुम्हारौ।
मिटि जु गयौ संताप जनम कौ, देख्यौ नंद-दुलारौ।
बहुत दिनन की आशा लागी, झगरिनि झगरौ कीनौ।
मन मैं बिहँसि तबै नँदरानी, हार हिये कौ दीनौ।
जाकैं नार आदि ब्रह्मादिक, सकल-बिस्व-आधार।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मेटन कौं भू-भार ॥१५॥
॥६३३॥

राग देवगंधार

झगरिनि तैं हौं बहुत खिझाई।
कंचन-हार दिऐं नहिं मानति, तुहीं अनोखी दाई।
बेगिहिं नार छेदि बालक को जाति बयारि भराई।
सत संजम, तीरथ-ब्रत कीन्हैं, तब यह संपति पाई।
मेरौ चीत्यौ भयौ नँदरानी, नंद-सुवन सुखदाई।
दीजै बिदा, जाउँ घर अपनैं, काल्हि साँझि की आई।

इतनौ सुनत मगन ह्वै रानी बोलि लए नँदराई ।
सूरदास कंचन के अभरन लै झगरिनि पहिराई ॥१६॥
॥६३४॥

राग धनाश्री

जसुमति लटकति पाइ परै ।
तेरौ भलौ मनैहौं झगरिनि, तू मति मनहिं डरै ।
दीन्हौ हार गरैं, कर कंकन, मौतिनि थार भरै ।
सूरदास स्वामी प्रगटे हैं, औसर पै झगरै ॥ १७ ॥
॥ ६३५ ॥

राग विहागरौ

हरि कौ नार न छीनौं माई ।
पूत भयौ जसुमति रानी कैं, अर्द्धराति हौं आई ।
अपने मन कौ भायौ लेहौं, मोतिनि थार भराई ।
यह औसर कब ह्वैहै फिरि कै, पायौ देव मनाई ।
उठी रोहिनी परम अनंदित हार-रतन लै आई ।
नार छीनि तब सूर स्याम कौ, हँसि-हँसि देति बधाई ॥१८॥
॥६३६॥

राग बिलावल

नंदराइ कैं नवनिधि आई ।
माथैं मुकुट, स्रवन मनि-कुंडल, पीत बसन, भुज चारि सुहाई ।
बाजत ताल-मृदंग जंत्र-गति, चरचि अरगजा अंग चढ़ाई ।
अच्छत दूब लिये रिषि ठाढ़े, बारनि बंदनवार बँधाई ।
छिरकत हरद दही, हिय हरषत, गिरत अंक भरि लेत उठाई ।
सूरदास सब मिलत परस्पर, दान देत नहिं नंद अघाई ॥ १६ ॥
॥६३७॥

राग विलावल

आजु बन कोऊ वै जनि जाइ ।
सब गाइनि बछरनि समेत, लै आनहु चित्र बनाइ ।
ढोटा है रे भयौ महर कैं, कहत सुनाइ-सुनाइ ।
सबहि घोष मैं भयौ कुलाहल, आनँद उर न समाइ ।

कत हौ गहर करत बिन काजैं, वेगि चलौ उठि धाइ।
अपने-अपने मन कौ चीत्यौ, नैननि देख्यौ आइ।
एक फिरत दधि दूब धरतसिर, एक रहत गहि पाइ।
एक परस्पर देत बधाई, एक उठत हँसि गाइ।
बालक-बृद्ध-तरुन-नरनारिनि, बढ़यौ चौगुनौ चाइ।
सूरदास सब प्रेम-मगन भए, गनत न राजा-राइ॥ २०॥
॥६३८॥

राग रामकली

हौं इक नई बात सुनि आई।
महरि जसौदा ढोटा जायौ, घर-घर होति बधाई।
द्वारैं भीर गोप-गोपिनि की, महिमा बरनि न जाई।
अति आनंद होत गोकुल मैं, रतन भूमि सब छाई।
नाचत वृद्ध, तरुन अरु बालक, गोरस-कीच मचाई।
सूरदास स्वामी सुख-सागर, सुंदर स्याम कन्हाई।॥२१॥
॥६३९॥

राग रामकली

हौं सखि, नई चाह इक पाई।
ऐसे दिननि नंद कैं सुनियत, उपज्यौ पूत कन्हाई।
बाजत पनव-निसान पंचबिध, रुंज-मुरज - सहनाई।
महर-महरि ब्रज-हाट लुटावत, आनँद उर न समाई!
चलौ सखी, हमहूँ मिलि जैऐ, नैंकु करौ अतुराई।
कोउ भूषन पहिस्यौ, कोउ पहिरति, कोउ वैसैंहिं उठि धाई।
कंचन-थार दूब-दधि-रोचन, गावति चारु बधाई।
भाँति-भाँति बनि चलीं जुवति जन, उपमा बरनि न जाई।
अमर बिमान चढ़े सुख देखत, जै-धुनि-सब्द सुनाई।
सूरदास प्रभु भक्त-हेत-हित, दुष्टनि के दुखदाई॥ २२॥
॥६४०॥

राग गूजरी

सखि री, काहैं गहरु लगावति?
सब कोऊ ऐसौ सुख सुनि कै, क्यौं नाहिंन उठि धावति।

आजु सो बात बिधाता कीन्ही, मन जो हुती अति भावति।
सुत कौ जन्म जसोदा कैँ गृह, ता लगि तुम्हैँ बुलावति।
कनक - थार भरि, दधि-रोचन लै, बेगि चलौ मिलि गावति।
साँचैँहि सुत भयौ नँद - नायक कैँ, हौँ नाहीँ बौरावति।
आनँद उर अंचल न सम्हारति, सीस सुमन बरषावति।
सूरदास सुनि जहाँ - तहाँ तैँ आवत सोभा पावति ॥२३॥
॥६४१॥

राग आसावरी

ब्रज भयौ महर कैँ पूत, जब यह बात सुनी।
सुनि आनंदे सब लोग, गोकुल नगक - गुनी।
अति पूरन पूरे पुन्य, रोपी सुथिर थुनी।
ग्रह-लगन-नषत-पल सोधि, कीन्ही बेद-धुनी।
सुनि धाईँ सब ब्रजनारि, सहज सिँगार किये।
तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिये।
कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिये।
कर - कंकन, कंचन - थार, मंगल - साज लिये।
सुभ स्रवननि तरल तरौन, बेनी सिथिल गुही।
सिर बरषत सुमन सुदेस, मानौ मेघ फुही।
मुख मंडित रोरी रंग, सेँदुर माँग छुही।
उर अंचल उड़त न जानि, सारी सुरँग सुही।
ते अपनैँ - अपनैँ मेल, निकसीँ भाँति भली।
मनु लाल-मुनैयनि पाँति, पिँजरा तोरि चली।
गुन गावत मंगल-गीत, मिलि दस पाँच अली।
मनु भोर भएँ रवि देखि, फूलीँ कमल-कली।
पिय - पहिलैँ पहुँचीँ जाइ अति आनंद भरीँ।
लईँ भीतर भवन बुलाइ, सब सिसु - पाइ परीँ।
इक बदन उघारि निहारि, देहिँ असीस खरी।
चिरजीवौ जसुदा-नंद, पूरन - काम करी।
धनि दिन है, धनि यह राति, धनि-धनि पहर घरी।
धनि-धन्य महरि कौ कोख, भाग-सुहाग भरी।

जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी।
थिर थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी।
सुन ग्वालनि गाइ बहोरि, बालक बोलि लए।
गुहि गुंजा घसि वनधातु, अंगिनि चित्र ठए।
सिर दधि-माखन के माट, गावत गीत नए।
डफ-झाँझ-मृदंग बजाइ, सब नँद-भवन गए।
मिलि नाचत करत कलोल, छिरकत हरद-दही।
मनु बरषत भादौं मास, नदी घृत-दूध बही।
जब जहाँ-जहाँ चित जाइ, कौतुक तहीं-तहीं।
सब आनँद-मगन गुवाल, काहूँ बदत नहीं।
इक धाइ नंद पै जाइ, पुनि-पुनि पाइ परैं।
इक आपु आपुहीं माहिं, हँसि-हँसि मोद भरैं।
इक अभरन लेहिं उतारि, देत न संक करैं।
इक दधि-गोरोचन-दूब, सबकैं सीस धरैं।
तब न्हाइ नंद भए ठाढ़, अरु कुस हाथ धरे।
नांदीमुख पितर पुजाइ, अंतर सोच हरे।
घसि चंदन चारु मँगाइ, बिप्रनि तिलक करे।
द्विज-गुरु-जन कौं पहिराइ, सब कैं पाइ परे।
तहँ गैयाँ गनी न जाहिं, तरुनी बच्छ बढ़ीं।
जे चरहिं जमुन कैं तीर, दूनैं दूध चढ़ीं।
खुर ताँबैं, रूपैं पीठि सोनैं सींग मढ़ीं।
ते दीन्हीं द्विजनि अनेक, हरषि असीस पढ़ीं।
सब इष्ट मित्र अरु बंधु, हँसि-हँसि बोलि लिये।
मथि मृगमद-मलय-कपूर, माथैं तिलक किये।
उर मनि-माला पहिराइ, बसन बिचित्र दिये।
दै दान-मान-परिधान, पूरन-काम किये।
वंदीजन-मागध-सूत, आँगन-भौन भरे।
ते बोलैं लै-लै नाउँ, नहिं हित कोउ बिसरे।
मनु बरषत मास अषाढ़, दादुर-मोर ररे।
जिन जो जाँच्यौ सोइ दीन, अस नँदराइ ढरे।
तब अंबर और मँगाइ, सारी सुरँग चुनी।
ते दीनी बधुनि बुलाइ, जैसी जाहि बनी।

ते निकसीं देति असीस, रुचि अपनी-अपनी।
बहुरीं सब अति आनंद, निज गृह गोप-धनी।
पुर घर-घर भेरि-मृदंग, पटह-निसान बजे।
बर बारनि बंदनवार, कंचन कलस सजे।
ता दिन तैं वै ब्रज लोग, सुख-संपति न तजे।
सुनि सबकी गति यह सूर, जे हरि-चरन भजे ॥२४॥
॥६४२॥

राग धनाश्री

आजु नंद के द्वारैं भीर।
इक आवत, इक जात बिदा ह्वै, इक ठाढ़े मंदिर कैं तीर।
कोउ केसरि कौ तिलक बनावति, कोउ पहिरति कंचुकी सरीर।
एकनि कौं गौ-दान समर्पत, एकनि कौं पहिरावत चीर।
एकनि कौं भूषन पाटंबर, एकनि कौं जु देत नग हीर।
एक कौं पुहुपनि की माला, एकनि कौं चंदन घसि नीर।
एकनि माथैं दूब-रोचना, एकनि कौं बोधति दै धीर।
सूरदास धनि स्याम सनेही, धन्य जसोदा पुन्य-सरीर ॥२५॥
॥६४३॥

राग गौरी

बहुत नारि सुहाग-सुंदरि और घोष कुमारि।
सजन-प्रीतम-नाम लै-लै, दै परसपर गारि।
अनंद अतिसै भयौ घर-घर, नृत्य ठावँहिं-ठावँ।
नंद-द्वारैं भेंट लै-लै उमह्यौ गोकुल गावँ।
चौक चंदन लीपि कै, धरि आरती संजोइ।
कहति घोष-कुमारि, ऐसौ अनंद जौ नित होइ!
द्वार सथिया देति स्यासा, सात सौंक बनाइ।
नव किसोरी मुदित ह्वै-ह्वै गहति जसुदा-पाइ।
करि अलिंगन गोपिका, पहिरैं अभूषन-चीर!
गाइ-बच्छ सँवारि ल्याए, भई ग्वारनि भीर।
मुदित मंगल सहित लीला करैं गोपी-ग्वाल।
हरद, अच्छत, दूब, दधि लै, तिलक करैं ब्रजबाल।

एक एक न गनत काहूँ, इक खिलावत गाइ।
एक हेरी देहिं, गावहिं, एक भैंटहि धाइ।
एक बिरध-किसोर-बालक, एक जोबन जोग।
कृष्न-जन्म सु प्रेम-सागर, क्रीड़ैं सब ब्रज-लोग।
प्रभु मुकुंद कैं हेत नूतन होहिं घोष-विलास।
देखि ब्रज की संपदा कौं, फूलै सूरजदास ॥२६॥
॥६४४॥

राग धनाश्री

आजु बधायौ नंदराइ कैं, गावहुँ मंगलचार।
आईं मंगल-कलस साजि कै, दधि फल नूतन-डार।
उर मेले नंदराइ कैं, गोप-सखनि मिलि हार।
मागध-बंदी-सूत अति करत कुतूहल बार।
आए पूरन आस कै, सब मिलि देत असीस।
नंदराइ कौ लाड़िलौ, जीवै कोटि बरीस।
तब ब्रज-लोगनि नंद जू, दीने बसन बनाइ।
ऐसी सोभा देख कै, सूरदास बलि जाइ ॥२७॥
॥६४५॥

राग गौरी

धनि-धनि नंद-जसोमति, धनि जग पावन रे।
धनि हरि लियौ अवतार, सु धनि दिन आवन रे।
दसएँ मास भयौ पूत, पुनीत सुहावन रे।
संख-चक्र-गदा-पद्म चतुरभुज भावन रे।
बनि ब्रज-सुंदरि चलीं, सु गाइ बधावन रे।
कनक-थार रोचन-दधि, तिलक बनावन रे।
नंदघरहिं चलि गईं, महरि जहँ पावन रे।
पाइनि परि सब वधू, महरि बैठावन रे।
जसुमति धनि यह कोखि, जहाँ रहे बावन रे।
भलैं सु दिन भयौ पूत, अमर अजरावन रे।
जुग-जुग जीवहु कान्ह, सबनि मन भावन रे।
गोकुल-हाट-बजार करत जु लुटावन रे।

घर-घर बजै निसान, सु नगर सुहावन रे।
अमर-नगर उतसाह, अप्सरा-गावन रे।
ब्रह्म लियौ अवतार, दुष्ट के दावन रे।
दान सबै जन देत, बरषि जन सावन रे।
मागध, सूत, भाँट, धन लेत जुरावन रे।
चोवा - चंदन-अबिर, गलिनि छिरकावन रे।
ब्रह्मादिक, सनकादिक, गगन भरावन रे।
कस्यप रिषि सुर-तात, सु लगन गनावत रे।
तीनि-भुवन-आनंद, कंस-डरपावन रे।
सूरदास प्रभु जनमे, भक्त-हुलसावन रे ॥ २८ ॥
॥६४६॥

राग कल्यान

सोभा-सिंधु न अंत रही री।
नंद-भवन भरि पूरि उमँगि चलि, ब्रज की बीथिनि फिरति बही री।
देखी जाइ आजु गोकुल मैं, घर-घर बेंचति फिरति दही री।
कहँ लगि कहौं बनाइ बहुत बिधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री।
जसुमति-उदर-अगाध-उदधि तैं, उपजो ऐसी सबनि कही री।
सूरश्याम प्रभु इंद्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री ॥ २६ ॥
॥६४७॥

राग काफी

आजु हो निसान बाजै, नंद जू महर के।
आनंद-मगन नर गोकुल सहर के।
आनंद भरी जसोदा उमँगि अंग न माति, आनंदित भईं गोपी गावतिँ चहर के।
दूध-दधि-रोचन कनक-थार लै लै चली, मानौ इंद्र-बधू जुरीँ पाँतिनि बहर के।
आनँदित ग्वाल-बाल, करत बिनोद ख्याल, भुज-भरि-भरि धरि अंकम महर के।
आनंद-मगन धेनु स्रवैँ थनु पय-फेनु, उमँग्यौ जमुन-जल उछलि लहर के।

अंकुरित तरु-पात, उकठि रहे जे गात, बन-बेली प्रफुलित कलिनी कहर के।
आनँदित विप्र, सूत, मागध, जाचक-गन, उमँगि असीस देत सब हित हरि के।
आनँद-मगन सब अमर गगन छाए पुहुप बिमान चढ़े पहर पहर के।
सूरदास प्रभु आइ गोकुल प्रगट भए, संतनि हरष, दुष्ट-जन-मन धरके॥ ३०॥
॥ ६४८॥

राग काफी

(माई) आजु हो बधायो बाजे नंद गोप-राइ के।
जदुकुल-जादौराइ जनमे हैं आइ के।
आनंदित गोपी-ग्वाल, नाचैं कर दै-दै ताल, अति अहलाद भयौ जसुमति माइ कै।
सिर पर दूब धरि, बैठे नंद सभा-मधि, द्विजनि कौं गाइ दीनी बहुत मँगाइ कै।
कनक कौ माट लाइ, हरद-दही मिलाइ, छिरकैं परसपर छल-बल धाइ कै।
आठैं कृष्न पच्छ भादौं, महर कैं दधि कादौं, मोतिनि बँधायौ बार महल मैं जाइ कै।
ढाढ़ी औ ढाढ़िनि गावैं, ठाढ़े हुरके बजावैं, हरषि असीस देत मस्तक नवाइ कै।
जोइ-जोइ माँग्यौ जिनि, सोइ-सोइ पायो तिनि, दीजै सूरदास दर्स भक्तनि बुलाइकै॥ ३१॥
॥ ६४९॥

राग जैतश्री

आजु बधाई नंद कैं माई। ब्रज की नारि सकल जुरि आईं।
सुंदर नंद महर कैं मंदिर। प्रगटयौ पूत सकल सुख-कंदर।
जसुमति ढोटा ब्रज की सोभा। देखि सखी, कछु औरैं गोभा।
लछिमी-सी जहँ मालिनि बोलै। बंदन-माला बाँधत डोलै।

द्वार बुहारति फिरति अष्टसिधि । कौरनि सथिया चीततिँ नवनिधि ।
गृह-गृह तैँ गोपी गवनीँ जब । रंग-गलिनि बिच भीर भई तब ।
सुबरन-थार रहे हाथनि लसि । कमलनि चढ़ि आए मानौ ससि ।
उमँगी प्रेम-नदी-छबि पावैँ । नंद-सदन-सागर कौँ धावैँ ।
कंचन-कलस जगमगैँ नग के । भागे सकल अमंगल जग के ।
डोलत ग्वाल मनौ रन जीते । भए सबनि के मन के चीते ।
अति आनंद नंद रस भीने । परबत सात रतन के दीने ।
कामधेनु तैँ नैँकु न हीनी । द्वै लख धेनु द्विजनि कौँ दीनी ।
नंद-पौरि जे जाँचन आए । बहुरौ फिरि जाचक न कहाए ।
घर के ठाकुर कैँ सुत जायौ । सूरदास तब सब सुख पायौ ॥३२॥
॥६५०॥

राग बिलावल

आजु गृह नंद महर कैँ बधाइ ।
प्रात समय मोहन मुख निरखत, कोटि चंद-छबि पाइ ।
मिलि ब्रज-नागरि मंगल गावतिं, नंद भवन मैँ आइ ।
देति असीस, जियौ जसुदा-सुत कोटिनि बरष कन्हाइ ।
अति आनंद बढ्यौ गोकुल मैँ, उपमा कही न जाइ ।
सूरदास धनि नंद की घरनी, देखत नैन सिराइ ॥३३॥
॥६५१॥

राग जैजैवंती

(माई) आजु तौ बधाइ बाजै मँदिर महर के ।
फूले फिरैँ गोपी-ग्वाल ठहर ठहर के ।
फूला फिरैँ धेनु धाम, फूली गोपी अँग अँग,
फूले फले तरवर अनँद लहर के ।
फूले बंदी जन द्वारे, फूले फूले बंदवारे,
फूले जहाँ जोइ सोइ गोकुल सहर के ।
फूलैँ फिरैँ जादौकुल आनँद समूल मूल,
अँकुरित पुन्य फूले पाछिले पहर के ।
उमँगे जमुन-जल, प्रफुलित कुंज-पुंज,
गरजत कारे भारे जूथ जलधर के ।

नृत्यन मदन फूले, फूली रति अँग अँग,
मन के मनोज फूले हलधर वर के।
फूले द्विज-संत-बेद, मिटि गयो कंस-खेद,
गावत बधाई सूर भीतर-बहर के।
फूली है जसोदा रानी, सुत जायौ सार्ङ्गपानी,
भूपति उदार फूले भाग फरे घर के ॥३४॥
॥६५२॥

राग जैतश्री

(नंद जू) मेरैं मन आनंद भयौ, मैं गोबर्धन तैं आयौ।
तुम्हरैं पुत्र भयौ, हौं सुनि के, अति आतुर उठ धायौ।
बंदीजन अरु भिच्छुक सुनि-सुनि दूरि-दूरि तैं आए।
इक पहिलैं ही आशा लागे, बहुत दिननि तैं छाए।
ते पहिरे कंचन-मनि-भूषन नाना बसन अनूप।
मोहिं मिले मारग मैं, मानौ जात कहूं के भूप।
तुम तौ परम उदार नंद जू, जो माँग्यौ सो दीन्हौ।
ऐसौ और कौन त्रिभुवन मैं, तुम सरि साकौ कीन्हौ!
कोटि देहु तौ रुचि नाहिं मानौ, बिनु देखे नहिं जैहौं।
नंदराइ, सुनि बिनती मेरी, तब तबहिं बिदा भल ह्वैहौं।
दीजै मोहिं कृपा करि साई, जो हौं आयौ माँगन।
जसुमति-सुत अपनैं पाइनि चलि, खेलत आवै आँगन।
जब हँसि कै मोहन कछु बोलै, तिहिं सुनि कै घर जाऊँ।
हौं तौ तेरे घर कौ ढाढ़ी, सूरदास मोहिं नाऊँ ॥३५॥
॥६५३॥

राग जैतश्री

मैं तेरे घर कौ हौं ढाढ़ी, मो सरि कोउ न आन।
सोइ लैहौं जो मो मन भावै, नंद महर की आन।
धन्य नंद, धनि धन्य जसोदा, जिन जायौ अस पूत।
धन्य भूमि, ब्रजबासी धनि-धनि, आनँद करत अकूत।
घर-घर होत अनंद बधाए, जहँ-जहँ मागध-सूत।
मनि-मानिक, पाटंबर-अंबर लेत न बनत बिभूत।

हय-गय खोलि भँडार दिए सब, फेरि भरे ता भाँति।
जबहिँ देत तबहीँ फिरि देखत, संपति घर न समाति।
ते मोहिँ मिले जात घर अपनैँ, मैँ बूझी तब जाति।
हँसि-हँसि दौरि मिले अंकम भरि, हम तुम एकै ज्ञाति।
संपति देहु, लेहुँ नहिँ एकौ, अन्न-बस्त्र किहिँ काज?
जो मैँ तुम सौँ माँगन आयौ, सो लैहौँ नँदराज।
अपने सुत कौ बदन दिखावहु, बड़े महर सिरताज।
तुम साहब, मैँ ढाढ़ी तुम्हरौ, प्रभु मेरे ब्रजराज।
चंद्र-वदन-दरसन-संपति दै, सो मैँ लै घर जाउँ।
जो संपति सनकादिक दुरलभ, सो है तुम्हरैँ ठाउँ।
जाकौँ नेति नेति स्रुति गावत, तेइ कमल-पद ध्याउँ।
हौँ तेरौ जनम-जनम कौ ढाढ़ी, सूरज दास कहाउँ ॥३६॥
॥६५४॥

राग धनाश्री

(नंद जू) दुःख गयौ, सुख आयौ सबनि कौँ, देव-पितर भल मान्यौ।
तुम्हरौ पुत्र प्रान सबहिनि कौ, भुवन चतुर्दस जान्यौ।
हौँ तौ तुम्हारे घर कौ ढाढ़ी, नाउँ सुनैँ सचु पाऊँ।
गिरि-गोबर्धन बास हमारौ, घर तजि अनंत न जाऊँ।
ढाढ़िनि मेरी नाचै-गावै, हौँ हूँ ढाढ़ बजाऊँ।
हमरौ चीत्यौ भयौ तुम्हारैँ, जो माँगौँ सो पाऊँ।
अब तुम मोकौँ करौ अजाची, जो कहुँ कर न पसारौँ।
द्वारैँ रहौँ, देहु इक मंदिर, स्याम-सुरूप निहारौँ।
हँसि ढाढ़िनि ढाढ़ी सौँ बोली, अब तू बरनि बधाई।
ऐसौ दियौ न देहि सूर कोउ, जसुमति हौँ पहिराई ॥३७॥
॥६५५॥

राग धनाश्री

ढाढ़ी दान-मान के भाई !
नंद उदार भए पहिरावत, बहुत भली बनि आई।
जब-जब नाम धरौँ ढाढ़ी कौ, जनम-करम-गुन गाऊँ।
अर्थ-धर्म-कामना-मुक्ति-फल, चारि पदारथ पाऊँ।

लै ढाढ़िनि कंचन - मनि - मुक्ता, नाना बसन अनूप ।
हीरा - रतन - पटंबर हमकौं दीन्हे ब्रज के भूप ।
अब तौ भली भई, नारायन-दरस निरखि, निधि पाई ।
जहँ-तहँ बंदनवार बिराजित, घर-घर बजति बधाई ।
जो जाँच्यौ सोई तिन पायौ, तुम्हरी भई बड़ाई ।
भक्ति देहु, पालनैं झुलाऊँ, सूरदास बलि जाई ॥३८॥
॥६५६॥

राग केदारौ

नंद-उदौ सुनि आयौ हो, वृषभान कौ जगा ।
दैवे कौं बड़ौ महर, देत न लावै गहर, लाल की, बधाई पाऊँ लाल कौ झगा ।
प्रफुलित ह्वै के आनि, दीनी है जसोदा रानी झीनीयै झगुलि तामैं कंचन-तगा ।
नाचै फूल्यौ अँगनाइ, सूर बकसीस पाइ, माथे कै चढ़ाइ लीनौ लाल कौ बगा ॥३९॥
॥६५७॥

राग सारंग

गौरि गनेस्वर बीनऊँ (हो), देवी सारद तोहिं ।
गावौं हरि कौ सोहिलौ (हो), मन-आखर दै मोहिं ।
हरषि बधावा मन भयौ (हो), रानी जायौ पूत ।
घर-बाहर माँगैं सबै (हो), ठाढ़े मागध-सूत ।
आठ मास चंदन पियौ (हो), नवएँ पियौ कपूर ।
दसएँ मास मोहन भए (हो), आँगन बाजै तूर ।
हरषीं पास-परोसिन (हो), हरष नगर के लोग ।
हरषीं सखी-सहेलरी (हो), आनँद भयौ सुभ-जोग ।
बाजन बाजैं गहगहे (हो), बाजैं मंदिर भेरि ।
मालिनि बाँधै तोरना (रे), आँगन रोपैं केरि ।
अनगढ़ सोना ढोलना (गढ़ि), ल्याए चतुर सुनार ।
बीच-बीच हीरा लगे (नँद) लाल-गरे को हार ।
जसुमति भाग-सुहागिनि (जिनि), जायौ हरि सौ पूत ।
करहु ललन की आरती (री), अरु दधि काँदौ सूत ।

नाइनि बोलहु नव रंगी (हो), ल्याउ महावर वेग।
लाख टका अरु झूमका (देहु), सारी दाइ कौं नेग।
अगरु चँदन कौ पालनौ (रंगि), ईंगुर ढार-सुढार।
ले आयौ गढ़ि डोलना (हो), बिसकर्मा सुतहार।
धनि सो दिन, धनि, सो घरी (हो), धनि-धनि जोतिष-जाग।
धन्य-धन्य मथुरापुरी (हो), धन्य महर कौ भाग।
धनि-धनि माता देवकी (हो), धनि बसुदेव सुजान।
धनि-धनि भादौं अष्टमी (हो), जनम लियौ जब कान्ह।
काढ़ौ कोरे कापरा (अरु), काढ़ौ घी के मौन।
जाति-पाँति पहिराइ कै (सब), समदि छतीसौ पौन।
काजर-रोरी आनहू (मिलि), करौ छठी कौ चार।
ऐपन की सी पूतरी (सब), सखियनि कियौ सिँगार।
क्रीट मुकुट सोभा बनी (सुभ), अंग बनी वनमाल।
सूरदास गोकुल प्रगट (भए) मोहन मदन गोपाल ॥४०॥
॥६५८॥

राग काफी

पालनौ अति सुंदर गढ़ि ल्याउ रे बढ़ैया।
सीतल चंदन कटाउ, धरि खराद रंग लाउ।
बिबिध चौकरी बनाउ, धाउ रे बनैया।
पंच रंग रेसम लगाउ, हीरा मोतिनि मढ़ाउ,
बहु बिधि जरि करि जराउ, ल्याउ रे जरैया।
बिसकर्मा सूतहार, रच्यौ काम ह्वै सुनार,
मनिगन लागे अपार, काज महर-छैया।
आनि धर्यौ नंद-द्वार, अतिहीं सुंदर सुढार,
ब्रज-बधु कहैं बार-बार धन्य रे गढ़ैया।
पालनौ आन्यौ बनाइ, अति मन मान्यौ सुहाइ,
नीकौ सुभ दिन सुधाइ, झूलौ हो झुलैया।
सखियनि मंगल गवाइ, बहु बिधि बाजे बजाइ,
पौढ़ायौ महल जाइ, बारौ रे कन्हैया।
सूरदास प्रभु की माइ जसुमति, पितु नंदराइ,
जोइ जोइ माँगत सोइ देत हैं बधैया ॥४१॥
॥६५९॥

राग जैतश्री

कनक-रतन-मनि पालनौ, गढ़्यौ काम सुतहार।
बिविध खिलौना भाँति के (बहु) गज-मुक्ता चहुँधार।
जननि उबटि न्हवाइ कै (सिसु) क्रम सौं लीन्हे गोद।
पौढ़ाए पट पालनैं (हँसि) निरखि जननि-मन-मोद।
अति कोमल दिन सात के (हो) अधर चरन कर लाल।
सूर स्याम छबि अरुनता (हो) निरखि हरष व्रज-बाल ॥४२॥
॥६६०॥

राग धनाश्री

जसोदा हरि पालनैं झुलावै।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहिं बेगहिं आवै, तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुँक पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावै।
इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नँद-भामिनि पावै ॥४३॥
॥६६१॥

राग कान्हरौ

पलना स्याम झुलावति जननी।
अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुलित मगन होति नँद-घरनी।
उमँगि-उमँगि प्रभु भुजा पसारत, हरषि जसोमति अंकम भरनी।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा, पूरन भई पुरातन करनी ॥ ४४ ॥
॥६६२॥

राग बिलावल

पालनैं गोपाल झुलावैं।
सुर-मुनि-देव कोटि तैंतीसौ, कौतुक अंबर छावैं।
जाकौ अंत न ब्रह्मा जानै, सिव-सनकादि न पावैं।
सो अब देखौ नंद-जसोदा, हरषि-हरषि हलरावैं।

हुलसत, हँसत, करत किलकारी, मन अभिलाष बढ़ावैँ ।
सूर स्याम भक्तनि हित कारन, नाना भेष बनावैँ ॥४५॥
॥६६३॥

राग गौरी

हालरौ हलरावै माता । बलि-बलि जाउँ घोष-सुख-दाता ।
जसुमति अपनौ पुन्य बिचारै । बार-बार सिसु बदन निहारै ।
अँग फरकाइ अलप मुसुकाने । या छवि की उपमा को जाने ।
हलरावति गावति कहि प्यारे । बाल-दसा के कौतुक भारे ।
महरि निरखि मुख हिय हुलसानी । सूरदास प्रभु सारँगपानी ॥४६॥
॥६६४॥

राग धनाश्री

कन्हैया हालरु रे ।
गढ़ि गुढ़ि ल्यौ बढ़ई, धरनी पर डोलाइ, बलि हालरु रे ।
इक लख माँगे बाढ़ई, दुइ लख नंद जु देहिँ, बलि हालरु रे ।
रतन जटित बर पालनौ, रेसम लागी डोर, बलि हालरु रे ।
कबहुँक झूलै पालना, कबहुँ नंद की गोद, बलि हालरु रे ।
झूलैँ सखा झुलावहीँ, सूरदास बलि जाइ, बलि हालरु रे ॥४७॥
॥६६५॥

राग बिहागरा

कंसराइ जिय सोच परी ।
कहा करौँ, काकौँ ब्रज पठवौँ, बिधना कहा करी ।
बारंबार बिचारत मन मैँ, नीँद भूख बिसरी ।
सूर बुलाइ पूतना सौँ कह्यौ, करु न बिलंब घरी ॥४८॥
॥६६६॥

पूतना-वध *राग धनाश्री*

आजु हौँ राज-काल करि आऊँ ।
बेगि सँहारौँ सकल घोष-सिसु, जौ मुख आयसु पाऊँ ।
मोह-मुर्छन-बसीकरन पढ़ि, अगमति देह बढ़ाऊँ ।
अंग सुभग सजि, ह्वै मधु-मूरति, नैननि माहँ समाऊँ ।

घसि कै गरल चढ़ाइ उरोजनि, लै रुचि सौं पय प्याऊँ।
सूरज सोच हरौं मन अबहीं, तो पूतना कहाऊँ ॥ ४६॥ ॥
॥६६७॥

राग धनाश्री

रूप मोहिनी धरि ब्रज आई।
अद्भुत साजि सिंगार मनोहर, असुर कंस दै पान पठाई।
कुच बिष बाँटि लगाइ कपट करि, बाल-घातिनी परम सुहाई।
बैठी हुती: जसोदा मंदिर, दुलरावति सुत कुँवर कन्हाई।
प्रगट भई तहँ आइ पूतना, प्रेरित काल अवधि नियराई।
आवत पीढ़ा बैठन दीनौ, कुसल बूझि अति निकट बुलाई।
पौढ़ाए हरि सुभग पालनैं, नंद-घरनि कछु काज सिधाई।
बालक लियौ उछंग दुष्टमति, हरषित अस्तन-पान कराई।
बदन निहारि प्रान हरि लीनौ, परी राच्छसी जोजन ताईं।
सूरज दै जननी-गति ताकौं, कृपा करी निज धाम पठाई ॥५०॥
॥६६८॥

राग धनाश्री

प्रथम कंस पूतना पठाई।
नंद-घरनि जहँ सुत लिये बैठी, चली-चली तिहिं धामहिं आई।
अति मोहनी रूप धरि लीनौ, देखत सबहिनि कैं मन भाई।
जसुमति रही देखि वाकौ मुख, काकी बधू, कौन धौं आई।
नंद - सुवन तबहीं पहिचानी, असुर - घरनि, असुरनि की जाई।
आपुन ब्रज-समान भए हरि, माता दुखित भई, भरमाई।
अहो महरि पालागन मेरौ, मैं तुमरौ सुत देखन आई।
यह कहि गोद लियौ अपनी तब, त्रिभुवन-पति मन-मन मुसुकाई।
मुख चूम्यौ, गहि कंठ लगायौ, बिष लपट्यौ अस्तन मुख नाई।
पय सँग प्रान ऐंचि हरि लीनौ, जोजन एक परी मुरझाई।
त्राहि-त्राहि कहि ब्रज-जन धाए, अब बालक क्यौं बचै कन्हाई!
अति आनंद सहित सुत पायौ, हिरदै माँझ रहे लपटाई।
करवर बड़ी टरी मेरे की, घर - घर आनँद करत बधाई।
सूर स्याम पूतना पछारी, यह सुनि जिय डरप्यौ नृपराई। ५१॥
॥६६६॥

राग सारंग

कपट करि ब्रजहिँ पूतना आई।
अति सुरूप, बिष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई।
मुख चूमति अरु नैन निहारति, रखति कंठ लगाई।
भाग बड़े तुम्हरे नंदरानी, जिहिँ के कुँवर कन्हाई।
कर गहि छीर पियावति अपनौ, जानत केसवराई।
बाहर ह्वै कै असुर पुकारी, अब बलि लेहु छुड़ाई।
गइ मुरछाइ, परी धरनी पर, मनौ भुवंगम खाई।
सूरदास प्रभु तुम्हरी लीला, भक्तनि गाइ सुनाई ॥५२॥
॥६७०॥

राग धनाश्री

देखौ यह बिपरीत भई।
अद्भुत रूप नारि इक आई, कपट हेत क्यौं सहै दई?
कान्हैँ लै जसुमति कोरा तैँ रुचि करि कंठ लगाए।
तब वह देह धरी जोजन लौँ, स्याम रहे लपटाए!
बड़े भाग्य हैँ नंद महर के, बड़भागिनि नँदरानी।
सूर स्याम उर ऊपर उबरे यह सब घर-घर जानी ॥५३॥
॥६७१॥

राग कान्हरौ

जसुमति बिकल भई, छिन कल ना।
लेहु उठाइ पूतना-उर तैँ, मेरौ सुभग साँवरौ ललना।
गोपी लै उठाइ जसुमति कौँ, दीन्यौ अखिल असुर के दलना।
सूरदास प्रभु कौ मुख चूमति, हृदय लाइ पौढ़ाए पलना ॥५३॥
॥६७२॥

राग बिहागरौ

नैँकु गोपालहिँ मोकौँ दै री।
देखौँ बदन कमल नीकैँ करि, ता पाछैँ तू कनियाँ लै री।
अति कोमल कर-चरन-सरोरुह, अधर-दसन-नासा सोहै री।
लटकन सीस, कंठ मनि भ्राजत, मनमथ कोटि वारनैँ गै री।

बासर-निसा बिचारति हौं सखि, यह सुख कबहुँ न पायौ मैं री।
निगमनि-धन, सनकादिक-सरबस, बड़े भाग्य पायौ है तैं री।
जाकौ रूप जगत के लोचन, कोटि चंद्र-रवि लाजत भै री।
सूरदास बलि जाइ जसोदा, गोपिनि-प्रान, पूतना-बैरी ॥५५॥
॥६७३॥

राग जैतश्री

कन्हैया हालरौ हलरोइ।
हौं वारी तब इंदु-बदन पर, अति छवि अलग भरोइ।
कमल-नयन कौं कपट किए माई, इहिं ब्रज आवै जोइ।
पालागौं बिधि ताहि बकी ज्यौं, तू तिहिं तुरत बिगोइ।
सुनि देवता बड़े, जग-पावन, तू पति या कुल कोइ।
पद पूजिहौं, बेगि यह बालक करि दै मोहिं बड़ोइ।
दुतिया के ससि लौं बाढ़े सिसु, देखै जननि जसोइ।
यह सुख सूरदास कैं नैननि, दिन-दिन दूनौ होइ ॥५६॥
॥६७४॥

श्रीधर-अंगभंग *राग बिलावल*

श्रीधर बाँभन करम कसाई। कह्यौ कंस सौं बचन सुनाई।
प्रभु, मैं तुम्हरौ आज्ञाकारी। नंद-सुवन कौं आवौं मारी।
कंस कह्यौ, तुमतैं यह होइ। तुरत जाहु, करौ बिलँब न कोइ।
श्रीधर नंद-भवन चलि आयौ। जसुदा उठि कै माथ नवायौ।
करौ रसोई मैं बलि जाऊँ। तुम्हरे हेत जमुन जल ल्याऊँ।
यह कहि जसुदा जमुना गई। श्रीधर कही भली यह भई।
उन अपनैं मन मारन ठान्यौ। हरि जू ताकौं तबहीं जान्यौ।
बाँभन मारैं नहीं भलाई। अँग याकौ मैं देउँ नसाई।
जबहीं बाँभन हरि ढिग आयौ। हाथ पकरि हरि ताहि गिरायौ।
गुदी चाँपि लै जीभ मरोरी। दधि ढरकायौ भाजन फोरी।
राख्यौ कछु तिहिं मुख लपटाइ। आपु रहे पलना पर आइ।
रोवन लागे कृष्न बिनानी। जसुमति आइ गई लै पानी।
रोवन देखि कह्यो अकुलाई। कहा करयौ तैं बिप्र अन्याई ?
बाँभन कैं मुख बात न आवै। जीभ होइ तौ कहि समुझावै !

बाँभन कौँ घर बाहर कीन्हौ। गोद उठाइ कृष्न कौँ लीन्हौ।
ब्रजवासी सब देखन आए। सूरदास हरि के गुन गाए ॥५७॥
॥६७५॥

राग बिलावल

सुन्यौ कंस, पूतना संहारी। सोच भयौ ताकैँ जिय भारी।
कागासुर कौँ निकट बुलायौ। तासैाँ कहि सब भेद सुनायौ।
मम आयसु तुम माथैँ धरौ। छल बल करि मम कारज करौ।
यह सुन कै तेहिँ माथौ नायौ। सूर तुरत ब्रजकौँ उठि धायौ॥५८॥
॥६७६॥

कागासुर बध *राग सारंग*

काग-रूप इक दनुज धर्यौ।
नृप-आयसु लै धरि माथे पर, हरषवंत उर गरब भर्यौ।
कितिक बात प्रभु तुम आयसु तेँ, वह जानौ मो जात मर्यौ।
इतनी कहि गोकुल उड़ आयौ, आइ नंद-घर-छाज रह्यौ।
पलना पर पौढ़े हरि देखे, तुरत आइ नैननिहिँ अर्यौ।
कंठ चापि बहुबार फिरायौ, गहि पटक्यौ, नृप पास पर्यौ।
तुरत कंस पूछन तिहिँ लाग्यौ, क्यौँ आयौ नहिँ कारज कर्यौ ?
बीतैँ जाम बोलि तब आयौ, सुनहु कंस, तब आइ सर्यौ !
धरि अवतार महाबल कोऊ एकहिँ कर मेरौ गर्व हर्यौ।
सूरदास प्रभु कंस-निकंदन, भक्त-हेत अवतार धर्यौ ॥५९॥
॥६७७॥

राग बिलावल

मथुरापति जिय अतिहिँ डरान्यौ।
सभा माँझ असुरनि के आगैँ, सिर धुनि-धुनि पछितान्यौ।
ब्रज-भीतर उपज्यो मेरौ रिपु, मैँ जानी यह बात।
दिनहीँ दिन वह बढ़त जात, है मोकैाँ करिहै घात।
दनुज-सुता पूतना पठाई, छिनकहिँ माँझ संहारी।
खींच मरोरि दियौ कागासुर, मेरैँ ढिग फटकारी।
अबहीँ तैँ यह हाल करत है, दिन दिन होत प्रकास।
सेनापतिनि सुनाइ बात यह, नृप मन भयौ उदास।

ऐसौ कौन, मारिहै ताकौं, मोहिँ कहै सो आइ !
वाकौ मारि अपुनपौ राखै, सूर ब्रजहिँ सो जाइ ॥६०॥
॥३७८॥

राग गौड़ मलार

नृपति बचन यह सबनि सुनायौ।
मुहाँचुही सैनापति कीन्हीं, सकटैं गर्व बढ़ायौ।
दोउ कर जोरि भयौ उठि ठाढ़ौ, प्रभु आयसु मैं पाऊँ।
ह्याँ तैं जाइ तुरतहीं मारौ कहौ तौ जीवत ल्याऊँ।
यह सुन नृपति हरष मन कीन्हौ, तुरतहिँ वीरा दीन्हौ।
बारंबार सूर कहि ताकौं, आपु प्रसंसा कीन्हौ ॥६१॥
॥६७६॥

राग गौड़ मलार

पान लै चल्यौ नृप आन कीन्हौ।
गयौ सिर नाइ मन गरबहिँ बढ़ाइ कै, सकट कौ रूप धरि असुर लीन्हौ।
सुनत घहरानि ब्रजलोग चकित भए, कहा आघात धुनि करत आवै !
देखि आकास, चहूँपास दसहूँ दिसा, डरे नर-नारी तन-सुधि भुलावै।
आपु गयौ तहाँ जहँ प्रभु परे पालनैं, कर गहे चरन अँगूठा चचौरैं।
किलकि किलकत हँसत, बाल-सोभा लसत, जानि यह कपट, रिपु आयौ भोरैं।
नैंकु फटक्यौ लात सबद, भयौ आघात, गिरयौ भहरात सकटा संहारयौ।
सूर प्रभु नँद-लाल, मारयौ दनुज ख्याल, मेटि जंजाल ब्रज-जन उबारयौ ॥६२॥
॥६८०॥

राग बिलावल

कर पग गहि, अँगुठा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालनैं अकेले, हरषि-हरषि अपनैं रँग खेलत।
सिव सोचत, बिधि बुद्धि बिचारत, बट बाढ़यौ सागर-जल झेलत।
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दंतीनि सकेलत।

मुनि मन भीत भए, भुव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज-बासिनि बात न जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत ॥६३॥
॥६८१॥

राग बिलावल

चरन गहे अँगुठा मुख मेलत।
नंद-घरनि गावति, हलरावति, पलना पर हरि खेलत।
जे चरनारबिंद श्री भूषन, उर तैं नैंकु न टारति।
देखौं धौं का रस चरननि मैं, मुख मेलत करि आरति।
जा चरनारबिंद के रस कौं सुर-मुनि करत बिषाद।
सो रस है मोहूँ कौं दुरलभ, तातैं लेत सवाद।
उछरत सिंधु, धराधर काँपत, कमठ पीठ अकुलाइ।
सेष सहसफन डोलन लागे, हरि पीवत जब पाइ।
बढ़्यौ बृच्छ बट, सुर अकुलाने, गगन भयौ उतपात।
महा प्रलय के मेघ उठे करि जहाँ-तहाँ आघात।
करुना करी, छाँड़ि पग दीन्हौ, जानि सुरति मन संस।
सूरदास प्रभु असुर-निकंदन, दुष्टनि कैं उर गंस ॥६४॥
॥६८२॥

राग बिहागरौ

जसुदा मदन गुपाल सोवावै।
देखि सयन-गति त्रिभुवन कंपै, ईस बिरंचि भ्रमावै।
असित-अरुन-सित आलस लोचन उभय पलक परि आवै।
जनु रवि गत संकुचित कमल जुग, निसि अलि उड़न न पावै।
स्वास उदर उससित यौं, मानौ दुग्ध-सिंधु छबि पावै।
नाभि-सरोज प्रगट पदमासन उतरि नाल पछितावै।
कर सिर-तर करि स्याम मनोहर, अलक अधिक सोभावै।
सूरदास मानौ पन्नगपति, प्रभु ऊपर फन छावै ॥६५॥
॥६८३॥

राग बिलावल

अजिर प्रभातहिं स्याम कौं, पलिका पौढ़ाए।
आप चली गृह-काज कौं, तहँ नंद बुलाए।

निरखि हरषि मुख चूमि कै, मंदिर पग धारी।
आतुर नँद आए तहाँ, जहँ ब्रह्म मुरारी।
हँसे तात मुख हेरि कै, करि पग-चतुराई।
किलकि झटकि उलटे परे, देवनि-मुनि-राई।
सो छबि नंद निहारि कै, तहँ महरि बुलाई।
निरखि चरित गोपाल के, सूरज बलि जाई ॥६६॥
॥६८४॥

राग रामकली

हरषे नंद टेरत महरि।
आइ सुत-मुख देखि आतुर, डारि दै दधि-डहरि।
मथति दधि जसुमति मथानी, धुनि रही घर-घहरि।
स्रवन सुनति न महर-बातैं, जहाँ-तहँ गइ चहरि।
यह सुनत तब मातु धाई, गिरे जाने झहरि।
हँसत नँद-मुख देखि धीरज तब कर्‍यौ ज्यौं ठहरि।
स्याम उलटे परे देखे, बढ़ी सोभा लहरि।
सूर प्रभु कर सेज टेकत, कबहुँ टेकट ढहरि ॥६७॥
॥६८५॥

राग रामकली

महरि मुदित उलटाइ कै मुख चूमन लागी।
चिरजीवौ मेरौ लाड़िलौ, मैं भई सभागी।
एक पाख त्रय-मास कौ मेरौ भयौ कन्हाई।
पटकि रान उलटौ पर्‍यौ, मैं करौं बधाई।
नंद-घरनि आनँद भरी, बोलीं ब्रजनारी।
यह सुख सुनि आईं सबै, सूरज बलिहारी ॥६८॥
॥६८६॥

राग रामकली

जो सुख ब्रज मैं एक घरी।
सो सुख तीनि लोक मैं नाहीं धनि यह घोष-पुरी।
अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरे, द्वारैं रहतिं खरी।
सिव-सनकादि-सुकादि-अगोचर, ते अवतरे हरी।

धन्य धन्य बड़भागिनि जसुमति, निगमनि सही परी।
ऐसैं सूरदास के प्रभु कौं, लीन्हौ अंक भरी ॥६६॥
॥६८७॥

राग रामकली

यह सुख सुनि हरषीं ब्रजनारी। देखन कौं धाईं बनवारी।
कोउ जुवती आई, कोउ आवति। कोउ उठिचलति,सुनत सुख पावति।
घर-घर होति अनंद-बधाई। सूरदास प्रभु की बलि जाई ॥७०॥
॥६८८॥

राग रामकली

जननी देखि छबि, बलि जाति।
जैसैं निधनी धनहिं पाएँ, हरष दिन अरु राति।
बाल-लीला निरखि हरषति, धन्य धन्य ब्रजनारि।
निरखि जननी-बदन किलकत, त्रिदस-पति दै तारि।
धन्य नँद, धनि धन्य गोपी, धन्य ब्रज कौ बास।
धन्य धरनी - करन - पावन - जन्म सूरजदास ॥७१॥
॥६८९॥

राग बिलावल

जसुमति भाग सुहागिनी, हरि कौं सुत जानै!
मुख-मुख जोरि बत्यावई, सिसुताई ठानै।
मो निधनी कौ धन रहै, किलकत मन मोहन।
बलिहारी छबि पर भई, ऐसी विधि जोहन।
लटकति बेसर जननि की, इकटक चख लावै।
फरकत बदन उठाइ कै, मनहीं मन भावै।
महरि मुदित हित उर भरै, यह कहि मैं वारी।
नंद-सुवन के चरित पर, सूरज बलिहारी ॥७२॥
॥६९०॥

राग आसावरी

गोद लिए हरि कौं नँदरानी, अस्तन पान करावति है।
बार-बार रोहिनि कौं कहि-कहि, पलिका अजिर मँगावति है।

प्रात समय रबि-किरनि कोँवरी, सो कहि सुतहिँ बतावति है।
आउ घाम मेरे लाल कैं आँगन, बाल-केलि कौँ गावति है।
रुचिर सेज लै गइ मोहन कौँ, भुजा उछंग सोहावति है।
सूरदास प्रभु सोए कन्हैया, हलरावति-मल्हरावति है ॥७३॥
॥६६१॥

राग बिलावल

नंद-घरनि आनँद भरी, सुत स्याम खिलावै।
कबहिँ घुटुरुवनि चलहिँगे, कहि बिधिहिँ मनावै।
कबहिँ दँतुलि द्वै दूध की, देखौँ इन नैननि।
कबहिँ कमल-मुख बोलिहैँ, सुनिहौँ उन बैननि।
चूमति कर-पग-अधर-भ्रू, लटकति लट चूमति।
कहा बरनि सूरज कहै, कहँ पावै सो मति ॥७४॥
॥६६२॥

राग बिलावल

नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बड़ौ किन होहि।
इहिँ मुख मधुर बचन हँसिकै धौँ, जननि कहै कब मोहिँ।
यह लालसा अधिक मेरैं जिय जो जगदीस कराहिँ।
मो देखत कान्ह इहिँ आँगन, पग द्वै धरनि धराहिँ।
खेलहिँ हलधर-संग रंग रुचि, नैन निरखि सुख पाऊँ।
छिन-छिन छुधित जानि पय कारन, हँसि-हँसि निकट बुलाऊँ।
जाकौ शिव-बिरंचि सनकादिक मुनिजन ध्यान न पाव।
सूरदास जसुमति ता सुत-हित, मन अभिलाष बढ़ाव ॥७५॥
॥६६३॥

तृणावर्त बध *राग बिलावल*

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरौ लाल घुटुरुवनि रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै।
कब द्वै दाँत दूध के देखौँ, कब तोतरैं मुख बचन झरै।
कब नंदहिँ बाबा कहि बोलै, कब जननी कहि मोहिँ ररै।
कब मेरौ अँचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौँ झगरै।
कब धौँ तनक-तनक कछु खैहै, अपने कर सौँ मुखहिँ भरै।

कब हँसि बात कहैगौ मौसैाँ, जा छबि तैँ दुख दूरि हरे।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े, आपु गई कछु काज घरै।
इहिँ अंतर अँधवाह उठ्यौ इक, गरजत गगन सहित घहरै।
सूरदास ब्रज-लोग सुनत धुनि, जो जहँ-तहँ सब अतिहिँ डरै॥७६॥
॥६६४॥

राग सूहौ

अति बिपरीत तृनावर्त आयौ।
बात-चक्र-मिस ब्रज ऊपर परि, नंद-पारि कैँ भीतर धायौ।
पौढ़े स्याम अकेले आँगन, लेत उड़्यौ, आकास चढ़ायौ।
अंधाधुंध भयौ सब गोकुल, जो जह रह्यौ सो तहीँ छपायौ।
जसुमति धाइ आइ जो देखै, स्याम-स्याम कहि टेर लगायौ।
धावहु नंद गोहारि लगौ किन, तेरौ सुत अधवाह उड़ायौ।
इहि अंतर अकास तैँ आवत, परबत सम कहि सबनि बतायौ।
मार्‍यो असुर सिला सौँ पटक्यौ, आपु चढ़्यौ ता ऊपर भायौ।
दौरे नंद, जसोदा दौरी, तुरतहिँ लै हित कंठ लगायौ।
सूरदास यह कहति जसोदा, ना जानौँ विधनहिँ का भायौ।७७॥
॥६६५॥

राग बिलावल

सोभित सुभग नंद जू की रानी।
अति आनँद आँगन मैँ ठाढ़ी, गोद लिए सुत सारँगपानी।
तृनावर्त की सुरति आनि जिय, पठयौ असुर कंस अभिमानी।
गरू भए, महि मैँ बैठाए, सहि न सकी जननी अकुलानी।
आपुन गई भवन मैँ दौरी, कछु इक काज रही लपटानी।
बौंडर महा भयावन आयौ, गोकुल सबै प्रलय करि मानी।
महा दुष्ट लै उड़्यौ गुपालहिँ, चल्यौ अकास कृष्न यह जानी।
चापि ग्रीव हरि प्रान हरे, दृग-रकत-प्रवाह चल्यौ अधिकानी।
पाहन सिला निरखि हरि डार्‍यौ, ऊपर खेलत स्याम बिनानी।
ब्रज-जुवतिनि उपबन मैँ पाए, लयौ उठाइ कंठ लपटानी।
लै आईँ गृह चूमति-चाटति, घर-घर सबनि बधाई मानी।
देतिँ अभूषन वारि-वारि सब, पीवतिँ सूर वारि सब पानी॥७८॥
।६६६॥

राग धनाश्री

उबर्‍यौ स्याम, महरि बड़भागी।
बहुत दूरि तैं आइ पर्‍यौ धर, धौं कहुँ चोट न लागी।
रोग लउँ बलि जाउँ कन्हैया, यह कहि कंठ लगाइ।
तुमही हौ ब्रज के जीवन-धन देखत नैन सिराइ।
भली नहीं यह प्रकृति जसोदा, छाँड़ि अकेलौ जाति।
गृह कौ काज इनहुँ तैं प्यारौ, नेकहुँ नाहिँ डराति।
भलो भई अबकैं हरि बाँचे, अब तौ सुरति सम्हारि।
सूरदास खिझि कहति ग्वालिनी. मन मैं महरि बिचारि ॥७६॥
॥६६७॥

राग बिलावल

अब हौं बलि बलि जाउँ हरी।
निसिदिन रहति बिलोकति हरि-मुख छाँड़ि सकति नहिं एक घरी।
हौं अपने गोपाल लड़ैहौं, भौन-चाड़ सब रहौ धरी।
पाऊँ कहाँ खिलावन कौ सुख, मैं दुखिया, दुख कोखि जरी।
जा सुख कौं सिव-गौरि मनाई, तिय-व्रत-नेम अनेक करी।
सूर स्याम पाए पैंड़े मैं, ज्यौं पावै निधि रंक परी ॥८०॥
॥६६८॥

राग धनाश्री

हरि किलकत जसुदा की कनियाँ।
निरखि-निरखि मुख कहति लाल सौं, मो निधनी के धनियाँ।
अति कोमल तन चितै स्याम कौ, बार-बार पछितात।
कैसैं बच्यौ, जाउँ बलि तेरी, तृनावर्त कैं घात।
ना जानौं धौं कौन पुन्य तैं, को करि लेत सहाइ।
वैसौ काम पूतना कीन्हौ, इहिं ऐसौ कियौ आइ।
माता दुखित जानि हरि बिहँसे, नान्ही दँतुलि दिखाइ।
सूरदास प्रभु माता चित तैं दुख डार्‍यौ बिसराइ ॥८१॥
॥६६९॥

राग धनाश्री

सुत-मुख देखि जसोदा फूली।
हरषित देखि दूध की दँतियाँ, प्रेममगन तन की सुधि भूली।

बाहिर तैं तब नंद बुलाए, देखौ धौं सुंदर सुखदाई।
तनक-तनक सी दूध-दँतुलिया, देखौ, नैन सफल करौ आई।
आनँद सहित महर तब आए, मुख चितवत दोउ नैन अघाई।
सूर स्याम किलकत द्विज देख्यौ, मनौ कमल पर बिज्जु जमाई ॥८२॥
॥७००॥

राग देवगंधार

हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
मुख मैं तीनि लोक दिखराए, चकित भई नँद-रनियाँ।
घर-घर हाथ दिवावति डोलति, बाँधति गरैं बघनियाँ।
सूर स्याम की अदभुत लीला नहिं जानत मुनिजनियाँ ॥८३॥
॥७०१॥

रागिनी श्रीहठी

जननी बलि जाइ हालरु हालरौ गोपाल।
दधिहिं बिलोइ सदमाखन राख्यौ, मिश्री सानि चटावै नँदलाल।
कंचन खंभ, मयारि, मरुवा-डाड़ी, खचि हीरा बिच लाल-प्रवाल।
रेसम बनाइ नव रतन पालनौ, लटकन बहुत पिरोजा-लाल।
मोतिनि झालरि नाना भाँति खिलौना, रचे बिस्वकर्मा सुतहार।
देखि-देखि किलकत दँतियाँ द्वै राजत क्रीड़त बिबिध बिहार।
कठुला कंट बज्र केहरि-नख, मसि-बिंदुका सु मृग-मद भाल।
देखत देत असीस नारि-नर, चिरजीवौ जसुदा तेरौ लाल।
सुर नर मुनि कौतूहल फूले, झूलत देखत नंद कुमार।
हरषत सूर सुमन बरषत नभ, धुनि छाई है जै-जैकार ॥८४॥
॥७०२॥

नाम-करण *राग बिलावल*

महर-भवन रिषिराज गए।
चरन धोइ चरनोदक लीन्हौ, अरघासन करि हेत दए।
धन्य आज बड़भाग हमारे, रिषि आए, अति कृपा करी।
हम कहा धनि, धनि नंद-जसोदा, धनि यह व्रज जहँ प्रगट हरी।
आदि अनादि रूप-रेखा नहिं, इनतैं नहिं प्रभु और बियौ।
देवकि उर अवतार लेन कह्यौ, दूध पिवन तुम माँगि लियौ।

बालक करि इनकौँ जनि जानौ, कंस बधन येई करिहैँ।
सूर देह धरि सुरन उधारन, भूमि-भार येई हरिहैँ॥ ८५॥
॥७०३॥

राग धनाश्री

(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि आयौ।
लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहत तुमहिँ सुनायौ।
संबत सरस बिभावन, भादौँ, आठैँ तिथि, बुधवार।
कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध निसि, हर्षन जोग उदार।
बृष है लग्न, उच्च के निसिपति, तनहिँ बहुत सुख पैहैँ।
चौथैँ सिंह रासि के दिनकर, जीति सकल महि लैहैँ।
पचएँ बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहैँ।
छठएँ सुक्र तुला के सनि जुत, सत्रु रहन नहिँ पैहैँ।
ऊँच नीच जुवती बहु करिहैँ, सतएँ राहु परे हैँ।
भाग्य-भवन मैँ मकर मही-सुत, बहु ऐस्वर्य बढ़ैहैँ।
लाभ-भवन मैँ मीन बृहस्पति, नवनिधि घर मैँ ऐहैँ।
कर्म-भवन के ईस सनीचर, स्याम बरन तन ह्वैहैँ।
आदि सनातन परब्रह्म प्रभु, घट-घट अंतरजामी।
सो तुम्हरैँ अवतरे आनि कै, सूरदास के स्वामी॥८६॥
॥७०४॥

राग बिलावल

धन्य जसोदा भाग तिहारौ, जिनि, ऐसौ सुत जायौ।
जाकैँ दरस-परस सुख तन-मन, कुल कौ तिमिर नसायौ।
बिप्र-सुजन-चारन-बंदीजन, सकल नंद गृह आए।
नूतन सुभग दूब-हरदी-दधि, हरषित सीस बँधाए।
गर्ग निरूपि कह्यौ सब लच्छन, अविगत हैँ अबिनासी।
सूरदास प्रभु के गुन सुनि-सुनि, आनंदे ब्रजबासी॥८७॥
॥७०५॥

अन्न-प्राशन *राग बिलावल*

कान्ह कुँवर की करहु पासनी, कछु दिन घटि षट मास गए।
नंद महर यह सुनि पुलकित जिय, हरि अनप्रासन जोग भए।

बिप्र बुलाइ नाम लै बूझ्यौ, रासि सोधि इक सुदिन धर्यौ।
आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान कर्यौ।
जुवति महरि कौँ गारी गावतिं, और महर कौ नाम लिए।
ब्रज-घर-घर आनंद बढ़्यौ अति प्रेम पुलक न समात हिए।
जाकौँ नेति-नेति स्रुति गावत, ध्यावत सुर-मुनि ध्यान धरे।
सूरदास तिहिँ कौँ ब्रज-बनिता, झकझोरतिँ उर अंक भरे ॥८८॥
॥७०६॥

राग सारंग

आजु कान्ह करिहैँ अनप्रासन।
मनि-कंचन के थार भराए, भाँति-भाँति के बासन।
नंद-घरनि ब्रज-बधू बुलाईँ, जे सब अपनी पाँति।
कोउ ज्यौनार करति, कोउ घृत-पक, षटरस के बहु भाँति।
बहुत प्रकार किए सब ब्यंजन, अमित बरन मिष्टान।
अति उज्ज्वल-कोमल-सुठि-सुंदर, देखि महरि मन मान।
जसुमति नंदहिँ बोलि कह्यौ तब, महर, बुलावहु जाति।
आपु गए नँद सकल-महर-घर, लै आए सब ज्ञाति।
आदर करि बैठाइ सबनि कौँ, भीतर गए नँदराइ।
जसुमति उबटि न्हवाइ कान्ह कौँ, पट-भूषन पहिराइ।
तन झँगुली, सिर लाल चौतनी, चूरा दुहुँ कर-पाइ।
बार-बार मुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि लेति बलाइ।
घरी जानि सुत-मुख-जुठरावन नँद बैठे लै गोद।
महर बोलि बैठारि मंडली, आनँद करत बिनोद।
कनक-थार भरि खीर धरी लै, तापर घृत-मधु नाइ।
नँद लै-लै हरि मुख जुठरावत, नारि उठीँ सब गाइ।
षटरस के परकार जहाँ लगि, लै-लै अधर छुवावत।
बिस्वंभर जगदीस जगत-गुरु, परसत मुख करुवावत।
तनक-तनक जल अधर पोँछि कै, जसुमति पै पहुँचाए।
हरषवंत जुबती सब लै-लै, मुख चूमतिँ उर लाए।
महर गोप सबही मिलि बैठे, पनबारे परसाए।
भोजन करत अधिक रुचि उपजी, जो जाकैँ मन भाए।

इहिँ बिधि सुख बिलसत ब्रजबासी, धनि गोकुल नर-नारी।
नंद-सुवन की या छबि ऊपर, सूरदास बलिहारी ।। ८६ ।।
।।७०७।।

राग सारंग

हरि कौ मुख माइ, मोहि अनुदिन अति भावै।
चितवत चित नैननि की मति-गति बिसरावै।
ललना लै-लै उछंग अधिक लोभ लागैं।
निरखतिँ निंदति निमेष करत ओट आगैं।
सोभित सु-कपोल-अधर, अलप-अलप दसना।
किलकि-किलकि बैन कहत, मोहन, मृदु रसना।
नासा, लोचन बिसाल, संतत सुखकारी।
सूरदास धन्य भाग, देखतिँ ब्रजनारी ।। ९० ।।
।।७०८।।

राग सारंग

ललन हौँ या छबि ऊपर वारी।
बाल गोपाल लागौ इन नैननि, रोग-बलाइ तुम्हारी।
लट लटकनि, मोहन मसि-बिंदुका-तिलक भाल सुखकारी।
मानौ कमल-दल सावक पेखत- उड़त मधुप छबि न्यारी।
लोचन ललित, कपोलनि काजर, छबि उपजति अधिकारी।
सुख मैँ सुख औरै रुचि बाढ़ति, हँसत देत किलकारी।
अलप दसन कलबल करि बोलनि, बुधि नहिँ परत बिचारी।
बिकसति ज्योति अधर-बिच, मानौ बिधु मैँ बिज्जु उज्यारी।
सुंदरता कौ पार न पावति, रूप देखि महतारी।
सूर सिंधु की बूँद भई मिलि मति-गति-दृष्टि हमारी ।। ९१ ।।
।।७०९।।

राग जैतश्री

लालन, वारी या मुख ऊपर।
माई मोरहि दीठि न लागै, तातैं मसि-बिंदा दियौ भ्रू पर।
सरबस मैँ पहिलैँ ही वारयौ, नान्हीँ-नान्हीँ दँतुली दू पर।
अब कहा करौँ निछावरि, सूरज सोचति अपनैँ लालन जू पर ।।९२।।
।।७१०।।

राग जैतश्री

लाल हौं वारी तेरे मुख पर।
कुटिल अलक, मोहनि-मन बिहँसनि, भृकुटी बिकट ललित नैननि पर।
दमकति दूध-दँतुलिया बिहँसत, मनु सीपज घर कियौ बारिज पर।
लघु-लघु लट सिर घूँघरवारी, लटकन लटकि रह्यौ माथैं पर।
यह उपमा कापै कहि आवै, कछुक कहौं सकुचति हौं जिय पर।
नव-तन-चंद्र-रेख-मधि राजत, सुरगुरु-सुक्र-उदोत परसपर।
लोचन लोल कपोल ललित अति, नासा कौ मुकता रदछद पर।
सूर कहा न्यौछावर करियै अपने लाल ललित लरखर पर॥ ६३॥
॥७११॥

वर्ष गाँठ *राग बिलावल*

आजु भोर तमचुर के रोल।
गोकुल मैं आनंद होत है, मंगल-धुनि महराने टोल।
फूले फिरत नंद अति सुख भयौ, हरषि मँगावत फूल-तमोल।
फूली फिरति जसोदा तन-मन, उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल।
तनक बदन, दोउ तनक-तनक कर, तनक चरन, पोंछति पट झोल।
कान्ह गरैं सोहति मनि-माला, अंग अभूषन अँगुरिनि गोल।
सिर चौतनी डिठौना, दीन्हौ, आँखि आँजि पहिराइ निचोल।
स्याम करत माता सौं झगरौ, अटपटात कलबल करि बोल।
दोउ कपोल गहि कै मुख चूमति, बरष-दिवस कहि करति कलोल।
सूर स्याम ब्रज-जन-मोहन-बरष-गाँठि कौ डोरा खोल॥ ६४॥
॥७१२॥

राग धनाश्री

अरी, मेरे लालन की आजु बरष-गाँठि, सबै
सखिनि कौं बुलाइ मँगल-गान करावौ।
चंदन आँगन लिपाइ, मुतियनि चौकैं पुराइ,
उमँगि अँगनि आनँद सौं, तूर बजावौ।
मेरे कहैं बिप्रनि बुलाइ, एक सुभ घरी धराइ,
बागे चीरे बनाइ, भूषन पहिरावौ।
अछत-दूब दल बँधाइ, लालन की गँठि जुराइ,
इहै मोहिं लाहौ नैननि दिखरावौ।

पँचरँग सारी मँगाइ, बधू जननि पैहराइ,
नाचैँ सब उमँगि अंग, आनँद बढ़ावौ।
नँदरानी ग्वारिनि बुलाइ, इहै रीति कहि सुनाइ,
बेगि करौ किन, बिलंब काहैँ लगावौ।
जसुमति तब नंद बुलावति, लाल लिए कनियाँ दिखरावति,
लगन घरी आवति, या तैँ, न्हवाइ बनावौ।
सूर स्याम छबि निहारति, तन-मन जुवति जन वारति,
अतिहीँ सुख धारति, बरष-गाँठि जुरावौ ॥६५॥
॥७१३॥

राग आसावरी

उमँगीँ व्रजनारि सुभग, कान्ह बरष-गाँठि उमंग, चहतीँ बरष बरषनि।
गावहिँ मंगल सुगान, नीके सुर नीकी तान, आनँद अति हरषनि।
कंचन-मनि-जटित-थार रोचन, दधि, फूल-डार, मिलिबे की तरसनि।
प्रभु बरष-गाँठि जोरति, वा छबि पर तृन तोरति, सूर अरस परसनि।
॥६६॥७१४॥

घुटुरुवौं चलना *राग धनाश्री*

खेलत नँद-आँगन गोविंद।
निरखि-निरखि जसुमति सुख पावति, बदन मनोहर इंदु।
कटि किंकिनी चंद्रिका मानिक, लटकन लटकत भाल।
परम सुदेस कंठ केहरि-नख, बिच-बिच बज्र प्रवाल।
कर पहुँची, पाइनि मैँ नूपुर, तन राजत पट पीत।
घुटुरुनि चलत, अजिर महँ बिहरत, मुख मंडित नवनीत।
सूर बिचित्र चरित्र स्याम के रसना कहत न आवैँ।
बाल दसा अवलोकि सकल मुनि, जोग बिरति बिसरावैँ ॥६७॥
॥७१५॥

राग आसावरी

घुटुरुनि चलत स्याम मनि-आँगन, मातु-पिता दोउ देखत री।
कबहुँ किलकि तात-मुख हेरत, कबहुँ मातु-मुख पेखत री।
लटकन लटकत ललित भाल पर, काजर-बिंदु भ्रुव-ऊपर री।
यह सोभा नैननि भरि देखैँ, नहिं उपमा तिहुँ भू पर री।

कबहुँक दौरि घुटुरुवनि लपकत, गिरत, उठत पुनि धावै री।
इततैं नंद बुलाइ लेत हैं, उततैं जननि बुलावै री।
दंपति होड़ करत आपुस मैं, स्याम खिलौना कीन्हौ री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन, सुत हित करि दोउ लीन्हौ री ॥६८॥
॥७१६॥

राग बिलावल

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए।
लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिं पिए।
कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए ॥६६॥
॥७१७॥

राग रामकली

खींझत जात माखन खात।
अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार-बार जँभात।
कबहुँ रुनझुन चलत घुटुरुनि, धूरि धूसर गात।
कबहुँ झुकि कै अलक खैंचत, नैन जल भरि जात।
कबहुँ तोतर बोल बोलत, कबहुँ बोलत तात।
सूर हरि की निरखि सोभा निमिष तजत न मात ॥१००॥
॥७१८॥

राग ललित

(माई) बिहरत गोपाल राइ; मनिमय रचे अंगनाइ,
लरकत पररिंगनाइ; घूटुरुनि डोलै।
निरखि निरखि अपनो प्रति-बिंब, हँसत किलकत औ,
पाछैं चितै फेरि-फेरि मैया-मैया बोलै।
ज्यौं अलिगन सहित बिमल जलज जलहिं धाइ रहै,
कुटिल अलक बदन की छबि, अवनी परि लोलै।
सूरदास छबि निहारि, थकित रहीं घोष नारि,
तन-मन-धन देतिं वारि, बार-बार ओलै ॥१०१॥
॥७१६॥

राग बिलावल

बाल बिनोद खरो जिय भावत।
मुख प्रतिबिंब पकरिबे कारन हुलसि घुटुरुवनि धावत।
अखिल ब्रह्मंड-खंड की महिमा, सिसुता माहिँ दुरावत।
सब्द जोरि बोल्यौ चाहत हैँ, प्रगट बचन नहिँ आवत।
कमल-नैन माखन माँगत हैँ करि-करि सैन बतावत।
सूरदास स्वामी सुख-सागर, जसुमति-प्रीति बढ़ावत ॥१०२॥
॥७२०॥

राग सारंग

मैँ बलि स्याम, मनोहर नैन।
जब चितवत मो तन करि अँखियनि, मधुप देत मनु सैन!
कुंचित अलक, तिलक गोरोचन, ससि पर हरि के ऐन।
कबहुँक खेलत जात घुटुरुवनि, उपजावत सुख चैन।
कबहुँक रोवत-हँसत बलि गई, बोलत मधुरे बैन।
कबहुँक ठाढ़े होत टेकि कर, चलि न सकत इक गैन।
देखत बदन करौँ न्यौछावरि, तात-मात सुख-दैन।
सूर बाल-लीला के ऊपर, वारौँ कोटिक मैन ॥१०३॥
॥७२१॥

राग कान्हरौ

आँगन खेलत घुटुरुनि धाए।
नील-जलद-अभिराम स्याम तन, निरखि जननि दोउ निकट बुलाए।
बंधुक-सुमन-अरुन-पद-पंकज, अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आए।
नूपुर-कलरव मनु हंसनि सुत रचे नीड़ दै बाहँ बसाए।
कटि किंकिनि बर हार ग्रीवदर, रुचिर बाहु भूषन पहिराए।
उर श्रीबच्छ मनोहर हरि-नख, हेम-मध्य मनि-गन बहु लाए।
सुभग चिबुक, द्विज-अधर-नासिका, स्रवन-कपोल मोहिँ सुठि भाए।
भ्रुव सुंदर, करुना-रस-पूरन लोचन मनहु जुगल जल-जाए।
भाल बिसाल ललित लटकन मनि, बाल-दसा के चिकुर सुहाए।
मानौ गुरु-सनि-कुज आगैँ करि, ससिहिँ मिलन तम के गन आए।
उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीट उढ़ाए।
नील जलद पर उडुगन निरखत, तजि सुभाव मनु तड़ित छपाए।

अंग-अंग-प्रति मार-निकर मिलि, छबि-समूह लै-लै मनु छाए।
सूरदास सो क्यौं करि बरनै, जो छबि निगम नेति करि गाए ॥१०४॥
॥७२२॥

राग धनाश्री

हौं बलि जाउँ छबीले लाल की।
धूसर धूरि घुटुरुवनि रेंगनि, बोलनि बचन रसाल की।
छिटकि रहीं चहुँदिसि जु लटुरियाँ, लटकन-लटकनि भाल की।
मोतिनि सहित नासिका नथुनी, कंठ-कमल-दल-माल की।
कछुक हाथ, कछु मुख माखन लै, चितवनि नैन बिसाल की।
सूरदास प्रभु-प्रेम-मगन भईं, ढिग न तजनि ब्रजबाल की। ॥१०५॥
॥७२३॥

राग कन्हरौ

आदर सहित बिलोकि स्याम-मुख, नंद अनंद- रूप लिए कनियाँ।
सुंदर स्याम-सरोज-नील-तन, अँग-अँग सुभग सकल सुखदनियाँ।
अरुन चरन नख-जोति जगमगति, रुन-झुन करति पाइँ पैजनियाँ।
कनक-रतन-मनि-जटित-रचित कटि किंकनि कुनित पीटपट तनियाँ।
पहुँची करनि, पदिक उर हरि-नख, कठुला कंठ मंजु गज-मनियाँ।
रुचिर चिबुक-द्विज अधर नासिका अति सुंदर राजति सुबरनियाँ।
कुटिल भृकुटि, सुख की निधि आनन, कल कपोल की छबि न उपनियाँ।
भाल तिलक मसि-बिंदु बिराजत, सोभित सीस लाल चौतनियाँ।
मन-मोहिनी तोतरी बोलनि, मुनि-मन हरनि सु हँसि मुसुकनियाँ।
बाल सुभाव बिलोकि बिलोचन, चोरति चितहिँ चारु चितवनियाँ।
निरखतिं ब्रज-जुवती सब ठाढ़ी, नंद सुवन-छबि चंद-बदनियाँ।
सूरदास प्रभु निरखि मगन भए, प्रेम बिबस कछु सुध न अपनियाँ।
॥१०६॥७२४॥

राग कान्हरौ

गोद लिए जसुदा नँद-नंदहिँ।
पीत झँगुलिया की छबि छाजति, बिज्जुलता सोहति मनु कंदहिँ।
बाजीपति अग्रज अंबा तेहिँ, अरक-थान-सुत माला गुंदहिँ।
मानौ स्वर्गहिँ तैं सुरपति-रिपु-कन्या-सौति आइ ढरि सिंदहिँ।

आरि करत कर चपत चलावत, नंद-नारि आनन छुवै मंदहिँ।
मनौ भुजंग अमी-रस लालच, फिरि-फिरि चाटत सुभग सुचंदहिँ।
गूँगी बातनि यौँ अनुरागति, भँवर गुंजरत कमल मौँ बंदहिँ।
सूरदास स्वामी धनि तप किए, बड़े भाग जसुदा अरु नंदहिँ।
॥१०७॥७२५॥

राग धनाश्री

कहाँ लौँ बरनौँ सुंदरताई।
खेलत कुँवर कनक-आँगन मैँ नैन निरखि छबि पाई।
कुलही लसति सिर स्यामसुंदर कैँ, बहु बिधि सुरँग बनाई।
मानौ नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई।
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन मोहन-मुख बगराई।
मानौ प्रगट कंज पर मंजुल अलि-अवली फिरि आई।
नील, सेत अरु पीत, लाल मनि लटकन भाल रुलाई।
सनि, गुरु-असुर, देवगुरु मिलि मनु भौम सहित समुदाई।
दूत-दंत-दुति कहि न जाति कछु अद्भुत उपमा पाई।
किलकत-हसत दुरति प्रगटति मनु, घन मैँ बिज्जु छटाई।
खंडित बचन देत पूरन सुख अलप-अलप जलपाई।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, सूरदास बलिजाई ॥१०८॥
॥७२६॥

राग नटनारायन

हरि जू की बाल-छबि कहौँ बरनि।
सकल सुख की सीँव, कोटि-मनोज-सोभा-हरनि।
भुज भुजंग, सरोज नैननि, बदन बिधु जित लरनि।
रहे बिवरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि।
मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरत भूषन भरनि।
मनहु सुभग सिंगार-सिसु-तरु, फर्यौ अद्भुत फरनि।
चलत पद-प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरुवनि करनि।
जलज-संपुट-सुभग छबि भरि लेति उर जनु धरनि।
पुन्य फल अनुभवत सुतहिँ बिलोकि कै नँद घरनि।
सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि ॥१०९॥
॥७२७॥

राग धनाश्री

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कैं आँगन, बिंब पकरिवैं धावत।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाहँ कौं, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक-भूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजति।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति।
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नंद बुलावति।
अचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति॥११०॥
॥७२८॥

राग बिलावल

नंद-धाम खेलत हरि डोलत।
जसुमति करति रसोई भीतर, आपुन किलकत बोलत।
टेरि उठी जसुमति मोहन कौं, आवहु काहँ न धाइ।
बैन सुनत माता पहिचानी, चले घुटुरुवनि पाइ।
लै उठाइ अंचल गहि पोंछै, धूरि भरी सब देह।
सूरज प्रभु जसुमति रज झारति, कहाँ भरी यह खेह?॥१११॥
॥७२६॥

पाँवों चलना *राग सूहौ बिलावल*

धनि जसुमति बड़भागिनी, लिए कान्ह खिलावै।
तनक-तनक भुज पकरि कै, ठाढ़ौ होन सिखावै।
लरखरात गिरि परत हैं, चलि घुटुरुनि धावैं।
पुनि क्रम-क्रम भुज टेकि कै, पग द्वैक चलावैं।
अपने पाइनि कबहिं लौं, मोहिं देखन धावै।
सूरदास जसुमति इहै बिधि सौं जु मनावै॥११२॥७३०॥

राग कान्हरौ

हरि कौ बिमल जस गावति गोपँगना।
मनिमय आँगन नंदराइ कौ बाल गोपाल करैं तहँ रँगना।
गिरि-गिरि परत घुटुरुवनि रेंगत, खेलत हैं दोउ छगना-मगना।
धूसरि धूरि दुहूँ तन मंडित, मातु जसोदा लेति उछंगना।

बसुधा त्रिपद करत नहिँ आलस तिनहिँ कठिन भयौ देहरी उलँघना ?
सूरदास प्रभु ब्रज-बधु निरखतिँ, रुचिर हार हिय सोहत बघना ॥११३॥
॥७३१॥

राग सूहौ बिलावल

चलन चहत पाइनि गोपाल।
लए लाइ अँगुरी नँदरानी, सुंदर स्याम तमाल।
डगमगात गिरि परत पानि पर, भुज भ्राजत नँदलाल।
जनु सिर पर ससि जानि अधोमुख, धुकत नलिनि नमि नाल।
धूरि-धौत तन, अंजन नैननि, चलत लटपटी चाल।
चरन रनित नूपुर-धुनि, मानौ बिहरत बाल मराल।
लट लटकनि सिर चारु चखौड़ा, सुठि सोभा सिसु भाल।
सूरदास ऐसौ सुख निरखत, जग जीजै बहु काल ॥११४॥
॥७३२॥

राग बिलावल

सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरे पैया।
कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति, उर आनँद भरि लेति बलैया।
कबहुक कुल देवता मनावति, चिरजीवहु मेरौ कुवर कन्हैया।
कबहुँक बल कौँ टेरि बुलावति, इहिँ आँगन खेलौ दोउ मैया।
सूरदास स्वामी की लीला, अति प्रताप बिलसत नँदरैया ॥११५॥
॥७३३॥

राग सूहौ बिलावल

मनिमय आँगन नंद कैँ, खेलत दोउ भैया।
गौर-स्याम जोरी बनी बलराम कन्हैया।
लटकतिँ ललित लटूरियाँ, मसि-बिँदु-गोरोचन।
हरि-नख उर अति राजहीँ, संतनि दुख मोचन।
संग सँग जसुमति-रोहिनी, हितकारिनि मैया।
चुटकी देहिँ नचावहीँ, सुत जानि नन्हैया।
नील-पीत पट ओढ़नी देखत जिय भावै।
बाल बिनोद अनंद सौँ, सूरज जन गावै ॥११६॥
॥७३४॥

राग धनाश्री

आँगन खेलैं नंद के नंदा। जदुकुल-कुमुद-सुखद-चारु-चंदा।
संग-संग बल-मोहन सोहैं। सिसु-भूषन सुव कौ मन मोहैं।
तन-दुति मोर-चंद जिमि झलकै। उमँगि-उमँगि अँग-अँग छबि झलकै।
कटि किंकिन, पग पैंजनि बाजै। पंकज पानि पहुँचिया राजै।
कठुला कंठ बघनहाँ नीके। नैन - सरोज मैन-सरसी के।
लटकतिं ललित ललाट लटूरी। दमकतिं दूध दतुरियाँ रूरी।
मुनि-मन हरन मंजु मसि-बिंदा। ललित बदन बल-बालगुबिंदा।
कुलही चित्र-बिचित्र झँगूली। निरखि जसोदा-रोहिनि फूली।
गहि मनि-खंभ डिंभ डग डोलैं। कल-बल बचन तोतरे बोलैं।
निरखत झुकि, झाँकत प्रतिबिंबहिं। देत परम सुख पितु अरु अंबहिं।
व्रज-जन निरखत हिय हुलसाने। सूर स्याम-महिमा को जाने ॥११७॥
॥७३५॥

राग नटनारायम

बलि गइ बाल-रूप मुरारि।
पाइ-पैंजनि रटति रुन-झुन, नचावति नँद-नारि।
कबहुँ हरि कौं लाइ अँगुरी, चलन सिखावति ग्वारि।
कबहुँ हृदय लगाइ हित करि, लेति अंचल डारि।
कबहुँ हरि कौं चितै चूमति, कबहुँ गावति गारि।
कबहुँ लै पीछे दुरावति, ह्याँ नहीं बनवारि।
कबहुँ अँग भूषन बनावति, राइ-लोन उतारि।
सूर सुर-नर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि ॥११८॥७३६॥

राग बिलावल

भावत हरि कौ बाल-बिनोद।
स्याम-राम-मुख-निरखि-निरखि, सुख-मुदित रोहिनी, जननि जसोद।
आँगन-पंक-राग तन सोभित, चल नूपुर-धुनि सुनि मन मोद।
परम सनेह बढ़ावत मातनि, रबकि-रबकि हरि बैठत गोद।
आनँद-कंद, सकल सुखदायक, निसि-दिन रहत केलि-रस ओद।
सूरदास प्रभु अबुंज-लोचन, फिरि-फिरि चितवत व्रज-जन-कोद ॥
॥११९॥ ॥७३७॥

राग सूहौ

सूच्छम चरन चलावत बल करि।
अटपटात, कर देति सुंदरी, उठत तबै सुजतन तन-मन धरि।
मृदु पद धरत धरनि ठहरात न, इत-उत भुज जुग लै-लै भरि-भरि।
पुलकित सुमुखी भई स्याम-रस ज्यौं जल मैं काँची गागरि गरि।
सूरदास सिसुता-सुख जलनिधि, कहँ लौं कहौं नाहिं कोउ समसरि।
बिबुधनि मन तर मान रमत ब्रज, निरखत जसुमति सुख छिन-पल-घरि
॥१२०॥७३८॥

राग बिलावल

बाल-बिनोद आँगन की डोलनि।
मनिमय भूमि नंद कें आलय, बलि-बलि जाउँ तोतरे बोलनि।
कठुला कंठ कुटिल केहरि-नख बज्र-माल बहु लाल अमोलनि।
बदन सरोज तिलक गोरोचन, लट लटकनि मधुकर-गति डोलनि।
कर नवनीत परस आनन सौं, कछुक खात, कछु लग्यो कपोलनि।
कहि जन सूर कहाँ लौं बरनौं, धन्य नंद जीवन जग तोलनि।
॥१२१॥७३९॥

राग बिलावल

गहे अँगुरिया ललन की, नँद चलत सिखावत।
अरबराइ गिरि परत हैं, कर टेकि उठावत।
बार-बार बकि स्याम सौं, कछु बोल बुलावत।
दुहुँघाँ द्वै दँतुली भई मुख अति छबि पावत।
कबहुं कान्ह-कर छाँड़ि नँद, पग द्वैक रिंगावत।
कबहु धरनि पर बैठि कै, मन मैं कछु गावत।
कबहुँ उलटि चलैं धाम कौं, घुटुरुनि करि धावत।
सूर स्याम-मुख लखि महर, मन हरष बढ़ावत ॥१२२॥
॥७४०॥

राग धनाश्री

कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी।
जो मन मैं अभिलाष करति ही, सो देखति नँद-घरनी।

रुनुक-झुनुक नूपुर पग बाजत, धुनि अतिहीँ मन-हरनी।
बैठि जात पुनि उठत तुरतहीँ, सो छबि जाइ न बरनी।
ब्रज-जुवती सब देखि थकित भईँ, सुंदरता की सरनी।
चिरजीवहु जसुदा कौ नंदन, सूरदास कौँ तरनी ॥१२३॥
॥७४१॥

राग बिलावल

चलत स्यामघन राजत, बाजति पैँजनि पग-पग चारु मनोहर।
डगमगात डोलत आँगन मैँ, निरखि बिनोद मगन सुर-मुनि-नर।
उदित मुदित अति जननि जसोदा, पाछैँ फिरति गहे अँगुरी कर।
मनौ धेनु तृन छाँड़ि बच्छ-हित, प्रेम द्रवित चित स्रवत पयोधर।
कुडल लोल कपोल बिराजत, लटकति ललित लटुरिया भ्रू पर।
सूर स्याम-सुंदर अवलोकत बिहरत बाल-गोपाल नंद-घर ॥१२४॥
॥७४२॥

राग गौरी

भीतर तैँ बाहर लौँ आवत।
घर-आँगन अति चलत सुगम भए, देहरि अँटकावत।
गिरि-गिरि परत, जात नहिँ उलँघी, अति स्रम होत नघावत।
अहुँठ पैग बसुधा सब कीनी, धाम अवधि बिरमावत।
मनहीँ मन बलबीर कहत हैँ, ऐसे रंग बनावत।
सूरदास-प्रभु-अगनित-महिमा, भगतनि कैँ मन भावत ॥१२५॥
॥७४३॥

राग धनाश्री

चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमुकि-ठुमुकि पग धरनी रेँगत, जननी देखि दिखावै।
देहरि लौँ चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहीँ कौँ आवै।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिँ नाँघत सुर-मुनि सोच करावै।
कोटि ब्रह्मंड करत छिन भीतर, हरत बिलंब न लावै।
ताकौँ लिए नंद की रानी, नाना खेल खिलावै।
तब जसुमति कर टेकि स्याम कौ, क्रम-क्रम करि उतरावै।
सूरदास प्रभु देखि-देखि, सुर-नर-मुनि-बुद्धि भुलावै ॥१२६॥
॥७४४॥

राग भैरव

सो बल कहा भयौ भगवान ?
जिहिँ बल मीन-रूप जल थाह्यौ, लियौ निगम, हरि असुर-परान।
जिहिँ बल कमठ-पीठि पर गिरि-धरि, सजल सिंधु मथि कियौ बिमान।
जिहिँ बल रूप बराह दसन पर, राखी पुहुमी पुहुप समान।
जिहिँ बल हिरनकसिप-उर फाख्यौ, भए भगत कौँ कृपानिधान।
जिहिँ बल बलि बंधन करि पठयौ, बसुधा त्रैपद करी प्रमान।
जिहिँ बल बिप्र तिलक दै थाप्यौ, रच्छा करी आप बिदमान।
जिहिँ बल रावन के सिर काटे, कियौ बिभीषन नृपति निदान।
जिहिँ बल जामवंत-मद मेट्यौ, जिहिँ बल भू बिनती सुनी कान।
सूरदास अब धाम-देहरी चढ़ि न सकत प्रभु खरे अजान ! ॥१२७॥
॥७४५॥

राग आसावरी

देखौ अद्भुत अबिगत की गति, कैसो रूप धर्यौ है (हो) !
तीनि लोक जाकैँ उदर-भवन, सो सूम कैँ कोन पर्यौ है (हो) !
जाकैँ नाल भए ब्रह्मादिक, सकल जोग ब्रत साध्यौ (हो) !
ताकौ नाल छीनि ब्रज-जुवती, बाँटि तगा सौँ बाँध्यौ (हो) !
जिहि मुख कौँ समाधि सिव साधी आराधन ठहराने (हो) !
सो मुख चूमति महरि जसोदा, दूध-लार लपटाने (हो) !
जिन स्रवननि जन की बिपदा सुनि, गरुड़ासन तजि धावै (हो) !
तिन स्रवननि ह्वै निकट जसोदा, हलरावै अरु गावै (हो) !
बिस्व-भरन-पोषन, सब समरथ, माखन-काज अरे हैँ (हो) !
रूप बिराट कोटि प्रति रोमनि, पलना माँझ परे हैँ (हो) !
जिहिँ भुज बल प्रहलाद उबार्यौ, हिरनकसिप उर फारे (हो) !
सो भुज पकरि कहति ब्रजनारी, ठाढ़े होहु लला रे (हो) !
जाकौ ध्यान न पायौ सुर-मुनि, संभु समाधि न टारी (हो) !
सोई सूर प्रगट या ब्रज मैँ, गोकुल-गोप-बिहारी (हो) ! ॥१२८॥
॥७४६॥

राग अहीरी

साँवरे बलि-बलि बाल-गोबिंद। अति सुख पूरन परमानंद।

तीनि पैंड़ जाके धरनि न आवै। ताहि जसोदा चलन सिखावै।
जाकी चितवनि काल डराई! ताहि महरि कर-लकुटि दिखाई।
जाकौ नाम कोटि भ्रम टारै। तापर राई-लोन उतारै।
सेवक सूर कहा कहि गावै। कृपा भई जो भक्तिहिं पावै।
॥१२९॥७४७॥

राग आसावरी

आनँद-प्रेम उमंगि जसोदा, खरी गुपाल खिलावै।
कबहुँक हिलकै-किलकै जननी मन-सुख-सिंधु बढ़ावै।
दै करताल बजावति, गावति, राग अनूप मल्हावै।
कबहुँक पल्लव पानि गहावै, आँगन माँझ रिँगावै।
सिव, सनकादि, सुकादि, ब्रह्मादिक खोजत अंत न पावैं।
गोद लिए ताकौं हलरावै तोतरे बैन बुलावै।
मोहे सुर, नर, किन्नर, मुनिजन, रवि रथ नाहिँ चलावै।
मोहि रहीं ब्रज की जुवती सब सूरदास जस गावै ॥१३०॥
॥७४८॥

राग कान्हरौ

हरि हरि हँसत मेरौ माधैया।
देहरि चढ़त परत गिरि-गिरि, कर-पल्लव गहति जु मैया।
भक्ति-हेत जसुदा के आगैं, धरनी चरन धरैया।
जिनि चरननि छलियौ बलि राजा, नख गंगा जु बहैया।
जिहिँ सरूप मोहे ब्रह्मादिक, रवि-ससि कोटि उगैया।
सूरदास तिन प्रभु चरननि की, बलि-बलि मैं बलि जैया ॥१३१॥
॥७४९॥

झुनक स्याम की पैजनियाँ

जसुमति-सुत कौं चलन सिखावतिँ, अँगुरी गहि-गहि दोउ जनियाँ।
स्याम बरन पर पीत छँगुलिया, सीस कुलहिया चौतनियाँ।
जाकौ ब्रह्मा पार न पावत, ताहि खिलावति ग्वालिनियाँ।
दूरि न जाहु निकटहीं खेलौ, मैं बलिहारी रेँगनियाँ।
सूरदास जसुमति बलिहारी, सुतहिँ खिलावति लै कनियाँ ॥१३२॥
॥७५०॥

चलत लाल पैजनि के चाइ।
पुनि-पुनि होत नयौ-नयौ आनँद, पुनि-पुनि निरखत पाइ।
छोटौ बदन छोटियै झिंगुली, कटि किंकिनी-बनाइ।
राजत जंत्र-हार, केहरि-नख, पहुँची रतन-जराइ।
भाल तिलक पख स्याम चखौड़ा जननी लेति बलाइ।
तनक लाल नवनीत लिए कर, सूरज बलि-बलि जाइ॥१३३॥
॥७५१॥

राग सूहौ

आँगन स्याम नचावहीं, जसुमति नँदरानी।
तारी दै-दै गावहीं, मधुरी मृदु बानी।
पाइनि नूपुर बाजई, कटि किंकिनि कूजै।
नान्हीं एड़ियनि अरुनता, फल-बिंब न पूजै।
जसुवति गान सुनै स्रवन, तब आपुन गावै।
तारी बजावत देखई, पुनि आपु बजावै।
केहरि-नख उर पर रुरै, सुठि सोभाकारी।
मनौ स्याम घन मध्य मैं, नव ससि-उजियारी।
गभुआरे सिर केस हैं, बर घूँघरवारे।
लटकन लटकत भाल पर, बिधु मधि गन तारे।
कठुला कंठ चिबुक-तरैं, मुख दसन बिराजैं।
खंजन बिच सुक आनि कै मनु परयौ दुराजैं।
जसुमति सुतहिं नचावई, छबि देखति जिय तैं।
सूरदास प्रभु स्याम कौ, मुख टरत न हिय तैं॥१३४॥
॥७५२॥

राग आसावरी

मैं देख्यौ जसुदा कौ नंदन, केलत आँगन बारौ री।
ततछन प्रान पलटि गयौ मेरौ, तन-मन ह्वै गयौ कारौ री।
देखत आनि सँच्यौ उर अंतर, दै पलकनि कौ तारौ री।
मोहिं भ्रम भयौ सखी, उर अपनैं, चहुँ दिसि भयौ उज्यारौ री।
जौ गुंजा सम तुलत सुमेरहिं, ताहू तैं अति भारौ री।
जैसैं बूँद परत बारिधि मैं, त्यौं गुन ज्ञान हमारौ री।

हौं उन माहँ कि वै मोहिँ महियाँ, परत न देह सँभारौ री।
तरु मैं बीज कि बीज माहँ तरु, दुहुँ मैं एक न न्यारौ री।
जल - थल - नभ-कानन - घर-भीतर, जहँ लौं दृष्टि पसारौ री।
तितही तित मेरे नैननि आगैं निरतत नंद-दुलारौ री।
तजी लाज कुलकानि लोक की, पति गुरुजन प्यौसारौ री!
जिनकी सकुच देहरी दुर्लभ, तिनमैं मूँड़ उघारौ री!
टोना - टामनि जंत्र मंत्र करि, ध्यायौ देव - दुआरौ री।
सासु - ननद घर-घर लिए डोलतिँ, याकौ रोग बिचारौ री!
कहौं कहा कछु कहत न आवै, औ रस लागत खारौ री।
इनहिं स्वाद जा लुब्ध सूर सोइ जानत चाखनहारौ री ॥१३५॥
॥७५३॥

राग आसावरी

जब तैं आँगन खेलत देख्यौ, मैं जसुदा कौ पूत री।
तब तैं गृह सौं नातौ टूट्यौ, जैसैं काँचौ सूत री।
अति बिसाल बारिज-दल-लोचन, राजति काजर-रेख री।
इच्छा सौं मकरंद लेत मनु अलि गोलक के वेष री।
स्रवन सुनत उतकंठ रहत हैं, जब बोलत तुतरात री।
उमँगे प्रेम नैन-मग ह्वै कै, कापै रोक्यौ जात री।
दमकतिं दोउ दूध की दतियाँ, जगमग जगमग होति री।
मानौ सुंदरता-मंदिर मैं रूप-रतन की ज्योति री।
सूरदास देखैं सुंदर मुख, आनँद उर न समाइ री।
मानौ कुमुद कामना-पूरन, पूरन इंदुहिं पाइ री ॥१३६॥
॥७५४॥

राग आसावरी

अदभुत इक चितयौ हौं सजनी, नंद महर कैं आँगन री।
सो मैं निरखि अपुनपौ खोयौ, गई मथानी माँगन री।
बाल-दसा मुख-कमल बिलोकत, कछु जननी सौं बोलै री।
प्रगटति हँसत दँतुलि, मनु सीपज दमकि दुरे दल ओलै री।
सुंदर भाल-तिलक गोरोचन, मिलि मसि-बिँदुका लाग्यौ री।
मनु मकरंद अचै रुचि कै, अलि-सावक सोइ न जाग्यौ री।

कुंडल लोल कपोलनि झलकत, मनु दरपन मैं झाईं री।
रही बिलोकि बिचारि चारु छबि, परमिति कहूँ न पाई री।
मंजुल तारनि की चपलाई, चित चतुराई करषै री।
मनौ सरासन धरे कर स्मर, भौंह चढ़े सर बरषै री।
जलधि थकित जनु काग पोत कौ कूल न कबहूँ आयौ री।
ना जानौं किहिं अंग मगन मन, चाहि रही नहिं पायौ री।
कहँ लगि कहौं बनाइ बरनि छबि, निरखत मति-गति हारी री।
सूर स्याम के एक रोम पर देउँ प्रान बलिहारी री ॥१३७॥
॥७५५॥

राग धनाश्री

जसोदा, तेरौ चिरजीवहु गोपाल।
बेगि बढ़ै बल सहित बिरध लट, महरि मनोहर बाल।
उपजि पर्‌यौ सिसु कर्म-पुन्य-फल, समुद-सोप ज्यौं लाल।
सब गोकुल कौ प्रान-जीवन-धन, बैरिनि कौ उर-साल।
सूर कितौ सुख पावत लोचन, निरखत घुटुरुनि चाल।
झारत रज लागे मेरी अँखियनि रोग-दोष-जंजाल ॥१३८॥
॥७५६॥

राग आसावरी

आजु गई हौं नंद-भवन मैं, कहा कहौं गृह-चैन री।
चहूँ ओर चतुरंग लच्छमी, कोटिक दुहियत धैन री।
घूमि रहीं जित-तित दधि मथनी, सुनत मेघ-धुनि लाजै री।
बरनौं कहा सदन कीसोभा, बैकुंठहुँ तैं राजै री।
बोलि लई नव वधू जानि जहँ खेलत कुँवर कन्हाई री।
मुख देखत मोहिनी सी लागी, रूप न बरन्यौ जाई री।
लटकन लटकि रहे भ्रू-ऊपर, रँग-रँग मनि-गन पोहे री।
मानहुँ गुरु-सनि-सुक्र एक ह्वै, लाल भाल पर सोहे री।
गोरोचन कौ तिलक, निकटहीं काजर-बिंदुका-लाग्यौ री।
मनौ कमल कौ पी पराग, अलि-सावक सोइ न जाग्यौ री।
बिधु-आनन पर दीरघ लोचन, नासा लटकत मोती री।
मानौ सोम संग करि लीने, जानि आपने गोती री।
सीपज-माल स्याम-उर सोहै, बिच बघ-नहँ छबि पावै री।
मनौ द्वैज ससि नखत सहित है, उपमा कहत न आवै री।

सोभा-सिंधु अंग अंगनि प्रति, बरनत नाहिँन ओर री।
जित देखौं मन भयौ तितहिं कौ, मनौ भरे कौ चोर री।
बरनौं कहाँ अंग-अँग-सोभा, भरी भाव जल-रास री।
लाल गोपाल बाल-छबि बरनत, कबि-कुल करिहै हास री।
जो मेरी अँखियनि रसना होती कहती रूप बनाइ री।
चिरजीवहु जसुदा कौ ढोटा, सूरदास बलि जाइ री ॥१३६॥
॥७५७॥

मैँ मोही तेरैं लाल री।
निपट निकट ह्वै कै तुम निरखौ, सुंदर नैन बिसाल री।
चंचल दृग अंचल-पट-दुति-छबि, झलकत चहुँ दिसि झालरी।
मनु सेवाल कमल पर अरुझे, भँवत भ्रमर भ्रम-चाल री।
मुक्ता-बिद्रुम-नील-पीत-मनि, लटकत लटकन भाल री।
मानौं सुक्र-भौम-सनि-गुरु मिलि, ससि कैं बीच रसाल री।
उपमा बरनि न जाइ सखी री, सुंदर मदन-गोपाल री।
सूर स्याम कै ऊपर वारै तन-मन-धन ब्रजबाल री ॥१४०॥
॥७५८॥

राग बिलावल

कल बल कै हरि आरि परे।
नव रँग बिमल नवीन जलधि पर मानहुँ द्वै ससि आनि अरे।
जे गिरि कमठ सुरासुर सर्पहिं धरत न मन मैं नैंकु डरे।
ते भुज-भूषन-भार परत कर गोपिनि के आधार धरे।
सूर स्याम दधि-भाजन-भीतर निरखत मुख मुख तैं न टरे।
बिवि चंद्रमा मनौ मथि काढ़े, बिहँसनि मनहुँ प्रकास करे ॥१४१॥
॥७५६॥

राग बिलावल

✓ जब दधि-मथनी टेकि अरै।
आरि करत मटुकी गहि मोहन, बासुकि संभु डरै।
मंदर डरत, सिंधु पुनि काँपत, फिरि जनि मथन करै।
प्रलय होइ जनि गहौ मथानी, प्रभु मरजाद टरै।
सुर अरु असुर ठाढ़े सब चितवत, नैननि नीर ढरै।
सूरदास मन मुग्ध जसोदा, मुख दधि - बिंदु परै ॥१४२॥
॥७६०॥

राग बिलावल

जब दधि-रिपु हरि हाथ लियौ।
खगपति-अरि डर, असुरनि-संका, बासर-पति आनंद कियौ।
बिदुखि सिंधु सकुचत, सिव सोचत, गरलादिक किमि जात पियौ ?
अति अनुराग संग कमला-तन, प्रफुलित अँग न समात हियौ।
एकनि दुख, एकनि सुख उपजत, ऐसौ कौन बिनोद कियौ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे गहत ही एक-एक तैं होत बियौ ॥१४३॥
॥७६१॥

राग धनाश्री

जब मोहन कर गही मथानी।
परसत कर दधि, माट, नेति, चित उदधि, सैल, वासुकि भय मानी।
कबहुँक तीनि पैग भुव मापत, कबहुँक देहरि उलँघि न जानी !
कहुँबक सुर-मुमि ध्यान न पावत, कबहुँ खिलावति नंद की रानी !
कबहुँक अमर-खीर नहिं भावत, कबहुँक दधि-माखन रुचि मानी।
सूरदास प्रभु की यह लीला, परति न महिमा सेष बखानी ॥१४४॥
॥७६२॥

राग बिलावल

नंद जू के बारे कान्ह, छाँड़ि दै मथनियाँ।
बार-बार कहति मातु जसुमति नँदरनियाँ।
नैंकु रहौ माखन देउँ मेरे प्रान-धनियाँ।
आरि जनि करौ, बलि बलि जाउँ हौं निधनियाँ।
जाकौ ध्यान धरैं सबै, सुर-नर-मुनि जनियाँ।
ताकौ नँदरानी मुख चूमै लिए कनियाँ।
सेष सहस आनन गुन गावत नहिं बनियाँ।
सूर स्याम देखि सबै भूलीं गोप-धनियाँ ॥१४५॥
॥७६३॥

राग बिलावल

जसुमति दधि मथन करति, बैठी बर धाम अजिर,
ठाढ़े हरि हँसत नान्ह दँतियनि छबि छाजै।

चितवत चित लै चुराइ, सोभा बरनी न जाइ,
मनु मुनि-मन-हरन-काज मोहिनी दल साजै।
जननि कहत नाचौ तुम, दैहैं नवनीत मोहन,
रुनुक-झुनुक चलत पाइ, नूपुर-धुनि बाजै।
गावत गुन सूरदास, बढ़्यो जस भुव-अकास,
नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै ॥ १४६ ॥
॥ ७६४ ॥

राग आसावरी

(एरी) आनँद सौँ दधि मथति जसोदा, घमकि मथनियाँ घूमै।
निरतत लाल ललित मोहन, पग परत अटपटे भू मैँ।
चारु चखौड़ा पर कुंचित कच, छवि मुक्ता ताहू मैँ।
मनु मकरंद-बिंदु लै मधुकर, सुत-प्याबन-हित झूमै।
बोलत स्याम तोतरी बतियाँ, हँसि-हँसि दतियाँ दूमै।
सूरदास वारी छबि ऊपर, जननि कमल-मुख चूमै ॥ १४७ ॥
॥ ७६५ ॥

राग बिलावल

त्यौँ-त्यौँ मोहन नाचै ज्यौँ-ज्यौँ रई-घमरकौ होइ (री)।
तैसियै किंकिनि-धुनि पग-नूपुर, सहज मिले सुर दोइ (री)।
कंचन को कठुला मनि-मोतिनि, बिच बघनहँ रह्यौ पोइ (री)।
देखत बनै, कहत नहिँ आवै, उपमा कौँ नहि कोइ (री)।
निरखि-निरखि मुख नंद-सुवन कौ, सुर-नर आनँद होइ (री)।
सूर भवन कौ तिमिर नसायौ, बलि गइ जननि जसोइ (री)।
॥ १४८ ॥ ७६६ ॥

राग बिलावल

प्रात समय दधि मथति जसोदा, अति सुख कमल-नयन-गुन गावति।
अतिहिँ मधुर गति, कंठ सुघर अति, नंद-सुवन-चित हितहि करावति।
नील बसन तनु, सजल जलद मनु, दामिनि बिवि भुज-दंड चलावति।
चंद्र बदन लट लटकि छबीली, मनहुँ अमृत रस ब्यालि चुरावति।
गोरस मथत नाद इक उपजत, किंकिनि-धुनि सुनि स्रवन रमावति।
सूर स्याम अँचरा धरि ठाढ़े, काम कसौटी कसि दिखरावति ॥ १४९ ॥
॥ ७६७ ॥

राग बिलावल

(माधव) तनक सौ बदन, तनक से चरन-भुज,
तनक से कर पर तनक सौ माखन।
तनक सी बात कहै तनक तनकि रहै,
तनक सौ रीझि रहै तनक से साधन।
तनक कपोल, तनक सी दँतुली,
तनक हँसनि पर हरत सबनि मन।
तनकहि तनक जु सूर निकट आवै,
तनक कृपा कै दीजै तनकहि सरन ॥ १५० ॥ ७६८ ॥

राग ललित

छोटी-छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी,
नख-ज्योती, मोती मानौ कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलै, ठुमुकि-ठुमुकि डोलै,
झुनुक-झुनुक बोलै पैजनी मृदु मुखर ॥
किंकिनी कलित कटि हाटक रतन जटि,
मृदु कर-कमलनि पहूँची रुचिर बर।
पियरी पिछौरी झीनी, और उपमा न भीनी,
बालक दामिनि मानौ ओढ़े बारौ बारि-धर ॥
उर बघ-नहाँ, कंठ कठुला, झँडूले बार,
बेनी लटकन मसि-बुंदा मुनि-मनहर।
अंजन रंजित नैन, चितवनि चित चोरै,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असम-सर ॥
चुटुकी बजावति नचावति जसोदा रानी,
बाल-केलि गावति मल्हावति सुप्रेम भर।
किलकि-किलकि हँसैं, द्वै-द्वै दँतुरियाँ लसैं,
सूरदास मन बसैं तोतरे बचन बर ॥ १५१ ॥ ७६९ ॥

राग बिलावल

(माधव) तनक चरन अरु तनक-तनक भुज, तनक बदन बोलै तनक सौ बोल।
तनक कपोल, तनक सी दतियाँ तनक हँसनि पर लेत हैं मोल।

तनक कर्नि पर तनक माखन लिए, देखत तनक जाकैं सकल भुवन।
तनक सुनैं सुजस पावत परम गति, तनक कहत तासौं नँद के सुवन।
तनक रीझ पै देत सकल तन, तनक चितै चित बित के हरन।
तनकहिँ तनक तनक करि आवै सूर, तनक कृपा कै दीजै तनक सरन।
॥१५२॥७७०॥

राग कान्हरौ

गोद खिलावति कान्ह सुनी, बड़भागिनि हो नँदरानी।
आनँद की निधि मुख जु लाल कौ, छबि नहिँ जाति बखानी।
गुन अपार बिस्तार परत नहिँ, कहि निगमागम-ज्ञानी।
सूरदास प्रभु कौँ लिए जसुमति, चितै चितै मुसुकानी ॥१५३॥
॥७७१॥

राग गौरी

मेरे माई, स्याम मनोहर जीवन।
निरखि नैन भूले जुबदन-छबि, मधुर हँसनि पय-पीवन।
कुंतल कुटिल, मकर कुंडल, भ्रुव नैन बिलोकनि-बंक।
सुधा-सिंधु तैँ निकसि नयौ ससि, राजत मनु मृग-अंक।
सोभित सुवन मयूर-चंद्रिका, नील नलिन तनु स्याम।
मनहु नछत्र-समेत इंद्र धनु, सुभग मेघ अभिराम।
परम कुसल कोबिद लीला-नट, मुसुकनि मन हरि लेत।
कृपा-कटाच्छ कमल-कर फेरत, सूर जननि सुख देत ॥१५४॥
॥७७२॥

राग देवगंधार

कहन लागे मोहन मैया-मैया।
नंद महर सौँ बाबा-बाबा, अरु हलधर सौँ भैया।
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहति जसोदा, लै-लै नाम कन्हैया।
दूरि खेलन जनि जाहु लला रे, मारैगी काहु की गैया।
गोपी ग्वाल करत कौतूहल, घर-घर बजति बधैया।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, चरननि की बलि जैया ॥१५५॥
॥७७३॥

राग बिलावल

माखन खात हँसत किलकत हरि, पकरि स्वच्छ घट देख्यौ।
निज प्रतिबिंब निरखि रिस मानत, जानत आन परेख्यौ।

मन मैँ माष करत, कछु बोलत, नंद बबा पै आयौ।
वा घट मैँ काहू कैँ लरिका, मेरौ माखन खायौ।
महर कंठ लावत, मुख पोँछत चूमत तिहिँ ठाँ आयौ।
हिरदै दिए लख्यौ वा सुत कौँ, तातैँ अधिक रिसायौ।
कह्यौ जाइ जसुमति सौँ ततछन मैँ जननी सुत तेरौ।
आजु नंद सुत और कियौ, कछु कियौ न आदर मेरौ।
जसुमति बाल बिनोद जानि जिय उहीँ ठौर लै आई।
दोउ कर पकरि डुलावन लागी, घट मैँ नहिँ छबि पाई।
कुँवर हँस्यौ आनंद-प्रेम-बस, सुख पायौ नँदरानी।
सूरज प्रभु की अद्भुत लीला, जिन जानी तिन जानी ॥१५६॥
॥७७४॥

राग आसावरी

वेद-कमल-मुख परसति जननी, अंक लिए सुत रति करि स्याम।
परम सुभग जु अरुन कोमल-रुचि, आनंदित मनु पूरन-काम।
आलंबित जु पृष्ठ बल सुंदर, परसपरहिँ चितवत हरि-राम।
झाँकि-उझकि बिहँसत दोऊ सुत, प्रेम-मगन भइ इकटक जाम।
देखि सरूप न रही कछू सुधि, तोरे तबहिँ कंठ तैँ दाम।
सूरदास प्रभु सिसु लीला-रस, आवहु देखि नंद सुख-धाम ॥१५७॥
॥७७५

राग गौरी

सोभा मेरे स्यामहिँ पै सोहै।
बलि-बलि जाउँ छबीले मुख की, या उपमा कौँ को है।
या छबि की पटतर दीबे कौँ सुकबि कहा टकटोहै?
देखत अंग-अंग-प्रति बानक, कोटि मदन-मन छोहै।
ससि-गन गारि रच्यौ बिधि आनन, बाँके नैननि जोहै।
सूर स्वाम सुंदरता निरखत, मुनि-जन कौ मन मोहै ॥१५८॥
॥७७६॥

राग सारंग

बाल गुपाल खेलौ मेरे तात।
बलि-बलि जाउँ मुखारबिंद की, अमिय-बचन बोलौ तुतरात।

दुहुँ कर माट गह्यौ नँदनंदन, छिटकि बूँद-दधि परत अघात।
मानौ गज-मुक्ता मरकत पर, सोभित सुभग साँवरे गात।
जननी पै माँगत जग-जीवन, दै माखन-रोटी उठि प्रात।
लोटत सूर स्याम पुहुमी पर, चारि पदारथ जाकैं हाथ ॥ १५६ ॥
॥७७७॥

राग बिलावल

पलना झूलौ मेरे लाल पियारे।
सुसकनि की वारी हौं बलि-बलि, हठ न करहु तुम नंद दुलारे।
काजर हाथ भरौ जनि मोहन ह्वैहैं नैना अति रतनारे।
सिर कुलही, पग पहिरि पैजनी, तहाँ जाहु जहँ नंद बबा रे।
देखत यह बिनोद धरनीधर, मात पिता बलभद्र ददा रे।
सुर-नर-मुनि कौतूहल भूले देखत सूर सबै जु कहा रे ॥ १६० ॥
॥ ७७८ ॥

राग बिलावल

क्रीड़त प्रात समय दोउ बीर।
माँखन माँगत, बात न मानत, झँखत जसोदा-जननी-तीर।
जननी मधि, सनमुख संकर्षन खैंचत कान्ह खस्यौ सिर-चीर।
मनहुँ सरस्वति संग उभय द्विज, कल मराल अरु नील कँठीर।
सुंदर स्याम गही कवरी कर, मुक्ता माल गही बलबीर।
सूरज भष लैबे अप अपनौ, मानहुँ लेत निबेरे सीर ॥१६१॥
॥७७६॥

राग बिलावल

कनक-कटोरा प्रातहीं, दधि घृत सु मिठाई।
खेलत खात गिरावहीं, झगरत दोउ भाई।
अरस परस चुटिया गहैं, बरजति है माई।
महा ढीठ मानैं नहीं, कछु लहुर-बड़ाई।
हँसि कै बोली रोहिनी, जसुमति मुसुकाई।
जगन्नाथ धरनीधरहिं, सूरज बलि जाई ॥१६२॥
॥७८०॥

राग बिलावल

गोपालराइ दधि माँगत अरु रोटी।
माखन सहित देहि मेरी मैया, सुपक सुकोमल रोटी।
कत हौ आरि करत मेरे मोहन तुम आँगन मैं लोटी ?
जो चाहौ सो लेहु तुरतहीँ, छाँड़ौ यह मति खोटी।
करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौ, मुख चुपरयौ अरु चोटी।
सूरदास कौ ठाकुर ठाढ़ौ, हाथ लकुटिया छोटी ॥१६३॥
॥७८१॥

राग बिलावल

हरि कर राजत माखन-रोटी।
मनु बारिज ससि बैर जानि जिय, गह्यौ सुधा ससुधौटी।
मेली सजि मुख-अंबुज-भीतर, उपजी उपमा मोटी।
मनु बराह भूधर-सह-पुहुमी धरी दसन की कोटी।
नगन गात मुसुकात तात-ढिग, नृत्य करत गहि चोटी।
सूरज प्रभु की लहै जु जूठनि, लारनि ललित लपोटी ॥१६४॥
॥७८२॥

राग बिलावल

दोउ भैया मैया पै माँगत, दै री मैया, माखन रोटी।
सुनत भावती बात सुतनि की झूठहिँ धाम के काम अगोटी।
बल जू गह्यौ नासिका-मोती, कान्ह कुँवर गही दृढ़ करि चोटी।
मानौ हंस मोर भष लीन्हे, कबि उपमा बरनै कछु छोटी।
यह छबि देखि नंद-मन आनँद, अति सुख हँसत जात हैँ लोटी।
सूरदास मन मुदित जसोदा, भाग बड़े, कर्मनि की मोटी ॥१६५॥
॥७८३॥

राग आसावरी

तनक दै री माइ, माखन तनक दै री माइ।
तनक कर पर तनक रोटी, माँगत चरन चलाइ।
कनक-भू पर रतन रेखा, नेति पकरयौ धाइ।
कँप्यौ गिरि अरु सेष संक्यौ, उदधि चल्यौ अकुलाइ।

तनक मुख की तनक बतियाँ बोलत हैं तुतराइ।
जसोमति के प्रान-जीवन, उर लियौ लपटाइ।
मेरे मन कौ तनक मोहन, लागु मोहिं बलाइ।
स्याम सुंदर नँद कुँवर पर, सूर बलि-बलि-जाइ ॥१६६॥
॥७८४॥

राग बिलावल

नैंकु रहौ, माखन द्यौं तुमकौं।
ठाढ़ी मथति जननि दधि आतुर, लौनी नंद-सुवन कौं।
मैं बलि जाउँ स्याम-घन सुंदर, भूख लगी तुम्हैं भारी।
बात कहूँ की बूझति स्यामहिं, फेर कहत महतारी।
कहत बात हरि कछू न समुझत, झूठहिं भरत हुँकारी।
सूरदास प्रभु कैं गुन तुरतहिं, बिसरि गई नँद-नारी ॥१६७॥
॥७८५॥

राग बिलावल

बातनि ही सुत लाइ लियौ।
तब लौं मथि दधि जननि जसोदा, माखन करि हरि-हाथ दियौ
लै-लै अधर-परस करि जेंवत, देखत फूल्यौ मात-हियौ।
आपुहिं खात प्रसंसत आपुहिं, माखन-रोटी बहुत प्रियौ।
जो प्रभु सिव-सनकादिक-दुर्लभ, सुत-हित जसुमति नंद कियौ।
यह सुख निरखत सूरज प्रभु कौ, धन्य-धन्य पल सुफल जियौ ॥१६८॥
॥७८६॥

बाल छबि-वर्णन *राग बिलावल*

बरनौं बाल-बेष मुरारि।
थकित जित-तित अमर-मुनि-गन, नंद-लाल निहारि।
केस सिर बिन बपन के चहुँ दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसु-रूप कियौ त्रिपुरारि।
तिलक ललित ललाट केसरिबिंदु सोभाकारि।
रोष-अरुन तृतीय लोचन, रह्यौ जनु रिपु जारि।
कंठ कठुला नील मनि, अंभोज-माल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर इहिं भाइ भए मदनारि।

कुटिल हरि-नख हिऍं हरि के हरषि निरखति नारि।
ईस जनु रजनीस राख्यौ भाल तैं जु उतारि।
सदन-रज तन स्याम सोभित, सुभग इहिं अनुहारि।
मनहुँ अंग-बिभूति-राजित संभु सो मधुहारि।
त्रिदस-पति-पति असन कौं अति जननि सौं करै आरि।
सूरदास बिरंचि जाकौं जपत निज मुख चारि ॥१६६॥
॥७८७॥

राग बिलावल

सखि री, नंद-नंदन देखु।
धूरि-धूसर जटा जुटली, हरि किए हर-भेषु।
नील पाट पिरोइ मनि-गन फनिग धोखैं जाइ।
खुनखुना कर, हँसत हरि,हर नचत डमरु बजाइ।
जलज-माल गुपाल पहिरे, कहा कहौं बनाइ।
मुंडमाला मनौ हर-गर ऐसी सोभा पाइ।
स्वाति-सुत-माला बिराजत स्याम तन इहिं भाइ।
मनौ गंगा गौरि-डर हर लई कंठ लगाइ।
केहरी-नख निरखि हिरदै, रहीं नारि बिचारि।
बाल-ससि मनु भालु तैं लै, उर धर्यौ त्रिपुरारि।
देखि अंग अनंग झझक्यौ, नंद सुत हर जान।
सूर के हिरदै बसौ नित, स्याय-सिव को ध्यान ॥१७०॥
॥७८८॥

राग सारंग

हरि-हर संकर, नमो नमो।
अहिसायी, अहि-अंग-बिभूषन; अमित-दान, बल-बिष-हारी।
नीलकंठ, बर नील कलेवर; प्रेम-परस्पर कृतहारी।
कंद्रचूड़, सिखि-चंद्र-सरोरुह; जमुनाप्रिय, गंगाधारी।
सुरभि-रेनुतन, भस्म बिभूषित; बृष-बाहन, बन-बृष-चारी।
अज-अनीह-अविरुद्ध-एकरस, यहै अधिक ये अवतारी।
सूरदास सम, रूप-नाम-गुन अंतर अनुचर-अनुसारी ॥१७१॥
॥७८६॥

राग बिलावल

देखो माई दधि-सुत मैं दधि जात।
एक अचंभौ देखि सखी री, रिपु मैं रिपु जु समात।
दधि पर कीर, कीर पर पंकज, पंकज के द्वै पात।
यह सोभा देखत पसु-पालक, फूले अँग न समात।
बारंबार बिलोकि सोचि चित, नंद महर मुसुक्यात।
यहै ध्यान मन आनि स्याम कौ, सूरदास बलि जात ॥१७२॥
॥७६०॥

राग धनाश्री

दधि-सुत जामे नंद-दुवार।
निरखि नैन अरुझ्यौ मनमोहन, रटत देहु कर बारंबार।
दीरघ मोल कह्यौ ब्यौपारी, रहे ठगे सब कौतुक हार।
कर ऊपर लै राखि रहे हरि, देत न मुक्ता परम सुढार।
गोकुलनाथ बए जसुमति के आँगन भीतर, भवन मझार।
साखा-पत्र भए जल मेलत, फूलत-फलत न लागी बार।
जानत नहीं मरम सुर-नर-मुनि ब्रह्मादिक नहिँ परत बिचार।
सूरदास प्रभु की यह लीला, ब्रज-वनिता पहिरे गुहि हार ॥१७३॥
॥१६१॥

राग धनाश्री

कजरी कौ पय पियहु लाल, जासौँ तेरी बेनि बढ़ै।
जैसैँ देखि और ब्रज बालक, त्यौँ बल-बैस चढ़ै।
यह सुनि कै हरि पीवन लागे, ज्यौँ त्यौँ लयौ लढ़ै।
अँचवत पय तातौ जब लाग्यौ, रोवत जीभि डढ़ै।
पुनि पीवत हीँ कच टकटोरै, झूठहिँ जननि रढ़ै।
सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ै ॥१७४॥
॥७६२॥

राग रामकली

मैया, कबहिँ बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहिँ दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी!

तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं, ह्वैहै लाँबी-मोटी।
काढ़त-गुहत-न्हवावत जैहै नागिन सी भुइँ लोटी।
काँचौ दूध पिवति पचि-पचि, देति न माखन-रोटी।
सूरज चिरजीवौ दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी ॥१७५॥
॥७६३॥

राग सारंग

मैया, मोहिँ बड़ौ करि लै री।
दूध-दही-घृत-माखन-मेवा, जो माँगौँ सो दै री।
कछू हौंस राखै जनि मेरी, जोइ-जोइ मोहिँ रुचै री।
होउँ बेगि मैँ सबल सबनि मैँ, सदा रहौँ निरभै री।
रंगभूमि मैँ कंस पछारौँ, घीसि बहाऊँ बैरी।
सूरदास स्वामी की लीला, मथुरा राखौँ जै री ॥१७६॥
॥७६४॥

राग रामकली

हरि अपनैँ आँगन कछु गावत।
तनक-तनक चरननि सौँ नाचत, मनहिँ मनहिँ रिझावत।
बाहँ उठाइ काजरी- धौरी गैयनि टेरि बुलावत।
कबहुँक बाबा नंद पुकारत, कबहुँक घर मैँ आवत।
माखन तनक आपनैँ कर लै, तनक बदन मैँ नावत।
कबहुँक चितै प्रतिबिंब खंभ मैँ, लौनी लिए खवावत।
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष अनंद बढ़ावत।
सूर स्याम के बाल-चरित, नित नितही देखत भावत ॥१७७॥
॥७६५॥

राग बिलावल

आजु सखी, हौँ प्रात समय दधि मथन उठी अकुलाइ।
भरि भाजन मनि-खंभ निकट धरि, नेति लई कर जाइ।
सुनत सब्द तिहिँ छिन समीप मम हरि हँसि आए धाइ।
मोह्यौ बाल-बिनोद-मोद अति, नैननि नृत्य दिखाइ।
चितवनि चलनि हर्‌यौ चित चंचल, चितै रही चित लाइ।
पुलकत मन प्रतिबिंब देखि कै, सबही अंग सुहाइ।

माखन पिंड विभागि दुहूँ कर, मेलत मुख मुसुकाइ।
सूरदास-प्रभु-सिसुता को सुख, सकै न हृदय समाइ ॥ १७८ ॥
॥ ७६६ ॥

राग बिलावल

बलि-बलि जाउँ मधुर सुर गावहु।
अबकी बार मेरे कुँवर कन्हैया, नंदहि नाचि दिखावहु।
तारी देहु आपने कर की, परम प्रीति उपजावहु।
आन जंतु-धुनि सुनि कत डरपत, मो भुज कंठ लगावहु।
जनि संका जिय करौ लाल मेरे, काहे कौं भरमावहु।
बाहँ उचाइ काल्हि की नाईं, धौरी धेनु बुलावहु।
नाचहु नैंकु, जाउँ बलि तेरी, मेरी साध पुरावहु।
रतन-जटित किंकिनि पग-नूपुर, अपनैं रंग बजावहु।
कनक-खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक, लवनी ताहि खवावहु।
सूर स्याम मेरे उर तैं कहुँ टारे नैंकु न भावहु ॥ १७९ ॥
॥ ७६७ ॥

कनछेदन

राग धनाश्री

कान्ह कुँवर कौ कनछेदन है, हाथ सोहारी भेली गुर की।
विधि बिहँसत, हरि हँसत हेरि हरि, जसुमति की धुकधुकी सु उर की।
रोचन भरि ले देत सींक सौं, स्रवन-निकट अतिही चातुर की।
कंचन के द्वै दुर मँगाइ लिए, कहौं कहा छेदनि आतुर की।
लोचन भरि-भरि दोऊ माता, कनछेदन देखत जिय मुरकी।
रोवत देखि जननि अकुलानी, दियौ तुरत नौआ कौं घुरकी।
हँसत नंद, गोपी सब बिहँसीं, झमकि चलीं सब भीतर दुरकी।
सूरदास नँद करत बधाई, अति आनंद बाल ब्रज-पुर की ॥ १८० ॥
॥ ७६८ ॥

राग धनाश्री

सुर-बनिता सब कहतिं परस्पर, ब्रजबासी-दासी-समसरि को?
गोपी मगन भईं सब गावति, हलरावति सुत लेति महरि कौ।
जो सुख मुनि जन ध्यान न पावत, सो सुख करत नंद सब खरिकौ।

मनि-मुकता-गन करत निछावरि, तुरतहिँ देत बिलंब न घरि कौ।
सूर नंद ब्रज-जन पहिरावत, उमँगि चल्यौ सुखसिंधु लहरि कौ ॥१८१॥
॥ ७९९ ॥

राग धनाश्री

पाहुनी, करि दै तनक मह्यौ।
हौँ लागी गृह-काज-रसोई, जसुमति बिनय कह्यौ।
आरि करत मनमोहन मेरो, अंचल आनि गह्यौ।
व्याकुल मथति मथनियाँ रीती, दधि भुव ढरकि रह्यौ।
माखन जात जानि नँदरानी, सखी सम्हारि कह्यौ।
सूर स्याम-मुख निरखि मगन भई, दुहुनि सँकोच सह्यौ ॥१८२॥
॥ ८०० ॥

राग सारंग

कान्हर, बलि आरि न कीजै। जोइ-जोइ भावै सोइ लीजै।
यह कहति जसोदा रानी। को खिझवै सारँगपानी।
जो मेरैं लाल खिझावै। सो अपनौ कीनौ पावै।
तिहिँ दैहौँ देस-निकारौ। ताको ब्रज नाहिँन गारौ।
अति रिसही तैँ तनु छीजै। सुठि कोमल अंग पसीजै।
बरजत-बरजत बिरुझाने। करि क्रोध मनहिँ अकुलाने।
कर धरत धरनि पर लोटै। माता कौ चीर निखोटै।
अँग-आभूषन सब तोरै। लवनी-दधि-भाजन फोरै।
देखत सुतप्त जल तरसै। जसुदा के पाइनि परसै।
तब महरि बाहँ गहि आनै। लै तेल उबटनौ सानै।
तब गिरत-परत उठि भागै। कहुँ नैँकु निकट नहिँ लागै।
तब नंद-घरनि चुचकारे। आवहु बलि जाउँ तुम्हारे।
नहिँ आवहु तौ भलैँ लाला। समुझौगे मदन गोपाला।
तुम मेरी रिस नहिँ जानौ। मोकौँ नहिं तुम पहिचानौ।
मैँ आजु तुम्हैँ गहि बाँधौँ। हा-हा करि-करि अनुराधौँ।
बाबा नँद उत तैँ आए। कौनैँ हरि अतिहिँ खिझाए ?
मुख चूमि हरषि लै आए। लै जसुमति पै पहुँचाए।
मोहन कत खिझत अयानी। लिए लाइ हिऐँ नँदरानी।

क्यौं हूँ जतन-जतन करि पाए। तन उबटन तेल लगाए।
तातौ जल आनि समोयौ। अन्हवाइ दियौ मुख धोयौ।
अति सरस बसन तन पौंछे। लै कर मुख-कमल अँगोछे।
अंजन दोउ दृग भरि दीन्हौ। भ्रुव चारु चखौड़ा कीन्हौ।
आभूषन अग जे बनाए। लालहिँ क्रम-क्रम पहिराए।
ऐसी रिसि करौ न कान्हा। अब खाहु कुँवर कछु नान्हा।
तुतरात कह्यौ का है री। जो मोहिँ भावैं सो दै री।
जोइ-जोइ भावै मेरे प्यारे। सोइ-सोइ तोहिँ देहुँ लला रे।
है करयौ सिरावन सीरा। कछु हठ न करहु बलबीरा।
सद दधि-माखन त्यौं आनी। ता पर मधु मिसिरी सानी।
खोवा-मय मधुर मिठाई। सो देखत अति रुचि पाई।
कछु बलदाऊ कौं दीजै। अरु दूध अधावट पीजै।
सब हेरि धरी है साढ़ी। लई ऊपर-ऊपर काढ़ी।
अति प्यौसर सरस बनाई। तिहिँ सोंठ-मिरिच रुचि नाई।
दधि दूध बरा दाहरौरी। सा खात अमृत पक्कौरी।
सुठि सरस जलेबी बोरी। जिहिँ जेँवत रुचि नहिँ थोरी।
अरु खुरमा सरस सँवारे। ते परसि धरे हैँ न्यारे।
सक्करपारे सद-पागे। ते जेँवत परम सभागे।
सेव लाड़ू रुचिर सँवारे। जे मुख मेलत सुकुमारे।
सुठि मोती लाड़ू मीठे। वै खात न कबहुँ उबीठे।
खिर-लाड़ु लवंगिनि नाए। ते करि बहु जतन बनाए।
गूझा बहु पूरन पूजे। भरि-भरि कपूर रस चूरे।
अरु तैसियै गाल मसूरी। जो खातहिँ मुख-दुख दूरी।
अरु हेसमि सरस सँवारी। अति स्वाद परम सुखकारी।
बाबर बरने नहिँ जाई। जिहिँ देखत अति सुखपाई।
मृदु मालपुआ मधु साने। जे तुरत तपत करि आने।
सुंदर अति सरस अँदरसे। ते घृत-दधि-मधु मिलि सरसे।
घेवर अति घिरत-चभोरे। लै खाँड़ सरस रस बोरे।
मधुरी अति सरस खजूरी। सद परसि धरी घृत-पूरी।
जब पूरी सुन हरि हरष्यौ। तब भोजन पर मन करष्यौ।
सुनि तुरत जसोदा ल्याई। अति रुचि समेत हरि खाई।
बलदाऊ टेरि बुलाए। यह सुनि हलधर तहँ आए।

षटरस परकार मँगाए। जे बरनि जसोदा गाए।
मनमोहन हलधर बीरा। जँवत रुचि राख्यौ सीरा।
सीतल जल लियौ मँगाई। भरि झारी जसुमति ल्याई।
अँचवत तब नैन जुड़ाने। दोउ हरषि-हरषि मुसुकाने।
हँसि जननी चुरू भराए। तब कछु-कछु मुख पखराए।
तब बीरी तनक मुख नायौ। अति लाल अधर ह्वै आयौ।
छबि सूरदास बलिहारी। माँगत कछु जूठनि थारी।
हरि तनक-तनक कछु खायौ। जूठनि सब भक्तनि पायौ ॥१८३॥
॥८०१॥

राग नट नारायण

बिहरत बिबिध बालक-संग
डगनि डगमग पगनि डोलत, धूरि-धूसर अंग।
चलत मग, पग बजति पैजनि, परसपर किलकात।
मनौ मधुर मराल-छौना बोलि बैन सिहात।
तनक कटि पर कनक-करधनि, छीन छबि चमकाति।
मनौ कनक कसौटिया पर, लीक सी लपटाति।
दुर दमंकत सुभग स्रवननि, जलज जुग डह-डहत,
मनहुँ बासव बलि पठाए, जीव-कवि कछु कहत।
ललित लट छिटकाति मुख पर, देति सोभा दून।
मनु मयंकहिँ अंक लीन्हौ सिंहिका कैँ सून।
कबहुँ द्वारैँ दौरि आवत, कबहुँ नंद-निकेत।
सूर प्रभु कर गहति ग्वालिनि चारु - चुंबन - हेत ॥१८४॥
॥८०२॥

राग बिलाबल

मोहन, आउ तुम्हैँ अन्हवाऊँ।
जमुना तैँ जल भरि लै आऊँ, ततिहर तुरत चढ़ाऊँ।
केसरि कौ उवटनौ बनाऊँ, रचि-रचि मैल छुड़ाऊँ।
सूर कहै कर नैँकु जसोदा, कैसैँहु पकरि न पाऊँ। १८५॥
॥८०३॥

राग आसावरी

जसुमति जबहिँ कह्यौ अन्हवावन, रोइ गए हरि लोटत री।
तेल उबटनौ लै आगैँ धरि, लालहिँ चोटत-पोटत री।
मैं बलि जाउँ न्हाउ जनि मोहन, कत रोवत बिनु काजैँ री।
पाछैँ धरि राख्यौ छपाइ कै उबटन-तेल-समाजैँ री।
महरि बहुत बिनती करि राखति, मानत नहीँ कन्हैया री।
सूर स्याम अतिहीँ बिरुझाने, सुर-मुनि अंत न पैया री ॥१८६॥
॥८०४॥

राग सूहौ बिलावल

देखि माई हरि जू की लोटनि।
यह छबि निरखि रही नँदरानी, अँसुवा ढरि-ढरि परत करोटनि।
परसत आनन मनु रवि-कुंडल, अंबुज स्रवत सीप-सुत जोटनि।
चंचल अधर, चरन-कर अंचल, मंचल अंचल गहत बकोटनि।
लेति छुडाइ महरि कर सौँ कर, दूरि भई देखति दूरि ओटनि।
सूर निरखि मुसुकाइ जसोदा, मधुर-मधुर बोलति मुख होटनि ॥१८७॥
॥८०५॥

चंद्र-प्रस्ताव *राग कान्हरौ*

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैँ, हरिहिँ लिए चंदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी, देखौँ धौँ भरि नैन जुड़ावत।
चितै रहै तब आपुन ससि-तन अपने कर लै-लै जु बतावत।
मीठौ लगत किधौँ यह खाटौ, देखत अति सुंदर मन भावत।
मनहीँ मन हरि बुद्धि करत हैँ माता सौँ कहि ताहिँ मँगावत।
लागी भूख, चंद मैँ खैहौँ, देहि देहि रिस करि बिरुझावत।
जसुमति कहति कहा मैँ कीनौ, रोवत मोहन अति दुख पावत।
सूर स्याम कौँ जसुमति बोधति, गगन चिरैया उड़त दिखावत ॥१८८॥
॥८०६॥

राग कान्हरौ

किहिँ बिधि करि कान्हहिँ समुझैहौँ ?
मैँ ही भूलि चंद दिखरायौ, ताहि कहत मैँ खैहौँ !

अनहोनी कहुँ भई कन्हैया, देखी-सुनी न बात।
यह तौ आहि खिलौना सबकौ, खान कहत तिहिँ तात।
यहै देत लवनी नित मोकौँ, छिन-छिन साँझ-सबेरे।
बार-बार तुम माखन माँगत, देउँ कहाँ तैँ प्यारे?
देखत रहौ खिलौना चंदा, आरि न करौ कन्हाई।
सूर स्याम लिए हँसति जसोदा, नंदहिँ कहति बुझाई ॥१८९॥
॥८०७॥

राग धनाश्री

(आछे मेरे) लाल हो, ऐसी आरि न कीजै।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई जोइ भावै सोइ लीजै।
सद माखन घृत दह्यौ सजायौ, अरु मीठौ पय पीजै।
पालागौँ हठ अधिक करौ जनि, अति रिस तैँ तन छीजै।
आन बतावति, आन दिखावति, बालक तौ न पतीजै।
खसि-खसि परत कान्ह कनियाँ तैँ, सुसुकि सुसुकि मन खीजै।
जल-पुट आनि धर्यौ आँगन मैँ, मोहन नैँकु तो लीजै।
सूर स्याम हठि चंदहिँ माँगै, सु तौ कहाँ तैँ दीजै ॥१९०॥
॥८०८॥

राग कान्हरौ

बार-बार जसुमति सुत बोधति, आउ चंद तोहिँ लाल बुलावै।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, आपुन खैहै, तोहिँ खवावै।
हाथहिँ पर तोहिँ लीन्हे खेलै, नैँकु नहीँ धरनी बैठावै।
जल-बासन कर लै जु उठावति, याही मैँ तू तन धरि आवै।
जल-पुट आनि धरनि पर राख्यौ, गहि आन्यौ वह चंद दिखावै।
सूरदास प्रभु हँसि मुसुक्याने, बार-बार दोऊ कर नावैँ ॥१९१॥
॥८०९॥

राग रामकली

(मेरौ माई) ऐसौ हठी बाल गोबिंदा।
अपने कर गहि गगन बतावत खेलन कौँ माँगै चंदा।
बासन मैँ जल धर्यौ जसोदा, हरि कौँ आनि दिखावै।
रुदन करत, ढूँढ़त नहिँ पावत, चंद धरनि क्यौँ आवै!

मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, माँगि लेहु मेरे छौना।
चकई-डोरि पाट के लटकन, लेहु मेरे लाल खिलौना।
संत-उबारन, असुर-सँहारन, दूरि करन दुख दंदा।
सूरदास बलि गई जसोदा, उपज्यौ कंस-निकंदा ॥१६२॥
॥ ८१० ॥

राग केदारौ

मैया, मैं तौ चंद-खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं।
सुरभी कौ पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं।
ह्वैहौं पूत नंद बाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहौं।
आगैं आउ, बात सुनि मेरी, बलदेवहिं न जनैहौं।
हँसि समुझावति, कहति जसोमति, नई दुलहिया दैहौं।
तेरी सौं, मेरी सुनि मैया, अबहिं बियाहन जैहौं।
सूरदास ह्वै कुटिल बराती, गीत सुमंगल गैहौं॥ १६३ ॥
॥ ८११ ॥

राग रामकली

मैया री मैं चंद लहौंगौ।
कहा करौं जलपुट भीतर कौ, बाहर ब्यौंकि गहौंगौ।
यह तौ झलमलात झकझोरत, कैसैं कै जु लहौंगौ।
वह तौ निपट निकटहीं देखत, बरज्यौ हौं न रहौंगौ।
तुम्हरौ प्रेम प्रगट मैं जान्यौ, बौराऐं न बहौंगौ।
सूर स्याम कहै कर गहि ल्याऊँ, ससि-तन-दाप दहौंगौ ॥१६४॥
॥८१२॥

राग धनाश्री

लै लै मोहन, चंदा लै।
कमल नैन बलि जाउँ सुचित ह्वै, नीचैं नैंकु चितै।
जा कारन तैं सुनि सुत सुंदर, कीन्ही इतौ अरै।
सोइ सुधाकर देखि कन्हैया, भाजन माहिँ परै।
नभ तैं निकट आनि राख्यौ है, जल-पुट जतन जुगै।
लै अपने कर काढ़ि चंद कौं, जो भावै सो कै।

गगन-मँडल तैं गहि आन्यौ है, पंछी एक पठै।
सूरदास प्रभु इती बात कौं, कत मेरौ लाल हठै ॥१६५॥
॥८१३॥

राग बिहागरौ

तुव मुख देखि डरत ससि भारी।
कर करि कै हरि हेर्यौ चाहत, भाजि पताल गयौ अपहारी।
वह ससि तौ कैसैंहु नहिं आवत, यह ऐसी कछु बुद्धि बिचारी।
बदन देखि बिधु बुधि सकात मन, नैन कंज कुंडल उजियारी।
सुनौ स्याम, तुमकौं ससि डरपत, यहै कहत मैं सरन तुम्हारी।
सूर स्याम बिरुझाने सोए, लिए लगाइ छतिया महतारी ॥ १६६ ॥
॥ ८१४ ॥

राग केदारौ

जसुमति लै पलिका पौढ़ावति।
मेरौ आजु अतिहिं बिरुझानौ, यह कहि-कहि मधुरैं सुर गावति।
पौढ़ि गई हरुएँ करि आपुन, अंग मोरि तब हरि जँभुआने।
कर सौं ठोंकि सुतहिं दुलरावति, चटपटाइ बैठे अतुराने।
पौढ़ौ लाल, कथा इक कहिहौं, अति मीठी, स्रवननि कौं प्यारी।
यह सुनि सूर स्याम मन हरषे, पौढ़ि गए हँसि देत हुँकारी ॥१६७॥
॥८१५॥

राग केदारौ

सुनि सुत, एक कथा कहौं प्यारी।
कमल-नैन मन आनँद उपज्यौ, चतुर सिरोमनि देत हुँकारी।
दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी, ताकैं प्रगट भए सुत चारी।
तिनमैं मुख्य राम जो कहियत, जनक-सुता ताकी बर नारी।
तात-बचन लगि राज तज्यौ तिन, अनुज, घरनि सँग गए बनचारी।
धावत कनक-मृगा के पाछैं, राजिव लोचन परम उदारी।
रावन हरन सिया कौ कीन्हौ, सुनि नँद-नंदन नींद निवारी।
चाप-चाप करि उठे सूर प्रभु, लछिमन देहु, जननि भ्रम भारी।
॥१६८॥८१६॥

राग बिहागरौ

नंद-नँदन, इक सुनौ कहानी।
पहिली कथा पुरतन सुनी हरि जननि-पास मुख बानी।
रामचंद्र दसरथ-सुत, ताकी जनक-सुता गृह-रानी।
कहँ तात के, पंचबटी बन, छाँड़ि चले रजधानी।
तहाँ बसत सीता हरि लीन्ही, रजनीचर अभिमानी।
लछिमन, धनुष देहु, कहि उठे हरि, जसुमति सूर डरानी ॥१६६॥
॥८१७॥

राग केदारौ

जसुमति मन-मन यहै बिचारति।
झझकि उठ्यौ सोवत हरि अबहीं, कछु पढ़ि-पढ़ि तन-दोष निवारति।
खेलत मैं कोउ दीठि लगाई, लै-लै राई-लौन उतारति।
साँझहिं तैं अतिहीं बिरुझानौ, चंदहिं देखि करी अति आरति।
वार-बार कुलदेव मनावति, दोउ कर जोरि सिरहिं लै धारति।
सूरदास जसुमति नँदरानी, निरखि बदन, त्रयताप बिसारति।
॥२००॥८१८॥

राग ललित

नाहिंनै जगाइ सकति, सुनि सुबात सजनी।
अपनैं जान अजहुँ कान्ह मानत हैं रजनी।
जब-जब हौं निकट जाति, रहति लागी लोभा।
तन की गति बिसरि जाति, निरखत मुख-सोभा।
बचननि कौं बहुत करति, सोचत जिय ठाढ़ी।
नैननि न बिचारि परत देखत रुचि बाढ़ी।
इहिं बिधि बदनारबिंद, जसुमति जिय भावै।
सूरदास सुख की रासि, कापै कहि आवै ॥२०१॥८१६॥

राग बिलावल

जागिए, ब्रजराज कुँवर, कमल-कुसुम फूले।
कुमुद-बृंद सँकुचित भए, भृंग लता भूले।
तमचुर खग-रोर सुनहु, बोलत बनराई।
राँभति गो खरिकनि मैं, बछरा हित धाई।

बिधु मलीन रवि प्रकास गावत नर नारी।
सूर स्याम प्रात उठौ, अंबुज - कर - धारी ।।२०२।।
।।८२०।।

राग रामकली

प्रात समय उठि, सोवत सुत कौ बदन उघार्‌यौ नंद।
रहि न सके अतिसय अकुलाने, बिरह निसा कैं द्वंद।
स्वच्छ सेज मैं तैं मुख निकसत, गयौ तिमिर मिटि मंद।
मनु पय-निधि सुर मथत फेन फटि, दियौ दिखाई चंद।
धाए चतुर चकोर सूर सुनि, सब सखि-सखा सुछंद।
रही न सुधि सरीर अरु मन की, पीवत किरनि अमंद ।।८२१।।
।।८२१।।

राग बिलावल

भोर भएँ निरखत हरि कौ मुख, प्रमुदित जसुमति, हरषित नंद।
दिनकर-किरन कमल ज्यौं बिकसत, निरखत उर उपजत आनंद।
बदन उघारि जगावति जननी, जागहु बलि गई आनँद-कंद।
मनहुँ मथत सुर सिंधु, फेन फटि दयौ दिखाई पूरन चंद।
जाकैं ईस - सेष - ब्रह्मादिक गावत नेति-नेति स्रुति छंद।
सोइ गोपाल ब्रज मैं सुनि सूरज, प्रगटे पूरन परमानंद ।।२०४।।
।।८२२।।

राग ललित

जागिए गोपाल लाल, आनँद-निधि नंद-बाल,
जसुमति कहै बार-बार, भोर भयौ प्यारे।
नैन कमल-दल बिसाल, प्रति-बापिका-मराल,
मदन ललित बदन उपर कोटि वारि डारे।
उगत अरुन बिगत सर्वरी, ससाँक किरन-हीन,
दीपक सु मलीन, छीन-दुति समूह तारे।
मनौ ज्ञान-घन-प्रकास, बीते सब भव-बिलास,
आस-त्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे।
बोलत खग-निकर मुखर, मधुर होइ प्रतीति सुनौ,
परम प्रान - जीवन - धन मेरे तुम बारे।

मनौ बेद बंदीजन सूत - बृंद मागध- गन,
बिरद बदत जै जै जै जैति कैटभारे।
बिकसत कमलावली, चले प्रपुंज - चंचरीक,
गुंजत कलकोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।
मानौ बैराग पाइ, सकल सोक-गृह बिहाइ,
प्रेम-मत्त फिरत भृत्य, गुनत गुन तिहारे।
सुनत बचन प्रिय रसाल, जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल - जाल, दुख - कदंब टारे।
त्यागे भ्रम-फंद-द्वंद निरखि कै मुखारबिंद,
सूरदास अति अनंद, मेटे मद भारे ॥२०५॥
॥८२३॥

राग ललित

प्रात भयौ जागौ गोपाल।
नवल सुंदरी आईं, बोलत तुमहिँ सबै ब्रजबाल।
प्रगट्यौ भानु, मंद भयौ उड़पति फूले तरुन तमाल।
दरसन कौँ ठाढ़ी ब्रजबनिता, गूँथि कुसुम बनमाल।
मुखहिँ धोइ सुंदर बलिहारी, करहु कलेऊ लाल।
सूरदास प्रभु आनँद के निधि, अंबुज-नैन बिसाल ॥२०६॥
॥८२४॥

राग ललित

जागौ, जागौ हो गोपाल।
नाहिँन इतौ सोइयत सुनि सुत, प्रात परम सुचि काल।
फिरि-फिर जात निरखि मुख छिन-छिन, सब गोपनि के बाल।
बिन बिकसे कल-कमल - कोष तैं मनु मधुपनि की माल।
जो तुम मोहिँ न पत्याहु सूर प्रभु, सुंदर स्याम तमाल।
तौ तुमहीँ देखौ आपुन तजि निद्रा नैन बिसाल ॥२०७॥
॥८२५॥

राग भैरव

उठौ नँदलाल भयौ भिनुसार, जगावति नंद की रानी।
झारी कैँ जल बदन पखारौं, सुख करि सारंगपानी।

माखन-रोटी अरु मधु - मेवा, जो भावै लेउ आनी।
सूर स्याम मुख निरखि जसोदा, मनहीँ मन जु सिहानी ॥२०८॥
॥८२६॥

राग बिलावल

तुम जागौ मेरे लाड़िले, गोकुल-सुखदाई।
कहति जननि आनंद सौँ, उठौ कुँवर कन्हाई।
तुमकौँ माखन-दूध-दधि, मिस्री हौँ ल्याई।
उठि कै भोजन कीजिऐ, पकवान मिठाई।
सखा द्वार परभात सौँ, सब टेर लगाई।
बन कौँ चलिऐ साँवरे, दयौ तरनि दिखाई।
सुनत बचन अति मोद सौँ, जागे जदुराई।
भोजन करि बन कौँ चले, सूरज बलि जाई ॥२०९॥८२७॥

राग बिलावल

निरखि मुखारबिंद की सोभा, कहि, काकै मन धीरज होइ ?
मुनि-मन हरत जुवति जन केतिक, रतिपति-मान जात सब खोइ।
ईषद हास दंत-दुति बिगसति, मानिक-मोती धरे जनु पोइ।
नागर-नवल कुँवर बर सुंदर, मारग जात लेत मन गोइ।
सूरदास प्रभु मोहनि-मूरति, ब्रजबासी मोहे सब लोइ ॥२१०॥
॥८२८॥

कलेवा वर्णन *राग भैरव*

उठिऐ स्याम, कलेऊ कीजै। मनमोहन-मुख निरखत जीजै।
खारिक, दाख, खोपरा, खीरा। केरा, आम, ऊख-रस, सीरा।
श्रीफल मधुर, चिरौँजी आनी। सफरी चिउरा, अरुन खुबानी।
घेवर-फेनी और सुहारी। खोवा सहित खाहु बलिहारी।
रचि पिराक लाडू दधि आनौँ। तुमकौँ भावत पुरी सँधानौँ।
तब तमोल रचि तुमहिँ खवावौँ। सूरदास पनवारौ पावौँ ॥२११॥
॥८२९॥

राग बिलावल

कमल-नैन हरि करौ कलेवा।
माखन-रोटी, सद्य जम्यौ दधि, भाँति-भाँति के मेवा।

खारिक, दाख, चिरौंजी, किसमिस, उज्वल गरी बदाम।
सफरी, सेव, छुहारे, पिस्ता, जे तरबूज़ा नाम।
अरु मेवा बहु भाँति-भाँति हैं षटरस के मिष्टान्न।
सूरदास प्रभु करत कलेवा, रीझे स्याम सुजान॥२१२॥
॥८३२॥

क्रीड़न *राग रामकली*

खेलत स्याम ग्वालनि संग।
सुबल हलधर अरु श्रीदामा, करत नाना रंग।
हाथ तारी देत भाजत, सबै करि करि होड़।
बरजै हलधर, स्याम, तुम जनि चोट लागै गोड़।
तब कह्यो मैं दौरि जानत, बहुत बल मो गात।
मेरी जोरी है श्रीदामा, हाथ मारे जात।
उठे बोलि तबै श्रीदामा, चाहु तारी मारि।
आगैं हरि पाछैं श्रीदामा, धर्‌यो स्याम हँकारि।
जानिकै मैं रह्यौ ठाढ़ौ, छुवत कहा जु मोहिं!
सूर हरि खीझत सखा सौं, मनहिं कीन्हौ कोह॥२१३॥
॥८१३॥

राग गौरी

सखा कहत हैं स्याम खिसाने।
आपुहिं आपु बलकि भए ठाढ़े अब तुम कहा रिसाने?
बीचहिं बोलि उठे हलधर तब याके माइ न बाप।
हारि-जीत कछु नैंकु न समुझत, लरिकनि लावत पाप।
आपुन हारि सखनि सौं झगरत यह कहि दियौ पठाइ।
सूर स्याम उठि चले रोइ कै, जननी पूछति धाइ॥२१४॥
॥८३२॥

राग गौरी

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ?
कहा करौं इहि रिस के मारैं खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरौ तात।

गोरे नंद, जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत सबै मुसुकात।
तू मोहीँ कौँ मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की ये बातैँ, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहिँ गोधन की सौँ, हौँ माता तू पूत ॥२१५॥
॥८३३॥

राग नट

मोहन, मानि मनायौ मेरौ।
हौँ बलिहारी नंद-नँदन की, नैँकु इतै हँसि हेरौ।
करौ कहि-कहि तोहिँ खिझावत, बरजत खरौ अनेरौ।
इंद्रनील मनि तैँ तन सुन्दर, कहा कहै बल चेरौ।
न्यारौ जूथ हाँकि ले अपनौ न्यारी गाइ निबेरौ।
मेरौ सुत सरदार रुबनि कौ, बहुते कान्ह बड़ेरौ।
बन मैँ जाइ करौ कौतूहल, यह अपनौ है खेरौ।
सूरदास द्वारैँ गावत है, बिमल-बिमल जस तेरौ ॥२१६॥
॥८३४॥

राग गौरी

खेलन अब मेरी जाइ बलैया।
जबहिँ मोहिँ देखत लरिकनि सँग तबहिँ खिझत बल भैया।
मोसौँ कहत तात बसुदेव कौ, देवकि तेरी मैया।
मोल लियौ कछु दै करि तिनकौँ, करि-करि जतन बढ़ैया।
अब बाबा कहि कहत नंद सौँ, जसुमति सौँ कहै मैया।
ऐसैँ कहि सब मोहिँ खिझावत, तब उठि चल्यौ खिसैया।
पाछैँ नंद सुनत हे ठाढ़े, हँसत हँसत उर लैया।
सूर नंद बलरामहिँ धिरयौ, तब मन हरष कन्हैया ॥२१७॥
॥८३५॥

राग रामकली

खेलन चलौ बाल गोविंद।
सखा प्रिय द्वारैँ बुलावत, घोष-बालक-बृंद।

तृषित हैं सब दरस - कारन, चतुर चातक दास।
बरषि छबि नव बारिधर तन, हरहु लोचन-प्यास।
बिनय बचननि सुनि कृपानिधि, चले मनहर चाल।
ललित लघु लघु चरन-कर, उर-बाहु-नैन बिसाल।
अजिर पद-प्रतिबिंब राजत, चलत उपमा-पुंज।
प्रति चरन मनु हेम बसुधा, देति आसन कंज।
सूर प्रभु की निरखि सोभा रहे सुर अवलोकि।
सरद चंद चकोर मानौ, रहे थकित बिलोकि ॥२१८॥
॥८३६॥

राग धनाश्री

खेलन कौं हरि दूरि गयौ री।
संग-संग धावत डोलत हैं, कह धौं बहुत अबेर भयौ री।
पलक ओट भावत नहिं मोकौं, कहा कहौं तोहिं बात!
नंदहिं तात-तात कहि बोलत, मोहिं कहत है मात।
इतनी कहत स्याम-घन आए, ग्वाल सखा सब चीन्हे।
दौरि जाइ उर लाइ सूर प्रभु, हरषि जसोदा लीन्हे ॥२१९॥
॥८३७॥

राग बिहागरौ

खेलन दूरि जात कत कान्हा?
आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौ, तुम नहिं जानत नान्हा।
इक लरिका अबहीं भजि आयौ, रोवत देख्यौ ताहि।
कान तोरि वह लेत सबनि के, लरिका जानत जाहि।
चलौ न, बेगि सबारैं जैयै, भाजि आपनैं धाम।
सूर स्याम यह बात सुनतहीं बोलि लिए बलराम ॥२२०॥
॥८३८॥

राग जैतश्री

दूरि खेलन जनि जाहु लला मेरे, बन मैं आए हाऊ!
तब हँसि बोले कान्हर, मैया कौन पठाए हाऊ?
अब डरपत सुनि-सुनि ये बातैं, कहत हँसत बलदाऊ।
सप्त रसातल सेषासन रहे, तब की सुरति भुलाऊ।

चारि बेद ले गयौ संखासुर, जल मैं रह्यौ लुकाऊ।
मीन रूप धरि कै जब मार्यौ, तबहिं रहे कहँ हाऊ?
मथि समुद्र सुर असुरनि कैं हित मंदर जलधि धसाऊ।
कमठ रूप धरि धर्यौ पीठि पर, तहाँ न देखे हाऊ!
जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरबाऊ।
धरि बाराह रूप सो मार्यौ लै छिति दंत-अगाऊ।
बिकट रूप अवतार धर्यौ जब, सो प्रहलाद बचाऊ।
हिरनकसिप बपु नखनि बिदार्यौ, तहाँ न देखे हाऊ!
बामन रूप धर्यौ बलि छलि कै, तीन परग बसुधाऊ।
स्रम जल ब्रह्म-कमंडल राख्यौ, दरसि चरन परसाऊ।
मार्यौ मुनि बिनहीं अपराधहिं, कामधेनु लै आऊ।
इकइस बार निछत्र करी छिति, तहाँ न देखे हाऊ।
राम-रूप रावन जब मार्यौ, दस-सिर बीस-भुजाऊ।
लंक जराइ छार जब कीनी, तहाँ न देखे हाऊ।
भक्त-हेतु अवतार धरे, सब असुरनि मारि बहाऊ।
सूरदास प्रभु की यह लीला, निगम नेति नित गाऊ ॥२२१॥
॥८३६॥

राग रामकली

जसुमति कान्हहिं यहै सिखावति।
सुनहु स्याम, अब बड़े भये तुम, कहि स्तन-पान छुड़ावति।
ब्रज-लरिका तोहिं पीवत देखत, हँसत, लाज नहिं आवति।
जैहैं बिगर दाँत ये अच्छे, तातैं कहि समुझावति।
अजहूँ छाँड़ि कह्यौ करि मेरौ, ऐसी बात न भावति।
सूर स्याम यह सुनि मुसुक्याने, अंचल मुखहिं लुकावत ॥२२२॥
॥८४०॥

राग सारंग

नंद बुलावत हैं गोपाल।
आवहु बेगि बलैया लेउँ हौं, सुंदर नैन बिसाल।
परस्यौ थार धर्यौ मग जोवत, बोलति बचन-रसाल।
मात सिरात तात दुख पावत, बेगि चलौ मेरे लाल।

हौं बारी नान्हे पाइनि की दौरि दिखावहु चाल।
छाँड़ि देहु तुम लाल अटपटी, यह गति-मंद-मराल।
सो राजा जो अगमन पहुँचै, सूर सु भवन उताल।
जौ जैहैं बलदेव पहिलैं ही, तौ हँसिहैं सब ग्वाल ॥२२३॥
॥८४१॥

राग सारंग

जेंवत कान्ह नंद इकठौरे।
कछुक खात लपटात दोउ कर बालकेलि अति भोरे।
बरा कौर मेलत मुख भीतर, मिरिच दसन टकटौरे।
तीछन लगी नैन भरि आए, रोवत बाहर दौरे।
फूँकति बदन रोहिनी ठाढ़ी, लिए लगाइ अँकोरे।
सूर स्याम कौं मधुर कौर दै, कीन्हे तात निहोरे ॥२२४॥
॥८४२॥

राग नट

हरि के बाल-चरित अनूप।
निरखि रहीं ब्रजनारि इकटक अंग-अंग-प्रति रूप।
बिथुरि अलकैं रहीं मुख पर बिनहिं बपन सुभाइ।
देखि कंजनि चंद के बस मधुप करत सहाइ।
सजल लोचन चारु नासा परम रुचिर बनाइ।
जुगल खंजन करत अबिनति, बीच कियौ बनराइ।
अरुन अधरनि दसन झाईं कहौं उपमा थोरि।
नील पुट बीच मनौ मोती धरे बंदन बोरि।
सुभग बाल मुकुंद की छबि बरनि कापै जाइ।
भृगुटि पर मसि-बिंदु सोहै सकै सूर न गाइ ॥२२५॥
॥८४३॥

राग कान्हरौ

साँझ भई घर आवहु प्यारे।
दौरत कहा चोट लगिहै कहुँ पुनि खेलिहौ सकारे।
आपुहिं जाइ बाहँ गहि ल्याई, खेह रही लपटाइ।
धूरि झारि तातौ जल ल्याई, तेल परसि अन्हवाइ।

सरस बसन तन पोँछि स्याम कौ, भीतर गई लिवाइ।
सूर स्याम कछु करौ बियारी, पुनि राखौँ पौढ़ाइ ॥२२६॥
॥८४४॥

राग बिहागरौ

कमल नैन हरि करौ बियारी।
लुचुई लपसी, सद्य जलेबी, सोइ जेँवहु जो लगै पियारी।
घेवर, मालपुवा, मोतिलाड़, सधर सजूरी सरस सँवारी।
दूध बरा, उत्तम दधि बाटी, गाल-मसूरी की रुचि न्यारी।
आछौ दूध औटि धौरी कौ, लै आई रोहिनि महतारी।
सूरदास बलराम स्याम दोउ जेँवहु जननि जाइ बलिहारी ॥२२७॥
॥८४५॥

राग बिहागरौ

बल-मोहन दोउ करत बियारी।
प्रेम सहित दोउ सुतनि जिवावतिँ, रोहिनि अरु जसुमति महतारी।
दोउ भैया मिलि खात एक संग, रतन-जटित कंचन की थारी।
आलस सौँ कर कौर उठावत, नैननि नींद झमकि रही भारी।
दोउ माता निरखत आलस मुख, छबि पर तन-मन डारतिँ वारी।
बार-बार जमुहात सूर प्रभु, इहिँ उपमा कबि कहै कहा री ॥२२८॥
॥८४६॥

राग केदारौ

कीजै पान लला रे यह लै आई दूध जसोदा मैया।
कनक-कटोरा भरि लीजै, यह पय पीजै, अति सुखद कन्हैया।
आछैँ औट्यौ मेलि मिठाई, रुचि करि अँचवत क्यौं न नन्हैया।
बहु जतननि ब्रजराज लड़ैते, तुम कारन राख्यौ नलभैया।
फूँकि-फूँकि जननी पय प्यावति, सुख पावति जो उर न समैया।
सूरज स्याम राम पय पीवत दोऊ जननि लेतिँ बलैया ॥२२९॥
॥८४७॥

राग केदारौ

बल-मोहन दोऊ अलसाने।
कछु-कछु खाइ दूध अँचयौ तब जम्हात जननी जाने।

उठहु लाल कहि मुख पखरायौ, तुमकौँ लै पौढ़ाऊँ।
तुम सोवौ मैँ तुम्हैँ सुवाऊँ कछु मधुरैँ सुर गाऊँ।
तुरत जाइ पौढ़े दोउ भैया, सोवत आई निंद।
सूरदास जसुमति सुख पावति पौढ़े बालगोविंद ॥२३०॥
॥८४८॥

राग सूहौ

माखन बाल गोपालहिँ भावै।
भूखे छिन न रहत मन मोहन, ताहि बदौँ जो गहरु लगावै।
आनि मथानी दह्यौ बिलोवौँ, जौ लगि लालन उठन न पावै।
जागत ही उठि रारि करत है, नहिँ मानै जौ इंद्र मनावै।
हौँ यह जानति बानि स्याम की, अँखियाँ मीचे बदन चलावै।
नंद-सुवन की लगौँ बलैया, यह जूठनि कछु सूरज पावै ॥२३१॥
॥८४९॥

राग बिलाबल

भोर भयौ मेरे लाड़िले, जागौ कुँवर कन्हाई।
सखा द्वार ठाढ़े सबै, खेलौ जदुराई।
मोकौँ मुख दिखराइ कै, त्रय-ताप नसावहु।
तुव मुख-चंद चकोर-दृग मधु पान करावहु।
तव हरि मुख-पट दूरि कै, भक्तनि सुखकारी।
हँसत उठे प्रभु सेज तैँ सूरज बलिहारी ॥२३२॥
॥८५०॥

राग बिलावल

भोर भयौ जागे नँदनंदन। संग सखा ठाढ़े जग-बंदन।
सुरभी पय हित बच्छ पियावैँ। पंछी तरु तजि दुहुँ दिसि धावैँ।
अरुन गगन तमचुरनि पुकार्‌यौ। सिथिल धनुष रति-पति गहि डार्‌यौ।
निसि निघटी रवि-रथ रुचि साजी। चंद मलिन चकई रति-राजी।
कुमुदिनि सकुची बारिज फूले। गुंजत फिरत अली-गन भूले।
दरसन देहु मुदित नर नारी। सूरज प्रभु दिन देव मुरारी ॥२३३॥
॥८५१॥

राग नट

खेलत स्याम अपनैं रंग।
नंद-लाल निहारि सोभा, निरखि थकित अनंग।
चरन की छबि देखि डरप्यौ अरुन, गगन छपाइ।
जानु करभा की सबै छबि, निदरि, लई छड़ाइ।
जुगल जंघनि खंभ-रंभा, नाहिँ समसरि ताहि।
कटि निरखि केहरि लजाने, रहे बन-घन चाहि।
हृदय हरि नख अति बिराजत, छबि न बरनी जाइ।
मनौ बालक बारिधर नव, चंद दियौ दिखाइ।
मुक्त-माल बिसाल उर पर, कछु कहौँ उपमाइ।
मनौ तारा-गननि बेष्ठित गगन निसि रह्यौ छाइ।
अधर अरुन, अनूप नासा, निरखि जन-सुखदाइ।
मनौ सुक, फल बिंब कारन, लेन बैठ्यौ आइ।
कुटिल अलक बिना बपन के मनौ अलि-सिसु-जाल।
सूर प्रभु की ललित सोभा, निरखि रहीँ ब्रज-बाल ॥२३४॥
॥८५२॥

राग सारंग

न्हात नंद सुधि करी स्याम की, ल्यावहु बोलि कान्ह बलराम।
खेलत बड़ी बार कहुँ लाई, ब्रज-भीतर, काहू कैँ धाम।
मेरैँ संग आइ दोउ बैठैँ, उन बिनु भोजन कौने काम।
जसुमति सुनत चली अति आतुर, ब्रज-घर-घर टेरति लै नाम।
आजु अबेर भई कहुँ खेलत, बोलि लेहु हरि कौँ कोउ बाम।
ढूँढ़ि फिरि नहिँ पावति हरि कौँ, अति अकुलानी, तावति घाम।
बार-बार पछिताति जसोदा, बासर बीति गए जुग जाम।
सूर स्याम कौँ कहूँ न पावति, देखे बहु बालक के ठाम ॥२३५॥
॥८५३॥

राग सारंग

कोउ माई बोलि लेहु गोपालहिँ।
मैँ अपनै कौ पंथ निहारति, खेलत बेर भई नँदलालहिँ।
टेरत बड़ी बार भई मोकौँ, नहिँ पावति घनस्याम तमालहिँ।
सिध जँवन सिरात, नँद बैठे, ल्यावहु बोलि कान्ह ततकालहिँ।

भोजन करै नंद सँग मिलि कै, भूख लगी ह्वैहै मेरे बालहिँ।
सूर स्याम-मग जोवति जननी, आइ गए सुनि बचन रसालहिँ।
॥२३६॥८५४॥

राग नटनारायन

हरि कौँ टेरति है नँदरानी।
बहुत अबार भई कहँ खेलत, रहे मेरे सारँग पानी ?
सुनतहिँ टेर, दौरि तँह आए, कब के निकसे लाल।
जँवत नहीँ नंद तुम्हरे बिनु, बेगि चलौ, गोपाल।
स्यामहिँ ल्याई महरि जसोदा, तुरतहिँ पाइँ पखारे।
सूरदास प्रभु संग नंद कैँ बैठे हैँ दोउ बारे ॥२३७॥
॥८५५॥

राग सारंग

जँवत स्याम नंद की कनिया।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत, छबि निरखति नँद - रनियाँ।
बरी, बरा, बेसन, बहु भाँतिनि, ब्यंजन बिबिध, अगनिया
डारत, खात, लेत अपनैँ कर, रुचि मानत दधि दोनियाँ।
मिस्री, दधि, माखन मिस्रित करि, मुख नावत छबि धनिया।
आपुन खात, नंद - मुख नावत, सो छबि कहत न बनिया।
जो रस नंद-जसोदा बिलसत, सो नहिँ तिहूँ भुवनिया।
भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ, माँगत सूर जुठनिया ॥२३८॥
॥८५६॥

राग कान्हरौ

बोलि लेहु हलधर भैया कौँ।
मेरे आगैँ खेल करौ कछु, सुख दीजै मैया कौँ।
मैँ मूँदौँ हरि आँखि तुम्हारी, बालक रहैँ लुकाई।
हरषि स्याम सब सखा बुलाए खेलन आँखि मुँदाई।
हलधर कह्यौ आँखि को मूँदै, हरि कह्यौ मातु जसोदा।
सूर स्याम लिए जननि खिलावति, हरष सहित मन मोदा ॥२३९॥
॥८५७॥

राग गौरी

हरि तब अपनी आँखि मुँदाई।
सखा सहित बलराम छपाने, जहँ-तहँ गए भगाई।
कान लागि कह्यौ जननि जसोदा, वा घर मैं बलराम।
बलदाऊ कौं आवन दैहैं, श्रीदामा सैं काम।
दौरि-दौरि बालक सब आवत, छुवत महरि कौ गात।
सब आए रहे सुबल श्रीदामा, हारे अब कैं तात।
सोर पारि हरि सुबलहिं धाए, गह्यौ श्रीदामा जाइ।
दै-दै सौंहैं नंद बबा की, जननी पै लै आइ।
हँसि-हँसि तारी देत सखा सब, भए श्रीदामा चोर।
सूरदास हँसि कहत जसोदा, जीत्यौ है सुत मोर॥२४०॥
॥८५८॥

राग केदारौ

चलौ लाल कछु करौ बियारी।
रुचि नाहीं काहु पर मेरी, तू कहि भोजन करैं कहा री?
बेसन मिलै सरस मैदा सैं, अति कोमल पूरी है भारी।
जे वहु स्याम मोहि सुख दीजै, तातैं करी तुम्हैं ये प्यारी।
निबुआ, सूरन, आम अथानो और करैंदनि की रुचि न्यारी।
बार-बार यौं कहति जसोदा, कहि ल्यावै रोहिनि महतारी।
जननी सुनत तुरत लै आई, तनक-तनक धरि कंचन-थारी।
सूर स्याम कछु-कछु लै खायौ, अरु अँचयौ जल बदन पखारी॥२४१॥
॥८५६॥

राग केदारौ

पौढ़िए मैं रचि सेज बिछाई।
अति उज्वल है सेज तुम्हारी, सोवत मैं सुखदाई।
खेलत तुम निसि अधिक गई सुत, नैननि नींद झँपाई।
बदन जँभात, अंग ऐंड़ावत, जननि पलोटति पाई।
मधुरैं सुर गावत केदारौ, सुनत स्याम चित लाई।
सूरदास प्रभु नंद-सुवन कौं नींद गई तब आई॥२४२॥
॥८६०॥

राग सारंग

खेलन जाहु बाल सब टेरत।
यह सुनि कान्ह भए अति आतुर, द्वारैं तन फिरि हेरत।
बार-बार हरि मातहिँ बूझत, कहि चौगान कहाँ है।
दधि-मथनी के पाछैं देखौ, लै मैं धर्‍यौ तहाँ है।
लै चौगान-बटा अपनैं कर, प्रभु आए घर बाहर।
सूर स्याम पूछत सब ग्वालिनि, खेलौगे किहिं ठाहर ॥२४३॥
॥८६१॥

राग सारंग

खेलत बनै घोष निकास।
सुनहु स्याम, चतुर सिरोमनि, इहाँ है घर पास।
कान्ह हलधर बीर दोऊ, भुजा बल अति जोर।
सुबल, श्रीदामा, सुदामा वै भए इक ओर।
और सखा बँटाइ लीन्हें, गोप-बालक-बृंद।
चले ब्रज की खोरि खेलत, अति उमँगि नँद नंद।
बटा धरनी डारि दीनौ, लै चले ढरकाइ।
आपु अपनी घात निरखत, खेल जम्यौ बनाइ।
सखा जीतत स्याम जाने, सब करी कछु पेल।
सूरदास कहत सुदामा, कौन ऐसौ खेल ॥२४४॥
॥८६२॥

राग सारंग

खेलत मैं को काकौ गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीं कत करत रिसैया।
जाति-पाँति हमतैं बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातैं जातैं अधिक तुम्हारैं गैयाँ!
रुहठि करै तासौं को खेलै, रहे बैठि जहँ-तहँ सब ग्वैयाँ।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाउँ दियौ करि नंद-दुहैयाँ ॥२४५॥
॥८६३॥

राग कान्हरौ

आवहु, कान्ह साँझ की बेरियाँ।
गाइनि माँझ भए हौ ठाढ़े, कहति जननि, यह बड़ी कुबेरिया।

लरिकाई कहुँ नैंकु न छाँड़त, सोइ रहौ सुथरी सेजरिया।
आए हरि यह बात सुनतहीँ, धाइ लए जसुमति महतरिया।
लै पौढ़ी आँगन हीँ सुत कौँ, छिटकि रही आछो उजियरिया।
सूर स्याम कछु कहत-कहत ही बस करि लीन्हे आइ निँदरिया ॥२४६॥
॥८६४॥

राग कान्हरौ

आँगन मैँ हरि सोइ गए री।
दोउ जननी मिलि कै, हरुएँ करि, सेज सहित तब भवन लए री।
नैंकु नहीँ घर मैँ बैठत हैँ, खेलहिँ के अब रंग रए री।
इहिँ बिधि स्याम कबहुँ नहिँ सोए बहुत नीँद के बसहिँ भए री।
कहति रोहिनी सोवन देहु न, खेलत दौरत हारि गए री।
सूरदास प्रभु कौ मुख निरखत हरषत जिय नित नेह नए री ॥२४७॥
॥८६५॥

पाँड़े-आगमन *राग धनाश्री*

ब्रज घर-घर बूझत नँद-राउर पुत्र भयौ, सुनि कै, उठि धायौ।
पहुँच्यो आइ नंद के द्वारैँ, जसुमति देखि अनंद बढ़ायौ।
पाँइ धोइ भीतर बैठाय्यौ, भोजन कौँ निज भवन लिपायौ।
जो भावै सो भोजन कीजै, बिप्र मनहिँ अति हर्ष बढ़ायौ।
बड़ी बैस बिधि भयौ दाहिनौ, धनि जसुमति ऐसौ सुत जायौ।
धेनु दुहाइ, दूध लै आई, पाँड़े रुचि करि खीर चढ़ायौ।
घृत, मिष्टान्न,खीर मिस्रित करि, परुसि कृष्न-हित ध्यान लगायौ।
नैन उघारि बिप्र जौ देखै, खात कन्हैया देखन पायौ।
देखौ आइ जसोदा, सुत-कृति, सिद्ध पाक इहिँ आइ जुठायौ।
महरि बिनय करि दुहुँ कर जोरे, घृत-मधु-पय फिर बहुत मँगायौ।
सूर स्याम कत करत अचगरी, बार-बार ब्रम्हनहिँ खिझायौ।
॥२४८॥८६६॥

राग रामकली

पाँड़े नहिँ भोग लगावन पावै।
करि-करि पाक जबै अर्पत हैं, तबहीँ तब छ्वै आवै।

इच्छा करि मैं बाम्हन न्यौत्यौ, ताकौं स्याम खिझावै।
वह अपने ठाकुरहिं जिंवावै, तू ऐसैं उठि धावै।
जननी दोष देति कत मोकौं, बहु विधान करि ध्यावै।
नैन मूँदि, कर जोरि, नाम लै बारहिं बार बुलावै।
कहि, अंतर क्यौं होइ भक्त सौं, जो मेरैं मन भावै ?
सूरदास बलि-बलि बिलास पर, जन्म-जन्म जस गावै ॥२४६॥
॥८६७॥

राग बिलावल

सफल जन्म, प्रभु आजु भयौ।
धनि गोकुल, धनि नंद-जसोदा, जाकैं हरि अवतार लयौ।
प्रगट भयौ अब पुन्य-सुकृत-फल, दीन-बंधु मोहिं दरस दयौ।
बारंबार नंद कैं आँगन, लोटत द्विज आनंद मयौ।
मैं अपराध कियौ बिनु जानैं, को जानै किहिं भेष जयौ।
सूरदास प्रभु भक्त-हेत-बस जसुमति-गृह आनंद लयौ ॥२५०॥
॥८६८॥

राग धनाश्री

अहो नाथ जेइ-जेइ सरन आए तेइ-तेइ भए पावन।
महा पतित-कुल-तारन, एक नाम अघ जारन, दारुन दुख बिसराबन।
मोतैं को हो अनाथ, दरसन तैं भयौ सनाथ, देखत नैन जुड़ावन।
भक्त-हेत देह धरन, पुहुमी कौ भार-हरन, जनम-जनम मुक्तावन।
दीनबंधु, असरन के सरन, सुखनि जसुमति के कारन देह धरावन।
हित कै चित की मानत सबके जिय की जानत सूरदास मन भावन।
॥२५१॥८६९॥

राग बिलावल

मया करिऐ कृपाल, प्रतिपाल संसार उदधि जंजाल तैं परौं पार।
काहू के ब्रह्मा, काहू के महेस, प्रभु मेरे तौ तुमहीं अधार।
दीन के दयाल हरि, कृपा मोकौं करि, यह कहि-कहि लोटत बार-बार।
सूर स्याम अँतरजामी स्वामी जगत के कहा कहौं करौ निरवार।
॥२५२॥८७०॥

माटी-भक्षण-प्रसंग *राग बिलावल*

खेलत स्याम पौरि कैँ बाहर, ब्रज लरिका सँग जोरी।
तैसेई आपु तैसेई लरिका, अज्ञ सबनि मति थोरी।
गावत, हाँक देत, किलकारत, दुरि देखति नँदरानी।
अति पुलकित गदगद मुख बानी मन-मन महरि सिहानी।
माटी लै मुख मेलि दई हरि, तबहिँ जसोदा जानी।
साँटी लिए दौरि भुज पकर्‌यौ, स्याम लँगरई ठानी।
लरिकनि कौँ तुम सब दिन झुठवत, मोसौँ कहा कहौगे।
मैया मैँ माटी नहिँ खाई, मुख देखैँ निबहौगे।
बदन उघारि दिखायौ त्रिभुवन, बनघन-नदी-सुमेर।
नभ-ससि-रवि मुख भीतर हीँ सब सागर-धरनी-फेर।
यह देखत जननी मन व्याकुल, बालक-मुख कहा आहिँ।
नैन उघारि, बदन हरि मूँद्यौ, माता-मन अवगाहि।
झूठैँ लोग लगावत मोकौँ, माटी मोहिँ न सुहावै।
सूरदास तब कहति जसोदा, ब्रज-लोगनि यह भावै ॥२५३॥
॥८७१॥

राग धनाश्री

मोहन काहैँ न उगिलौ माटी।
बार-बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी।
महतारी सौँ मानत नाहीँ, कपट-चतुरई ठाटी।
बदन उघारि दिखायौ अपनौ, नाटक की परिपाटी।
बड़ी बार भई-लोचन उघरे, भरम-जवनिका फाटी।
सूर निरखि नँदरानि भ्रमित भई, कहति न मीठी-खाटी ॥२५४॥
॥८७२॥

राग रामकली

मो देखत जसुमति तेरैँ ढोटा, अबहीँ माटी खाई।
यह सुनि कै रिस करि उठि धाई, बाहँ पकरि लै आई।
इक कर सौँ भुज गहि गाढ़ैँ करि, इक कर लीन्ही साँटी।
मारति हौँ तोहिँ अबहिँ कन्हैया बेगि न उगिलै माटी।
ब्रज-लरिका सब तेरे आगैँ, झूठी कहत बनाइ।
मेरे कहैँ नहीँ तू मानति, दिखरावौँ मुख बाइ।

अखिल ब्रह्मंड-खंड की महिमा, दिखराई मुख माँहि।
सिंधु-सुमेर-नदी-बन-पर्वत चकित भई मन चाहि।
कर तैं साँटि गिरत नहिँ जानी, भुजा छाँड़ि अकुलानी।
सूर कहै जसुमति मुख मूँदौ, बलि गई साँरगपानी ॥२५५॥
॥८७३॥

राग सारंग

नंदहिँ कहति जसोदा रानी।
माटी कैं मिस मुख दिखरायौ, तिहूँ लोक रजधानी।
स्वर्ग, पताल, धरनि, बन, पर्वत, बदन माँझ रहे आनी।
नदी सुमेर देखि चक्रित भई, माकी अकथ कहानी।
चितै रहे तब नंद जुवति-मुख मन-मन करत बिनानी।
सूरदास तब कहति जसोदा गर्ग कही यह बानी ॥२५६॥
॥८७४॥

राग सोरठ

कहत नंद जसुमति सैाँ बात।
कहा जानिऐ, कह तैं देख्यौ, मेरैं कान्ह रिसात।
पाँच बरष का मेरौ नन्हैया, अचरज तेरी बात।
बिनहीँ काज साँटि लै धावति, ता पाछैं बिललात।
कुसल रहैँ बलराम स्याम दोउ, खेलत-खात-अन्हात।
सूर स्याम कौँ कहा लगावति, बालक कोमल-बात ॥२५७॥
॥८७५॥

राग बिलावल

देखौ री जसुमति बौरानी।
घर-घर हाथ दिवावति डोलति, गोद लिए गोपाल बिनानी।
जानत नाहिँ जगतगुरु माधौ, इहिँ आए आपदा नसानी।
जाकौ नाउँ सक्ति पुनि जाकी, ताकैं देत मंत्र पढ़ि पानी।
अखिल ब्रह्मांड उदर गत जाकैं, जोति जल-थलहिं समानी।
सूर सकल साँची मोहिँ लागति, जो कुछ कही गर्ग मुख बानी ॥२५८॥
॥८७६॥

राग धनाश्री

गोपाल राइ चरननि हौं काटी।
हम अबला रिस बाँचि न जानी, वहुत लाग गई साँटी।
वारौं कर जु कठिन अति, कोमल नयन जरहु जिनि डाँटी।
मधु, मेवा, पकवान छाँड़ि कै, कहँ खात हौ माटी।
सिगरोइ दूध पियो मेरे मोहन, बालहिँ न दैहैाँ बाँटी।
सूरदास नँद लेहु दोहिनी दुहहु लाल की नाटी ॥२५६॥
॥८७७॥

शालिग्राम-प्रसंग *राग रामकली*

करि अस्नान नंद घर आए।
लै जल जमुना कौ झारी भरि, कंज सुमन बहु ल्याए।
पाइँ धोइ मंदिर पग धारे, प्रभु-पूजा जिय दीन्ह।
अस्थल लीपि, पात्र सब धोए, काज देव के कीन्ह।
बैठे नंद करत हरि पूजा, विधिवत औ बहु भाँति।
सूर स्याम खेलत तैं आए, देखत पूजा न्याति ॥२६०॥
॥८७८॥

राग गूजरी

नंद करत पूजा, हरि देखत।
घंट बजाइ देव अन्हवायौ, दल चंदन लै भेटत।
पट अंतर दै भोग लगायौ, आरति करी बनाइ।
कहत कान्ह, बाबा तुम अरप्यौ, देव नहीँ कछु खाइ।
चितै रहे तब नंद महरि-मुख सुनहु कान्ह की बात।
सूर स्याम देवनि कर जोरहु, कुसल रहै जिहिँ गात ॥२६१॥
॥८७६॥

राग धनाश्री

जसुदा देखति है ढिग ठाढ़ी।
बाल दसा अवलोकि स्याम की, प्रेम-मगन चित बाढ़ी।
पूजा करत नंद रहे बैठे, ध्यान समाधि लगाई।
चुपकहिँ आनि कान्ह मुख मेल्यौ, देखौं देव-बड़ाई।

खोजत नंद चकित चहुँ दिसि तैं अचरच सौं कछु भाई।
कहाँ गए मेरे इष्ट देवता को लै गयौ उठाई।
तब जसुमति सुत-मुख दिखरायौ, देखौं बदन कन्हाई।
मुख कत मेलि देवता राख्यौ, घाले सबै नसाई।
बदन पसारि सिला जब दीन्हौ, तीनौ लोक दिखाए।
सूर निरखि मुख नंद चकित भए, कछू बचन नहिं आए ॥२६२॥
॥८८०॥

राग टोड़ी

हँसत गोपाल नंद के आगैं, नंद सरूप न जान्यौ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन लीलाधर, सोई सुत करि मान्यौ
एक समय पूजा के अवसर, नंद समाधि लगाई।
सालिग्राम मेलि मुख भीतर, बैठि रहे अलगाई।
ध्यान बिसर्जन कियो नंद जब, मूरति आगैं नाहीं।
कह्यौ गोपाल देवता कह भयौ, यह बिसमय मन माहीं।
मुख तैं काढ़ि तबै जदुनंदन, दियौ नंद कैं हाथ।
सूरदास स्वामी सुख-सागर खेल रच्यौ ब्रज-नाथ ॥२६३॥
॥८८१॥

राग गौरी

प्रथम माखन-चोरी

मैया री, मोहिं माखन भावै।
जो मेवा पकवान, कहति तू, मोहिं नहीं रुचि आवै।
ब्रज-जुवती इक पाछैं ठाढ़ी, सुनत स्याम की बात।
मन-मन कहति कबहु अपनैं घर, देखौं माखन खात।
बैठैं जाइ मथनियाँ कैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालिनि मन की जानी ॥२६४॥
॥८८२॥

राग गौरी

गए स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर।
देख्यौ द्वार नहीं कोउ, इत-उत चितै, चले तब भीतर।
हरि आवत गोपी जब जान्यौ, आपुन रही छपाइ।
सूनैं सदन मथनियाँ कैं ढिग, बैठि रहे अरगाइ।

माखन भरी कमोरी देखत लै-लै लागे खान।
चितै रहे मनि-खंभ-छाँह तन, तासौं करत सयान।
प्रथम आजु मैं चोरी आयौ, भलौ बन्यौ है संग।
आपु खात प्रतिबिंब खवावत, गिरत कहत, का रंग?
जौ चाहौ सब देउँ कमोरी, अति मीठो कत डारत।
तुमहिँ देति मैं अति सुख पायौ, तुम जिय कहा बिचारत?
सुनि-सुनि बात स्याम के मुख की उमँगि उठी ब्रजनारी।
सूरदास प्रभु निरखि ग्वालि-मुख तब भजि चले मुरारी ॥२६५॥
॥८८३॥

राग गौरी

फूली फिरति ग्वालि मन मैं री।
पूछतिँ सखी परस्पर बातैं, पायौ पर्‍यौ कछू कहुँ तैं री?
पुलकित रोम-रोम, गद-गद, मुख बानी कहत न आवै।
ऐसौ कहा आहि सो सखिरी, हमकौं क्यौं न सुनावै।
तन न्यारौ, जिय एक हमारौ, हम तुम एकै रूप।
सूरदास कहै ग्वालि सखिनि सौं; देख्यौ रूप अनूप ॥२६६॥
॥८८४॥

राग गूजरी

आजु सखी मनि-खंभ-निकट हरि, जहँ गोरस कौं गोरी।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यौं सिसु, प्रगट करै जनि चोरी।
अरध विभाग आजु तैं हम-तुम, भली बनी है जोरी।
माखन खाहु कतहिँ डारत हौ, छाँड़ि देहु मति भोरी।
बाँट न लेहु, सबै चाहत हौ, यहै बात है थोरी।
मीठौ अधिक, परम रुचि लागै, तौ भरि देउँ कमोरी।
प्रेम उमँगि धीरज न रह्यौ, तब प्रगट हँसी मुख मोरी।
सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख, भजे कुंज की खोरी ॥२६७॥
॥८८५॥

राग बिलावल

प्रथम करी हरि माखन-चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज-खोरी।

मन मैं यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ।
गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकैं माखन खाउँ।
बाल-रूप जसुमति मोहिँ जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं, ये मेरे ब्रज-लोग ॥२६८॥
॥८८६॥

राग रामकली

करैं हरि ग्वाल संग बिचार।
चोरि माखन खाहु सब मिलि, करहु बाल-बिहार।
यह सुनत सब सखा हरषे, भली कही कन्हाइ।
हँसि परस्पर देत तारी, सौंह करि नँदराइ।
कहाँ तुम यह बुद्धि पाई, स्याम चतुर सुजान।
सूर प्रभु मिलि ग्वाल-बालक, करत हैं अनुमान ॥२६९॥
॥८८७॥

राग गौरी

सखा सहित गए माखन-चोरी।
देख्यौ स्याम गवाच्छ-पंथ ह्वै, मथति एक दधि भोरी।
हेरि मथानी धरी माट तैं, माखन हो उतरात।
आपुन गई कमोरी माँगन, हरि पाई ह्याँ घात।
पैठे सखनि सहित घर सूनैं, दधि माखन सब खाए।
छूछी छाँड़ि मटुकिया दधि की, हँसि सब बाहिर आए।
आइ गई कर लिए कमोरी, घर तैं निकसे ग्वाल।
माखन कर, दधि मुख लपटानौ, देखि रही नँदलाल।
कहँ आए ब्रज-बालक सँग लै, माखन मुख लपटान्यौ।
खेलत तैं उठि भज्यौ सखा यह, इहिँ घर आइ छपान्यौ।
भुज गहि लियौ कान्ह एक बालक, निकसे ब्रज की खोरि।
सूरदास ठगि रही ग्वालिनी, मन हरि लियौ अँजोरि ॥२७०॥
॥८८८॥

राग गौरी

चकित भई ग्वालिनि-तन हेरौ।
माखन छाँड़ि गई मथि वैसैंहि, तब तैं कियौ अबेरौ।

देखै जाइ मटुकिया रीती, मैं राख्यौ कहुँ हेरि।
चकित भई ग्वालिनि मन अपनैं ढूँढ़ति घर फिरि फेरि।
देखति पुनि-पुनि घर के बासन, मन हरि लियौ गोपाल।
सूरदास रस भरी ग्वालिनी, जानै हरि कौ ख्याल॥२७१॥
॥८८६॥

राग बिलावल

ब्रज घर-घर प्रगटी यह बात।
दधि-माखन चोरी करि लै हरि, ग्वाल-सखा सँग खात।
ब्रज-बनिता यह सुनि मन हरषित, सदन हमारैं आवैं।
माखन खात अचानक पावैं, भुज हरि उरहिं छुवावैं।
मनहीं मन अभिलाष करतिं सब हृदय धरतिं यह ध्यान।
सूरदास प्रभु कौं घर तैं लै, दैहौं माखन खान॥२७२॥
॥८८७॥

राग कान्हरौ

चली ब्रज घर-घरनि यह बात।
नंद-सुत, सँग सखा लीन्हे, चोरि माखन खात।
कोउ कहति, मेरे भवन भीतर, अबहिं पैठे धाइ।
कोउ कहति, मोहिं देखि द्वारैं, उतहिं गए पराइ।
कोउ कहति, किहिं भाँति हरि कौं, देखौं अपनौ धाम।
हेरि माखन देउँ आछौ, खाइ जितनौ स्याम।
कोउ कहति, मैं देखि पाऊँ, भरि धरौं अँकवारि।
कोउ कहति, मैं बाँधि राखौं, को सकै निरवारि!
सूर प्रभु के मिलन कारन, करतिं बुद्धि बिचार।
जोरि कर बिधि कौं मनावति, पुरुष नंद-कुमार॥२७३॥
॥८८८॥

राग सारंग

गोपालहिं माखन खान दै।
सुनि री सखी, मौन ह्वै रहिऐ, बदन दही लपटान दै।
गहि बहियाँ हौं लैकै जैहौं, नैननि तपति बुझान दै।
याकौ जाइ चौगुनौ लैहौं, मोहिं जसुमति लौं जान दै।

तू जानति हरि कछू न जानत, सुनत मनोहर कान दै।
सूर स्याम ग्वालिनि बस कीन्हौ, राखति तन-मन-प्रान दै ॥२७४॥

॥८६२॥

राग कल्यान

ग्वालिनि घर गए जानि साँझ की अँधेरी।
मंदिर मैं गए समाइ, स्यामल तनु लखि न जाइ,
देह गेह रूप, कहौ को सकै निबेरी?
दीपक गृह दान कर्यौ, भुजा चारि प्रगट धर्यौ,
देखत भई चकित ग्वालि इत-उत कौं हेरी।
स्याम हृदय अति बिसाल, माखन-दधि-बिंदु-जाल,
मोह्यौ मन नंदलाल, बाल हौं बझै री।
जुवती अति भई बिहाल, भुज भरि दै अंकमाल,
सूरदास प्रभु कृपाल डार्यौ तन फेरी।
कर सौं कर लै लगाइ, महरि पै गई लिवाइ,
आनँद उर नहिं समाइ, बात है अनेरी।२७५॥

॥८६३॥

राग कल्यान

जसुमति धौं देखि आनि, आगैं ह्वै लै पिछानि,
बहियाँ गहि ल्याई कुँवर और कौ कि तेरौ?
अब लौं मैं करी कानि सही, दूध-दही-हानि,
अजहूँ जिय जानि मानि, कान्ह है अनेरौ।
दीपक मैं धर्यौ बारि, देखत भुज भए चारि,
हारी हौं धरति करति दिन-दिन कौ झेरौ।
देखियत नहिं भवन माँझ, जैसोइ तन तैसि साँझि,
छल सौं कछु करत फिरत महरि कौ जिठेरौ।
गोरस तन छींटि रही, सोभा नहिं जाति कही,
मानौ जल-जमुन बिंब उड़गन पथ केरौ।
उरहन दिन देउँ काहि, कहँ तू इतौ रिसाइ,
नाहीँ ब्रज-बास, सास, ऐसी बिधि मेरौ
गोपी निरखति सुमार, जसुमति कौ है कुमार,
भूलीं भ्रम रूप मनौ आन कोउ हेरौ।

मन-मन बिहँसत गोपाल, भक्त-पाल, दुष्ट-साल,
जानै को सूरदास चरित कान्ह केरौ ! ।।२७६।।
।।८६४।।

राग गौरी

देखि फिरे हरि ग्वाल दुवारैं ।
तब इक बुद्धि रची अपनैं मन, गए नाँघि पिछवारैं ।
सूनैं भवन कहूँ कोउ नाहीं, मनु याही कौं राज ।
भाँड़े धरत, उघारत, मूँदत दधि माखन कैं काज ।
रैनि जमाइ धर्यौ हो गोरस, पर्यौ स्याम कैं हाथ ।
लै-लै खात अकेले आपुन सखा नहीं कोउ साथ ।
आहट सुनि जुवती घर आई, देख्यौ नंदकुमार ।
सूर स्याम मंदिर अँधियारैं, निरखति बारंबार ।।२७७।।
।।८६५।।

राग गौरी

अँधियारैं घर स्याम रहे दुरि ।
अबहीं मैं देख्यौ नँदनंदन, चरित भयौ सोचति झुरि ।
पुनि-पुनि चकित होति अपनैं जिय, कैसी है यह बात ।
मटुकी कैं ढिग बैठि रहे हरि, करैं आपनी घात ।
सकल जीव जल-थल के स्वामी, चींटी दई उपाइ ।
सूरदास प्रभु देखि ग्वालिनी, भुज पकरे कोउ आइ ।।२७८।।
।।८६६।।

राग गौरी

स्याम कहा चाहत से डोलत ?
पूछे तैं तुम बदन दुरावत, सूधे बोल न बोलत ।
पाए आइ अकेले घर मैं दधि-भाजन मैं हाथ ।
अब तुम्ह काकौ नाउँ लेउगे, नाहिंन कोऊ साथ ।
मैं जान्यौ यह मेरौ घर है, ता धोखै मैं आयौ ।
देखत हौं गोरस मैं चींटी काढ़न कौं कर नायौ ।
सुनि मृदु बचन, निरखि मुख-सोभा, ग्वालिनि मुरि मुसुकानी ।
सूर स्याम तुम हौ अति नागर बात तिहारी जानी ।।२७९।।
।।८६७।।

राग सारंग

जसुदा कहँ लौं कीजै कानि।
दिन-प्रति कैसैं सही परति है, दूध-दही की हानि।
अपने या बालक की करनी, जौ तुम देखौ आनि।
गोरस खाइ, खवावै लरिकनि, भाजत भाजन भानि।
मैं अपने मंदिर के कोनैं, राख्यौ माखन छानि।
सोइ जाइ तिहारैं ढोटा, लीन्हौ है पहिचानि।
बूझि ग्वालि निज गृह मैं आयौ, नैंकु न संका मानि।
सूर स्याम यह उतर बनायौ, चींटी काढ़त पानि ॥२८०॥
॥८९८॥

राग सारंग

माई हौं तकि लागि रही।
जब घर तैं माखन लै निकस्यौ, तब मैं बाहँ गही।
तव हँसि कै मेरौ मुख चितयौ, मीठी बात कही।
रही ठगी, चेटक सौ लाग्यौ, परि गई प्रीति सही।
बैठौ कान्ह, जाउँ बलिहारी, ल्याऊँ और दही।
सूर स्याम पै ग्वालि सयानी सरबस दै निबही ॥२८१॥
॥८९९॥

राग गौरी

आपु गए हरुऐं सूनैं घर।
सखा सबै बाहिर ही छाँड़े, देख्यौ दधि-माखन हरि भीतर।
तुरत मथ्यौ दधि-माखन पायौ, लै-लै खात, धरत अधरनि पर।
सैन देइ सब सखा बुलाए, तिनहिं देत भरि-भरि अपनैं कर।
छिटकि रही दधि-बूँद हृदय पर, इत-उत चितवत करि मन मैं डर।
उठत ओट लै लखत सबनि कौं, पुनि लै खात लेत ग्वालनि बर।
अंतर भई ग्वालि यह देखति मगन भई, अति उर आनँद भरि।
सूर स्याम मुख निरखि थकित भई, कहत न बनै, रही मन दै हरि ॥
॥२८२॥९००॥

राग धनाश्री

गोपाल दुरे हैं माखन खात।
देखि सखी सोभा जु बनी है, स्याम मनोहर गात।

उठि, अवलोकि ओट ठाढ़े ह्वै, जिहिँ बिधि हैँ लखि लेत।
चक्रित नैन चहूँ दिसि चितवत, और सखनि कौँ देत।
सुंदर कर आनन समीप, अति राजत इहिँ आकार।
जलरुह मनौ बैर बिधु सौँ तजि, मिलत लए उपहार।
गिरि-गिरि परत बदन तैँ उर पर हैँ दधि-सुत के बिंदु।
मानहुँ सुभग सुधाकन बरषत प्रियजन आगम इंदु।
बाल-बिनोद बिलोकि सूर प्रभु सिथिल भईँ ब्रजनारि।
फुरै न बचन बरजिबैँ कारन, रहीँ बिचारि-बिचारि ॥२८३॥
॥६०१॥

राग कल्यान

माखन चोराइ बैठ्यो, तौलौँ गोपी आई।
देखे तब बोल्यौ कान्ह उतर यौँ बनाई।
आँखैँ भरि लीनी उराहनौ देन लाग्यौ।
तेरौ री सुवन मेरी मुरली लै भाग्यौ।
दै री मोकौँ ल्याइ बेनु, कहि, कर गहि रोवै।
ग्वालिनी डराति जियहि, सुनै जनि जसोवै।
तू जो कह्यौ ऐसौ बेनु, इहाँ नाहिँ तेरौ।
मुरली मैँ जीबन-प्रान बसत अहै मेरौ।
मेवा मिष्टान्न और बंसी इक दीनी।
लागी तिय चरन औ बलैया झुकि लीनी ॥२८४॥६०२॥

राग सारंग

ग्वालिनि जौ घर देखै आइ।
माखन खाइ चोराइ स्याम सब, आपुन रहे छपाइ।
ठाढ़ी भई मथनियाँ कैँ ढिग, रीती परी कमोरी!
अबहिँ गई, आई इनि पाइनि, लै गयौ को करि चोरी?
भीतर गई, तहाँ हरि पाए, स्याम रहे गहि पाइ।
सूरदास प्रभु ग्वालिनि आगैँ, अपनौ नाम सुनाइ ॥२८५॥
॥६०३॥

राग गौरी

जौ तुम सुनहुँ जसोदा गोरी।
नंद-नँदन मेरे मंदिर मैँ आजु करन गए चोरी।

हौँ भई जाइ अचानक ठाढ़ी, कह्यौ भवन मैँ को री।
रहे छपाइ, सकुचि, रंचक ह्वै, भइ सहज मति भोरी।
मोहिँ भयौ माखन पछितावौ, रीति देखि कमोरी।
जब गहिँ बाहँ कुलाहल कीनी, तब गहि चरन निहोरी।
लागे लैन नैन जल भरि-भरि, तब मैं कानि न तोरी।
सूरदास प्रभु देत दिनहिँ दिन ऐसियै लरिक-सलोरी ॥२८६॥
॥९०४॥

राग सरंग

जान जु पाए हौँ हरि नीकैँ।
चोरि-चोरि दधि माखन मेरौ, निए प्रति गीधि रहे हो छींकैँ।
रोक्यौ भवन-द्वार ब्रज-सुंदरि, नूपुर मूँदि अचानक ही कै।
अब कैसैँ जैयतु अपनैँ बल, भाजन भाँजि, दूध दधि पी कै?
सूरदास प्रभु भलैँ परे फँद, देउँ न जान भावते जी कैँ।
भरि गंडूष, छिरकि दै नैननि, गिरिधर भाजि चले दै कीकै ॥२८७॥
॥९०५॥

राग रामकली

माखन-चोर री मैँ पायौ।
बहुत दिवस मैँ कौरैँ लागी, मेरी घात न आयौ।
नित प्रति रीती देखि कमोरी मोहिँ अति लगत झुँझायौ।
तब मैँ कह्यौ, जानि हौँ पाई कौन चोर है आयौ।
जब कर सौँ कर गह्यौ, कह्यौ तब, मैँ नहिँ माखन खायौ।
बिहँसत उघरि गईँ दतियाँ, लै सूर स्याम उर लायौ ॥१८८॥
॥९०६

राग नट

देखी ग्वाल जमुना जात।
आपु ता घर गए पूछत, कौन है कति बात।
जाइ देखे भवन भीतर, ग्वाल-बालक दोइ।
भीर देखत अति डराने, दुहुँनि दीन्हौ रोइ।
ग्वाल के काँधैँ चढ़े तब, लिए छींके उतारि।
दह्यौ-माखन खात सब मिलि, दूध दीन्हौ डारि।

बच्छ लै सब छोरि दीन्हे, गए बन समुदाइ।
छिरकि लरिकनि मही सौं भरि, ग्वाल दए चलाइ।
देखि आवत सखी घर कौं, सखिनि कह्यौ जु दौरि।
आनि देखे स्याम घर मैं, भई ठाढ़ी पौरि।
प्रेम अंतर, रिस भरे मुख, जुवति बूझति बात।
चितै मुख तन सुधि बिसारी, कियौ उर नख-घात।
अतिहिं रस-बस भई ग्वालिनि, गेह देह बिसारि।
सूर प्रभु भुज गहे ल्याई, महरि पै अनुसारि ॥२८६॥
॥६०७॥

राग गौरी

महरि तुम मानौ मेरी बात।
ढूँढ़ि-ढ़ाँढ़ि गोरस सब घर कौ। हर्‌यौ तुम्हारैं तात।
कैसैं कहति लियौ छींके तैं, ग्वाल कंध दै लात।
घर नहिं पियत दूध धौरी कौ, कैसैं तेरैं खात।
असंभाव बोलन आई है, ढीठ ग्वालिनी प्रात।
ऐसी नाहिं अचगरौ मेरौ कहा बनावति बात।
का मैं कहौं, कहत सकुचति हौं, कहा दिखाऊँ गात!
हैं गुन बड़े सूर के प्रभु के, ह्याँ लरिका ह्वै जात ॥२९०॥६०८॥

राग गौरी

साँवरेहिं बरजति क्यौं जु नहीं।
कहा करौं दिन प्रति की बातैं, नाहिंन परतिं सही।
माखन खात, दूध लै डारत, लेपत देह दही।
ता पाछैं घरहू के लरिकनि, भाजत छिरकि मही।
जो कछु धरहिं दुराइ, दूरि लै जानत ताहि तहीं।
सुनहु महरि, तोरे या सुत सौं, हम पचि हारि रहीं।
चोरि अधिक चतुरई सीखी जाइ न कथा कही।
ता पर सूर बछुरुवनि ढीलत, बन-बन फिरतिं बही॥२९१॥
॥६०९॥

राग कान्हरौ

अब ये झूठहु बोलत लोग।
पाँच बरष अरु कछुक दिननि कौ, कब भयौ चोरी जोग।

इहिँ मिस देखन आवति ग्वालिनि, मुँह फाटे जु गँवारि।
अनदोषे कौँ दोष लगावतिँ, दई देइगौ टारि।
कैसैँ करि याकी भुज पहुँची, कौन बेग ह्याँ आयौ ?
ऊखल ऊपर आनि, पीठि दै, तापर सखा चढ़ायौ।
जौ न पत्याहु चलो सँग जसुमति देखौ नैन निहारि।
सूरदास प्रभु नैँकु न बरजौ, मन मैँ महरि बिचारि ॥२६२॥
॥६१०॥

राग देवगंधार

मेरौ गोपाल तनक सौ, कहा करि जानै दधि की चोरी।
हाद नचावत आवति ग्वारिनि, जीभ करै किन थोरी।
कब सीकैँ चढ़ि माखन खायौ, कब दधि-मटुकी फोरि।
अँगुरी करि कबहूँ नहिँ चाखत, घरहीँ भरी कमोरी।
इतनी सुनत घोष की नारी, रहसि चली मुख मोरी।
सूरदास जसुदा कौ नंदन, जो कछु करै सो थोरी ॥२६३॥
॥६११॥

राग सारंग

कहै जनि ग्वारिनि झूठी बात।
कबहु नहिँ मनमोहन मेरौ, धेनु चरावनि न जात।
बोलत है बतियाँ तुतरौहीँ चलि चरननि न सकात।
कैसैँ करै माखन कौ चौरी, कत चोरी दधि खात।
देहीँ लाइ तिलक केसरि कौ, जोबन-मद इतराति।
सूरज दोष देति गोबिँद कौँ, गुरु लोगनि न लजाति ॥२६४॥
॥६१२॥

राग नटनारायन

मेरे लाड़िले हो तुम जाउ न कहूँ।
तेरेही काजैँ गोपाल, सुनहु लाड़िले लाल, राखे हैँ भाजन भरि सुरस छहूँ।
काहे कैँ पराएँ जाइ, करत इते उपाइ, दुध-दही-घृत अरु माखन तहूँ।
करति कछू न कानि, बकति हैँ कटु बानि, निपट निलज बैन बिलखि सहूँ।

व्रज की ढीठी गुवारि, हाट की बेचनहारि, सकुचैं न देत गारि झगरत हूँ।
कहाँ लगि सहौं रिस, बकत भई हौं कृस, इहिं मिस सूर स्याम-बदन चहूँ ॥
॥२६५॥६१३॥

राग कान्हरौ

इन अँखियनि आगैं तैं मोहन, एकौ पल जनि होहु नियारे।
हौं बलि गई, दरस देखैं बिनु तलफत हैं नैननि के तारे।
औरौ सखा बुलाइ आपने इहिं आँगन खेलौ मेरे बारे।
निरखति रहौं फनिग की मनि ज्यौं, सुंदर बाल-बिनोद तिहारे।
मधु, मेवा, पकवान, मिठाई व्यंजन खाटे, मीठे खारे।
सूर स्याम जोइ-जोइ तुम चाहौ, सोइ-सोइ माँगि लेहु मेरे बारे।
॥२६६॥६१४॥

राग धनाश्री

चोरी करत कान्ह धरि पाए।
निसि-बासर मोहिं बहुत सतायौ अब हरि हाथहिं आए।
माखन-दधि मेरौ सब खायौ, बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तौ घात परे हौ लालन, तुम्हैं भलैं मैं चीन्ही।
दोउ भुज पकरि, कह्यौ कहँ जैहौ, माखन लेउँ मँगाइ।
तेरो सौं मैं नैंकुँ न खायौ, सखा गए सब खाइ।
मुख तन चितै, बिहँसि हरि दीन्हौ, रिस तब गई बुझाइ।
लियौ स्याम उर लाइ ग्वालिनी, सूरदास बलि जाइ ॥२६७॥
॥६१५॥

राग धनाश्री

मथति ग्वालि हरि देखी जाइ।
गए हुते माखन की चोरी, देखत छबि रहे नैन लगाइ।
डोलत तनु सिर-अंचल उघरयौ, बेनी पीठि डुलति इहिं भाइ।
बदन इंदु पय-पान करन कौं, मनहुँ उरग उड़ि लागत धाइ।
निरखि स्याम-अँग-अँग-प्रति-सोभा, भुज भरि धरि, लीन्हौ उर लाइ।
चितै रही जुवती हरि कौ मुख, नैन-सैन दै, चितहिं चुराइ।

तन-मन की गति-मति बिसराई, सुख दीन्हौ कछु माखन खाइ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि तुम्हरी लीला को कहै गाइ ॥२६८॥
॥६१६॥

राग बिलावल

दधि लै मथति ग्वालि गरबीली।
रुनुक-झुनुक कर कंकन बाजै, बाहँ डुलावत ढीली।
भरी गुमान बिलोवति ठाढ़ी, अपनैं रंग रँगीली।
छबि की उपमा कहि न परति है, या छबि की जु छबीली।
अति बिचित्र गति कहि न जाइ अब, पहिरे सारी नीली।
सूरदास प्रभु माखन माँगत नाहिँ न देति हठीली ॥२६६॥
॥६१७॥

राग ललित

देखी हरि मथति ग्वालि दधि ठाढ़ी।
जोबन मदमाती इतराती, बेनि ढुरति कटि लौं छबि बाढ़ी।
दिन थोरी, भोरी, अति गोरी, देखत ही जु स्याम भए चाढ़ी।
करषति है दुहुँ करनि मथानी, सोभा-रासि भुजा सुभ काढ़ी।
इत-उत अंग मुरत झकझोरत, अँगिया बनी कुचनि सौं माढ़ी।
सूरदास प्रभु रीझि थकित भए मनहुँ काम साँचे भरि काढ़ी।
॥३००॥ ॥६१८॥

राग बिलावल

गए स्याम तिहिँ ग्वालिन कैं घर
देखी जाइ मथति दधि ठाढ़ी, आपु लगे खेलन द्वारे पर।
फिरि चितई, हरि दृष्टि गए परि, बोलि लए हरुएँ सूनैं घर।
लिए लगाइ कठिन कुच कैं बिच, गाढ़ैं चाँपि रही अपनैं कर।
उमँगि अंग अँगिया उर दरकी, सुधि बिसरी तन की तिहिँ औसर।
तब भए स्याम बरष द्वादस के, रिझै लई जुवती वा छबि पर।
मन हरि लियौ तनक से ह्वै गए देखि रही सिसु-रूप मनोहर।
माखन लै मुख धरति स्याम कैं सूरज प्रभु रति-पति नागर-बर।
॥३०१॥६१६॥

राग रामकली

देखौ मेरे भाग की सुभ घरी।
नवल रूप, किसोर मूरति, कंठ लै भुज भरी।
जाके चरन-सरोज गंगा, संभु लैं सिर धरी।
जाके चरन-सरोज परसत, सिला सुनियत तरी।
जाके बदन-सरोज निरखत आस सिगरी भरी।
सूर प्रभु के संग बिलसत सकल कारज सरी ॥३०२॥
॥६२०॥

राग बिलावल

ग्वालिनि उरहन कैं मिस आई।
नंद-नँदन तन-मन हरि लीन्हौ, बिनु देखैं छिन रह्यौ न जाइ।
सुनहु महरि अपने सुत के गुन, कहा कहाँ किहि भाँति बनाई।
चोलौ फारि, हार गहि तोर्‌यौ, इन बातनि कहौ कौन बड़ाई।
माखन खाइ, खवायौ ग्वालनि, जो उबर्‌यौ सो दियौ लुढ़ाई।
सुनहु सूर, चोरी सहि लीन्ही, अब कैसैं सहि जाति ढिठाई ॥३०३॥
॥६२१॥

राग सारग

झूठेहिं मोहिं लगावति ग्वारि।
खेलत तैं मोहिं बोलि लियौ इहिं, दोउ भुज भरि दीन्ही अँकवारि।
मेरे कर अपनैं उर धारति, आपुन ही चोलो धरि फारि।
माखन आपुहिं मोहिं खवायौ, मैं धौं कब दीन्हौ है डारि।
कह जानै मेरौ बारौ भोरौ, झुकी महरि दै-दै मुख गारि।
सूर स्याम ग्वालिनि मन मोह्यौ, चितै रही इकटकहिं निहारि ॥३०४॥
॥६२२॥

राग गौरी

कबहिं करन गयौ माखन चोरी।
जानै कहा कटाच्छ तिहारे, कमल नैन मेरौ इतनक सो री।
दै-दै दगा बुलाइ भवन मैं भुज भरि भैंटति उरज-कठोरी।
उर नख चिन्ह दिखावत डोलति, कान्ह चतुर भए तू अति भोरी?

आवति नित-प्रति उरहन कैँ मिस, चितै रहति ज्यौँ चंद चकोरी।
सूर सनेह ग्वालि मन अटक्यौ अंतर प्रीति जाति नहिँ तोरी ॥३०५॥
॥६२३॥

राग गौरी

कहा कहौँ हरि के गुन तोसौँ।
सुनहु महरि अबहिं मेरैँ घर, जे रँग कीन्हे मो सौँ।
मैँ दधि मथति आपनैँ मंदिर, गए तहाँ इहिँ भाँति।
मो सौँ कह्यौ बात सुनु मेरी, मैँ सुनि कै मुसुकाति।
बाहँ पकरि चोली गहि फारी, भरि लीन्ही अँकवारि।
कहत न बनै सकुच की बातैँ, देखौ हृदय उघारि।
माखन खाइ निदरि नीकी बिधि, यह तेरे सुत की घात।
सूरदास प्रभु तेरे आगैँ, सकुचि तनक ह्वै जात ॥३०६॥६२४॥

राग गौड़ मलार

स्याम तन देखि री आपु तन देखिऐ।
भीति जौ होइ तौ चित्र अवरेखिऐ!
कहाँ मेरे कुँवर पाँचही बरष के, रोइ अजहूँ सु पै-पान माँगैँ।
तू कहाँ ढीठ, जोबन-प्रमत सुंदरी, फिरति इठलाति गोपाल आगैँ।
कहाँ मेरे कान्ह की तनक सी आँगुरी, बड़े बड़े नखनि के चिह्न तेरैँ।
मष्ट करु, हँसैँगे लोग, अँकवारि भरि भुजा पाई कहाँ स्याम मेरैँ।
नैननि भुकी सुमन मैँ हँसी नागरी, उरहनौ देत रुचि अधिक बाढ़ी।
सुनि सखी सूर सरबस हर्‌यौ साँवरैँ, अनउतर महरि कैँ द्वार ठाढ़ी।
॥३०७॥६२५॥

राग गौरी

कत हो कान्ह काहु कैँ जात।
ये सब ढीठ गरब गोरस कैँ मुख सँभारि बोलतिँ नहिँ बात।
जोइ-जोइ रुचै सोइ तुम मोपै माँगि लेहु किन तात।
ज्यौँ-ज्यौँ बचन सुनौँ मुख अमृत, त्यौँ-त्यौँ सुख पावत सब गात।
कैसी टेव परी इन गोपिनि, उरहन कैँ मिस आवतिँ प्रात।
सूर सु कत हठि दोष लगावतिँ घरही को माखन नहिँ खात ॥३०८॥
॥६२६॥

घर गोरस जनि जाहु पराए।
दूध भात भोजन घृत अंमृत अरु आछौ करि दह्यौ जमाए।
नव लख धेनु खरिक घर तेरैं, तू कत माखन खात पराए।
निलज ग्वालिनी देतिं उरहनौ, वै झूठैं करि बचन बनाए।
लघु-दीरघता कछू न जानैं, कहुँ बछरा कहुँ धेनु चराए।
सूरदास प्रभु मोहन नागर, हँसि-हँसि जननी कंठ लगाए ॥३०९॥
॥९२७॥

राग बिलावल

(कान्ह कौं) ग्वालिनि दोष लगावति जोर।
इतनक दधि माखन कैं कारन कबहिं गयौ तेरी ओर।
तू तौ धन-जोबन की माती, नित उठि आवति भोर।
लाल कुँअर मेरौ कछू न जानै, तू है तरुनि किसोर।
कापर नैन चढ़ाए डोलति, ब्रज मैं तिनुका तोर।
सूरदास जसुदा अनखानी, यह जीवन-धन मोर ॥३१०॥
॥९२८॥

राग देवगंधार

कान्हहिं बरजति किन नँदरानी।
एक गाउँ कैं बसत कहाँ लौं, करैं नंद की कानी।
तुम जो कहति हौ, मेरौ कन्हैया, गंगा कैसौ पानी।
बाहिर तरुन किसोर बयस बर, बाट घाट कौ दानी।
बचन बिचित्र, कमल-दल-लोचन, कहत सरस बर बानी।
अचरज महरि तुम्हारे आगैं अबै जीभ तुतरानी।
कहँ मेरौ, कान्ह कहाँ तुम ग्वारिनि, यह बिपरीति न जानी।
आवति सूर उरहने कैं मिस, देखि कुँवर मुसुकानी ॥३११॥
॥९२९॥

राग धनाश्री

माखन माँगि लियौ जसुमति सौं।
माता सुनत तुरत लै आई, लगी खवावन रति सौं।

मैया मैं अपनैं कर खैहौं, धरि दै मेरैं हाथ।
माखन खात चले उठि खेलन, सखा जुरे सब साथ।
मथुरा जात ग्वालिनी देखी, चरचि लई हरि आइ।
सूर स्याम ता घर के पाछैं, बैठि रहे अरगाइ ॥३१२॥
॥६३०॥

राग धनाश्री

मथुरा जाति हौं बेचन दहियौ।
मेरे घर कौ द्वार, सखी री, तबलौं देखति रहियौ।
दधि-माखन द्वै माट अछूते तोहिं सौंपति हौं सहियौ।
और नहीं या व्रज मैं कोऊ, नंद-सुवन सखि लहियौ।
ते सब बचन सुने मन-मोहन, वहै राह मन गहियौ।
सूर पौरि लौं गई न ग्वालिनि, कूद परे दै धहियौ ॥३१३॥
॥६३१॥

राग नट

देख्यौ जाइ स्याम घर भीतर।
अबहीं निकसि कहत भई सोई, फिरि आई तुम्हरैं घर।
सखा साथ के चमकि गए सब, गह्यौ स्याम कर धाइ।
औरनि जानि जान मैं दीन्हौं, तुम कहँ जाहु पराइ?
बहुत अचगरी करत फिरत हौ, मैं पाए करि घात
बाहँ पकरि लै चली महरि पै, करत रहत उतपात।
देखौ महरि, आपने सुत कौं, कबहुँ नहिं पतियाति।
बैठे स्याम भवन हीं अपनैं, चितै चितै पछिताति।
बाहँ पकरि तू ल्याई काकौं, अति बेसरम गँवारि।
सूर स्याम मेरे आगैं खेलत, जोबन-मद-मतवारि ॥३१४॥
॥६३२॥

राग सारंग

जसुदा तू जो कहति ही मोसौं।
दिन प्रति देत उरहनी आवति, कहा तिहारैं कोसैं।
वहै उरहनौ सत्य करन कौं, गोबिंदहिं गहि ल्याई।
देखन चली जसोदा सुत कैं ह्वै गए सुता पराई।

तेरे नैन, हृदय, मति नाहीँ बदन देखि पहिचानै।
सुनु री सखी कहति डोलति है या कन्या सैाँ कान्है।
तैँ तौ नाम स्याम मेरे कौ, सूधौ करि है पायौ।
सूरदास प्रभु देखि खरिक तैँ अबहीँ आपै आयौ ॥३१५॥
॥६३३॥

राग गौरी

रही ग्वालि हरि कौ मुख चाहि।
कैसे चरित किए हरि अबहीँ बार-बार सुमिरति करताहि।
बाहँ पकरि घर तैँ लै आईं, कहा चरित कीन्हे हैँ स्याम।
जात न बनै कहत नहिँ आवै, कहति महरि तू ऐसी बाम।
जानी बात तिहारी सबकी, जसुमति कहति इहाँ तैँ जाहि।
सूरदास प्रभु के गुन ऐसे, बुधि बल करि को जीतै ताहि ॥३१६॥
॥६३४॥

राग गौरी

गए स्याम ग्वालिनि घर सूनैँ।
माखन खाइ, डारि सब गोरस, बासन फोरि किए सब चूनै।
बड़ौ माट इक बहुत दिननि कौ, ताहि कर्यौ दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सैाँ, हँसत चले दै कूक।
आइ गई ग्वालिनि तिहिँ औसर, निकसत हरि धरि पाए।
देखे घर बासन सब फूटे, दूध दही ढरकाए।
दोउ भुज धरि गाढ़ैँ करि लीन्हे, गई महरि कै आगैँ।
सूरदास अब बसे कौन ह्याँ, पति रहिहै ब्रज त्यागैँ ॥३१७॥

राग बिलावल

ऐसो हाल मेरैँ घर कीन्हौ, हैाँ ल्याई तुम पास पकरिकै।
फोरि भाँड़ दधि माखन खायौ, उबर्यौ सो डार्यौ रिस करिकै।
लरिका छिरकि मही सैाँ देखै, उपज्यौ पूत सपूत महरि कै।
बड़ौ माट घर धर्यौ जुगनि को, टूक-टूक कियौ सखनि पकरि कै।
पारि सपाट चले तब पाए, हैाँ ल्याई तुमहीँ पै धरि कै।
सूरदास प्रभु कैाँ यौँ राखौ, ज्यौँ राखिये गज मत्त जकरि कै ॥३१८॥
॥६३६॥

गोपियों का दोष

राग कान्हरौ

करत कान्ह ब्रज-घरनि अचगरी।
खीझति महरि कान्ह सौं पुनि-पुनि, उरहन लै आवति हैं सगरी।
बड़े बाप के पूत कहावत, हम वै वास बसत इक बगरी।
नंदहु तैं ये बड़े कहैहैं फेरि बसैहैं यह ब्रज नगरी।
जननी कैं खीझत हरि रोए, झूठहिं मोहिं लगावति धगरी।
सूर स्याम मुख पोंछि जसोदा, कहति सबै जुवती हैं लँगरी ॥३१६॥
॥६३७॥

राग सारंग

गोपी मतवाली

नितही नित उठि आवति भोर।
मेरे बारेहिं दोष लगावति, ग्वालिनि जोबन जोर।
दूध दही माखन कैं कारन, कब गयौ तेरी ओर।
धन माती इतराती डोलैं सकुच नहीं करै सोर।
मेरौ कन्हैया कहाँ तनक सौ, तू है कुचनि कठोर।
तेरे मन कौ यहाँ कौन है, लह्यौ कटक कौ छोर।
का पर नैन चलावति आवति, जाति न तिनका तोर।
सुनौ सूर ग्वालिनि की बातैं, त्रासति कान्ह जु मोर ॥३२०॥
॥६३८॥

राग नट

मेरौ माई कौन कौ दधि चोरै।
मेरैं बहुत दई कौ दीन्हौ लोग पियय हैं औरै।
कहा भयौ तेरे भवन गए जो पियौ तनक लै भोरै।
ता ऊपर काहैं गरजति है, मनु आई चढ़ि घोरै।
माखन खाइ, मह्यौ सब डारै, बहुरौ भाजन फोरै।
सूरदास यह रसिक ग्वालिनी, नेह नवल सँग जोरै ॥३२१॥
॥६३९॥

राग रामकली

अपनौ गाउँ लेउ नँदरानी।
बड़े बाप की बेटी, पूतहिं भली पढ़ावति बानी।

सखा-भीर लै पैठत घर मैं आपु खाइ तौ सहिऐ।
मैं जब चली सामुहैं पकरन, तब के गुन कहा कहिऐ।
भाजि गए दुरि देखत कतहूँ, मैं घर पौढ़ी आइ।
हरैं-हरैं बेनी गहि पाछैं, बाँधी पाटी लाइ।
सुनु मैया, याके गुन मोसौं, इन मोहिं लयौ बुलाई।
दधि मैं पड़ी सेंत की मोपै चीटी सबै कढ़ाई।
टहल करत मैं याके घर की यह पति सँग मिलि साई।
सूर बचन सुनि हँसी जसोदा, ग्वाल रही मुख गोई ॥३२२॥
॥६४०॥

राग सारंग

महरि तैं ब्रज चाहति कछु और।
बात एक मैं कही कि नाहीं, आपु लगावति झौर।
जहाँ बसै पति नाहिं आपनी, तजन कह्यौ सो ठौर।
सुत के भएँ बधाई पाई, लोगनि देखत दौर।
कान्ह पठाइ देति घर लूटन, कहति करौ यह गौर।
ब्रज घर समुझि लेहु महरैटी, कहत सूर कर जोर ॥३२३॥
॥६४१॥

राग नटनारायन

लोगनि कहत झुकति तू बौरी।
दधि माखन गाँठी दै राखति, करत फिरत सुत चोरी।
जाके घर की हानि होति नित, सो नहिं आनि कहै री?
जाति-पाँति के लोग न देखति, और बसैहै नैरी।
घर-घर कान्ह खान कौं डोलत, बड़ी कृपन तू है री।
सूर स्याम कौं जब जोइ भावै, सोइ तबहीं तू दै री ॥३२४॥
॥६४२॥

राग मलार

महरि तैं बड़ी कृपन है माई।
दूध - दही बहु बिधि कौ दीनौ, सुत सौं धरति छपाई।
बालक बहुत नहीं री तेरैं एकै कुँवर कन्हाई।
सोऊ तौ घरही घर डोलतु, माखन खात चोराई।

वृद्ध बयस, पूरे पुन्यनि तैँ, तैँ बहुतै निधि पाई।
ताहू के खैबे-पीबे कौँ, कहा करति चतुराई।
सुनहुँ न बचन चतुर नागरि के जसुमति नंद सुनाई।
सूर स्याम कौँ चोरी कैँ मिस, देखन है यह आई ॥३२५॥
॥६४३॥

राग नट

अनत सुत गोरस कौँ कत जात?
घर सुरभी कारी धौरी कौ माखन माँगि न खात।
दिन प्रति सबै उरहने कैँ मिस, आवति है उठि प्रात।
अनलहते अपराध लगावति; बिकट बनावति बात।
निपट निसंक बिवादहिँ संमुख, सुनि-सुनि नंद रिसात।
मोसौँ कहतिँ कृपन तेरैँ घर ढोटाहू न अघात।
करि मनुहारि उठाइ गोद लै, बरजति सुत कौँ मात।
सूर स्याम नित सुनत उरहनौ, दुख पावत तेरौ तात ॥३२६॥
॥६४४॥

राग बिलावल

भाजि गयौ मेरे भाजन फोरि।
लरिका सहस एक सँग लीन्हे, नाचत फिरत साँकरी खोरि।
मारग तौ कोउ चलन न पावत, धावत गोरस लेत अँजोरि।
सकुच न करत, फाग सी खेलत, तारी देत, हँसत मुख मोरि।
बात कहौँ तेरे ढोटा की, सब ब्रज बाँध्यो प्रेम की डोरि।
टोना सौ पढ़ि नावत सिर पर, जो भावत सो लेत है छोरि।
आपु खाइ सो सब हम मानैँ, औरनि देत सिकहरैँ तोरि।
सुर सुतहिँ बरजौ नँदरानी, अब तोरत चोली-बँद-डोरि ॥३२७॥
॥६४५॥

चोली खोलता

राग नट

हरि सब भाजन फोरि पराने।
हाँक देत पैठे दै पेला नैँकु न मनहिँ डराने।
सीँके छोरि, मारि लरिकनि कौँ, माखन-दधि सब खाइ।
भवन मच्यौ दधि काँदौ, लरिकनि रोवत पाए जाइ।

सुनहु-सुनहु सबहिनि के लरिका, तेरौ सौ कहुँ नाहिँ।
हाटनि-बाटनि, गलिनि कहूँ कोउ चलत नहीँ डरपाहिँ।
रितु आए कौ खेल, कन्हैया सब दिन खेलत फाग।
रोकि रहत गहि गली साँकरी, टेढ़ी बाँधत पाग।
बारे तैँ सुत ये ढँग लाए, मनहीँ मनहिँ सिहाति।
सुनैं सूर ग्वालिनि की बातैँ, सकुचि महरि पछिताति ॥३२८॥
॥६४६॥

राग सारंग

कन्हैया तू नहिँ मोहिँ डरात।
षटरस धरे छाँड़ि कत पर घर, चोरी करि करि खात।
बकत-बकत तोसौँ पचिहारी, नैँकुहुँ लाज न आई।
ब्रज-परगन-सिकदार महर, तू, ताकी करत नन्हाई।
पूत सपूत भयौ कुल मेरैँ, अब मैँ जानी बात।
सूर स्याम अब लौँ तुहिँ बकस्यौ, तेरी जानी घात ॥३२९॥
॥६४७॥

राग गौरी

सुनु री ग्वारि कहौँ इक बात।
मेरी सौँ तुम याहि मारियौ, जबहीँ पावौ घात।
अब मैँ याहि जकरि बाँधौंगी, बहुतै मोहिँ खिझायौ।
साटिनि मारि करौँ पहुनाई, चितवत कान्ह डरायौ।
अजहूँ मानि, कह्यौ करि मेरौ, घर-घर तू जनि जाहि।
सूर स्याम कह्यौ, कहूँ न जैहौँ, माता मुख-तन चाहि ॥३३०॥
॥६४८॥

राग बिलावल

तेरैँ लाल माखन खायौ।
दुपहर दिवस जानि घर सूनौ, ढूँढ़ि-ढँढ़ोरि आपही आयौ।
खोलि किवार, पैठि मंदिर मैँ, दूध-दही सब सखनि खवायौ।
ऊखल चढ़ि, सीँके कौ लीन्हौ, अनभावत भुइँ मैँ ढरकायौ।
दिन प्रति हानि होति गोरस की, यह ढोटा कौनैँ ढँग लायौ।
सूर स्याम कौँ हटकि न राखै तैँ ही पूत अनोखौ जायौ ॥३३१॥
॥६४९॥

राग बिलावल

हौं वारी रे मेरे तात।
काहे कैं लाल पराए घर कौ, चोरि-चोरि दधि माखन खात?
गहि-गहि पानि मटुकिया रीती, उरहन कैं मिस आवत-जात।
करि मनुहार, कोसिबे कैं डर, भरि-भरि देति जसोदा मात।
फूटी चुरी गोद भरि ल्यावैं, फाटे चीर दिखावैं गात।
सूरदास स्वामी की जननी, उर लगाइ हँसि पूछति बात॥३३२॥
॥६५०॥

राग रामकली

माखन खात पराए घर कौ।
नित प्रति सहस मथानी मथिऐ, मेघ-सब्द दधि-माट घमरकौ।
कितने अहिर जियत मेरैं घर, दधि मथि लै बँचत महि मरकौ।
नव लख धेनु दुहत हैं नित प्रति, बड़ौ नाम है नंद महर कौ।
ताके पूत कहावत हौ तुम, चोरी करत उघारत फरकौ।
सूर स्याम कितनौ तुम खैहौ, दधि-माखन मेरैं जहँ-तहँ ढरकौ।
॥३३३॥६५१॥

राग रामकली

मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ।
देखि तुही सीँके पर भाजन, ऊँचैं धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसैं करि पायौ।
मुख दधि पोंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि, मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।
बाल-बिनोद-मोद मन मोह्यौ, भक्ति-प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमति कौ यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ॥३३४॥
॥६५२॥

राग बिलावल

तेरी सौं सुनु सुनु मेरी मैया।
आवत उबटि परयौ ता ऊपर, मारन कौं दौरी इक गैया।

ब्यानी गाइ बछरुवा चाटति, हौँ पय पियत पतूखिनि लैया।
यहै देखि मोकौँ बिजुकानी, भाजि चल्यौ कहि दैया दैया।
दोउ सींग बिच ह्वै हौँ आयौ, जहाँ न कोऊ हो रखवैया।
तेरौ पुन्य सहाय भयौ है, उबरयौ बाबा नंद-दुहैया।
याके चरित कहा कोउ जानै, बूझौ धौँ संकर्षन भैया।
सूरदास स्वामी की जननी, उर लगाइ हँसि लेति बलैया।
॥३३५॥६५३॥

राग रामकली

जसुमति तेरौ बारौ कान्ह अतिही जु अचगरौ।
दूध-दही-माखन लै डारि देत सगरौ।
भोरहिँ नित प्रतिही उठि, मोसौँ करत झगरौ।
ग्वाल-बाल संग लिए घेरि रहै डगरौ।
हम-तुम सब बैस एक, कातैँ को अगरौ।
लियौ दियौ सोई कछु, डारि देहु झगरौ।
सूर स्याम तेरौ अति, गुननि माहिँ अगरौ।
चोली अरु हार तोरि छोरि लियौ सगरौ॥३३६॥
॥६५४॥

राग गौरी

ह्वाँ लगि नैँकु चलौ नँदरानी।
मेरे सिर की नई बहनियाँ, लै गोरस मै सानी।
हमै-तुम्है रिस-बैर कहाँ कौ, आनि दिखावत ज्यानी।
देखौ आइ पूत कौ करतब, दूध मिलावत पानी।
या ब्रज कौ बसिबौ हम छाँड्यौ, सो अपनै जिय जानी।
सूरदास ऊसर की बरषा थोरे जल उतरानी॥३३७॥
॥६५५॥

राग रामकली

देखौ माई या बालक की बात।
बन-उवबन, सरिता-सर मोहे, देखत स्यामल गात।
मारग चलत अनीति करत है, हठ करि माखन खात।
पीतांबर वह सिर तैँ ओढ़त, अंचल दै मुसुकात।

तेरी सौँ कहा कहौँ जसोदा, उरहन देति लजात।
जब हरि आवत तेरे आगैं सकुचि तनक ह्वै जात।
कौन-कौन गुन कहौँ स्याम के, नैकु न काहुँ डरात।
सूर स्याम मुख निरखि जसोदा, कहति कहा यह बात ॥३३८॥
॥६५६॥

राग बिलावल

सुनि-सुनि री तैं महरि जसोदा तैं सुत बड़ौ लड़ायौ।
इहिँ ढोटा लै ग्वाल भवन मैँ, कछु बिथर्‌यौ कछु खायौ।
काकैं नहीँ अनौखौ ढोटा, किहिँ न कठिन करि जायौ।
मै हूँ अपनैं औरस पूतैं बहुत दिननि मैँ पायौ।
तैं जु गवारि पकरि भुज याकी बदन दह्यौ लपटायौ।
सूरदास ग्वालिनि अति झूठी बरबस कान्ह बँधायौ ॥३३९॥
॥६५७॥

राग नट

नंद-घरनि सुत भलौ पढ़ायौ।
ब्रज-बीथिनि, पुर-गलिनि, घरै-घर, घाट-बाट सब सोर मचायौ।
लरिकनि मारि भजत काहू के, काहू कौ दधि-दूध लुटायौ।
काहू कै घर करत भंड़ाई, मैँ ज्यौँ त्यौँ करि पकरन पायौ।
अब तौ इन्हैँ जकरि धरि बाँधौँ, इहिँ सब तुम्हरौ गाउँ भजायौ।
सूर स्याम भुज गही नँदरानी, बहुरि कान्ह अपनैं ढँग लायौ ॥३४०॥
॥६५८॥

उलूखल-बंधन *राग गौरी*

ऐसी रिस मैँ जौ धरि पाऊँ।
कैसे हाल करौँ धरि हरि के, तुमकौँ प्रगट दिखाऊँ।
साँटिया लिए हाथ नँदरानी, थरथरात रिस गात।
मारे बिनु आजु जौ छाँडौँ, लागै मेरैं तात।
इहिँ अंतर ग्वारिनि इक औरै, धरे बाँह हरि ल्यावति।
भली महरि सूधौ सुत जायौ, चोली-हार बतावति।
रिस मैँ रिस अतिहीँ उपजाई, जानि जननि अभिलाष।
सूर स्याम भुज गहे जसोदा, अब बाँधौँ कहि माष ॥३४१॥
॥६५९॥

राग सोरठ

जसुमति रिस करि-करि रजु करषै ।
सुत हित क्रोध देखि माता कैं, मनहीं मन हरि हरषै ।
उफनत छीर जननि करि व्याकुल, इहिं बिधि भुजा छुड़ायौ ।
भाजन फोरि दही सब डार्‌यौ, माखन कीच मचायौ ।
लै आई जेँवरि अब बाँधौं, गरब जानि न बँधायौ ।
अंगुर द्वै घटि होति सबनि सैं, पुनि-पुनि और मँगायौ ।
नारद-साप भए जमलार्जुन, तिनकौं अब जु उधारौं ।
सूरदास प्रभु कहत भक्त-हित जनम-जनम तनु धारौं ।।३४२।।
।।६६०।।

राग रामकली

जसोदा एतौ कहा रिसानी ।
कहा भयौ जौ अपने सुत पै, महि ढरि परी मथानी ?
रोषहिँ रोष भरे द्रग तेरे, फिरत पलक पर पानी ।
मनहुँ सरद के कमल कोष पर मधुकर मीन सकानी ।
स्रम जल किंचित निरखि बदन पर, यह छबि अति मन मानी ।
मनौ चंद नव उमँगि सुधा भुव ऊपर बरषा ठानी ।
गृह-गृह गोकुल दई दाँवरी बाँधति भुज नँदरानी ।
आपु बँधावत, भक्तनि छोरत, बेद बिदित भई बानी ।
गुन लघु चरचि करति स्रम जितनौ, निरखि बदन मुसुकानी ।
सिथिल अंग सब देखि सूर प्रभु-सोभा-सिंधु-तिरानी ।।३४३।।
।।६६१।।

राग सारंग

बाँधौं आजु कौन तोहिँ छोरै ।
बहुत लँगरई कीन्हौ मोसौं, भुज गहि रजु ऊखल सौं जोरै ।
जननी अति रिस जानि बँधायौ, निरखि बदन, लोचन जल ढोरै ।
यह सुनि ब्रज-जुवतीं सब धाईं कहतिं कान्ह अब क्यौं नहिं छोरै ।
ऊखल सौं गहि बाँधि जसोदा, मारन कौं साँटी कर तोरै ।
साँटी देखि ग्वालि पछितानी, बिकल भई जहँ-तहँ मुख मोरै ।

सुनहु महरि ऐसी न बूझिऐ सुत बाँधति माखन दधि थरैँ।
सूर स्याम कौँ बहुत सतायौ, चूक परी हम तैँ यह भोरैँ ॥३४४॥
॥९६२॥

राग आसावरी

जाहु चली अपनैँ-अपनैँ घर।
तुम हीँ सबनि मिलि ढीठ करायौ, अब आईं छोरन बर।
मोहिँ आपने बाबा की सौहैँ, कान्हहिँ अब न पत्याउँ।
भवन जाहु अपनैँ-अपनैँ सब, लागति हौँ मैँ पाउँ।
मोकौँ जति बरजौ जुवती कोउ, देखौ हरि के ख्याल।
सूर स्याम सौँ कहति जसोदा, बड़े नंद के लाल ॥३४५॥
॥९६३॥

राग सोरठ

जसुदा तेरौ मुख हरि जोवै।
कमल नैंन हरि हिचिकिनि रोवै, बंधन छोरि जसोवै।
जौ तेरौ सुत खरौ अचगरौ, तऊ कोखि कौ जायौ।
कहा भयौ जौ घर कैँ ढोटा, चोरी माखन खायौ।
कोरी मटुकी दह्यौ जमायौ, जाख न पूजन पायौ।
तिहिँ घर देव पितर काहे कौँ, जा घर कान्हर आयौ।
जाकौ नाम लेत भ्रम छूटै, कर्म-फंद सब काटै।
सोई इहाँ जेँवरी बाँधे, जननि साँटि लै डाँटै।
दुखित जानि दोउ सुत कुबेर के ऊखल आपु बँधायौ।
सूरदास प्रभु भक्त-हेत ही देह धारि कै आयौ ॥३४६॥
॥९६४॥

राग बिहागरौ

देखौ माई कान्ह हिलकियनि रोवै।
इतनक मुख माखन लपटान्यौ, डरनि आँसुवनि धोवै।
माखन लागि उलूखन बाँध्यौ सकल लोग ब्रज जोवै।
निरखि कुरुख उन बालनि की दिस, लाजनि अँखियन गोवै।
ग्वाल कहैँ धनि जननि हमारी, सुकर सुरभि नित नोवै।
बरबस ही बैठारि गोद मैँ, धारैँ बदन निचोवै।

ग्वालि कहैँ या गोरस कारन, कत सुत की पति खोवै ?
आनि देहिँ अपने घर तैँ हम, चाहति जितौ जसोवै ।
जब जब बंधन छोर्‍यौ चाहतिं, सूर कहै यह को वै ।
मन माधौ-तन, चित गोरस मैँ, इहिँबिधि महरि बिलोवै ।
॥३४७॥६६५॥

राग सारंग

(माई) नैँकहूँ न दरद करति, हिलकिनि हरि रोवै ।
बज्रहु तैँ कठिन हियौ, तेरौ है जसोवै ।
पलना पौढ़ाइ जिन्हैँ बिकट बाउ काटै ।
उलटे भुज बाँधि तिन्हैँ लकुट लिए डाँटै ।
नैँकहूँ न थकत पानि, निरदई अहीरी ।
अहो नंदरानी, सीख कौन पै लही री ।
जाकौँ सिव सनकादिक सदा रहत लोभा ।
सूरदास प्रभु कौ मुख निरखि देखि सोभा ॥३४८॥
॥६६६॥

राग बिहागरौ

कुँवर जल लोचन भरि-भरि लेत ।
बालक बदन बिलोकि जसोदा, कत रिस करति अचेत ।
छोरि उदर तैँ दुसह दाँवरी, डारि कठिन कर बेँत ।
कहि धौँ री तोहिँ क्यौँ करि आवै, सिसु पर तामस एत ।
मुख आँसू अरु माखन-कनुका, निरखि नैन छबि देत ।
मानौ स्रवत सुधानिधि मोती, उडुगन अवलि समेत ।
ना जानौँ किहिँ पुन्य प्रगट भए इहिँ ब्रज नंद-निकेत ।
तन-मन-धन न्यौछावरि कीजै सूर स्याम कैँ हेत ॥३४९॥
॥६६७॥

राग केदारौ

हरि के बदन तन धौँ चाहि ।
तनक दधि कारन जसोदा इतौ कहा रिसाहि ।
लकुट कैँ डर डरत ऐसैँ सजल सोभित डोल ।
नील-नीरज-दल मनौ अलि-अंसकनि कृत लोल ।

बात बस समृनाल जैसैं प्रात पंकजकोस।
नमित मुख इमि अधर सूचत, सकुच मैं कछु रोस।
कतिक गोरस हानि, जाकैं करति है अपमान।
सूर ऐसे बदन ऊपर वारिऐ तन-प्रान ॥३५०॥
॥६६८॥

राग केदारौ

मुख-छबि देखि हो नँद घरनि।
सरद निसि कौ अंसु अगनित इंदु आभा हरनि।
ललित श्री गोपाल-लोचन-लोल-आँसू-ढरनि।
मनहुँ बारिज बिथकि बिभ्रम, परे पर-बस परनि।
कनक-मनि-मय-जटित-कुंडल-जोति जगमग करनि।
मित्र-मोचन मनहुँ आए, तरल गति द्वै तरनि।
कुटिल कुंतल, मधुप मिलि मनु, कियौ चाहत लरनि।
बदन कांति बिलोकि सोभा सकै सूर न बरनि॥३५१॥
॥६६९॥

राग केदारौ

मुख छबि कहा कहैं बनाइ
निरखि निसि-पति बदन-सोभा, गयो गगन दुराइ।
अमृत अलि मनु पिवन आए, आइ रहे लुभाइ।
निकसि सर तैं मीन मानौ, लरत कीर छुराइ।
कनक-कुंडल-स्रवन बिभ्रम कुमुद निसि सकुचाइ।
सूर हरि की निरखि सोभा कोटि काम लजाइ॥३५२॥
॥६७०॥

राग केदारौ

हरि-मुख देखि हो नँद-नारि।
महरि ऐसे सुभग सुत सौं, इता कोह निवारि।
सरद-मंजुल-जलज-लोचन लोल, चितवनि दीन।
मनहुँ खेलत हैं परस्पर, मकरध्वज द्वै मीन।
ललित कन-संजुत कपोलनि लसत कज्जल अंक।
मनहुँ राजत रजनि, पूरन कलापति सकलंक।

बेगि बंधन छोरि, तन-मन वारि, लै हिय लाइ।
नवल स्याम किसोर ऊपर, सूर जन बलि जाइ ॥३५३॥
॥६७१॥

राग बिहागरौ

कहौ तौ माखन ल्याव घर तैं।
जा कारन तू छोरति नाहीं, लकुट न डारति कर तैं।
सुनहु महरि ऐसी न बूझियै, सकुचि गयौ मुख डर तैं।
ज्यौं जल-रुह ससि-रस्मि पाइ कै, फूलत नाहिं न सर तैं।
ऊखल लाइ भुजा धरि बाँधी, मोहनि मूरति बर तैं।
सूर स्याम-लोचन जल बरषत जनु मुकुता हिमकर तैं ॥३५४॥
॥६७२॥

राग कल्यान

कहन लगीं अब बढ़ि-बढ़ि बात।
ढोटा मेरौ तुमहिं बँधायौ, तनकहिं माखन खात।
अब मोहिं माखन देतिं मँगाए, मेरैं घर कछु नाहिं!
उरहन कहि-कहि साँझ सबारैं, तुमहि बँधायौ याहि।
रिसही मैं मोकौं गहि दीन्हौ, अब लागीं पछितान।
सूरदास अब कहति जसोदा, बूझयौ सबकौ ज्ञान ॥३५५॥
॥६७३॥

राग धनाश्री

कहा भयो जौ घर कैं लरिका चोरी माखन खायौ।
अहो जसोदा कत त्रासति हौ यहै कोखि को जायौ।
बालक अजौं अजान न जानै केतिक दह्यौ लुठायौ।
तेरो कहा गयौ? गोरस कौ गोकुल अंत न पायौ।
हा हा लकुट त्रास दिखरावति, आँगन पास बँधायौ।
रुदन करत दोउ नैन रचे हैं, मनहुँ कमल-कन छायौ।
पौढ़ि रहे धरनी पर तिरछैं बिलखि बदन मुरझायौ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, हँसि करि कंठ लगायौ ॥३५६॥
॥६७४॥

राग धनाश्री

चित दै चितै तनय मुख ओर।
सकुचत सीत भीत जलरुह ज्यौं, तुव कर लकुट निरखि सखि घोर।
आनन ललित स्रवत जल सोभित, अरुन चपल लोचन की कोर।
कमल-नाल तैं मृदुल ललित भुज ऊखल बाँधे दाम कठोर।
लघु अपराध देखि बहु सोचति, निरदय हृदय बज्र सम तोर।
सूर कहा सुत पर इतनी रिस कहि इतनै कछु माखन-चोर।
॥३५७॥९७५॥

राग बिलावल

जसुदा देखि सुत की ओर।
बाल बैस रसाल पर, रिस इती कहा कठोर।
बार बार निहारि तुव तन, नमित-मुख दधि-चोर।
तरनि किरनहिं परसि मानौ, कुमुद सकुचत भोर।
त्रास तैं अति-चपल गोलक, सजल सोभित छोर।
मीन मानौ बेधि बंसी, करत जल झकझोर।
देत छबि अति गिरत उर पर अंबु-कन के जोर।
ललित हिय जनु मुक्त-माला, गिरति टूटैं डोर।
नंद-नंदन जगत-बंदन करत आँसू कोर।
दास सूरज मोहि सुख-हित निरखि नंदकिसोर ॥३५८॥९७६॥

राग धनाश्री

चितै धौं कमल-नैन की ओर।
कोटि चंद वारौं मुख-छवि पर ए हैं साहु कै चोर।
उज्ज्वल अरुन असित दीसति हैं, दुहुँ नैननि की कोर।
मानौ सुधा पान कैं कारन, बैठे निकट चकोर।
कतहिं रिसाति जसोदा इनसौं, कौन ज्ञान है तोर।
सूर स्याम बालक मनमोहन, नाहिंन तरुन किसोर ॥३५९॥
॥९७७॥

राग नटनारायनी

देखि री देखि हरि बिलखात।
अजिर लोटत राखि जसुमति, धू धूरि-सर गात।

मूँदि मुख छिन सुसुकि रोवत, छिनक मौन रहात।
कमल मधि अलि उड़त, सकुचत, पच्छ दल-आघात।
चपल दृग, पल भरे अँसुवा, कछुक ढरि-ढरि जात।
अलप जल पर सीप द्वै लखि, मीन मनु अकुलात।
लकुट कैँ डर ताकि तोहिँ तब पीत पट लपटात।
सूर प्रभु पर वारियै ज्यौ, भलेहिँ माखन खात ॥३६०॥
॥६७८॥

राग सारंग

कब के बाँधे ऊखल दाम।
कमल-नैन बाहिर करि राखे तू बैठी सुखधाम।
है निरदई, दया कछु नाहीँ, लागि रही गृह काम।
देखि छुधा तैँ मुख कुम्हिलानौ, अति कोमल तन स्याम।
छोरहु बेगि भई बड़ी बिरियाँ, बीति गए जुग जाम।
तेरैँ त्रास निकट नहिँ आवत बोलि सकत नहिँ राम।
जन-कारन भुज आपु बँधाए, बचन कियौ रिषि ताम।
ताही दिन तैँ प्रगट सूर प्रभु यह दामोदर नाम ॥३६१॥
॥६७९॥

राग गौरी

वारौँ हौँ वे कर जिन हरि कौ बदन छुयौ
वारौँ रसना सो जिहिँ बोल्यौ है तुकारि।
वारौँ ऐसी रिस जो करति सिसु बारे पर
ऐसौ सुत कौन पायौ मोहन मुरारि।
ऐसी निरमोही माई महरि जसोदा भई
बाँध्यौ है गोपाल लाल बाहँनि पसारि।
कुलिसहुँ तैँ कठिन छतिया चितै री तेरी
अजहूँ द्रवति जो न देखति दुखारि।
कौन जानै कौन पुन्य प्रगटे हैँ तेरैँ आनि
जाकौँ दरसन काज जपै मुख-चारि
केतिक गोरस हानि जाकौ सूर तोरै कानि।
डारौँ तन स्याम रोम-रोम पर बारि ॥३६२॥
॥६८०॥

माहात्म्य

राग सोरठ

(जसोदा) तेरौ भलौ हियौ है माई।
कमल-नैन माखन कैं कारन, बाँधे ऊखल ल्याई।
जो संपदा देव - मुनि - दुर्लभ, सपनैँहु देइ न दिखाई।
याही तैँ तू गर्ब भुलानी, घर बैठे निधि पाई।
जो मूरति जल थल मैँ ब्यापक निगम न खोजत पाई।
सो मूरति तैँ अपनैँ आँगन, चुटकी दै जु नचाई।
तब काहू सुत रोवत देखति, दौरि लेति हिय लाई।
अब अपने घर के लरिका सौँ इती करति निठुराई!
बारंबार सजल लोचन करि चितवत कुँवर कन्हाई।
कहा करौँ, बलि जाउँ, छोरि तू, तेरी सौँह दिवाई।
सुर पालक, असुरनि उर सालक, त्रिभुवन जाहि डराई।
सूरदास प्रभु की यह लीला, निगम नेति नित गाई॥३६३॥
॥९८१॥

राग केदारौ

देखि री नंद-नंदन-ओर।
त्रास तैँ तन त्रसित भए हरि, तकत आनन तोर।
बार बार डरात तोकौँ, बरन बदनहिँ थोर।
मुकुर-मुख, दोउ नैन ढारत, छनहिँ छन छबि-छोर।
सजल चपल कनीनिका पल अरुन ऐसैँ डोर (ल)।
रस भरे अंबुजनि भीतर भ्रमत मानौ भौँर।
लकुट कैँ डर देखि जैसे भए स्रोनित ओर।
लाइ उरहिँ, बहाइ रिस जिय, तजहु प्रकृति कठोर।
कछुक करुना करि जसोदा, करति निपट निहोर।
सूर स्याम त्रिलोक की निधि, भलैँहि माखन-चोर॥३६४॥
॥९८२॥

राग धनाश्री

तब तैँ बाँधे ऊखल आनि।
बालमुकुंदहिँ कत तरसावति, अति कोमल अँग जानि।
प्रातकाल तैँ बाँधे मोहन, तरनि चढ़यौ मधि आनि।
कुम्हिलानौ मुख चंद दिखावति, देखौ धौँ नँदरानि।

तेरैं त्रास तैं कोउ न छोरत, अब छोरौ तुम आनि।
कमलनैन बाँधेही छाँड़े, तू बैठी मनमानि।
जसुमति के मन के सुख-कारण आपु बँधावत पानि।
जमलार्जुन कौं मुक्त करन हित, सूर स्याम जिय ठानि ॥३६५॥
॥९८३॥

राग नट

कान्ह सौं आवत क्यौंऽब रिसात।
लै लै लकुट कठिन कर अपनैं परसत कोमल गात।
देखत आँसू गिरत नैन तैं यौं सोभित ढरि जात।
मुक्ता मनौ चुगत खग खंजन, चोंच पुटी न समात।
डरनि लोल डालत हैं इहि बिधि, निरखि भ्रुवनि सुनि बात।
मानौ सूर सकात सरासन, उड़िबे कौं अकुलात ॥३६६॥
॥९८४॥

राग रामकली

जसुदा यह न बूझि कौ काम।
कमल नैन की भुजा देखि धौं, तैं बाँधे हैं दाम।
पुत्रहु तैं प्यारौ कोउ है री, कुल-दीपक मनि-धाम।
हरि पर वारि डारि सब तन, मन, धन गोरस अरु ग्राम।
देखियत कमल बदन कुम्हिलानौ, तू निरमोही बाम।
बैठी है मंदिर सुख छहियाँ, सुत दुख पावत घाम।
येई हैं सब ब्रज के जीवन सुख पाति लिएँ नाम।
सूरदास प्रभु भक्तनि कैं बस यह ठानी घनश्याम ॥३६७॥
॥९८५॥

राग धनाश्री

ऐसी रिस तोकौं नँदरानी।
भली बुद्धि तेरैं जिय उपजी, बड़ी, बैस अब भई सयानी।
ढोटा एक भयौ कैसैंहु करि, कौन-कौन करबर बिधि भानी।
क्रम-क्रम करि अब लौं उबर्‌यौ है, ताकौं मारि पितर दै पानी!
को निरदई रहै तेरैं घर, को तेरैं सँग बैठै आनी।
सुनहू सूर कहि-कहि पचिहारीं, जुवती चलीं घरनि बिरुझानी।
॥३६८॥९८६॥

राग सारंग

हलधर सौं कहि ग्वालि सुनायौ।
प्रातहिँ तैं तुम्हरौ लघु भैया, जसुमति ऊखल बाँधि लगायौ।
काहू के लरिकहिँ हरि मारयौ, भोरहि आनि तिनहिँ गुहरायौ।
तबहीँ तैं बाँधे हरि बैठे, सो हम तुमकौं आनि जनायौ।
हम बरजी, बरज्यौ नहिँ मानति, सुनतहिँ बल आतुर ह्वै धायौ।
सूर स्याम बैठे ऊखल लगि, माता उर तनु अतिहि त्रयासौ।
॥३६९॥६८७॥

राग सारंग

यह सुनि कै हलधर तहँ धाए।
देखि स्याम ऊखल सौं बाँधे, तबहीँ दोउ लोचन भरि आए।
मैं बरज्यौ कै बार कन्हैया, भली करी दोउ हाथ बँधाए।
अजहूँ छाँड़ौगे लँगराई, दोउ कर जोरि जननि पै आए।
स्यामहिँ छोरि मोहिँ बाँधै बरु, निकसत सगुन भले नहिँ पाए।
मेरे प्रान-जिवन-धन कान्हा, तिनके भुज मोहिँ बँधे दिखाए।
माता सौं कह करौं ढिठाई, सो सरूप कहि नाम सुनाए।
सूरदास तब कहति जसोदा दोउ भैया तुम इक मत पाए॥३७०॥
॥६८८॥

राग सारंग

एतौ कियौ कहा री मैया।
कौन काज धन दूध दही यह, छोभ करायौ कन्हैया।
आईं सिखवन भवन पराएँ स्यानि ग्वालि बौरैया।
दिन-दिन देन उरहनौ आवतिं ढुकि-ढुकि करति लरैया।
सूधी प्रीति न जसुदा जानै, स्याम सनेही ग्वैयाँ।
सूर स्याम सुंदरहिँ लगानी, वह जानै बल भैया॥३७१॥
॥६८९॥

राग केदारौ

काहे कौं कलह नाध्यौ, दारुन दाँवरि बाँध्यौ,
कठिन लकुट लै तैं त्रास्यौ मेरैं भैया।
नाहीँ कसकत मन, निरखि कोमल तन,
तनिक से दधि-काज, भली री तू मैया।

हौँ तौ न भयौ री घर, देखत्यौ तेरी यौँ अर,
फोरतौ बासन सब, जानति बलैया।
सूरदास हित हरि, लोचन आए हैँ भरि,
बलहू कौँ बल जाकौ सोई री कन्हैया ॥३७२॥
॥६६०॥

राग सोरठ

काहे कैँ जसोदा मैया, त्रास्यौ तैँ बारौ कन्हैया,
मोहन हमारौ भैया, केतौ दधि पियतौ।
हैँ तो न भयौ री घर, साँटी दीनी सर सर,
बाँध्यौ कर जँवरिनि, कैसैँ देखि जियतौ।
गोपाल सबनि प्यारौ, ताकौँ तै कीन्हौ प्रहारौ,
जाकौ है मोहूँ को गारौ, अजगुत कियतौ।
और होतौ कोऊ, बिन जननी जानतौ सोऊ,
कैसैँ जाइ पावतौ, जौ आँगुरिनि छियतौ।
ठाढ़ौ बाँध्यौ बलवीर, नैननि गिरत नीर,
हरि जू तैँ प्यारौ तोकौँ, दूध दही घियतौ।
सूर स्याम गिरिधर, धरा-धर हलधर,
यह छबि सदा थिर, रहौ मेरै जियतौ ॥३७३॥
॥६६१॥

राग बिलावल

जसुदा तोहि बाँधि क्यौँ आयौ।
कसक्यौ नाहिँ नैँकु मन तेरौ यहै कोखि कौ जायौ।
सिव बिरंचि महिमा नहि जानत, सो गाइनि सँग धायौ।
तातैँ तू पहचानति नाहीँ, कौन पुन्य तैँ पायौ!
कहा भयौ जो घर कैँ लरिका, चोरी माखन खायौ?
इतनी कहि उकसारत बाहैँ, रोष सहित बल धायौ।
अपनैँ कर सब बंधन छोरे, प्रेम सहित उर लायौ।
सूर सुबचन मनोहर कहि-कहि अनुज सूल बिसरायौ ॥३७४॥
॥६६२॥

राग सोरठ

काहे कौँ हरि इतनौ त्रास्यौ।
सुनि री मैया, मेरैँ भैया कितनौ गोरस नास्यौ।

जब रजु सौं कर गाढ़े बाँधे, छर-छर मारी साँटी।
सूनैं घर बाबा नँद नाहीं, ऐसै करि हरि डाँटी।
और नैंकु छ्वै देखै स्यामहिं, ताकौ कहौं निपात।
तू जो करै बात, सोइ साँची, कहा कहौं तोहिं मात।
ठाढ़े बदत बात सब हलधर, माखन प्यारौ तोहिं।
ब्रज-प्यारौ, जाकौ मोहिं गारौ, छोरत काहे न ओहि।
काकौ ब्रज, माखन दधि काकौ, बाँधे जकरि कन्हाई।
सुनत सूर हलधर की बानी जननी सैन बताई ॥३७५॥
॥९६३॥

राग सारंग

सुनहु बात मेरी बलराम।
करन देहु इनकी मोहिं पूजा, चोरी प्रगटत नाम।
तुमहीं कहौ, कमी काहे की, नव-निधि मेरैं धाम।
मैं बरजति, सुत जाहु कहूं जनि, कहि हारी दिन जाम।
तुमहुँ मोहिं अपराध लगायौ माखन प्यारौ स्याम।
सुनि मैया तोहिं छाँड़ि कहौं किहिं को राखै तेरैं ताम।
तेरी सौं उरहन लै आवतिं झूठहिं ब्रज की बाम।
सूर स्याम अतिहीं अकुलाने कब के बाँधे दाम ॥३७६॥
॥९६४॥

राग सारंग

कहा करौं हरि बहुत खिझाई।
सहि न सकी, रिसही रिस भरि गई, बहुतै ढीठ कन्हाई।
मेरौ कह्यौ नैंकु नहिं मानत, करत आपनी टेक।
भोर होत उरहन लै आवतिं, ब्रज की बधू अनेक।
फिरत जहाँ तहँ दुंद मचावत घर न रहत छन एक।
सूर स्याम त्रिभुवन की कर्त्ता, जसुमति गही निज टेक ॥३७७॥
॥९६५॥

राग गूजरी

जसोदा कान्हहु तैं दधि प्यारौ?
डारि देहि कर मथत मथानी, तरसत नंद-दुलारौ।

दूध-दही-माखन लै वारौं, जाहि करति तू गारौ।
कुम्हिलानौ मुख-चंद देखि छवि, कोह न नैँकु निवारौ।
ब्रह्म, सनक, सिव ध्यान न पावत, सो ब्रज गेयनि चारौ।
सूर स्याम पर बलि-बलि जैऐ, जीवन-प्रान हमारौ ॥३७८॥
॥६६६॥

राग रामकली

जसोदा ऊखल बाँधे स्याम।
मन मोहन बाहिर ही छाँड़े, आपु गई गृह-काम।
दह्यौ मथति, मुख तैँ कछु बकरति गारी दे लै नाम।
घर-घर डोलत माखन चोरत, षट-रस मेरैँ धाम।
ब्रज के लरिकनि मारि भजत हैँ, जाहु तुमहु बलराम।
सूर स्याम ऊखल सौँ बाँधे, निरखहिँ ब्रज की बाम ॥३७९॥
॥६६७॥

राग गौरी

निरखि स्याम हलधर मुसुकाने।
को बाँधै, को छोरै इनकौँ, यह महिमा येई पै जाने।
उतपति-प्रलय करत हैँ येई, सेष सहस मुख सुजस बखाने।
जमलार्जुन तरु तोरि उधारन, कारन करन आपु मन माने।
असुर सँहारन, भक्तनि तारन, पावन-पतित कहावत बाने।
सूरदास प्रभु भाव-भक्ति के अति हित जसुमति हाथ बिकाने।
॥३८०॥६६८॥

राग धनाश्री

जसुमति, किहिँ यह सीख दई।
सुतहिँ बाँधि तू मथति मथानी, ऐसी निठुर भई।
हरैँ बोलि जुवतिनि कौँ लीन्हौ, तुम सब तरुनि नई।
लरिकहिँ त्रास दिखावत रहिऐ, कत मुरझाइ गई।
मेरे प्रान-जिवन-धन माधो, बाँधे बेर भई।
सूर स्याम कौँ त्रास दिखावति तुम कहा कहति दई ॥३८१॥
॥६६९॥

राग गौरी

हरि चितए जमलार्जुन के तन।
अबहीँ आजु इन्हैँ उद्धारौँ, ये हैँ मेरे निज जन।
इनहीँ के हित भुजा बँधाई, अब बिलंब नहिँ लाऊँ।
परस करौँ तन, तरुहिँ गिराऊँ, मुनिवर-साप मिटाऊँ।
ये सुकुमार, बहुत दुख पायौ, सुत कुबेर के तारौँ।
सूरदास प्रभु कहत मनहिँ मन यह बंधन तिहवारौँ ॥३८२॥
॥१०००॥

राग धनाश्री

तबहिँ स्याम इक बुद्धि उपाई।
जुवती गईँ घरनि सब अपनैँ, गृह कारज जननी अटकाई।
आपु गए जमलार्जुन - तरु - तर, परसत पात उठे झहराई।
दिए गिराइ धरनि दोऊ तरु सुत कुबेर के प्रगटे आई।
दोउ कर जोरि करत दोउ अस्तुति, चारि भुजा तिन्ह प्रगट दिखाई।
सूर धन्य ब्रज जनम लियौ हरि, धरनी की आपदा नसाई ॥३८३॥
॥१००१॥

राग बिलावल

धनि गोविँद जो गोकुल आए।
धनि-धनि नंद धन्य निसि-बासर, धनि जसुमति जिन श्रीधर जाए।
धनि-धनि बाल-केलि जमुना-तट, धनि बन सुरभी-बृंद चराए।
धनि यह समौ, धन्य ब्रज-बासी, धनि-धनि बेनु मधुर धुनि गाए।
धनि-धनि अनख, उरहनौ धनि-धनि, धनि माखन, धनि मोहन खाए।
धन्य सूर ऊखल तरु, गोविँद हमहिँ हेतु धनि भुजा बँधाए ॥३८४॥
॥१००२॥

राग सोरठ

धन्य-धन्य ऋषि-साप हमारे।
आदि अनादि निगम नहिँ जानत, ते हरि प्रगट देह ब्रज धारे।
धन्य नंद, धनि मातु जसोदा, धनि आँगन खेलत भए बारे।
धन्य स्याम, धनि दाम बँधाए, धनि ऊखल, धनि माखन-प्यारे।

दीन-बंधु करुना-निधि हौ, प्रभु, राखि लेहु हम सरन तिहारे।
सूर स्याम कैं चरन सीस धरि, अस्तुति करि निज धाम सिधारे।
॥३८५॥१००३॥

राग बिलावल

यहै जानि गोपाल बँधाए।
साप-दग्ध ह्वै सुत कुबेर के, आनि भए तरु जुगल सुहाए।
व्याज रुदन लोचन जल ढारत, ऊखल दाम सहित चलि आए।
बिटप भांजि, जमलार्जुन तारे करि अस्तुति गोविंद रिझाए।
तुम बिनु कौन दीन खल तारे, निरगुन सगुन रूप धरि आए।
सूरदास प्रभु के गुन गावत, हरषवंत, निज पुरी सिधाए ॥३८६॥
॥१००४॥

राग रामकली

तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ।
जर सहित अरराइ कै, आघात सब्द सुनाइ।
भए चक्रित लोग व्रज के, सकुचि रहे डराइ।
कोउ रहे आकास देखत, कोउ रहे सिर नाइ।
घरिक लौं जकि रहे जहँ-तहँ, देह-गति बिसराइ।
निरखि जसुमति अजिर देखै, बँधे नाहिँ कन्हाइ।
वृच्छ दोउ धर परे देखै, महरि, कीन्ह पुकार।
अबहिं आँगन छाँड़ि आई, चप्यौ तरु की डार।
मैं अभागिनि, बाँधि राखे, नंद - प्रान - अधार।
सोर सुनि नँद - द्वार आए, बिकल गोपी ग्वार।
देखि तरु सब अति डराने, हैं बड़े बिस्तार।
गिरे कैसैं, बड़ौ अचरज, नैंकु नहीं बयार।
दुहुँ तरु बिच स्याम बैठे, रहे ऊखल लागि।
भुजा छोरि उठाइ लीन्हे, महर हैं बड़भागि।
निरखि जुवती अंग हरि के, चोट जनि कहुँ लागि।
कबहुँ बाँधति कबहु मारति, महरि बड़ी अभागि।
नैन जल भरि ढारि जसुमति, सुतहि कंठ लगाइ।
जरे रिस जिहिं तुमहिं बाँध्यौ, लगे मोहिं बलाइ।

नंद सुनि मोहिं कहा कहैंगे, देखि तरु दोउ आइ।
मैं मरौं, तुम कुशल रहौ दोउ, स्याम-हलधर भाइ।
आइ घर जो नंद देखे, तरु गिरे दोउ भारि।
बाँधि राखति सुतहिं मेरे, देत महरिहिं गारि।
तात कहि तब स्याम दौरे, महर लियौ अँकवारि।
कैसैं उबरे बृच्छ-तर तैं सूर है बलिहारि ॥३८७॥१००५॥

राग नट

मोहन हौं तुम ऊपर वारी।
कंठ लगाइ लिए, मुख चूमति, सुंदर स्याम बिहारी।
काहे कौं ऊखल सौं बाँध्यौ, कैसी मैं महतारी।
अहिहिं उतंग बयारि न लागत, क्यौं टूटे तरु भारी।
बारंबार बिचारति जसुमति, यह लीला अवतारी।
सूरदास स्वामी की महिमा, कापै जाति बिचारी ॥३८८॥
॥१००६॥

राग सारंग

अब घर काहू कैं जनि जाहु।
तुम्हरैं आजु कमी काहे की, कत तुम अनतहिं खाहु।
बरै जेंवरी जिहिं तुम बाँधे, परै हाथ भहराइ।
नंद मोहिं अतिहीं त्रासत हैं, बाँधे कुँवर कन्हाइ।
रोग जाउ मेरे हलधर के छोरत हो तब स्याम।
सूरदास प्रभु खात फिरौ जनि माखन-दधि तुव धाम ॥३८९॥
॥१००७॥

राग सारंग

व्रज-जुवती स्यामहिं उर लावतिँ।
बारंबार निरखि कोमल तनु, कर जोरतिँ, बिधि कौं जु मनावतिँ।
कैसैं बचे अगम तरु कैं तर, मुख चूमतिँ, यह कहि पछितावतिँ।
उरहन लै आवतिँ जिहिं कारन, सो सुख फल पूरन करि पावतिँ।
सुनौ महरि, इनकौं तुम बाँधति, भुज गहि बंधन चिन्ह दिखावतिँ।
सूरदास प्रभु अति रति नागर, गोपी हरषि हृदय लपटावतिँ॥
॥३९०॥१००८॥

यमलार्जुन उद्धार की दूसरी लीला *राग बिलावल*

ग्वालि उरहनौ भोरहिँ ल्याई। जसुमति कहँ तेरौ गयौ कन्हाई।
भलौ काम तैँ सुतहिँ पढ़ायौ। बारे ही तैँ मूँड़ चढ़ायौ।
माखन मथि भरि धरी कमोरी। अबहीँ सो हरि लै गयौ चोरी।
यह सुनतहिँ जसुमति रिस मानी। कहाँ गयौ कहि सारँगपानी।
खेलत तैँ औचक हरि आए। जननी बाहँ पकरि बैठाए।
मुख देखत जसुमति तब जान्यौ। माखन बदन कहाँ लपटान्यौ।
फिरि देखैँ तो ग्वारिनि पाछैँ। माता मुख चितवत नहिँ आछैँ।
चोरी के सब भाव बताए। माता सँटिया द्वैक लगाए।
माखन खान जात पर घर कौ। बाँधत तोहिँ नैँकु नहिँ धरकौ।
बाहँ गहे ढूँढ़ति फिरै डोरी। बाँधैँ तोहिँ सकै को छोरी।
बाँधि पची डोरी नहिँ पूरै। बार-बार खीझै रिस-मूरै।
घर-घर तैँ जेँवरि लै आईं। मिस ही मिस देखन कौँ धाईं।
चकित भईं देखैँ ढिग ठाढ़ी। मनौ चितेरैँ लिखि-लिखि काढ़ी।
जसुमति जोरि-जोरि रजु बाँधै। अंगुर द्वै-द्वै जेँवरि साधै।
जब जानी जननी अकुलानी। आपु बँधायौ सारँगपानी।
भक्त-हेत दाँवरी बँधाई। तब जमलार्जुन की सुधि आई।
माता हेत जनहिँ सुखकारी। जानि बँधाए श्री बनवारी।
मुख जम्हाइ त्रिभुवन दिखरायौ। चकित कियौ तुरतहिँ बिसरायौ।
बाँधि स्याम बाहिर लै आई। गोरस घर-घर खात चुराई।
ऊखल सौँ गहि बाँधे कन्हाई। नितहिँ उरहनौ सह्यौ न जाई।
इक कहि जाति एक फिरि आवै। रैनि-दिवस तू मोहिँ खिझावै।
माखन दधि तेरैँ घर नाहीँ। धाम भर्‌यौ, चोरी करि खाहीँ।
नव लख धेनु दुहत घर मेरैँ। केते ग्वाल रहत गउ घेरे।
मथतिँ नंद-घर सहस मथानी। ताकैँ सुत चोरी की बानी।
मोसौँ कहति आनि जब नारी। बोलि जात नहिँ लाजनि मारी।
नंद महर की करत नन्हाई। बिरध बयस सुत भयौ कन्हाई।
तुम्हरे गुन सब नीके जाने। नित बरज्यौ, कबहूँ नहिँ माने।
कोउ छोरै जनि ढीठ कन्हाई। बाँधे दोउ भुज ऊखल लाई।
भवन-काज कौँ गई नँदरानी। आँगन छाँड़े स्याम बिनानी।
उरहन देत ग्वालि जे आईं। तिन्हैँ दियौ जसुदा बहुराई।
चलीँ सबै मिलि सोचत मन मैँ। स्यामहिँ गहि बाँध्यौ इक छिन मैँ।

सुनत बात इक कही की नाहीँ। ऊखल सौँ बाध्यौ सुत बाहीँ।
कहा कहौँ वा छवि कौ माई। बाँबी पर अहि करत लराई।
कान्ह-बदन अतिहीँ कुम्हिलायौ। मानौ कमलहिँ हिम तरसायौ।
डर तैँ दीरघ नैन चपल अति। बदन-सुधा-रस मीन करत गति।
यह सुनि और जुवति सब आईँ। जसुमति बाँधे कतहिँ कन्हाई।
भली बुद्धि तेरे जिय उपजी। ज्यौँ-ज्यौँ दिनी भई त्यौँ निपजी।
छोरहु स्याम करहु मन लाहौ। अति निरदई भई तुम का हौ!
देखौ स्याम-और नँदरानी। सकुचि रह्यौ मुख सारँगपानी।
बाहिर बाँधि सुतहिँ बैठारौ। मथति दही माखन तोहिँ प्यारौ।
छाँड़ि देहु बहि जाइ मथानी। सौँह दिवावति छोरहु आनी।
हाँसी करत सबै तुम आईँ। अब छोरौ नहिँ कुँवर कन्हाई।
तुमहीँ मिलि रसबाद बढ़ायौ। उरहन दै-दै मूँड़ पिरायौ।
सबहिन गोधन सौँह दिवाई। चितै रहे मुख कुँवर कन्हाई।
कब तुमकौँ मैँ बोलि बुलाई। केहि कारन तुम धाई आईँ।
यह सुनि बहुरि चली बिरुझाई। कहा करौँ बलि जाउँ कन्हाई।
मूरख कौँ कोउ कहा सिखावै। याकी मति कछु कहत न आवै।
नारि गईँ फिरि भवन आतुरी। नंद-घरनि अब भई चातुरी।
ओछी बुद्धि जसोदा कीन्ही। याकी जाति अबै हम चीन्ही।
यहै कहति अपनै घर आईँ। मानै नहीँ कितौ समुझाईँ।
मथति जसोदा दही मथानी। तबहिँ कान्ह ऐसी मति ठानी।
भक्त-बछल हरि अंतरजामी। सुत कुबेर के ये दोउ नामी।
इहिँ अवतार कह्यौ इन तारन। इनकौ दुख अब करौँ निवारन।
जो जिहिँ ढँग तिहिँ ढंग सब लाए। जमला-अर्जुन पै प्रभु आए।
बृच्छ जीव ऊखल लै अटक्यौ। आगैँ निकसि नैँकु गहि झटक्यौ।
अररात दोउ बृच्छ गिरे धर। अति आघात भयौ ब्रज-भीतर।
भए चकित सब ब्रज के बासी। इहिँ अंतर दोउ कुँवर प्रकासी।
संख चक्र कर सारँग धारी। भगत-हेत प्रगटे बनवारी।
देखि दरस मन हरष बढ़ायौ। तुमहिँ बिना प्रभु कौन सहायौ।
धनि ब्रज कृष्न जहाँ बपुधारी। धनि जसुमति ब्रह्महिँ अवतारी।
धंन्य नंद, धनि-धनि गोपाला। धन्य-धन्य गोकुल की बाला।
धन्य गाइ, धनि द्रुम बन चारन। धनि जमुना हरि करत बिहारन।
धन्य उरहनौ प्रातहिँ ल्याई। धनि माखन चोरत जदुराई।

धनि सो जन ऊखल गढ़ि ल्यायौ। धन्य दाम भुज कृष्न बँधायौ।
गदगद कंठ बचन मुख भारी। सरन राखि लै गर्ब-प्रहारी।
बार-बार चरननि परे धाई। कृपा करौ भक्तनि सुखदाई।
साधु-साधु कहि श्री मुख बानी। बिदा भए इहिँ भाँति बखानी।
जमलार्जुन कौँ तारि पठाए। नंद-द्वार दोउ बृच्छ गिराए।
निकसि जसोदा आँगन आई। दुहुँ बृच्छ-बिच बचे कन्हाई।
दौरि परे ब्रज के नर-नारी। नंद-द्वार कछु होत गुहारी।
देखे आनि बृच्छ दोउ डारे। ये गुन जसुमति आहिँ तुम्हारे।
तुरत छोरि ऊखल तैँ ल्याए। देखत जननि नैन भरि आए।
ब्रज-देवता कोउ है री माई। जहाँ तहाँ सो होत सहाई।
प्रथम पूतना मारन आई। पय पीवत वह तहाँ नसाई।
तृनावर्त्त लै गयौ उड़ाई। आपुहिँ गिरयौ सिला पर आई।
कागासुर आवत नहिँ जान्यौ। सुनी कहत ज्यौं लेइ परान्यौ।
सकटासुर पलना ढिग आयौ। को जानै किहिँ ताहि गिरायौ।
कौन-कौन करबर हैँ टारे। जसुमति बाँधि अजिर लै डारे।
बहुतै उबरयौ आजु कन्हाई। ऊपर बृच्छ गिरे अरराई।
कहा कहौँ न कहत बनि आवै। तुरत आइ हरि कौन बचावै?
सबहिनि पेलि करत मन भाई। पुन्य नंद कैँ बचे कन्हाई।
मुख चूमहिँ लै-लै उर लाए। जुवतिनि किए आपु मन भाए।
लै जननी सुत कंठ लगावति। चोरी की बातैँ समुझावति।
मैँ रिस ही रिस करति लाल सौँ। भुज बाँधे मन हँसत ख्याल सौँ।
मैँ बरजे तुम करत अचगरी। उरहन कौँ ठाढ़ी रहैँ सिगरी।
बार-बार तन देखत माई। गिरत बृच्छ कहुँ चोटि न आई।
कहत स्याम मैँ अतिहिँ डरान्यौ। ऊखल तन मैँ रह्यौ छपान्यौ।
बात सुतहिँ पूछति नँदरानी। कान्ह कहै मुख डर की बानी।
हरि के चरित कहा कोउ जानै। जसुमति अति बालक करि मानै।
अखिल ब्रह्मंड जीव के दाता। माखन कौँ बाँधति है माता।
गुन अपार अविगत अबिनासी। सो प्रभु घर-घर घोष-बिलासी।
ऊखल बँध्यौ जु हेत भगत के। येइ माता येइ पिता जगत के।
जमलार्जुन कैँ मोच्छ कराए। पुत्र-हेतु जसुदा-गृह आए।
ऐसे हरि जन के सुखकारी। परगट रूप चतुर्भुज-धारी।
जो जिहिँ भाव भजै प्रभु तैसे। प्रेम बस्य दुष्टनि कौँ नैसे।

सूरदास यह लीला गावै। कहत सुनत सबकैं मन भावै।
जो हरि चरित ध्यान उर राखै। आनँद सदा दुखित-दुख नाखै।
॥३६१॥१००६॥

राग मलार

निगम सार देखौ गोकुल हरि।
जाकौं दूरि दरस देवनि कौं, सो बाँध्यौ जसुमति ऊखल धरि।
चुटकी दै-दै ग्वालि नचावति, नाचत कान्ह बाल-लीला करि।
जिहिँ डर भ्रमत पवन, रवि-ससि, जल, सो करै टहल लकुटिया सौँ डरि।
छीरसमुद्र सयन संतत जिहि, माँगत दूध पतौषी दै भरि।
सूरदास गुन के गाहक हरि, रसना गाइ अनेक गए तरि॥३६२॥
॥१०१०॥

राग सोरठ

जाको ब्रह्मा अंत न पावै।
तापै नंद की नारि जसोदा, घर की टहल करावै।
सेष, सनक, नारद, गनेस, मुनि, जाके गुन नित गावैँ।
निसि-बासर खोजत पचिहारैँ, मनसा ध्यान न आवै।
धनि गोकुल, धनि-धनि ब्रज-बनिता, निरखत स्याम बधावै।
सूरदास प्रभु प्रेमहिँ के बस, संतनि दुरस दिखावैँ॥३६३॥
॥१०११॥

राग बिलावल

गोबिंद, तेरौ सरूप निगम नेति गावैँ।
भक्ति के बस स्याम सुँदर देह धरे आवैँ।
जोगी जन ध्यान धरैँ, सपनेहुँ नहिँ पावैँ।
नंद घरनि बाँधि-बाँधि, कपी ज्यौँ नचावैँ।
गोपी जन प्रेमातुर, तिनकौँ सुख दीन्हौ।
अपनैँ-अपनैँ रस बिलास, काहू नहिँ चीन्हौ।
स्रुती, सुमृति, सब पुरान, कहत मुनि बिचारी।
सूरदास प्रेम कथा, सबही तैँ न्यारी॥३६४॥
॥१०१२॥

राग सारंग

भूखौ भयौ आजु मेरौ बारौ।
भोरहिँ ग्वारि उरहनौ ल्याई, उहिँ यह कियौ पसारौ।
पहिलेहिँ रोहिनि सौँ कहि राख्यौ, तुरत करहु जेवनार।
ग्वाल-बाल सब बोलि लिए मिलि, बैठे नंद-कुमार।
भोजन बेगि ल्याउ कछु मैया, भूख लगी मोहिँ भारी।
आजु सबारैँ कछु नहिँ खायौ, सुनत हँसी महतारी।
रोहिनि चितै रही जसुमति-तन, सिर धुनि-धुनि पछितानी।
परसहु बेगि, बेर कत लावति, भूखे सारँगपानी।
बहु ब्यंजन बहु भाँति रसोई, षटरस के परकार।
सूर स्याम हलधर दोउ भैया, और सखा सब ग्वार ॥३६५॥
॥१०१३॥

राग सारंग

नंद-भमन मैँ कान्ह अरोगैँ। जसुदा ल्यावैँ षटरस भोगैँ।
आसन दै, चौकी आगैँ धरि। जमुना-जल राख्यौ झारी भरि।
कनक-थार मैँ हाथ धुवाए। सत्रह सौ भोजन तहँ आए।
लै-लै धरति सबनि के आगैँ। मातु परोसै जो हरि माँगैँ।
खीर, खाँड़, घृत, लावनि लाडू। ऐसे होहिं न अमृत खाँडू।
और लेहु कछु सुख ब्रज-राजा। लुलुई, लपसी, घेवर, खाजा।
पेठापाक, जलेबी, कौरी। गोँदपाक, तिनगरी, गिँदौरी।
गुझा, इलाचीपाक, अमिरती। सीरा साजौ लेहु ब्रजपती।
छोलि धरे खरबूजा, केरा। सीतल बास करत अति घेरा।
खरिक, दाख अरु गरी, चिरारी। पिंड बदाम लेहु बनवारी।
बेसन-पुरी, सुख-पुरी लीजै। आछौ दूध कमल-मुख पीजै।
मैया मोहिँ और क्यौं प्यावै। धौरी कौ पय मोहिँ अति भावै।
बेला भरि हलधर कौँ दीन्हौ। पीवत पय अस्तुति बल कीन्हौ।
ग्वाल सखा सबहीँ पय अँचयौ। नीकैँ औटि जसोदा रचयौ।
दोना मेलि धरे हैँ खूआ। हौँस होइ तौ ल्याऊँ पूआ।
मीठे अति कोमल हैँ नीके। ताते, तुरत चभोरे घी के।
फेनी, सेव, अँदरसे प्यारे। लै आवौँ जैँवौ मेरै बारे।
हलधर कहत ल्याउ री मैया। मोकौँ दै नहिँ लेत कन्हैया।

जसुमति हरष भरी लै परसति। जेँवत हैँ अपनी रुचि सौँ अति।
कान्ह माँगि सीतल जल लीयौ। भोजन बीच नीर लै पीयौ।
भात पसाइ रोहिनी ल्याई। घृत सुगंधि तुरतै दै ताई।
नीलावती चाँवर दिव-दुर्लभ। भात परोस्यौ माता सुरलभ।
मूँग मसूर उरद चनदारी। कनक-फटक धरि फटकि पछारी।
रोटी, बाटी, पोरी, झोरी। इक कोरी इक घोव चभोरी।
गायौ-घृत भरि धरी कटोरी। कछु खायौ कछु फेरैँ छोरी।
मीठैँ तेल चना की भाजी। एक मकूनी दै मोहिँ साजी।
मीठे चरपर उज्ज्वल कूरा। हौँस होइ तौ ल्याऊँ मूरा।
मूग-पकौरा पनौ पतवरा। इक कोरे इक भिजे गुरबरा।
पापर बरी मिथौरि फुलौरी। कूर बरी काचरी पिठौरी।
बहुत मिरच दै किए निमोना। बेसन के दस बीसक दोना।
बन कौरा पिंडीक चिचिंडी। सीप पिँड़ारू कोमल भिंडी।
चौराई लाल्हा अरु पोई। मध्य मेलि निवुआनि निचोई।
रुचिर लजालु लोनिका फाँगी। कढ़ी कृपालु दूसरैँ माँगी।
सरसौँ, मेथी, सोवा, पालक। बथुआ राँधि लियौ जु उतालक।
हीँग हरद मिरच छौँके तेले। अदरख और आँवरे मेले।
सालन सकल कपूर सुबासत। स्वाद लेत सुंदर हरि ग्रासत।
आँब आदि दै सबै सँधाने। सब चाखे गोबर्धन-राने।
कान्ह कह्यौ हौँ मातु अघानौ। अब मोकौँ सीतल जल आनौ।
अँचवन लै तब धोए कर मुख। सेष न बरनै भोजन कौ सुख।
उज्ज्वल पान, कपूर, कस्तुरी। आरोगत मुख की छबि रूरी।
चंदन अंग सखनि कैँ चरच्यौ। जसुमति के सुख कौँ नहिँ परच्यौ।
जूठनि माँगि सूर जन लीन्हौ। बाँटि प्रसाद सबनि कौँ दीन्हौ।
जन्म-जन्म बाढ़्यौ जूठनि कौ। चेरौ नंद महर के धन कौ ॥३९६॥
॥१०१४॥

राग धनाश्री

आरोगत हैँ श्रीगोपाल

षटरस सौँज बनाइ जसोदा, रचिकै कंचन-थाल।
करति बयारि निहारति हरि-मुख, चंचल नैन बिसाल।
जो भावै सो माँगि लेहु तुम, माधुरि मधुर रसाल।

जे दरसन सनकादिक दुर्लभ, ते देखतिँ ब्रज-बाल।
सूरदास प्रभु कहति जसोदा, चिरजीवौ नँद-लाल ॥३६७॥
॥१०१५॥

राग कान्हरौ

मोहिँ कहतिँ जुवती सब चोर।
खेलत कहूँ रहौँ मैँ बाहिर, चितै रहतिँ सब मेरी ओर।
बोलि लेतिँ भीतर घर अपनैँ, मुख चूमतिँ, भरि लेतिँ अँकोर।
माखन हेरि देतिँ अपनैँ कर, कछु कहि बिधि सौँ करतिँ निहोर।
जहाँ मोहिँ देखतिँ, तहँ टेरतिँ, मैँ नहिँ जात दुहाई तोर।
सूर स्याम हँसि कंठ लगायौ, वै तरुनी कहँ बालक मोर ॥३६८॥
॥१०१६॥

राग केदारौ

जसुमति कहति कान्ह मेरे प्यारे, अपनैँ ही आँगन तुम खेलौ।
बोलि लेहु सब सखा संग के, मेरौ कह्यौ कबहुँ जिनि पेलौ।
ब्रज-बनिता सब चोर कहतिँ तोहिँ, लाजनि सकुचि जात मुख मेरौ।
आजु मोहिँ बलराम कहत हे, झूठहिँ नाम धरति हैँ तेरौ।
जब मोहिँ रिस लागति तब त्रासति, बाँधति, मारति, जैसैँ चेरौ।
सूर हँसति ग्वालिनि दै तारी, चोर नाम कैसैँहु सुत फेरौ ॥३६९॥
॥१०१७॥

गो-दोहन *राग बिलावल*

धेनु दुहत हरि देखत ग्वालनि।
आपनु बैठि गए तिनकैँ सँग, सिखवहु मोहिँ कहत गोपालनि।
कालिह तुम्हैँ गो दुहन सिखावैँ, दुहीँ सबै अब गाइ।
मोर दुहौ जनि नंद-दुहाई, उनसौँ कहत सुनाइ।
बड़ौ भयौ अब दुहत रहौँगौ, अपनी धेनु निबेरि।
सूरदास प्रभु कहत सौँह दै, मोहिँ लीजौ तुम टेरि ॥४००॥
॥१०१८॥

राग कान्हरौ

मैँ दुहिहौँ मोहिँ दुहन सिखावहु।
कैसैँ गहत दोहनी घुटुवनि कैसैँ बछरा थन लै लावहु।

कैसैं लै नोई पग बाँधत, कैसैं लै गैया अटकावहु।
कैसैं धार दूध की बाजति, सोइ सोइ बिधि तुम मोहिँ बतावहु।
निपट भई अब साँझ कन्हैया, गैयनि पै कहुँ चोट लगावहु।
सूर स्याम सैाँ कहत ग्वाल सब, धेनु दुहन प्रातहि उठि आवहु।
॥४०१॥१०१९॥

राग सारंग

बृंदाबन-प्रस्थान

महर-महरि कैं मन यह आई।
गोकुल होत उपद्रव दिन प्रति, बसिऐ बृंदाबन मैं जाई।
सब गोपनि मिलि सकटा साजे, सबहिनि के मन मैं यह भाई।
सूर जमुन-तट डेरा दीन्हे, पाँच बरष के कुँवर कन्हाई॥४०२॥
॥१०२०॥

राग बिलावल

जागौ हो तुम नंद-कुमार।
हौं बलि जाउँ मुखारबिंद की, गो सुत मेलौ खरिक सम्हार।
अब लौं कहा सोए मन मोहन, और बार तुम उठत सबार।
बारहिँ बार जगावति माता, अंबुज-नैन भयौ भिनुसार।
दधि मथि कै माखन बहु दैहौं सकल ग्वाल ठाढ़े दरबार।
उठि कै मोहन बदन दिखावहु, सूरदास के प्रान-अधार॥४०३॥
॥१०२१॥

राग बिलावल

जागहु हो ब्रजराज हरी।
लै मुरली आँगन ह्वै देखो, दिनमनि उदित भए द्विघरी।
गो-सुत गोठ बँधन सब लागे, गो-दोहन की जून टरी।
मधुर बचन कहि सुतहिँ जगावति, जननि जसोदा पास खरी।
भोर भयौ दधि-मथन होत, सब ग्वाल सखनि की हाँक परी।
सूरदास प्रभु दरसन कारन, नींद छुड़ाई चरन धरी॥४०४॥
॥१०२२॥

राग बिलावल

जागहु लाल ग्वाल सब टेरत।
कबहुँ पितंबर डारि बदन पर, कबहुँ उघारि जननि तन हेरत।

सोवत मैं जागत मनमोहन, बात सुनत सबकी, अवसेरत।
बारंबार जगावति माता, लोचन खोलि पलक पुनि गेरत।
पुनि कहि उठी जसोदा मैया, उठहु कान्ह रबि किरनि उजेरत।
सूर स्याम, हँसि चितै मातु-मुख, पट कर लै, पुनि-पुनि मुख फेरत।
॥४०५॥१०२३॥

राग सूहा बिलावल

जननि जगावति उठौ कन्हाई। प्रगट्यौ तरनि, किरनि महि छाई।
आवहु चंद्रबदन दिखराई। बार-बार जननी बलि जाई।
सखा द्वार सब तुमहिं बुलावत। तुम कारन हम धाए आवत।
सूर स्याम उठि दरसन दीन्हौ। माता देखि मुदित मन कीन्हौ।
॥४०६॥१०२४॥

राग रामकली

दाऊ जू, कहि स्याम पुकार्‌यौ।
नीलांबर कर ऐंचि लियौ हरि, मनु बादर तैं चंद उजार्‌यौ।
हँसत-हँसत दोउ बाहिर आए, माता लै जल बदन पखार्‌यौ।
दतवनि लै दुहुँ करी मुखारी, नैंननि कौ आलस जु बिसार्‌यौ।
माखन लै दाउनि कर दीन्हौ, तुरत-मथ्यौ, मीठौ अति भार्‌यौ।
सूरदास प्रभु खात परस्पर, माता अंतर-हेत बिचार्‌यौ॥४०७॥

राग बिलावल

जागहु - जागहु नंद - कुमार।
रवि बहु चढ़्यौ, रैनि सब निघटी, उचटे सकल किवार।
वारि वारि जल पियति जसोदा, उठि मेरे प्रान-अधार।
घर-घर गोपी दह्यौ बिलोवैं, कर-कंकन झंकार।
साँझ दुहन तुम कह्यौ गाइकौं, तातैं होति अबार।
सूरदास प्रभु उठे तुरत हीं, लीला अगम अपार॥४०८॥
॥१०२६॥

राग बिलाबल

तनक कनक की दोहनी, दै-दै री मैया।
तात दुहन सीखन कह्यौ, मोहिं धौरी गैया।
अटपट आसन बैठि कै, गो-थन कर लीन्हौ।
धार अनतहीं देखि कै, ब्रजपति हँसि दीन्हौ।

घर-घर तैं आईं सबै, देखन ब्रज-नारी।
चितै चतुर चित हरि लियौ, हँसि गोप-बिहारी।
बिप्र बोलि आसन दियौ, कह्यौ बेद उचारी।
सूर स्याम सुरभी दुही, संतनि हितकारी ॥४०९॥
॥१०२७॥

राग देवगंधार

बछरा चारन चले गोपाल।
सुबल, सुदामा अरु श्रीदामा, संग लिए सब ग्वाल।
बछरनि कौं बन माँझ छाँड़ि सब खेलत खेल अनूप।
दनुज एक तहँ आइ पहूँच्यौ धरे बत्स कौ रूप।
हरि हलधर दिसि चितै कह्यौ तुम जानत हौ इहिं बीर।
कह्यौ आदि दानव इक मारौ धारे बत्स - सरीर।
तब हरि सींग गह्यौ इक कर सौं इक कर सौं गह्यौ पाइ।
थारेक ही बल सौं छिन भीतर दीनौ ताहि गिराइ।
गिरत धरनि पर प्रान निकसि गए फिरि नहिं आयौ स्वास।
सूरदास ग्वालनि सँग मिलि हरि लागे करन बिलास ॥४१०॥
॥१०२८॥

गो-चरण *राग रामकली*

आजु मैं गाइ चरावन जैहौं।
बृंदाबन के भाँति-भाँति फल अपने कर मैं खैहौं।
ऐसी बात कहौ जनि बारे, देखौ अपनी भीति।
तनक-तनक पग चलिहौ कैसैं, आवत ह्वैहै रीति।
प्रात जात गैया लै चारन, घर आवत हैं साँझ।
तुम्हरौ कमल बदन कुम्हिलैहै, रेंगत घामहिं माँझ।
तेरी सौं मोहिं घाम न लागत, भूख नहीं कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत, पर्‌यौ आपनी टेक ॥४११॥
॥१०२९॥

राग रामकली

मैया हौं गाइ चरावन जैहौं।
तू कहि महर नंद बाबा सौं, बड़ो भयौ न डरैहौं।

रैता, पैता, मना, मनसुखा, हलधर संगहि रैहौं।
बंसीबट तर ग्वालनि कैं सँग, खेलत अति सुख पैहौं।
ओदन भोजन दै दधि काँवरि, भूख लगे तैं खैहौं।
सूरदास है साखि जमुन-जल सौंह देहु जु नहैहौं ॥४१२।
॥१०३०॥

राग रामकली

चले सब गाइ चरावन ग्वाल।
हेरी टेर सुनत लरिकनि के, दौरि गए नँदलाल।
फिरि इत-उत जसुमति जा देखै, दृष्टि न परै कन्हाई।
जान्यौ जात ग्वाल सँग दौर्‌यौ, टेरति जसुमति धाई।
जात चल्यौ गैयन के पाछैं, बलदाऊ कहि टेरत।
पाछैं आवति जननी देखी, फिरि-फिरि इत कौं हेरत।
बल देख्यौ मोहन कौं आवत, सखा किए सब ठाढ़े।
पहुँची आइ जसोदा रिस भरि, दोउ भुज पकरे गाढ़े।
हलधर कह्यौ, जान दै मो सँग, आवहिँ आज सबारे।
सूरदास बल सौं कहै जसुमति, देखे रहियौ प्यारे ॥४१३॥
॥१०३१॥

राग बिलावल

खेलत कान्ह चले ग्वालनि सँग।
जसुमति यहै कहत घर आई हरि कीन्हे कैसे रँग।
प्रातहिँ तैं लागे याही ढँग अपनी टेक कर्‌यौ है।
देखौ जाइ आजु बन कौ सुख कहा परोसि धर्‌यौ है।
माखन-रोटी अरु सीतल जल, जसुमति दियो पठाइ।
सूर नंद हसि कहत महरि सौं, आवत कान्ह चराइ ॥४१४॥
॥१०३२॥

राग सारंग

बृंदाबन देख्यौ नँद-नंदन, अतिहिँ परम सुख पायौ।
जहँ-जहँ गाइ चरतिँ, ग्वालनि सँग, तहँ-तहँ आपुन धायौ।
बलदाऊ मोकौं जनि छाँड़ौ, संग तुम्हारैं ऐहैं।
कैसेहुँ आजु जसोदा छाँड़्यौ, काल्हि न आवन पैहैं।

सोवत मोकौं टेरि लेहुगे, बाबा नंद-दुहाई।
सूर स्याम बिनती करि बल सौं, सखनि समेत सुनाई ॥४१५॥
॥१०३३॥

राग सारंग

हरि जू कौं ग्वालिनि भोजन ल्याई।
बृंदा बिपिन बिसद जमुना-तट, सुचि ज्यौनार बनाई।
सानि-सानि दधि भात लियौ कर, सुहृद सखनि कर देत।
मध्य-गोपाल-मंडली मोहन, छाक बाँटि कै लेत।
देवलोक देखत सब कौतुक, बाल-केलि अनुरागे।
गावत सुनत सुजस सुख करि मन, सूर दुरित दुख भागे।
॥४१६॥१०३४॥

राग गौरी

बन तैं आवत धेनु चराए।
संध्या समय साँवरे मुख पर, गो-पद-रज लपटाए।
बरह-मुकुट कैं निकट लसति लट, मधुप मनौ रुचि पाए।
बिलसत सुधा जलज-आनन पर, उड़त न जात उड़ाए।
विधि-बाहन-भच्छन की माला, राजत उर पहिराए।
एक बरन बपु नहिँ बड़ छोटे, ग्वाल बने इक धाए।
सूरदास बलि लीला प्रभु की, जीवत जन जस गाए ॥४१७॥
॥१०३५॥

राग गौरी

जसुमति दौरि लिए हरि कनियाँ।
आजु गयौ मेरौ गाइ चरावन, हौं बलि जाउँ निछनियाँ।
मो कारन कछु आन्यौ है बलि, बन-फल तोरि नन्हैया।
तुमहिं मिलैं अति सुख पायौ, मेरे कुँवर कन्हैया।
कछुक खाहु जो भावै मोहन, दै री माखन-रोटी।
सूरदास प्रभु जीवहु जुग-जुग हरि हलधर की जोटी ॥४१८॥
॥१०३६॥

राग गौरी

माखन-रोटी ताती-ताती लेहु कन्हैया बारे।
मन मैं रुचि उपजावै, भावै, त्रिभुवन के उजियारे।

और लेहु पकवान, मिठाई, बहु बिधि व्यंजन सारे।
औट्यौ दूध, सद्य दधि, घृत, मधु रुचि सौं खाहु लला रे।
तब हरि उठिकै करी बियारी, भक्तनि-प्रान-पियारे।
सूर स्याम भोजन करि कै, सुचि जल सैं बदन पखारे ॥४१६॥
॥१०३७॥

राग सारंग

मैं अपनी सब गाइ चरैहैं।
प्रात होत बल कैं सँग जैहैं, तेरे कहैं न रैहैं।
ग्वाल बाल गाइनि के भीतर, नैंकहुँ डर नहिं लागत।
आजु न सोवौं नंद-दुहाई, रैनि रहौंगौ जागत।
और ग्वाल सब गाइ चरैहैं मैं घर बैठौ रैहैं?
सूर स्याम तुम सोइ रहौ अब, प्रात जान मैं देहैं ॥४२०॥
॥१०३८॥

राग केदारौ

बहुतै दुख हरि सोइ गयौ री।
साँझहिं तैं लाग्यौ इहि बातहिं, क्रम-क्रम बोधि लयौ री।
एक दिवस गयौ गाइ चरावन, ग्वालनि संग सबारै।
अब तौ सोइ रह्यौ है कहि कै, प्रातहिं कहा बिचारै।
यह तौ सब बलरामहिं लागै, सँग लै गयौ लिवाइ।
सूर नंद यह कहत महरि सैं, आवन दै फिरि धाइ ॥४२१॥
॥१०३९॥

राग कान्हरौ

पौढ़े स्याम जननि गुन गावत।
आजु गयौ मेरौ गाइ चरावन कहि-कहि मन हुलसावत।
कौन पुन्य तप तैं मैं पायौ ऐसौ सुंदर बाल।
हरषि-हरषि कै देति सुरनि कौं सूर सुमन की माल ॥४२२॥
॥१०४०॥

राग बिलावल

करहु कलेऊ कान्ह पियारे।
माखन-रोटी दियौ हाथ पर, बलि-बलि जाउँ जु खाहु ललारे।

टेरत ग्वाल द्वार हैं ठाढ़े, आए तब के होत सबारे।
खेलहु जाइ घोष के भीतर, दूरि कहूँ जनि जैयहु बारे।
टेरि उठे बलराम स्याम कौं, आवहु जाहिँ धेनु बनचारे।
सूर स्याम कर जोरि मातु सौं, गाइ चरावन कहत हहा रे ॥४२३॥
॥१०४१॥

राग बिलावल

मैया री मोहिँ दाऊ टेरत।
मोकौं बन-फल तोरि देत हैँ, आपुन गैयनि घेरत।
और ग्वाल सँग कबहुँ न जैहौँ, वै सब मोहिँ खिझावत।
मैँ अपने दाऊ सँग जैहौँ, वन देखैँ सुख पावत।
आगैँ दै पुनि ल्यावत घर कौँ, तू मोहिँ जान न देति।
सूर स्याम जसुमति मैया सौँ हा-हा करि कहै केति ॥४२४॥
॥१०४२॥

राग सारंग

बोलि लियौ बलरामहिँ जसुमति।
लाल सुनौ हरि के गुन, काल्हिहिँ तैँ लँगराई करत अति।
स्यामहिँ जान देहि मेरैँ सग, तू काहैँ डर मानति।
मैँ अपने ढिग तैँ नहिँ टारौँ जियहिँ प्रतीति न आनति।
हँसी महरि बल की बतियाँ सुनि, बलिहारी या मुख की।
जाहु लिवाइ सूर के प्रभु कौँ, कहति बीर के रुख की ॥४२५॥
॥१०४३॥

राग नट

अति आनंद भए हरि धाए।
टेरत ग्वाल-बाल सब आवहु, मैया मोहिँ पठाए।
उत तैँ सखा हसत सब आवत, चलहु कान्ह बन देखहिँ।
बनमाला तुमकौँ पहिरावहिँ, धातु-चित्र तनु रेखहिँ।
गाइ लईँ सब घेरि घरनि तैँ, महर गोप के बालक।
सूर स्याम चले गाइ चरावन, कंस उरहिँ के सालक ॥४२६॥
॥१०४४॥

बकासुर-बध राग सारंग

बन-बन फिरत चारत धेनु।
स्याम हलधर संग सँग बहु गोप-बालक-सेनु।
तृषित भए सब जानि मोहन, सखनि टेरत बेनु।
बोलि ल्यावहु सुरभि-गन, सब चलौ जमुन-जल देनु।
सुनत हीँ सब हाँकि ल्याए, गाइ करि इक ठैन।
हेरि दै दै ग्वाल-बालक, कियौ जमुन-तट गैन।
बकासुर रचि रूप माया, रह्यौ छल करि आइ।
चोँच इक पुहुमी लगाई, इक अकास समाइ।
आगैँ बालक जात हे ते पाछैँ आए धाइ।
स्याम सौँ वै कहन लागे, आगैँ एक बलाइ।
नितहिँ आवत सुरभि लीन्हे, ग्वाल गो-सुत संग।
कबहुँ नहिँ इहिँ भाँति देख्यौ आजु कैसौ रंग।
मनहिँ मन तब कृष्न भाष्यौ, यह बकासुर अंग।
चोँच फारि बिदारि डारौँ, पलक मैँ करौँ भंग।
निदरि चले गोपाल आगैँ, बकासुर कैँ पास।
सखा सब मिलि कहन लागे, तुम न जिय की आस।
अजहुँ नाहिँ डरात मोहन, बचे कितनै गाँस।
तब कह्यौ हरि, चलहु सब मिलि, मारि करहिँ बिनास।
चले सब मिलि, जाइ देख्यौ, अगम तन बिकरार।
इत धरनि उत ब्योम कैँ बिच, गुहा कैँ आकार।
पैठि बदन बिदारि डार्‌यौ, अति भए बिस्तार।
मरत असुर चिकार पार्‌यौ, मार्‌यौ, नंद-कुमार।
सुनत धुनि सब ग्वाल डरपे अब न उबरै स्याम।
हमहिँ बरजत गयौ, देखौ, किए कैसे काम।
देखि ग्वालनि विकलता तब, कहि उठे बलराम।
बका-बदन बिदारि डार्‌यौ, अबहिँ आवत स्याम।
सखा हरि तब टेरि लीन्हे, सबै आवहु धाय।
चोँच फारि बका सँहार्‌यौ, तुमहु करहु सहाय।
निकट आए गोप-बालक, देखि हरि सुख पाए।
सूर प्रभु के चरित अगनित, नेति निगमनि गाए ॥४२७॥
॥१०४५॥

राग सारंग

व्रज मैं को उपज्यौ यह भैया।
संग सखा सब कहत परस्पर, इनके गुन अगमैया।
जब तैं व्रज अवतार धर्यौ इन, कोउ नहिँ घात करैया।
तृनावर्त पूतना पछारी, तब अति रहे नन्हैया।
कितिक बात यह बका बिदार्यौ, धनि जसुमति जिनि जैया।
सूरदास प्रभु की यह लीला, हम कत जिय पछितैया ॥४२८॥
॥१०४६॥

राग धनाश्री

बका बिदारि चले व्रज कौँ हरि।
सखा संग आनंद करत सब, अंग-अंग बन-धातु चित्र करि।
बनमाला पहिरावत स्यामहिं बार-बार अँकवार भरत धरि।
कंस निपात करौगे तुमहीँ, हम जानी यह बात सही परि।
पुनि-पुनि कहत धन्य नँद जसुमति, जिनि इनकौँ जनम्यौ सो धनि धरि।
कहत इहै सब जात सूर प्रभु, आनँद-आँसु ढरत लोचन भरि।
॥४२९॥१०४७॥

राग कान्हरौ

व्रज-बालक सब जाइ तुरतहीँ, महर-महरि कैं पाइ परे।
ऐसौ पूत जन्यौ जग तुमहीँ धन्य कोखि जिहिं स्याम धरे।
गाइ लिवाइ गए बृंदाबन, चरत चलीँ जमुमा-तट हेरि।
असुर एक खग-रूप धरि रह्यौ, बैठ्यौ तीर, बाइ मुख घेरि।
चौँच एक पुहुमी करि राखी एक रह्यौ तो गगन लगाइ।
हम बरजत पहिलेहिँ हरि धायौ, बदन चीरि पल माँहिँ गिराइ।
सुनत नंद जसुमति चक्रित चित चक्रित गोकुल के नर-नारि।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, तब जननी भरि लए अँकवारि।
॥४३०॥१०४८॥

अघासुर-वध *राग धनाश्री*

नंदराइ-सुत लाड़िले, सब-व्रज-जीवन-प्रान।
बार-बार माता कहै, जागहु स्याम सुजान।

जसुमति लेति बनाइ, भोर भयौ उठौ कन्हाई।
संग लिए सब सखा, द्वार ठाढ़े बल भाई।
सुंदर बदन दिखाइ कै, हरौ नैन कौ तापु।
नैन कमल सुख धोइ कछु करी कलेऊ आपु।
माखन-रोटी लेहु सद्य दधि रैनि जमायौ।
षटरस के मिष्टान्न, सु जँवहु जो रुचि आयौ।
मो पै लीजै माँगि कै, जोइ-जोइ भावै तोहिँ।
सँग जेंवहु बलराम कैँ, रुचि उपजावहु मोहिँ।
तब हँसि चितए स्याम, सेज तैँ बदन उघारयौ।
मानहुँ पय-निधि मथत, फेन फटि चंद उजारयौ।
सखा सुनत देअन चले, मानहुँ चंद चकोर।
जुगल कमल मनु इंदु पर, बैठि रहे अति भोर।
तब उठि आए कान्ह, मातु जल बदन पखारयौ।
बोलि उठे बलराम, स्याम कत उठे सबारयौ।
दाऊ जू कहि, हँसि मिले, बाहँ गही बैठाइ।
माखन-रोटी सद दही, जेँवत रुचि उपजाइ।
जल अँचयौ, मुख धोइ, उठे बल-मोहन भाई।
गाइ लईँ सब घेरि, चले बन कुँवर कन्हाई।
टेर सुनत बलराम की, आए बालक धाइ।
लै आए सब जोरि कै, घर तैँ बछरा गाइ।
सखनि कान्ह सौँ कह्यौ, आजु वृंदाबन जैऐ।
जमुना-तट तृन बहुत, सुरभि-गन तहाँ चरैऐ।
ग्वाल गाइ सब लै गए, बृंदाबन समुहाइ।
अतिहिँ सघन बन देखिकै, हरषि उठे सब गाइ।
कोउ टेरत, कोउ हाँकि सुरभि-गन, जोरि चलावत।
कोऊ हेरी देत, परस्पर स्याम सिखावत।
अंतरजामी कहत जिय, हमहिँ सिखावत टेरि।
कान्ह कहत अब गाइ जे गईँ सु लीजै फेरि।
कोउ मुरली कोउ बेनु-सब्द, सृंगी कोउ पूरैँ।
कृष्न कियौ मन ध्यान असुर इक बसत अँधेरैँ।
बालक बछरनि राखिहौँ, एक बार लै जाउँ।
कछुक जनाऊँ अपुनपौ, अब लौँ रह्यौ सुभाउ।

असुर-कुलहिँ संहारि, धरनि कौ भार उतारौँ।
कपट रूप रचि रह्यौ दनुज, इहिँ तुरत पछारौँ।
गिरि समान धरि अगम तन बैठ्यौ बदन पसारि।
मुख भीतर बन घन नदी, छल माया करि भारि।
पैठि गए मुख ग्वाल धेनु बछरा सँग लीने।
देखि महाबन भूमि हरे, तृन-द्रुम कृत कीने।
कहन लगे सब आपुन मैँ सुरभी चरैँ अघाइ।
मानहुँ पर्वत-कंदरा, मुख सब गए समाइ।
जब मुख गए समाइ, असुर तब चाब सकोर्‍यौ।
अंधकार इमि भयौ मनहुँ निसि बादर जोर्‍यो।
अतिहिँ उठे अकुलाइ कै, ग्वाल बच्छ सब गाइ।
त्राहि-त्राहि करि कहि उठे, परे कहाँ हम आइ।
धीर-धीर कहि कान्ह, असुर यह, कंदर नाहीँ।
अनजानत सब परे अघा-मुख-भीतर माहीँ।
जिय लाग्यौ यह सुनत हीँ, अब को सकै उबारि।
बातैँ दूनी देह धरी, असुर न सक्यौ सम्हारि।
सबद कर्‍यौ आघात, अघासुर टेरि पुकार्‍यौ।
रह्यौ अधर दोउ चाँपि, बुद्धि बल सुरति बिसार्‍यौ।
ब्रह्म द्वार सिर फोरि कै, निकसे गोकुलराइ।
बाहिर आवहु निकसि कै, मैँ करि लियौ सहाइ।
बालक बछरा धेनु सबै मन अतिहिँ सकाने।
अंधकार मिटि गयौ देखि जहँ-तहँ अतुराने।
आए बाहिर निकसि कै, मन सब कियौ हुलास।
हम अजान कत डरत हैँ, कान्ह हमारैँ पास।
धन्य कान्ह, धनि नंद, धन्य जसुमति महतारी।
धन्य लियौ अवतार, कोखि धनि, जहँ दैतारी।
गिरि-समान तन अगम अति, पन्नग की अनुहारि।
हम देखत पल एक मैँ मार्‍यौ दनुज प्रचारि।
हरि हँसि बोले बैन, संग जौ तुम नहिँ होते?
तुम सब कियौ सहाइ, भयौ तब कारज मोते।
हमहुँ तुमहुँ मिलि बैठि बन, भोजन करैँ अघाइ।
बंसीबट भोजन बहुत, जसुमति दियौ पठाइ।

ग्वाल परम सुख पाइ, कोटि मुख करत प्रसंसा।
कहा बहुत जो भए, सपूतौ एकै बंसा।
चढ़ि बिमान सुर देखहीं, गगन रहे भरि छाइ।
जय-जय धुनि नभ करत हैं, हरष पुहुप बरषाइ।
ब्रह्मा सुनी यह बात, अमर-घर-घरनि कहानी।
गोकुल लीन्हौ जन्म, कौन मैं यह नहिं जानी।
देखौं इनकी खोज लै, सोच परयौ मन माहिं।
सूर स्याम ग्वालनि लए, चले बंसीबट-छाँहि ॥४३१॥
॥१०४६॥

राग सोरठ

गोबिंद चलत देखियत नीके।
मध्य गोपाल मंडली राजत, काँधैं धरि लिए सीके।
बछरा-बृंद घेरि आगैं करि, जन-जन सृंग बजाए।
जनु बन कमल सरोवर तजि कै, मधुप उनींदे आए।
बृंदाबन प्रवेसि अघ मारयौ, बालक जसुमति, तेरैं।
सूरदास प्रभु सुनत जसोदा, चितै बदन प्रभु केरैं ॥४३२॥
॥१०५०॥

राग बिलावल

आजु जसोदा जाइ कन्हैया महा दुष्ट इक मारयौ।
पन्नग-रूप गिले सिसु गो-सुत इहिं सब साथ उबारयौ।
गिरि-कंदरा समान भयानक जब अघ बदन पसारयौ।
निडर गोपाल पैठि मुख-भीतर, खंड-खंड करि डारयौ।
याकैं बल हम बदत न काहुहिं, सकल भूमि तृन चारयौ।
जीते सबै असुर हम आगैं, हरि कबहूं नहिं हारयौ।
हरषि गए सब कहत महरि सौं, अबहिं अघासुर मारयौ।
सूरदास प्रभु की यह लीला ब्रज कौ काज सँवारयौ ॥४३३॥
॥१०५१॥

राग नट

जसुमति सुनि-सुनि चकित भई।
मैं बरजति बन जात कन्हैया, का धौं करे दई।

कहाँ-कहाँ तैं उबर्यौ मोहन, नैंकु न तऊ डारत।
आपुन कहा तनक सौ, बन मैं, सुनौं बहुत मैं घात।
मेरौ कह्यौ सुनौ जो स्रवननि कहति जसोदा खीझत।
सूर स्याम कह्यौ बन नहिं जैहौं, यह कहि मन-मन रीझत।
॥४३४॥१०५२॥

रागगौरी

अघा मारि आए नँदलाल।
ब्रज-जुवती सुनि कै सुनि धाईं, घर-घर कहत फिरत सब ग्वाल।
निरखत बदन चकित भईं सुंदरि, मनहीं मन यह करि अनुमान।
कहतिं परस्पर, सत्य बात यह, कौन करै इनकी सरि आन!
येई हैं रति-पति के मोहन, येई हैं हमरे पति-प्रान।
सूर स्याम जननी-मन मोहत, बार-बार माँगत कछु खान॥४३५॥
॥१०५३॥

ब्रह्मा-बालक-वत्स-हरण *राग नटनारायन*

बिधि मनहीं मन सोच पर्यौ।
गोकुल की रचना सब देखत, अति जिय माहिं डर्यो।
मैं बिरंचि बिरच्यौ जग मेरौ, यह कहि, गर्व बढ़ायौ।
ब्रज-नर-नारि ग्वाल-बालक, कहि, कौनैं ठाटि रचायौ।
बृंदाबन, बट सघन बृच्छ तर, मोहन सबै बुलाए।
सखा संग मिलि करि बन-भोजन, बिधि मन भ्रम उपजाए।
धेनु रहीं बन भूमि कहूँ ह्वै, बालक भ्रमत न पाए।
यातैं स्याम अतिहिं अतुराने, तुरत तहाँ उठि धाए।
बालक-बच्छ हरे चतुरानन, ब्रह्मलोक पहुँचाए।
सूरदास प्रभु गर्व बिनासन, नव कृत फेरि बनाए॥४३६॥
॥१०५४॥

राग धनाश्री

हरष भए नँदलाल बैठि तरु छाँह के ध्रुव।
बंसीबट अति सुखद, और द्रुम पास चहूँ हैं।
सखा लिए तहँ गए, धेनु बन चरतिं कहूँ हैं।

बैठि गए सुख पाइ कै, ग्वाल-बाल लिए साथ।
अति आनँद पुलकित हिएँ, गावत हरि-गुन-गाथ।
अहिर लिए मधु - छाक, तुरत बृंद्राबन आए।
ब्यंजन सहस प्रकार, जसोदा बनै पठाए।
स्याम कह्यौ बन चलत हीं, माता सौं समुझाइ।
उत तैं वै आए सबै, देखत हीं सुख पाइ।
कान्ह देखि मधु-छाक, पुलकि अँग-अंग बढ़ायौ।
हँसि-हँसि बोले तबै, प्रेम सौं जननि पठायौ।
नीक पहुँचे आइ तुम, भलौ बन्यौ संजोग।
बार-बार कह्यौ सखनि सों, आजु करैं सुख-भोग।
बन-भोजन बिधि करत, कमल के पात मँगाए।
तोरे पात पलास, सरस दोना बहु लाए।
भाँति-भाँति भोजन धरे, दधि-लवनी-मिष्टान्न।
बन फल लए मँगाइ कै, रुचि करि लागे खान।
बन-भोचन हरि करत संग मिलि सुबल सुदामा।
स्याम कुँवर परसेन महर-सुत अरु श्रीदामा।
स्याम सबनि मिलि खात हैं लै-लै कौर छुड़ाइ।
औरनि लेत बुलाइ ढिग, डहकि आपु मुख नाइ।
ब्रह्मा देखि बिचारि सृष्टि कोउ नई चलाई।
मोहिं पठयौ जिहिं सौंपि, ताहि कहिहौं कहा जाई।
देखौं धौं यह कौन है, बाल-बच्छ हरि लेउँ।
ब्रह्मलोक लै जाउँ हरि, इहि बिधि करि दुख देउँ।
अंतरजामी नाथ, तुरत बिधि मन की जानी।
बालक द्वै दए पठै, धेनु बन कहूँ हिरानी।
जहाँ-तहाँ बन ढूँढ़ि कै, फिरि आए हरि-पास।
सखा सबनि बैठारि कै, आपुन गए उदास।
हरि लै बालक बच्छ, ब्रह्मलोकहिं पहुँचाए।
फिरि आए जो कान्ह, कहूँ कोऊ नहिं पाए।
प्रभु तबहीं जान्यौ यहै, बिधि लै गयौ चोराइ।
जो जिहि रँग जिहिं रूप कौ, बालक बच्छ बनाइ।
तातैं कीने और ब्रह्म हृद - नाल उपायो।
अपनौ करि तिहिं जानि कियौ ताकौ मन भायौ।

उद्धारन मारन छमी, मन हरि कीन्हौ ज्ञान।
अनजानैं विधि यह करी, नए रचे भगवान।
वहै बुद्धि वहै प्रकृति, वहै पौरुष तन सब के।
वहै नाउ, बहै भाउ, धेनु बछरा मिलि रब के।
स्याम कह्यौ सब सखनि सौं, ल्यावहु गोधन घेरि।
संध्या कौ आगम भयौ, ब्रज-तन हाँकौ फेरि।
सुनत ग्वाल, लै चले, धेनु ब्रज बृंदाबन तैं।
कान्हहिं बालक जानि डरे, सब ग्वाले मन तैं।
मध्य किए लै स्याम कौं, सखा भए चहुँ पास।
बच्छ-धेनु आगैं किए, आवत करत बिलास।
बाजत बेनु बिषान, सबै अपनैं रँग गावत।
मुरली-धुनि, गो-रंभ, चलत पग धूरि उड़ावत।
मोर-मुकुट सिर सोहई, बन माला पट पीत।
गो-रज मुख पर सोहई, मनहुँ चंद कन-सीत।
देखि हरषि ब्रजनारि, स्याम पर तन-मन वारतिं।
इकटक रूप निहारि रहीं मेटत चित-आरति।
कहा कहौं छबि आजु की मुख मंडित खुर-धूरि।
मानौ पूरन चंद्रमा, कुहर रह्यौ आपूरि।
गोकुल पहुँचे जाइ, गए बालक अपनैं घर।
गो-सुत अरु नर-नारि मिले, अति हेत लाइ गर।
प्रेम सहित वै मिलत है, जे उपजाए आजु।
जसुमति मिलि सुतसौं कहति, रैनि करतकिहिं काज।
मैं घर आवन कहौं, सखा सँग कोउ नहिं आवैं।
देखत बन अति अगम डरौं गौ मोहिं डरपावैं।
बार-बार उर लाइकै, लै बलाइ, पछिताइ।
काल्हिहिं तैं वेई सबै, ल्यावौं गाइ चराइ।
यह सुनि कै हरि हँसे, काल्हि मेरी जाइ बलैया।
भूख लगी मोहिं बहुत, तुरतहीं दै कछु मैया।
माखन दीन्हौ हाथ कै, तब लौं तुम यह खाहु।
तातौ जल है घाम कौ, कनक तेल सौं न्हाहु।
तब जसुमति गहि बाहँ, तुरत हरि लै अन्हवाए।
रोहिनि करि जेवनार, स्याम-बलराम बुलाए।

जेंवत अति रुचि पावहीं परुसति माता हेत।
जेंइ उठे अँचवन लियौ, दुहुँ कर बीरा देत।
स्याम उनींदे जानि, मातु रचि सेज बिछाई।
तापर पौढ़े लाल अतिहिं मन हरष बढ़ाई।
अघ-मर्दन, बिधि-गर्व-हत, करत न लागी बार।
सूरदास प्रभु के चरित पावत कोउ न पार ॥४३७॥१०५५॥

राग सारंग

कह्यौ गोपाल चरत हैं गो-सुत हम सब बैठि कलेऊ कीजै।
सीतल छाहँ वृच्छ की सुंदर, निर्मल जल जमुना कौ पीजै।
भोजन करत सखा इक बोल्यौ, बछरू कतहूँ दूरि गए।
जदुपति कह्यौ घेरि हौं आनौं, तुम जेंवहु निहचिंत भए।
चतुरानन बछरा लै गोए फिरि माधव आए तिहि ठाउँ।
बालक-बच्छ हरे लोकेस्वर, बार-बार टेरत लै नाउँ।
जान्यौ ब्रह्मा-छल मन मोहन, गोपी गाइ, बहुत दुख पैहैं।
तजिहैं प्रान सबै मिलि निस्चय, सुत जौ गृह कौं आजु न जैहैं।
वाही भाँति, बरन, बपु वैसेहिं, सिसु सब रचे नंद-सुत आन।
आगैं बछ, पाछैं ब्रज-बालक, करत चले मधुरैं सुर गान।
पूरब प्रीति अधिक ताहू तैं, करतीं ब्रज-बनिता अरु धेनु।
सूरज प्रभु अच्युत ब्रज-मंडल, घरहीं घर लागे सुख देनु ॥४३८॥
॥१०५६॥

राग बिलावल

नंद महर के भावते, जागौ मेरे बारे!
प्रात भयौ उठि देखिऐ, रवि किरनि उज्यारे।
ग्वाल-बाल सब टेरहीं, गैया बन चारन।
लाल उठौ मुख धोइऐ, लागी बदन उघारन।
मुख तैं पट न्यारौ कियौ, माता कर अपनैं।
देखि बदन चकित भई, सौंतुष की सपनैं।
कहा कहौं वा रूप की, को बरनि बतावै।
सूर स्याम के गुन अगम, नँद-सुवन कहावै ॥४३९॥
॥१०५७॥

राग रामकली

लालहिँ जगाइ बलि गई माता।
निरखि मुख-चंद-छबि, मुदित भई मनहिँ मन, कहत आधैँ बचन भयौ प्राता।
नैन अलसात अति, बार-बार जम्हात, कंठ लगिजात, हरषात गाता।
बदन पोँछियौ जल जमुन सौँ धोइ कै, कह्यौ मुसुकाइ, कछु खाहु ताता।
दूध औट्यौ आनि, अधिक मिसरी सानि, लेहु माखन पानि प्रान-दाता।
सूर प्रभु कियौ भोजन विविध भाँति सौँ, पियौ पय मोद करि घूट साता ॥४४०॥१०५८॥

राग ललित

उठे नंद-लाल सुनत जननी मुख बानी।
आलस भरे नैन, सकल सोभा की खानी।
गोपी जन बिथकित ह्वै चितवति सब ठाढ़ी।
नैन करि चकोर, चंद-बदन प्रीति बाढ़ी।
माता जल झारी लै, कमल-मुख पखारयौ।
नैन नीर परस करत आलसहिँ बिसारयौ।
सखा द्वार ठाढ़े सब, टेरत हैँ बन कौँ।
जमुना-तट चलौ कान्ह, चारन गोधन कौँ।
सखा सहित जँवहु, मैँ भोजन कछु कीन्हौ।
सूर स्याम हलधर सँग सखा बोलि लीन्हौ ॥४४१॥१०५९॥

राग बिलावल

दोउ भैया जँवत माँ आगैँ।
पुनि-पुनि लै दधि खात कन्हाई, और जननि पै माँगैँ।
अति मीठौ दधि आजु जमायौ, बलदाऊ तुम लेहु।
देखौ धौँ दधि-स्वाद आपु लै, ता पाछैँ मोहिँ देहु।
बल मोहन दोऊ जँवत रुचि सौँ, सुख लूटति नँदरानी।
सूर स्याम अब कहत अघाने, अँचवन माँगत पानी ॥४४२॥१०६०॥

राग रामकली

(द्वारैँ) टेरत हैँ सब ग्वाल कन्हैया, आवहु बेर भई।
आवहु बेगि, बिलम जनि लावहु, गैया दूरि गईँ।

यह सुनतहिँ दोऊ उठि धाए, कछु अँचयौ कछु नाहिँ।
कितिक दूर सुरभी तुम छाँड़ी, बन तौ पहुँची नाहिँ।
ग्वाल कह्यौ कछु पहुँची ह्वै हैँ, कछु मिलिहैँ मग माहिँ।
सूरदास बल मोहन भैया, गैयनि पूछत जाहिँ ॥४४३॥
॥१०६१॥

राग बिलावल

बन पहुँचत सुरभी लई जाइ।
जैहौ कहा सखनि कौँ टेरत, हलधर संग कन्हाइ।
जेँवत परखि लियौ नहिँ हमकौँ, तुम अति करी चँड़ाइ।
अब हम जैहैँ दूरि चरावन, तुम सँग रहै बलाइ।
यह सुनि ग्वाल धाइ तहँ आए, स्यामहिँ अंकम लाइ।
सखा कहत यह नंद-सुवन सौँ, तुम सब के सुखदाइ।
आजु चलौ बृंदाबन जैऐ, गैयाँ चरैँ अघाइ।
सूरदास प्रभु सुनि हरषित भए, घर तैँ छाँक मँगाइ ॥४४४॥
॥१०६२॥

राग बिलावल

आजु चरावन गाइ चलौ जू, कान्ह, कुमुद बन जैऐ।
सीतल कुंज कदम की छहियाँ, छाक छहूँ रस खैऐ।
अपनी-अपनी गाइ ग्वाल सब, आनि करौ इक ठौरी।
धौरी, धूमरि, राती, रौँछी, बोल बुलाइ चिन्हौरी।
पियरी, मौँरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी जेती।
दुलही, फुलही, भौँरी, भूरी, हाँकि ठिकाई तेती।
बाबा नंद बुरौ मानैँगे, और जसोदा मैया।
सूरजदास जनाइ दियौ है, यह कहिकै बल भैया ॥४४५॥
॥१०६३॥

राग बिलावल

चले सब बृंदाबन समुहाइ।
नंद-सुवन सब ग्वालनि टेरत, ल्यावहु गाइ फिराइ।
अति आतुर ह्वै फिरे सखा सब, जहँ-तहँ आए धाइ।
पूछत ग्वाल, बात किहिँ कारन, बोले कुँवर कन्हाइ।

सुरभी बृंदाबन कौं हाँकौ, औरनि लेहु बुलाइ।
सूर स्याम यह कही सबनि सैं, आपु चले अतुराइ ॥४४६॥
॥१०६४॥

राग धनाश्री

गैयनि घेरि सखा सब ल्याए।
देख्यौ कान्ह जात बृंदाबन, यातैं मन अति हरष बढ़ाए।
आपुस मैं सब करत कुलाहल, धौरी, धूमरि धेनु बुलाए।
सुरभी हाँकि देत सब जहँ-तहँ, टेरि-टेरि हेरी सुर गाए।
पहुँचे आइ बिपिन घन बृंदा, देखत द्रुम दुख सबनि गँवाए।
सूर स्याम गए अघा मारि जब, ता दिन तैं इहिं बन अब आए।
॥४४७॥१०६५॥

राग नटनारायन

चरावत बृंदाबन हरि धेनु।
ग्वाल सखा सब संग लगाए, खेलत हैं करि चैनु।
कोउ गावत, कोउ मुरलि बजावत, कोउ बिषान, कोउ बेनु।
कोउ निरतत कोउ उघटि तार दै, जुरी ब्रज-बालक-सेनु।
त्रिबिध पवन जहँ बहत निसादिन सुभग कुंज घन ऐनु।
सूर स्याम निज धाम बिसारत, आवत यह सुख लैनु ॥४४८
॥१०६६॥

राग धनाश्री

बृंदाबन मोकौं अति भावत।
सुनहु सखा तुम सुबल, श्रीदामा, ब्रज तैं बन गौ-चारन आवत।
कामधेनु सुरतरु सुख जितने, रमा सहित बैकुंठ भुलावत।
इहिं बृंदाबन, इहिं जमुना-तट, ये सुरभी अति सुखद चरावत।
पुनि-पुनि कहत स्याम श्रीमुख सौं, तुम मेरैं मन अतिहिं सुहावत।
सूरदास सुनि ग्वाल चकृत भए, यह लीला हरि प्रगट दिखावत।
॥४४९॥१०६७॥

राग बिलावल

ग्वाल सखा कर जोरि कहत हैं, हमहिं स्याम तुम जनि बिसरावहु।
जहाँ-जहाँ तुम देह धरत हौ, तहाँ-तहाँ जनि चरन छुड़ावहु।

ब्रज तैं तुमहिँ कहूँ नहिँ टारौँ, यहै पाइ मैँ हूँ ब्रज आवत।
यह सुख नहिँ कहुँ भुवन चतुर्दस, इहिँ ब्रज यह अवतार बतावत।
और गोप जे बहुरि चले घर, तिनसौँ कहि ब्रज छाक मँगावत।
सूरदास प्रभु गुप्त बात सब, ग्वालनि सौँ कहि-कहि सुख पावत।
॥४५०॥१०६८॥

राग बिलावल

कन्हैया हेरी दै।
सुभग साँवरे गात की मैँ, सोभा कहत लजाउँ।
मोर-पंख सिर-मुकुट की मुख-मटकनि की बलि जाउँ।
कुंडल लोल कपोलनि झाइँ बिहसनि चितहिँ चुरावै।
दसन-दमक, मोतिनि लर ग्रीवा, सोभा कहत न आवै।
उर पर पदिक कुसुम बनमाला, अंगद खरे बिराजैँ।
चित्रित बाहँ पहुँचिया पहुँचै, हाथ मुरलिया छाजै।
कटि पट पीत, मेखला मुखरित, पाइनि नूपुर साहै।
आस-पास बर ग्वाल-मंडली, देखत त्रिभुवन मोहै।
सब मिलि आनंद प्रेम बढ़ावत, गावत गुन गोपाल।
यह सुख देखत स्याम-संग कौ, सूरदास सब ग्वाल॥४५१॥
॥१०६९॥

राग बिलावल

कान्ह काँधे कामरिया कारी, लकुट लिए कर घेरै हो।
बृंदाबन मैँ गाइ चरावै, धौरी धूमरि टेरै हो।
लै लिवाइ ग्वालनि बुलाइ कै, जहँ-तहँ बन-बन हेरै हो।
सूरदास प्रभु सकल लोक-पति, पीतांबर कर फेरै हो॥४५२॥
॥१०७०॥

राग टोड़ी

सोई हरि काँधे कामरि, काछ किए नाँगे पाइनि, गाइनि टहल करैँ।
त्रिभुवनपति दिसिपति, नर-नारी-पति, तंछिनिपति, रबि-ससि जाहि डरैँ।

सिव-विरंचि ध्यान धरत, भक्त त्रिविध ताप हरत, तिनहिँ हित वपु धरैँ ।
सूरदास जिनके गुन, निगम नेति गावत, तेइ बन-बन मैँ बिहरैँ ।
॥४५३॥१०७१॥

राग नट

छाक लेन जे ग्वाल पठाए ।
तिनसौँ पूछति महरि जसोदा, छाँड़ि कान्ह कित आए ।
हमहिँ पठाइ दिए नँद-नंदन, भूखे अति अकुलाए ।
धेनु चरावत हैँ बृंदाबन, हम इहिँ कारन आए ।
यह कहि ग्वाल गए अपनैँ गृह, बन की खबरि सुनाए ।
सूर स्याम बलराम प्रातहीँ अधजँवत उठि धाए ॥४५४॥
॥१०७२॥

राग सारंग

और ग्वाल सबही गृह आए, गोपालहिँ बेर भई ।
अतिहिँ अबेर भई लालन कौँ, अजहूँ नहिँ छाक गई ।
तबहीँ तैँ भोजन करि राख्यौ, उत्तम दूध जमाइ ।
ना जानौँ धौँ कान्ह कौन बन, चारत बेर लगाइ ।
राज करैँ वै धेनु तुम्हारी, नंदहिँ कहति सुनाइ ।
पंच की भीख सूर बल-मोहन, कहति जसोमति माइ ॥४५५॥
॥१०७३॥

राग सारंग

जोरति छाक प्रेम सौँ मैया ।
ग्वालनि बोलि लियो अधजँवत, उठि दौरे दोउ भैया ।
तबही तैँ मैँ भोजन कीन्हौ, चाहति दियौ पठाइ ।
भूखे भए आजु दोउ भैया, आपुहि बोलि मँगाइ ।
सद माखन साजौ दधि मीठौ, मधु मेवा पकवान ।
सूर स्याम कौँ छाक पठावति, कहति ग्वारि सौँ जान ॥४५६॥
॥१०७४॥

राग सारंग

घरही की इक ग्वारि बुलाई ।
छाक समग्री सबै जोरि कै, वाकैँ कर दै तुरत पठाई ।

कह्यौ ताहि वृंदाबन जैऐ, तू जानति सब प्रकृति कन्हाई ।
प्रेम सहित लै चली छाक वह, कहँ ह्वै हैँ भूखे दोउ भाई ।
तुरत जाइ बृंदाबन पहुँची, ग्वाल-बाल कहुँ कोउ न बताई ।
सूर स्याम कौँ टेरत डोलति, कित हौ लाल छाक मैँ लाई ॥४५७॥
॥१०७५॥

राग टोड़ी

आजु कौन बन गाइ चरावत, कहँ धौँ भई अबेर ।
बैठे कहँ, सुधि लेउँ कौन बिधि, ग्वारि करति अवसेर ।
बृंदा आदि सकल बन ढूँढ़यौ, जहँ गाइनि की टेर ।
सूरदास प्रभु दुरत दुराए, डुँगरनि ओट सुमेर ॥४५८॥
॥१०७६॥

राग सारंग

छाक लिए सिर, स्याम बुलावति ।
ढूँढ़त फिरति ग्वारिनी हरि कौँ, जितहूँ भेद न पावति ।
टेर सुनति काहू की स्रवननि, तहाँ तुरत उठि धावति ।
पावति नहीँ स्याम बलरामहिँ, ब्याकुल ह्वै पछतावति ।
बृंदाबन फिरि-फिरि देखति है, बोलि उठे तहँ ग्वाल ।
सूर स्याम बलराम इहाँ हैँ, छाक लेहु किन लाल ॥४५६॥
॥१०७७॥

राग कान्हरौ

फिरत बननि बृंदाबन, बंसीबट, सँकेत बट
नागर कटि काछे, खौरि केसरि की किए ।
पति बसन चँदन तिलक, मोर-मुकुट कुँडल-झलक
स्याम-घन-सुरंग-छलक, यह छबि तन लिए ।
तनु त्रिभंग, सुभग अंग, निरखि लजत अति अनंग
ग्वाल - बाल लिए संग, प्रमुदित सब हिए ।
सूर स्याम अति सुजान, मुरली-धुनि करत गान
ब्रज-जन-मन कौँ महान, संतत सुख दिए ॥४६०॥
॥१०७८॥

राग सारंग

हरि कौँ टेरति फिरति गुवारि।
आइ लेहु तुम छाक आपनी, बालक बल बनवारि।
आज कलेऊ करत बन्यौ नहिँ, गैयन सँग उठि धाए।
तुम कारन बन छाक जसोदा, मेरैँ हाथ पठाए।
यह बानी जब सुनी कन्हैया, दौरि गए तिहिँ काजु।
सूर स्याम कह्यो नाकँ आई, भूख बहुत ही आजु ॥४६१॥
॥१०७६॥

राग सारंग

बहुत फिरी तुम काज कन्हाई।
टेरि-टेरि मैँ भई बावरी, दोउ भैरा तुम रहे लुकाई।
जो सब ग्वाल गए व्रज घर कौँ, तिनसौँ कहि तुम छाक मँगाई।
लबनी दधि मिष्टान्न जोरि कै जसुमति मेरैँ हाथ पठाई।
ऐसी भूख माँझ तू ल्याई तेरी किहिँ विधि करौँ बड़ाई।
सूर स्याम सब सखनि पुकारत, आवत क्यौँ, न छाक है आई।
॥४६२॥१०८०॥

राग सारंग

गिरि पर चढ़ि गिरिवर-धर टेरे।
अहो सुबल श्रीदामा भैया, ल्यावहु गाइ खरिक कैँ नेरे।
आई छाक अबार भई है, नैँसुक घैया पिएउ सबेरे।
सूरदास प्रभु बैठि सिला पर, भोजन करैँ ग्वाल चहुँफेरे।
॥४६३॥१०८१॥

राग नट

बिहारी लाल, आवहु, आई छाक।
भई अबार, गाइ बहुरावहु, उलटावहु दै हाँक।
अर्जुन, भोजऽरु सुबल, सुदामा, मधुमंगल इक ताक।
मिलि बैठे सब जेवन लागे, बहुत बने कहि पाक।
अपनी पत्रावलि सब देखत, जहँ-तहँ फेनि पिराक।
सूरदास प्रभु खात ग्वाल सँग, ब्रह्मलोक यह धाक ॥४६४॥
॥१०८२॥

राग सारंग

आई छाक, बुलाए स्याम।
यह सुनि सखा सबै जुरि आए, सुबल, सुदामा अरु श्रीदाम।
कमल-पत्र दोना पलास के, सब आगैँ धरि परुसत जात।
ग्वाल-मंडली मध्य स्याम-घन, सब मिलि भोजन रुचि करि खात।
ऐसी भूख माहिँ यह भोजन, पठै दियौ है जसुमति मात।
सूर स्याम अपनौ नहिँ जेंवत, ग्वालनि कर तैँ लै-लै खात ॥४६५॥
॥१०८३॥

राग सारंग

सखनि संग जेँवत हरि छाक।
प्रेम सहित मैया दै पठाई, सबै बनाई है इक ताक।
सुबल, सुदामा, श्रीदामा मिलि, सब सँग भोजन रुचि करि खात।
ग्वालनि कर तैं कौर छुड़ावत, मुख लै मेलि सराहत जात।
जो सुख कान्ह करत वृंदाबन सो सुख नहीँ लोकहूँ सात।
सूर स्याम भक्तनि बस ऐसे ब्रह्म कहावत हैँ नँद तात ॥४६६॥
॥१०८४॥

राग सारंग

ग्वाल मंडली मैँ बैठे मोहन बट की छाँह, दुपहर बेरिया सखानि संग लीने।
एक दूध, फल, एक झगरि चबेना लेत, निज-निज कामरी के आसननि कीने।
जेँवतऽरु गावत हैँ सारँग की तान कान्ह, सखनि के मध्य छाक लेत कर छीने।
सूरदास प्रभु कौँ निरखि, सुख रीझि रीझि, सुर सुमननि बरषत रस भीने ॥४६७॥
॥१०८५॥

राग सारंग

ग्वालनि कर तैँ कौर छुड़ावत।
जूठौ लेत सबनि के मुख कौ, अपनैँ मुख लै नावत।

षटरस के पकवान धरे सब, तिनमैं रुचि नहिं लावत।
हा-हा करि-करि माँगि लेत हैं कहत मोहिं अति भावत।
यह महिमा येई पै जानत, जातैं आपु बँधावत।
सूर स्याम सपनैं नहिं दरसत, मुनि जन ध्यान लगावत ॥४६८॥
॥१०८६॥

राग सारंग

ब्रज-बासी पटतर कोउ नाहिँ।
ब्रह्म, सनक, सिव ध्यान न आवैं, इनकी जूठनि लै-लै खाहिँ।
धन्य नंद धनि जननि जसोदा, धन्य जहाँ अवतार कन्हाइ।
धन्य धन्य बृंदाबन के तरु, जहँ बिहरत त्रिभुवन के राइ।
हलधर कहत छाक जँवत सँग मीठौ लगत सराहत जाइ।
सूरदास प्रभु बिस्वंभर हरि सो ग्वालनि के कौर अघाइ ॥४६९॥
॥१०८७॥

राग सारंग

सीतल छहियाँ स्याम हैं बैठे, जानि भोजन की बिरियाँ।
बाम भुजाहिँ सखा अँस दीन्हे, दच्छिन कर द्रुम-डरियाँ।
गाइनि घेरि- टेरि बलरामहिँ, ल्यावहु करत अबिरियाँ।
सूरदास प्रभु बैठि कदम तर, खात दूध की खिरियाँ ॥४७०॥
॥१०८८॥

राग सारंग

जँबत छाक गाइ बिसराई।
सखा श्रीदामा कहत सबनि सौं, छाकहि मैं तुम रहे भुलाई।
धेनु नहीँ देखियत कहुँ नियरैं, भोजन ही मैं साँझ कराई।
सुरभी काज जहाँ-तहँ धाए, आपु तहाँ उठि चले कन्हाई।
ल्याए ग्वाल घेरिगो, गो-सुत, देखि स्याम मन हरष बढ़ाई।
सूरदास प्रभु कहत चलौ घर, बन मैं आजु अबार लगाई ॥४७१॥
॥१०८९॥

राग गौरी

ब्रजहिं चलौ आई अब साँझ।
सुरभी सबै लेहु आगैं करि, रैनि होइ जनि बनहीँ माँझ।

भली कही यह बात कन्हाई, अतिहीं सघन अरन्य उजारि।
गयौ हाँकि चलाइँ ब्रज कौं और ग्वाल सब लए पुकारि।
निकसि गए बन तैं जब बाहिर, अति आनंद भए सब ग्वाल।
सूरदास प्रभु मुरलि बजावत, ब्रज आवत नटवर गोपाल॥४७२॥
॥१०६०॥

राग कल्यान

सुंदर स्याम, सुँदर बर लीला, सुंदर बोलत बचन रसाल।
सुंदर चारु कपोल बिराजत, सुंदर उर जु बनी बनमाल।
सुंदर चरन सुंदर हैं नख मनि, सुंदर कुंडल हेम जराल।
सुंदर मोहन नैन चपल किए, सुंदर ग्रीवा बाहु बिसाल।
सुंदर मुरली मधुर बजावत' सुंदर हैं मोहन गोपाल।
सूरदास जोरी अति राजति ब्रज कौं आवत सुंदर चाल॥४७३॥
॥१०६१॥

राग कल्यान

सुंदर स्याम, सखा सब सुंदर, सुंदर बेष धरे गोपाल।
सुंदर पथ, सुंदर-गति आवन, सुंदर मुरली-सब्द रसाल।
सुंदर लोग, सकल ब्रज सुंदर, सुंदर हलधर सुंदर चाल।
सुंदर बचन, बिलोकनि सुंदर, सुंदर गुन सुंदर बनमाल।
सुंदर गोप, गाइ अति सुंदर, सुंदरि-गन सब करतिँ बिचार।
सूर स्याम सँग सब सुख सुंदर, सुंदर भक्त-हेत अवतार॥४७४॥
॥१०६२॥

राग बिलावल

सुंदर ढोटा कौन कौ, सुन्दर मृदुबानी।
कहि समुझायौ ग्वालिन, जायौ नँदरानी।
सुंलर मूरति देखि कै, घन घटा लजानी।
सुंदर नैननि हरि लियौ कमलनि कौ पानी।
सुंदरता तिहुँ लोक की, जसुमति ब्रज आनी।
सरदास पुर मैं भई, सुंदर रजधानी॥४७५॥
॥१०६३॥

राग गौरी

देखि सखी बन तैं जु बने ब्रज आवत हैं नँद-नंदन।
सिखी सिखंड सी, मुख मुरली, बन्यौ तिलक, उर चंदन।
कुटिल अलक मुख, चंचल लोचन, निरखत अति आनंदन।
कमल मध्य मनु द्वै खग खंजन बँधे आइ . उड़ि फंदन।
अरुन अधर-छबि दसन बिराजत, जब गावत कल मंदन।
मुक्ता मनौ नील-मनि-मय-पुट, धरे भुरकि बर बंदन।
गोप बेष गोकुल गो चारत हैं हरि असुर-निकंदन।
सूरदास प्रभु सुजस बखानत नेति नेति श्रुति छंदन ॥४७६॥
॥१०६४॥

सुनि सखि वे बड़भागी मोर !
जिनि पाँखनि कौ मुकुट बनायौ, सिर धरि नंदकिसोर।
ब्रह्मादिक सनकादि महामुनि, कलपत दोउ कर जोर।
बृंदाबन के तृन न भए हम, लगत चरनकैं छोर।
बड़ौ भाग नँद-जसुमति कौ है, कोऊ ठहर न और।
सूरदास गोपिन हित-कारन, कहियत माखन-चोर ॥४७७॥
॥१०६५॥

राग केदारौ

सोभा कहत कही नहिँ आवै।
अँचवत अति आतुर लोचन-पुट, मन न तृप्ति कौं पावै।
सजल मेघ घनस्याम सुभग बपु, तड़ित बसन बनमाल।
सिखि-सिखंड, बन-धातु बिराजत, सुमन सुगंध प्रवाल।
कछुक कुटिल कमनीय सघन अति, गो-रज मंडित केस।
सोभित मनु अंबुज पराग-रुचि-रंजित मधुप सुदेस।
कुंडल-किरनि कपोल लोल छबि, नैन कमल-दल-मीन।
प्रति-प्रति अंग अनंग-कोटि-छबि, सुनि सखि परम प्रबीन।
अधर मधुर मुसुक्यानि मनोहर करति मदन मन हीन।
सूरदास जहँ दृष्टि परति है, होति तहीं लवलीन ॥४७८॥१०६६॥

राग गौरी

मेरै नैन निरखि सुख पावत।
संध्या समय गोप गोधन सँग बन तैं बनि ब्रज आवत।

उर गुंजा बनमाल, मुकुट सिर, बेनु रसाल बजावत!
कोटि किरनि-मनि मुख परकासित, उड़पति कोटि लजावत।
नटवर रूप अनूप छबीलौ, सबहिनि कैँ मन भावत।
गोप-सखा सब बदन निहारत, उर आनँद न समावत।
चंदन खौरि, काछनी काछे, देखत ही मन भावत।
सूर स्याम नागर नारिनि कौँ, बासर-बिरह नसावत ॥४७९॥
॥१०९७॥

राग कान्हरौ

आजु बने बन तैँ व्रज आवत।
नाना रंग सुमन की माला, नंद-नँदन-उर पर छबि पावत।
संग गोप गोधन-गन लीन्हे, नाना गति कौतुक उपजावत।
कोउ गावत, कोउ नृत्य करत, कोउ उघटत कोउ करताल बजावत।
राँभति गाइ बच्छ हित सुधि करि, प्रेम उँमगि थन दूध चुवावत।
जसुमति बोलि उठी हरषित ह्वै, कान्हा धेनु चराए आवत।
इतनी कहत आइ गए मोहन, जननी दौरि हिए लै लावत।
सूर स्याम के कृत्य, जसोमति, ग्वाल बाल कहि प्रगट सुनावत।
॥४८०॥१०९८॥

राग गौरी

मैया बहुत बुरो बलदाऊ।
कहन लग्यौ बन बड़ो तमासौ, सब मौड़ा मिलि आऊ।
मोहूँ कौँ चुचकारि गया लै, जहाँ सघन बन झाऊ।
भागि चलौ, कहि, गयौ उहाँ तैँ, काटि खाइ रे हाऊ।
हौँ डरपौँ, काँपौँ अरु रोवौँ, कोउ नहिँ धीर धराऊ।
थरसि गयौँ नहिँ भागि सकौँ, वै भागे जात अगाऊ।
मोसौँ कहत मोल कौ लीनो, आपु कहावत साऊ।
सूरदास बल बड़ौ चबाई, तैसेहिँ मिले सखाऊ ॥४८१॥
॥१०९९॥

राग नट

हरि की लीला कहत न आवै।
कोटि ब्रह्मांड छनहिँ मैँ नासै, छनही मैँ उपजावै।

बालक बच्छ ब्रह्म हरि ले गयौ, ताकौ गर्व नवावै।
ऐसौ पुरुषारथ सुनि जसुमति, खीझति फिरि समुझावै।
सिव सनकादि अंत नहिँ पावैँ, भक्त-बछल कहवावे।
सूरदास प्रभु गोकुल मैँ, सो, घर-घर गाइ चरावे ॥४८२॥
॥११००॥

राग सारंग

ब्रह्मा बालक - बच्छ हरे।
आदि अंत प्रभु अंतरजामी, मनसा तैँ जु करे।
सोइ रूप वै बालक गो-सुत, गोकुल जाइ भरे।
एक बरष निसि-बासर रहि सँग, काहु न जानि परे।
त्रास भयौ अपराध आपु लखि, अस्तुति करत खरे।
सूरदास स्वामी मनमोहन, तामैँ मन न धरे ॥४८३॥
॥११०१॥

राग कल्यान

मैँ तौ जे हरे हैँ ते तौ सोवत परे हैँ, ये करे हैँ कौनैँ आन,
अँगुरीनि दंत दै रह्यौ।
पुरुष पुरान आनि कियौ चतुरानन, कै सोई प्रभु पूरन प्रगट इहाँ
ह्वै रह्यौ ?
उतै देखि धावे, इत आवै, अचरज पावै, सूर सुरलोक ब्रजलोक
एक ह्वै रह्यौ।
बिवस ह्वै हार मानी, आपु आयौ नकवानी, देखि गोप-मंडली
कमंडली चितै रह्यौ।
॥४८४॥११०२॥

राग नट

तब हरि हर्‌यौ विधि कौ गर्व।
बच्छ-बालक लै गयौ धरि, तुरत कीन्हे सर्व।
ब्रह्म लोक दुराइ आयौ, चरित देखन आप।
बच्छ-बालक देखि कै, मन करत पश्चात्ताप।
तब गयौ बिधि लोक अपनैँ, दृष्टि कै फिरि आइ।
जानि जिय अवतार पूरन, पर्‌यौ पाइनि धाइ।

बहुत मैं अपराध कीन्हौ, छमा कीजै नाथ।
जानि मैं यह नहीं कीन्हौ, जोरि कह्यौ दोउ हाथ।
बच्छ-बालक आनि सन्मुख, सरन-सरन पुकारि।
सूर प्रभु के चरन गहि-गहि, कहत राखि मुरारि ॥४८५॥
॥११०३॥

राग धनाश्री

ब्रज-ब्यौहार निरखि कै ब्रह्मा कौ अभिमान गयौ।
गोपी ग्वाल फिरत सँग चारत, हौं हूँ क्यौं न भयौ।
व्यंजन बर कर बर पर राखत, ओदन मधुर दह्यौ।
आपुन खात खवावत औरनि, कौन बिनोद ठयौ।
सखा संग पय-पान करावत अपनैं हाथ लयौ।
संकर ध्यान धरत जुग बीते, यह रस तौ न दयौ।
अहो भाग, अहो भाग नंद-सुत, तप कौ पुंज लियौ।
लाला सुभग सूर के प्रभु की, ब्रज मैं गाइ जियौ ॥४८६॥
॥११०४॥

राग जैतश्री

बदत बिरंचि, बिसेष सुकृत ब्रज-बासिन के।
श्री हरि तिनकैं वेष, सुकृत ब्रज-बासिन के।
ज्योति रूप, जगनाथ, जगत-गुरु, जगत-पिता, जगदीस।
जोग-जग्य-जप-तप-ब्रत-दुर्लभ, सो हरि गोकुल ईस।
इक-इक रोम विराट किए तन, कोटि-कोटि ब्रह्मंड।
सो लीन्हौ अवछंग जसोदा, अपनैं भरि भुजदंड।
जाकैं उदर लोक-त्रय, जल-थल, पंच तत्व चौखानि।
सो बालक ह्वै झूलत पलना, जसुमति भवनहिं आनि।
छिति मिति त्रिपद करी करुनामय, बलि छलि दियौ पतार।
देहरि उलँघि सकत नहिं, सो अब खेलत नंद दुवार।
अनुदिन सुर-तरु, पंच सुधा रस, चिंतामनि सुर धेनु।
सो तजि, जसुमति कौ पय पीवत, भक्तनि कौं सुख देनु।
रबि-ससि-कोटि कला, अवलोकन त्रिबिध ताप छय जाइ।
सो अंजन कर लै सुत-चच्छुहिं आँजति जसुमति माइ।

दाता भुक्ता, हरता-करता, बिस्वंभर जग जानि।
ताहि लाइ माखन की चोरी, बाँध्यौ जसुमति रानि।
बदत बेद-उपनिषद, छहौं रस अर्पैं भुक्ता नाहिं।
गोपी ग्वालनि के मंडल मैं हँसि-हँसि जूठनि खाहिं।
कमला-नायक, त्रिभुवन-दायक, दुख-सुख जिनकैं हाथ।
काँध कमरिया, हाथ लकुटिया, बिहरत बछरनि साथ।
बकी, बकासुर, सकट, तृनाव्रत, अघ, प्रलंब, बृषभास।
कंस-केसि कौं वह गति दीनी, राखे चरन निवास।
भक्त-बछल प्रभु पतित-उधारन, रहे सकल भरि पूर।
मारग रोकि रह्यौ द्वारैं परि, पतित-सिरोमनि सूर ॥४८७॥
॥११०५॥

राग मलार

बिनवै चतुरानन कर जोरे।
तुव प्रताप जान्यौ नहिं प्रभु जू, करै अस्तुति लट छोरे।
अपराधी, मति-हीन, नाथ हौं, चूक परी निज भोरे।
हम कृत दोष छमौ करुनामय, ज्यौं भू परसत ओरे।
जुग-जुग बिरद यहै चलि आयी, सत्य कहत अब होरे।
सूरदास प्रभु पछिले खेवा, अब न बनै मुख मोरे ॥४८८॥
॥११०६॥

राग सारंग

माधौ मोहिं करौ बृंदाबन-रेनु।
जिहिं चरननि डोलत नँद-नंदन, दिन-प्रति बन-बन चारत धेनु।
कहा भयौ यह देव-देह धरि, अरु ऊँचैं पद पाऐं ऐनु।
सब जीवनि लै उदर माँझ प्रभु महा प्रलय-जल करत हौ सैनु।
हम तैं धन्य सदा वै तृन-द्रुम, बालक-बच्छ-बिषानऽरु बेनु।
सूर स्याम जिनकैं सँग डोलत, हँसि बोलत, मथि पीवत फेनु।
॥४८९॥११०७॥

राग सारंग

ऐसैं बसिऐ ब्रज की बीथिनि।
ग्वारनि के पनवारे चुनि-चुनि, उदर भरीजै सीथिनि।

पैंड़े के सब बृच्छ बिराजत, छाया परम पुनीतनि।
कुंज-कुंज-प्रति लोटि-लोटि, ब्रज-रज लागै रँग रीतनि।
निसि दिन निरखि जसोदा-नंदन, अरु जमुना-जल पीतनि।
परसत सूर होत तन पावन, दरसन करत अतीतनि ॥४६०॥
॥११०८॥

राग सारंग

धनि यह बृंदाबन की रेनु।
नंद-किसोर चरावत गैयाँ, मुखहिँ बजावत बेनु।
मन-मोहन कौ ध्यान धरैँ जिय, अति सुख पावत चैनु।
चलत कहाँ मन और पुरी तन, जहाँ कछु लैन न दैनु।
इहाँ रहहु जहँ जूठनि पावहु, ब्रजवासिनि कैँ ऐनु।
सूरदास ह्याँ की सरवरि नहि, कल्पबृच्छ सुर-धैनु ॥४६१॥
॥११०६॥

बाल-वत्स-हरन की दूसरी लीला *राग धनाश्री*

ब्रज की लीला देखि, ज्ञान बिधि कौ गयौ।
यह अति अचरज मोहिँ, कहा कारन ठयौ ॥टेक॥
त्रिभुवन नायक भयौ, आनि गोकुल अवतारी।
खेलत ग्वालनि संग, रंग आनंद मुरारी।
घर-घर तैँ छाकैँ चलीँ मानसरोवर-तीर।
नारायन भोजन करैँ, बालक संग अहीर।
ब्यंजन सकल मँगाइ, सखनि के आगैँ राखे।
खाटे मीठे स्वाद, सबै रस लै-लै चाखे।
रुचि सौँ जेँवत ग्वाल सब, लै-लै आपुन खात।
भोजन को सब स्वाद लै, कहत परस्पर बात।
देखत गन-गंधर्व, सकल सुरपुर के बासी।
आपुस मैँ सब कहत हँसत, येई अबिनासी।
देखि सबै अचरज भए कह्यौ ब्रह्म सौँ जाइ।
जाकौँ अबिनासी कहत, सो ग्वारनि सँग खाइ।
यह सुनि ब्रह्मा चले, तुरत बृंदाबन आए।
देखि सरोवर सजल, कमल तिहिँ मध्य सुहाए।

परम सुभग जमुना बहै, तहँ बहै त्रिबिध समीर।
पुहुप लता-द्रुम देखि कै, थकित भए मति-धीर।
अति रमनीक कदंब-छाहँ-रुचि परम सुहाई।
राजत मोहन मध्य अवलि बालक छबि पाई।
प्रेम-मगन ह्वै परस्पर, भोजन करत गोपाल।
ल्यावहु गो सुत घेरि कै प्रभु पठए द्वै ग्वाल।
बन उपवन सब ढूढ़ि सखा हरि पै फिरि आए।
बछरा भए अदृष्ट, कहूँ खोजत नहिं पाए।
सबै सखा बैठे रहौ, मैं देखौं धौं जाइ।
बच्छ-हरन जिय जानि प्रभु, आपु गए बहराइ।
जब गोबिंद गए दूरि, बालकनि हर्यौ बिधाता।
लैहैं तुरत मँगाइ आपु जो हैं जग-त्राता।
ब्रह्म-लोक ब्रह्मा गए, लै बालक बछ संग।
प्रभु की लीला गम नहीं, कियौ गर्व अति अंग।
तब चिंतामनि चितै चित्त इक बुद्धि बिचारी।
बालक बच्छ बनाइ रचे वेही उनिहारी।
करत कुलाहल सब गए, ब्रज घर अपनैं धाइ।
अति आदर करि-करि लए अपनी-अपनी माइ।
ब्रह्मा कियौ बिचार, जाइ ब्रज गोकुल देखौं।
करिहैं सोक सँताप, धाइ पितु-मातहिं पेखौं।
अति आतुर ह्वै बिधि चले, घर-घर देख्यौ आइ।
साँझ कुतूहल होत है, जहँ-तहँ दुहियत गाइ।
यह गोकुल किधौं और किधौं मैं ही चित भूल्यौ।
ये अबिनासी होइँ, ज्ञान मेरो भ्रम मूल्यौ।
अंतरजामी जानि धौं गो-सुत ल्याए जाइ।
जगत पितामह संभ्रम्यौ, गयौ लोक फिरि धाइ।
देख्यौ जाइ जगाइ बाल गो-सुत जहँ राख्यौ।
बिधि मन चक्रित भयौ बहुरि ब्रज कौं अभिलाख्यौ।
छिन भूतल छिन लोक निज, छिन आवै छिन जाइ।
ऐसे बीते बरष दिन, थकित भए बिधि-पाइ।
तब जान्यौ हरि प्रगट ज्ञान मन मैं जब आयौ।
धिग-धिग मेरी बुद्धि, कृष्न सौं बैर बढ़ायौ।

लै गो-सुत गोपाल-सिसु सरन गयौ ह्वै साधु।
चारौं मुख अस्तुति करत, छमौ मोहिं अपराधु।
अनजाने मैं करी बहुत तुमसौं बरियाई।
ये मेरे अपराध छमहु, त्रिभुवन के राई।
ज्यौं बालक अपराध सत, जननी लेति सम्हारि।
सरन गएँ राखति सदा, औगुन सकल बिसारि।
जोरे उदित खद्योत ताहि क्यौं तिमिर नसावै ?
दीपक बहुत प्रकास, तरनि सम क्यौं कहि आवै ?
मैं ब्रह्मा इक लोक कौ, ज्यौं गूलर-फल-जीव।
प्रभु तुम्हरे इक रोम-प्रति, कोटिक ब्रह्मा सीव।
मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया।
मिथ्या है यह देह कहौ क्यौं हरि बिसराया।
तुम जाने बिन जीव सब, उतपति प्रलय समाहि।
सरन मोहिं प्रभु राखिऐ चरन-कमल की छाँहिं।
करहु मोहिं ब्रज रेनु देहु वृंदाबन बासा।
माँगौं यहै प्रसाद और मेरैं नहिं आसा।
जोइ भावै सोइ करहु तुम, लता सिला द्रुम, गेहु।
ग्वाल गाइ कौ भृत करौ, मानि सत्य व्रत एहु।
जो दरसन नर नाग अमर सुरपतिहुँ न पायौ।
खोजत जुग गए बीति अंत मोहूँ न लखायौ।
इहिं ब्रज यह रस नित्य है, मैं अब समुझ्यौ आइ।
बृंदावन रज ह्वै रहौं, ब्रह्म लोक न सुहाइ।
माँगत बारंबार सेष ग्वालनि कौ पाऊँ।
आपु लियौ कछु जानि, भच्छ करि उदर पुराऊँ।
अब मेरैं निज ध्यान यह रहौं जूठ नित खाइ।
और विधाता कीजियै, मैं नहिं छाँड़ौं पाइ।
तब बोले प्रभु आपु बचन मेरौ अब मानौ।
और काहि बिधि करौं, तुमहिं तैं कौन सयानौ।
तुम ज्ञाता सब धर्म के, तुक तैं सब संसार।
मेरी माया अति अगम, कोउ न पावै पार।
श्री मुख बानी कही बिलँब अब नैंकु न लावहु।
ब्रज परिकर्मा करहु देह कौ पाप नसावहु।

बिदा करे निज लोक कौं इहि बिधि करि मनुहार।
करि अस्तुति ब्रह्मा चले हरि दीन्हौ उर हार।
धनि बछरा धनि बाल जिनहिं तैं दरसन पायौ।
उर मेरौ भयौ धन्य कृष्न माला पहिरायौ।
धनि जसुमति जिन बस किए, अविनासी अवतारि।
धनि गोपी जिनकैं सदन, माखन खात मुरारि।
धनि गोपी धनि ग्वाल, धन्य ये ब्रज के बासी।
धन्य जसोदा नंद भक्ति-बस किए अविनासी।
धनि गो-सुत धनि गाइ ये, कृष्न चरायौ आपु।
धनि कालिंदी मधुपुरी, दरसन नासै पापु।
मथुरा आदि अनादि देह धरि आपुन आए।
धनि देवै वसुदेव पुत्र तुम माँगे पाए।
चारि बदन मैं कह कहौं, सहसानन नहिं जान।
गाइ चरावत ग्वाल सँग करत नंद की आन।
जोगी जन अवराधि फिरत जिहिं ध्यान लगाए।
ते ब्रजवासिनि संग फिरत अति प्रेम बढ़ाए।
बृंदाबन ब्रज कौ महत कापै बरन्यौ जाइ।
चतुरानन पग परसि कै लोक गयौ सुख पाइ।
हरि लीला अवतार पार सारद नहिं पावै।
सतगुरु-कृपा-प्रसाद कछुक तातैं कहि आवै।
सूरदास कैसे कहै हरि-गुन कौ विस्तार।
सेष सहस मुख रटत है तऊ न पावै पार ॥४६२॥
॥१११०॥

राग गौरी

आजु हरि धेनु चराए आवत।
मोर-मुकुट बनमाल बिराजत, पीतांबर फहरावत।
जिहिं-जिहिं भाँति ग्वाल सब बोलत, सुनि स्रवननि मन राखत।
आपुन टेर लेत ताही सुर, हरषत पुनि पुनि भाषत।
देखत नंद-जसोदा-रोहिनि, अरु देखत ब्रज-लोग।
सूर स्याम गाइनि संग आए मैया लीन्हे रोग ॥४६३॥
॥११११॥

राग गौरी

माँगि लेहु जो भावै प्यारे।
बहुत भाँति मेवा सब मेरैं षटरस व्यंजन न्यारे।
सबै जोरि राखति हित तुम्हरैं मैं जानति तुम बानि।
तुरत मथ्यौ दधि माखन आछौ, खाहु देउँ सो आनि।
माखन दधि लागत अति प्यारौ, और न भावै मोहि।
सूर जननि माखन-दधि दीन्हौ, खात हँसत मुख जाहि ॥४६४॥
॥१११२॥

राग आसावरी

सुनि मैया, मैं तो पय पीवौं मोहि अधिक रुचि आवै री।
आजु सबारैं धेनु दुही मैं; वहै दूध मोहि प्यावै री।
और धेनु कौ दूध न पीवौं, जो करि कोटि बनावै री।
जननी कहति दूध धौरी कौ, पुनि पुनि सौंह करावै री।
तुम तैं मोहिं और को प्यारौ, बारंबार मनावै री।
सूर स्याम कौं पय धौरी कौ माता हित सौं ल्यावै री ॥४६५॥
॥१११३॥

राग गौरी

आछौ दूध पियौ मेरे तात।
तातौ लगत बदन नहिं परसत, फूँक देति है मात।
औटि धर्यौ है अबहीं मोहन, तुम्हरैं हेत बनाइ।
तुम पीवौ, मैं नैननि देखौं, मेरे कुँवर कन्हाइ।
दूध अकेली धौरी कौ यह, तन कौं अति हितकारि।
सूर स्याम पय पीवन लागे, अति तातौ दियौ डारि ॥४६६॥
॥१११४॥

राग बिहागरौ

देखत पय पीवत बलराम।
तातौ लगत डारि तुम दीन्हौ, दावानल अँचवत नहिं ताम।
कबहूँ रहत मौन धरि जल मैं, कबहूँ फिरत बँधावत दाम।
कबहुँ अघासुर बदन समाने, कबहुँ अँध्यारैं जात न धाम।

कबहुँ करत बसुधा सब त्रैपद, कबहुँ देहरी उलँघि न जाइ।
षट-दस-सहस गोपिका बिलसत, बृंदाबन रस-रास रमाइ।
यहै जानि अवतार धरत ब्रज, सुर-नर-मुनि यह भेद न पाइ।
राजा छोरि बंदि तैं ल्याए, तिहूँ लोक मैं बिदित बड़ाइ।
जुग-जुग ब्रज अवतार लेत प्रभु, अखिल लोक ब्रह्मांड के नाथ।
येई गोपी येई ग्वाल यहै सुख यह लीला कहुँ तजत न साथ।
येई कान्ह यहै बृंदाबन यहै जमुना येई कुंज-बिहार।
यहै बिहार करत निसि-बासर, येई हैँ जन के प्रतिपार।
येई हैँ श्रीपति भुव नायक, येई हैँ करता संसार।
रोम-रोम-प्रति अंड कोटि रचे, मुख चूमति जसुमति कहि बार।
इन कंसहिँ कै बार सँहार्यौ, धार्यौ ब्रह्म कृष्न अवतार।
माखन खात चुराइ घरनि तैं, बहुत बार भए नंद-कुमार।
आदि अंत कोऊ नहिँ जानत, हरता-करता सब संसार।
सूरदास प्रभु बाल-अवस्था तरुन वृद्ध कौ करै निवार ॥४६७॥
॥१११५॥

बलि बलि चरित गोकुलराइ। *राग केदारौ*

दवानल को पान कीन्हौ, पियत दूध सिराइ।
पूतना के प्रान सोखे, आपु उर लपटाइ।
कहत जननी दूध डारत, खिझत कछु अनखाइ।
धर्यौ गिरिवर, दोहनी कर धरत बाहँ पिराइ।
सकट भंजन, परसि तिय-कुच कठिन लागत पाइ।
तृनाव्रत आकास तैं पटक्यौ सिला पर जाइ।
डरत लाल हिँडोल झूलत, हरैं देत झुलाइ।
बकासुर की चोँच फारी, सखनि प्रगट दिखाइ।
कीर पिँजरैं गहत अँगुरी, ललन लेत भजाइ।
विना दीपक, सदन सूनैं कबहुँ धरत न पाइ।
अघासुर-मुख पैठि निकसे, बाल बच्छ छुड़ाइ।
लिख्यौ काजर नाग द्वारैं स्याम देखि डराइ।
नचत काली नाग फन पर सप्त ताल बजाइ।
जमल अर्जुन तोरि तारे, हृदय प्रेम बढ़ाइ।
हठत तारि पलास पल्लव देहु, देत दिखाइ।

हरे बालक बच्छ नव कृत, हेत दौरी माइ।
चरत धेनु न मिलीं तिनकौं द्रुमनि ढूढ़त जाइ।
वृषभ-गंजन, मथन-केसी, हने पूँछ फिराइ।
भजत सखनि समेत मोहन, देखि ब्याई गाइ।
गोप-नारी-संग मोहन, कियौ रास बनाइ।
कहति जननी ब्याह कौं तब रहत बदन दुराइ।
कहा बरनौं कोटि रसना हिएँ बुधि उपजाइ।
सूर प्रभु की अगम महिमा देखि अगनित भाइ ॥४९८॥
॥१११६॥

राग भैरव

धेनुक-बध

सखा कहन लागे हरि सौं तब। चलौ ताल-बन कौं जैऐ अब।
ता बन मैं फल बहुत सुहाए। वैसे हम कबहूँ नहिं खाए।
धेनुक असुर तहाँ रखवारी। चलौ कह्यौ हँसि बल बनवारी।
बिहँसत हरि सँग चले गुवाला। नाचत गावत गुन-गोपाला।
सोयौ हुतौ असुर तरु-छाया। सुनत सब्द तुरतहिं उठि धाया।
हलधर कौं देख्यौ तिन आए। हाथ दोऊ बल करि जु चलाए।
पकरि पाइ बलभद्र फिरायौ। मारि ताहि तरु माहिँ गिरायौ।
और बहुत ताकौ परिवारा। हरि-हलधर मिलि सबकौं मारा।
ग्वालनि बन-फल रुचि सौं खाए। बहुरौ बृंदाबनहिँ सिधाए।
हरि-हलधर-छबि बरनि न जाई। सूरदास यह लीला गाई ॥४९९॥
॥१११७॥

कालीदह-जल-पान राग सारंग

चरावत वृंदाबन हरि गाइ।
सखा लिए सँग सुबल, सुदामा, डोलत हैं सुख पाइ।
क्रीड़ा करत जहाँ-तहँ सब मिलि अति आनंद बढ़ाइ।
बगरि गईं गैयाँ बन-बीथिनि, देखीं अति बहुताइ।
कोउ गए ग्वाल गाइ बन घेरन कोउ गए बछरु लिवाइ।
आपुहिं रहे अकेले बन मैं, कहुँ हलधर रहे जाइ।
बंसीबट सीतल जमुना तट, अतिहिं परम सुखदाइ।
सूर स्याम तहँ बैठि बिचारत, सखा कहाँ बिरमाइ ॥५००॥
॥१११८॥

राग सारंग

बार-बार हरि कहत मनहिँ मन, अबहिँ रहे सँग चारत धैनु।
ग्वाल-बाल कोउ कहूँ न देखौं टेरत नाउँ लेत दै सैनु।
आलस-गात जात मन मोहन, सोच करत, तनु नाहिँ न चैनु।
अकनि रहत कहुँ, सुनत नहीँ कछु, नहिँ गो-रंभन बालक-बैनु।
तृषावंत सुरभी बालक-गन, काली दह अँचयौ जल जाइ।
निकसि आइ सब तट ठाढ़े भए बैठि गए जहँ-तहँ अकुलाइ।
बन-घन ढूँढ़ि स्याम तहँ आए, गो-सुत ग्वाल रहे मुरझाइ।
मन मैँ ध्यान करत ही जान्यौ, काली उरग रह्यौ ह्याँ आइ।
गरुड़ त्रास करि आइ रह्यौ दुरि, अंतरजामी सब के नाथ।
अमृत दृष्टि भरि चितए सूर प्रभु, बोलि उठे गावत हरि गाथ।
॥५०१॥१११६॥

राग सारंग

आवहु आवहु इतै, कान्ह जू पाई हैँ सब धैनु।
कुंज-कुंज मैँ देखि हरे तृन, चरत परम सुख चैनु।
द्रुमनि चढ़े सब सखा पुकारत, मधुर सुनावत बैनु।
जनि धावहु बलि चरन मनोहर, कठिन कंट मग ऐनु।
तुम हमकौँ कहँ-कहँ न उबारयौ, पियौ काली-मुँह-फैनु।
सूर स्याम संतनि-हित-कारन, प्रगट भए सुख दैनु ॥५०२॥
॥११२०॥

राग सारंग

पाई पाई है रे भैया, कुंज-पुंज मैँ टाली।
अबकैँ अपनी हटकि चरावहु, जैहैँ भटकी घाली।
अवहु बेगि सकल दहुँ दिसि तैँ कत डोलत अकुलाने !
सुनि मृदु-बचन देखि उन्नत कर, हरषि सबै समुहाने।
तुम तौ फिरत अनत हीँ ढूँढ़त, ये बन फिरतिँ अकेली।
बाँकी गई कौन पैँडैँ ह्वै, सघन बहुत द्रुम वेली।
सूरदास प्रभु मधुर बचन कहि, हरषित सबहिँ बुलाए।
नृत्य करत आनँद गो चारत सबै कृष्न पै आए ॥५०३॥
॥११२१॥

राग नट नारायनो

मोहिँ बन छाँड़ि आए ग्वाल।
कहाँ तैँ कहँ आइ निकसे, करे कैसे ख्याल।
मुरछि काहैँ गिरे धरनी, कहा यह जंजाल।
मैँ इहाँ जो आइ देखौँ, परे सब बेहाल।
आनि अँचयौ जल जमुन कौ, तबहिँ गए अकुलाइ।
निकसि कै जब कूल आए, गिरि परे मुरझाइ।
प्रान बिनु हम सब भए ते, तुमहिँ दियौ जिवाइ।
सूर के प्रभु तुम जहाँ तहँ हमहिँ लेत बचाइ ॥५०४॥११२२॥

राग गौरी

बलदाऊ कहि स्याम पुकार्‌यौ।
आवहु बेगि चलौ घर जैऐ, बनहीँ होत अँध्यारौ।
ल्याए बोलि सखा हलधर कौँ, हँसे स्याम मुख चाहि।
बड़ी बेर भई बन भीतर तुम, गाइनि लेहु निबाहि।
हेरी देत चले सब तैँ गोधन दियौ चलाइ।
सूरदास प्रभु राम स्याम दोउ ब्रजजन के सुखदाइ ॥५०५॥
॥११२३॥

ब्रज-प्रवेश-शोभा *राग गौरी*

वै मुरली की टेर सुनावत।
बृंदाबन सब बासर बसि निसि-आगम जानि चले ब्रज आवत।
सुबल, सुदामा, श्रीदामा सँग, सखा मध्य मोहन छबि पावत।
सुरभी-गन सब लै आगैँ करि कोउ टेरत कोउ बेनु बजावत।
केकी-पच्छ-मुकुट सिर भ्राजत, गौरी राग मिलै सुर गावत।
सूर स्याम के ललित बदन पर, गोरज-छबि कछु चंद छपावत।
॥५०६॥११२४॥

राग गौरी

हरि आवत गाइनि के पाछे।
मोर-मुकुट मकराकृति कुंडल, नैन बिसाल कमल तैँ आछे।
मुरली अधर धरन सीखत हैँ, बनमाला पीताम्बर काछे।
ग्वाल-बाल सब बरन-बरन के, कोटि मदन की छबि किए पाछे।

पहुँचे आइ स्याम ब्रज पुर मैं, घरहिं चले मोहन-बल आछे।
सूरदास प्रभु दोउ जननी मिलि, लेतिं बलाइ बोलि मुख बाछे।
॥५०७॥११२५॥

राग कल्यान

आनँद सहित सबै ब्रज आए।
धन्य जसोदा तेरौ बारौ, हम सब मरत जिवाए।
नर-बपु धरे देव यह कोऊ, आइ लियौ अवतार।
गोकुल-ग्वाल-गाइ-गोसुत के येई राखनहार।
पय पीवत पूतना निपाती, तृनावर्त इहिं भाँत।
बृषभासुर-बत्सासुर मारयौ, बल-मोहन दोउ भ्रात।
जब तैं जनम लियौ ब्रज-भीतर, तब तैं यहै उपाइ।
सूर स्याम के बल-प्रताप तैं, बन-बन चारत गाइ ॥५०८॥
॥११२६॥

राग गौरी

तुम कत गाइ चरावन जात।
पिता तुम्हारौ नंद महर सौ अरु जसुमति सी जाकी मात।
खेलत रहौ आपने घर मैं, माखन दधि भावै सो खात।
अंमृत बचन कहौ मुख अपने, रोम-रोम पुलकति सब गात।
अब काहू के जाहु कहूँ जनि, आवति हैं जुवती इतरात।
सूर स्याम मेरे नैननि आगे तैं, कत कहूं जात हौ तात ॥५०९॥
॥११२७॥

राग गौरी

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं, मेरे पाइ पिराइँ।
जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहिं, अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि, गारी देत रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन बहराइ।
सूर स्याम मेरौ अति बालक, मारत ताहि रिंगाइ ॥५१०॥
॥११२८॥

राग गौरी

बल मोहन बन तैँ दोउ आए।
जननि जसोदा मातु रोहिनी, हरषित कंठ लगाए।
कहँ आजु अबार लगाई, कमल बदन कुम्हिलाए।
भूखे भए आजु दोउ भैया, करन कलेउ न पाए।
देखहु जाइ कहा जे वन कियौ, रौहिनि तुरत पठाई।
मैँ अन्हवाए देति दुहुँनि कौँ, तुम अति करौ चँड़ाई।
लकुट लियौ, मुरली कर लीन्हीँ हलधर दियौ विषान।
नीलांबर पीतांबर लीन्हे, सैँति धरति करि प्रान।
मुकुट उतारि धर्यौ लै मंदिर पोँछति है अँग-धातु।
अरु बनमाल उतारति गर तैँ, सूर स्याम की मातु ॥५११॥
॥११२६॥

राग कल्यान

अंग-अभूषन जननि उतारति।
दुलरी ग्रीव माल मोतिनि की, लै केयूर भुज स्याम निहारति।
छुद्रावली उतारति कटि तैँ सैँति धरति मनहीँ मन वारति।
रोहिनि भाजन करौ चँड़ाई बार-बार कहि-कहि करि आरति।
भूखे भए स्याम हलधर दोउ, यह कहि अंतर प्रेम बिचारति।
सूरदास प्रभु मातु जसोदा, पट लै, दुहुनि अंग-रज झारति ॥५१२॥
॥११३०॥

राग कल्यान

ये दोऊ मेरे गाइ चरैया।
मोल बिसाहि लियौ मैँ तुमकौँ जब दोउ रहे नन्हैया।
तुमसैँ टहल करावति निसि-दिन और न टहल करैया।
यह सुनि स्याम हँसे कहि दाऊ, झूठ कहति है मैया।
जानि परत नहिँ साँच झुठाई, चारत धेनु झुरैया।
सूरदास जसुदा मैँ चेरी कहि-कहि लेति बलैया ॥५१३॥
॥११३१॥

राग कल्यान

यह कहि जननि दुहुँनि उर लावति।
सुमना-सत अँग परसि, तरनि-जल, बलि-बलि गई कहि-कहि अन्हवावति।

सरस बसन तन पोँछि गई लै, षट रस की ज्यौनार जिँवावति।
सीतल जल कपूर-रस रचयौ, झारी कनक लिए अँचवावति।
भरयौ चुरू मुख धोइ तुरतहीँ, पीरे-पान-बिरी मुख नावति।
सूर स्याम सुख जननि मुदित मन, सेज्जा पर सँग लै पौढ़ावति।
॥५१४॥११३२॥

राग बिहागरौ

सोवत नीँद आइ गई स्यामहिँ।
महरि उठी पौढ़ाइ दुहुँनि कौँ, आपु लगी गृह कामहिँ।
बरजति है घर के लोगनि कौँ, हरुऐँ लै-लै नामहिँ।
गाढ़ बोनि न पावत कोऊ, डर मोहन बलरामहिँ।
सिव सनकादि अंत नहिँ पावत, ध्यावत अह-निसि-जामहिँ।
सूरदास-प्रभु ब्रह्म सनातन, सो सोवत नँद-धामहिँ ॥५१५॥
॥११३३॥

राग बिहागरौ

देखत नंद कान्ह अति सोवत।
भूखे भए आजु बन-भीतर, यह कहि-कहि मुख जोवत।
कह्यौ नहीँ मानत काहू कौ, आपु हठी दोउ बीर।
बार-बार तनु पोँछत कर सौँ, अतिहिँ प्रेम की पीर।
सेज मँगाइ लई तहँ अपनी, जहाँ स्याम-बलराम।
सूरदास प्रभु कैँ ढिग सोए, सँग पौढ़ी नँद-बाम ॥५१६॥
॥११३४॥

राग बिहागरौ

जागि उठे तब कुँवर कन्हाई।
मैया कहाँ गई मो ढिग तैँ, सँग सोवति बल भाई।
जागे नंद, जसोदा जागी, बोलि लिए हरि पास।
सोवत झझकि उठे काहे तैँ, दीपक कियौ प्रकास।
सपनैँ कूदि परयौ जमुना-दह, काहूँ दियौ गिराइ।
सूर स्याम सौँ कहति जसोदा, जनि हो लाल डराइ ॥५१७॥
॥११३५॥

राग गौरी

मैँ बरज्यौ जमुना-तट जात।
सुधि रहि गई न्हात की तेरैँ, जनि डरपौ मेरे तात।
नंद उठाइ लियौ कोरा करि, अपनैँ सँग पौढ़ाइ।
बृंदाबन मैँ फिरत जहाँ-तहँ, किहिँ कारन तू जाइ।
अब जनि जैहौ गाइ चरावन, कहँ को रहति चलाइ!
सूर स्याम दंपति बिच सोए, नींद गई तब आइ ॥५१८॥
॥११३६॥

राग कल्यान

सपनौ सुनि जननी अकुलानी।
दंपति बात कहत आपुस मैँ, सोवत सारँगपानी।
या ब्रज कौ जीवन यह ढोटा, कह देख्यौ इहिँ आजु!
गाइ चरावन जान न दीजै याकौ है कह काजु।
गृह-संपति द्वै तनक ढुटौना, इनहीँ लौँ सुख-भोग।
सूर स्याम बन जात चरावन, हँसी करत सब लोग ॥५१९॥
॥११३७॥

राग भैरवी

इहिँ अंतर भिनुसार भयौ।
तारा गन सब गगन छपाने, अरुन उदित, अँधकार गयौ।
जागी महरि, काज-गृह लागी, निसि कौ सब दुख भूलि गयौ।
प्रातः स्नान करन जमुना कौ, नंदहि तुरत उठाइ दयौ।
मथनहारि सब ग्वारि बुलाईँ, भोर भयौ उठि मथौ दह्यौ।
सूर नंद घरनी आपुन हू, मथन मथानी-नेति गह्यौ ॥५२०॥
॥११३८॥

कमल-पुष्प मँगाना, काली-दमन लीला *राग बिलावल*

नारद सौँ नृप करत बिचार। ब्रज मैँ ये दोउ कोउ अवतार।
नंद-सुवन बलराम कन्हाई। इनकी गति मैँ कछू न पाई।
तृनावर्त से दूत पठाए। ता पाछैँ कागासुर धाए।
बकी पठाइ दई पहिलै हीँ। ऐसनि कौ बल वै सब लैहीँ।

उनतैं कछू भयौ नहिँ काजा। यह सुनि-मुनि मोहिँ आवत लाजा।
अब मुनि तुम इक बुद्धि बिचारहु। सूर स्याम बलरामहिँ मारहु॥
॥५२१॥११३६॥

राग बिलावल

नारद ऋषि नृप सौँ यौँ भाषत।
वै हैँ काल तुम्हारे प्रगटे, काहैँ उनकौँ राखत।
काली उरग रहै जमुना मैँ, तहँ तैं कमल मँगावहु।
दूत पठाइ देहु ब्रज ऊपर नंदहिँ अति डरपावहु।
यह सुनि कै ब्रज लोग डरैंगै, वैँ सुनि हैँ यह बात।
पुहुप लैन जैहैँ नँद-ढोटा, उरग करै तहँ घात।
यह सुनि कंस बहुत सुख पायौ, भली कही यह मोहि।
सूरदास प्रभु कौँ मुनि जानत, ध्यान धरत मन जोहि॥५२२॥
॥११५०॥

राग सूहौ

कंस बुलाइ दूत इक लीन्हौ।
कालीदह के फूल मँगाए, पत्र लिखाइ ताहि कर दीन्हौ।
यह कहियौ ब्रज जाइ नंद सौँ, कंस राज अति काज मँगायो।
तुरत पठाइ दिऐँ ही बनिहै, भली भाँति कहि-कहि समुझायौ।
यह अंतरजामी जानी जिय, आपु रहे, बन ग्वाल पठाए।
सूर स्याम, ब्रज-जन-सुखदायक, कंस-काल, जिय हरष बढ़ाए॥
॥५२३॥११४१॥

राम रामकली

खेलन चले नंद-कुमार।
दूत आवत जानि ब्रज मैँ, आपु दीन्ह्यौ टार।
नंद जमुना न्हाइ आए, महरि ठाढ़ी द्वार।
नृपति दूत पठाइ दीन्ह्यौ, चल्यौ ब्रज इहिँ कार।
महर पैठत सदन भीतर, छींक बाईँ धार।
सूर नंद कहत महरि सौँ, आजु कहा बिचार॥५२४॥११४२॥

राग सूहौ

पुनि-पुनि कंस मुदित मन कीन्हौ।
दूतहिँ प्रगट कही यह बानी, पत्र नंद कौँ दीन्हौ।

कालीदह के कमल पठावहु, तुरत देखि यह पाती।
जैसैं कालिह कमल ह्याँ पहुँचै, तू कहियौ इहिं भाँती।
यह सुनि दूत तुरतहीं धायौ, तब पहुँच्यौ ब्रज जाइ।
सूर नंद-कर पाती दीन्हीं, दूत कह्यौ समुझाइ ॥५२५॥
॥११४३॥

राग सूहौ

पाती बाँचत नंद डराने।
कालीदह के फूल पठावहु सुनि सबही ख़बराने।
जौ मोकौं नहिं फूल पठावहु, तौ ब्रज देहुँ उजारि।
महर, गोप, उपनंद न राखौं, सबहिनि डारौं मारि।
पुहुप देहु तौ बनै तुम्हारी, ना तरु गए बिलाइ।
सर स्याम-बलराम तिहारे, माँगौं उनहिं धराइ ॥५२६॥
॥११४४॥

राग बिलावल

नंद सुनत मुरझाइ गए।
पाती बाँची, सुनी दूत-मुख, यह सुनि चकित भए।
बल मोहन खटकत वाकैं मन, आजु कही यह बात।
कालीदह के फूल कहौ धौं, को आनै पछितात।
और गोप सब नंद बुलाए, कहत सुनौ यह बात।
सुनहु-सूर नृप इहिं ढग आयौ, बल मोहन पर घात ॥५२७॥
॥११४५॥

राग जैतश्री

आपु चढ़ै ब्रज-ऊपर काल।
कहाँ निकसि जैऐ को राखै, नंद कहत बेहाल।
मोहिं नहीं जिय कौ डर नैं कहु दोउ सुत कौं डरपाउँ।
गाउँ तजौं, कहुँ जाउँ निकसि लै, इनहीं काज पराउँ।
अब उबार नहिं दीसत कतहूँ, सरन राखि को लेइ।
सूर स्याम कौं बरजति माता, बाहिर जान न देइ ॥५२८॥
॥११४६॥

राग आसावरी

नंद-घरनि ब्रज-नारि बिचारति।
ब्रजहिँ बसत सब जनम सिरानौ, ऐसी करी न आरति।
कालीदह के फूल मँगाए, को आनै धौँ जाई।
ब्रजबासी नातरु सब मारै, बाँधै बलऽरु कन्हाइ।
यहै कहत दोउ नैन ढराने, नंद-घरनि दुख पाइ।
सूर स्याम चितवत माता-मुख, बूझत बात बनाइ ॥४२६॥
॥११४७॥

राग आसावरी

पूछौ जाइ तात सौँ बात।
मैँ बलि जाउँ मुखारबिंद की, तुमहीँ काज कंस अकुलात।
आए स्याम नंद पै धाए, जान्यौ मातु-पिता बिलखात।
अबहीँ दूरि करौँ दुख इनकौ, कंसहिँ पठै देउँ जलजात।
मोसौँ कहौ बात बाबा यह, बहुत करत तुम सोच बिचार।
कहा कहौँ तुमसौँ मैँ प्यारे, कंस करत तुमसौँ कछु भार।
जब तैँ जनम भयौ है तुम्हरौ, केते करबर टरे कन्हाइ।
सूर स्याम कुलदेवनि तुमकौँ जहाँ तहाँ करि लियौ सहाइ।
॥५३०॥११४८॥

राग बिलावल

तुमहिँ कहत कोउ करै सहाइ।
सो देवता संगहीँ मेरैँ, ब्रज तैँ अनत कहूँ नहिँ जाइ।
वह देवता कंस मारैगौ, केस धरे धरनी घिसियाइ।
वह देवता मनावहु सब मिलि तुरत कमल जो देइ पठाइ।
बाबा नंद, झखत किहिँ कारन, यह कहि मया मोह अरुझाइ।
सूरदास प्रभु मातु-पिता कौ, तुरतहिं दुख डार्‌यौ बिसराइ।
॥५३१॥११४६॥

राग नट

खेलन चले कुँवर कन्हाइ।
कहत घोष-निकास जैये, तहाँ खेलैँ धाइ।

गेंद खेलत बहुत बनिहै, आनौ कोऊ जाइ।
सखा श्रीदामा गए घर, गेंद तुरतहिं आइ।
अपनैं कर लै स्याम देख्यौ, अतिहि हरष बढ़ाइ।
सूर के प्रभु सखा लीन्हैं करत खेल बनाइ ॥५३२॥
॥११५०॥

राग सारंग

खेलत स्याम, सखा लिए संग।
इक मारत, इक रोकत गेंदहिं, इक भागत करि नाना रंग।
मार परसपर करत आपु मैं, अति आनंद भए मन माहिं।
खेलत ही मैं स्याम सबनि कौं, जमुना-तट कौं लीन्हे जाहिं।
मारि भजत जो जाहि, ताहि सो मारत, लेत अपनौ दाउ।
सूर स्याम के गुन को जानै कहत और कछु और उपाउ ॥५३३॥
॥११५१॥

राग गौरी

लै गए टारि जमुन-तट ग्वालनि।
आपुन जात कमल के काजहिं, सखा लिए सँग ख्यालनि।
जोरी मारि भजत उतही कौं, जात जमुन कैं तीर।
इक धावत पाछैं उनहीं के, पावत नहीं अधीर।
राँटि करत तुम खेलत ही मैं, परी कहा यह बानी?
सूर स्याम कौं कहत ग्वाल सब, तुमहिं भलैं करि जानी ॥५३४॥
॥११५२॥

राग नट

स्याम सखा कौं गेंद चलाई।
श्रीदामा मुरि अंग बचायौ, गेंद परी कालीदह जाई।
धाइ गही तब फेंट स्याम की, देहु न मेरी गेंद मँगाई।
और सखा जनि मोकौं जानौ, मोसौं तुम जनि करौ ढिठाई।
जानि-बूझि तुम गेंद गिराई, अब दीन्हैं ही बनै कन्हाई।
सूर सखा सब हँसत परसपर, भली करी हरि गेंद गँवाई ॥५३५॥
॥११५३॥

राग सोरठ

फेँट छाँड़ि मेरी देहु श्रीदामा।
काहे कौं तुम रारि बढ़ावत, तनक बात कैं कामा।
मेरी गेँद लेहु ता बदलैं, बाहँ गहत हौ धाइ।
छोटौ बड़ौ न जानत काहूँ, करत बराबरि आइ।
हम काहे कौं तुमहिं बराबर, बड़े नंद के पूत!
सूर स्याम दीन्हैँ ही बनिहै, बहुत कहावत धूत ॥५३६॥
॥११५४॥

राग कल्यान

तोसौं कहा धुताई करिहौं।
जहाँ करी तहँ देखी नाहीं, कह तोसौं मैं लरिहौं।
मुहँ सम्हारि तू बोलत नाहीं, कहत बराबरि बात।
पावहुगे अपनौ कियौ अबहीं, रिसनि कँपावत गात।
सुनहु स्याम, तुमहूँ सरि नाहीं, ऐसे गए बिलाइ।
हमसौं सतर होत सूरज प्रभु, कमल देहु अब जाइ ॥५३७॥
॥११५५॥

राग गौरी

हमहीं पर सतरात कन्हाई।
प्रथमहिं कमल कंस कौं दीजै, डारहु हमहिं मराई।
साँच कहौं मैं तुमहिं श्रीदामा, कमल काज मैं आयौ।
कहा कंस बपुरौ, किहिं लायक, जाकौं मोहिं डरायो?
अघा, बका, केसी, सकटासुर, तृना सिला पर डारयौ।
बकी कपट करि प्यावन आई, ताकौं तुरत पछारयौ।
कालीदह-जल-छुवत मरे सब, सोइ काली धरि ल्याऊँ।
सूरदास प्रभु देह धरे कौ, गुन प्रगट्यौ इहि ठाऊँ ॥५३८॥
॥११५६॥

राग सोरठ

रिस करि लीन्ही फेँट छुड़ाइ।
सखा सबै देखत हैं ठाढ़े, आपुन चढ़े कदम पर धाइ।

तारी दै-दै हँसत सबै मिलि, स्याम गए तुम भाजि डराइ।
रोवत चले श्रीदामा घर कौं, जसुमति आगैं कहिहौं जाइ।
सखा-सखा कहि स्याम पुकार्‌यौ, गेंद आपनौ लेहु न आइ।
सूर स्याम पीतांबर काछे, कूदि परे दह मैं भहराइ ॥५३९॥
॥११५७॥

राग गौरी

हाय-हाय करि सखनि पुकार्‌यौ।
गेंद काज यह करी श्रीदामा, नंद कौ ढोटा मार्‌यौ।
जसुमति चली रसोई भीतर, तबहिं ग्वालि इक छींकी।
ठठकि रही द्वारे पर ठाढ़ी, बात नहीं कछु नीकी।
आइ अजिर निकसी नँदरानी, बहुरी दोष मिटाइ।
मंजारी आगें ह्वै आई, पुनि फिरि आँगन आइ।
ब्याकुल भई, निकसि गई बाहिर, कहँ धौं गए कन्हाई।
बाए काग, दाहिनैं खर-स्वर, व्याकुल घर फिरि आई।
खन भीतर, खन बाहिर आवति, खन आँगन इहिं भाँति।
सूर स्याम कौं टेरति जननी, नैंकु नहीं मन साँति ॥५४०॥
॥११५८॥

राग गौरी

देखे नंद चले घर आवत।
पैठत पौरि छींक भई बाएँ, दहिनैं धाह सुनावत।
फटकत स्रवन स्वान द्वारे पर, गररी करति लराई।
माथे पर ह्वै काग उड़ान्यौ, कुसगुन बहुतक पाई।
आए नंद घरहिं मन मारे, ब्याकुल देखी नारि।
सूर नंद जसुमति सौं बूझत, बिनु छबि बदन निहारि ॥५४१॥
॥११५९॥

राग नट

नंद घरनि सौं पूछत बात।
बदन झुराइ गयौ क्यौं तेरौ, कहाँ गए बल, मोहन तात?
"भीतर चली रसोई कारन, छींक परी तब आँगन आइ।
पुनि आगैं ह्वै गई मँजारी, और बहुत कुसगुन मैं पाइ।"

मोहिँ भए कुसगुन घर पैठत, आजु कहा यह समुझि न जाइ।
सूर स्याम गए आजु कहाँ धौँ, बार-बार पूछत नँदराइ ॥५४२॥
॥११६०॥

राग गौरी

महर-महरि-मन गई जनाइ।
खन भीतर, खन आँगन ठाढ़े, खन बाहिर देखत है जाइ।
इहिँ अंतर सब सखा पुकारत, रोवत आए ब्रज कौँ धाइ।
आतुर गए नंद-घरही कौँ, महर-महरि सौँ बात सुनाइ।
चकित भए दोउ बूझन लागे, कहौ बात हमकौँ समुझाइ।
सूर स्याम खेलतहिं कदम चढ़ि, कूदि परे कालीदह जाइ।
॥५४३॥११६१॥

राग सोरठ

सुपनौ परगट कियौ कन्हाई।
सोवत ही निसि आजु डराने, हमसौँ यह कहि बात सुनाई।
धरनि परी मुरझाइ जसोदा, नंद गए जमुना-तट धाई।
बालक सब नंदहिँ सग धाए, ब्रज-घर जहँ तहँ सोर मचाई।
त्राहि-त्राहि करि नंद पुकारत, देखत ठौर गिरे भहराई।
लोटत धरनि, परत जल-भीतर, सूर स्याम दुख दियौ बुढ़ाई।
॥५४४॥११६२॥

राग गौरी

ब्रज-बासी यह सुनि सब आए।
कहाँ पर्‌यौ गिरि कुँवर कन्हैया, बालक लै सो ठौर दिखाए।
सूनौ गोकुल कियौ स्याम तुम, यह कहि लोग उठे सब रोइ।
नंद गिरत सबहिनि धरि राख्यौ, पोँछत बदन नीर लै धोइ।
ब्रज-बासी तब कहत महर सौँ, मरन भयौ सबही कौ आइ।
सूर स्याम बिनु को बसिहै ब्रज, धिक जीवन तिहुँ भुवन कहाइ।
॥५४५॥११६३॥

राग सोरठ

महरि पुकारति कुँवर कन्हाई।
माखन धर्‌यौ तिहारेहि कारन, आजु कहाँ अवसेरि लगाई।

अति कोमल, तुम्हरे मुख, लायक, तुम जेँवहु मेरे नैन जुड़ाई।
धौरी-दूध औटि है राख्यौ, अपनैँ कर दुहि गए बनाई।
बरजति ग्वारि जसोदा कौँ सब, यह कहि-कहि नीकैँ जदुराई।
सूर स्याम सुत जीय मातु के, यह बियोग बरन्यौ नहिँ जाई।
॥५४६॥११६४॥

राग गौरी

माखन खाहु लाल मेरे आई। खेलत आजु अबार लगाई।
बैठहु आइ संग दोउ भाई। तुम जेँवहु मैया बलि जाई।
सद माखन अति हित मैँ राख्यौ। आजु नहीँ नैँकहुँ तुम चाख्यौ।
प्रातहिँ तैँ मैँ दियौ जगाइ। दतुवनि करि जु गए दोउ भाइ।
मैँ बैठी तुव पंथ निहारौँ। आवहु तुम पर तन मन वारौँ।
ब्रज-जुवती सुनि सुनि यह बानी। रोवति धरनि परीँ अकुलानी।
सोँक - सिंधु बूड़ी नँदरानी। सुधि-बुधि तन की सबै भुलानी।
सूर स्याम लीला यह कीन्हौ। सुख कैँ हेत जननि दुख दीन्हौ।
॥५४७॥११६५॥

राग नट

चौँकि परी तन की सुध आई।
आजु कहा ब्रज सोर मचायौ, तब जान्यौ दह गिरयौ कन्हाई।
पुत्र-पुत्र कहिकै उठि दौरी, ब्याकुल जमुना-तीरहिँ धाई।
ब्रज-बनिता सब संगहिँ लागीँ आइ गए बल, अग्रज भाई।
जननी व्याकुल देखि प्रबोधत धीरज करि नीकैँ जदुराई।
सूर स्याम कौँ नैँकु नहीँ डर, जनि तू रोवै जसुमति माई।
॥५४८॥११६६॥

राग बिलावल

ब्रज-बासी सव उठे पुकारि। जल भीतर कह करत मुरारि।
संकट मैँ तुम करत सहाइ। अब क्यौँ नाहिँ बचावत आइ।
मातु-पिता अतिहीँ दुख पावत। रोइ-रोइ सब कृष्न बुलावत।
हलधर कहत सुनहु ब्रज-बासी। वै अंतरजामी अबिनासी।
सूर दास प्रभु आनँद-रासी। रमा सहित जल ही के बासी।
॥५४९॥११६७॥

राग सूहौ

अति कोमल तनु धर्यौ कन्हाई।
गए तहाँ जहँ काली सोवत, उरग-नारि देखत अकुलाई।
कह्यौ कौन कौ बालक है तू, बार-बार कही, भागि न जाई।
छनकहि मैँ जरि भस्म होइगौ, जब देखे उठि जाग जम्हाई।
उरग-नारि की बानी सुनि कै, आपु हँसे मन मैँ मुसुकाई।
मोकैँ कंस पठायौ देखन, तू याकैँ अब देहि जगाई।
कहा कंस दिखरावत इनकैँ एक फूँकही मैँ जरि जाई।
पुनि-पुनि कहत सूर के प्रभु कौ, तू अब काहे न जाइ पराई।
॥५५०॥११६८॥

राग गुंड मलार

कहा डर करैँ इहिँ फनिग को बाबरी।
कह्यौ मेरौ मानि, छाँड़ि अपनी बानि, टेक परिहै जानि सब रावरी।
तोहिँ देखे मया, मोहिँ अतिहीँ भई, कौन कौ सुवन, तू कहा आयौ।
मरौ वह कंस, निरबंस वाकौ होइ, कर्यौ यह गंस तोकौँ पठायौ।
कंस कौँ मारिहौँ धरनि निरवारिहौँ, अमर उद्धारिहौँ उरग-घरनी।
सूर प्रभु के बचन सुनत, उरगिनि कह्यौ, जाहि अब क्यौँ न, मति भई मरनी ॥५५१॥११६९॥

राग मारू

झिनकि कै नारि, दै गारि गिरधारि तब, पूँछ पर लात दै अहि जगायौ।
उठ्यौ अकुलाइ, डर पाइ खग-राइ कौँ, देखि बालक गरब अति बढ़ायौ।
पूँछ लीन्ही झटकि धरनि सौँ गहि पटकि फुंकर्यौ लटकि करि क्रोध फूले।
पूँछ राखी चाँपि, रिसनि काली काँपि, देखि सब साँपि-अवसान भूले।
करत फन-घात, बिष जात उतरात अति, नीर जरि जात, नहिँ गात परसै।
सूर के स्याम प्रभु, लोक-अभिराम, बिनु जान अहिराज बिष ज्वाल बरसै ॥५५२॥११७०॥

राग नट

अहिँ कौं लै अब ब्रजहिँ दिखाऊँ।
कमल-भार याही पर लादौं, याकौं आपन रूप जनाऊँ।
मात-पिता अतिहीँ दुख पावत, दरसन दै मन हरष बढ़ाऊँ।
कमल पठाइ देउँ नृप राजहिँ, कालिह कह्यौ ब्रज ऊपर धाऊँ।
मन-मन करत बिचार स्याम यह, अब काली कौं दाउँ बताऊँ।
सूरदास प्रभु की यह बानी, ब्रज-बासिनि कौं दुख बिसराऊँ।
॥५५३॥११७१॥

राग कान्हरौ

उरग-नारि सब कहतिँ परस्पर, देखौ या बालक की बात।
बिष-ज्वाला जल जरत जमुन कौ, याकैं तन लागत नहिँ तात!
यह कछु तंत्र मंत्र जानत है अतिहीँ सुंदर कोमल गात।
यह अहिराज महा बिष ज्वाला, कितने करत सहस फन घात।
छुवत नहीँ तनु याकौ बिष कहुँ, अब लौं बच्यौ पुन्य पित मात।
सूर स्याम सो दाउँ बतायौ, काली अंग लपेटत जात ॥५५४॥
॥११७२॥

राग बिलावल

उरग लियौ हरि कौं लपटाइ।
गर्व-बचन कहि-कहि मुख भाषत, मोकौं नहिँ जानत अहिराइ।
लियौ लपेटि चरन तैं सिख लौं, अति इहिँ मोसैं करत ढिठाइ।
चाँपी पूँछ लुकावत अपनी, जुवतिनि कौं नहिँ सकत दिखाइ।
प्रभु अंतरजामी सब जानत, अब डारौं इहिँ सकुचि मिटाइ।
सूरदास प्रभु तन बिस्तारयौ, काली बिकल भयौ तब जाइ ॥५५५॥
॥११७३॥

राग कान्हरौ

जबहिँ स्याम तन, अति बिस्तारयौ।
पटपटात टूटत अँग जान्यौ, सरन-सरन सु पुकारयौ।
यह बानी सुनतहिँ करुनामय, तुरत गए सकुचाइ।
यहै बचन सुनि द्रुपद-सुता-मुख, दीन्हौ बसन बढ़ाइ।

यहै बचन गजराज सुनायौ, गरुड़ छाँड़ि तहँ धाए।
यहै बचन सुनि लाखा-गृह मैं पांडव जरत बचाए।
यह बानी सहि जात न प्रभु सौं, ऐसे परम कृपाल।
सूरदास प्रभु अंग सकोर्यौ, ब्याकुल देख्यौ ब्याल ॥५५६॥
॥११७४॥

राग गौरी

नाथत ब्याल बिलंब न कीन्हौ।
पग सौं चाँपि धींच बल तोर्यौ, नाक फोरि गहि लीन्हौ।
कूदि चढ़े ताके माथे पर, काली करत बिचार।
स्रवननि सुनी रही यह बानी, ब्रज ह्वैहै अवतार।
तेइ अवतरे आइ गोकुल मैं, मैं जानी यह बात।
अस्तुति करन लग्यौ सहसौ मुख, धन्य-धन्य जग-तात।
बार बार कहि सरन पुकार्‌यौ, राखि-राखि गोपाल।
सूरदास प्रभु प्रगट भए जब, देख्यौ ब्याल बिहाल ॥५५७॥
॥११७५॥

राग बिलावल

देखि दरस मन हरष भयौ।
पूरन ब्रह्म सनातन तुमहीं, ब्रज अवतार लयौ।
श्रीमुख कह्यो, अजहुँ लौं तुम नहिं, जान्यौ ब्रज अवतार?
और कौन जो तुम सौं बाँचै, सहस फननि की झार!
अनजानत अपराध किए प्रभु, राखि सरन मोहिं लेहु।
सूरदास धनि-धनि मेरे फन, चरण-कमल जहं देहु ॥५५८॥
॥११७६॥

राग गौरी

अब कीन्ह्यौ प्रभु मोहिं सनाथ।
कोटि-कोटि कीटहु सम नाहीं, दरसन दियौ जगत के नाथ।
असरन सरन कहावत हौ तुम, कहत सुनी भक्तनि मुख बात।
ये अपराध छमा सब कीजै, धिक मेरी बुधि कहत डरात।
दीन बचन सुनि काली मुख तैं, चरन धरे फन-फन-प्रति आप।
सूर स्याम देख्यौ अहि ब्याकुल, खसु दीन्ह्यौ, मेटे त्रय ताप।
॥५५९॥११७७॥

राग गौरी

जसुमति टेरति कुँवर कन्हैया।
आगैं देखि कहत बलरामहिं, कहाँ रह्यौ तुव भैया।
मेरौ भैया आवत अबहीं तोहिं दिखाऊँ मैया।
धीरज करहु, नैंकु तुम देखहु, यह सुनि लेति बलैया।
पुनि यह कहति मोहिं परमोधत, धरनि गिरी मुरझैया।
सूर बिना सुत भई अति ब्याकुल, मेरौ बाल नन्हैया ॥५६०॥
॥११७८॥

राग सारंग

जमुना तोहिं बह्यौ क्यौं भावे।
तोमैं कृष्न हेलुवा खेले, सो सुरत्यौ नहिं आवै!
तेरौ नीर सुची जो अब लौं, खार पनार कहावै।
हरि-बियोग कोउ पाउँ न दैहै, को तट बेनु बजावै!
भरि भादौं जो राति अष्टमी, सो दिन क्यौं न जनावै।
सूरदास कौ ऐसौ ठाकुर, कमल-फूल लै आवै ॥५६१॥
॥११७९॥

राग गोरठ

ब्रज-बासी सब भए बिहाल।
कान्ह-कान्ह कहि-कहि टेरत हैं, ब्याकुल गोपी-ग्वाल।
अब को बसै जाइ ब्रज हरि-बिनु, धिक जीवन नर-नारि।
तुम बिनु यह गति भई सबनि की, कहाँ गए बनवारि।
प्रातहिं तैं जल-भीतर पैठे, होन लग्यौ जुग जाम।
कमल लिए सूरज प्रभु आवत सब सौं कही बलराम ॥५६२॥
॥११८०॥

राग नट

आवत उरग नाथे स्याम।
नंद, जसुदा, गोप-गोपी, कहत हैं बलराम।
मोर-मुकुट, बिसाल लोचन, स्रवन कुंडल लोल।
कटि पितंबर, बेष नटवर, नृतत फन प्रति डोल।

देव दिवि दुंदुभि बजावत, सुमन-गन बरषाइ।
सूर स्याम बिलोकि ब्रज-जन, मातु, पितु सुख पाइ ॥५६३॥
॥११८१॥

राग नट

मातु-पिता मन हरष बढ़ायौ।
मोर-मुकुट पीतांबर काछे, देख्यौ निकट जु आयौ।
सुर दुंदुभी बजावत गावत, फन-प्रति निर्तत स्याम।
ब्रजवासी सब मरत जिवाए, हरषि उठीं सब बाम।
सोक-सिंधु बहि गयौ तुरतहीं, सुख कौ सिंधु बढ़ायौ।
सूरदास प्रभु कंस-निकंदन, कमल उरग पर लायौ ॥५६४॥
॥११८२॥

राग कान्हरौ

फन-फन-प्रति निरतत नँद-नंदन।
जल-भीतर जुग जाम रहे कहुँ, मिट्यौ नहीं तन-चंदन।
उहै काछनी कटि, पीतांबर, सीस मुकुट अति सोहत।
मानौ गिरि पर मोर अनंदित, देखत ब्रज-जन मोहत।
अंबर थके अमर ललना सँग, जै-जै धुनि तिहुँ लोक।
सूर स्याम काली पर निरतत, आवत हैं ब्रज-ओक ॥५६५॥
॥११८३॥

राग सोरठ

गोपाल राइ निरतत फन-प्रति ऐसे।
गिरि पर आए बादर देखब, मोर अनंदित जैसे।
डोलत मुकुट सीस पर हरि के, कुंडल-मंडित गंड।
पीत बसन, दामिनि मनु घन पर, तापर सुर-कोदंड।
उरग-नारि आगैं सब ठाढ़ीं, मुख-मुख अस्तुति गावैं।
सूर स्याम अपराध छमहु अब, हम माँगैं पति पावैं ॥५६६॥
॥११८४॥

राग कान्हरौ

बहुत कृपा इहिं करी गुसाईं।
इतनी कृपा करी नहिं काहूँ, जिनि राखे सरनाई।

कृपा करी प्रहलाद भक्त कौँ, द्रुपद-सुता-पति राखी।
ग्राह ग्रसत गजराज छुड़ायौ, बेद पुराननि भाखी।
जो कछु कृपा करी काली पर, सो काहू नहिं कीन्हौ।
कोटि ब्रह्मंड रोम-प्रति अंगनि, ते पद फन-प्रति दीन्हौ।
धरनि सीस धरि सेस गरब धर्‍यौ, इहिं भर अधिक सँभार्‍यौ।
पूरन कृपा करी सूरज प्रभु, पग फन-फन-प्रति धार्‍यौ ॥५६७॥
॥११८५॥

राग सोरठ

ठाढ़े देखत हैँ ब्रजबासी।
कर जोरे अहि-नारि विनय करि कहति, धन्य अबिनासी।
जे पद-कमल रमा उर राखति, परसि सुरसरी आई।
जे पद-कमल संभू की संपति, फन-प्रति धरे कन्हाई।
जे पद परसि सिला उद्धरि गई, पांडव गृह फिरि आए।
जे पद-कमल-भजन महिमा तैँ, जन प्रहलाद बचाए।
जे पद ब्रज-जुवतिनि सुखदायक, तिहूँ भुवन धरे बावन।
सूर स्याम ते पद फन-फन-प्रति, निरतत अहि कियौ पावन ॥५६८॥
॥११८६॥

राग सोरठ

ऐसी कृपा करी नहिँ काहूँ।
खंभ प्रगटि प्रहलाद बचायौ, ऐसी कृपा न ताहूँ।
ऐसी कृपा करी नहिँ गज कौँ, पाइ पियादे धाए।
ऐसी कृपा तबहुँ नहिँ कीन्ही, नृपतिनि बंदि छुड़ाए।
ऐसी कृपा करी नहिँ भीषम-परतिज्ञा सत भाषी।
ऐसी कृपा करी नहिँ, जब त्रिय नगन समय पति राखी।
पूरन कृपा नंद-जसुमति कौँ, सोइ पूरन इहिँ पायौ।
सूरदास प्रभु धन्य कंस, जिनि, तुमसौँ कमल मँगायौ ॥५६९॥
॥११८७॥

राग कान्हरौ

सुनहु कृपानिधि, जिती कृपा तुम या काली पै कीन्ही।
इती बड़ाई कबहुँ, कैसहूँ, नहिँ काहू कौँ दीन्ही।

जिनि पद-कमल-सुकृत-जल-परस्यौ, अजहुँ धरैं सिव सीस।
ते पद प्रगट धरे फन-फन-प्रति, धन्य कृपा जगदीस।
एक अंड कौ भार बहत है, गरब धर्‌यौ जिय सेष।
इहिँ भरु अधिक सह्यौ अपनैं सिर, अमित-अंड-मय बेष।
सुर, नर, असुर, कीट, पसु, पच्छी, सब सेवक प्रभु तेरे।
सूर स्याम अपराध छमहु अब, या अपने जन केरे ॥५७०॥
॥११८८॥

राग कान्हरौ

चरन-कमल बंदौं जगदीस्वर, जे गोधन-सँग धाए।
जे पद-कमल धूरि लपटाने, गहि गोपिन उर लाए।
जे पद-कमल जुधिष्ठिर पूजे, राजसूय चलि आए।
जे पद-कमल पितामह भीषम, भारत देखन पाए।
जे पद-कमल संभु चतुरानन, हृद अंतर लै राखे।
जे पद-कमल राम-उर-भूषन, बेद, भागवत भाखे।
जे पद-कमल लोक-त्रय-पावन, बलि की पीठि धरे।
जे पद-कमल सूर के स्वामी, फन-प्रति नृत्य करे ॥५७१॥
॥११८९॥

राग कान्हरौ

गिरधर, ब्रजधर, मुरलीधर, धरनीधर, माधौ पीतांबरधर।
संख-चक्र-धर, गदा-पद्मधर, सीस-मुकुट-धर, अधर-सुधा-धर।
कंबु-कंठ-धर, कौस्तुभ-मनि-धर, बनमाला-धर, मुक्त-माल-धर।
सूरदास प्रभु गोप-बेष-धर, काली-फन-पर-चरन-कमल-धर ॥५७२॥
॥११९०॥

राग कान्हरौ

गरुड़-त्रास तैं जौ ह्याँ आयौ।
तौ प्रभु-चरन-कमल फन-फन-प्रति अपनैं सीस धरायौ।
धनि रिषि साप दियौ खगपति कौं, ह्याँ तब रह्यौ छपाइ।
प्रभु-बाहन-डर भाजि बच्यौ अहि, नातरु लेतौ खाइ।
यह सुनि कृपा करी नँद-नंदन चरन-चिह्न प्रगटाए।
सूरदास प्रभु अभय ताहि करि, उरग-द्वीप पहुँचाए ॥५७३॥
॥११९१॥

राग सारंग

अति बल करि-करि काली हार्‌यौ।
लपटि गयौ सब अंग-अंग-प्रति, निर्विष कियौ सकल बल झार्‌यौ
निरतत पद पटकत फन-फन-प्रति, बमत रुधिर नहिँ जात सम्हार्‌यौ।
अति बल-हीन, छीन भयौ तिहिँ छन, देखियत, है रज्जु सम डार्‌यौ
तिय-बिनती करुना उपजी जिय, राख्यौ स्याम नाहिँ तिहिँ मार्‌यौ।
सूरदास प्रभु प्रान-दान कियौ, पठयौ सिंधु उहाँ तैं टार्‌यौ ॥५७४॥
॥११६२॥

राग कान्हरौ

सबै ब्रज है जमुना कैं तीर।
कालिनाग के फन पर निरतत, संकर्षन कौ बीर।
लाग मान थेइ-थेइ करि उघटत ताल मृदंग गँभीर।
प्रेम-मगन गावत गंध्रब गन ब्योम बिमाननि भीर।
उरग-नारि आगैं भईं ठाढ़ी, नैननि ढारतिँ नीर।
हमकौं दान देइ पति छाँड़हु, सुंदर स्याम सरीर।
आए निकसि पहिर मनि-भूषन, पीत-बसन कटि चीर।
सूर स्याम कौं भुज भरि भेंटत, अंकम देत अहीर ॥५७५॥
॥११६३॥

राग कान्हरौ

खेलत-खेलत जाइ कदम चढ़ि, झषि घमुना-जल लीन्हौ।
सोवत काली जाइ जगायौ, फिरि भारत हरि कीन्हौ।
उठि जुवती कर जोरि बिनति, करी, स्वामि दान मोहिँ दीजै।
टूटत फन, फाटत तन दुहुँ दिसि, स्याम निहोरौ लीजै।
तब अहि छाँडि दियौ करुनामय, मोहन-मदन, मुरारी।
सागर-बास दियौ काली कौं सूरदास बलिहारी ॥५७६॥
॥११६४॥

राग सोरठ

(तुम) जाहु बालक, छाँड़ि जमुना, स्वामि मेरौ जागिहै।
अंग कारौ मुख बिषारौ, दृष्टि परैं तोहिँ लागिहै।

(तुम) केरि बालक जुवा खेल्यौ, केरि दुरत दुराइयाँ।
लेहु तुम हीरा पदारथ, जागिहै मेरौ साँइयाँ।
नाहिँ नागिनि जुवा खेल्यौ, नाहि दुरत दुराइयाँ।
कंस कारन गेँद खेलत कमल-कारन आइयाँ।
(तब) धाइ धायौ, अहि जगायो, मनौ छूटे हाथियाँ।
सहस फन फुफुकार छाँडे, जाइ काली नाथियाँ।
(जब) कान्ह काली लै चले, तब नारि बिनवै, देव हो!
चेरि कौँ अहिवात दीजै, करै तुम्हारी सेव हो।
(तब) लादि पंकज कढ़्यौ बाहिर, भयौ ब्रज-मन-भावना।
मथुरा नगरी कृष्न राजा, सूर मनहिँ बधावना ॥५७७॥
॥११६५॥

राग देवगंधार

काली-विष-गंजन दह आइ।
देखे मृतक बच्छ बालक सब लए कटाच्छ जिवाइ।
बहु उतपात होत गोकुल मैँ, मैया रही भुलाइ।
बड़ी बेर भई अजहुँ न आए, गृह-कृत कछु न सुहाइ।
नंदादिक सब गोप-गोपि मिलि, चले बिकल बन धाइ।
देखे जाइ उरग लपटाने, प्रान तजत अकुलाइ।
अति गंभीर धीर करि जानत, संकर्षन निज भाइ।
सूरदास प्रभु नाग कियौ बस, आनँद उर न समाइ ॥५७८॥
॥११६६॥

राग कल्यान

जय-जय-धुनि अमरनि नभ कीन्हौ।
धन्य-धन्य जगदीस गुसाईँ, अपनौ करि अहि लीन्हौ।
अभय कियौ फन चरन-चिन्ह धरि, जानि आपुनौ दास।
जल तैँ काढ़ि कृपा करि पठयौ, मेटि गरुड़ कौँ त्रास।
अस्तुति करत अमर-गन बहुरे, गए आपनैँ लोक।
सूर स्याम मिलि मातु-पिता कौ दूरि कियौ तनु सोक ॥५७९॥
॥११६७॥

राग कान्हरौ

लीन्हौँ जननि कंठ लगाइ।
अंग पुलकित, रोम गदगद, सुखद आँसु बहाइ।

मैं तुमहिं बरजति रही हरि, जमुन-तट जनि जाइ।
कह्यौ मेरौ कान्ह कियौ नहिं, गयौ खेलन धाइ।
कंस कमल मँगाइ पठए, तातैं गयउँ डराइ।
मै कह्यौ निसि सुपन तोसौं, प्रगट भयौ सु आइ।
ग्वाल सँग मिलि गेंद खेलत, आयौ जमुना तीर।
काहु लै मोहिं डारि दीन्हौ, कालिया-दह-नीर।
यह कही तब उरग मोसौं, किन पठायौ तोहिं।
मैं कही, नृप कंस पठयौ कमल-कारन मोहिं।
यह सुनत डरि कमल दीन्हौ, लियौ पीठि चढ़ाइ।
सूर यह कहि जननि बोधी, देख्यौ तुमहीं आइ ॥५८०॥
॥११९८॥

राग गौरी

ब्रज-बासिनि सौं कहत कन्हाई।
जमुना-तीर आजु सुख कीजै, यह मेरै मन आई।
गोपनि सुनि अति हरष बढ़ायौ, सुख पायौ नँदराइ।
घर-घर तैं पकवान मँगायौ, ग्वारनि दियौ पठाइ।
दधि माखन षट रस के भोजन, तुरतहिं ल्याए जाइ।
मातु-पिता-गोपी-ग्वालनि कौं, सूरज प्रभु सुखदाइ ॥५८१॥
॥११९९॥

राग गौरी

तुरत कमल अब देहु पठाइ।
सुनहु तात कछु बिलँब न कीजै, कंस चढ़ै ब्रज-ऊपर धाइ।
कमल मगाइ लिए तट-ऊपर, कोटि कमल तब दिए पठाइ।
बहुत बिनय करि पाती पठई, नृप लीजै सब पुहुप गनाइ।
तैसी मोकौं आज्ञा दीजै, बहुत धरे जल-माँझ सजाइ।
सूरदास नृप तुव प्रताप तैं, काली आपु गयौ पहुँचाइ ॥५८२॥
॥१२००॥

राग सोरठ

सहस सकट भरि कमल चलाए।
अपनी समसरि और गोप जे, तिनकौं साथ पठाए।

और बहुत काँवरि दधि-माखन, अहिरनि काँधैं जोरि।
नृप कैं हाथ पत्र यह दीजौ, बिनती कीजौ मोरि।
मेरौ नाम नृपति सौं लीजौ, स्याम कमल लै आए।
कोटि कमल आपुन नृप माँगे, तीनि कोटि है पाए।
नृपति हमहिँ अपनौं करि जानौ, तुन लायक हम नाहिँ।
सूरदास कहियौ नृप आगैं तुमहिँ छाँड़ि कहँ जाहिँ! ।।५८३।।
।।१२०१।।

राग गौड़

कमल के भार, दधि भार, माखन- लिए, सब ग्वार, नृप-द्वार आए।
तुरतहीँ टोरि, गनि, कोरि सकटनि जोरि, ठाढ़े भए पौरिया तब सुनाए।
सुनत यह बात, अतुरात और डरत मन, महल तैं निकसि नृप आपु आए।
देखि दरबार, सब ग्वार नहिं पार कहुँ, कमल के भार सकटनि सजाए।
अतिहिँ चक्रित भयौ, ज्ञान हरि हरि लयौ, सोच मन मैँ ठयौ, कहा कीन्हौ।
गोप-सिरमौर नृप ओर कर जोरि कै, पुहुप कैं काज प्रभु पत्र दीन्हौ।
यह कह्यौ नंद, नृप बंदि, अहि-इंद्र पैं गयौ मेरौ नंद, तुव नाम लीन्हौ।
उठ्यौ अकुलाइ, डरपाइ तुरतहिँ धाइ, गयौ पहुँचाइ तट आइ दीन्हौ।
यह कह्यौ स्याम-बलराम, लीजौ नाम, राज कौ काज यह हमहिँ कीन्हौ।
और सब गोप आवत जात नृप बात कहत, सब सूर मोहिँ नहीँ चीन्हौ ।।५८४।।११०२।।

राग बिलावल

ग्वालिनि हरि की यह बात सुनाई। यह सुनि कंस गयौ मरझाई।

तब मनहीँ मन करत बिचार। यह कोउ भलौ नहीँ अवतार।
यासौँ मेरौ नहीँ उबार। मोहिँ मारि मारै परिवार।
दैत्य गए ते बहुरि न आए। काली तैँ ये क्यौँ बचि पाए।
ताही पर धरि कमल लदाए। सहस सटक भरि ब्याल पठाए।
एक ब्याल मैँ उनहिँ बताए। कोटि ब्याल मम सदन चलाए।
ग्वालिनि देखि मनहिँ रिस काँपै। पुनि मन मैँ भय-अंकुर थापै।
आपुहिँ आपु नृपति थल त्याग्यौ। सूर देखि कमलनि उठि भाग्यौ!
॥५८५॥१२०३॥

राग नट

भीतर लिए ग्वाल बुलाइ।
हृदय दुख, मुख हलबली करि, दिए ब्रजहिँ पठाइ।
नंद कौँ सिरपाव दीन्हौ, गोप सब पहिराइ।
यह कह्यौ बलराम-स्यामहिँ, देखिहैँ दोउ भाइ।
अतिहिँ पुरुषारथ कियौ उन, कमल दह के ल्याइ।
सूर उनकैँ देखिहैँ मैँ, एक दिवस बुलाई ॥५८६॥१२०४॥

राग गुंड मलार

कमल पहुँचाइ सब गोप आए।
गए जमुना-तीर, भई अतिहीँ भीर, देखि नंद तीर तुरतहिँ बुलाए।
दियौ सिरपाव नृपराव नै महर कैँ, आपु पहिरावने सब दिखाए।
अतिहिँ सुख पाइ कै, यौ सिरनाइ कै, हरष नँदराइ कैँ मन बढ़ाए।
स्याम-बलराम कौ नाम जब हम लियौ, सुनत सुख कियौ उन कमल ल्याए।
सूर नँद-सुवन दोउ, दिवस इक देखिहैँ, पुहुप लिए, पाइ सुख, इन बुलाए ॥५८७॥१२०५॥

राग धनाश्री

यह सुनि नंद बहुत सुख पाए
कमल पठाइ दए, नृप लीन्हे, देखन कैँ दोउ सुतनि बुलाए।
सेवा बहुत मानि है लीन्ही, ब्रजनारि-न्नर हरष बढ़ाए।
बड़ी बात भई कमल पठाए, मानहुँ आपुन जल तैँ ल्याए।

आनँद करत जमुन-तट ब्रज-जन, खेलत-खातहिँ दिवस बिहाए।
इक सुख स्याम बचे काली तैँ, इक सुख कंसहिँ कमल पठाए।
हँसत स्याम-बलराम सुनत यह हमकौँ देखन नृपति बुलाए।
सूरदास प्रभु मातु-पिता-हित, कमल कोटि दै ब्रजहिँ पठाए॥
॥५८८॥१२०६॥

राग धनाश्री

नारद कही समुझाइ कंस नृपराज कौँ।
तब पठयौ ब्रज दूत, पुहुप के काज कौँ। ध्रुव।
तब पठयौ ब्रज दूत, सुनी नारद-मुख-बानी।
बार-बार रिषि-काज, कंस अस्तुति मुख गानी।
धन्य-धन्य मुनिराज तुम भलौ मंत्र दियौ मोहिँ।
दूत चलायो तुरतहीँ, अबहिँ जाइ ब्रज होहि।
यह कहियौ तुम जाइ, कमल नृप कोटि मँगाए।
पत्र दियौ लिखि हाथ, कह्यौ, बहु भाँति जनाए।
काल्हि कमल नहिँ आवहीँ, तौ तुमकौँ नहिँ चैन।
सिर नवाइ, कर जोरि कै, चल्यौ दूत सुनि बैन।
तुरत पठायौ दूत नंद घरही मैँ पायौ।
"कमल फूल के भार कंस नृप बेगि मँगायौ।
'काल्हि न पहुँचै आइकै, तब बसिहौ ब्रज लोग!
'गोकुल मैँ जे सुख किए, ते करि दैहौँ सोग।
'जौ न पठावहु पुहुप, कहौगे तैसी मोकौँ।
'जानहु यह गोपनि समेत धरि ल्यावहु तोकौँ।
'बल-मोहन तेरे दुहुँनि कौँ पकरि मँगाऊँ कालि।
पुहुप बेगि पठएैँ बनै, जौ रे बसौ ब्रज-पालि।"
यह सुनि नंद, डराइ, अतिहिँ मन-मन अकुलान्यौ।
यह कारज क्यौँ होइ, काल अपनौ करि जान्यौ।
और महर सब बोलि कह्यौ; कैसौ करैँ उपाइ।
प्रात साँझ ब्रज मारिहै, बाँधि सबनि लै जाइ।
बल-मोहन कौ नाम धरयौ कह्यौ पकरि मँगावन।
तातैँ अति भयौ सोच, लगत सुनि मोहिँ डरावन।
यह सुनि सिर नाए सबनि, मुखहिँ न आवै बात।
बार-बार नँद कहत हैँ यह लरिकनि पर घात।

कै बालकनि भगाइ, जाहिँ लै आन भूमि पर।
बरु हमकौँ लै जाइ, स्याम-बलराम बचैँ घर।
महरि सबै ब्रजनारि सौँ, पूछति कौन उपाउ।
जनमहिँ तैँ करबर टरी, अबकैँ नाहिँ बचाउ।
कोउ कहै देहैँ दाम, नृपति जेतौ धन चाहैँ।
कोउ कहै जैऐ सरन, सबै मिलि बुधि अवगाहैँ।
इहाँ सोच सब पगि रहे, कहूं नहीँ निरबार।
ब्रज-भीतर, नँद-भवन मैँ, घर-घर यहै बिचार।
अंतरजामी, जानि नंद सौँ पूछत बाता।
कहा करत हौ सोच, कहौ कछु मोसौँ ताता।
कहा कहौँ मेरे लाड़िले, कहत बड़ौ संताप।
मथुरापति कैँ जिय कछू, तुम पर उपज्यौ पाप।
कालीदह के पुहुप माँगि पठए हमसौँ उनि।
तब तैं मो जिय सोच, जबहिँ तैँ बात परी सुनि।
जौ नहिँ पठवहुँ काल्हि तौ, गोकुल दवा लगाइ।
मो समेत दोउ बंधु तुम, काल्हिहिँ लेहि बँधाइ।
यह कहि पठयौ कंस, तबहिँ तैँ सोच परयौ मोहिँ।
प्रथम पूतना आइ, बहुत दुख दै जु गई तोहिँ।
तृनावर्त के घात तैँ, बहुत बच्यौ दुख पाइ।
सकटा-केसी तैँ बच्यौ, अब को करै सहाइ!
अघा-उदर तैँ बच्यौ, बहुत दुख सह्यौ कन्हाई।
बका रह्यौ मुख बाइ, तहाँ भयौ धर्म सहाई।
एती करबर हैँ टरी, देवनि करी सहाइ।
तब तैँ अब गाढ़ी परी, मोकौँ कछु न सुझाइ।
बाबा तुमहीँ कहत, कौन धौँ तोहिँ उबारै।
सोइ ब्रज-भीतर प्रगटि, कंस गहि केस पछारै।
यह जबहीँ हरि सौँ सुनी, नंद मनहिँ पतियाइ।
नगन गिरत जो सँग रह्यौ, सो करि लेइ सहाइ।
नंदहिँ यह समुझाइ कान्ह, उठि खेलन धाए।
जह-ब्रज-बालक हुते, तुरत तहँ आपुन आए।
गोप-सुतनि सौँ यह कह्यौ, खेलैँ गेंद मँगाइ।
श्रीदामा यह सुनतहीँ घर तैँ ल्याए जाइ।

सखा परस्पर मारि करैं, कोउ कानि न मानै।
कौन बोड़ को छोट, भेद अनुभेद न जानै।
खेलत जमुना-तट गए, आपुहिं ल्याए टारि।
लै श्रीदामा हाथ तैं, गेंद दयौ दह डारि।
श्रीदामा गहि फेंट कह्यौ, हम तुम इक जोटा।
कहा भयौ जौ नंद बड़े, तुम तिनकैं ढोटा।
खेलत मैं कह छोट बड़, हमहुँ महर के पूत।
गेंद दियैं ही पै बनै, छाँड़ि देहु मति-धूत।
तुमसौं धूत्यौ कहा करौं, धूत्यौ नहिं देख्यो।
प्रथम पूतना मारि काग सकटासुर पेख्यौ।
तृनावर्त पटक्यौ सिला, अघा बका संहारि।
तुम ता दिन सँगहीं रहे, धूत न कहत सम्हारि।
टेढ़े कहा बतात, कंस कौं, देहु कमल अब।
कालिहिं पठए माँगि पुहुप अब ल्याइ देहु जब।
बहुत अचगरी जिनि करौ, अजहूँ तजौ झवारि।
पकरि कंस लै जाइगौ, कालिहिं परै खँभारि।
कमल पठाऊँ कोटि, कंस कौ दोष निवारौं।
तुम देखत ही जाउँ, कंस जीवत धरि मारौं।
फेंट लियौ तब झटकि कै, चढ़े कदम पर जाइ।
सखा हँसत ढाढ़े सबै मोहन गए पराइ।
श्रीदामा चले रोइ जाइ कहिहौं नँद-आगे।
गेंद लेहु तुम आइ, मोहिं डरपावन लागे!
यह कहि कूदि परे सलिल, कीन्हे नटवर-साज।
कोमल तन धरि कै गए, जहँ सोवत अहिराज।
इहिं अंतर नद-घरनि कह्यौ हरि भूखे ह्वै हैं।
खेलत तैं अब आइ, भूख कहि मोहिं सुनैहैं।
अति आतुर भीतर चली, जेँवन साजन आप।
छींक सुनत कुसगुन कह्यौ, कहा भयौ यह पाप।
अजिर चली पछितात छींक कौ दोष निवारन।
मंजारी गई कारि बाट, निकसत तब बारन।
जननी जिय ब्लाकुल भई, कान्ह अबेर लगाइ।
कुसगुन आजु बहुत भए, कुसल रहैं दोउ भाइ।

स्याम परे दह कूदि, मातु-जिय गयौ जनाई।
आतुर आए नंद घरहिं बूझत दोउ भाई।
नंद, घरनि सौं यह कहत, मोकौं लगत उदास।
इहिं अंतर हरि तहँ गए, जहँ काली कौ बास।
देख्यौ पन्नग जाइ अतिहिं निर्भय भयौ सोवत।
बैठी तहँ अहि-नारि, डरी बालक कौं जोवत।
भागि-भागि सुत कौन कौ, अति कोमल तव गात।
एक फूँक कौ नाहिं तू विष-ज्वाला अति तात।
तब हरि कह्यौ प्रचारि, नारि, पति देइ जगाई।
आयौ देखन याहि, कंस मोहिं दियौ पठाई।
कंस कोटि जरि जाहिंगे, विष की एक फुँकार।
कही मेरी करि जाहि तू, अति बालक सुकुमार।
इहिं अंतर सब सखा जाइ ब्रज नंद सुनायौ।
हम सँग खेलत स्याम जाइ जल माँझ धँसायौ।
बूड़ि गयौ, उचक्यौ नहीं ता बातहिं भई बेर।
कूदि पर्यौ चढ़ि कदम तैं खबरि न करौ सबेर।
त्राहि-त्राहि करि नंद, तुरत दौरे जमुना-तट।
जसुमति सुनि यह बात, चली रोवति तोरति लट।
ब्रजबासी नर-नारि सब, गिरत परत चले धाइ।
बूड़्यौ कान्ह सुनी सबनि, अति ब्याकुल मुरझाइ।
जहँ-तहँ परी पुकार, कान्ह बिनु भए उदासी।
कौन काहि सौं कहै, अतिहिं ब्याकुल ब्रजवासी।
नंद-जसोदा अति बिकल, परत जमुन मैं धाइ।
और गोप उपनंद मिलि, बाहँ पकरि लै आइ।
धेनु फिरति बिललाति बच्छ थन कोउ न लगावै।
नंद जसोदा कहत, कान्ह बिनु कौन चरावै।
यह सुनि ब्रजबासी सबै, परे धरनि अकुलाइ।
हाय-हाय करि कहत सब कान्ह रह्यौ कहँ जाइ।
नंद पुकारत रोइ बुढ़ाई मैं मोहिं छाँड़्यौ।
कछु दिन मोह लगाइ, जाइ जल-भीतर माँड़्यौ।
यह कहि कै धरनी गिरत, ज्यौं तरु कटि गिरि जाइ।
नंद-घरनि यह देखि कै, कान्हहिं टेरि बुलाइ।

निठुर भए सुत आजु, तात की छोह न आवति ।
यह कहि-कहि अकुलाइ, बहुरि जल भीतर धावति ।
परति धाइ जमुना-सलिल, गहि आनतिँ ब्रजनारि ।
नैँकु रहौ सब मरहिँगी, को है जीवनहारि ?
स्याम गए जल बूड़ि बृथा धिक जीवन जग कौ ।
सिर फोरतिँ, गिरि जातिँ, अभूष्न तोरति अँग कौ ।
मुरछि परी तन सुधि गई, प्रान रहे कहुँ जाइ ।
हलधर आए धाइ कै, जननि गई मुरझाइ ।
नाक मूँदि, जल सीँचि जबहिँ जननी कहि टेर्‌यौ ।
बार-बार झकझोरि, नैँकु हलधर-तन हेर्‌यौ ।
कहति उठी बलराम सौँ, कितहिँ तज्यौ लघु भ्रात ।
कान्ह तुमहिँ बिनु रहत नहिँ, तुमसौँ क्यौँ रहि जात ।
अब तुमहूँ जनि जाहु, सखा इक देहु पठाई ।
कान्हहिँ ल्यावै जाहु, आजु अवसेर कराई ।
छाक पठाऊँ जोरिकै, मगन सोक-सर-माँझ ।
प्रात कछू खायौ नहीँ, भूखे ह्वै गई साँझ ।
कबहुँ कहति बन गए कबहुँ कहि घरहिँ बतावति ।
कहँ खेलत हौ लाल, टेरि यह कहति बुलावति ।
जागि परी दुख-मोह तैँ रोवत देखे लोग ।
तब जान्यौ हरि गिर्‌यौ, उपज्यौ बहुर बियोग ।
धिक-धिक नंदहि कह्यौ, और कितने दिज जीहौ ।
मरत नहीँ मोहिँ मारि, बहुरि ब्रज बसिवौ कीहौ ।
ऐसे दुख सौँ मरन सुख, मन करि देखहु ज्ञान ।
व्याकुल धरनी गिरि परे, नंद भए बिनु प्रान ।
हरि के अग्रज बंधु तुरतहीँ पिता जगायौ ।
माता कौँ परमोधि, दुहुँनि धीरज धरवायौ ।
मोहिँ दुहाई नंद की, अबहीँ आवत स्याम ।
नाग नाथि लै आइहैँ, तब कहियौ बलराम ।
हलधर कह्यौ सुनाइ, नंद, जसुमति ब्रजवासी ।
बृथा मरत किहिँ काज, मरै क्यौँ वह अविनासी ?
आदि पुरुष मैँ कहत हौँ गयौ कमल कैँ काज ।
३० गिरिधर कौ डर जनि करौ, वह देवनि सिरताज ।

वह अबिनासी आहि, करौ धीरत अपनैं मन।
काली छेदे नाक लिए आवत, निरतत फन।
कंसहिं कमल पठाइहै, काली पठवै दीप।
एक घरी धीरज धरौ, बैठौ सब तर-नीप।
ह्वाँ नागिनि सौं कहत कान्ह, अहि क्यौं न जगावै।
बालक-बालक करति कहा, पति क्यौं न उठावै।
कहा कंस कह उरग यह, अबहिं दिखाऊँ तोहिं।
दै जगाइ मैं कहत हौं, तू नहिं जानति मोहिं।
छोटैं मुँह बड़ी बात कहत, अबहीं मरि जैहै।
जो चितवै करि क्रोध, अरे, इतनेहिं जरि जैहै।
छोह लगत तोहिं देखि मोहिं, काकौ बालक आहि।
खगपति सौं सरबरि करी, तू बपुरौ को ताहि।
बपुरा मोकौं कहति, तोहिं बपुरी करि डारौं।
एक लात सौं चाँपि, नाथ तेरे कौं मारौं।
सोवत काहु न मारियै, चलि आई यह बात।
खगपति कौं हैं हीं कियौ, कहति कहा तू जात।
तुमहिं विधाता भए, और करता कोउ नाहीं।
अहि मारौगे आपु तनक से, तनक सी बाहीं।
कहा हौं कहत न बनैं, अति कोमल सुकुमार।
देती अबहिं जगाइ कै, जरि बरि होत्यौ छार।
तू धौं देहि जगाइ, तोहिं कछु दूषन नाहीं।
परी कहा तोहि नारि, पाप अपनें जरि जाहीं।
हमकौं बालक कहति है, आपु बड़े की नारि।
बादति है बिनु काजहीं, बृथा बढ़ावति रारि।
तुहीं न लेत जगाइ, बहुत जो करत ढिठाई।
पुनि मरिहैं पछिताइ, मातु पितु तेरे भाई।
अजहुँ कह्यौ करि, जाहि तू, मरि लैहै सुख कौन?
पाँच बरष कै सात कौ, आगैं तोकौं हौन।
फिरकि नारि, दै गारि, आपु अहि जाइ जगायौ।
पग सौं चाँपी पूँछ, सबै अवसान भुलायौ।
चरन मसकि धरनी दली, उरग गयौ अकुलाइ।
काली मन मैं तब कही, यह आयौ खगराइ।

विषधर झटकी पूँछ, फटकि सहसौ फन काढ़ौ।
देख्यौ नैन उघारि, तहाँ बालक इक ठाढ़ौ।
बार-बार फन-घात कै, विष-ज्वाला की झार।
सहसौ फन फनि फुंकरै, नैँकु न तिन्हैँ विकार।
तब काली मन कहत पूँछ चाँपी इहिँ पग सैाँ।
अतिहिँ उठ्यौ अकुलाइ, डर्‍यौ हरि बाहन खग सैाँ।
यह बालक धौँ कौन कौ, कीन्हौ जुद्ध बनाइ।
दाउँ घात बहुतै कियौ, मरत नहीँ जदुराइ।
पुनि देख्यौ हरि-ओर, पूँछ चाँपी इहिँ मेरी।
मन-मन करत बिचार, लेउँ याकौँ मैँ घेरी।
दाउँ पर्‍यौ अहि जानि कै, लियौ अंग लपटाइ।
काली तब गरवित भयौ, प्रभु दियौ दाउँ बताइ।
कहति उरग की नारि, गर्व अतिहीँ करि आयौ।
आइ पहुँच्यौ काल बस्य, पग इतहिँ चलायौ।
अहि नारिनि सैाँ यह कही, मो समसरि कोउ नाहिँ।
एक फूँक विष ज्वाल की, जल-डूँगर जरि जाहिँ।
गर्व-बचन प्रभु सुनत, तुरतहीँ तन बिस्तार्‍यौ।
हाय-हाय करि उरग, बारहीँ बार पुकार्‍यौ।
सरन-सरन अब मरत हैाँ, मैँ नहिँ जान्यौ तोहिँ।
चटचटात अँग फटत हैँ, राखु-राखु प्रभु मोहिँ।
स्रवन सरन धुनि सुनत, लियौ प्रभु तनु सकुचाई।
छमहु मोहिँ अपराध, न जानैँ करी ढिठाई।
ब्रजहिँ कृष्न-अवतार हौ, मैँ जानी प्रभु आज।
बहुत किए फन-घात मैँ, बदन दुरावत लाज।
रह्यौ आनि इहिँ ठौर, गरुड़ कैँ त्रास गुसाईँ।
बहुत कृपा मोहिँ करी, दरस दीन्हौ जग-साईँ।
नाक फोरि फन पर चढ़े, कृपा करी जदुराइ।
फन-फन-प्रति हरि चरन धरि, निरतत हरष बढ़ाइ।
धन्य कृष्न, धनि उरग, जानि जन कृपा करी हरि।
धन्य-धन्य दिन आजु, दरस तैँ पाप गए जरि।
धन्य कंस, धनि कमल ये, धन्य कृष्न अवतार।
बड़ी कृपा उरगहिँ करी, फन-प्रति चरन-बिहार।

सेस करत जिय गर्ब, अंड कौ भार सीस धरि।
पूरन ब्रह्म अनंत, नाम को सकै पार करि।
फन-फन-प्रति अति भार भरि, अमित अंत-मय गात।
उरग-नारि कर जोरि कै, कहति कृष्न सौं बात।
देखत ब्रज-नर नारि, नंद जसुदा समेत सब।
संकर्षन सौं कहत, सुनहु सुत कान्ह नहीं अब।
इहिं अंतर जल कमल बिच, उठ्यौ कछुक अकुलाइ।
रोवत तैं बरजे सबै, मोहन अग्रज भाइ।
आवत हैं वे स्याम, पुहुप काली-सिर लीन्हे।
मात-पिता, ब्रज दुखित, जानि हरि दरसन दीन्हे।
निरतत काली-फननि पर, दिबि दुंदुभी बजाइ।
नटवर वपु काछे रहे, सब देखे वह भाइ।
आवत देखे स्याम, हरष कीन्हौ ब्रजवासी।
सोक-सिंधु गयौ उतरि, सिंधु आनंद प्रकासी।
जल बूड़त नौका मिलै, ज्यौं तनु होत अनंद।
त्यौं ब्रज-जन हुलसे सबै, आवत हैं नँद-नंद।
सुत देखत पितु-मातु-रोम गदगद पुलकित भए।
उर उपज्यौ आनंद, प्रेम-जल लोचन दुहुँ स्वए।
दिवि दुंदुभी बजावहीं, फन-प्रति निरतत स्याम।
ब्रजबासी सब कहत हैं, धन्य-धन्य बलराम।
उरग-नारि कर जोरि, करति अस्तुति मुख ठाढ़ी।
गोपी जन अवलोकि, रूप वह अति रुचि बाढ़ी।
सुर अंबर ललना सहित, जै जै धुनि मुख गाइ।
बड़ी कृपा इहिं उरग कौं, ऐसी काहु न पाइ।
कृपा करी प्रहलाद, खंभ तैं प्रगट भए तब।
कृपा करी गज-काज, गरुड़ तजि धाइ गए जब।
द्रुपद-सुता कौं करी कृपा, बसन-समुद्र बढ़ाइ।
नंद जसोदा जो कृपा, सोइ कृपा इहिं पाइ।
तब काली कर जोरि, कह्यौ प्रभु गरुड़-त्रास मोहिं।
अब करिहै दंडवत, नैन भरि जब देखै तोहिं।
चरन-चिन्ह दरसन करत, महि रहिहै तुव पाइ।
उरग-द्वीप कौं करि बिदा, कह्यौ करौ सुख जाइ।

प्रभु यातैं सुख कह्यौ, चरन ते फन-फन परसे।
रमा-हृदय जे बसत, सुरसरी सिव-सिर बरसे।
जन्म-जन्म पावन भयौ, फन पद-चिन्ह धराइ।
पाइ पर्‌यौ उरगिनि सहित, चल्यौ द्वीप समुहाइ।
काली पठयौ द्वीप, सुरनि सुर-लोक पठाए।
आपुन आए निकसि, कमल सब तटहिं धराए।
जल तैं आए स्याम तब, मिले सखा सब धाइ।
मातु पिता दोउ धाइ कै, लीन्हौ कंठ लगाइ।
फेरि जन्म भयौ कान्ह, कहत लोचन भरि आए।
जहाँ तहाँ ब्रज-नारि-गोप आतुर ह्वै धाए।
अंकम भरि-भरि मिलत हैं, मनु निधनी धन पाइ।
मिली धाइ रोहिनि जननी, चूमति लेति बलाइ।
सखा दौरि कै मिले, गए हरि हम पर रिस करि।
धनि माता, धनि पिता, धन्य सो दिन जिहिं अवतरि।
तुम ब्रज-जीवन-प्रान हौ, यह सुनि हँसे गुपाल।
कूदि परे चढ़ि कदम तैं, तुम खेलत ये ख्याल।
काली ल्याए नाथि, कमल ताही पर ल्याए।
जैसी कहि गए स्याम, प्रगट सो हमहिं दिखाए।
कंस मर्‌यौ निहचय भई, हम जानी ब्रजराज।
सिंहिनि कौ छौना भलौ, कहा बड़ौ गजराज।
हरि हलधर तब मिले, हँसे मनहीं मन दोऊ।
बंधु मिलत सब कहत, भेद नहिं जानै कोऊ।
मातु पिता ब्रज-लोग सौं, हरषि कह्यौ नँदलाल।
आजु रहहु सब बसि इहाँ, मेटहु दुख जंजाल।
सुनि सबहिनि सुख कियौ, आजु रहिये जमुना-तट।
सीतल सलिल, सुगंध पवन, सुख-तरु बंसी बट।
नँद घर तैं मिष्टान्न बहु, षट्‌रस लिए मँगाइ।
महर गोप उपनंद जे, सब कौं दिए बँटाइ।
दुख कीन्हौ सब दूरि, तुरत सुख दियौ कन्हाई।
हरष भए ब्रज-लोग, कंस कौ डर बिसराई।
कमल-काज ब्रज मारतौ, कितने लेइ गनाइ।
नृप-गज कौ अब डर कहा, प्रगट्यौ सिंह कन्हाइ।

नंद कह्यौ करि गर्ब, कंस कौँ कमल पठावहु।
और कमल जल धरहु, कमल कौठिक दै आवहु।
यह कहियौ मेरी कही, कमल पठाए कोटि।
कोटि द्वैक जलहीँ धरे, यह बिनती इक छोटि।
अपनैँ सम जे गोप, कमल तिन साथ चलाए।
मन सबकैँ आनंद, कान्ह जल तैँ बचि आए।
खेलत-खात-अन्हात ही, बासर गयौ बिहाइ।
सूर स्याम ब्रज-लोग कौँ, जहाँ तहाँ सुखदाइ ॥५८६॥
॥१२०७॥

दावानल-पान-लीला *राग मारू*

कमल सकटनि भरे व्याल मानौ।
स्याम के बचन सुनि, मनहिँ मन रह्यौ गुनि,
काठ ज्यौँ गयौ घुनि, तनु भुलानौ॥
भयौ बेहाल, नँदलाल कौँ ख्याल इहिँ,
उरग तैँ बाँचि फिरि ब्रजहिँ आयौ।
कह्यौ दावानलहिँ देखौँ तेरे बलहिँ,
भस्म करि ब्रज पलहिँ, कहि पठायौ॥
चल्यौ रिस पाइ अतुराइ तब धाइ कै,
ब्रज-जननि बन सहित जारि आऊँ।
नृपति के लै पान, मन कियौ अभिमान,
करत अनुमान चहुँ पास धाऊँ॥
बृंदाबन आदि, ब्रज आदि, गोकुल आदि,
आदि बुन्यादि सब अहिर जारौँ।
चल्यौ मग जात, कहि बात इतरात अति,
सूर-प्रभु सहित संघारि डारौँ ॥५६०॥
॥१२०८॥

राग कान्हरौ

दसहुँ दिसा तैँ बरत-दवानल, आवत है ब्रज-जन पर धायौ।
ज्वाला उठी अकास बराबरि, घात आपनी सब करि पायौ॥
बीरा लै आयौ सन्मुख तैँ आदर करि नृप कंस पठायौ।
जारि करौँ परलय छिन भीतर, ब्रज बपुरौ केतिक कहवायौ।

धरनि अकास भयौ परिपूरन, नैंकु नहीं कहु संधि बचायौ।
सूर स्याम बलरामहिं मारन, गर्ब-सहित आतुर ह्वै आयौ॥
॥५६१॥१२०६॥

राग कान्हरौ

दावानल ब्रज-जन पर धायौ।
गोकुल ब्रज बृंदावन तृन द्रुम, चहुँघा चहत जरायौ॥
घेरत आवत दसहुँ दिसा तैं, अति कीन्हे तनु क्रोध।
नारी नर सब देखि चकित भए, दवा लग्यौ चहुँ कोद॥
वह तौ असुर घात किए आवत, धावत बनहिं समाज।
सूरदास ब्रज-लोग कहत यह, उठ्यौ दवानल आज॥५६२॥
॥१२१०॥

राग कान्हरौ

आइ गई दव अतिहिं निकटहीं।
यह जानत अब ब्रज न बाँचिहै, कहत चलौ जल-तटहीं॥
करि बिचार उठि चलन चहत हैं, जो देखैं चहुँ पास।
चकित भए नरनारि जहाँ-तहँ, भरि-भरि लेत उसास॥
झरझराति, भहराति लपट अति, देखियत नहीं उबार।
देखत सूर अग्नि अधिकानी, नभ लौं पहुँची झार॥५६३॥
॥१२११॥

राग कान्हरौ

ब्रज के लोग उठे अकुलाइ।
ज्वाला देखि अकास बराबरि, दसहुँ दिसा कहुँ पार न पाइ॥
झरहरात बन-पात, गिरत तरु, धरनी तरकि तराकि सुनाइ।
जल बरषत गिरिवर-तर बाँचे, अब कैसैं गिरि होत सहाइ॥
लटकि जात जरि-जरि द्रुम-बेली, पटकत बाँस, काँस, कुस, ताल।
उचटत भरि अंगार गगन लौं सूर निरखि ब्रज-जन बेहाल॥५६४॥
॥१२१२॥

राग कान्हरौ

नंद-घरनि यह कहति पुकारे।
कोउ बरषत, कोउ अगिनि जरावत, दई पर्‌यौ है खोज हमारे॥

तब गिरिवर कर धर्यौ कन्हैया, अब न बाँचिहैं मारत जारे।
जँवन करन चली जब भीतर, छींक परी ती आजु सबारे॥
ताकौ फल तुरतहिं इक पायौ, सो उबर्यौ भयौ धर्म सहारे।
अब सबकौ संहार होत है छींक किए ये काज बिचारे॥
कैसेहुँ ये बालक दोउ उबरैं, पुनि-पुनि सोचति परी खभारे।
सूर स्याम यह कहत जननि सौं, रहि री मा धीरज उर धारे॥५९५॥
॥१२१३॥

राग गौड

झहरात झहरात दवा (नल) आयौ।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर अंदोर बन, धरनि आकास चहुँ पास छायौ॥
बरत बन-बाँस, थरहरत कुस काँस, जरि, उड़त है भाँस, अति प्रबल धायौ।
झपटि झपटत लपट, फूल-फल चट-चटकि, फटत, लटलटकि द्रुम द्रुमनवायौ॥
अति अगिनि-झार, भंभार धुंधार करि, उचटि अंगार झंझार छायौ।
बरत बन पात भहरात झहरात अररात तरु महा, धरनी गिरायौ॥
भए बेहाल सब ग्वाल ब्रज-बाल तब, सरन गोपाल कहिकै पुकार्यौ।
तृना केसी सकट बकी बक अघासुर, बाम कर राखि गिरि ज्यौं उबार्यौ॥
नैंकु धीरज करौ, जियहिं कोउ जिनि डरौ, कहा इहिं सरौ, लोचन मुँदाए।
मुठी भरि लियौ, सब नाइ मुखहीँ दियौ, सूर प्रभु पियौ ब्रज-जन बचाए॥५९६॥१२१४॥

राग गुंड

दवानल अँचै ब्रज-जन बचायौ।
धरनि आकास लौं ज्वाल-माला प्रबल घेरि चहुँपास ब्रजबास आयौ॥

भए बेहाल सब देखि नँदलाल तब, हँसत ही ख्याल ततकाल कीन्हौ।
सबनि मूँदे नैन, ताहि चितये सैन, तृषा ज्यौं नीर दव अँचे लीन्हौ ॥
लखौ अब नैन भरि, बुझि गई अगिनि-झरि, चितै नरनारि आनंद भारी।
सूर प्रभु सुख दियौ, दवानल पी लियौ, कहत सब ग्वाल धनि-धनि मुरारी ॥५६७॥१२१५॥

राग बिहागरा

चकित देखि यह कहैँ नर-नारी।
धरनि अकास बराबरि ज्वाला, झपटति लपट करारी ॥
नहिँ बरष्यौ, नहिँ छिरक्यौ काहू, कहँ धौँ गई बिलाइ।
अति आघात करति बन-भीतर कैसैँ गई बुझाइ।
तृन की आगि बरतही बुझि गई, हँसि-हँसि कहत गोपाल।
सुनहु सूर वह करनि कहनि यह, ऐसे प्रभु के ख्याल ॥५६८॥१२१६॥

राग बिलावल

जाकैँ सदा सहाइ कन्हाई। ताहि कहौ काकौ डर भाई।
बन घर जहाँ तहाँ सँग डोलैँ। खेलत ग्वात सबनि सौँ बोलैँ ॥
जाकौ ध्यान न पावैँ जोगी। सो ब्रज मैँ माखन कौ भोगी।
जाकी माया त्रिभुवन छावै। सो जसुमति कैँ प्रेम बँधावै ॥
मुनि जन जाकौ ध्यान न पावैँ। ब्रज-जन लै-लै नाम बुलावैँ ॥
सूर ताहि सुर अंबर देखैँ। जीवन जन्म सुफल करि लेखैँ ॥
॥५६९॥१२१७॥

राग कान्हरा

ब्रज-बनिता सब कहति परस्पर, नंद महर कौ सुत बड़ बीर।
देखौ धौँ पुरुषारथ इहिँकौ, अति कोमल है, स्याम सरीर।
गयौ पताल उरग गहि आन्यौ, लायौ तापर कमल लदाइ।
कमल-काज नृप ब्रज-मारत हो, कोटि जलज तिहिँ दिए पठाइ ॥
दावागिनि नभ-धरनि-बराबरि, दसहुँ दिसा तैँ लीन्हौ घेरि।
नैन मुँदाइ कहा तिहिँ कीन्हौ, कहूं नहीँ जो देखैँ हेरि ॥

ये उतपात मिटत इनहीँ पैँ, कंस कहा बपुरौ है छार ॥
सूर स्याम अवतार बड़ौ ब्रज, येई हैँ कर्त्ता संसार ॥६००॥
॥१२१८॥

राग सोरठ

अति सुंदर नँद महर-ढुटौना ।
निरखि-निरखि ब्रजनारि कहतिँ सब यह जानत कछु टौना ॥
कपट रूप की त्रिया निपाती, तबहिँ रह्यौ अति छौना ।
द्वार सिला पर पटकि तृना कौँ, ह्वै आयौ जो पौना ॥
अघा बकासुर तबहिँ सँहार्‍यौ प्रथम कियौ बन-गौना ।
सूर प्रगट गिरि धर्‍यौ बाम कर, हम जानतिँ बलि बौना ॥६०१॥
॥१२१९॥

राग मारू

दवा तैँ जरत ब्रज-जन उबारे ।
पैठि जल गए गहि उरग आने नाथि, प्रगट फन-फननि-प्रति चरन धारे ॥
देखि मुनि-लोक, सुर-लोक, सिव-लोक के, नंद-जसुमति-हेत-बस मुरारी ।
जहाँ तहँ करत अस्तुति मुखनि देव-नर, धन्य-जै-सब्द तिहुँ भुवन भारी ॥
सुख कियौ जमुन-तट एक दिन-रैनि बसि, प्रातहीँ ब्रज गईँ गोप-नारी ।
सूर प्रभु स्याम-बलराम नँद-धाम गए, मातु-पितु घोष-जननि सुखकारी ।
॥६०२॥१२२०॥

राग रामकली

हरि ब्रज-जन के दुख-बिसरावन ।
कहाँ कंस, कब कमल मँगाए, कहाँ दवानल-दावन ॥
जल कब गिरे, उरग कब नाथ्यौ, नहिँ जानत ब्रज-लोग ।
कहाँ बसे इक दिवस रैनि भरि, कबहिँ भयौ यह सोग ॥

यह जानत हम ऐसेहिँ ब्रज मैँ, बैसेहिँ करत बिहार।
सूर स्याम जननी सौँ माँगत, माखन बारंबार ॥६०३॥
॥१२२१॥

प्रलंब-बध *राग आसावरी*

एक दिवस दानव प्रलंब कौँ, लीन्हौ कंस बुलाइ।
कह्यौ जाइ मारौ नँद-ढोटा, दैहौँ बहुत बड़ाइ॥
माया-बपु धरि गोप-पुत्र ह्वै, चल्यौ सु ब्रज-समुहाइ।
बल-मोहन खेलत ग्वालनि सँग, देख्यौ तिनकौँ आइ॥
ग्वाल-रूप ह्वै मिल्यौ निसाचर, हलधर सैन बताई।
मनमोहन मन मैँ मुसुक्याने, खेलत भलैँ जनाई॥
द्वै बालक बैठारि सयाने, खेल रच्यौ ब्रज-खोरी।
और सखा सब जुरि-जुरि ठाढ़े, आपु दनुज-सँग जोरी॥
तबहिँ प्रलंब बड़ौ बपु धारयौ, लै गयौ पीठि चढ़ाइ।
उतरि परे हरि ता ऊपर तैँ, कीन्हौ जुद्ध बनाइ॥
और सखा सब रोवत धाए, आइ गए नरनारि।
धाए नंद, जसोदा धाई, नित प्रति कहा गुहारि॥
ग्वाल-रूप इक खेलत हो सँग, लै गयौ काँधैँ डारि।
ना जानियै आहि धौँ को वह, ग्वाल-रूप-बपु धारि॥
जसुमति तब अकुलाइ परी, धर तन की सुधि बिसराई।
नंद पुकारत आरत, व्याकुल, टेरत फिरत कन्हाई॥
दैत्य सँहारि कृष्न तहँ आए, ब्रज-जन दिए जिवाइ।
दौरि नंद उर लाइ लए हरि, मिली जसोमति माइ।
खेलत रह्यौ संग मिलि मेरैँ, लै उड़ि गयौ अकास।
आपुन ही गिरि परयौ धरनि पर, मैँ उबरयौ तिहिँ पास॥
उर डरात जिय वात कहत हरि, आए हैँ उठि पास।
सूर स्याम जसुमति घर लै गई, ब्रज-जन-मनहि हुलास॥६०४॥
॥१२२२॥

राग सारंग

जसुमति बूझति फिरति गोपालहिँ।
साँझ की बिरियाँ भई सखी री, मैँ डरपति जंजालहिँ॥

जब तैँ तृनावर्त्त ब्रज आयौ, तब तैँ मो जिय संक।
नैननि ओट होत पल एकौ, मैँ मन भरति अतंक॥
इहिँ अंतर बालक सब आए, नंदहिँ करत गुहारि।
सूर स्याम कौँ आइ कौन धौँ, लै गयौ काँधे डारि॥६०५॥
॥१२२३॥

राग कान्हरा

आजु कन्हैया बहुत बच्यौ री।
खेलत रह्यौ घोष कैँ बाहर, कोउ आयौ सिसु-रूप रच्यौ री॥
मिलि गयौ आइ सखा की नाईँ, लै चढ़ाइ हरि कंध सच्यौ री।
गगन उड़ाइ गयौ लै स्यामहिँ, आनि धरनि पर आप दच्यौ री॥
धर्म सहाइ होत है जहँ तहँ, स्रम करी पूरब पुन्य पच्यौ री।
सूर स्याम अब कैँ बचि आए, ब्रज-घर-घर सुख-सिंधु मच्यौ री॥
॥६०६॥१२२४॥

राग कान्हरौ

बड़े भाग्य हैँ महर महरि के।
लै गयौ पीठि चढ़ाइ असुर इक, कहा कहौँ उबरन या हरि के॥
नंदघरनि कुल-देव मनावति, तुम हीँ रच्छक घरी-पहर के।
जहँ-तहँ तुमहिँ सहाइ सदा हौ, जीवन हैँ ये स्याम सहर के॥
हरष भए नँद करत बधाई, दान देन कहा कहौँ महर के।
पंच-सब्द-धुनि बाजत, नाचत, गावत मंगलचार-चहर के॥
अंकम भरि-भरि लेत स्याम कौँ, ब्रज-नर-नारि अतिहिँ मन हरषे।
सूर स्याम संतनि सुखदायक, दुष्टनि कै उर सालक करषे॥
॥६०७॥१२२५॥

राग सारंग

खेलन दूरि जात कत प्यारे।
जब तैँ जनम भयौ है तेरौ, तबही तैँ यह भाँति ललारे॥
कोउ आवति जुवती मिस करिकै, कोउ लै जात बतास-कला रे।
अब लगि बचे कृपा देवनि की, बहुत गए मरि सत्रु तुम्हारे॥
हा हा करति पाइ तेरे लागति, अब जनि दूरि जाहु मेरे बारे।
सुनहु सूर जसुमति सुत बोधति, बिधि के चरित सबै हैँ न्यारे॥
॥६०८॥१२२६॥

राग कल्यान

कब की टेरति कुँवर कन्हाई।
ग्वाल सखा सब टेरत ठाढ़े, अरु अग्रज बल भाई॥
दाऊ जू तुम ह्याँ नहिं आवत, करौ मुखारी आइ।
माता दुहुँनि दतौनी कर दै, जलझारी भरि ल्याइ॥
उत्तम बिधि सौं मुख पखरायौ, ओदे बसन अँगौछि।
दोउ मैया कछु करौ कलेऊ, लई बलाइ कर आँछि॥
सद माखन दधि तुरत जमायौ, मधु मेवा मिष्टान्न।
सूर स्याम बलराम संग मिलि, रुचि करि लागे खान॥६०६॥
॥१२२७॥

राग नट

चले बन धेनु चारन कान्ह।
गोप-बालक कछु सयाने, नंद के सुत नान्ह॥
हरष सौं जसुमति पठाए, स्याम मन आनंद।
गाइ गो-सुत गोप बालक, मध्य श्री नँद-नंद॥
सखा हरि कौं यह सिखावत, छाँड़ि जिनि कहुँ जाहु।
सघन वृंदाबन अगम अति, जाइ कहुं न भुलाहुँ॥
सूर के प्रभु हँसत मन मैं, सुनत हीं यह बात।
मैं कहूँ नहिं संग छाँड़ौं, बनहिं बहुत डरात॥६१०॥
॥१२२८॥

राग धनाश्री

हेरी देत चले सब बालक।
आनँद सहित जात हरि खेलत, संग मिले पशु-पालक॥
कोउ गावत, कोउ बेनु बजाबत, कोउ नाचत कोउ धावत।
किलकत कान्ह देखि यह कौतुक, हरषि सखा उर लावत॥
भली करी तुम मोकौं ल्याए, मैया हरषि पठाए।
गोधन-बृंद लिए ब्रज-बालक, जमुना-तट पहुँचाए॥
चरतिं धेनु अपनैं-अपनैं रंग, अतिहिं सघन बन चारौ।
सूर संग मिलि गाइ चरावत, जसुमति कौ सुत बारौ॥६११॥
॥१२२९॥

राग देवगंधार

द्रुम चढ़ि काहे न टेरौ कान्हा, गैयाँ दूरि गईं ।
धाइ जातिं सबनि के आगैं, जे बृषभानु दईं ।।
घेरे घिरतिं न तुम-बिनु माधौ, मिलति न बेगि दईं ।
बिडरतिं फिरतिं सकल बन महियाँ, एकै एक भईं ।।
छाँड़ि खेड़ सब दौरि जात हैं, बोलौ ज्यौं सिखईं ।
सूरदास प्रभु-प्रेम समुझि कै, मुरली सुनि आइ गईं ।।६१२।।
।।१२३०।।

राग मारू

कहि-कहि टेरत धौरी कारी ।
देखौ धन्य भाग गाइनि के, प्रीति करत बनवारी ।।
मोटी भईं चरत बृंदाबन, नंद-कुँवर की पालीं ।
काहे न दूध देहिं ब्रज-पाषन, हस्त-कमल की लालीं ।।
बेनु स्रवन सुनि, गोबर्धन तैं, तृन दतनि धरि चालीं ।
आईं बेगि सूर के प्रभु पै, ते क्यौं भजैं जे पालीं ।६१३।।
।।१२३१

राग कल्यान

जब सब गाइ भईं इक ठाईं । ग्वालनि घर कौं घेरि चलाईं ।।
मारग मैं तब उपजी आगि । दसहूँ दिशा जरन सब लागि ।।
ग्वाल डरपि हरि पैं कह्यौ आइ । सूर राखि अब त्रिभुवन-राइ ।।
।।६१४।।१२३२।।

राग कान्हरौ

अब कैं राखि लेहु गोपाल ।
दसहूँ दिसा दुसह दवागिनि, उपजी है इहिं काल ।।
पटकत बाँस, काँस कुस चटकत, लटकत ताल तमाल ।
उचटत अति अंगार, फुटत फर, झपटत लपट कराल ।।
धूम धूँधि बाढ़ी धर अंबर, चमकत बिच-बिच ज्वाल ।
हरिन बराह, मोर चातक, पिक, जरत जीव बेहाल ।।
जनि जिय डरहु, नैन मूँदहु सब, हँसि बोले नँदलाल ।
सूर अगिनि सब बदन समानी, अभय किए ब्रज-बाल ।।६१५।।
।।१२३३।।

राग गौरी

साँवरो मनमोहन माई।
देखि सखी बन तैं ब्रज आवत, सुंदर नंद-कुमार कन्हाई॥
मोर-पंख सिर मुकुट बिराजत, मुख मुरली-धुनि सुगम सुहाई।
कुंडल लोल, कपोलनि की छबि, मधुरी बोलनि बरनि न जाई॥
लोचन ललित, ललाट भृकुटि बिच तकि मृगमद की रेख बनाई।
मनु मरजाद उलंघि अधिक बल उमँगि चली अति सुंदरताई॥
कुंचित केस सुदेस, कमल पर मनु मधुपनि-माला पहिराई।
मंद-मंद मुसुक्यानि, मनौ घन, दामिनि दुरि-दुरि देति दिखाई॥
सोभित सूर निकट नासा के अनुपम अधरनि की अरुनाई।
मनु सुक सुरँग बिलोकि बिंब-फल चाखन कारन चोंच चलाई॥
॥६१६॥१२३४॥

राग गौरी

देखौ री नँद नंदन आवत।
बृंदाबन तैं धेनु-बृंद मैं बेनु अधर धरे गावत॥
तन घन स्याम कमल-दल-लोचन अंग अंग छबि पावत।
कारी गोरी धौरी धूमरि लै लै नाम बुलावत॥
बाल गोपाल संग सब सोभित मिलि कर-पत्र बजावत।
सूरदास मुख निरखतहीं सुख गोपी प्रेम बढ़ावत॥६१७॥
॥१२३५॥

राग गौरी

रजनी-मुख बन तैं बने आवत, भावति मंद गयंद की लटकनि।
बालक बृंद बिनोद हँसावत, करतल लकुट धेनु की हटकनि॥
बिगसित गोपी मनौ कुमुद सर, रूप-सुधा लोचन-पुट घटकनि।
पूरन कला उदित मनु उड़पति, तिहिँ छन बिरह-तिमिर की झटकनि॥
लज्जित मनमथ निरखि बिमल छबि, रसिक रंग भौंहनि की मटकनि।
मोहनलाल, छबीलौ गिरधर, सूरदास बलि नागर नटकनि।
॥६१८॥१२३६॥

राग बिलावल

जागियै गोपाल लाल, प्रगट भई अंसु-माल,
मिट्यौ अंधकाल, उठौ जननी-सुखदाई।

मुकुलित भए कमल-जाल, कुमुद-बृंद-बन बिहाल,
मेटहु जंजाल, त्रिविध ताप तन नसाई ॥
ठाढ़े सब सखा द्वार, कहत नंद के कुमार,
टेरत हैँ बार बार, आइयै कन्हाई।
गैयनि भई बड़ी बार, भरि-भरि पय थननि भार,
बछरा-गन करैँ पुकार, तुम बिनु जदुराई ॥
तातैँ यह अटक परी, दुहन-काल सौँह करी,
आवहु उठि क्यौँ न हरी, बोलत बल-भाई।
मुख तैँ पट झटकि डारि, चंद-बदन दियौ उघारि,
जसुमति बलिहारि वारि, लोचन-सुखदाई ॥
धेनु दुहन चले धाइ, रोहिनी लई बुलाइ,
दोहनि मोहिँ दै मँगाइ, तबहीँ लै आई।
बछरा दियौ थन लगाइ, दुहत बैठि कै कन्हाइ,
हँसत नंदराइ, तहाँ मातु दोउ आई ॥
दोहनि कहुँ दूध-धार, सिखवत नँद बार-बार,
यह छबि नहिँ वार-पार, नंद-घर बधाई।
हलधर तब कह्यौ सुनाइ, धेनु बन चलौ लिवाइ,
मेवा लीन्हौ मँगाइ, बिबिध-रस मिठाई ॥
जेँवत बलराम-स्याम, संतन के सुखद धाम,
धेनु-काज नहिँ बिराम, जसुदा जल ल्याई।
स्याम-राम मुख पखारि, ग्वाल-बाल दिए हँकारि,
जमुना-तट मन बिचारि, गाइनि हँकराई ॥
स्रृंग-बेनु-नाद करत, मुरली मधु अधर धरत,
जननी-मन हरत, ग्वाल गावत सुघराई।
बृंदाबन तुरत जाइ, धेनु चरतिँ तृन अघाइ,
स्याम हरष पाइ, निरखि सूरज बलि जाई ॥
॥६१६॥१२३७॥

मुरली-स्तुति *राग सारंग*

जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैँ, जमुना-जल न बहत ॥
खग मोहैँ, मृग-जूथ भुलाहीँ, निरखि मदन-छबि छरत।
पसु मोहैँ, सुरभी विथकित, तृन दंतनि टेकि रहत ॥

सुक सनकादि सकल मुनि मोहैँ, ध्यान न तनक गहत।
सूरजदास भाग हैँ, तिनके, जे या सुखहिँ लहत ॥६२०॥
॥१२३८॥

राग बिहागरौ

(कहाँ कहा) अंगनि की सुधि बिसरि गईँ।
स्याम-अधर मृदु सुनत मुरलिका, चकित नारि भईँ।
जो जैसैँ सो तैसैँ रहि गईँ, सुख-दुख कह्यौ न जाइ।
लिखी चित्र सी सूर सु ह्वै रहिँ, इकटक लल बिसराइ ॥६२१॥
॥१२३९॥

राग मलार

सुनत बन मुरली-धुनि की बाजन।
पपिहा गुंज, कोकिल बन कूँजत, अरु मोरनि कियौ गाजन॥
यहै सब्द सुनियत गोकुल मैँ, मोहन-रूप बिराजन।
सूरदास प्रभु मिली राधिका, अंग अंग करि साजन ॥६२२॥
॥१२४०॥

राग मारू

मेरे साँवरे जब मुरली अधर धरी। सुनि सिध - समाधि टरी।
सुनि थके देव बिमान। सुर-बधू चित्र-समान।
ग्रह-नखत तजत न रास। बाहन बँधे धुनि-पास।
चल थाके, अचल टरे। सुनि आनँद-उमँग भरे।
चर-अचर-गति बिपरीति। सुनि बेनु-कल्पित गीति।
झरना न झरत पषान। गंधर्व मोहे गान।
सुनि खग मृग मौन धरे। फल-तृन की सुधि बिसरे।
सुनि धेनु धुनि थकि रहतिँ। तृन दंतहू नहिँ गहतिँ।
बछरा न पीवैँ छीर। पंछी न मन मैँ धीर।
बेलीद्रुम चपल भए। सुनि पल्लव प्रगटि नए।
सुनि बिटप चंचल पात। अति निकट कौँ अकुलात।
आकुलित पुलकित गात। अनुराग नैन चुचात।
सुनि चंचल पौन थक्यौ। सरिता जल चलि न सक्यौ।

३१

सुनि धुनि चलीँ ब्रजनारि। सुत-देह-गेह बिसारि।
अति थकित भयौ समीर। उलट्यौ जु जमुना-नीर।
मन मोह्यौ मदन गुपाल। तन स्याम, नैन बिसाल।
नवनील - तन - घनस्याम। नव पीत पट अभिराम।
नव मुकुट नव बन-दाम। लावन्य कोटिक काम।
मनमोहन रूप धर्यौ। तब गरब अनंग हर्यौ।
श्री मदन मोहन लाल। सँग नागरी ब्रज-बाल।
नव कुंज जमुना-कूल। जन सूर देखत फूल।
॥६२३॥१२४१॥

राग पूर्वी

तरु तमाल तरे त्रिभंगी कान्ह कुँवर, ठाढ़े हैँ साँवरे सुबरन।
मोर-मुकुट, पीतांबर, बनमाला, राजत, उर ब्रज-जन-मन-हरन॥
सखा-अंसु पर भुज दीन्हे, लीन्हे, मुरलि, अधर मधुर, बिस्व-भरन।
सूरदास कमल-नयन को न किए, बिलोकि गोबर्धन-धरन॥६२४॥
॥१२४२॥

राग बिलावल

स्याम-हृदय बर मोतिनि-माला। बिथकित भई निरखि ब्रज-बाला॥
स्रवन थके सुनि बचन रसाला। नैन थके दरसन नँद-लाला॥
कंबु-कंठ, भुज नैन बिसाला। कर केयुर कंचन नग-जाला॥
पल्लब हस्त मुद्रिका भ्राजै। कौस्तुभ मनि हृदयस्थल छाजै॥
रोमावली बरनि नहिँ जाई। नाभिस्थल की सुंदरताई॥
कटि किंकिनी चंद्रमनि-संजुत। पीतांबर, कटि-तट छबि अद्भुत॥
जुगल जंघ की पटतर को है। तरुनी-मन धीरज कौँ जोहै॥
जानि जानु की छबि न सम्हारै। नारि-निकर मन बुद्धि बिचारै॥
रतन जटित कंचन कल नूपुर। मंद-मंद गति चलत मधुर सुर॥
जुगल कमल-पद नख मनि-आभा। संतनि-मन संतत यह लाभा॥
जो जिहिँ अंग सु तहाँ भुलानी। सूर स्याम-गति काहु न जानी॥
॥६२५॥१२४३॥

राग गौरी

नंद-नँदन मुख देखौ भाई।
अंग-अंग-छबि मनहुँ उये रवि, ससि अरु समर लजाई॥

खंजन मीन, भृंग, बारिज, मृग-पर दृग अति रुचि पाई।
स्रुति-मंडल कुंडल मकराकृत, बिलसत मदन सदाई॥
नासा कीर, कपोत ग्रीव, छबि, दाड़िम दसन चुराई।
द्वै सारँग-बाहन पर मुरली, आई देति दुहाई॥
मोहे थिर, चिर, बिटप, बिहंगम, ब्योम बिमान थकाई।
कुसुमांजलि बरषत सुर ऊपर, सूरदास बलि जाई॥६२६॥
॥१२४४॥

राग केदारौ

देखि री देखि आनँद-कंद।
चित-चातक प्रेम-घन, लोचन चकोरनि चंद॥
चलित कुंडल गंड-मंडल झलक ललित कपोल।
सुधा सर जनु मकर क्रीड़त, इंदु डह डह डोल॥
सुभग कर आनन समीपै, मुरलिका इहिँ भाइ।
मनु उभै अंभोज-भाजन, लेत सुधा भराइ॥
स्याम-देह दुकूल-दुति मिलि, लसति तुलसी-माल।
तड़ित घन संजोग मानौ, स्रेनिका सुक-जाल॥
अलक अबिरल, चारु हास-बिलास, भृकुटी भंग।
सूर हरि की निरखि सोभा, भई मनसा पंग॥६२७॥
॥१२४५॥

राग मलार

देखौ माई सुंदरता कौ सागर।
बुधि-बिबेक-बल पार न पावत, मगन होत मन-नागर॥
तनु अति स्याम अगाध अंबु-निधि, कटि पट पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजति, भँवर परति सब अंग॥
नैन-मीन, मकराकृत कुंडल, भुज सरि सुभग भुजँग।
मुक्ता-माल मिलीँ मानौ, द्वै सुरसरि एकै संग॥
कनक खचित मनिमय आभूषण, मुख, स्रम-कन सुख देत।
जनु जल-निधि मथि प्रगट कियौ ससि, श्री अरु सुधा समेत॥
देखि सरूप सकल गोपी जन, रहीँ बिचारि-बिचारि।
तदपि सूर तरि सकीँ न सोभा, रहीँ प्रेम पचि हारि॥६२८॥
॥१२४६॥

राग भैरवी

जैसी-जैसी करैं कहत न आवै री।
स्यामरौ सुंदर कान्ह अति मन भावै री॥
मदन मोहन बेनु मृदु, मृदुल बजावै री।
ताप की तरंम रस, रसिक रिझावै री॥
जंगम थावर करै, थावर चलावै री।
लहरि भुअँग, त्यागि सनमुख आवै री॥
व्योम-जान फूल, अति गति बरसावै री।
कामिनि धीरज धरै, को सो कहावै री॥
नंदलाल ललना ललचि ललचावै री।
सूरदास प्रेम हरि, हियैं न समावै री॥६२६॥
॥११४७॥

राग कल्यान

बने बिसाल अति लोचन लोल।
चितै-चितै हरि चारु बिलोकनि, मानौ माँगत हैं मन ओल॥
अधर अनूप, नासिका सुंदर, कुंडल ललित सुदेस कपोल।
मुख मुसुक्यात महा छबि लागति, स्रवन सुनत सुठि मीठे बोल॥
चितवति रहतिं चकोर चंद ज्यौं नैं कु न पलक लगावतिं डोल।
सूरदास प्रभु कैं बस ऐसैं, दासी सकल भईं बिनु मोल॥
॥६३०॥१२४८॥

राग धनाश्री

ब्रज-जुबती हरि-चरन मनावैं।
जे पद-कमल महा-मुनि-दुर्लभ सपनेहूँ नहिं पावैं॥
तनु त्रिभंग, जुग जानु एक पग, ठाढ़े इक दरसाए।
अंकुल-कुलिस-बज्र-ध्वज परगट, तरुनी-मन भरमाए॥
वह छबि देखि रहीं इकटक हीं, मन-मन करत बिचार।
सूरदास मनु अरुन कमल पर, सुषमा करति बिहार॥६३१॥
॥१२४९॥

राग बिलावल

देखि सखी हरि-अंग अनूप।
जानु जुगल जुग जंघ बिराजत, को बरनै यह रूप॥

लकुट लपेटि लटकि भए ठाढ़े, एक चरन धर धारे।
मनहुँ नील-मनि-खंभ काम रचि, एक लपेटि सुधारे॥
कबहुँ लकुट तैं जानु फेरि लै, अपने सहज चलावत।
सूरदास मानहुँ कर भा, कर बारंबार डुलावत॥६३२॥१२५०॥

राग नटनारायन

कटि तट पीत बसन सुदेस।
मानौ नव घन दामिनी, तजि रही सहज, सुबेस॥
कनक मनि मेखला राजत, सुभग स्यामल अंग।
मनौ हंस-अकास-पगति, नारि-बालक-संग॥
सुभग कटि काछनी राजति, जलज-केसरि-खंड।
सूर प्रभु-अँग निरखि, माधुरि, मदन-तन पर्यौ दंड॥६३३॥
॥१२५१॥

पीतांबर

राग नट

तरुनी निरखि हरि-प्रतिअंग।
कोउ निरखि नख-इंदु भूली कोउ चरन-जुग-रंग॥
कोउ निरखि नूपुर रही थकि कोउ निरखि जुग जानु।
कोउ निरखि जुग जंघ सोभा करति मन अनुमान॥
कोउ निरखि कटि पीत कछनी मेखला रुचि कारि।
कोउ निरखि हृद-नाभि की छवि डार्यौ तन मन वारि॥
रुचिर रोमावली हरि कैं चारु उदर सुदेस।
मनौ अलि-स्रेनी बिराजति बनी एकहिं भेस॥
रहीं इक टक नारि ठाढ़ी करतिं बुद्धि विचार।
सूर आगम कियौ नभ तैं जमुन-सूच्छम-धार॥६३४॥
॥१२५२॥

तरुणियों ... प्रभाव
विभिन्न अ... का प्रभाव

राग नट

राजति रोम-राजी रेष।
नील घन मनु धूम-धारा, रही सूच्छम सेष॥
निरखि सुंदर हृदय पर, भृगु-पाद परम सुलेख।
मनहुँ सोभित अभ्र-अंतर, संभु-भूषन बेष॥

रोमावली

मुक्त-माल नछत्र-गन सम, अर्द्ध चंद्र बिसेष।
सजल उज्वल जलद मलयज, प्रबल बलिनि अलेष॥
केकि कच सुर-चाप की छबि दसन तड़ित सुपेख।
सूर प्रभु की निरखि सोभा, तजे नैन निमेष॥६३५॥१२५३॥

राग गौरी

हरि-प्रति-अंग नागरि निरखि।
दृष्टि रोमावली पर रही, बनत नाहीँ परखि॥
कोउ कहति यह काम-सरनी, कोउ कहति नहिँ जोग।
कोउ कहति अलि-बाल-पंगति, जुरी एक सँजोग॥
कोउ कहति अहि काम पठयौ, डसै जिनि यह काहु।
स्याम-रोमावली की छबि, सूर नाहिँ निबाहु॥६३६॥
॥१२५४॥

राग आसावरी

चतुर नारि सब कहतिँ बिचारि।
रोमावली अनूप बिराजति, जमुना की अनुहारि॥
उर-कलिंद तैँ धँसि जल-धारा, उदर-धरनि परवाह।
जाति चली धारा ह्वै अध कौँ, नाभी-ह्रद अवगाह॥
भुजा दंड तट, सुभग घाट घट, बनमाला तरु कूल।
मोतिनि-माल दुहूँघा मानौ, फेन लहरि रस-फूल॥
सूर स्याम-रोमावलि की छबि, देखत करतिँ बिचार।
बुद्धि रचतिँ तरि सकतिँ न सोभा, प्रेम बिबस ब्रजनार॥६३७॥
॥१२५५॥

राग कल्यान

रोमावली-रेख अति राजति।
सूच्छम बेष धूम की धारा, नव घन ऊपर भ्राजति॥
भृगु-पद-रेख स्याम-उर सजनी, कहा कहौँ ज्यौँ छाजति।
मनहुं मेघ-भीतर दुतिया-ससि, कोटि-काम दुति लाजति॥
मुक्ता-माल नंद-नंदन-उर, अर्द्ध सुधा-घट भ्राजति।
तनु श्रीखंड मेघ उज्ज्वल अति, देखि महाबलि साजति॥

बरही-मुकुट इंद्र-धनु मानहुँ, तड़ित दसन-छबि लाजति।
इकटक रहीं बिलोकि सूर प्रभु, निमिषनि की कह हाजति॥
॥६३८॥१२५६॥

राग सारंग

मुख-छबि कहौं कहाँ लगि माई।
भानु उदै ज्यौं कमल प्रकासित, रवि ससि दोऊ जोति छपाई॥
अधर बिंब, नासा ऊपर, मनु सुक चाखन कौं चोंच चलाई।
बिकसत बदन दसन अति चमकत, दामिनि-दुति दुरि देति दिखाई॥
सोभित अति कुंडल की डोलनि, मकराकृत श्री सरस बनाई।
निसि-दिन रटति सूर के स्वामिहिं, ब्रज-बनिता देहँ बिसराई॥
॥६३९॥१२५७॥

राग केदारौ

सखी री सुंदरता कौ रंग।
छिन-छिन माँहिं परति छबि औरै, कमल-नैन कैं अंग॥
परमिति करि राख्यौ चाहति हैं, लागी डोलतिं संग।
चलत निमेष बिसेष जानियत, भूलि भई मति-भंग॥
स्याम सुभग कैं ऊपर वारौं, आली कोटि अनंग।
सूरदास कछु कहत न आवै, भई गिरा-गति पंग॥६४०॥
॥१२५८॥

राग बिहागरौ

स्याम भुजनि की सुंदरताई।
चंदन खौरि अनूपम राजति, सो छबि कही न जाई॥
बड़े बिसाल जानु लौं परसत, इक उपमा मन आई।
मनौ भुजंग गगन तैं उतरत, अधमुख रह्यौ झुलाई॥
रत्न-जटित पहुँची कर राजति, अँगुरी सुंदर भारी।
सूर मनौ फनि-सिर मनि सोभित, फन-फन की छबि न्यारी॥
॥६४१॥१२५९॥

राग धनाश्री

गोपी तजि लाज, संग स्याम-रंग भूलीं।
पूरन मुख-चंद देखि, नैन-कोइ फूलीं॥

कैधौं नव जलद स्वाति, चातक मन लाए।
किधौं बारि-बूँद सीप हृदय हरष पाए॥
रवि-छवि कैधौं निहारि, पंकज बिकसाने।
किधौं चक्रवाकि निरखि, पतिहीँ रति माने॥
कैधौं मृग-जूथ जुरे, मुरली-धुनि रीझे।
सूर स्याम-मुख-मंडल-छबि, के रस भीजे ॥६४२॥
॥१२६०॥

राग सोरठ

बड़ौ निठुर विधना यह देख्यौ।
जब तैं आजु नंदनंदन-छबि, बार-बार करि पेख्यौ॥
नख, अँगुरी, पग, जानु जंघ, कटि रचि कीन्हौ निरमान।
हृदय, बाहु, कर, अंस, अंग अँग, मुख सुंदर अति बान॥
अधर, दसन, रसना, रस बानी, स्रवन, नैन अरु भाल।
सूर रोम प्रति लोचन देत्यौ, देखत बनत गुपाल ॥६४३॥
॥१२६१॥

राग गूजरी

स्याम-अँग जुवती निरखि भुलानीँ।
कोउ निरखति कुंडल की आभा, इतनेहिँ माँझ बिकानी॥
ललित कपोल निरखि कोउ अटकी, सिथिल भई ज्यौँ पानी।
देह-गेह की सुधि नहिँ काहूँ, हरषति कोउ पछितानी॥
कोउ निरखति रही ललित नासिका, यह काहू नहिँ जानी।
कोउ निरखति अधरनि की सोभा, फुरति नहीँ मुख बानी।
कोउ चकित भई दसन-चमक पर, चकचौंधी अकुलानी।
कोउ निरखति दुति चिबुक चारु की, सूर तरुनि बिततानी॥
॥६४४॥१२६२॥

राग नट

स्याम कर मुरली अतिहिँ बिराजति।
परसति अधर सुधारस बरसति, मधुर मधुर सुर बाजति॥
लटकत मुकुट, भौँह-छबि मटकति, नैन-सैन अति राजति।
ग्रीव नवाइ अटकि बंसी पर कोटि मदन-छवि लाजति॥

लोल कपोल झलक कुंडल की, यह उपमा कछु लागत।
मानहुँ मकर सुधा-रस क्रीड़त, आपु-आपु अनुरागत॥
बृंदावन बिहरत नँद-नंदन, ग्वाल सखा सँग सोहत।
सूरदास प्रभु की छबि निरखत, सुर-नर-मुनि सब मोहत।
॥६४५॥१२६३॥

राग धनाश्री

तब लगि सबै सयान रहै।
जब लगि नवल किसोर न मुरली, बदन-समीर बहै॥
तबहीं लौं अभिमान, चातुरी, पतिव्रत, कुलहिं चहै।
जब लगि स्रवन-रंध्र-मग, मिलि कै, नाहिं न मनहिं महै॥
तब लगि तरुनि तरल-चंचलता, बुधि-बल सकुचि रहै।
सूरदास जब लगि वह धुनि सुनि नाहिँ न धीर ढहै॥६४६॥
॥१२६४॥

राग गौरी

ब्रज,ललना देखत गिरिधर कौँ।
एक एक अँग अँग पर रीझीँ, अरुझीँ मुरलीधर कौँ॥
मनौ चित्र की सी लिखि काढ़ीँ, सुधि नाहीँ मन घर कौँ।
लोक-लाज, कुल-कानि भुलानी, लुबधीँ स्याम सुँदर कौँ।
कोउ रिसाइ कोउ कहै जाइ कछु, डरैँ न काहू डर कौँ।
सूरदास प्रभु सौँ मन मान्यौ, जन्म-जन्म परतर कौँ॥६४७॥
॥१२६५॥

राग सारंग

बंसी री बन कान्ह बजावत।
आनि सुनौ स्रवननि मधुरे सुर, राज मध्य लै नाम बुलावत॥
सुर स्रुति तान बँधान अमिन अति, सप्त अतीत अनागत-आवत।
जुरि जुग भुज सिर, सेष सैल, मथि बदन-पयोधि, अमृत उपजावत॥
मनौ मोहिनी बेष धारि कै, मन मोहत मधु पान करावत।
सुर नर मुनि बस किए राग-रस, अधर-सुधा-रस मदन जगावत॥
महा मनोहर नाद, सूर थिर चर मोहे, कोउ मरम न पावत।
मानहुँ मूक मिठाई के गुन, कहि न सकत मुख, सीस डुलावत॥
॥६४८॥१२६६॥

राग बिलावल

बाँसुरी बजाइ आछे, रंग सौं मुरारी।
सुनि कै धुनि छूटि गई, संकर की तारी॥
बेद पढ़न भूलि गए, ब्रह्मा ब्रह्मचारी।
रसना गुन कहि न सकै, ऐसी सुधि बिसारी।
इंद्र-सभा थकित भई, लगी जब करारी।
रंभा कौ मान मिट्यौ, भूली नृत कारी॥
जमुना जू थकित भई नहीँ सुधि सँभारी।
सूरदास मुरली है तीन-लोक-प्यारी ॥६४६॥१२६७॥

राग केदारौ

बंसी बनराज आजु आई रन जीति।
मेटति है अपनै बल, सबहिनि की रीति।
बिडरे गज-जूथ सील, सैन-लाज भाजी।
घूँघट पट कोट टूटे, छूटे दृग ताजी॥
काहूँ पति गेह तजे, काहू तन-प्रान।
काहूँ सुख सरन लयौ, सुनत सुजस गान॥
कोऊ पग परसि गए, अपने-अपने देस।
कोऊ रस रंक भए, हुते जे नरेस॥
देत मदन मारुत मिलि, दसौँ दिसि दुहाई।
सूर श्रीगुपाल लाल, बंसी-बस माई ॥६५०॥१२६८॥

राग सारंग

जब तैं बंसी स्रवन परी।
तबहीँ तैं मन और भयौ सखि, मो तन-सुधि बिसरी।
हौं अपनैं अभिमान, रूप, जोबन कैं गर्ब भरी।
नैंकुन कह्यौ कियौ सुनि सजनी, बादिहिं आइ ढरी॥
बिनु देखैं अब स्याम मनोहर, जुग भरि जात घरी।
सूरदास सुनि आरज-पथ तैं, कछू न चाड़ सरी ॥६५१॥
॥१२६९॥

राग सारंग

मुरली-धुनि स्रवन सुनत, भवन रहि न परै।
ऐसी को चतुर नारि, धीरज मन धरै॥

सुर नर मुनि सुनत सुधि न, सिव-समाधि टरै।
अपनी गति तजत पवन, सरिता नहिँ ढरै॥
मोहन-मुख-मुरली, मन मोहिनि बस करै।
सूरदास सुनत स्रवन सुधा-सिंधु भरै॥६५२॥१२७०॥

राग कान्हरौ

(माई री) मुरली अति गर्व काहु, बदति नाहिँ आजु।
हरि कैँ मुख-कमल-देस, पायौ सुख-राजु॥
बैठति कर पीठि ढीठि, अधर-छत्र-छाँहि।
राजति अति चँवर चिकुर, सुरद सभा माँहि॥
जमुना के जलहिँ नाहिँ, जलधि जान देति।
सुरपुर तैँ सुर-बिमान, यह बुलाइ लेति॥
स्थावर चर, जंगम जड़, करति जीति-जीति।
बिधि की बिधि मेटि, करति अपनी नई रीति॥
बंसी बस सकल सूर, सुर-नर-मुनि-नाग।
श्रीपति हूँ की बिसारी, याही अनुराग॥६५३॥
॥१२७१॥

राग गौरी

मुरली मोहे कुँवर कन्हाई।
अँचवति अधर-सुधा बस कीन्हे, अब हम कहा करैँ री माई॥
सरबस लै हरि धर्यौ सबनि कौ, औसर देति न होति अघाई।
गाजति, बाजति, चढ़ी दुहुँ कर, अपनैँ सब्द न सुनत पराई॥
जिहि तन अनल दह्यौ अपनौ कुल, तासौँ कैसेँ होत भलाई।
अब सुनि सूर कौन बिधि कीजै, बन की ब्याधि माँझ घर आई॥
॥६५४॥१२७२॥

राग मलार

मुरली तऊ गुपालहिँ भावति।
सुनि री सखी जदपि नँदलालहिँ, नाना भाँति नचावति।
राखति एक पाइ ठाढ़ौ करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल तन आज्ञा करवावति, कटि टेढ़ी ह्वै आवति॥

अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नार नवावति।
आपुन पौंढ़ि अधर सज्जा पर, कर पल्लव पलुटावति॥
भृकुटी कुटिल, नैन नासा-पुट, हम पर कोप करावति।
सूर प्रसन्न जानि एकौ छिन, धर तैं सीस डुलावति॥
॥६५५॥१२७३॥

राग मलार

स्याम तुम्हारी मदन-मुरलिका, नैंसुक सी जग मोह्यौ।
जे ते जीव जंतु जल थल के, नाद स्वाद सब पोह्यौ।
जे तप व्रत किए तरनि-सुता-तट, पन गहि पीठि न दीन्ही।
ता तीरथ-तप के फल लैके, स्याम सोहागिनि कीन्ही॥
धरनि धरी, गोबर्धन राख्यौ, कोमल पानि-अधार।
अब हरि लटकि रहत टेढ़े ह्वै, तनक मुरलि के भार॥
धन्य सुबरी सील कुल छाँड़े, राँची वा अनुराग।
अब हरि सींचि सुधा-रस, मेटत तन के पहिले दाग॥
निदरि हमैं अधरनि रस पीवति, पढ़ी दूतिका भाइ।
सूरदास कुंजनि तैं प्रगटी, चोरि सौति भई आइ॥६५६॥
॥१२७४॥

राग सारंग

सखी री, मुरली लीजै चोरि।
जिनि गुपाल कीन्हे अपनैं बस, प्रीति सबनि की तोरि॥
छिक इक घर-भीतर, निसि-बासर, धरत न कबहूँ छोरि।
कबहूँ कर, कबहूँ अधरनि, कटि कबहूँ खोंसत जोरि।
ना जानौं कछु मेलि मोहिनी, राखे अँग-अँग भोरि।
सूरदास प्रभु कौ मन सजनी, बँध्यौ राग की डोरि॥६५७॥
॥१२७५॥

राग केदारौ

मुरली अधर सजी बलबीर।
नाद सुनि बनिता बिमोहीं, बिसारे उर-चीर॥
धेनु मृग तृन तजि रहे, बछरा न पीवत छीर।
नैन मूँदे खग रहे ज्यौं, करत तप मुनि-धीर॥

डुलत नहिँ द्रुमपत्र बेली, थकित मंदसमीर।
सूर मुरली-सब्द सुनि, थकि रहत जमुना-नीर ॥६५८॥
॥१२७६॥

राग मलार

जब हरि मुरली अधर धरी।
गृह-व्यौहार तजे आरज-पथ, चलत न संक करी॥
पद-रिपु पट अँटक्यौ न सम्हारति, उलट न पलट खरी।
सिव-सुत-बाहन आइ मिले हैं, मन-चित्त बुद्धि हरी॥
दुरि गए कीर, कपोत, मधुप, पिक सारँग सुधि बिसरी।
उडुपति बिद्रुम, बिंब, खिसाने, दामिनि अधिक डरी॥
मिलिहैं स्यामहिं हंस-सुता-तट, आनँद-उमग भरी।
सूर स्याम कौं मिलीं परस्पर, प्रेम-प्रवाह ढरी ॥६५६॥
॥१२७७॥

गोपिका-वचन *राग सारंग*

हम न भईं बृंदाबन-रेनु।
जहँ चरननि डोलत नँद-नंदन, नित-प्रति चारत धेनु॥
हम तैं मरम धन्य ये बन, द्रुम, बालक, बच्छऽरु बेनु।
सूर सकल खेलत, हँसि बोलत, सँग मथि पीबत फेनु॥
॥६६०॥१२७८॥

राग केदारौ

मुरली कौन सुकृत-फल पाए।
अधर-सुधा पीवति मोहन कौ, सबै कलंक गँवाए॥
मन कठोर तन गाँठि प्रगट ही, छिद्र बिलास बनाए।
अंतर सून्य सदा, देखियति है, निज कुल बंस सुभाए॥
लघुता अंग, नहीं कछु करनी, निरखत नैन लगाए।
सूरदास-प्रभु-पानि परसि नित, काम-बेलि अधिकाए॥६६१॥
१२७६॥

मुरली के भाग्य का वर्णन

राग सारंग

ऐसौ गोपाल निरखि, तन-मन-धन वारौं।
नव किसोर, मधुर मुरति, सोभा उर धारौं॥

अरुन-तरुन कमल नैन, मुरली कर राजै।
ब्रज-जन-कन-हरन बेनु, मधुर-मधुर बाजै॥
ललित बर त्रिभंग सु तनु, बनमाला सोहै।
अति सुदेस कुसुम-पाग, उपमा कौं को है॥
चरन रुनित नूपुर, कटि किंकिनि कल कूजै।
मकराकृत-कुंडल-छबि, सूर कौन पूजै॥६६२॥
॥१२८०॥

राग सारंग

सुंदर मुख की बलि बलि जाउँ।
लावनि-निधि गुन-निधि सोभा-निधि निरखि-निरखि जीवत सब गाउँ।
अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटति रस रुचि ठावहिं ठाउँ।
तामैं मृदु मुसुक्यानि मनोहर न्याइ कहत कबि मोहन नाउँ।
नैन-सैन दै दै जब हेरत ता छबि पर बिनु मोल बिकाउँ।
सूरदास प्रभु मदनमोहन-छबि सोभा की उपमा नहिं पाउँ॥
॥६६३॥१२८१॥

राग सूही

मैं बलि जाउँ स्याम-मुख-छबि पर।
बलि-बलि जाउँ कुटिल कच बिथुरे, बलि भृकुटी लिलाट पर॥
बलि-बलि जाउँ चारु अवलोकनि, बलि बलि कुंडल-रबि की।
बलि-बलि जाउँ नासिका सुललित, बलिहारी वा छबि की॥
बलि-बलि जाउँ अरुन अधरनि की, बिद्रुम-बिंब लजावन।
मैं बलि जाउँ दसन चमकनि की, बारौं तड़ितनि सावन॥
मैं बलि जाउँ ललित ठोड़ी पर, बलि मोतिनि की माल।
सूर निरखि तन-मन बलिहारौं, बलि बलि जसुमति-लाल॥
॥६६४॥१२८२॥

राग कान्हरौ

अलकनि की छबि अलि-कुल गावत।
खंजन मीन मृगज लज्जित भए, नैननि गतिहिं न पावत॥

मुख मुसुक्यानि आनि उर अंतर, अंबुज बुधि उपजावत।
सकुचत अरु बिगसत वा छबि पर अनुदिन जनम गवावत॥
पूजत नाहिँ सुभग स्यामल तन, जद्यपि जलधर धावत।
बसन समान होत नहिँ हाटक, आगिनि झाँप दै आवत॥
मुक्ता-दाम बिलोकि, बिलखि करि, अवलि बलाक बनावत।
सूरदास प्रभु ललित त्रिभंगी, मनमथ-मनहिँ लजावत ॥६६५॥
॥१२८३॥

राग धनाश्री

दै री मैया दोहनी, दुहिहौँ मैं गैया।
माखन खाए बल भयौ, करौ नंद-दुहैया॥
कजरी धौरी सेँदुरी, धूमरि मेरी गैया।
दुहि ल्याऊँ मैं तुरत हीँ, तू करि दै घैया॥
ग्वालिनि की सरि दुहत हौँ, बूझहिँ बल भैया।
सूर निरखि जननी हँसी, तब लेति बलैया॥६६६॥
॥१२८४॥

राग सारंग

बाबा मोकौँ दुहन सिखायो।
तेरैँ मन परतीति न आवै, दुहत अँगुरियनि भाव बतायौ॥
अँगुरी-भाव देखि जननी तब हँसिकै स्यामहिँ कंठ लगायौ।
आठ बरष के कुँवर कन्हैया, इतनी बुद्धि कहाँ तैँ पायौ।
माता लै दोहनि कर दीन्ही, तब हरि हँसत दुहन कौँ धायौ।
सूरस्याम कौँ दुहत देखि तब, जननी मन अति हर्ष बढ़ायौ॥
॥६६७॥१२८५॥

राग धनाश्री

जननि मथति दधि, दुहत कन्हाई।
सखा परस्पर कहत स्याम सौँ, हमहूँ सौँ तुम करत चँड़ाई॥
दुहन देहु कछु दिन अरु मोकौँ, तब करिहौ मो समसरि आई।
जब लौँ एक दुहौगे तब लौँ, चारि दुहौँगो नंद दुहाई॥
झूठहिँ करत दुहाई प्रातहिँ, देखहिँगे तुम्हरी अधिकाई॥
सूर स्याम कह्यौ काल्हि दुहैँगे, हमहूँ तुम मिलि होड़ लगाई॥
॥६६८॥१२८६॥

श्रीराधा-कृष्ण लिलाप

राग बिलावल

दै मैया भौंरा चक डोरी।
जाइ लेहु आरे पर पर राख्यौ, काल्हि मोल लै राखे कोरी॥
लै आए हँसि स्याम तुरतहीं, देखि रहे रँग-रँग बहु डोरी।
मैया बिना और को राखे, बार-बार हरि करत निहोरी॥
बोलि लिए सब सखा संग के, खेलत कान्ह नंद की पोरी।
तैसेइ हरि, तैसेइ सब बालक, कर भौंरा-चकरिनि की जोरी॥
देखति जननि जसोदा यह सुख, बार-बार बिहँसति मुख मोरी।
सूरदास प्रभु हँसि-हँसि खेलत ब्रज-बनिता डारतिं तृन तोरी।
॥६६९॥१२८७॥

राग कान्हरौ

मेरैं हिय लागै मनमोहन, लै गए री चित चोरि।
अबहीं इहिं मारग ह्वै निकसे, छबि निरखत तृन तोरि॥
मोर-मुकुट, स्रवननि मनि-कुंडल, उर बनमाल, पिछोरि।
दसन चमक, अधरनि अरुनाई, देखत परी ठगोरि॥
ब्रज-लरिकन सँग खेलत डोलत, हाथ लिए चकडोरि।
सूरस्याम चितवत गए मो तन, तन मन लियौ अँजोरि॥
॥६७०॥१२८८॥

राग टोड़ी

तब तैं मेरौ ज्यौ न रहि सकत।
जित देखौं तितहीं मृदु मूरत, नैननि मैं नित लागि रहत॥
ग्वाल-बाल सब संग लगाए, खेलत मैं करि भाव चलत।
अरुझि पर्‌यौ मेरौ मन तब तैं, कर झटकत चक-डोरि हलत॥
अब मैं कहा करौं री सजनी सुरति होति तब मदन दहत।
सूर स्याम मेरौ मन हरि लियौ, सकुच छाँड़ि मैं तोहिं कहत॥
॥६७१॥१२८९॥

राग टोड़ी

खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी।
कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लए भौंरा, चक, डोरी॥
मोर-मुकुट, कुंडल स्रवननि बर, दसन-दमक दामिनि-छबि छोरी।
गए स्याम रबि-तनया कैं तट, अंग लसति चंदन की खोरी॥

औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी॥
संग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन-थोरी, अति छबि तन-गोरी।
सूर स्याम देखत हीं रीझे नैन-नैन मिलि परी ठगोरी॥६७२॥
॥१२६०॥

राग टोड़ी

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी॥
काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहतिं आपनी पौरी।
सुनत रहतिं स्रवननि नँद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी॥
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥
॥६७३॥१२६१॥

राग धनाश्री

प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ।
नैन-नैन कीन्ही सब बातैं, गुह्य प्रीति प्रगटान्यौ॥
खेलन कबहुँ हमारैं आवहु, नंद-सदन, ब्रज गाउँ।
द्वारैं आइ टेरि मोहिं लीजौ, कान्ह हमारौ नाउँ॥
जौ कहियै घर दूरि तुम्हारौ, बोलत सुनियै टेरि।
तुम्हहिं सौंह बृषभानु बबा की, प्रात-साँझ इक फेरि॥
सूधी निपट देखियत तुमकौं, तातैं करियत साथ।
सूर स्याम नागर, उत नागरि राधा, दोउ मिलि गाथ॥
॥६७४॥१२६२॥

राग टोड़ी

ठाढ़ी कुँअरि राधिका लोचन मीचत तहँ हरि आए।
अति बिसाल चंचल अनियारे हरि-हाथनि न समाए॥
सुभग आँगुरिनि मध्य बिराजत अति आतुर दरसाए।
मानौ मनिधर ज्यौं छाँड्यौ फन तर रहन दुराए॥
गोसुत भयौ जु गाधि गह्यौ बर रच्यौ जु रबि सँग साए।
अपने काम न मिलत हरी जो बिरहा लेत छड़ाए॥

अंबुज चारि कुमुद द्वै मिलि कै औ ससि-बैर गवाए।
सूरदास अति हरि परसतहीँ सकल बिथा बिसराए ॥६७५॥
॥१२६३॥

राग नट

सैननि नागरी समुझाइ।
खरिक आवहु दोहनी लै, यहै मिस छल लाइ ॥
गाइ-गनती करन जैहैं, मोहिँ लै नँदराइ।
बोलि बचन प्रमान कीन्हौ, दुहुनि आतुरताइ ॥
कनक बरन सुढार सुंदरि, सकुच बदन दुराइ।
स्याम प्यारी-नैन राँचे, अति बिसाल चलाइ ॥
गुप्त प्रीति न प्रगट कीन्ही, हृदय दुहुनि छिपाइ।
सूर प्रभु के बचन सुनि-सुनि, रही कुँवरि लजाइ ॥६७६॥
॥१२६४॥

राग सारंग

गई बृषभानु-सुता अपनैं घर।
संग सखी सौं कहति चली यह, को जैहै इन कैं दर ॥
बड़ी बेर भई जमुना आए, खीझति ह्वैहै मैया।
बचन कहति मुख, हृदय-प्रेम-दुख, मन हरि लियौ कन्हैया ॥
माता कहति कहाँ ही प्यारी, कहाँ अबेर लगाई।
सूरदास तब कहति राधिका, खरिक देखि हौं आई ॥
॥६७७॥१२६५॥

राग रामकली

नागरि मन गई अरुझाइ।
अति बिरह तनु भई ब्याकुल, घर न नैंकु सुहाइ ॥
स्याम सुंदर मदन मोहन, मोहिनी सी लाई।
चित्त चंचल कुँवरि राधा, खान-पान भुलाई ॥
कबहुँ बिहँसति, कबहुँ बिलपति, सकुचि रहति लजाइ।
मातु-पितु कौ त्रास मानति, मन बिना भई बाइ ॥
जननि सौं दोहनी माँगति, बेगि दै री माइ।
सूर प्रभु कौं खरिक मिलिहौं, गए मोहिँ बुलाइ ॥ ६७८॥
॥१२६६॥

राग धनाश्री

मोहिँ दोहनी दै री मैया।
खरिक माहिँ अबहीँ है आई, अहिर दुहत सब गैया॥
ग्वाल बहुत तब गाइ हमारी, जब अपनी दुहि लेत।
घरिक माहिँ लगिहै खरिका मैँ, तू जनि आवै हेत॥
सोचति चली कुँवरि घर हीँ तैँ खरिक गई समुहाइ।
कब देखौँ वह मोहन-मूरति, जिन मन लियौ चुराइ॥
देखे जाइ तहाँ हरि नाहीँ, चकृत भई सुकुमारि।
कबहूँ इत, कबहूँ उत डोलति, लागी प्रीति-खँभारि॥
नंद लिए आवत हरि देखे, तब पायौ बिस्राम।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, कीन्हौ पूरन काम॥६७६॥
॥१२६७॥

राग धनाश्री

नंद गए खरिकहिँ हरि लीन्हे।
देखी तहाँ राधिका ठाढ़ी, बोलि लिए तिहिँ चीन्हे॥
महर कह्यौ खेलौ तुम दोऊ, दूरि कहूँ जिनि जैहौ।
गनती करत ग्वाल गैयनि की, मोहिं नियरैँ तुम रैहौ॥
सुनि बेटी बृषभानु महर की, कान्हहिँ लेइ खिलाइ।
सूर स्याम कौँ देखे रहिहौ, मारै जनि कोउ गाइ॥६८०॥
॥१२६८॥

राग नट

नंद बबा की बात सुनौ हरि।
मोहिँ छाँड़ि जौ कहूँ जाहुगे, ल्याउँगी तुमकौँ धरि॥
भली भई तुम्हैँ सौँपि गए मोहिँ, जान न दैहौँ तुमकौँ।
बाँह तुम्हारी नकु न छाड़ौँ, महर खीझिहैँ हमकैँ॥
मेरी बाँह छाँड़ि दै राधा, करत उपरफट बातैँ।
सूर स्याम नागर, नागरि सैँ, करत प्रेम की बातैँ॥६८१॥
॥१२६६॥

राग नट

नीबी ललित गही जदुराइ।
जबहिँ सरोज धरयौ श्रीफल पर, तब जसुमति गई आइ॥

ततछन रुदन करत मनमोहन, मन मैँ बुधि उपजाइ।
देखौ ढीठि देति नहिँ माता, राख्यौ गेँद चुराइ॥
तब्र बृषभानु-सुता हँसि बोली, हम पै नाहिँ कन्हाइ।
काहे कौँ झकझोरत नोखे, चलहु न देउँ बताइ॥
देखि विनोद बाल सुत कौ तब, महरि चली मुसुकाइ।
सूरदास के प्रभु की लीला, को जानै इहिँ भाइ॥६८२॥
॥१३००॥

राग धनाश्री

बातनि लई राधा लाइ।
चलहु जैवै बिपिन बृंदा, कहत स्याम बुझाइ॥
जब, जहाँ तन बेष धारौ, तहाँ तुम हित जाइ।
नैँकुहूँ नहिँ करौँ अंतर, निगम भेद न पाइ॥
तुव परस तन-ताप मेटौँ, काम-द्वंद गँवाइ।
चतुर नागरि हँसि रही सुनि, चंद-बदन नवाइ॥
मदनमोहन भाव जान्यौ, गगन मेघ छवाइ।
स्यामा-स्याम-गुप्त-लीला, सूर क्यौँ कहै गाइ॥६८३॥
॥१३०१॥

राग गौड मलार

सुख-बिलास

गगन घहराइ जुरी घटा कारी।
पवँन-झकझोर, चपला-चमक चहुँ ओर, सुवन-तन चितै नँद डरत भारी॥
कह्यौ वृषभानु की कुँवरि सौँ बोलि कै, राधिका कान्ह घर लिए जा री।
दोउ घर जाहु सँग, गगन भयौ स्याम रँग, कुँवर-कर गह्यौ बृषभानु-बारी॥
गए बन घन ओर, नवल-नंद-किसोर, नवल राधा, नए कुंज भारी।
अंग पुलकित भए, मदन तिन तन जए, सूर प्रभु स्याम स्यामा विहारी॥
॥६८४॥१३०२॥

राग कामोद

नयौ नेह, नयौ गेह, नयौ रस, नवल कुँवरि बृषभानु-किसोरी।
नयौ पितांबर, नई चूनरी, नई-नई बूँदनि भीजति गोरी॥
नये कुंज, अति पुंज नये द्रुम, सुभग जमुन-जल पवन हिलोरी।
सूरदास प्रभु नव रस बिलसत नवल राधिका जोबन-भोरी॥
॥६८५॥१३०३॥

राग कान्हरौ

नवल गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम रस पागे।
अंतर बन-बिहार दोउ क्रीड़त, आपु आपु अनुरागे॥
सोभित सिथिल बसन मनमोहन, सुखवत स्रम के पागे।
मानहुँ बुझी मदन की ज्वाला, बहुरि प्रजारन लागे॥
कबहुँक बैठि अंस भुज धरि कै, पीक कपोलनि पागे।
अति रस-रासि लुटावत लूटत, लालचि लाल सभागे॥
नहिं छूटति रति-रुचिर भामिनी, वा रस मैं दोउ पागे।
मनहुँ सूर कल्पद्रुम की सिधि, लै उतरी फल आगे॥
॥६८६॥१३०४॥

राग मलार

उतारत हैं कंठनि तैं हार।
हरि हिय मिलत होत है अंतर, यह मन कियौ बिचार॥
भुजा बाम पर कर-छबि लागति, उपमा अंत न पार।
मनहुँ कमल-दल नाल मध्य तैं, ज्यौ अदभुत आकार॥
चुंबत अंग परस्पर जनु जुग, चंद करत हित-चार।
दसननि बसन चाँपि सु चतुर अति, करत रंग बिस्तार॥
गुन-सागर अरु रस-सागर मिलि, मानत सुख व्यवहार।
सूर स्याम स्यामा नव रस रमि, रीझे नंदकुमार॥
॥६८७॥१३०५॥

राग कान्हरा

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम-भुजा अपनैं उर धरिया॥

क्रीड़ा करत तमाल-तरुन-तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया।
यौं लपटाइ रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया॥
उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया।
सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नंद-कुँवर बृषभानु-कुँवरिया॥६८८॥
॥१३०६॥

राग गौरी

आजु नँद-नंदन रंग भरे।
बिबि लोचन सु बिसाल दुहुँनि के चितवत चित्त हरे॥
भामिनि मिले परम सुख पायौ, मंगल प्रथम करे।
कर सौं कर जु करयौ कंचन ज्यौं, अंबुज उरज धरे॥
आलिंगन दै अधर पान करि, खंजन कंज लरे।
हठ करि मान कियौ जब भामिनि, तब गहि पाइ परे॥
पुहुप मंजरी मुक्तनि माला, अँग अनुरागि घरे।
रचना सूर रची बृंदाबन, आनँद-काज करे॥६८९॥
॥१३०७॥

राग नट

हरि हँसि भामिनी उर लाइ।
सुरति अंत गोपाल रीझे, जानि अति सुखदाइ॥
हरषि प्यारी अंक भरि, पिय रही कंठ लगाइ।
हाव भाव, कटाच्छ लोचन, कोक-कला सुभाइ॥
देखि बाला अतिहिं कोमल, मुख निरखि मुसुकाइ।
सूर प्रभु रति-पति के नायक, राधिका समुहाइ॥६९०॥
॥१३०८॥

राग गौड़ मलार

नवल नेह नव पिया नयो-नयो दरस,
बिवि तन मिले पिय अधर धरो री।
प्रीति की रीति प्रान चंचल करत लखि,
नागरी नैन सौं चिबुक मोरी॥
काम की केलि कमनीय चंद्रक चकोर,
स्वाति कौ बूँद चातक परौ री।

सूरदास रसरासि बरसि कै चली,
जनौ हर-तिलक कुहू उग्यौ री ॥६६१॥
॥१३०९॥

गृह गमन राग गौरी

तुरत गए नँद-सदन कन्हाई।
अंकम दै राधा घर पठई, बादर जहँ-तहँ दिए उड़ाई॥
प्यारी की सारी आपुन लै, पीतांबर राधा उर लाई।
जो देखै जसुमति हरि ओढ़े, मन यह कहति कहाँ धौं पाई॥
जननी-नैन तुरत लखि लीन्हौ, तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई।
सूरदास जसुमति सुत सौं कहै, पीत ओढ़नी कहाँ गँवाई॥
॥६६२॥१३१०॥

राग सारंग

पीत उढ़नियाँ कहाँ बिसारी।
यह तौ लाल ढिगनि की औरै, है काहू की सारी॥
हैं गोधन लै गयौ जमुन-तट, तहाँ हुतीं पनिहारी।
भोर भई सुरभी बिडरीं, मुरली भली सम्हारी॥
हौं लै भज्यौ और काहू की, सो लै गई हमारी।
सूरदास प्रभु भली बनाई, बलि जसुमति महतारी।
॥६६३॥१३११॥

राग धनाश्री

मैया री मैं जानत वाकौं।
पीत उढ़नियाँ जो मेरी लै गई, लै आनौ धरि ताकौं॥
हरि की माया कोउ न जानै, आँखि धूरि सी दीन्ही।
लाल ढिगनि की सारी ताकौं, पीत उढ़नियाँ कीन्ही॥
पीतांबर लै जननि दिखायौ, लै आन्यौ तिहिं पास।
सूर मनहिं मन कहति जसोदा, तरुनि पढ़ावति गाँस।
॥६६४॥१३१२॥

राग धनाश्री

स्यामहिं देखि महरि मुसक्यानी।
पीतांबर काकैं घर बिसर्यौ, लाल ढिगनि की सारी आनी॥

ओढ़नि आनि दिखाई मोकौं, तरुनिनि की सिखई बुधि ठानी।
घर लै-लै मैरौ सुत भुरवतिं, ये ऐसी सब दिन की जानी॥
हरि अंतरजामी रति-नागर जानि, लई जननी पहिचानी।
सूर निरखि मुख सकुचि भगाने, या लीला की यहै सयानी॥
॥६६५॥१३१३॥

राग कल्यान

सुंदरि गई गृह समुहाइ।
दोहनी कर दूध लीन्हे, जननि टेरी बुलाइ॥
प्रेम पीत निचोल हरि कौ, कहूं धर्यौ छिपाइ।
और की औरै कहति कछु, मातु मनहिं डराइ॥
कुँवरि कौं कहुँ दीठि लागी, निरखि कै पछिताइ॥
सूर तब वृषभानु-घरनी, राधिका उर लाइ॥
॥६६६॥१३१४॥

राग कान्हरौ

जननी कहति कहा भयौ प्यारी।
अबहीं खरिक गई तू नीकैं, आवत हीं भई कौन बिथा री॥
एक बिटिनियाँ सँग मेरे ही, कारैं खाई ताहि तहाँ री।
मो देखत वह परी धरनि गिरि, मैं डरपी अपनैं जिय भारी॥
स्याम बरन इक ढोटा आयौ, यह नहिं जानति रहत कहाँ री।
कहत सुन्यौ नँद कौ यह बारौ, कछु पढ़ि कै तुरतहिं उहिं झारी॥
मेरौ मन भरि गयौ त्रास तैं, अब नीकौ मोहिं लागत ना री।
सूरदास अति चतुर राधिका, यह कहि समुझाई महतारी॥
॥६६७॥१३१५॥

राग गौड़ मलार

कुँवरि सौं कहति बृषभानु-घरनी।
नैंकु नहिँ घर रहति, तोहिं कितनौ कहति,
रिसनि मोँहिँ दहति, बन भई हरनी॥
लरिकिनी सबनि घर, तोसी नहिँ कोउ निडर,
चलति नभ चितै नहिँ तकति धरनी।

बड़ी करबर टरी; साँप सैँ ऊबरी, बात
कैँ कहत तोहिं लगति जरनी ॥
लिखी मेटै कौन, करै करता जौन,
सोइ ह्वैहै जु होनहारि करनी।
सुता लई उर लाइ, तनु निरखि पछिताइ,
डरनि गई कुम्हिलाइ सूर बरनी ॥६६८॥
॥१३१६॥

राग गौड़ मलार

महर बृषभानु की यह कुमारी।
देवधामी करत, द्वार द्वारैँ परत,
पुत्र द्वै, तीसरैँ यहै बारी ॥
भई बरष सात की, सुभ घरी जात की,
प्यारी दोउ भ्रात की, बची भारी।
कुँवरि दई अन्हवाइ, गई तन-मुरझाइ,
बसन पहिराइ, कछु कहति खारी ॥
जाहि जनि खरिक-तन, खेलि अपन सदन,
यह सुनति हँसति मन स्याम-नारी।
सूर प्रभु-ध्यान धरि, हरषि आनंद भरि,
गाँव घर खेलिहौँ कहति कारी ! ॥६६९॥
॥१३१७॥

राधिका जी का यशोदा-गृहागमन *राग आसावरी*

खेलन कैँ मिस कुँवरि राधिका, नंद-महरि कैँ आई (हो)।
सकुच सहित मधुरे करि बोली, घर हौ कुँवर कन्हाई (हो) ॥
सुनत स्याम कोकिल सम बानी, निकसे अति अतुराई (हो)।
माता सैाँ कछु करत कलह हे, रिस डारी बिसराई (हो)।
मैया री तू इनकौँ चीन्हति, बारंबार बताई (हो)।
जमुना-तीर काल्हि मैँ भूल्यौ, बाहँ पकरि लै आई (हो) ॥
आवति इहाँ तोहिँ सकुचति है, मैँ दै सौँह बुलाई (हो)।
सूर स्याम ऐसे गुन-आगर, नागरि बहुत रिझाई (हो) ॥
॥७००॥१३१८॥

राग आसावरी

को जानै हरि की चतुराई।
नैन-सैन संभाषन कीन्हौ, प्यारी की उर-तपनि सिटाई ॥
मनहीं मन दोउ रीझि मगन भए, अति आनँद उर मैं न समाई।
कर पल्लव हरि भाव बतावत, एक प्रान द्वै देह बनाई ॥
जननी-हृदय प्रेम उपजायौ, कहति कान्ह सौं लेहु बुलाई।
सूर स्याम गहि बाँह राधिका, ल्याये महरि बिहँसि बैठाई ॥
॥७०१॥१३१६॥

राग सूहौ

देखि, महरि मनहीं जु सिहानी।
बोलि लई, बूझति नँदरानी कहि मधुरे मधु बानी।
ब्रज मैं तोहिं कहूँ नहिं देखी, कौन गाउँ है तेरौ।
भलो कालिह कान्हहिं गहि ल्याई, भूल्यौ तो सुर मेरौ ॥
नैन बिसाल, बदन अति सुंदर, देखत नीकी, छोटी।
सूर महरि सबिता सौं, बिनवति, भली स्याम की जोटी ॥
॥७०२॥१३२०॥

राग नट

नाम कहा तेरौ री प्यारी।
बेटी कौन महर की है तू, को तेरी महतारी ॥
धन्य कोख जिहिं तोकौं राख्यौ, धनि घरि जिहिं अवतारी।
धन्य पिता माता तेरे, छबि निरखति हरि-महतारी ॥
मैं बेटी बृषभानु महर की, मैया तुमकौं जानतिं।
जमुना-तट बहु बार मिलन भयौ, तुम नाहिंन पहिचानतिं ॥
ऐसी कहि, वाकौं मैं जानति, वह तौ बड़ी छिनारि।
महर बड़ौ लंगर सब दिन कौ, हँसति देति मुख गारि।
राधा बोलि उठी, बाबा कछु, तुमसौं ढीठौ कीन्हौ।
ऐसे समरथ कब मैं देखे हँसि प्यारहिं उर लीन्हौ ॥
महरि कुँवरि सौं यह कहि भाषति, आउ करौं तेरी चोटी।
सूरदास हरषित नँदरानी, कहति महरि हम जोटी ॥७०३॥
॥१३२१॥

राग गौरी

जसुमति राधा कुँवरि सँवारति।
बड़े बार सीमंत सीस के, प्रेम सहित निरुवारति॥
माँग पारि बेनी जु सँवारति, गूँथी सुंदर भाँति।
गोरैं भाल बिंदु बंदन, मनु, इंदु प्रात-रवि काँति॥
सारी चीरि नई फरिया लै, अपने हाथ बनाइ।
अंचल सौं मुख पोंछि अंग सब, आपुहि लै पहिराइ॥
तिल चाँवरी, बतासे, मेवा, दियौ कुवरि की गोद।
सूर स्याम-राधा-तनु चितवत, जसुमति मन-मन मोद॥७०४॥
॥१३२२॥

राग कल्यान

खेलौ जाइ स्याम सँग राधा।
यह सुनि कुँवरि हरष मन कीन्हौं, मिटि गई अंतर-बाधा॥
जननी निरखि चकित रही ठाढ़ी, दंपति रूप-अगाधा।
देखति भाव दुहुँनि कौ सोई, जो चित करि अवराधा॥
सँग खेलत दोउ झगरन लागे, सोभा बढ़ी अबाधा।
मनहुँ तड़ित घन, इंदु तरनि, ह्वै बाल करत रस-साधा॥
निरखत बिधि भ्रमि भूलि पर्यौ तब, मन-मन करत समाधा।
सूरदास प्रभु और रच्यौ बिधि, सोच भयौ तन दाधा॥७०५॥
॥१३२३॥

राग केदारौ

बिधि कैं आन बिधि कौ सोच।
निरखि छबि बृषभानु-तनया, सकल मम कृत पोच॥
रमा, गौरी, उर्वसी, रति, इंद्र-बधू समेत।
तूल दिन-मनि कहा सारँग, नाहिं उपमा देत॥
चरन निरखि, निहारि नख-छबि, अजित देख्यौ तोकि।
चित्त गुनि महिमा न जानत, धीर राखत रोकि॥
सूर आन बिरंचि बिरच्यौ, भक्ति-निज-अवतार।
अबल के बल सबल देखि, अधीन सकल सिंगार॥७०६॥
॥१३२४॥

राधा-गृह-गमत *राग नट*

राधे महरि सौँ कहि चली।
आनि खेलत रहौ प्यारी, स्याम तुम हिलिमिली ॥
बोलि उठे गुपाल राधा, सकुच जिय कत करति।
मैँ बुलाऊँ नाहिँ आवति, जननि कौँ कत डरति ॥
माइ जसुदा देखि तोकौँ, करति कितनौ छोह।
सुनत हरि की बात प्यारी, रही मुख-तन जोह ॥
हँसि चली वृषभान-तनया, भई बहुत अबार।
सूर-प्रभु चित तैँ टरत नहिँ, गई घर कैँ द्वार ॥७०७॥
॥१३२५॥

राग बिहागरौ

बूझति जननि कहाँ हुती प्यारी।
किन तेरे भाल तिलक रचि कीनौ, किहिँ कच गूँदि माँग सिर पारी ॥
खेलति रही नंद कैँ आँगन, जसुमति कही कुंवरि ह्याँ आ री।
मेरौ नाउँ बूझि बाबा कौ, तेरौ बूझि दई हँसि गारी ॥
तिल चाँवरी गोद करि दीनी फरिया दई फारि नव सारी।
मो-तन चितै, चितै ढोटा-तन, कछु सबिता सौँ गोद पसारी ॥
यह सुनि कै बृषभानु मुदित चित, हँसि-हँसि बूझत बात दुलारी।
सूर सुनत रस सिंधु बढ़्यौ अति, दंपति एकै बात बिचारी ॥
॥७०८॥१३२६॥

राग गौरी

मेरे आगैँ महरि जसोदा, तोकौँ गारी दीन्ही।
वाही घात सबै मैँ जानति, वै जैसी मैँ चीन्ही ॥
तोकौँ कहि पुनि कह्यौ बबा कौँ बड़ौ धूत वृषभान।
तब मैँ कह्यौ ठग्यौ कब तुमकौँ, हँसि लागी लपटान ॥
भली कही तू मेरी बेटी, लयौ आपनौ दाउ।
जो मोहिँ कह्यौ सबै गुन उनके, हँसि-हँसि कहति सु भाउ ॥
फेरि-फेरि बूझति राधा सौँ सुनत हँसतिँ सब नारि।
सूरदास बृषभानु-घरनि, जसुमति कौँ गावति गारि ॥७०९॥
॥१३२७॥

राग गौरी

कहत कान्ह जननी समुझाइ ।
जहँ-तहँ डारे रहत खिलौना, राधा जनि लै जाइ-चुराइ ॥
साँझ सवारैं आवन लागी, चितै रहति मुरली-तन आइ ।
इनहीं मैं मेरे प्रान बसत हैं, तेरे भाएँ नैंकु न माइ ॥
राखि छपाइ, कह्यौ करि मेरौ, बलदाऊ कौं जनि पतिआइ ।
सूरदास यह कहति जसोदा, को लैहै मोहिं लगौ बलाइ ।
॥७१०॥१३२८॥

राग आसावरी

मेरे लाल के प्रेम खिलौना, ऐसौ को लै जैहै री ।
नैंकु सुनत जो पैहौं, ताकौं, सो कैसैं ब्रज रैहै री ॥
बिनु देखैं तू कहा करैगी, सो कैसैं प्रगटैहै री ।
अजहुँ उठाइ राखि री मैया, माँगे तैं कह दैहै री ॥
आवतहीं लै जैहैं राधा, पुनि पाछैं पछितैहै री ।
सूरदास तब कहति जसोदा, बहुरि स्याम बिरुझैहै री ॥७११॥
॥१३२९॥

राग नट

सैंतति महरि खिलौना हरि के ।
जानति टेव आपने सुत की, रोवत है पुनि लरिकै ॥
धरि चौगान, बेत, मुरली धरि, अरु भौंरा चकडोरी ।
प्रेम सहित लै-लै धरि राखति, यह सब मेरे कोरी ॥
स्रवननि सुनत अधिक रुचि लागति, हरि की बतियाँ भोरीः ।
सूर स्याम सौं कहति जसोदा, दूध पियहु बलि तोरी ॥७१२॥
॥१३३०॥

राधिका का पुनरागमन *राग बिलावल*

उठी प्रातहीं राधिका, दोहनि कर लाई ।
महरि सुता सैं तब कह्यौ, कहाँ चली अतुराई ॥
खरिक दुहावन जाति हौं, तुम्हरी सेवकाई ।
तुम ठकुराइनि घर रहौ, मोहिं चेरी पाई ॥
रीती देखी दोहनी, कत खीझति धाई ।
काल्हि गई अवसेरि कै, ह्याँ उठे रिसाई ॥

गाइ गईं सब प्याइ कै, प्रातहिं नहिं आई।
ता कारन मैं जाति हौं, अति करति चँड़ाई।
यह कहि जननी सौं चली, ब्रज कौं समुहाई।
सूर स्याम गृह-द्वारहीं, गो करत दुहाई ॥७१३॥१३३१॥

राग बिलावल

सुता महर बृषभानु की, नँद-सदनहिं आई।
गृह-द्वारैं ही अजिर मैं, गो दुहत कन्हाई॥
स्याम चितै मुख-राधिका, मन हरष बढ़ाई।
राधा हरि-मुख देखि कै, तन-सुरति भुलाई॥
महरि देखि कीरति-सुता, तिहिं लियौ बुलाई।
दंपति कौ सुख देखि कै, सूरज बलि जाई ॥७१४॥१३३२॥

राग बिलावल

आजु राधिका भोरहीं जसुमति कैं आई।
महरि मुदित हँसि यौं कह्यौ, मथि भान-दुहाई॥
आयसु लै ठाढ़ी भई, कर नेति सुहाई।
रीतौ माठ बिलौवई, चित जहाँ कन्हाई॥
उनके मन की कह कहौं, ज्यौं दृष्टि लगाई।
लैया नोई बृषभ सौं, गैया बिसराई॥
नैननि मैं जसुमति लखी, दुहुँ की चतुराई।
सूरदास दंपति-दसा, कापै कहि जाई ॥७१५॥१३३३॥

राग बिलावल

महरि कह्यौ री लाड़िली, किन मथन सिखायौ।
कहँ मथनी, कहँ माठ है, चित कहाँ लगायौ॥
अपनैं घर यौंहीं मथै, करि प्रगट दिखायौ।
कै मेरैं घर आइ कै, तैं सब बिसरायौ?
मथन नहीं मोहिं आवई, तुम सौंह दिवायौ।
तिहिं कारन मैं आइ कै, तुव बोल रखायौ॥
नंद-घरनि तब मथि दह्यौ, इहिं भाँति बतायौ।
सूर निरखि मुख स्याम कौं, तहँ ध्यान लगायौ॥
॥७१६॥१३३४॥

राग सूहौ

दुहत स्याम गैया बिसराई।
नोई लै पग बाँधि वृषभ कैं, दोहनि माँगत कुँवर कन्हाई ॥
ग्वाल एक दोहनि लै दीन्ही, दुहौ स्याम अति करौ चँड़ाई।
हँसत परस्पर तारी दै दै, आजु कहाँ तुम रहे भुलाई ॥
कहत सखा, हरि सुनत नहीं सो, प्यारी सैाँ रहे चित अरुझाई।
सूर स्याम राधा-तन चितवत, बड़े चतुर की गई चतुराई ॥
॥७१७॥१३३५॥

राग रामकली

राधा ये ढँग हैं री तेरे।
वैसे हाल मथत दधि कीन्हे, हरि मनु लिखे चितेरे ॥
तेरौ मुख देखत ससि लाजै, और कह्यौ क्यौं बाचै।
नैना तेरे जलज-जीत हैं, खंजन तैं अति नाचैं ॥
चपला तैं चमकति अति प्यारी, कहा करैगी स्यामहिं।
सुनहु सूर ऐसेहिं दिन खोवति, काज नहीं तेरे धामहिं ?
॥७१८॥१३३६॥

राग गूजरी

मेरौ कह्यौ नाहिंन सुनति।
तबहिं तैं इकटक रही ह्वै, कहा धौं मन गुनति ॥
अबहिं तैं तू करति ये ढँग, तोहिं अबहीं होन।
स्याम कौं तू ऐसैं ठगि लियौ, कछु न जानै जौन ॥
सुता है बृषभानु की री, बड़ौ उनकौ नाउँ।
सूर प्रभु नँद-सुवन निरखत, जननि कहति सुभाउ ॥७१९॥
॥१३३७॥

राग सूहौ

प्रगटी प्रीति, न रही छपाई।
परी दृष्टि बृषभानु-सुता की, दोउ अरुझे, निरवारि न जाई। जीति
बछरा छोरि खरिक कौं दीन्हौ, आपु कान्ह तन-सुधि बिसराई ॥
नोवत वृषभ निकसि गैयाँ गईं, हँसत सखा कह दुहत कन्हाई।

चारौं नैन भए इक ठाहर, मनहीं मन दुहुँ रुचि उपजाई।
सूरदास स्वामी रति-नागर, नागरि देखि गई नगराई ॥७२०॥
॥१३३८॥

राग सारंग

चितैबौ छाँड़ि दै री राधा।
हिलि-मिलि खेलि स्यामसुंदर सौं, करति काम कौ बाधा ॥
कै बैठी रहि भवन आपनैं, काहे कौं बनि आवै।
मृग-नैनी हरि कौ मन मोहति, जब तू देखि दुहावै ॥
कबहुँक कर तैं गिरति दोहिनी, कबहुँक बिसरति नोई।
कबहुँक बृषभ दुहत है मोहन, ना जानौं का होई ॥
॥७२१॥१३३९॥

राग धनाश्री

धेनु दुहन दै मेरे स्यामहिं।
जौ आवै तौ सहज रूप सौं, बनि आवति बेकामहिं ॥
सूधैं आइ स्याम सँग खेलै, बोलै, बैठै, धामहिं।
ऐसौ ढंग मोहिं नहिं भावै, लेइ न ताके नामहिं ॥
घर अपनैं तू जानि राधिका, कहति महरि मन तामहि।
सूर आइ तू करति अचगरी, को बकिहै निसि-जामहिं ॥७२२॥
॥१३४०॥

राग जैतश्री

बार बार तू जनि ह्याँ आवै।
मैं कह करौं, सुतहिं नहिं बरजति, घर तैं मोहिं बुलावै ॥
मोसौं कहत तोहिं बिनु देखैं, रहत न मेरौ प्रान।
छोह लगति मोकौं सुनि बानी, महरि तुम्हारी आन ॥
मुँह पावति तबहीं लौं आवति, औरै लावति मोहिं।
सूर समुझि जसुमति उर लाई, हँसति कहति हौं तोहिं ॥
॥७२३॥१३४१॥

राग गौरी

हँसत कहौ मैं तोसौं प्यारी।
मन मैं कछू विलग जनि मानै, मैं तेरी महतारी ॥

बहुतैं दिबस आजु तू आई, राधा मेरैं धाम।
महरि बड़ी मैं सुधरि सुनी है, कछु सिखयौ गृह-काम ?
मैया जब मोहिं टहल कहति कछु, खिझत बबा बृषभान।
सूर महरि सौं कहति राधिका, मानौ अतिहिं अजान ॥७२४॥
॥१३४२॥

राग रामकली

दूध-दोहनी लै री मैया।
दाऊ टेरत सुनि मैं आऊँ तब लौं करि बिधि घैया ॥
मुरली-मुकुट-पितांबर दै मोहिं, लै आई महतारी।
मुकुट धर्‌यौ सिर, कटि पीतांबर, मुरली कर लियौ धारी ॥
राधा-राधा कहि मुरली मैं खरिकहिं लई बुलाइ।
सूरदास प्रभु चतुर-सिरोमनि, ऐसी बुद्धि उपाइ ॥७२५॥
॥१३४३॥

राग रामकली

कुँवरि कह्यौ, मैं जाति महरि, घर।
प्रातहिं आई खरिक दुहावन, कहति दोहनी लै कर ॥
तब खरिकहिं कोउ ग्वाल गए नहिं, तिन कारन ब्रज आई।
जौ देखौं तौ अजिरहिं बैठे, गैया दुहत कन्हाई ॥
कनक-दोहनी तनक दुहुत, मोहिं देखि अधिक रुचि लागि।
तनक राधिका तनक सूर-प्रभु, देखि महरि अनुरागी ॥७२६॥
॥१३४४॥

राग गूजरी

या घर प्यारी आवति रहियौ।
महरि हमारी बात चलावत ? मिलन हमारौ कहियौ ॥
एक दिवस मैं गई जमुन-तट, तहँ उन देखी आइ।
मोकौं देखि बहुत सुख पायौ मिली अंकम लपटाइ ॥
यह सुनि कै चली कुँवरि राधिका, मोकौं भई अबार।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, मोहन नंद-कुमार ॥७२७॥
॥१३४५॥

राग गूजरी

सैन दै प्यारी लई बुलाइ।
खेलन कौं मिस करि कै निकसे खरिकहिँ गए कन्हाइ ॥
जसुमति कौं कहि प्यारी निकसी, घर कौ नाउँ सुनाइ।
कर दोहनी लिए तहँ आई, जहँ हलधर के भाइ ॥
तहाँ मिलीं सब संग-सहेली, कुँवरि कहाँ तू आई ?
प्रातहिँ धेनु दुहावन आई, अहिर तहाँ नहिँ पाई ॥
तबहिँ गई मैं ब्रज उतावली, आई ग्वाल बुलाइ।
सूर स्याम दुहि देन कह्यौ, सुनि राधा गई मुसुकाइ ॥७२८॥
॥१३४६॥

राग धनाश्री

धेनु दुहन जब स्याम बुलाई।
स्रवन सुनत तहँ गई राधिका, मन हरि लियौ कन्हाई ॥
सखी संग की कहतिँ परस्पर, कहँ यह प्रीति लगाई।
यह बृषभानु-पुरा, ये ब्रज मैं, कहाँ दुहावन आई ॥
मुख देखत हरि कौ चक्रित भई, तन की सुधि बिसराई।
सूरदास प्रभु कैं रसबल भई काम करी कठिनाई ॥
॥७२९॥१३४७॥

राग गूजरी

गाउँ बसत एते दिवसनि मैं, आजु कान्ह मैं देखे
जे दिन गए बिना हरि-दरसन ते सब बृथा अलेखे ॥
कहियै जो कछु होइ सखी री, कहिबे के अनुमानैं।
सुंदर स्याम निकाई कौ सुख, नैना ही पै जानैं ॥
तब तैं रूप ठगौरी लागी, जुग समान पल बितवत।
तजि कुल-लाज सूर के प्रभु के मुख-तन फिरि-फिरि चितवत ॥
॥७३०॥१३४८॥

राग सारंग

बलि जाऊँ गैया दुहि दीजै।
बूँद परत रँग ह्वैहै फीकौ, सुरँग चूनरी भीजै ॥

मीठौ दूध गाइ धूमरि कौ, कछु दीजै कछु पीजै।
सूर स्याम-दरसन कैं कारन, अधिक निहोरौ कीजै।
॥७३१॥१३४९॥

राग देवगंधार

मोहनि-कर तैं दोहनि लीन्ही, गो-पद बछरा जोरे।
हाथ धेनु-थन, बदन तिया-तन, छीर छीँटि छल छोरे॥
आनन रही ललित पय छीँटैं, छाजति छबि तृन तोरे।
मनौ निकसे निकलंक कला-निधि, दुग्ध सिंधु मधि बोरे॥
दै घूँघट पट ओट नील, हँसि, कुँवरि मुदित मुख मोरे।
मनहुँ सरद-ससि कौं मिलि दामिनि,घेरि लियौ घन घोरे॥
इहिं बिधि रहसत-बिलसत दंपति, हेत हियैं नहिं थोरे।
सूर उमँगि आनंद सुधा-निधि, मनु बेला बल फोरे॥
॥७३२॥१३५०॥

राग रामकली

हरि सौं धेनु दुहावति प्यारी।
करति मनोरथ पूरन मन, बृषभानु महर की बारी॥
दूध-धार मुख पर छबि लागति, सो उपमा अति भारी।
मानौ चंद कलंकिहिं धोवत, जहँ-तहँ बूँद सुधा री॥
हाव-भाव रस-मगन भए दोउ, छबि निरखति ललिता री।
गो-दोहन-सुख करत सूर-प्रभु, तीनिहुँ भुवन कहा री॥७३३॥
॥१३५१॥

राग सूहौ

तुम पै कौन दुहावै गैया।
लिए रहत हौ कनक-दोहनी, बैठत हौ अधपैया॥
अति रस काम की प्रीति जानि कै, आवत खरिक दुहैया।
इत चितवत, उत धार चलावत, यहै सिखायौ मैया?
गुप्त प्रीति तासौं करि मोहन, जो है तेरी दैया।
सूरदास प्रभु झगरौ सीख्यौ, ज्यौं घर खसम गुसैँया॥७३४॥
॥१३५२॥

राग धनाश्री

करि न्यारी हरि आपुनि गैयाँ।
नाहिँ न बसति लाल कछु तुम्हरैँ, तुमसे सबै ग्वालर इक ठैयाँ ॥
नहिँ आधीन तेरे बाबा के, नहिँ तुम हमरे नाथ-गुसैयाँ।
हम तुम जाति-पाँति के एकै, कहा भयौ अधिकी द्वै गैयाँ ?
जा दिन तैँ सचरे गोपिन मैँ, ताही दिन तैँ करत लँगरैयाँ।
मानी हार सूर के प्रभु तब, बहुरि न करिहौँ नंद दुहैयाँ ॥७३५॥
॥१३५३॥

राग सूहौ

धेनु दुहत अतिहीँ रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी ॥
मोहन-कर तैँ धार चलति, परि मोहनि-मुख अतिहीँ छबि गाढ़ी।
मनु जलधर जलधार बृष्टि-लघु, पुनि पुनि प्रेम चंद पर बाढ़ी ॥
सखी संग की निरखतिँ यह छवि, भईँ ब्याकुल मन्मथ की डाढ़ी।
सूरदास प्रभु के रस-बस सब, भवन-काज तैँ भईँ उचाढ़ी ॥
॥७३६॥१३५४॥

राग बिलावल

दुहि दीन्ही राधा की गाइ।
दोहनि नहीँ देत कर तैँ हरि, हा हा करि परै पाइ ॥
ज्यौँ ज्यौँ प्यारी हा हा बोलति, त्यौँ त्यौँ हँसत कन्हाइ।
बहुरि करौ प्यारी तुम हा हा, दैहौँ नंद-दुहाइ ॥
तब दीन्ही प्यारी-कर दोहनि, हा हा बहुरि कराइ।
सूर स्याम रस हाव-भाव करि, दीन्ही कुँवरि पठाइ ॥७३७॥
॥१३५५॥

राग बिलावल

चलन चहति पग चलै न घर कौँ।
छाँड़त बनत नहीँ कैसे हूँ, मोहन सुंदर बर कौँ ॥
अंतर नैँकु करौँ नहिँ कबहूँ, सकुचति हौँ पुर-नर कौँ।
कछु दिन जैसैँ तैसैँ खोऊँ, दूरि करौँ पुनि डर कौँ ॥

मन मैं यह बिचार करि सुंदरि, चली आपने पुर कौं।
सूरदास प्रभु कह्यौ जाहु घर, घात कर्यौ नख उर कौं ॥७३८॥
॥१३५६॥

राग मलार

मुरि-मुरि चितवति नंद-गली।
डग न परत ब्रजनाथ-साथ बिनु, बिरह-बिथा मैं जाति चली॥
बार-बार मोहन-मुख-कारन, आवति फिरि-फिरि संग अली।
चली पीठि दै दृष्टि फिरावति, अंग-अंग आनंद रली॥
की-कपोत-मीन-पिक-सारँग-केहरि-कदली-छबि बिदली।
सूरदास प्रभु पास दुहावति, धनि-धनि श्री बृषभानु-लली ॥७३९॥
॥१३५७॥

राग बिलावल

सिर दोहनी चली लै प्यारी।
फिरि चितवत हरि हँसे निरखि मुख, मोहन मोहनि डारी॥
ब्याकुल भई, गई सखियनि लौं, ब्रज कौं गए कन्हाई।
और अहिर सब कहाँ तुम्हारे, हरि सौं धेनु दुहाई?
यह सुनि कै चकित भई प्यारी, धरनि परी मुरझाइ॥
सूरदास सब सखियन उर भरि, लीन्ही कुँवरि उठाइ ॥७४०॥
॥१३५८॥

राग रामकली

क्यौं री कुँवरि गिरी मुरझाई?
यह बानी कही सखियनि आगैं, मोकौं कारैं खाई॥
चलीं लिवाइ सुता-बृषभानुहिं, घरहीं तन समुहाई।
डारि दियौ भरी दूध-दुहनियाँ, अबहीं नीकैं आई॥
यह कारौ सुत नंदमहर कौ, सब हम फूँक लगाई।
सूर सखिनि मुख सुनि यह बानी, तब यह बात सुनाई ॥७४१॥
॥१३५९॥

राग सारंग

मोहि लई नैननि की सैन।
श्रवन सुनत सुधि-बुधि सब बिसरी, हौं लुबधी मोहन-मुख-बैन॥

आवत हुते कुमार खरिक तैं तब अनुमान कियौ सखि भैन।
निरखत अंग अधिक रुचि उपजी, नख-सिख सुंदरता कौ ऐन ॥
मृदु मुसुक्यानि हरयौ मन कौ मनि, तब तैं तिल न रहति चित चैन।
सूरस्याम यह बचन सुनायौ, मेरी धेनु कही दुहि दैन ॥७४२॥
॥१३६०॥

राग धनाश्री

सखियनि मिलि राधा घर लाईं।
देखहु महरि सुता अपनी कौं, कहुँ इहिं कारैं खाई ॥
हम आगैं आवति, यह पाछैं धरनि परी भहराई।
सिर तैं गई दोहनी ढरिकै, आपु रही मुरझाई ॥
स्याम–भुअंग डस्यौ हम देखत, ल्यावहु गुनी बुलाई।
रोवति जननि कंठ लपटानी, सूर स्याम गुन राई ॥७४३॥
॥१३६१॥

रागसारंग

प्रात गई नीकैं उठि घर तैं।
मैं बरजी कहँ जाति री प्यारी, तब खीझी रिस-झर तैं ॥
सीतल-अंग स्वेद सौं बूड़ी, सोच परयौ मन डर तैं।
अतिहिं हठीली कह्यौ न मानति, करति आपने बर तैं ॥
औरै दसा भई छिन भीतर, बोले गुनी नगर तैं।
सूर गारुड़ी गुन करि थाके, मंत्र न लागत थर तैं ॥७४४॥
॥१३६२॥

राग नट नारायन

चले सब गारुड़ी पछिताइ।
नैंकुहूँ नहिं मंत्र लागत, समुझि काहु न जाइ ॥
बात बूझत संग सखियनि, कहौ हमहिं बुझाइ।
कहा कहि राधा सुनायौ, तुम सबनि सौं आइ ?
महा बिषधर स्याम अहिबर, देखि सबहीं धाइ।
फूँक-ज्वाला हमहुँ लागी, कुँवरि उर पर खाइ ॥
गिरी धरनी मुरछि तबहीं, लई तुरत उठाइ।
सूर-प्रभु कौं बेगि ल्यावहु, बड़ौ गारुड़ि राइ ॥७४५॥१३६३॥

राग आसावरी

नंद-सुवन गारुड़ी बुलावहु।
कह्यौ हमारौ सुनत न कोऊ, तुरत जाहु, लै आवहु॥
ऐसौ गुनी नहीँ त्रिभुवन कहुँ, हम जानतिँ हैँ नीकैँ।
आइ जाइ तौ तुरत जियावहि नैँकु छुवत उठै जीकै॥
देखौ धौँ यह बात हमारी, एकहि मंत्र जिवावै।
नंद महर कौ सुत सूरज जौ, कैसेहुँ ह्याँ लौँ आवै॥७४६॥
॥१३६४॥

राग आसावरी

डसी री स्याम भुअंगम कारे।
मोहन-मुख-मुसुक्यानि मनहुँ, विष जात मैर सौँ मारे॥
फुरै न मंत्र, जंत्र, गद नाहीँ, चले गुनी गुन डारे।
प्रेम प्रीति बिष हिरदै लाग्यौ, डारत है तनु जारे॥
निर्बिष होत नहीँ कैसैँहूँ, बहुत गुनी पचि हारे।
सूर स्याम गारुड़ी बिना को, जो सिर गाढ़ उतारे?॥७४७॥
॥१३६५॥

राग धनाश्री

वेगि चलौ पिय कुँवर कन्हाई।
जा-कारन तुम यह बन सेयौ, सो तिय मदन-भुअंगम खाई॥
नैन सिथिल, सीतल नासा-पुट, अंग तपति कछु सुधि न रहाई।
सकसकात तन भीजि पसीना, उलटि पलटि तन तोरि जम्हाई॥
अनजानत मूरनि कौँ जित-तित, उठि दौरीँ जिनि जहाँ बताई।
ताहि कछू उपचार न लागत, कर मीडैँ सहचरि पछिताई॥
तुम दरसन इक बार मनोहर, यह औषधि इक सखी लखाई।
जौ सूरज प्रभु ज्यायौ चाहत, तो ताकौ अब देहु दिखाई॥७४८॥
॥१३६६॥

राग नट

सुनत तिहारी बातैँ मोहन च्वै चखे दोऊ नैन।
छुटि गई लोक-लाज आतुर ह्वै, रहि न सकत चित चैन॥

उर काँप्यौ, तन पुलकि पसीज्यौ, बिसरि गए मुख-बैन।
ठाढ़ी ही जैसैं-तैसैं झुकि, परी धरनि तिहिं ऐन॥
कोउ सित, कोऊ कमल, कुंकुमा, कोउ धाई जल लैन।
ताहि कछू उपचार न लागत, डसी कठिन अहि-मैन॥
हौं पठई इक सखी सयानी, अनबोली दै सैन।
सूर स्याम राधिका मिलैं बिनु, कहा लगे दुख दैन॥७४६॥
॥१३६७॥

राग सारंग

तनु बिष रह्यौ है छहरि।
नंद-सुवन गारुड़ी कहत हैं पठवै धौं सु महरि॥
गए अवसान, भीर नहिं भावै, भावै नहीं चहरि।
ल्यावौ गुनी जाइ गोविंद कौं, बाढ़ी अतिहिं लहरि॥
देखी उरहिं बीचहीं खाई, माती भई जहरि॥
सूर स्याम-बिषधर कहुँ खाई, यह कहि चली डहरि॥७५०॥
॥१३६८॥

राग सुघरई

बृषभानु की घरनि जसोमति पुकारयौ।
पठै सुत काज कौं कहति हैं लाज तजि, पाइ परिकै महरि करति आरयौ॥
प्रात खरिकहिं गई, आइ बिह्वल भई, राधिका कुँवरि कहुँ डस्यौ कारौ।
सुनी यह बात, मैं आई अतुरात, ह्याँ, गारुड़ी बड़ौ है सुत तुम्हारौ॥
यह बड़ौ धरम नँद-घरनि तुम पाइहौ, नैंकु काहैं न सुत कौं हँकारौ।
सूर सुनि महरि यह कहि उठी सहजहीं, कहा तुम कहतिं, मेरौ अतिहिं बारौ॥
॥७५१॥१३६९॥

राग सुघरई

कान्हहिं पठै, महरि कौं कहति है पाइनि परि।
आजु कहूँ करैं उहिं, खाई है काम-कुँवरि॥

सब दिन आवै सुजाइ, जहाँ-तहाँ फेरि फिरि।
अबहीँ खरिक गई आइ रही है जिय बिसरि॥
निसि के उनीँदे नैन, तैसे रहे ढरि ढरि।
कीधौँ कहुँ प्यारी कौँ, लागी टटकी नजरि॥
तेरौ सुत गारुड़ी, सुन्यौ, है बात री महरि।
सूरदास देखैँ प्रभु, जैहै री गरद झरि॥
॥७५२॥१३७०॥

राग आसाबरी

जंत्र-मंत्र कह जानै मेरौ ?
यह तुम जाइ गुनिनि कौँ बूझौ, इहाँ करति कत झेरौ॥
आठ बरस कौ कुँवर कन्हैया, कहा कहति तुम ताहि ?
किनि बहकाइ दई है तुमकौँ, ताहि पकरि लै जाहि॥
मैँ तौ चकित भई हौँ सुनि कै, अति अचरज यह बात।
सूर स्याम गारुड़ी कहाँ कौ, कहँ आई बितताात॥
॥७५३॥१३७१॥

राग टोड़ी

महरि, गारुड़ी कुँवर कन्हाई।
एक बिटिनियाँ कारैँ खाई, ताकौँ स्याम तुरतहीँ ज्याई॥
बोलि लेहु अपने ढोटा कौँ, तुम कहि कै देउ नैँकु पठाई।
कुँवरि राधिका प्रात खरिक गईं तहाँ कहूँ-धौँ कारैँ खाई॥
यह सुनि महरि मनहिँ मुसुक्यानी, अबहिँ रही मेरैँ गृह आई।
सूर स्याम राधहिँ कछु कारन, जसुमति समुझि रही अरगाई॥
॥७५४॥१३७२॥

राग आसावरी

तब हरि कौँ टेरति नँदरानी।
भली भई सुत भयौ गारुड़ी, आजु सुनी यह बानी॥
जननी-टेर सुनत हरि आए, कहा कहति री मैया ?।
कीरति महरि बुलावन आई, जाहु न कुँवर कन्हैया॥
कहूँ राधिका कारैँ खायौ जाहु न आवौ झारि।
जंत्र-मंत्र कछु जानत हौ तुम, सूर स्याम बनवारि॥
॥७५५॥१३७३॥

राग गूजरी

मैया एक मंत्र मोहिँ आवै।
बिषहर खाइ मरै जो कोऊ, मोसौं मरन न पावै॥
एक दिबस राधा-सँग आई, खरिक बिटिनियाँ और।
तहाँ ताहि बिषहर नैं खाई, गिरी धरनि उहिँ ठौर॥
यह बानी वृषभानु-घरनि कही तब जसुमति पतियाई।
सूर स्याम मेरे बड़ौ गारुड़ी, राधा ज्यावहु जाई॥
॥७५६॥१३७४॥

राग सुघरई

जसुमति कह्यौ सुत, जाहु कन्हाई। कुँवरि जिवायैं अतिहिँ भलाई॥
आजुहिँ मो गृह खेलन आई। जात कहूँ कारैं तिहिँ खाई॥
कीरति महरि लिवावन आई। जाहु न स्याम, करहु अतुराई॥
सूर स्याम कौ चली लिवाई। गई वृषभानु-पुरहिँ समुहाई॥
॥७५७॥१३७५॥

राग देवगंधार

हरि गारुड़ी तहाँ तब आए।
यह बानी बृषभानुसुता सुनि, मन-मन हरष बढ़ाए॥
धन्य-धन्य आपुन कौं कीन्हौ अतिहिँ गई मुरझाइ।
तनु पुलकित रोमांच प्रगट भए आनँद-अस्रु बहाइ॥
बिह्वल देखि जननि भई ब्याकुल अँग बिष गयौ समाइ।
सूर स्याम-प्यारी दोउ जानत अंतरगत कौ भाइ॥
॥७५८॥१३७६॥

राग रामकली

रोवति महरि फिरति बिततानी।
बार-बार लै कंठ लगावति, अतिहिँ सिथिल भई पानी॥
नंद-सुवन कैं पाइ परी लै, दौरि महरि तब आइ।
ब्याकुल भई लाड़िली मेरी, मोहन देहु जिवाइ॥
कछु पढ़ि-पढ़िकर, अंग परस करि, बिष अपनौ लियौ झारि।
सूरदास-प्रभु बड़े गारुड़ी, सिर पर गाड़ डारि॥
॥७५९॥१३७७॥

राग रामकली

लोचन दए कुँवरि उघारि।
कुँवर देख्यौ नंद कौ तब सकुची अंग सम्हारि॥
बात बूझति जननि सौं री कहा यह आज।
मरत तैं तू बची प्यारी करति है कह लाज॥
तब कहति तोहिं कारैं खाई कछु न रहि सुधि गात।
सूर प्रभु तोहिं ज्याइ लीन्ही कही कुँवरि सौं मात॥
॥७६०॥१३७८॥

राग सारंग

बड़ौ मंत्र कियौ कुँवर कन्हाई।
बार-बार लै कंठ लगायौ, मुख चूम्यौ दियौ घरहिं पठाई॥
धन्य कोषि वह महरि जसोमति, जहाँ अवतर्यौ यह सुत आई।
ऐसौ चरित तुरतहीं कीन्हैं, कुँवरि हमारी मरी जिवाई॥
मनहीं मन अनुमान कियौ यह, विधिना जोरी भली बनाई।
सूरदास-प्रभु बड़े गारुड़ी, व्रज-घर-घर यह घैरु चलाई॥
॥७६१॥१३७९॥

राग सुघरई

भले कान्ह हो विषहिं उतार्यौ। नाम गारुड़ी प्रगट्यो तिहारौ।
जननि कहति मेरौ सुत बारौ। युवति कहतिं हम तन धौं निहारौ।
अब को निकरै साँझ सबारौ। जान्यौ व्रजहिं बसत ऐसौ कारौ।
यह निज मंत्र न हिय तैं बिसारौ। बहुरि करौ कहुँ करै पसारौ।
सूरदास-प्रभु सबहिन प्यारौ। ताहि डसन जाकौ हियौ उजारौ॥
॥७६२॥१३८०॥

राग रामकली

नीकैं बिषहि उतार्यौ स्याम।
बड़े गारुड़ी अब हम जाने, संगहिं रहत सु काम॥
ऐसौ मंत्र कहाँ तुम पायौ, बहुत कियौ यह काम!
मरी आनि राधिका जिवाई, टेरत एकहि नाम॥
हम समझीं यह बात तुम्हारी, जाहु आपनैं धाम।
सूर स्याम मनमोहन नागर, हँसि बस कीन्हीं काम॥७६३॥
॥१३८१॥

राग रामकली

हँसि बस कीन्ही घोष-कुमारि।
बिवस भईं तन की सुधि बिसरी, मन हरि लियौ मुरारि ॥
गए स्याम ब्रज-धाम आपनैं, जुवति मदन-सर मारि।
लहर उतारि राधिका-सिर तैं, दई तरुनिनि पै डारि ॥
करतिँ विचार सुंदरी सब मिलि, अब सेवहु त्रिपुरारि।
माँगहु यहै देहु पति हमकौं, सूर-सरन बनवारि ॥७६४॥
॥१३८२॥

चीर-हरन-लीला *राग जैतश्री*

भवन रवन सबही बिसरायौ।
नंद-नँदन जब तैं मन हरि लियौ, बिरथा जनम गँवायौ ॥
जप, तप, ब्रत, संजम, साधन तैं, द्रवित होत पाषान।
जैसैं मिलै स्याम सुंदर बर, सोइ कीजै, नहिँ आन ॥
यहै मंत्र दृढ़ कियौ सबनि मिलि, बातैं होइ सुहोइ।
बृथा जनम जग मैं जिनि खोवहु, ह्याँ अपनौ नहिँ कोइ ॥
तब प्रतीत सबहिनि कौं आई, कीन्हौ दृढ़ बिस्वास।
सूर स्यामसुंदर पति पावैं, यहै हमारी आस ॥७६५॥
॥१३८३॥

राग आसावरी

गौरी-पति पूजतिँ ब्रजनारि।
नेम धर्म सौं रहति क्रिया-जुत, बहुत करतिँ मनुहारि ॥
यहै कहतिँ पति देहु उमापति गिरिधर नंद-कुमार।
सरन राखि लीजै सिव संकर तनहिँ त्रसावत मार ॥
कमल-पुहुप मालूर-पत्र-फल नाना सुमन सुवास।
महादेव पूजति मन बच करि सूर स्याम की आस ॥७६६॥
॥१३८४॥

राग रामकली

सिव सौं बिनय करतिँ कुमारि।
जोरि कर, मुख करतिँ अस्तुति, बड़े प्रभु त्रिपुरारि ॥

सीत भीत न करतिँ सुंदरि, कृस भईँ सुकुमारि।
छहौं रितु तप करतिँ नीकैँ, गेह-नेह बिसारि॥
ध्यान धरि, कर जोरि, लोचन मूँदि, इक-इक जाम।
बिनय अंचल छोरि रबि सौँ, करति हैँ सब बाम॥
हमहिँ होहु दयाल दिन-मनि, तुम बिदित संसार।
काम अति तनु दहत दीजै, सर हरि भरतार॥७६७॥
॥१३८५॥

राग नटनारायन

रबि सौँ बिनय करतिँ कर जोरे।
प्रभु अंतरजामी, यह जानी, हम कारन जल खोरे॥
प्रगट भए प्रभु जलही भीतर, देखि सबनि कौ प्रेम।
मीजत पीठि सबनि के पाछैँ, पूरन कीन्हौ नेम॥
फिरि देखैँ तो कुँवर कन्हाई, मीजत रुचि सौँ पीठि।
सूर निरखि सकुचीँ ब्रज-जुवतीँ, परी स्याम-तन दीठि॥७६८॥
॥१३८६॥

राग देवगगंधार

अति तप देखि कृपा हरि कीन्हौ।
तन की जरनि दूरि भई सबकी, मिलि तरुनिनि सुख दीन्हौ॥
नवल किसोर ध्यान जुवतिनि मन, वहै प्रगट दरसायौ।
सकुचिं गईँ अँग-वसन सम्हारतिँ, भयौ सबनि मनभायौ॥
मन-मन कहति भयौ तप पूरन, आनँद उर न समाई।
सूरदास-प्रभु लाज न आवति, जुवतिनि माँझ कन्हाई॥
॥७६९॥१३८७॥

राग सारंग

हँसत स्याम ब्रज-घर कौँ भागे।
लोगति कहतिँ सुनावतिँ, मोहन करन लँगरई लागे॥
हम असनान करतिँ जल-भीतर, मीँडत पीठि कन्हाई।
कहा भयौ जो नंद महर-सुत हमसैाँ, करत ढिठाई॥
लरिकाई तवहीँ लौँ नीकी चारि वरष कै पाँच।
सूर जाइ कहिहैँ जसुमति सैाँ, स्याम करत ये नाच॥७७०॥
॥१३८८॥

राग सारंग

प्रेम बिबस सब ग्वालि भईं।
उरहन देन चली जसुमति कौं, मनमोहन के रूप रईं॥
पुलक अंग अँगिया उर दरकी, हार तोरि कर आपु लईं।
अंचल चीरि, घात उर नख करि, यह मिस करि नँद-सदन-गईं।
जसुमति माइ कहा सुत सिखयौ, हमकौ जैसे हाल किए।
चोली फारि हार गहि तोरे, देखौ उर नख-घात दिए॥
अंचल चीरि अभूषन तोरे, घेरि धरत उठि भागि गए।
सूर महरि मन कहति स्याम धौं, ऐसे लायक कबहिं भए॥७७१॥
॥१३८६॥

राग गौरी

महरि स्याम कौं बरजति काहैं न।
जैसे हाल किए हरि हमकौं, भए कहूँ जग आहैं न॥
और बात इक सुनौ स्याम की, अतिहिं भए हैं ढीठ।
बसन बिना असनान करति हम, आपुन मीँड़त पीठ॥
आपु कहति मेरौ सुत बारौ, हियौ उघारि दिखाऊँ।
सुनतहु लाज कहत नहिं आवै तुमकौं कहा लजाऊँ॥
यह बानी जुवतिनि मुख सुनि कै, हँसि बोली नँदरानी।
सूर स्याम तुम लायक नाहीँ, बात तुम्हारी जानी॥७७२॥
॥१३६०॥

राग गौरी

बात कहौ जो लहै, बहै री।
बिना भीति तुम चित्र लिखित हौ, सो कैसैं निबहै री॥
तुम चाहति हौ गगन-तरैयाँ, माँगैं कैसैं पावहु।
आवत हीँ मैं तुम लखि लीन्ही, कहि मोहिं कहा सुनावहु॥
चोरी रही, छिनारौ अब भयौ, जान्यौ ज्ञान तुम्हारौ।
औरै गोप-सुतनि नहिं देखौ, सूर स्याम है बारौ॥७७३॥
॥१३६१॥

राग मलार

ग्वालिनि हैँ घरहीँ की बाढ़ी।
निसि अरु दिन प्रति देखति हौं, अपनैं हीँ आँगन ठाढ़ी॥

कबहिँ गुपाल कंचुकी फारी, कब भए ऐसे जोग।
अबहिं नैँकु खेलन सीखे हैँ, यह जानत सब लोग ॥
नितहीँ झगरत हैँ मनमोहन, देख प्रेम-रस-चाखी।
सूरदास-प्रभु अटक न मानत, ग्वाल सबै हैँ साखी ॥॥७७४॥
॥१३६२॥

राग गौरी

इहिँ अंतर हरि आइ गए।
मोर-मुकुट पीतांबर काछे, कोमल अंग भए ॥
जननि बुलाइ बाहँ गहि लीन्हौ, देखहु री मदमाती।
इनहीँ कौँ अपराध लगावति कहा फिरति इतराती।
सुनिहैँ लोग मष्ट अबहु करि, तुमहिँ कहाँ की लाज।
सूर स्याम मेरौ माखन-भोगी, तम आवतिँ बेकाज ॥७७५॥
॥१३६३॥

राग केदारौ

अबहीँ देखे नवल किसोर।
घर आवत हीँ तनक भए हैं, ऐसे तन के चोर ॥
कछु दिन करि दधि-माखन-चोरी अब चोरत मन मोर।
बिबस भई, तन-सुधि न सम्हारति, कहति बात भई भोर ॥
यह बानी कहतहीँ लजानी समुझ भई जिय-ओर।
सूर स्याम-मुख निरखि चली धर, आनँद लोचन लोर ॥७७६॥
॥१३६४॥

राग नटनारायन

ब्रज घर गईँ गोप-कुमारि।
नैकहूँ कहुँ मन न लागत, काम धाम बिसारि ॥
मात-पितु कौ डर न मानतिँ, सुनतिँ नाहिँ न गारि।
हठ करतिँ, बिरुझतिँ, तब जिय जननि-जानतिँ बारि ॥
प्रातहीँ उठि चलीँ सब मिलि, जमुन-तट सुकुमारि।
सूर-प्रभु ब्रत देखि इनकौ, नहिँन परत सम्हारि ॥७७७॥
॥१३६५॥

राग गौरी

जमुना-तट देखे नँट-नंदन।
मोर-मुकुट मकराकृत-कुंडल, पीत-बसन तन चंदन॥
लोचन तृप्त भए दरसन तैँ उर की तपति बुझानी।
प्रेम-मगन तब भई सुंदरी, उर गदगद, मुख-बानी॥
कमल-नयन तट पर हैं ठाढ़े, सकुचहिँ मिलि ब्रज-नारी।
सूरदास-प्रभु अंतरजामी, व्रत-पूरन पगधारी॥७७८॥
॥१३९६॥

राग नट

बनत नहीँ जमुना कौ ऐबौ।
सुंदर स्याम घाट पर ठाढ़े, कहौ कौन बिधि जैबौ॥
कैसैँ बसन ऊतारि उतारि धरैँ हम, कैसैँ जलहिँ समैबौ।
नंद-नँदन हमकौँ देखैँगे, कैसैँ करि जु अन्हैबौ॥
चोली, चीर, हार ल भाजत, सो कैसैँ करि पैबौ।
अंकम भरि-भरि लेत सूर प्रभु काल्हि न इहि पथ ऐबौ॥
॥७७९॥१३९७॥

राग रामकली

कैसैँ बनै जमुना-न्हान।
नंद कौ सुत तीर बैठौ, बड़ौ चतुर सुजान॥
हार तोरै, चीर फारै, नैन चलै चुराइ।
काल्हि धोखैँ कान्ह मेरी, पीठि मीँजी आइ॥
कहति जुवती बात, सुनि सब, थकित भईँ ब्रज-नारि।
सूर-प्रभु कौ ध्यान धरि मन, रबिहिँ बाहँ पसारि॥७८०॥
॥१३९८॥

राग गूजरी

अति तप करति घोष-कुमारि।
कृष्न पति हम तुरत पावैँ, काम-आतुर नारि॥
नैन मूँदतिँ दरस-कारन, स्रवन सब्द बिचारि।
भुजा जोरतिँ अंक भरि हरि, ध्यान उर अँकवारि॥
सरद ग्रीषम डरति नाहीँ, करतिँ तप तनु गारि।
सूर-प्रभु सर्बज्ञ स्वामी, देखि रीझे भारि॥७८१॥१३९९॥

राग धनाश्री

ब्रज-बनिता रवि कौँ कर जोरैँ।
सीत-भीति नहिँ करतिं छहौँ रितु, त्रिविध काल जल खोरैँ॥
गौरी-पति पूजतिँ, तप साधतिँ, करत रहतिँ नित नेम।
भोग-रहित निसि जागि चतुर्दसि, जसुमति-सुत कैँ प्रेम॥
हमकौँ देहु कृष्न पति ईश्वर, और नहीँ मन आन।
मनसा बाचा कर्म हमारैँ, सूर स्याम कौ ध्यान॥
॥७८२॥१४००॥

राग रामकली

नीकैँ तप कियौ तनु गारि।
आपु देखत कदम पर चढ़ि, मानि लियौ मुरारि॥
वर्ष भर व्रत-नेम-संजम, स्रम कियौ मोहिँ काज।
कैसे हूँ मोहिँ भजै कोऊ, मोहिँ बिरद की लाज॥
धन्य व्रत इन कियौ पूरन, सीत तपति निवारि।
काम-आतुर भजीँ मोकौँ, नव तरुनि ब्रज-नारि॥
कृपा-नाथ कृपाल भए तब, जानि जन की पीर।
सूर-प्रभु अनुमान कीन्हौ, हरौँ इनके चीर॥
॥७८३॥१४०१॥

राग बिलावल

बसन हरे सब कदम चढ़ाए।
सोरह सहस गोप-कन्यनि के, अंग-अभूषत सु-हित चुराए॥
नीलांबर, पाटंबर, सारी, सेत पीत चुनरी, अरुनाए।
अति बिस्तार नीप तरु तामैँ, लै-लै जहाँ-तहाँ लटकाए॥
मनि-आभरन डार डारनि प्रति, देखत छबि मनहीँ अँटकाए।
सूर, स्याम जु तिनि व्रत पूरन, कौ फल डारनि कदम फराए॥
॥७८४॥१४०२॥

राग सूही

आपु कदम चढ़ि देखत स्याम।
बसन अभूषन सब हरि लीन्हे, बिना बसन जल-भीतर बाम॥

मूँदत नैन ध्यान धरि हरि कौ, अंतरजामी लीन्ही जान।
बार-बार सविता सौँ माँगति, हम पावैँ पति स्याम सुजान ॥
जल तैँ निकसि आइ तट देख्यौ, भूषन चीर तहाँ कछु नाहिँ।
इत-उत देखि चकित भईँ सुंदरि, सकुचि गईँ फिरि जल ही माहिँ ॥
नाभि प्रजंत नीर मैँ ठाढी, थर-थर अँग काँपतिँ सुकुमारि।
को लै गयौ बसन आभूषन, सूर स्याम उर प्रीति बिचारि ॥
॥७८५॥१४०३॥

राग रामकली

आवहु निकसि घोष-कुमारि।
कदम पर तैँ दरस दीन्हौ, गिरिधरन बनवारि ॥
नैन भरि ब्रत फलहिँ देखौ, फरयौ है द्रुम डार।
ब्रत तुम्हारौ भयौ पूरन, कह्यौ नंद-कुमार ॥
सलिल तैँ सब निकसि आवहु, बृथा सहतिँ तुषार।
देत हौँ किन लेहु मोसौँ, चीर, चोली हार ॥
बाहँ टेकि गिनै करौ मोहिँ, कहत बारंबार।
सूर-प्रभु के आइ आगैँ, करहु सब सिंगार ॥७८६॥
॥१४०४॥

राग रामकली

ग्वालिनि अपने चीरहिँ लै री।
जल तैँ निकसि-निकसि तट, दोउ कर जोरि सीस दै-दै री ॥
कत हौ सीत सहति ब्रज-सुंदरि, ब्रत पूरन सब भै री।
मेरे कहैँ आइ पहिरौ पट, कृस तन हेम जरे री ॥
हौँ अंतरजामी जानत सब, अति यह पैज करै री।
करिहौँ पूरन काम तुम्हारौ, रास सरद-निसि ठै री ॥
संतत सूर स्वभाव हमारौ, कत भै-काम डरै री।
कौनेहुँ भाव भजै कोउ हमकौँ, तिन तन-ताप हरै री ॥७८७॥
॥१४०५॥

राग रामकली

हमारे अंबर देहु मुरारी।
लै सब चीर कदम चढ़ि बैठे, हम जल-माँझ उघारी ॥

तट पर बिना बसन क्यौँ आवैँ, लाज लगति है भारी।
चोली हार तुमहिँ कौँ दीन्हौँ, चीर, हमहिँ द्यौ डारी॥
तुम यह बात अचंभौ भाषत, नाँगी आवहु नारी।
सूर स्याम कछु छोह करौ जू, सीत गई तनु मारी॥७८८॥
॥१४०६॥

राग आसावरी

हा हा करतिँ घोष-कुमारि।
सीत तैँ तन कँपत थर-थर, बसन देहु मुरारि॥
जौ पुरुष तिय-अंग देखै, कहत दूषन भारि।
नैँकु नहिँ तुम छोह आनत, गईँ हिम सब मारि॥
मनहिँ मन अतिहीँ भयौ सुख, देखिकै गिरिधारि।
सूर-प्रभु अतिहीँ निठुर भए, नंद-सुत बनवारि॥७८९॥
॥१४०७॥

राग बिलावल

लाज ओट यह दूरि करौ।
जोइ मैँ कहौँ करौ तुम सोई, सकुच बापुरिहिँ कहा करौ॥
जल तैँ तीर आइ कर जोरहु, मैँ देखौँ तुम बिनय करौ।
पूरन ब्रत अब भयौ तुम्हारौ, गुरुजन-संका दूरि करौ॥
अब अंतर मोसौँ जनि राखहु, बार-बार हठ बृथा करौ।
सूर स्याम कहैँ चीर देत हौँ, मो आगैँ सिँगार करौ॥७९०॥
॥१४०८॥

राग गूजरी

जल तैँ निकसि तीर सब आवहु।
जैसेँ सबिता सौँ कर जोरे, तैसेहिँ जोरि दिखावहु॥
नव बाला हम, तरुन कान्ह तुम, कैसैँ अंग दिखावैँ।
जलही मैँ सब बाहँ टेकि कै देखहु स्याम रिझावैँ॥
ऐसैँ नहिँ रीझौँ मैँ तुम सौँ, तटहीँ बाहँ उठावहु।
सूरदास-प्रभु कहत सबनि सौँ बस्त्र हार तब पावहु॥७९१॥
॥१४०९॥

राग बिलावल

हमारे देहु मनोहर चीर।
काँपतिँ, सीत तनहिँ अति व्यापत, हिम सम जमुना-नीर ॥
मानहिँगी उपकार रावरौ, करौ कृपा बलबीर।
अतिहीँ दुखित प्रान, बपु परसत प्रबल प्रचंड समीर ॥
हम दासी, तुम नाथ हमारे, चितवतिँ जल मैँ ठाढ़ी।
मानहु बिकच कुमुदिनी ससि सौँ, अधिक प्रीति उर बाढ़ी ॥
जौ तुम हमैँ नाथ कै जान्यौ, यह हम माँगैँ देहु।
जल तैँ निकसि आइ बाहिर ह्वै, बसन आपने लेहु ॥
कर धरि सीस गईँ हरि-सन्मुख, मन मैँ करि आनंद।
ह्वै कृपाल सूरज-प्रभु अंबर दीन्हे परमानंद ॥७६२॥
॥१४१०॥

राग जैतश्री

तरुनीँ निकसि निकसि तट आईँ।
पुनि-पुनि कहत लेहु पट-भूषन, जुवती स्याम बुलाईँ ॥
जल तैँ निकसि भईँ सब ठाढ़ी, कर अँग उर पर दीन्हे।
बसन देहु आभूषन राखहु, हा हा पुनि-पुनि कीन्हे ॥
ऐसैँ कहा बतावति हौ मोहिँ, बाहँ उठाइ निहारौ।
कर सौँ कहा अंग उर मूँदौ, मेरे कहैँ उघारौ ॥
सूर स्याम सोइ-सोइ हम करिहैँ, जोइ-जोइ तुम सब कैहौ।
सैहैँ दाउँ कबहुँ हम तुमसौँ, बहुरि कहाँ तुम जैहौ ॥
॥७६३॥१४११॥

राग रामकली

ललन तुम ऐसै लाड़ लड़ाए।
लै करि चीर कदम पर बैठे, किन ऐसैँ ढँग लाए ॥
हा हा करतिँ, कंचुकी माँगतिँ, अंबर दिए मन भाए।
कीन्ही प्रीति प्रगट मिलिबे कौँ, सबके सकुच गँवाए ॥
दुख अरु हाँसी सुनौ सखी री, कान्ह अचानक आए।
सूर स्याम कौ मिलन सखी अब, कैसैँ दुरत दुराए ॥७६४॥
॥१४१२॥

राग नट

सोरह सहस घोष-कुमारि ।
देखि सबकौँ स्याम रीझे, रहीँ भुजा पसारि ।
बोलि लीन्ही कदम कैँ तर, इहाँ आवहु नारि ।
प्रगट भए तहँ सबनि कौँ हरि, काम-दंद निवारि ॥
बसन भूषन सबनि पहिरे, हरष भईँ सुकुमारि ।
सूर-प्रभु गुन भले हैँ सब, ऐसे तुम बनवारि ॥
॥७६५॥१४१३॥

राग नट

दृढ़ ब्रत कियौ मेरैँ हेत ।
धन्य धनि कह्यौ नंद-नंदन, जाहु सबै निकेत ॥
करौँ पूरन काम तुम्हरौ, सरद-रास रमाइ ।
हरष भईँ यह सुनत गोपी, रहीँ सीस नवाइ ॥
सबनि कौँ अँग परसि, कीन्हौ सुफल ब्रत व्यवहार ।
सूर-प्रभु सुख दियौ मिलि कै, ब्रज चल्यौ सुकुमार ॥
॥७६६॥१४१४॥

राग सूहौ

ब्रत पूरन कियौ नंद-कुमार । जुवतिनि के मेटे जंजार ॥
जप तप करि तनु अब जनि गारौ । तुम घरनी मैँ कंत तुम्हारौ ॥
अंतर सोच दूरि करि डारौ । मेरौ कह्यौ सत्य उर धारौ ॥
सरद-रास तुम आस पुराऊँ । अंकम भरि सबकौँ उर लाऊँ ॥
यह सुनि सब मन हरष बढ़ायौ । मन-मन कह्यौ कृष्न पति पायौ ॥
जाहु सबै घर घोष-कुमारी । सरद-रास दैहैँ सुख भारी ॥
सूर स्याम प्रगटे गिरिधारी । आनँद सहित गईँ घर नारी ॥
॥७६७॥१४१५॥

राग आसावरी

सिव संकर हमको फल दीन्हौ ।
पुहुप, पान, नाना फल, मेवा, षट-रस अर्पन कीन्हौ ॥
पाइ परीँ जुवतीँ सब यह कहि, धन्य-धन्य त्रिपुरारी ।
तुरतहिँ फल पूरन हम पायौ, नंदसुवन गिरिधारी ॥

विनय करतिँ सबिता, तुम सरि को, पय अंजलि, कर जोरी।
सूर स्याम पति तुम तैँ पायौ, यह कहि घरहिँ बहोरी ॥
॥७६८॥१४१६॥

दूसरी चीर-हरन-लीला *राग सूहौ*

नंद-नँदन बर गिरिवरधारी। देखत रीझी घोष-कुमारी ॥
मोर मुकुट पीतांबर काछे। आवत देखे गाइनि पाछे ॥
कोटि इंदु-छबि बदन बिराजै। निरखि अंग प्रति मन्मथ लाजै ॥
स्रुति कुंडल छबि रबि नहिँ तूलै। दसन-दमक-दुति दामिनि भूलै ॥
नैन-कमल मृग-सावक मोहै। सुक-नासा पटतर कौँ को है ॥
अधर-बिंब-फल पटतर नाहीँ। बिद्रुम अरु बंधूक लजाहीँ ॥
देखत रीझि रहीँ ब्रजनारी। देह गेह की सुरति बिसारी ॥
यह मन मैँ अनुमान कियौ तब। जप-तप-संजम-नेम करैँ अब ॥
बार-बार सबिताहिँ मनावैँ। नंद-नँदन पति देहु सुनावैँ ॥
नेम-धर्म-तप-साधन कीजै। सिव सौँ माँगि कृष्न पति लीजै ॥
वर्ष दिवस कौ नेम लेइ सब। रुद्रहिँ सेबहु मन-बच-क्रम अब ॥
दृढ़ बिस्वास बरत कौँ कीन्हौ। गौरी-पति-पूजन मन दीन्हौ ॥
षट-दस-सहस जुरीँ सुकुमारी। ब्रत साधतिँ नीकैँ तन गारी ॥
प्रात उठैँ जमुना-जल खोरैँ। सीत उष्न कहुँ अंग न मोरैँ ॥
पति कैँ हेत नेम तप साधैँ। संकर सौँ यह कहि अवराधैँ ॥
कमल-पत्र मालूर चढ़ावैँ। नैन मूँदि यह ध्यान लगावैँ ॥
हमकौँ पति दीजै गिरिधारी। बड़े देव तुम हौ त्रिपुरारी ॥
और कछू नहिँ तुमसौँ माँगैँ। कृष्न-हेत यह कहि पालागैँ ॥
ऐसैहिँ करत बहुत दिन बीते। प्रभु अंतरजामी मन चीते ॥
एक दिवस आपुन आए तहँ। नव तरुनी अस्नान करतिँ जहँ ॥
बसन धरे जल-तीर उतारी। आपुन जल पैठीँ सुकुमारी ॥
कृष्न-हेत अस्नान करैँ जहँ। सबके पाछैँ आपुन ह्वै तहँ ॥
मीँजत पीठि प्रीति अति बाढ़ी। चकृत भईँ जुवतीँ सब ठाढ़ी ॥
देखे नँद-नंदन गिरिधारी। ब्रत-फल प्रगट भए बनवारी ॥
सकुचि अंग जब पैठि लुकावैँ। बार-बार हरि अंकम लावैँ ॥
लाज नहीँ आवति है तुमकौँ। देखत बसन बिना सब हमकौँ ॥
हँसत चले तब नंद-कुमार। लोगनि सुनवतिँ करतिँ पुकार ॥

हार चीर लै चले पराई। हाँक दई कहि नंद-दुहाई।
डारि बसन भूषन तब भागे। स्याम करन अब ढीठौ लागे॥
भागै कहाँ बचौगे मोहन। पाछैँ आइ गईँ तुव गोहन॥
तन की सुधि-सम्हार कछु नाहीँ। बसन अभूषन पहिरति जाहीँ॥
चीर फटे कंचुकि-बँद छूटे। लेत न बनत हार-लर टूटे॥
प्रेम-सहित मुख खीझति जाहीँ। झूठहिँ बार-बार पछिताहीँ॥
गईँ सबै तिय नंद महर-घर। जसुमति पास गईँ सब दर-दर॥
देखौ महरि स्याम के ये गुन। ऐसे हाल करे सबके उन॥
चोली, चीर, हार बिखराए। आपुन भागि इतहिँ कौँ आए॥
जमुना-तट कोउ जान न पावै। संग सखा लिए पाछैँ धावै॥
तुम सुत कौँ बरजहु नँदरानी। गिरिधर भली करत नहिँ बानी॥
लाज लगति इक बात सुनावत। अंचल छोरि हियौ दिखरावत॥
यह देखत हँसि उठीँ जसोदा। कछु रिस, कछु मन मैँ करि मोदा॥
आइ गए तिहिँ समय कन्हाई। बाँह गही लै तुरत दिखाई॥
तनक-तनक कर तनक अँगुरियाँ। तुम जोबन भरीँ नवल बहुरियाँ॥
जाहु घरहिँ तुमकौँ मैँ चीन्ही। तुम्हरी जाति जानि मैँ लीन्ही॥
तुम चाहतिँ सो इहाँ न पैहौ। और बहुत ब्रज-भीतर लैहौ॥
बार बार कहि कहा सुनावति। इन बातनि कछु लाज न आवति॥
देखहु री ये भाव कन्हाई। कहाँ गई तब की तरुनाई॥
महरि तुमहिँ कछु दूषन नाहीँ। हमकौँ देखि-देखि मुसुकाहीँ॥
इनके गुन कैसैँ कोउ जानै। औरै करत और धरि बानै॥
देन उरहनौ तुमकौँ आईँ। नीकी पहिरावनि हम पाईँ॥
चलीँ सबै जुवती घर-घर कौँ। मन मैँ ध्यान करति हैँ हरि कौँ॥
बरष दिवस तप पूरन कीन्हे। नंद-सुवन कौँ तन-मन दीन्हे॥
प्रात होत जमुना फिरि आईँ। प्रथम रहे चढ़ि कदम कन्हाई॥
तीर आइ जुवती भईँ ठाढ़ी। उर-अंतर हरि सौँ रति बाढ़ी॥
कह्यौ चलौ जमुना-जल खोरैँ। अंग अंग आभूषन छोरैँ॥
चोली छोरैँ हार उतारैँ। कर सौँ सिथिल केस निरवारैँ॥
इत-उत चितवनि लोग निहारैँ। कह्यौ सबनि अब चीर उतारैँ॥
बसन अभूषन धरे उतारी। जल-भीतर सब गईँ कुमारी॥
माघ-सीत कौ भीत न मानैँ। षट ऋतु के गुन सम करि जानैँ॥
बार-बार बूड़ैँ जल माहीँ। नैँ कहुँ जल कौँ डरपति नाहीँ॥

प्रातहिँ तैँ इक जाम नहाहीँ। नेम धर्म ह्याँ मैँ दिन जाहीँ ।।
इतनौ कष्ट करैँ सुकुमारी। पति कैँ हेत गुबर्धन-धारी ।।
अति तप करतिँ देखि गोपाला। मन मैँ कह्यौ धन्य ब्रज-बाला ।।
हरि अंतर्जामी सब जानी। छिन-छिन की बहु सेवा मानी ।।
व्रत-फल इनहिँ प्रगट दिखरावौँ। बसन हरौँ लै कदम चढ़ावौँ ।।
तन साधन तप कियौ कुमारी। भज्यौ मोहिँ कामातुर नारी ।।
सोरह सहस गोप-सुकुमारी। सबके बसन हरे बनवारी ।।
हरत बसन कछु बार न लागी। जल-भीतर जुवती सब नाँगी ।।
भूषन बसन सबै हरि ल्याए। कदम-डार जहँ-तहँ लटकाए ।।
ऐसौ नीप-बृच्छ बिस्तारा। चीर हार धौँ कितक हजारा ।।
सबै समाने तरुवर डारा। यह लीला रची नंद-कुमारा ।।
हार चीर मान्यौ तरु फूल्यौ। निरखि स्याम आपुन अनुकूल्यौ ।।
नेम सहित जुवती सब न्हाईँ। मन-मन सबिता बिनय सुनाई ।।
मूँदे नैन ध्यान उर धारे। नंद-नँदन पति होहिँ हमारे।
रबि करि विनय सिवहिँ मन लीन्हौ। हृदय माँझ अवलोकन कीन्हैँ ।।
त्रिपुर-सदन त्रिपुरारि त्रिलोचन। गौरीपति पशुपति अघ-मोचन ।।
गरल-असन, अहि-भूषन-धारी। जटा धरन, सिर गंगा प्यारी ।।
करति बिनय यह माँगतिँ तुम सौँ। करहु कृपा हँसि कै आपुन सौँ ।।
हम पावैँ सुत-जसुमति कौ पति। यहै देहु करि कृपा देव, रति ।।
नित्य नेम करि चलीँ कुमारी। एक जाम तन कौँ हिम गारी ।।
ब्रज-ललना कह्यौ नीर जुड़ाईँ। अति आतुर ह्वै तट कौँ धाईँ ।।
जल तैँ निकसि तरुनि जब आईँ। चीर अभूषन तहाँ न पाईँ ।।
सकुचि गईँ जल-भीतर धाई। देखि हँसत तरु चढ़े कन्हाई ।।
बार-बार जुवती पछिताहीँ। सबके बसन अभूषन नाहीँ ।।
ऐसौ कौन सबनि लै भाग्यौ। लेतहु ताहि बिलंब न लाग्यौ ।।
माघ-तुषार जुवति अकुलाहीँ। ह्याँ कहुँ नंद-सुवन तौ नाहीँ ।।
हम जानी यह बात बनाई। अंबर हरि लै गए कन्हाई ।।
हौ कहुँ स्याम बिनय सुनि लीजै। अंबर देहु कृपा करि जीजै ।।
थर-थर अंग कँपतिँ सुकुमारी। देखि स्याम नहिँ सके सम्हारी ।।
इहिँ अंतर प्रभु बचन सुनायौ। व्रत कौ फल दरसन सब पायौ ।।
कहा कहतिँ मौसौँ ब्रज-बाला। माघ-सीत कत होतिँ बिहाला ।।
अंबर जहाँ बताऊँ तुमकौँ। तौ तुम कहा देहुगी हमकौँ ।।

तन मन अर्पन तुमकौँ कीन्हौ। जौ कछु हुतौ सु तुमकौँ दीन्हौ॥
और कहा लैहौ जू हमसौँ। मह माँगतिँ हैँ अंबर तुमसौँ॥
यह सुनि हँसे दयाल मुरारी। मेरौ कह्यौ करौ सुकुमारी॥
जल तैँ निकसि सबै तट आवहु। तबहिँ भलैँ अंबर तुम पावहु॥
भुजा पसारि दीन ह्वै भाषहु। दोउ कर जोरि-जोरि तुम राखहु॥
सुनहु स्याम इक बात हमारी। नगन कहूँ देखियँ न नारी॥
यह मति आपु कहाँ धौँ पाई। आजु सुनी यह बात नवाई॥
ऐसी साध मनहिँ मैँ राखहु। यह बानी मुख तैँ जनि भाषहु॥
हम तरुनी तुम तरुन कन्हाई। बिना बसन क्यौँ देहिँ दिखाई॥
पुरुष जाति तुम यह कह जानौ। हा हा यह मुख मैँ जनि आनौ॥
तौ तुम बैठि रहौ जलहीँ सब। बसन अभूषन नहिँ चाहतिँ अब॥
तबहिँ देहुँ जल बाहर आवहु। बाँह उठाइ अंग दिखरावहु॥
कत हौ सोत सहति सुकुमारी। सकुचि देहु जलही मैँ डारी॥
फरयौ कदम ब्रत फरनि तुम्हारैँ। अब कह लज्जा करतिँ हमारैँ॥
लेहु न आइ आपुने ब्रत कौँ। मैँ जानत या ब्रत के घत कौँ॥
ताकैँ ब्रत कीन्हौ तनु गारी। ब्रत ल्यायौ धरि मैँ गिरिधारी॥
तुम मन-कामनि पूरन करिहैँ। रास-रंग रचि-रचि सुख भरिहैँ॥
यह सुनि कै मन हर्ष बढ़ायौ। ब्रत कौ पूरन फल हम पायौ॥
छाँड़हु तुम यह टेक कन्हाई। नीर माहिँ हम गईँ जड़ाई॥
आभूषन सब आपुहिँ लेहू। चीर कृपा करि हमकौँ देहू॥
हा हा लागैँ पाइ तिहारैँ। पाप होत है जाड़नि मारैँ॥
आजुहिँ तैँ हम दासी तुम्हारी। कैसैँ दिखावैँ अंग उघारी॥
अंग दिखाएहिँ अंबर पैहौ। नातरु ऐसेहिँ दिवस गँवेहौ॥
मेरे कहैँ निकसि सब आवहु। थोरैँ हिँ हमकौ भलौ मनावहु॥
मुहाँचही तरुनी मुसुकानी। यह आपुन थोरी करि जानी॥
जोइ-जोइ कहौ सु तुमकौँ सोहै। आज तुम्हारी पटतर को है॥
हमरी पति सब तुम्हरैँ हाथा। तुमहिँ कहौ ऐसी ब्रजनाथा॥
तप तनु गारि कियौ जिहिँ कारन। सो फल लग्यौ नीप-तरु-डारन॥
आवहु निकसि लेहु पट भूषन। यह लागै हमकौँ सब दूषन॥
अब अंतर कत राखतिँ हमसौँ। बारंबार कहत हौँ तुमसौँ॥
गोपिनि मिलि यह बात बिचारी। अब तौ टेक परे बनवारी॥
चलहु न जाइ चीर अब लेहीँ। लाज छाँड़ि उनकौँ सुख देहीँ॥

जल तैं निकसि तीर सब आईं। बार-बार हरि हरषि बुलाईं॥
बैठि गईं तरुनी सकुचानी। देहु स्याम हम अतिहिं लजानी॥
छाँड़ि देहु यह बात सयानी। वैसेहिं करौ कही जो बानी॥
कर कुच अंग ढाँकि भईं ठाढ़ी। बदन नवाइ लाज अति बाढ़ी॥
देहु स्याम अंबर अब डारी। हा हा दासी सबै तुम्हारी॥
ऐसैं नहीं बसन तुम पावहु। बाहँ उठाइ अंग दिखरावहु॥
कह्यौ मानि जुवतिनि कर जोरे। पुनि-पुनि जुवती करतिं निहोरे॥
धन्य-धन्य कहि श्री गोपाला। निहचै ब्रत कीन्हौ ब्रज-बाला॥
आवहु निकट लेहु सब अंबर। चोली हार सुरँग पाटंबर॥
निकट गईं सुनि कै यह बानी। तरुनी नगन अंग अकुलानी॥
भूषन बसन सबनि कौं दीन्हौ। तिनकैं हेत कृपा हरि कीन्हौ॥
चीर अभूषन पहिरे नारी। कह्यौ तबहिं ऐसे बनवारी॥
तब हँसि बोले कृष्न मुरारी। मैं पति तुम मेरी सब प्यारी॥
तुमहिं हेत यह बपु ब्रज धार्‌यौ। तुम कारन बैकुंठ बिसार्‌यौ॥
अब ब्रत करि तुम तनुहिं न गारौ। मैं तुमतैं कहुँ होत न न्यारौ॥
मोहि कारन तुम अति तप साध्यौ। तन मन करि मोकौं आराध्यौ॥
जाहु सदन अब सब ब्रज-बाला। अंग परसि मेटे जंजाला॥
जुवतिनि बिदा दई गिरिधारी। गईं घरनि सब घोष-कुमारी॥
वस्त्र-हरन-लीला प्रभु कीन्हौ। ब्रज-तरुनिनि ब्रत कौ फल दीन्हौ॥
यह लीला स्रवननि सुनि भावै। औरनि सिखवै आपुन गावै॥
सूर स्याम जन के सुखदाई। दृढ़ताई मैं प्रगट कन्हाई॥
॥७६६॥१४१७॥

यज्ञ-पत्नी-लीला *राग बिलावल*

इक दिन हरि हलधर-सँग ग्वारन। गए बन-भीतर गोधन चारन॥
सकल ग्वाल मिलि हरि पैं आए। भूख लगी कहि बचन सुनाए॥
हरि कह्यौ जज्ञ करत तहँ बाम्हन। जाहु उनहिं ढिग भोजन माँगन॥
ग्वाल तुरत तिनकैं ढिग आए। हरि हलधर के बचन सुनाए॥
भोजन देहु भए वैं भूखे। यह सुनि कै वै ह्वै गए रूखे॥
जज्ञ-हेत हम करी रसोई। ग्वालनि पहिलैं देहिं न सोई॥
ग्वाल सकल हरि पैं चलि आए। हरि सौं तिनके बचन सुनाए॥
हरि हलधर सौं हँसि कही बानी। अबिगत की गति उन नहिं जानी॥

तब ग्वालनि सौं कह्यौ बुझाई। तियनि पास तुम माँगहु जाई॥
उनकैं हिय दृढ़ भक्ति हमारी। मान लेहिं वै बात तुम्हारी॥
ग्वाल-बाल तीयनि पैं आए। हाथ जोरि करि शीश नवाए॥
हरि भोजन माँग्यौ है तुमसौं। आज्ञा देहु कहैं सो उनसौं॥
तिन धनि भाग आपनौ मान्यौ। जीवन जन्म सफल करि जान्यौ॥
भोजन बहु प्रकार तिनि दीन्हौ। काहूँ अपनैं सिर धरि लीन्हौ॥
ग्वालिनि संग तुरत वै धाईं। अपने मन मैं हर्ष बढ़ाई॥
काहूँ पुरुष निवार्यौ आइ। कहाँ जाति है री अतुराइ॥
तिन तौ कह्यौ न कीन्हौ कानी। तन तजि चली बिरह अकुलानी॥
धन्य-धन्य वे परम सभागी। मिलीं जाइ सबहिनि तैं आगी॥
तब हरि तिनसौं कहि समुझाई। सुनौ तिया तुम काहैं आई॥
नारी पतिव्रत मानै जोई। चारि पदारथ पावै सोई॥
तियनि कह्यौ जग झूठ सगाई। हम तौ हैं तुम्हरी सरनाई॥
प्रभु कह्यौ पतिव्रत करौ सदाई। तुमकौं यहै धर्म सुखदाई॥
प्रभु-आज्ञा तैं घर कौं आईं। पुरुष करत तिनि की बड़ियाईं॥
धनि-धनि तुम हरि-दरसन पायौ। हम पढ़ि-गुनि कै सब बिसरायौ॥
ब्रह्मादिक खोजत नित जिनकैं। साच्छात देख्यौ तुम तिनकौं॥
वे हैं सकल जगत के स्वामी। और सबनि के अन्तरजामी॥
अब हम चरन सरन हैं आए। तब हरि उनके दोष छमाए॥
ग्वालनि मिलि हरि भोजन कीन्हौ। भाव तियनि कौ मन धरि लीन्हौ॥
भक्ति भाव सौं जो हरि ध्यावै। सो नर नारि अभय पद पावै॥
यह लीला सुनि गावै जोई। हरि की भक्ति सूर तिहिं होई॥
॥८००॥
॥१४१८॥

यज्ञ-पत्नी बचन *राग बिलावल*

जान देहु गोपाल बुलाई।
उर की प्रीति प्रान कैं लालच, नाहिंन परति दुराई॥
राखौ रोकि बाँधि दृढ़ बंधन, कैसैं हूँ करि त्रास।
यह हठ अब कैसैं छूटत हैं, जब लगि है उर स्वास॥
साँच कहौं मन बचन कर्म करि, अपने मन की बात।
तन तजि जाइ मिलैंगी हरि सौं, कत रोकत तहँ जात॥

अवसर गएँ बहुरि सुनि सूरज, कह कीजैगी देह।
बिछुरत हंस बिरह कैं सूलनि, झूठे सबै सनेह ॥
॥८०१॥१४१९॥

राग सारंग

देखन दै पिय मदन गुपालहिँ।
हा हा हो पिय पाइ लगति हौँ, जाइ सुनत दै बेनु-रसालहिँ ॥
लकुट लिए काहैँ तन त्रासत, पति बिनु-मति बिरहिनि बेहालहिँ।
अति आतुर आरूढ़-अधिक-छबि, ताहि कहा उर है जम कालहिँ ॥
मन तौ पिय पहिलै हीँ पहुँच्यौ, प्रान तहीँ चाहत चित चालहिँ।
कहि धौँ तू अपने स्वारथ कौँ, रोकि कहा कहिहै खल खालहिँ ॥
लेहि सम्हारि सु खेह देह की, को राखै इतने जंजालहिँ।
सूर सकल सखियनि तैँ आगैँ, अबहीँ मूढ़ मिलति नँद-लालहिँ ॥
॥८०२॥१४२०॥

राग सारंग

देखन दै बृंदाबन-चंदहिँ।
हा हा कंत मानि बिनीत यह, कुल-अभिमान छाँड़ि मति मंदहिँ ॥
कहि क्यौँ भूलि धरत जिय औरै, जानत नहिँ पावन नँद-नंदहिँ।
दरसन पाइ आइहै अबहीँ, करन सकल तेरे दुख-दंदहिँ ॥
सठ समुझाएहुँ समुझत नाहीँ, खोलत नहीँ कपट के फंदहिँ।
देह छाँड़ि प्राननि भई प्रापत, सूर सु प्रभु-आनँद-निधि-कंदहिँ ॥
॥८०३॥१४२१॥

राग कल्यान

रति बाढ़ी गोपाल सौँ।
हा हा हरि लौँ जान देहु प्रभु, पद परसति हौँ भाल सौँ ॥
सँग की सखी स्याम-सन्मुख भइ, मोहि परीँ पसु-पाल सौँ ॥
पर-बस देह, नेह अंतरगत, क्यौँ मिलौँ नैन-बिसाल सौँ ॥
सठ हठ करि तूही पछितैहै, यहै भेँट तोहिँ बाल सौँ।
सूरदास गोपी तनु तजिकै, तन्मय भई नँद-लाल सौँ ॥
॥८०४॥१४२२॥

राग सारंग

पिय जनि रोकहि जान दै।
हौं हरि-बिरह-जरी जाँचति हौं, इती बात मोहिं दान दै॥
बैन सुनौं, बिहरत बन देखौं, इहिं सुख हृदय सिरान दै।
पाछैं जो भावै सोइ कीजो, साँच कहति हौं आन दै॥
जौ कछु कपट किए जाँचति हौं, सुनहु कथा यह कान दै।
मन क्रम बचन सूर अपनौ प्रन, राखौंगी तन-प्रान दै॥८०५॥
॥१४२३॥

राग बिलावल

हरि देखन की साध भरी।
जान न दई स्याम सुंदर पै सुनि साँईं तैं पोच करी॥
कुल-अभिमान हटकि हठि राखी, तैं जिय मैं कछु और धरी।
जज्ञ-पुरुष तजि करत जज्ञ-बिधि, तातैं कहि कह चाढ़ सरी?॥
कहँ लगि समुझाऊँ सूरज सुनि, जाति मिलन की औधि टरी।
लेहु सम्हारि देह पिय अपनी, बिनु प्राननि सब सौंज धरी॥
॥८०६॥१४२४॥

राग बिलावल

हरिहिं मिलत काहे कौं घेरी।
दरस देखि आवौं श्रीपति कौ, जान देहु हौं होति हौं चेरी॥
पालागौं छाँड़हु अब अंचल, बार-बार बिनती करौं तेरी।
तिरछौ करम भयौ पूरब कौ, प्रीतम भयौ पाइ की बेरी॥
यह लै देह मारु सिर अपनैं, जासौं कहत कंत तुम मेरी।
सूरदास सो गई अगमनै, सब सखियनि सौं हरि-मुख हेरी॥
॥८०७॥१४२५॥

राग सारंग

जान दै स्यामसुँदर लौं आजु।
सुनि हो कंत लोक-लज्जा तैं, बिगरत है सब काजु॥
राखौ रोकि पाइ बंधन कै, अरु रोकौ जल नाजु।
हौं तौ तुरत मिलौंगी हरि कौं, तू घर बैठौ गाजु॥

चितवति हुती झरोखैं ठाढ़ी, किये मिलन कौ साजु।
सूरदास तनु त्यागि छिनकु मैं, तज्यौ कंत कौ राजु ।।८०८।।
।।१४२६।।

राग कान्हरौ

आजु दीपति दिव्य दीपमालिका।
मनहु कोटि रबि चंद्र कोटि छबि मिटि जो गई निशि कालिका ।।
गोकुल सकल विचित्र मणि मंडित सोभित झाक झब झालिका।
गज-मोतिन के चौक पुराय बिच बिच लाल प्रबालिका ।।
बर श्रृंगार बिरचि राधा जू चली सकल ब्रज बालिका।
झलमल दीप समीप सौंज भरि लेकर कंचन थालिका ।।
करि प्रगट मदन मोहन पिय थकित बिलोकि बिसालिका।
गावत हँसत गवाय हँसावत पटकि पटकि करतालिका ।।
नँद-द्वार आनंद बढ़्यो अति देखियत परम रसालिका।
सूरदास कुसुमनि सुर बरषत कर संपुट करि मालिका ।।
।।८०६।।१४२७।।

राग कान्हरौ

सुरभी कान्ह जगाय खरिकहि बल मोहन बैठे हैं हठ री।
पिस्ता दाख बदाम छुहारा खुरमा खाझा गूँझा मटरी ।।
घर-घर तैं नर-नारि मुदित मन गोपी ग्वाल जुरे बहु ठट री।
टेरि टेरि जब देति सबनि कौं, लै लै नाम बुलाइ निकट री ।।
देति असीस सकल ब्रजभागिनि यसुमति देति हरषि बहु पटरी।
सूर रसिक गिरिधर चिरजीवौ नंद महर कौ नागर नट री ।।
।।८१०।।१४२८।।

गोबर्धन-पूजा तथा गोबर्धन-धारण *राग बिलावल*

नंद महर सौं कहति जसोदा, सुरपति की पूजा बिसराई।
जाकी कृपा बसत ब्रज-भीतर, जाकी दीन्ही भई बड़ाई ।।
जाकी कृपा दूध-दधि-पूरन, सहस मथानी मथति सदाई।
जाकी कृपा अन्न-धन मेरैं, जाकी कृपा नवौ निधि आई ।।
जाकी कृपा पुत्र भए मेरैं, कुसल रहौ बलराम कन्हाई।
सूर नंद सौं कहति जसोदा, दिन आए अब करहु चँड़ाई ।।८११।।
।।१४२६।।

राग गौरी

येई हैं कुलदेव हमारे।
काहूँ नहीं और मैं जानति, ब्रज गोधन रखवारे॥
दीपमालिका के दिन पाँचक गोपिनि कहौ बुलाई।
बलि सामग्री करैं चँड़ाई, अबहीं कहौ सुनाई॥
लई बुलाइ महरि महरानी, सुनतहिं आईं धाई।
नंद-घरनि तब कहति सखिनि सौं, कत हौ रही भुलाई॥
भूलीं कहा कहौ सो हमसौं, कहति कहा डरपाई।
सूरदास सुरपति की पूजा, तुम सबहिनि बिसराई॥८१२॥
॥१४३०॥

राग गौरी

चौंकि परीं सब गोकुल-नारी।
भली कही सबही सुधि भूलीं, तुमहिं करी सुधि भारी॥
कह्यौ महरि सौं करौ चँड़ाई, हम अपनैं घर जाति।
तुमहूँ करौ भोग सामग्री, कुल-देवता अमाति॥
जसुमति कह्यौ अकेली हौं मैं तुमहुँ संग मोहिं दीजौ।
सूर हँसतिं ब्रज-नारि महरि सौं, ऐहैं साँच पतीजौ॥८१३॥
॥१४३१॥

राग कल्याग

कहि मोहिं भली कीन्ही महरि।
राज-काजहिं रहौं डोलत, लोभ ही की लहरि॥
छमा कीजौ मोहिं, हो प्रभु तुमहिं गयौ भुलाइ।
ग्वाल सौं कहि तुरत पठयौ, ल्याउ महर बुलाइ॥
नंद कह्यौ उपनंद ब्रज के, अरु महर वृषभान।
अबहिं जाइ बुलाइ आनो, करत दिन अनुमान॥
आए गए दिन अबहिं नेरैं, करत मन यह ज्ञान।
सूर नंद बिनै करत, कर जोरि सुरपति-ध्यान॥८१४॥
॥१४३२॥

राग बिलावल

नंद महर उपनंद बुलाए।
बहु आदर करि बैठक दीन्हौं, महर महर मिलि सीस नवाए॥

मनहीं मन सब सोच करत हैं, कंस नृपति कछु माँगि पठाए।
राज-अंस-धन जो कछु उनकौ, बिन माँगैं हम सो दै आए ॥
बूझत महर बात नँद महरहिं, कौन काज हम सबनि बुलाए।
सूर नंद यह कही गोपनि सौं, सुरपति-पूजा के दिन आए ॥८१५॥
॥१४३३॥

राग बिलावल

हँसत गोप कहि नंद महर सौं, भली भई यह बात सुनाई।
हमहिं सबनि तुम बोलि पठाए, अपनैं जिय सब गए डराई ॥
काहे कौं डरपै हम बोलत, हसत कहत बातैं नँदराई ?।
बड़ौ सँदेह कियो हम तुमकौं, ब्रजबासी हम तुम सब भाई ॥
करौ बिचार इंद्र-पूजा कौ, जो चाहौ सो लेहु मँगाई।
बरष दिवस कौ दिवस हमारौ, घर-घर नेवज करौ चँड़ाई ॥
अन्नकूट-बिधि करत लोग सब, नेम सहित करि-करि पकवान।
महरि-बिनै कर जोरि इंद्र सौं, सूर अमर करि दीजै कान्ह ॥
॥८१६॥१४३४॥

राग बिलावल

गावत मंगलचार महर-घर।
जसुमति भोजन करति चँड़ाई, नेवज करि-करि धरति स्याम डर ॥
देखे रहौ न छुवै कन्हैया, कह जानै वह देब-काज पर।
और नहीं कुलदेव हमारैं, कै गोधन, कै ये सुरपति वर ॥
करमि बिनय कर जोरि जसोदा, कान्हहिं कृपा करौ करुनाकर।
और देव तुम सब कोउ नाहीं सूर करौ सेवा चरननि-तर ॥
॥८१७॥१४३५॥

राग सूहौ

बाजति नंद-अवास बधाई।
बैठे खेलत द्वार आपनैं, सात बरस के कुँवर कन्हाई ॥
बैठे नंद सहित बृषभानुहिं, और गोप बैठे सब आई।
थापैं देत घरनि के द्वारैं, गावतिं मंगल नारि वधाई ॥
पूजा करत इंद्र की जानी, आए स्याम तहाँ अतुराई।
बार बार हरि बूझत नंदहिं, कौन देब की करत पुजाई ॥

इंद्र बड़े कुल-देव हमारे, उनतैं सब यह होति बड़ाई।
सूर स्याम तुम्हरे हित कारन, यह पूजा हम करत सदाई॥
॥८१८॥१४३६॥

राग आसावरी

नंद कह्यौ घर जाहु कन्हाई।
ऐसे मैं तुम जाहु कहूँ जनि, अहो महरि सुत लेहु बुलाई॥
सोइ रहौ मेरी पलिका पर, कहति महरि हरि सैाँ समुझाई।
बरष दिवस कौ महा महोच्छव, को आवै धौं कौन सुभाई॥
और महर-ढिग स्याम बैठि कै, कीन्हौ एक बिचार बनाई।
सुपनैं आजु मिल्यौ मोकौं, इक बड़ौ पुरुष अवतार जनाई॥
कहन लग्यौ मो सैाँ ये बातैं, पूजत हौ तुम काहि मनाई।
गिरि गोवर्धन देवनि कौ मनि, सेवहु ताकौं भोग चढ़ाई॥
भोजन करै सबनि के आगैं, कहत स्याम यह मन उपजाई।
सूरदास प्रभु गोपनि आगैं, यह लीला कहि प्रगट सुनाई॥
॥८१९॥१४३७॥

राग धनाश्री

सुनौ ग्वाल यह कहत कन्हाई।
सुरपति की पूजा कौं मेटत, गोवर्धन की करत बड़ाई॥
फैलि गई यह बात घरनि घर, हरि कह जानै देव-पुजाई।
हलधर कहत सुनहु ब्रजबासौं, यह महिमा तुम काहु न पाई॥
कोउ-कोउ कहत करौ अब ऐसेहिं, कोउ यह कहत कहै को भाई।
सूरदास कोउ सुनि सुख पावत, कोउ बरजत सुरपतिहिं डराई॥
॥८२०॥१४३८॥

राग धनाश्री

मेरौ कह्यौ सत्य करि जानौ।
जौ चाहौ ब्रज की कुसलाई, तौ गोवर्धन मानौ॥
दूध दही तुम कितनौ लैहौ, गोसुत बढ़ैं अनेक।
कहा पूजि सुरपति सैाँ पायौ, छाँड़ि देहु यह टेक॥
मुँह माँगे फल जौ तुम पावहु, तौ तुम मानहु मोहिं।
सूरदास प्रभु कहत ग्वाल सैाँ, सत्य बचन करि दोहि॥८२१॥
॥१४३९॥

राग धनाश्री

छाँड़ि देहु सुरपति की पूजा।
कान्ह कह्यौ गिरि गोवर्धन तैं और देव नहिं दूजा।
गोपनि सत्य मानि यह लीन्ही, बड़ौ देव गिरिराज।
मोहिं छाँड़ि ये परबत पूजत, गरब कियौ सुरराज॥
पर्बत सहित धोइ ब्रज डारैं, देउँ समुद्र बहाइ।
मेरी बलि औरहिं लै अरपत, इनकी करौं सजाइ॥
राखौं नहीं इन्हैं भूतल पर, गोकुल देउँ बुड़ाइ।
सूरदास-प्रभु जाकौ रच्छक, संगहिं संग रहाइ॥८२२॥
॥१४४०॥

राग बिलावल

गोकुल कौ कुल-देवता, श्री गिरिधर लाल।
कमल नयन घन-साँवरौ बपु-बाहु-बिसाल॥
हलधर ठाढ़े कहत हैं, हरि के ये ख्याल।
करता हरता आपुहीं, आपुहिं प्रतिपाल॥
बेगि करौ मेरे कहैं, पकवान रसाल।
वह मघवा बलि लेत है, नित करि-करि गाल॥
गिरि गोवर्धन पूजियै, जीवन गोपाल।
जाके दीन्हैं बाढ़हीं गैया, गन-जाल॥
सब मिलि भोजन करत हैं, जहँ-तहँ पसु-पाल।
सूरदास डरपत रहैं, जातैं जम काल॥८२३॥१४४१॥

राग बिलावल

हमारी बात सुनौ ब्रजराज।
सुरपति कौ बलि-भाग न दीजै पूजौ यह गिरिराज॥
बरष मेघ गाइ सुख पैहैं ह्वैहै ब्रज सुख साज।
सूरदास-प्रभु नंद-कुँवर कहै वेही कीजै काज॥८२४॥
॥१४४२॥

राग सारंग

गोबर्धन पूजहु जाइ।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, व्यंजन बहुत बनाइ॥

इहिँ पर्वत तृन ललित मनोहर, सदा चरैं सुखगाइ।
कान्ह कहै सोइ कीजियै भैया, मघवा जाइ रिसाइ॥
भरि भरि सकट चले गिरि सन्मुख, अपनैं अपनैं चाइ।
सूरदास प्रभु आपुन भोगी, धरि स्वरूप गिरि राइ॥८२५॥
॥१४४३॥

राग बिलावल

ब्रज-घर-घर अति होत कुलाहल।
जहँ-तहँ ग्वाल फिरत उमँगे सब, अति आनंद उमाहल॥
मिलत परस्पर अंकम दै-दै, सकटनि भोजन साजत।
दधि लवनी मधु माट धरत लै, राम स्याम सँग राजत॥
मंदिर तैं लै धरत अजिर पर, षटरस की ज्यौनार।
डालनि भरि अरु कलस नए भरि, जोरत हैं परकार॥
सहस सकट मिष्टान्न अन्न बहु, नंद महर घरही के।
सूर चले सब लै घर-घर तैं, संग सुवन नँद जी के॥८२६॥
॥१४४४॥

राग नट

अति आनँद ब्रजवासी लोग।
भाँति-भाँति पकवान सकट भरि लै-लै चले छहूँ-रस-भोग॥
तीनि लोक कौ ठाकुर संगहिँ तासौँ कहत सखा हम-जोग।
आवत जात डगर नहिँ पावत, गोबर्धन-पूजा-संजोग॥
कोउ पहुँचे कोउ रँमत मग मैँ कोउ घर तैं निकसे, कोउ नाहिँ।
कोउ पहुँचाइ सकट घर आवत, कोउ घर तैं भोजन लै जाहिँ॥
मारग मैँ कोउ निर्तत आवत, कोउ गावत अपने रस माहिँ।
सूर स्याम कौँ जसुमति टेरति, बहुत भीर है हरि न भुलाहिँ॥
॥८२७॥१४४५॥

राग कान्हरौ

सकट साजि सब ग्वाल चले मिलि गिरि-पूजा कैं काज।
घर-घर तैं मिष्टान्न चले बहु भाँति-भाँति के बाज॥
अति आनंद भरे मिलि गावत, उमड़े फिरत अहीर।
पैँड़ौ नहिँ पावत तहँ कोऊ, ब्रजवासिनि की भीर॥

एक चले आवत ब्रज-बन कौँ, इक ब्रज तैँ बन-काज ।
सूरदास तहँ स्याम सबनि कौँ, देखियत है सिरताज ॥
॥८२८॥१४४६॥

राग नट नारायन

चली घर घरनि तैँ ब्रजनारि ।
मनौ इंद्र-बधूनि पंगति, लखति सोभा भारि ॥
पहिरि सारी सुरँग, पँचरँग, षष्ट,दस सिंगारि ।
इहै इच्छा सबहि कैँ मन स्याम-रूप निहारि ॥
सहित चंद्रावली ललिता राधिका करि त्यारि ।
चली पूजा करन गिरि की, सूर सँग नर-नारि ॥८२६॥
॥१४४७॥

राग नट नारायन

बहुत जुरे ब्रजबासी लोग ।
सुरपति-पूजा मेटि गोबर्धन-पूजा कैँ संजोग ॥
जोजन बीस एक अरु अगरौ, डेरा इहिँ अनुमान ।
ब्रजबासी नर-नारि अंत नहिँ, मानौ सिंधु-समान ॥
इक आवत ब्रज तैँ इतही कौँ, इक इततैँ ब्रज जात ।
नंद लिए तब ग्वाल सूर-प्रभु, आइ गए तहँ प्रात ॥८३०॥
॥१४४८॥

राम आसावरी

नंद करत गिरि की पूजा-बिधि ।
भोजन लै सब धरे छहूँ रस, कान्ह संग आठौ सिधि ॥
लै-लै आवत ग्वाल घरनि तैँ, भोजन बहुत प्रकार ।
ब्यंजन देखि बहुत सुख पावत, तुरत करौ ज्यौनार ।
जो हरि कहत करत सोइ-सोइ बिधि, पूजा की बहु भाँति ॥
माखन दधि पय तक्र धरत लै, जोरि जोरि सब पाँति ।
को बरनै नाना बिधि ब्यंजन, जे वनए नँद-नारि ।
सूर स्याम की लीला अदभुत, कह बरनै मुख चारि ॥
॥८३१॥१४४६॥

राग नट नारायन

बिप्र बुलाइ लिए नँदराइ।
प्रथमारंभ जज्ञ कौ कीन्ही, उठे वेद-धुनि गाइ॥
गोबर्धन सिर तिलक चढ़ायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ।
अन्नकूट ऐसौ रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ॥
भाँति-भाँति व्यंजन परसाए कापै बरन्यौ जाइ।
सूर स्याम सौँ कहत ग्वाल गिरि, जेवहिँ कहौ बुझाइ॥
॥८३२॥१४५०॥

राग बिलावल

इंद्र सोच करि मनहिँ आपनैं चक्रित बुद्धि बिचारत।
कहा करत, इनकौं मैं देखौं, कौन बिलँब पुनि मारत॥
अब ये करैं आपनैं मन सुख, मोकौं बनै सन्हारैं।
तब लौं रहौं, पूजि निबरैं ये, बचिहैं बैर हमारैं?॥
इतनौ सुख इनके कर रैहै, दुख है बहुत अगाध।
सूरदास सुरपति की बानी, मनहीं मन की साध॥
॥८३३॥१४५१॥

राग गौरी

चढ़ि विमान सुर-गन नभ देखत।
लीला करत स्याम नूतन यह, फिरि फिरि गिरि तन पेखत॥
थकित भए सब जहँ तहँ मुनि-जन, ठौर-ठौर नर-नारि।
चितै रहे सब स्याम-बदन-तन, गति-मति सुरति बिसारि॥
पूजा मेटि इंद्र की पूजत, गोबर्धन-गिरिराज।
सूरदास सुरपति गर्बित भयौ, मैं देवनि सिर-ताज॥
॥८३४॥१४५२॥

राग केदारौ

कहत कान्ह नँद बाबा आवहु।
भोजन परसि धरे सब आगैं, प्रेम-सहित गिरिराज मनावहु॥
और नंद उपनंद बुलाए, कह्यौ सबनि सौं भोग लगावहु।
सुपने मैं देख्यौ इहिँ मूरति, यहै रूप धरि ध्यान धियावहु॥

इक मन, इक चित अरपित करिकै, प्रगट देव-दरसन तुम पावहु।
सूर स्याम कहि प्रगट सबनि सौं, अपनैं कर लै क्यौं न जिँवावहु।
॥८३५॥१४५३॥

राग केदारौ

बिनती करत सकल अहीर।
कलस भरि-भरि ग्वाल लै-लै सिखर ढारत छीर॥
चल्यौ बहि चहुँ पास तैं पय, सुरसरी जल ढारि।
बसन-भूषन लै चढ़ाए, भीर अति नर-नारि॥
मूँदि लोचन भोग अरप्यौ, प्रेम सौं रचि थार।
सबनि देखी प्रगट मूरति, सहस भुजा पसार॥
रुचि सहित गिरि सबनि आगैं, करनि लै-लै खाइ।
नंद-सुत महिमा अगोचर, सूर क्यौं कहि जाइ॥
॥८३६॥१४५४॥

राग नट

गिरिवर स्याम की अनुहारि।
करत भोजन अधिक रुचि यह, सहस भुजा पसारि॥
नंद कौ कर गहे ठाढ़े यहै, गिरि कौ रूप।
सखी ललिता राधिका सौं कहति देखि स्वरूप॥
यहै कुंडल, यहै माला, यहै पीत पिछौरि।
सिखर सोभा स्याम की छबि, स्याम-छबि गिरि जोरि॥
नारि बदरौला रही, बृषभानु-घर रखवारि।
तहाँ तैं उहिं भोग अरप्यौ, लियौ भुजा पसारि॥
राधिका-छबि देखि भूली, स्याम निरखैं ताहि।
सूर प्रभु-बस भई प्यारी, कोर-लोचन चाहि॥
॥८३७॥१४५५॥

राग धनाश्री

देखहु री हरि भोजन खात।
सहस भुजा धरि उत जेँवत हैँ, इतहिँ कहत गोपनि सौँ बात।
ललिता कहति देखि हो राधा, जो तेरैँ मन बात समाइ।
धन्य सबै गोकुल के बासी, संग रहत त्रिभुवन के राइ॥

जँवत देखि उतहिं सुख कीनौ, अति आनँद गोकुल-नर-नारि।
सूरदास-स्वामी सुख-सागर, गुन-आगर नागर, दैतारि ॥
॥८३८॥१४५६॥

राग गौरी

यह लीला सब करत कन्हाई।
उत जँवत गिरि गोबर्धन सँग, इत राधा सौं प्रीति लगाई ॥
इत गोपिन सौं कहत जिंवावहु, उत आपुहिं जँवत मन लाई।
आगैं धरे छहौं रस व्यंजन, बदरौला कौ लियौ मँगाई ॥
अमर बिमान चढ़े नभ देखत, जै धुनि करि सुमननि बरसाई।
सूर स्याम सबके सुख-दाता, भक्त-हेतु अवतार सदाई ॥
॥८३६॥१४५७॥

राग गौरी

गोपनि सौं यह कहत कन्हाई।
जो मैं कहत रह्यौ भयौ सोई, सुपनांतर प्रकस्यौ अब आई ॥
जो माँग्यौ चाहौ सो माँगौ, पावहुगे जो जा मन भाई।
कहत नंद सब तुमहीं दीन्हौ, माँगतु हौं हरि की कुसलाई ॥
कर जोरे नंद आगैं ठाढ़े, गोबर्धन की करत बड़ाई।
ऐसौ देव कहूँ नहिं देख्यौ, सहस भुजा धरि खात मिठाई ॥
सदा तुम्हारी सेवा करिहौं, और देव नहिं करौं पुजाई।
सूर स्याम कौं नीकैं राखौ, कहत महर ये हलधर भाई॥८४०॥
॥१४५८॥

राग गौरी

अपनैं अपनैं टोल कहत ब्रजबासियाँ।
भोग भगति लै चलौ, इंद्र के आसियाँ ॥ध्रुव॥
सरद-कुहू-निसि जानि, दीप मालिका बनाई।
गोपनि कैं आनंद, फिरत उनमद अधिकाई ॥
घर-घर थापैं दीजियै, घर-घर मंगलचार।
सात बरस कौ साँवरौ, खेलत नंद-दुवार ॥
बैठि नंद उपनंद, बोलि वृषभानु पठाए।
सुरपति-पूज देत, जानि तहँ गोबिंद आए ॥
बार-बार हा-हा करहिं, कहि बाबा यह बात।

घर-घर नेवज होत है, कौन देव की जात ।।
कान्ह तुम्हारी कुशल, लागि इक मंत्र उपैहौं ।
षटरस भोजन साजि, भोग सुरपति कौं देहौं ।।
नंद कह्यौ चुचकारि कै, जाइ दमोदर सोइ ।
बरस दिवस कौ दिवस है, महा महोत्सव होइ ।।
तब हरि मंत्र विचार, तुरत गोपनि सौं कीन्हौ ।
एक पुरुष मोहि आइ, आजु सुपनौ निसि दीन्हौ ।।
सब देवनि कौ देवता, गिरि गोवर्धनराज ।
ताहि भोग किन दीजियै, सुरपति कौ कह काज ? ।।
बाढ़ैं गोसुत-गाइ, दूध-दधि कौ कह लेखौ ।
यह परचौ बिदिमान, नैन अपनैं किन देखौ ।।
तुम देखत बलि खाइ गौ, मुँह माँगे फल देइ ।
गोप कुशल जौ चाहियै, गिरि गोबर्धन सेइ ।।
गोपनि कियौ बिचार, सकट सबहिनि मिलि साजे ।
बहु बिधि लै पकवान, चले सँग बाजत बाजे ।।
इक तौ बन हीं बन चले, एक जमुना-तट भीर ।
एक न पैंड़ौ पावहीं, उमड़े फिरत अहीर ।।
इक घर तैं उठि चले, एक घर कौं फिरि जाहीं ।
गावत गुन गोपाल, ग्वाल उमँगे न समाहीं ।।
गोपनि कौ सागर भयौ, गिरि भयौ मंदर चारु ।
रत्न भईं सब गोपिका, कान्ह विलोवनहारु ।।
व्रज चौरासी कोस, फेर गोपनि के डेरा ।
लाँबे चउवन कोस, आजु व्रजबासि बसेरा ।।
सबहिनि कैं मन साँवरौ, दीसै सबनि मँझारि ।
कौतुक देखन देवता, आए लोक बिसारि ।।
लीन्हे बिप्र बुलाइ, जग्य आरंभन कीन्हौ ।
सुरपति -पूजा मेटि, भोग गोबर्धन दीन्हौ ।।
दिवस दिवारी प्रातहीं, सब मिलि पूजे जाइ ।
आनंद प्रीति जु मानहीं, सब देखत बलि खाइ ।।
प्रथम दूध अन्हाइ, बहुरि गंगाजल डारयौ ।
बड़ौ देवता जानि, कान्ह कौ मतौ बिचारयौ ।।

जैसे हैं गिरिराज जू, तैसौ अन्न कौ कोट।
मगन भए पूजा करैं, नर-नारी बड़-छोट ॥
सहस भुजा गिरि धरे, करै भोजन अधिकाई।
नख सिख इक अनुहारि, मनौ दूसरौ कन्हाई ॥
राधा सौं ललिता कहै, चलहु देखियै जाइ।
गहे अँगुरिया नंद की, ढोटा भोजन खाइ ॥
पीत दुमालौ बन्यौ, कंठ मोतिनि की माला।
भूषन भुजा अनूप, झलमलत नैन विसाला ॥
स्याम की सोभा गिरि भयौ, गिरि की सोभा स्याम।
जैसैं परबत भात कौ, ढिग भैया बलराम ॥
जैसी कनक पुरी जु, दिव्य रतननि सौं छाई।
बलि दीन्ही परभात, छाँह पूरब चलि आई ॥
चहूँ ओर चक्रा धरे, चंदहिं पटतर सोइ।
ठौर ठौर बेदी रची, बहु बिधि पूजा होइ ॥
जहाँ तहाँ दधि धर्यौ, कहैं कह उज्ज्वलताई।
उदधि सिखर ह्वै रह्यौ भात मय देह छपाई ॥
बदरौला बृषभानु कैं, रही बिलोवनहारि।
ताकी बलि वह देवता, लीन्ही भुजा पसारि ॥
लै सब भोजन अरपि, गोप-गोपिनि कर जोरे।
अगिनित कीन्हे खाद, दास बरने कछु थोरे ॥
इहि बिधि पूजा पूजिकै गोविंद के गुन गाइ।
सूरदास सब सौं कही, लीला प्रगट सुनाइ ॥८४१॥
॥१४५६॥

राग गौरी

स्याम कहत पूजा गिरि मानौ।
जो तुम भक्ति भाव सौं अर्प्यौ, देवराज सब जानी ॥
तुम देखत भोजन सब कीन्हौ, अब तुम मोहिं पत्याने।
बड़ौ देव गिरिराज गोबर्धन, इनहिं रहौ तुम माने ॥
सेवा भली करी तुम मेरी, देव कही यह बानी।
सूर नंद मुख चूमत हरि कौ, यह पूजा तुम ठानी ॥
॥८४२॥१४६०॥

राग गौरी

और नंद माँगौ कछु हमसौं।
जौ चाहौ सो देउँ तुरत हौं, कहत सबै गोपनि सौं॥
बल मोहन दोऊ सुत तेरे, कुसल सदा ये रहिहैं।
इनकौ कह्यौ करत तुम रहियौ, जब जोई ये कहिहैं॥
सेवा बहुत करी तुम मेरी, अब तुम सब घर जाहु।
भोग प्रसाद लेहु कछु मेरौ, गोप सबै मिलि खाहु॥
सुपनैं मैं हौं कह्यौ स्याम सौं, करौ हमारी पूजा।
सुरपति कौन बापुरौ, मोतैं और देव नहिं दूजा॥
इंद्र आइ बरसै जो ब्रज पर, तुम जनि जाहु डराइ।
सुनहु सूर सुत कान्ह तुम्हारौ, कहिहै मोहिं सुनाइ॥८४३॥
॥१४६१॥

राग सारंग

भली करी पूजा तुम मेरी।
बहुत भाव करि भोजन अरप्यौ, मानि लई मैं तेरी॥
सहस भुजा धरि भोजन कीन्हौं, तुम देखत बिदिमान।
मोहिं जानत है कुँवर कन्हैया, और नहीं कोउ आन॥
पूजा सब को मान लई मैं, जाहु घरनि ब्रज-लोग।
सूर स्याम अपन कर लीन्हे, बाँटत जूठन-भोग॥
॥८४४॥१४६२॥

राग बिलावल

बिनती करत नंद कर जोरैं, पूजा कह हम जानैं नाथ।
हम हैं जीव सदा माया-बस, दरस दियौ मोहिं कियौ सनाथ॥
महा पतित मैं, तुम पावन प्रभु, सरन तुम्हारी आयौ तात।
तुमतैं देव और नहिं दूजौ, कोटि ब्रह्मंड रोम प्रति गात॥
तुम दाता, अरु तुमहिं भोगता, हरता-करता तुमहीं सार।
सूर कहा हम भोग लगायौ, तुमहीं भुलै दियौ संसार॥
॥८४५॥१४६३॥

राग बिलावल

यह पूजा मोहिं कान्ह बताई।
भूल्यौ फिरत द्वार देवनि कैं त्रिभुवनपति तुमकौं बिसराई॥

आपुहिँ कृपा करी सुपनांतर, स्यामहिँ दरस दियौ तुम आई।
ऐसे प्रभु कृपाल करुनामय, बालक की अति करी बड़ाई॥
गिरि-पाइनि लै हरि कौँ पारत, हलधर कौँ पाइनि तर नाई।
सूर स्याम बलराम तुम्हारे, इनकौँ कृपा करौ गिरिराई॥
॥८४६॥१४६४॥

राग बिलावल

ग्वाल कहत धनि धन्य कन्हैया।
बड़ौ देवता प्रगट बतायौ, यह कहि लेत बलैया॥
धन्य-धन्य गिरिराजनि के मनि, तुम सम और न दूजा।
तुम लायक कछु नाहिँ हमरैँ, को जानै तुम पूजा॥
गोप सबै मिलि कहत स्याम सौँ, जौ कछु कह्यौ सो कीन्हौ।
सूर स्याम कहि-कहि यह बानी, देव मानि सुख लीन्हौ॥
॥८४७॥१४६५॥

राग गौड़ मलार

गोप उपनंद बृषभानु आए।
विनय सब करत गिरिराज सौँ जोरि कर, गए तन-ताप तुव दरस-पाए॥
देवता बड़े तुम, प्रगट दरसन दियौ, प्रगट भोजन कियौ, सबनि देख्यौ।
प्रगट बानी कही, गिरिराज तुम सही, और तिहुँ भुवन नहिँ कहूँ पेख्यौ॥
हँसत हरि मनहिँ मन, तकत गिरिराज-तन, देव परसन भयौ करौ काजा।
सूर प्रभु प्रगट लीला कही सबनि सौँ, चले घर घरनि अपने समाजा॥८४८॥१४६६॥

राग गौड़ मलार

देखि थकित गन-गंध्रब-सुर-मुनि।
धन्य नंद कौ सुकृत पुरातन, धन्य कही करि जै जै जै धुनि॥
धन्य-धन्य गोबर्धन पर्वत, करत प्रशंसा सुर-मुनि पुनि-पुनि।
आपुहिँ खात कहत है गिरि कौँ, यह महिमा देखी न कहूँ सुनि॥

यहै कहत अपनैं लोकनि गए, धनि ब्रजबासी बस कीन्हौ उनि।
सूर स्याम धनि-धनि ब्रज बिहरत, धन्य-धन्य सब कहत गुननि
गुनि ॥८४६॥
॥१४६७॥

राग नट नारायन

चले ब्रज-घरनि कौं नर नारि।
इंद्र की पूजा मिटाई, तिलक गिरि कौ सारि॥
पुलक अँग न समात उर मैं, महर महरि समाज।
अब बड़े हम देव पाए, गिरि गोबर्धन राज॥
इनहिं तैं ब्रज चैन रहिहै, माँगि भोजन खात।
यहै घैरा चलत ब्रज जन, सबनि सुख यह बात॥
सबै सदननि आइ पहुँचे, करत केलि बिलास।
सूर प्रभु यह करी लीला, इंद्र-रिस परकास॥८५०॥
॥१४६८॥

गिरिधारण-लीला *राग सारंग*

ब्रज बासिनि मोकौं बिसरायौ।
भली करी बलि मेरी जो कछु, सो सब लै परबतहिं चढ़ायौ॥
मोसौं गर्ब कियौ लघु प्रानी, ना जानियै कहा मन आयौ।
तैंतिस कोटि सुरनि कौ नायक, जानि-बूझि इन मोहिं भुलायौ॥
अब गोपनि भूतल नहिं राखौं, मेरी बलि मोहिं नहिं पहुँचायौ।
सुनहु सूर मेरैं मारत धौं, परबत कैसैं होत सहायौ॥८५१॥
॥१४६६॥

राग सोरठ

प्रथमहि देउँ गिरिहिं बहाइ।
ब्रज-घातनि करौं चुरकुट, देउँ धरनि मिलाइ॥
मेरी इन महिमा न जानी, प्रगट देउँ दिखाइ।
बरसि जल ब्रज धोइ डारौं लोग देउँ बहाइ॥
खात-खेलत रहे नीकैं, करी उपाधि बनाइ।
बरस दिन मोहिं देत पूजा, दई सोउ मिटाइ॥

रिस सहित सुरराज लीन्हे प्रलय मेघ बुलाइ।
सूर सुरपति कहत पुनि-पुनि, परौ व्रज पर धाइ ॥८५२॥
॥१४७०॥

राग मेघ मलार

सुनि मेघवर्त्त सजि सैन आए।
बल बर्त्त, वारि वर्त्त, पौन वर्त्त, बज्र, अग्नि बर्त्तक, जलद संग ल्याए ॥
घहरात गररात, दररात, हररात, तररात, झहरात माथ नाए।
कौन ऐसौ काज, बोले हम सुरराज, प्रलय के साज हमकौं बुलाए ॥
बरष-दिन-संयोग, देत हे मोहिँ भोग, छुद्र-मति व्रज-लोग, गर्ब कीन्हौ।
मोहिँ दयौ बिसराइ, पूज्यौ गिरिवर जाइ, परौ व्रज धाइ आयसहिँ दीन्हौ ॥
कितिक व्रज के लोग, रिस करी किहिँ जोग, गिरि लियौ भोग फल तुर्त पैहै।
सूर सुरपति सुनौ, नयौ तैसौ लुनौ, प्रभु कहा गुनौ, गिरि संग बैहै ॥
॥८५३॥१४७१॥

राग मलार

विनती सुनहु देव मघवापति।
कितिक बात गोकुल व्रजबासी, बार-बार जो रिस अति ॥
आपुन बैठि देखिये कौतुक, वहुतै आयसु दीन्हौ।
छिन मैँ बरसि प्रलय-जल पाटैँ, खोज रहै नहिँ चीन्हौ ॥
महा प्रलय हमरे जल बरसैँ, गगन रहे भरि छाइ।
अछै वृच्छ बट बचत निरंतर, कंह व्रज गोकुल गाइ ॥
चले मेध माथैँ कर धरि कै, मन मैँ क्रोध वढ़ाइ।
उमड़त चले इंद्र के पायक, सूर गगन रहे छाइ ॥८५४॥
॥१४७२॥

राग गौड मलार

मेघ-दल-प्रबल व्रज लोग देखैँ।
चकित जहँ-तहँ भए, निरखि बादर नए, ग्वाल गोपाल डरि गगन पेखैँ ॥

ऐसे बादर सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि अंधकाला।
चकित भए नंद, सब महर चकित भए, चकित नर-नारि हरि करत ख्याला॥
घटा घन घोर घहरात, अररात, दररात, थररात ब्रज लोग डरपे।
तड़ित-आघात तररात, उतपात, सुनि, नारि-नर सकुचि तन प्रान अरपे॥
कहा चाहत होन, भई कबहूँ जौ न, कबहुँ आँगन भौन बिकल डोलैं।
मेटि पूजा इंद्र, नंद-सुत गोबिंद, सूर प्रभु आनंद करि कलोलैं॥
॥८५५॥१४७३॥

राग गौड़ मलार

सैन साजि ब्रज पर चढ़ि धावहिं।
प्रथम बहाइ देहिं गोबर्धन, ता पाछैं ब्रज खोदि बहावहिं॥
अहिरनि करी अवज्ञा प्रभु की, सो फल उनकौं तुरत दिखावहिं।
इंद्रहिं पेलि करी गिरि पूजा, सलिल बरसि ब्रज-नाउँ मिटावहिं॥
बल समेत निसि-बासर बरसहिं, गोकुल बोरि पताल पठावहिं।
सूरदास सुरपति की आज्ञा, यह भूतल कहुँ रहन न पावहिं॥
॥८५६॥१४७४॥

राग मेघ मलार

बादर बहु उमड़ि घुमड़ि, बरषत ब्रज आए चढ़ि कारे धौरे धूमरे, धारे अति हीं जल।
चपला अति चमचमाति, ब्रज-जन सब अति डरात, टेरत सिसु-पिता मातु, ब्रज मैं भयौ गलबल॥
गरजत धुनि प्रलय काल, गोकुल भयौ अंधजाल, चकित भए-ग्वाल-बाल, घहरत नभ हलचल।
पूजा मेटी गुपाल, इंद्र करत यहै हाल, सूर स्याम राखौ ब्रज हरबर अब गिरिवर बल॥
॥८५७॥१४७५॥

राग गौड़ मलार

गिरि पर बरषन लागे बादर।
मेघ वर्त्त, जल वर्त्त, सैन सजि, आए लै-लै आदर॥
सलिल अखंड धार धर टूटत, किये इंद्र मन सादर।
मेघ परस्पर यहै कहत हैँ, धोइ करहु गिरि खादर॥
देखि देखि डरपत ब्रजबासी, अतिहिँ भए मन कादर।
यहै कहत ब्रज कौन उबारै, सुरपति कियैँ निरादर॥
सूर स्याम देखैँ गिरि अपनैँ, मेघनि कीन्हौ दादर।
देव आपनौ नहीँ सम्हारत, करत इंद्र सौँ ठादर॥
॥८५८॥१४७६॥

राग मलार

बतियाँ कहति हैँ ब्रज-नारि।
धरति सैँतति धाम-बासन- नाहिँ सुरति सम्हारि॥
पूजि आए गिरि गोबरधन, देतिँ पुरुषनि गारि।
आपनौ कुलदेव सुरपति, धर्‌यौ ताहि बिसारि॥
दियौ फल यह गिरि गोबरधन, लेहु गोद पसारि।
सूर कौन उबारि लैहै, चढ़्यौ इंद्र प्रचारि॥८५९॥
॥१४७७॥

राग सोरठ

ब्रज के लोग फिरत बितताने।
गैयनि लै बन ग्वाल गए, ते, धाए आवत ब्रजहिँ पराने॥
कोउ चितवत नभ-तन चक्रित ह्वै, कोउ गिरि परत धरनि अकुलाने।
कोउ लै रहत ओट बृच्छनि की, अंध-धुंध दिसि-बिदिसि भुलाने॥
कोउ पहुँचे जैसैँ-तैसैँ गृह, कोउ ढूँढ़त गृह नहिँ पहिचाने।
सूरदास गोबर्धन-पूजा कीन्हे कौ फल लेहु बिहाने।८६०॥
॥१४७८॥

राग नट

तरपत नभ डरपत ब्रज-लोग।
सुरपति की पूजा बिसराई, लै दीन्हौ परबत कौँ भोग॥

नंद सुवन यह बुधि उपजाई, कौन देव कह्यौ परबत जोग।
सूरदास गिरि बड़ौ देवता, प्रगट होइ ऐसैं संजोग ॥८६१॥
॥१४७६॥

राग नट

ब्रज नर-नारि नंद जसुमति सौं, कहत स्याम ये काज करे।
कुल-देवता हमारे सुरपति, तिनकौं सब मिलि मेटि धरे॥
इंद्रहिं मेटि गोबर्धन थाप्यौ, उनकी पूजा कहा सरे।
सैंतत फिरत जहाँ-तहँ बासन, लरिकनि लै-लै गोद भरे॥
को करि लेइ सहाइ हमारी, प्रलय काल के मेघ-अरे।
सूरदास सब कहत नारि नर, क्यौं सुरपति-पूजा बिसरे॥
॥८६२॥१४८०॥

राग बिलावल

राखि लेहु गोकुल के नायक।
भींजत ग्वाल गाइ गोसुत सब, विषम बूँद लागत जनु सायक॥
बरषत मुसलधार सैनापति, महा मेघ मघवा के पायक।
तुम बिनु ऐसौ कौन नंद-सुत, यह दुख दुसह मेटिबे लायक॥
अघ-मर्दन बक-बदन-बिदारन बकी-बिनासन ब्रज सुखदायक।
सूरदास प्रभु तिनकी यह गति, जिनके तुमसे सदा सहायक!
॥८६३॥१४८१॥

राग मलार

सरन अब राखि लै नंद-ताता।
घटा आईं गरजि, जुवति गईं मन लरजि, बीजु चमकति तरजि,
डरत गाता॥
और कोऊ नहीं, तुम धनी जहँ तहीं, बिकल ह्वैकै कही, तुमहिं
नाता।
सूर प्रभु सुनि हँसत, प्रीति उर मैं बसति, इंद्र कौं कसत, हरि
जगत-धाता ॥८६४॥१४८२॥

राग बिलावल

राखि लेहु अब नंदकिसोर।
तुम जो इंद्र की मेटी पूजा, बरसत है अति जोर॥

ब्रजबासी तुम तन चितवत हैँ, ज्यौँ करि चंद चकोर।
जनि जिय डरौ, नैन जनि मूँदौ, षरिहौँ नख की कोर ॥
करि अभिमान इंद्र झरि लायौ, करत घटा घन घोर।
सूर स्याम कह्यौ तुम कौँ राखौँ बूँद न आवै छोर ॥
॥८६५॥१४८३॥

राग मलार

तुम सुरपति कौ मान हर्‌यौ।
बरषत सुंड दस धारा धर, छिति छिन इक मैँ प्रलय कर्‌यौ ॥
ऐरावत-आरूढ़ अग्र-घन, लघुता जाति जु रोष भर्‌यौ।
सिसु की बुद्धि करी मनमोहन, बलि मेटी कह काज सर्‌यौ।
देखे दीन दुखित नंदादिक, लीला गिरिवर करज धर्‌यौ ॥
सूरदास करुनामय माधौ, ब्रज सुख उनकौ गर्ब हर्‌यौ ॥
॥८६६॥१४८४॥

राग मलार

माधौ जू काँपत डरनि हियौ।
तुम जु इंद्र की पूजा मेटी, तातैँ कोप कियौ ॥
दामिनि खरग, बूँद सायक, सम घन जोधा ले संग।
हय-गय सरिस समीर दसहुँ दिसि, धनुष धुजा बहु रंग ॥
सोभित सुभट प्रचारि पैज करि, भिरत न मोरत अग।
तुम्हरैँ कहत किया नँद-नंदन, सुरपति कौ ब्रत भंग ॥
बरषत प्रलय कियौ धर-अंबर, डरपत गोकुल गाउँ।
समरथ-नाथ सरन हौ, तुम बिनु और कौन पैँ जाउँ ॥
जैसैँ अनल, ब्याल-मुख, राखे, श्रीपति करौ सहाइ।
हमरैँ तौ तुमहीँ चिंतामनि, सब बिधि दाइ उपाइ ॥
जनि डर करहु सबै मिलि आवहु, या परबत की छाहँ।
बरषत मैँ गोपाल बुलाए, अभय किए दै बाहँ ॥
एक हाथ गोबर्धन राख्यौ, सात दिवस बल बीर।
सूरदास प्रभु ब्रज बासिनि के, ये हरता सब पीर ॥
॥८६७॥१४८५॥

राग मलार

माधौ महा मेघ घिरि आयौ।
घर कौ गाइ बहोरौ मोहन, ग्वालनि टेरि सुनायौ ॥

कारी घटा सुधूम देखियति, अति गति पवन चलायो।
चारौं दिशा चितै किन देखहु, दामिनिँ कौंधा खायौ ॥
अति घनस्याम सुदेस सूर-प्रभु, कर गहि सैल उठायौ ॥
राखे सुखी सकल ब्रजबासी, सुरपति गरब नवायौ ॥८६८॥
॥१४८६॥

राग मलार

आजु ब्रज महा घटनि घन घेरौ।
राखि स्याम अबकैं इहिँ अवसर, सब चितवत मुख तेरौ ॥
कोटि छयानबे मेघ बुलाए, आनि कियौ ब्रज डेरौ।
मुसलाधार टरै चहुँदिशि तैं, ह्वै गयौ दिवस अँधेरौ ॥
इतनी सुनत जसोदा-नंदन, गोबर्धन-तन हेरौ।
लियौ उठाइ सैल भुज गहि कै, महि तैं पकरि उखेरौ ॥
सात दिवस जल बरसि सिराने, हारि मानि मुख फेरौ।
सूर सहाइ करी निज भुज-बल बूँद न आयौ नेरौ।
॥८६९॥१४८७॥

राग मलार

(गगन) मेघ घहरात थहरात गाता।
चपला चमचमाति, चमकि नभ भहरात, राखि लै क्यौं न ब्रज नंद-ताता ॥
सुनत करुना बैन, उठे हरि बल-ऐन, नैन की सेन गिरि-तन निहारयौ।
सबनि धीरज दियौ, उचकि मंदर लियौ, कह्यौ गिरिराज तुमक उबारयौ ॥
करज कैं अग्र प्रभु बाम गिरिवर धरयौ, नाम गिरिधर परयौ भक्त काजैं।
सूर प्रभु कहत ब्रज-वासि- बासिनिनि, राखि तुम लियौ गिरिराज-राजैं ॥
॥८७०॥१४८८॥

राग गौरी

स्याम लियौ गिरिराज उठाइ।
धीर धरौ हरि कहत सबनि सौं, गिरि गोबर्धन करत सहाइ ॥

नंद गोप ग्वालनि के आगैं, देव कह्यौ यह प्रगट सुनाइ।
काहे कौं व्याकुल भएँ डोलत, रच्छा करै देवता आइ॥
सत्य बचन गिरि-देव कहत हैं, कान्ह लेहि मोहिं कर उचकाइ।
सूरदास नारी-नर ब्रज के, कहत धन्य तुम कुँवर कन्हाइ॥
॥८७१॥१४८६॥

राग मलार

बाम करज टेक्यौ गिरिराज।
गोपी-गाइ-ग्वाल-गोसुत कौं, दुख बिसर्‍यौ, सुख करत समाज॥
आनँद करत सकल गिरिवर-तर, दुख डार्‍यौ सबहिन बिसराइ।
चकृत भए देखत यह लीला, परत सबै हरि-चरननि धाइ॥
गिरिवर टेकि रहे बाएँ कर, दच्छिन कर लियौ सखनि उठाइ।
कान्ह कहत ऐसौ गोबर्धन, देखौ कैसौ कियौ सहाइ॥
गोप ग्वाल नंदादिक जहँ लौं, नंद-सुवन लियौ निकट बुलाइ।
सूरदास प्रभु कहत सबनि सौं, तुमहूँ मिलि टेकौ गिरि आइ॥
॥८७२॥१४९०॥

राग मलार

गिरि जनि गिरै स्याम के कर तैं।
करत बिचार सबै ब्रजबासी, भय उपजत अति उर तैं॥
लै-लै लकुट ग्वाल सब धाए, करत सहाय जु तुरतैं।
यह अति प्रबल, स्याम अति कोमल, रबकि-रबकि हरबर तैं॥
सप्त दिवस कर पर गिरि धार्‍यौ, बरसि थक्यौ अंबर तैं।
गोपी ग्वाल नंद-सुत राख्यौ, मेघ-धार जलधर तैं॥
जमलार्जुन दोउ सुत कुबेर के, तेउ उखारे जर तैं।
सूरदास प्रभु इंद्र-गर्ब हरि, ब्रज राख्यौ करबर तैं॥
॥८७३॥१४९१॥

राग मलार

नीकैं धरौ नंद-नँदन बल-बीर।
गिरि जनि परै, टरै नख तैं जनि, कौन सहैगौ भीर॥
चहुँ दिसि पवन झकोरत, घोरत मेघ-घटा गंभीर।
उनै-उनै बरषत गिरि ऊपर, धार अखंडित नीर॥

अंध-धुंध अंबर तैं गिरि पर, परत बज्र के तीर।
चमकि-चमकि चपला चकचौंधति, स्याम कहत मन धीर ॥
कर जोरत, कुल देव मनावत, ब्रज के गोप-अहीर।
पय-पकवान-बिहान पूजिहैं, लै दधि-मधु-घृत-खीर ॥
गोपी-ग्वाल, गाइ-गोसुत सब, रहैं सुख सहित सरीर।
सूर स्याम गिरि धर्‍यौ वाम कर, मेघ भए अति सीर।'
॥८७४॥१४६२॥

राग मलार

गिरिवर नीकैं धरौ कन्हैया।
देखे रहौ टरै जनि नख तैं, भुजा तनक सी मैया ॥
जब जब गाढ़ परत ब्रज-लोगनि, तब करि लेत सहैया।
जननि जसोदा कर लै चापति, अति स्रम होय नन्हैया ॥
देखत प्रगट धर्‍यौ गोबरधन, चकित भए नँदरैया।
पिता देखि व्याकुल मनमोहन, तब इक बुद्धि उपैया ॥
आवहु तात गहहु गोबरधन, गोपनि संग लेवैया।
जहाँ-तहाँ सबहिनि गिरि टेक्यौ, कान्हहिं ओत देवैया ॥
स्याम कहत सब नंद गोप सौं, भलैं लियौ उचकैया।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, नंदहिं हरष बढ़ैया ॥
॥८७५॥१४६३॥

राग मलार

गिरिवर धर्‍यौ सखा सब कर तैं।
सब मिलि ग्वाल लकुटियनि टेक्यौ, अपने-अपने भुज के बर तैं ॥
सात दिवस मूसल जलधारा, बरसतु है निसि दिन अंबर तैं।
अंतरिच्छ जल जात कहाँ यह, क्रोध-सहित फिरि बरसत झर तैं ॥
गाइ गोप नंदादिक राख्यौ, बृथा बूँद सब नैंकु न थर तैं।
सूर गोपाल राखि गिरिवर-तर गोकुल-नर-नारी ब्रज घर तैं ॥
॥८७६॥१४६४॥

बरसत मेघवर्त्त धरनी पर।
मूसलधार सलिल बरषतु है, बूँद न आवत भू पर ॥

चपला चमकि-चमकि चकचौंधति, करति सब्द-आघात।
अंधाधुंधु पवनबर्त्तक घन, करत फिरत उतपात।।
निसि सम गगन भयौ आच्छादित, बरषि-बरषि झर इंद।
ब्रजबासी सुख-चैन करत सब धरे गिरिवर गोबिंद।।
मेघ बरषि जल सबै बढ़ाने, दिवि-गुन गए सिराइ।
वैसोइ गिरि, वैसे ब्रजवासी, दूनौ हरष बढ़ाइ।।
सात दिवस जल बरषि निसा दिन, ब्रज-घर-घर आनंद।
सूरदास ब्रज राखि लियौ धरि, गिरिबर कर नँद-नंद।।
।।८७७।।१४६५।।

राग मलार

बरषि-बरषि घन ब्रज-तन हेरत।
मेघबर्त अपनी सैना कौं, खीझत है, फिरि टेरत।।
कहा बर्राष अब लौं तुम कीनौ, राखत जलहिं छपाइ।
मूसलधार बरषि जल पाटौ, सात दिवस भयौ आइ।।
रिस करि-करि गरजत नभ, बरषत चाहत ब्रजहिं बहाइ।
सूर स्याम गिरि गोबरधन धर्यौ, ब्रज जन कौं सुखदाइ।।
।।८७८।।१४६६।।

राग मलार

बरषि-बरषि हहरे सब बादर।
ब्रज के लोगनि धोइ बहावहु इंद्र हमहिं कह्यौ आदर।
कहा जाइ कैहैं प्रभु आगैं, करिहैं बहुत निरादर।।
हम बरषत परबत जल सोखत, ब्रजबासी सब सादर।।
पुनि रिस करत, प्रलय-जल बरषत, कहत भए सब कादर।
सर गाइ गोसुत सब राखौ, गिरिवर धरि ब्रज-आदर।।
।।८७९।।१४६७।।

राग धनाश्री

कहा होत जल महा प्रलै कौ।
राख्यौ सैंति-सैंति जिहिं कारज, बचत नहीं कहुँ नैकौ।।
भुव पर एक बूँद नहि पहुँची, निझरि गए सब मेह।
बासर सात अखंडित धारा, बरषत हारे देह।।

उदर भयौ बिनु नीर सबनि कौ, नाउँ रह्यौ है बादर।
सूर चले फिरि अमरराज पैं, ब्रज तैं भए निरादर ॥८८०॥
॥१४६८॥

राग मलार

मेघनि हारि मानि मुख फेर्‍यौ।
नीकैं गोप, बड़ै गोबर्धन, नीकैं, ब्रज हेर्‍यौ ॥
नीकैं गाइ, बच्छ सब नीके, नीकैं बाल-गोपाल।
नीकैं बन वैसीयै जमुना, मन मन भए बिहाल ॥
गोकुल-ब्रज-बृंदाबन-मारग नैंकु नहीं जल-धार।
सूरदास प्रभु अगनित महिमा, कहा भयौ जलसार !
॥८८१॥१४६६॥

राग नट नारायन

मेघनि जाइ कही पुकारि।
दीन ह्वै सुरराज आगैं, अस्त्र दीन्हे डारि ॥
सात दिन भरि बरसि ब्रज पर, गई नैकुँ न झारि।
अखँड धारा सलिल निझर्‍यौ, मिटी नाहिँ लगारि ॥
धरनि नैकुँ न बूँद पहुँची, हरषे ब्रज-नर-नारि।
सूर घन सब इंद्र आगैं, करत यहै गुहारि ॥
॥८८२॥१५००॥

राग गौरी

तुम बरषैं ब्रज कुसल पर्‍यौ।
तुम बरषत जल महा प्रलय कौ, यह कहि सोच कर्‍यौ ॥
एक घरी जाके बरषे त, गगन अछादित होइ।
वे मघवा विह्वल मो आगैं, बात कहत हैं रोइ ॥
सात दिवस भरि बरषि सिराने, तातैं भए निरास।
सूरदास सुरपति संकित भयौ, सुरनि बुलायौ पास ॥
॥८८३॥१५०१॥

गोवर्धन की दूसरी लीला *राग विलावल*

नंदहिँ कहति जसोदा रानी। सुरपति पूजा तुमहिँ भुलानी ॥

यह नहिँ भली तुम्हारी बानी। मैँ गृह-काज रहीँ लपटानी ॥
लोभहिँ लोभ रहे हौं सानी। देव काज की सुधि बिसरानी ॥
महरि कहति पुनि-पुनि यह बानी। पूजा के दिन पहुँचे आनी ॥
सूरदास जसुमति की बानी। नंदहिँ खीझि-खीझि पछितानी ॥
॥८८४॥१५०२॥

राग बिलावल

नंद कह्यौ सुधि भली दिवाई। मैँ तो राज-काज मन लाई ॥
नित प्रति करत यहै अवसाई। कुल-देवता-सुरति बिसराई ॥
कंस दई यह लोक बड़ाई। गाउँ दसक सरदार कहाई ॥
जलधि-बूँद ज्यौँ जलधि समाई। माया जहँ की तहाँ बिलाई ॥
सूरदास यह कह नँदराई। चरन तुम्हारे सदा सहाई।
॥८८५॥१५०३॥

राग बिलावल

कहति महरि तब ऐसी बानी। इंद्रहिँ की दीन्ही रजधानी ॥
कंस करत तुमरी अति कानी। यह प्रभु की है आसिष-बानी ॥
गोपनि बहुत बड़ाई मानी। जहाँ तहाँ यह चलति कहानी ॥
तुम घर मथियै सहस मथानी। ग्वारिनि रहतिँ सदा बितताती ॥
तृन उपजत उनहीँ कै पानी। ऐसे प्रभु की सुरति भुलानी ॥
सूर नंद मन मैँ तब आनी। सत्य कहतिँ तुम देव-कहानी ॥
॥८८६॥१५०४॥

राग बिलावल

महर दयौ इक ग्वाल चलाइ। पठयौ कहि उपनंद बुलाइ ॥
अरु आनौ बृषभानु लिवाइ। तुरत जाहु तुम करहु चँड़ाइ ॥
यह सुनि तुरत गयौ तहँ धाइ। नंद महर की कही सुनाइ ॥
नैँकु करहु अब जनि बिलमाइ। मोहिँ कह्यौ सब देहु पठाइ ॥
यह सुनि कै सब चले अतुराइ। मन मन सोच करत पछिताइ ॥
कंस-काज जिय माँझ डराइ। राज अंस-धन दियौ चलाइ ॥
सूर नंद-गृह पहुँचे आइ। आदर करि बैठे नँदराइ ॥
॥८८७॥१५०५॥

राग बिलावल

गोप सबै उपनंद बुलाए। कौन काज हमकौं हँकराए ॥
सुनतहिँ हम सब आतुर आए। सब मिलि कह्यौ बहुत डरपाए ॥
काल्हिहिँ राज-अंस दै आए। ग्वाल कहत तुरतहिँ उठि धाए ॥
महर कह्यौ हम तुम डरवाए। हँसि हँसि कहत अनंद बढ़ाए ॥
हम तुमकौं सुख-काज मँगाए। बार बार यह कहि दुख पाए ॥
सूर इंद्र-पूजा बिसराए। यह सुनतहिँ सिर सबनि नवाए ॥
॥८८८॥१५०६॥

राग बिलावल

पूजा सुनत बहुत सुख कीन्हौ। भली करी हमकौं सुधि दीन्हौ ॥
सुनि बानी सबहिनि सुख लीन्हौ। बड़ौ देव सब दिन कौ चीन्हौ ॥
इनहीँ तैँ ब्रज-बास बसीनौ। हम सब अहिर जाति-मति हीनौ ॥
पूजा की बिधि करत सबै मिलि। जैसहिँ भाँति सदा आई चलि ॥
बिदा माँगि नंद सौँ गृह आए। घरनि घरनि यह बात चलाए ॥
सूरदास गोपनि की बानी। ब्रज नर-नारि सबनि यह जानी ॥
॥८८९॥१५०७॥

राग बिलावल

नंद-घरनि ब्रज-बधू बुलाईं। यह सुनिकै तुरतहिँ चलि आईं ॥
"कौन काज हम महरि हँकारी ? तुम नहिँ जानतिँ जोबन भारी !"
बिहँसि कहतिँ, "कह देति हौ गारी!""सुरपति पूजा करौ सँवारी" ॥
"देखौ हम सब सुरति बिसारी।" "औरौ हमहिँ बूझियै गारी" ॥
यह कहि हरषित भई नंद नारी। सखियन बात कही तब प्यारी ॥
सूर इंद्र-पूजा अनुसारी। तुरत करौ सब भोग सँवारी ॥
॥८९०॥१५०८॥

राग बिलावल

घरनि चलीँ सब कहि जसुमति सौँ। देव मनावतिँ बचन बिनति सौँ ॥
तुम बिन और नहीँ हम जानैँ। मन मन अस्तुति करत बखानैँ ॥
जहाँ तहाँ ब्रज मंगल गानैँ। बाजत ढोल मृदंग निसानै ॥
बहु-बहु भाँति करतिँ पकवानैँ। नेवज करि धरि साँझ बिहानैँ ॥

छुवत नहीं देव-काज सकानैं। देव-भोग कौं रहत डरानै॥
सूरदास हम सुरपति जान। और कौन ऐसौ जिहिं मानैं॥
॥८६१॥१५०६॥

राग बिलावल

नंद महर-घर होति बधाई। करत सबै बिधि देव-पुजाई॥
नेवज करति जसोदा आतुर। आठौ सिद्धि घरहिं अति चातुर॥
मैदा उज्ज्वल करि कै छान्यौ। बेसन दारि-चनक करि बान्यौ॥
घृत मिष्टान्न सबै परिपूरन। मिस्री करत पाग कौं चूरन॥
कटुवा करत मिठाई घृत पक। रोहिनि करति अन्न भोजन-तक॥
संग और ब्रजनारी लागीं। भोजन करति हैं बड़ी सभागी॥
महरि करति ऊपर तरकारी। जोरति सब बिधि न्यारी-न्यारी॥
सूरदास जो माँगत जबहीं। भीतर तैं लै देतिं हैं तबहीं॥
॥८६२॥१५१०॥

राग बिलावल

महरि सबै नेवज लै सैंतति। स्याम छुवै कहुँ ताकौं डरपति॥
कान्हहिं कहति इहाँ, जनि आवै। लरिकनि कौं यह देव डरावै॥
स्याम रहे आँगनहिं डराई। मन-मन हँसत मातु-सुखदाई॥
मैया री मोहिं देव दिखैहै। इतनौ भोजन सब वह खैहै॥
यह सुनि खीझति है नंदरानी। बार बार सुत सौं बिरुझानी॥
ऐसी बात न कहौ कन्हाई। तू कत करत स्याम लँगराई॥
कर जोरति अपराध छमावति। बालक कौ यह दोष मिटावति॥
सूरदास प्रभु कौं नहिं जाने। हँसत चले मन मैं न रिसाने॥
॥८६३॥१५११॥

राग बिलावल

जुवती कहतिं कान्ह रिस पायौ। जान देहु सुर-काज बतायौ॥
बालक आइ छुवै कहुँ भोजन। उनकी पूजा जानै को जन॥
यह कहि-कहि देवता मनावति। भोग-समग्री धरति, उठावति॥
"उनकी कृपा गऊ-गन घेरे। उनकी कृपा धाम-धन मेरे॥"
उनकी कृपा पुत्र-फल पायौ। देखहु स्यामहिं खीझि पठायौ॥"

सूरदास प्रभु अंतरजामी। ब्रह्मा कीट आदि के स्वामी॥
॥८६४॥१५१२॥

राग बिलावल

नंद-निकट तब गए कन्हाई। सुनत बात तहँ इंद्र-पुजाई॥
महर नंद उपनंद तहाँ सब। बोलि लिए बृषभानु महर तब॥
दीपमालिका रचि-रचि-साजत। पुहुप-माल-मंडली बिराजत॥
बरष सात के कुँवर कन्हाई। खेलत मन आनंद बढ़ाई॥
घर-घर देतिं जुवति-जन हाथा। पूजा देखि हँसत ब्रजनाथा॥
मो आगैं सुरपति की पूजा। मोतैं और देव को दूजा॥
सत-सत इंद्र रोम प्रति लोमनि। सत लोमनि मेरैं इक रामनि॥
सूर स्याम ये मन सौं बातैं। लीन्हौ भोग बहुत दिन जातैं॥
॥८६५॥१५१३॥

राग बिलावल

सुरपति-पूजा जानि कन्हाई। बार-बार बूझत नँदराई॥
कौन देव की करत पुजाई। सो मोसौं तुम कहौ बुझाई॥
महर कह्यौ तब कान्ह सुनाई। सुरपति सब देवनि के राई॥
तुम्हरैं हित मैं करत पुजाई। जातैं तुम रहौ कुसल कन्हाई॥
सूर नंद कहि भेद बताई। भीर बहुत घर जाहु सिखाई॥
॥८६६॥१५१४॥

राग बिलावल

जाहु घरहिं बलिहारी तेरी। सेज जाइ सोवहु तुम मेरी॥
मैं आवत हौं तुम्हरे पाछे। भवन जाहु तुम मेरे बाछे॥
गोपनि लीन्हे कान्ह बुलाई। मंत्र कहौं इक मनहिं समाई॥
आजु एक सपनैं कोउ आयो। संख चक्र भुज चारि दिखायौ॥
मोसौं वह कहि-कहि समुझायौ। यह पूजा किन तुमहि सिखायौ॥
सूर स्याम कहि प्रगट सुनायौ। गिरि गोबरधन देव बतायौ॥
॥८६७॥१५१५॥

राग बिलावल

यह तब कहन लगे दिविराई। इंद्रहिं पूजे कौन बड़ाई॥

कोटि इंद्र हम छिन मैं मारैं। छिनहीं मैं पुनि कोटि सँवारैं ॥
जाके पूजैं फल तुम पावहु। ता देवहिं तुम भोग लगावहु ॥
तुम आगैं वह भोजन खैहै। मुहँ माँगे फल तुमकौं दैहै ॥
ऐसा देव प्रगट गोबरधन। जाके पूजै बाढ़ै गोधन ॥
समुझि परी कैसी यह बानी। ग्वाल कही यह अकथ कहानी ॥
सूर स्याम यह सपनौ पायौ। भोजन कौने देवहिं खायौ ॥
॥८९८ १५१६॥

राग बिलावल

मानहु कह्यौ सत्य यह बानी। जौ चाहौ ब्रज की रजधानी ॥
जो तुम अपनैं करनि जँबावहु। तो तुम मुहँ माँग्यौ फल पावहु ॥
भोजन सब खैहैं मुहँ माँगे। पूजत सुरपति तिनके आगे ॥
मेरी कही सत्य करि मानहु। गोबरधन की पूजा ठानहु ॥
सूर स्याम कहि-कहि समुझायौ। नंद गोप सबकैं मन आयौ ॥
॥८९९॥१५१७॥

राग बिलावल

सुरपति-पूजा मेटि धराई। गोबर्धन की करत पुजाई ॥
पाँच दिननि लौं करी मिठाई। नंद महर घर की ठकुराई ॥
जाकैं घरनी महरि जसोदा। अष्ट सिद्धि नव निधि चहुँ कोदा ॥
घृतपक बहुत भाँति पकवाना। व्यंजन बहु को करै बखाना ॥
भोग अन्न बहु भार सजायौ। अपनैं कुल सब अहिर बुलायौ ॥
सहस सकट भर भरत मिठाई। गोबरधन की प्रथम पुजाई ॥
सूर स्याम यह पूजा ठानी। गिरि गोबरधन की रजधानी ॥
॥९००॥१५१८॥

राग बिलावल

ब्रज-घर-घर सब भोजन साजत। सबकैं द्वार बधाई बाजत ॥
सकट जोरि ल चले देव-बलि। गोकुल ब्रजबासी सब हिलि मिलि ॥
दधि लवनी मधु साजि मिठाई। कहँ लगि कहौं सबै बहुताई ॥
घर-घर तैं पकवान चलाए। निकसि गाउँ के ग्वैडैं आए ॥
ब्रजबासी तहँ जुरे अपारा। सिंधु समान न वार न पारा ॥

बड़ा चलन नहीँ कोउ पावत। सकट भरे सब भोजन आवत॥
सहस सकट चले नंद महर के। और सकट कितने घर-घर के॥
सूरदास प्रभु महिमा-सागर। गोकुल प्रगटे हैँ हरि नागर॥
॥६०१॥१५१९॥

राग बिलावल

इक आवत घर तैँ चले धाई। एक जात फिरि घर-समुहाई॥
इक टेरत इक दौरै आवत। एक गिरत इक लै जु उठावत॥
एक कहत आवहु रे भाई। बैल देत है सकट गिराई॥
कौन काहि कौँ कहै सँभारैँ। जहाँ-तहाँ सब लोग पुकारैँ॥
कोउ गावत, कोउ निर्त्तत आगैँ। स्याम सखनि सँग खेलत भागैँ।
सूरदास प्रभु सबके नायक। जौ मन करैँ सो करिबे लायक॥
॥६०२॥१५२०॥

राग बिलावल

सजि शृंगार चलीँ ब्रजनारी। जुवतिनि भीर भई अति भारी॥
जगमगात अंगनि-प्रति गहनौ। सबके भाव दरस-हरि लहनौ॥
इहिँ मिस देखन कौँ सब आईँ। देखतिँ इकटक रूप-कन्हाई॥
वै नहिँ जानतिँ देव-पुजाई। केवल स्यामहिँ सौँ लौ लाई॥
को मग जात, कहाँ को बोलत। नंद-सुबन तै चित नहिँ डोलत॥
सूर भजै हरि जो जिहिँ भाऊ। मिलत ताहि प्रभु तेहि सुभाऊ॥
॥६०३॥१५२१॥

राग बिलावल

गोप, नंद, उपनंद गए तहँ। गिरि गोबरधन बड़े देव जहँ॥
सिखर देखि सब रीझे मन-मन। ग्वाल कहत आजुहिँ अचरज बन॥
अति ऊँचौ गिरिराज बिराजत। कोटि मदन निरखत छबि लाजत॥
पहुँचे सकटनि भरि-भरि भोजन। कोउ आए, कोउ नहिँ, कहुँ खोजन॥
तिनके काज अहीर पठाए। बिलम करौ जनि तुरत धवाए॥
आवत मारग पाए तिनकौँ। आतुर करि बोले नँद जिनकौँ॥
तुरत लिवाइ तिनहिँ तहँ आए। महर मनहिँ अति हर्ष बढ़ाए॥
सूरदास प्रभु तहँ अधिकारी। बूझत हैँ पूजा परकारी॥
॥६०४॥१५२२॥

राग बिलावल

आइ जुरे सब ब्रज के बासी। डेरा परे कोस चौरासी ॥
एक फिरत कहुँ ठौर न पावै। एते पर आनंद बढ़ावै ॥
कोउ काहू सौं बैर न ताकै। बैठत मन जहँ भावत जाकैं ॥
खेलत, हँसत, करत कौतूहल। जुरे लोग जहँ तहाँ अकूहल ॥
नंद कह्यौ सब भोग मँगावहु। अपनैं कर सब लै-लै आवहु ॥
भोग बहुत बृषभानुहिं घर कौ। को कहि बरनै अतिहिं बहर कौ ॥
सूर स्याम जब आयसु दीन्हौ। बिप्र बुलाइ नंद तब लीन्हौ ॥
॥९०५॥१५२३॥

राग बिलावल

तुरत तहाँ सब बिप्र बुलाए। जग्यारंभ तहाँ करवाए ॥
साम बेद द्विज गान करत तहँ। देखत सुर बिथके अंबर महँ ॥
सुरपति-पूजा तबहिं मिटाई। गिरि गोबर्धन तिलक चढ़ाई ॥
कान्ह कह्यौ गिरि दूध अन्हाबहु। बड़े देवता इनहिं मनावहु ॥
गोबर्धन दूधहिं अन्हवाए। देवराज कहि माथ नवाए ॥
नयौ देवता कान्ह पुजावत। नर-नारी सब देखन आवत ॥
सूर स्याम गोबर्धन थाप्यौ। इंद्र देखि रिस करि तनु काँप्यौ ॥
॥९०६॥१५२४॥

राग बिलावल

देखि इंद्र मन गर्व बढ़ायौ। ब्रज लोगनि मोकौं बिसरायौ ॥
अहिर जाति ओछी मति कीन्ही। अपनी ज्ञाति प्रगट करि दीन्ही ॥
पूजत गिरिहिं कहा मन आई। गिरि समेत ब्रज देउँ बहाई ॥
देखौं धौं कितनौ सुख पैहैं। मेरैं मारत काहि मनैहैं ॥
परबत तब इनकौं क्यौं राखत। बारंबार यहै कहि भाखत ॥
पूजत गिरि अति प्रेम बढ़ाए। सपनैं कौ सुख लेत मनाए ॥
सूरदास सुरपति की बानी। ब्रज बोरौं परलै के पानी ॥
॥९०७॥१५२५॥

राग बिलावल

स्याम कह्यौ तब भोजन ल्यावहु। गिरि आगैं सब आनि धराबहु ॥

सुनत नंद तहँ ग्वाल बुलाए। भोग-समग्री सबै मँगाए ॥
षट रस की बहु भाँति मिठाई। अन्य भोग अतिहीं बहुताई ॥
ब्यंजन बहुत भाँति पहुचाए। दधि लवनी मधु-माट धराए ॥
दही बरा बहुतै परुसाए। चंद्रहिँ की पटतर ते पाए ॥
अन्नकूट जैसौ गोबर्धन। अरु पकवान धरे चहुँ कोदन ॥
परुसत भोजन प्रातहिँ तैँ सब। रबि माथे तैँ ढरकि गयौ अब ॥
गोपनि कह्यौ स्याम ह्याँ आवहु। भोग धर्‌यौ सब गिरिहिँ जँवावहु ॥
सूर स्याम आपुनही भोगी। आपुहिँ माया आपुहिं जोगी ॥
॥६०८॥१५२६॥

राग बिलावल

कान्ह कह्यौ नंद भोग लगावहु। गोप महर उपनंद बुलावहु ॥
नैन मूँदि कर जोरि मनावहु। प्रेम सहित देवहिँ सु चढ़ावहु ॥
मन मैं नैंकु खुटक जिनि राखहु। दीन बचन मुख तैँ जिन माषहु ॥
ऐसी बिधि गिरि परसत ह्वैहै। सहस भुजा धरि भोजन खैहै ॥
सूरदास प्रभु आपु पुजावत। यह महिमा कैसैँ कोउ पावत ॥
॥६०६॥१५२७॥

राग बिलावल

स्याम कही सोई सब मानी। पूजा की बिधि हम अब जानी ॥
नैन मूँदि कर जोरि बुलायौ। भाव भक्ति सौँ भोग लगायौ ॥
बड़े देव गिरिवर सबहीँ के। भोजन करहु कृपा करि नीके ॥
सहस भुजा धरि दरसन दीन्हौ। जै-जै धुनि नभ देवनि कीन्हौ ॥
भोजन करत सबनि के आगे। सुर-नर-मुनि सब देखन लागे ॥
देखि थकित सब ब्रज की बाला। देखत नंद गोप सब ग्वाला ॥
सूर स्याम जन के सुखदाई। सहस भुजा धरि भोजन खाई ॥
॥६१०॥१५२८॥

राग बिलावल

जँवत देव नंद सुख पायौ। कान्ह देवता प्रगट दिखायौ ॥
ब्रजबासी गिरि जँवत देख्यौ। जीवन जन्म सफल करि लेख्यौ ॥
ललिता कहति राधिका आगे। जँवत कान्ह नंद कर लागे ॥
मैँ जानी हरि की चतुराई। सुरपति मेटि आपु बलि खाई ॥

उत जेँवत इत बातनि पागे। कहत स्याम गिरि जेँवन लागे॥
मैँ जो बात कही सो आई। सहस भुजा धरि भोजन खाई॥
और देव इनकी सरि नाहीँ। इत बोधत उत भोजन खाहीँ॥
सूरदास प्रभु की यह लीला। सदा करत व्रज मैँ यह क्रीला॥
॥६११॥१५२६॥

राग बिलावल

यह छबि देखि राधिका भूली। बात कहति सखियनि सौँ फूली॥
आपुहि देवा, आपु पुजेरी। आपुहिँ जेँवत भोजन-ढेरी॥
इक वृषभानु बिलोवन हारी। नाम ताहि बदरौला नारी॥
ताकी बलि लई भुजा पसारी। अति आतुर जेँवत हैँ भारी॥
उत गिरि संग खात बलिहारी। बदरौला की बलि रुचिकारी॥
सूरदास प्रभु जेँवनहारी। गिरि बपुरे सौ को अधिकारी॥
॥६१२॥१५३०॥

राग बिलावल

इतहिँ स्याम गोपनि सँग ठाढ़े। भोजन करत अधिक रुचि बाढ़े॥
गिरि तन सोभा स्याम बिराजै। स्यामहिँ छबि गिरिवर की छाजै॥
गिरिवर उर पीतांबर डारे। मोतिनि की माला उर भारे॥
अँग भूषन, स्रवननि मनि कुंडल। मोर कुमुट सिर अलक सु झुंडल॥
छबि निरखतिँ सब घोष-कुमारी। गोबर्धन-छबि स्यामऽनुहारी॥
सूर स्याम लीला-रस-नायक। जनम-जनम भक्तनि सुखदायक॥
॥६१३॥१५३१॥

राग बिलावल

भोजन करत देव भए परसन। माँगहु नंद तुम्हारैँ जो मन॥
भली करी तुम मेरी पूजा। सेवक तुम सौँ और न दूजा॥
जोइ माँगौ सोइ फल मैँ दैहौँ। जहाँ भाव ताही पै रैहौँ॥
मैँ सेवा बस भयौ तुम्हारैँ। जोइ फल चाहौ लेहु सबारैँ॥
यह सुनि चकित भए नर नारी। भोजन कियौ प्रथमहीँ भारी॥
अब देखौ मुख बात कहत है। ऐसौ देव कहाँ त्रिजगत है॥
कान्ह कह्यौ कछु माँगहु इनसौँ। गिरि-देवता देत परसन सौँ॥

सूर स्याम देवता आपु हैं। ब्रजजन के ये हरत तापु हैं ॥

॥६१४॥१५३२॥

राग बिलावल

नंद कह्यौ कह माँगौं स्वामी। तुम जानत सब अंतरजामी ॥
अष्ट सिद्धि नवनिधि तुम दीन्हौ। कृपा-सिंधु तुम्हरोई कीन्हौ ॥
कुसल रहैं बलराम कन्हाई। इनहीं कारन करत पुजाई ॥
देवनि के मनि गिरिवर तुम हौ। जहँ-तहँ ब्यापक पूरन सब हौ ॥
तुम हरता तुम करता घर के। देखि थकित नर-नारि नगर के ॥
बड़ौ देवता स्याम बतायौ। प्रगट भयौ सब भोजन खायौ ॥
सूर स्याम कैं जोइ मन आवै। सोइ सोइ नाना रूप बनावै।

॥६१५॥१५३३॥

राग बिलावल

माँगि लेहु कछु और पदारथ। सेवा सबै भई अब स्वारथ ॥
फल माँग्यौ बलराम कन्हाई। ये दोउ रैहैं कुसल सदाई ॥
इनहीं तैं तुम हमकौं जान्यौ। तब तुम गिरि गोबर्धन मान्यौ ॥
करत बृथा तुम इंद्र-पुजाई। मेरी दीन्ही है ठकुराई ॥
कान्ह तुम्हारौ मोकौं जानै। इनकौं रहियौ तुम सब मानै ॥
इंद्र आइ चढ़िहै ब्रज ऊपर। यह कहिहै नहिं राखैं भूपर ॥
नैंकु नहीं कछु बासैं ह्वैहै। स्याम उठाइ मोहिं कर लैहै ॥
सूर स्याम गिरिवर की बानी। ब्रज जन सुनत सत्य करि मानी ॥

॥६१६॥१५३४॥

राग बिलावल

कौतुक देखत सुर-नर भूले। रोम रोम गदगद सब फूले ॥
सुरनि बिमान सुमन बरषाए। जब धुनि सब्द देव नभ गाए ॥
देव कह्यौ ब्रज बासिनि सैं तब। पूजा भली करी मेरी सब ॥
जाहु सबै मिलि सदन करौ सुख। स्याम कहत गिरि-गोबर्धन-मुख ॥
ग्वाल करत अस्तुति सब ठाढ़े। प्रेम-भाव सब कैं चित बाढ़े ॥
भवन जाहु कही श्रीमुख बानी। भोजन सेस स्याम कर आनी ॥
बाँटि प्रसाद सबनि कैं दीन्हौ। ब्रज-नारी-नर आनँद कीन्हौ ॥
सूर स्याम गोपनि सुखकारी। कह्यौ चलौ ब्रज कौं नर-नारी ॥

॥६१७॥१५३५॥

दोउ कर जोरि भए सब ठाढ़े। धन्य धन्य भक्तनि के चाढ़े॥
तुम भुक्ता तुमहीं पुनि दाता। अखिल-ब्रह्मंड लोक के ज्ञाता॥
तुमकौं भोजन कौन करावै। हित कैं बस तुमकौं कोउ पावै॥
तुम लायक हमरै कछु नाहीं। सुनत स्याम ठाढ़े मुसुकाहीं॥
ललिता सखी देवता चीन्हौ। चंद्रावलि राधहिं कहि दीन्हौ॥
देव बड़ौ यह कुँवर कन्हाई। कृपा जानि हरि ताहि चिन्हाई॥
सूर स्याम कहि प्रगट सुनाई। भए तृप्त भोजन दिवराई॥
॥६१८॥१५३६॥

परसत चरन चलत सब घर कौं। जात चले सब घोष नगर कौं॥
सुख समेत मग जात चले सब। दूनी भीर भई तब तैं अब॥
कोउ आगैं कोउ पाछैं आवत। मारग मैं कहुँ ठौर न पावत॥
प्रथमहिं गए डगर तिन पायौ। पाछे के लोगनि पछितायौ॥
घर पहुँच्यौ अबहीं नहिं कोई। मारग मैं अटके सब लोई॥
डेरा परे कोस चौरासी। इतने लोग जुरे ब्रजबासी॥
पैंड़ो चलन नहीं कोउ पावत। कितिक दूरि ब्रज पूछत आवत॥
सूर स्याम गुन-सागर नागर। नूतन लीला करी उजागर॥
॥६१९॥१५३७॥

कोउ पहुँचे कोउ मारग माहीं। बहुत गए घर, बहुतक जाहीं॥
काहू कैं मन कछु दुख नाहीं। अरसि-परसि, हँसि-हँसि लपटाहीं॥
आनँद करत सबै ब्रज आए। निकटहिं आइ लोग नियराए॥
भीर भई बहु खोरि जहाँ तहँ। जैसैं नदी मिलहिं सागर महँ॥
नर-नारी सरिता सब आगर। सिंधु मनौ यह घोष उजागर॥
मथनहार हरि, रतन कुमारी। चंद्र-बदनि राधा सुकुमारी॥
सूर स्याम आए नँद-साला। पहुँचे घरनि आइ नर-बाला॥
॥६२०॥१५३८॥

बड़ौ देवता कान्ह पुजायौ। ग्वाल गोप हँसि अंकम लायौ॥
कहा धन्य, धनि जसुमति जायौ। ब्रज धनि-धनि तुम तैं कहवायौ॥
धन्य नंद जिनि तुम सुत पायौ। धनि-धनि देव प्रगट दरसायौ॥
मेटि इंद्र-पूजा, गिरि पूज्यौ। परसन हमहिं सदा प्रभु हूज्यौ॥

कहा इंद्र बपुरौ किहिँ लायक। गिरि देवता सबहिँ के नायक ॥
सूरदास प्रभु के गुन ऐसे। भक्तनि बस दुष्टनि कौँ नैसे ॥
॥६२१॥१५३६॥

हरि सबकैँ मन यह उपजाई। सुरपति निंदत गिरिहिँ बड़ाई ॥
बरष बरष प्रति इंद्र पुजाई। कबहुँ प्रसन्न भयौ नहिँ आई ॥
पूजत रहे बृथाहीँ सुरपति। सब मुख यह बानी घर-घर-प्रति ॥
बड़ौ देव यह गिरि गोवर्धन। यहै कहत ब्रज, गोकुलपुर-जन ॥
तहाँ दूत सब इंद्र पठाए। ब्रज-कौतुक देखन कौँ आए ॥
घर-घर कहत बात नर नारी। दूत सुन्यौ सो स्रवन पसारी ॥
मानत गिरि, निंदत सुरपति कौँ। हँसत दूत-ब्रज-जन-गई मति कौँ ॥
सूर सुनत दूतनि रिस पाए। उठि तुरतहिँ सुर-लोकहिँ आए ॥
ब्रह्म दई जाकौँ ठकुराई। त्रिदस कोटि देवनि के राई ॥
गिरि पूज्यौ तिनहीँ बिसराई। जाति-बुद्धि इनकैँ मन आई ॥
सिव-बिरंचि जाकौँ कहैँ लायक। जाके हैँ मघवा से पायक ॥
यह कहतहिँ आए सुरलोकहिँ। पहुँचे जाइ इंद्र के ओकहिँ ॥
दूतनि ऐसी जाइ सुनाई। बैठे जहाँ सुरनि के राई ॥
कर जोरे सनमुख भए आई। पूछि उठे ब्रज की कुसलाई ॥
दूतनि ब्रज की बात सुनाई। तुमहिँ मेटि-पूज्यौ गिरि जाई ॥
तुमहिँ निंदि गिरिवरहिँ बड़ाई। यह सुनतहिँ रिस देह कँपाई ॥
सूर स्याम यह बुद्धि उपाई। ज्यौँ जानै ब्रज मैँ जदुराई ॥
॥६२२॥१५४०॥

ग्वालनि मोसौँ करी ढिठाई। मोकौँ अपनी जाति दिखाई ॥
तैँतिस कोटि सुरनि कौ राई। तिहूँ भुवन भरि चलति बड़ाई ॥
साहिब सौँ जो करै धुताई। ताकौँ नहिँ कोऊ पतियाई ॥
इन अपनी परतीति घटाई। मेरैँ बैर बाँचिहैँ भाई ? ॥
नई रीति यह अबहिँ चलाई। काहू इनहिँ दियौ बहकाई ॥
ऐसी मति अब कैँ इन पाई। काकी सरन रहैँगे जाई ॥
इन दीन्हौ मोकौँ बिसराई। नंद आपनी प्रकृति गँवाई ॥
जानी बात बुढ़ाई आई। अहिर जाति कोऊ न पत्याई ॥
मातु पिता नहिँ मानैँ भाई। जानि बूझि इन करी धिगाई ॥

मेरी बलि परबतहिँ चढ़ाई। गिरिवर सह ब्रज देहुँ बहाई ॥
सूरदास सुरपति रिस पाई। कीरी तनु ज्यौं पंख उपाई ॥
॥६२३॥१५४१॥

मोकौं निदि पर्वतहिँ वंदत। चारा कपट पंछि ज्यौं फंदत ॥
मरन काल ऐसी बुधि होई। कछू करत कछुवै वह जोई ॥
खेलत खात रहे ब्रज भीतर। नान्हे लोग तनक धन ईतर ॥
समै समै बरषौं प्रति पालौं। इनकी बुद्धि इनहिं अब घालौं ॥
मेरैं मारत कौन राखिहै। अहिरनि कैं मन यहै काषिहै ॥
जो मन जाकैं सोइ फल पावै। नीम लगाइ आम को खावै ॥
विष कैं बृच्छ बिषहि फल फलिहै। तामैं दाख कहौ क्यौं मिलिहै ॥
अगिनि बरत देखत कर नावै। कहा करै तिहिं अगिनि जरावै ॥
सूरदास यह सब कोउ जानै। जो जाकौ सो ताकौ मानै ॥
॥६२४॥१५४२॥

परबत पहिलेहिँ खोदि बहाऊँ। बज्रनि मारि पताल पठाऊँ ॥
फूलि फूलि जिहिँ पूजा कीन्हौ। नैंकु न राखौं ताकौं चीन्हौ ॥
नंद गोप नैननि यह देखैं। बड़े देबता कौ सुख पेखैं ॥
निंदत मोहिँ करी गिरि-पूजा। जासौं कहत और नहिँ दूजा ॥
गरब करत गोबरधन गिरि कौ। परबत माहिँ आहि सो किरिकौ ॥
डूँगर कौ बल उनहिँ बताऊँ। ता पाछैं ब्रज खोदि बहाऊँ ॥
राखौं नहिँ काकूँ सब मारौं। ब्रज गोकुल कौं खोज निवारौं ॥
को जानै कहँ गिरि कहँ गोकुल। भुव पर नहिँ राखौं उनकौ कुल ॥
सूरदास यह इंद्र-प्रतिज्ञा। ब्रज बासिनि सब करी अवज्ञा ॥
॥६२५॥१५४३॥

सुरपति क्रोध कियौ अति भारे। फरकत अधर नैन रतनारे ॥
भृत्य बुलाए दै-दै गारी। मेघनि ल्यावौ तुरत हँकारी ॥
एक कहत धाए सौ चारी। अति डरपे तन की सुधि हारी ॥
मेघवर्त्त, जलवर्त्त बुलावहु। सैन साजि तुरतहिँ लै आवहु ॥
कापर क्रोध कियौ अमरापति। महाप्रलय जिय जानि डरे अति ॥
मेघनि सौं यह बात सुनाई। तुरत चलौ बोले सुरराई ॥

सेना सहित बुलायौ तुमकौं। रिस करि तुरत पठायौ हमकौं।।
बेगि चलौ कछु विलँब न लावहु। हमहिं कह्यौ अबहीं लै आवहु।।
मेघवर्त्त सब सैन्य बुलाए। महाप्रलय के जे सब आए।।
कछु हरषे कछु मनहिं सकाने। प्रलय आहि कै हमहिं रिसाने।।
चूक परी हम तैं कछु नाहीं। यह कहि-कहि सब आतुर जाहीं।।
मेघवर्त्त, बलवर्त्त, बारिव्रत। अनिलवर्त्त, नलबर्त्त, बज्रव्रत।।
बोलत चले आपनी बानी। प्रभु सनमुख सब पहुँचे आनी।।
गर्जि गर्जि घहरातहिं आए। देव देव कहि माथ नवाए।।
सूरदास डरपत सब जलधर। हम पर क्रोध किधौं काहू पर।।
।।६२६।।१५४४।।

चितवतहीं सब गए झुराई। सकुचि कह्यौ कापर रिस पाई।।
छमा करौ आयसु हम पावैं। जापर कहौ ताहि पर धावैं।।
सैन सहित प्रभु हमहिं बुलाए। आज्ञा सुनत तुरत उठि धाए।।
ऐसौ कौन जाहि प्रभु कोपे। जीव नाम सब तुम्हरेहिं रोपे।।
सूर कही यह मेघनि बानी। यह सुनि सुनि रिस कछुक बुझानी।।
।।६२७।।१५४५।।

मेघनि सौं बोले सुरराई। अहिरनि मोसौं करी ढिठाई।।
मेरी दीन्ही करत बड़ाई। जानि बूझि मोहिं दियौ भुलाई।।
सदा करत मेरी सेवकाई। अब सेवत परबत कहँ जाई।।
इहीं काज तुमकौं हँकराए। भली करी सैना लै आए।।
गाइ गोप ब्रज सबै बहावहु। पहिलैं परबत खोदि ढहावहु।।
जब यह सुनी इंद्र की बानी। मेघनि मन तब धीरज आनी।।
सूरदास यह सुनि घन तमके। कापर क्रोध करत प्रभु जमके।।
।।६२८।।१५४६।।

रिस लायक तापर रिस कीजै। इहिं रिस तैं प्रभु देही छीजै।।
तुम प्रभु हमसे सेवक जाकैं। ऐसौ कौन रहै तुम ताकैं।।
छिनहीं मैं ब्रज धोइ बहावैं। डूँगर कौ नहिं नाउँ बचावैं।।
आपु छमा करियै दिवराई। हम करिहैं उनकी पहुनाई।।
वह सुनिकै हरषित मन कीन्हौ। आदर सहित पान कर दीन्हौ।।

प्रथमहिँ देहु पहार बहाई। मेरी बलि ओहीँ सब खाई ॥
सूर इंद्र मेघनि समुझावत। हरषि चले घन आदर पावत ॥
॥६२६॥१५४७॥

आयसु पाइ तुरतही धाए। अपनी सैना सबनि बुलाए ॥
कह्यौ सबनि ब्रज ऊपर धावहु। घटा घोर करि गगन छपावहु ॥
मेघबर्त्त जलबर्त्तक आगे। और मेघ सब पाछे लागे ॥
गरजि उठे ब्रज ऊपर जाई। सब्द कियौ आघात सुनाई ॥
ब्रज के लोग डरे अति भारी। आजु घटा देखियत हैँ कारी ॥
देखत-देखत अति अधिकायौ। नैँकुहिँ मैँ रबि गगन छपायौ ॥
ऐसे मेघ कबहुँ नहिँ देखे। अति कारे काजर अवरेखे ॥
सुनहु सूर ये मेघ डरावन। ब्रजबासी सब कहत भयावन ॥
॥६३०॥१५४८॥

गरजि-गरजि ब्रज घेरत आवैँ। तरपि-तरपि चपला चमकावैँ ॥
नर नारी सब देखत ठाढ़े। ये बादर 'परलय के काढ़े ॥
दरदरात, घहरात प्रबल अति। गोपी-ग्वाल भए औरै गति ॥
कहा होन अबहीँ यह चाहत। जहँ तहँ लोग यहै अवगाहत ॥
खन भीतर, खन बाहिर आवत। गगन देखि धीरज बिसरावत ॥
सूर स्याम यह करी पुजाई। तातैँ सुरपति चढ़्यौ रिसाई ॥
॥६३१॥१५४९॥

फिरत लोग जहँ तहँ बितताने। को हैँ अपने कौन बिराने ॥
ग्वाल गए जे धेनु चरावन। तिनहिँ पर्‍यौ बन माँझ परावन ॥
गाइ बच्छ कोऊ न सँभारैँ। जिय की सबकौँ परी खँभारैँ ॥
भागे आवत ब्रजही तन कौँ। बिपति परी अति बन ग्वालनि कौँ ॥
अंध धुंध मग कहूँ न सूझै। ब्रज भीतर ब्रजही कौँ बूझैँ ॥
जैसैँ तैसैँ ब्रज पहिचानत। अटकरहीँ अटकर करि आनत ॥
खोजत फिरैँ आपने घर कौँ। कहा भयौ इहिँ घोष-सहर कौँ ॥
रोवत डोलैँ घरहिँ न पावैँ। घर द्वारे घर कौँ बिसरावैँ ॥
सूर स्याम सुरपति बिसरायौ। गिरि के पूजैँ यह फल पायौ ॥
॥६३२॥१५५०॥

जमुना जलहिँ गईँ जे नारी। ढारि चलीँ सिर गागरि भारी ॥
देखौँ मैँ बालक कत छाँड़्यौ। एक कहति आँगन दधि माँड्यौ ॥
एक कहति मारग नहिँ पावति। एक सामुहैँ बोलि बतावति ॥
ब्रजबासी सब अति अकुलाने। काल्हिहि पूज्यौ फल्यौ बिहाने ॥
कहाँ रहे अब कुँवर कन्हाई। गिरि गोबरधन लेहिँ बुलाई ॥
जेँवन सहस भुजा धरि आवै। अब द्वै भुज हमकौँ दिखरावै ॥
ये देवता खात ही लौँ के। पाछे पुनि तुम कौन, कहौ के ॥
सूर स्याम सपनौ प्रगटायौ। घर के देव सबनि बिसरायौ ॥
॥६३३॥१५५१॥

गर्जत घन अतिहीँ घहरावत। कान्ह सुनत आनंद बढ़ावत ॥
कौतुक देखत ब्रज-लोगन के। निकट रहत नित ही निज जन के ॥
इक सैँतत घर के सब बासन। लीन्हे फिरत घरहिँ के पासन ॥
एक कहत जिय की नहिँ आसा। देखत सबै दृष्ट के नासा ॥
सूर स्याम जानत ये गाँसा। कह पानी कह करै हुतासा ॥
॥६३४॥१५५२॥

मेघवर्त्त मेघनि समुझावत। बार-बार गिरि तनहिँ बतावत ॥
पर्वत पर बरसहु तुम जाई। यहै कही हमकौँ सुरराई ॥
ऐसैँ देहु पहार बहाई। नाउँ रहै नहिँ ठौर जनाई ॥
सुरपति की बलि सब इहिँ खाई। ताकौ फल पावै गिरिराई ॥
जेँवत काल्हि अधिक रुचि पाई। सलिल देहु जिमि तृषा बुझाई ॥
दिना चारि रहते जग ऊपर। अब न रहन पावैँ या भूपर ॥
सूर मेघ सुरपतिहिँ पठाए। ब्रज के लोगनि तुमहिँ बिहाए ॥
॥६३५॥१५५३॥

बरसत हैँ घन गिरि के ऊपर। देखि-देखि ब्रज लोग करत डर ॥
ब्रजबासी सब कान्ह बतावत। महाप्रलय-जल गिरिहिँ ढहावत ॥
झरहरात झरपत झर लावत। गिरिहिँ धोइ ब्रज ऊपर आवत ॥
बिकल देखि गोकुल के बासी। दरस दियौ सबकौँ अबिनासी ॥
अबिनासी के दरसन पाए। तब सब मन परतीति बढ़ाए ॥
नंद जसोदा सुत-हित जानैँ। और सबै मुख अस्तुति गानैँ ॥

बार-बार यह कहि-कहि भाखै। अब सब ब्रज कौँ येई राखै॥
बरसत गिरि झरपत ब्रज ऊपर। सो जल जहँ तहँ पूरत भू पर॥
सूरदास प्रभु राखि लेहु अब। जैसैँ राखे अघा-बदन तब॥
॥६३६॥१५५४॥

राखि लेहु अब नंद-कुमार। गोसुत गाइ फिरत बिकरार॥
बरसत बूँद लगै जनु सायक। राखि लेहु ब्रज गोकुल-नायक॥
तुम बिन कौन सहाइ हमारैँ। नंद-सुवन अब सरन तुम्हारैँ॥
सरन सरन जब ब्रज-जन बोले। धीर-बचन दै लै दुख मोले॥
यह बोले हँसि कृष्ण मुरारी। गिरि कर धरि राखौँ नर नारी॥
सूर स्याम चितए गिरिवर तन। बिकल देखि गो,गोसुत, ब्रजजन॥
॥६३७॥१५५५॥

गोबर्धन लीन्हौ उचकाई। देखि बिकल नर नारि कन्हाई॥
आपुन सुख ब्रज-जन बितताए। बूँद कयक ब्रज पर बरषाए॥
वै डरपत आपुन हरषत मन। राखे रहे जहाँ तहँ ब्रज जन॥
घरिक देखि मनहाँ सुख दीन्हौ। बाम भुजा धरि गिरिवर लीन्हौ॥
सूर स्याम गिरि करजहिँ राख्यौ। धीर-धीर सब सौँ कहि भाख्यौ॥
॥६३८॥१५५६॥

स्याम धर्‌यौ गिरि गोबर्धन कर। राखि लिये ब्रज के नारी-नर॥
गोकुल ब्रज राख्यौ सब घर-घर। आनँद करत सबै ताहीँ-तर॥
बरषत मुसलधार मघवा बर। बूँद न आवत नैँकहुँ भू पर॥
धार अखंडित बरषत झर-झर। कहत मेघ धावहु ब्रज गिरिवर॥
सलिल प्रलय कौ टूटत तर-तर। बाजत सबदानीर कौ धर-धर॥
वै जानत जल जात है दर-दर। बरषत कहत गयौ गिरि कौ जर॥
सूरदास प्रभु कान्ह गर्ब-हर। बीचहिँ जरत जात जल अंबर॥
बोलि लिए सब ग्वाल कन्हाई। टेकहु गिरि गोबर्धनराई॥
आजु सबै मिलि होहु सहाई। हँसत देखि बलराम कन्हाई॥
लकुट लिये कर टेकत जाई। कहत परस्पर लेहु उठाई॥
बरषत इंद्र महा झर लाई। अति जल देखि सखा डरपाई॥
नंद-नदन बिनु को गिरि धारै। ऐसे बल बिनु कौन सम्हारै॥
नष तैँ गिरैँ कौन गिरि राखै। बार-बार, रहि-रहि, यह भाखै॥

सूर स्याम गिरिवर कर लीन्हौ। बरषत मेघ चकित मन कीन्हौ ॥
॥६३९॥१५५७॥

बात कहत आपुस मैं बादर। इंद्र पठाए हम करि आदर ॥
अब देखत कछु होत निरादर। बरषि-बरषि घन भए मन कादर ॥
खीझत कहत मेघ सबहीं सौं। बरषि कहा कीन्हौ तबहीं सौं ॥
महा प्रलय कौ जल कह राखत। डारि देहु ब्रज पर कह ताकत ॥
क्रोध सहित फिरि बरषन लागे। ब्रजबासी आनँद अनुरागे ॥
ग्वाल कहत तुम धन्य कन्हाई। बाम भुजा गिरि लियौ उठाई ॥
सूर स्याम तुम सरि कोउ नाहीं। बरषत घन गिरि देखि खिस्याहीं ॥
॥६४०॥१५५८॥

प्रलय मेघ लै आए बाने। आपुस ही मैं सबै रिसाने ॥
सात-दिवस जल बरषि बुढ़ाने। चकृत भए, तन-सुरति भुलाने ॥
फिरि देखत जल कहाँ ढराने। महा प्रलय के सब निझराने ॥
झुरि झुरि सब बादर बितताने। बूँद नहीं घन नैंकु बचाने ॥
जलद अपुन कौंधिक करि माने। फिरि सब चले अतिहिं विकलाने ॥
सूर स्याम गोबरधन राने। मूरख सुरपति अजहुँ न जाने ॥
॥६४१॥१५५९॥

मेघ चले मुख फेर अमरपुर। करी पुकार जाइ आगैं सुर ॥
स्रम तैं टूटि गये सबके उर। जल बिनु भए सबै घन धूँधुर ॥
की मारौ की सरन उबारौ। हम भैं कहा रह्यौ अब गारौ ॥
जहँ-तहँ बादर गोवत बोलैं। स्रम अपनौ प्रभु आगैं खोलैं ॥
सात दिवस नहिँ मिटी लगारा। बरष्यौ सलिल अखंडित धारा ॥
महा प्रलय-जल नैंकु न उबरयौ। ब्रजबासिनि नीकैं अब निदरयौ ॥
वैसोइ गिरि वैसेइ ब्रजबासी। नैंकु बूँद नहिँ धरनि प्रकासी ॥
सूर सुनत सुरपतिहिं उदासी। देख्यौ यौं आए जल-रासी ॥
॥६४२॥१५६०॥

चकित भयौ ब्रज-चाह सुनाई। पुनि पुनि बूझत मेघ बुलाई ॥
कहाँ गयौ जल प्रलय काल कौ। कहा कहौं सब तन बेहाल कौ ॥

कहा करैं अपनौ बल कीन्हौ। ब्याकुल रोइ रोइ तब दीन्हौ ॥
दंड एक बरषैं मन लाई। पूरन होत गगन लौं आई ॥
परबत मैं कोउ है अवतारा। सुरपति मन मैं करत बिचारा ॥
सूर इंद्र सुर-गन हँकराए। आज्ञा सुनत तुरत सब आए ॥
॥६४३॥१५६१॥

सुरपति आगैं भए सब ढाढ़े। सबहिनि कैं मन चिंता डाढ़े ॥
कौन काज सुरराज बुलाए। सकुच सहित पूछत सब आए ॥
कहा कहौं कछु कहत न आवै। मेघवनि की गति सुरनि बतावै ॥
ब्रजबासिनि मोकौं बिसरायौ। भोजन लै सब गिरिहिं चढ़ायौ ॥
मोकौं मेटि परबतहिं थाप्यौ। तब मैं थरथराइ रिस काँप्यौ ॥
सूरदास यह सुरनि सुनाई। ता कारन तुम लिये बुलाई ॥
॥६४४॥१५६२॥

सुरनि कही सुरपति के आगैं। सनमुख कहत सकुच हम लागै ॥
सकुचत कत सो बात सुनावहु। नीकैं करि मोकौं समुझावहु ॥
नीकी भाँति सुनौ सुरराई। ब्रज मैं ब्रह्म प्रगट भए आई ॥
तुम जानत जब धरनि पुकारी। पापहिं पाप भई अति भारी ॥
पौढ़ैं सेष संग श्री प्यारी। ते ब्रज भीतर हैं बपुधारी ॥
ब्रह्म कथा कहि आदि पसारी। तिन सौं हम कीन्ही अधिकारी ॥
सूरदास प्रभु गिरि कर धारी। यह सुनि इंद्र डर्यौ मन भारी ॥
॥६४५॥१५६३॥

यह मोकौं तबहीं न सुनाई। मैं बहुतै कीन्ही अधमाई ॥
पूरन ब्रह्म रहे ब्रज आई। काहू तौ मोहिं सुधि न दिवाई ॥
सुरनि कही नहिं करी भलाई। आजु कह्यौ जब महत गँवाई ॥
यह सुनि अमर गए सरमाई। सुनहु राज हम जानि न पाई ॥
अब सुनिय आपुन मन लाई। ब्रजहिं चलौ नहिं और उपाई ॥
वै हैं कृपा-सिंधु करुनाकर। छमा करहिंगे श्री सुंदर वर ॥
और कछू मन मैं जिनि आनहु। हम जो कहैं सत्य करि मानहु ॥
सूर सुरनि यह बात सुनाई। सुरपति सरन चल्यौ अकुलाई ॥
॥६४६॥१५६४॥

जब जान्यौ ब्रज-देव मुरारी। उतरि गई तब गर्ब-खुमारी ॥
व्याकुल भयौ डरयौ जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी ॥
बैठि रहे तैं नहिँ बनि आवै। ऐसौ को जो मोहिँ बचावै ॥
बार-बार यह कहि पछितावै। जाउँ सरन बल मनहिँ धरावै ॥
जाइ परौँ चरननि सिर धारैँ। की मारौ की मोहिँ उबारौ ॥
अमरनि कह्यौ करौ असवारी। ऐरावत कौँ लेहु हँकारी ॥
सूर सरन सुरपति चल्यौ धाई। लिये अमर-गन संग लगाई ॥
॥६४७॥१५६५॥

करत बिचार चल्यौ सन्मुख ब्रज। लटपटात पग धरत धरनि गज ॥
कोटि इंद्र जाकैं रोमनि रज। ब्रज अवतार लियौ माया तज ॥
उतरि गगन पुहुमी पर आए। ब्रजबासी सब देखन धाए ॥
चकित भए सब मनहिँ भ्रमाए। ब्रज ऊपर आवत ये धाए ॥
कहत सुनी लोगनि मुख बाता। येई हैँ सुरपति सुर त्राता ॥
देखि सैन ब्रज लोग सकात। यह आयौ कीन्हैँ कछु घात ॥
सूर स्याम कौँ जाइ सुनायौ। सुरपति सैन साजि ब्रज आयौ ॥
॥६४८॥१५६६॥

निकट जानि त्याग्यौ बाहनि कौँ। ब्रज बाहिर राख्यौ साहनि कौँ ॥
सकुचत चल्यौ कृष्न कैँ सन्मुख। कछु आनंद कछुक मन मैँ दुख ॥
पर्यौ धाइ चरननि सुरराई। कृपा-सिंधु राखौ सरनाई ॥
कियौ अपराध बहुत बिन जाने। प्रभु उठाइ लिये हँसि मुसुकाने ॥
श्रीमुख कह्यौ उठहु सुर-राजा। बदन उठाइ सकत नहिँ लाजा ॥
ये दिन वृथा गए बेकाजा। तुमकौँ नहिँ जान्यौ ब्रज-राजा ।
सूर स्याम लीन्हौ उरलाई। असरन सरन निगम यह गाई ॥
॥६४९॥१५६७॥

हँसि-हँसि कहत कृष्न मुख बानी। हम नाहिंन रिस तुम पर आनी ॥
तुम कत अति संका जिय जानी। भली करी ब्रज बरष्यौ पानी ॥
यह सुनि इंद्र अतिहिँ सकुचान्यौ। ब्रज अवतार नहीँ मैँ जान्यौ ॥
राखि लेहु त्रिभुवन के नाथा। नहिँ मौतैं कोउ और अनाथा ॥
फिरि-फिरि चरन धरत लै माथा। छमा करहु राखहु मोहिं साथा ॥

रबि आगैं खद्योत प्रकासा । मनि आगैं ज्यौं दीपक नासा ॥
कोटि इंद्र रचि कोटि बिनासा । मोहिँ गरीब की केतिक आसा ॥
दीन वचन सुनि भव के बासा । छमा भए जल पस्यौ हुतासा ॥
अमरापति चरननि तर लोटत । रही नहीँ मन मैँ कछु खोटत ॥
उभय भुजा करि लियौ उठाई । सुरपति-सीस अभय कर नाई ॥
हँसि दीन्ही प्रभु लोक-बड़ाई । श्रीमुख कह्यौ करौ सुख जाई ॥
धन्य-धन्य जन के सुखदाई । जै-जै धुनि देवनि मुख गाई ॥
सिव, बिरंचि चतुरानन, नारद । गौरी-सुत दोऊ सँग सारद ॥
रबि, ससि, बरुन, अनल जमराजा । आजु भए सब पूरन काजा ॥
असरन सरन सदा तुव बानौ । यह लीला प्रभु तुमहीँ जानौँ ॥
माता तैँ सुत करै ढिठाई । माता फिरि ताकैँ सुखदाई ॥
ज्यौँ धरनी हल खोदि बिनासै । सनमुख सतगुन फलहिँ प्रकासै ॥
कर कुठार ले तरुहिँ गिरावै । यह काटै वह छाया छावै ॥
जैसैं दसन जीभ दलि जाइ । तब कासौँ सो करै रिसाइ ॥
धनि व्रज धनि गोकुल बृंदाबन । धनि जमुना धनि लता कुंज घन ॥
धन्य नंद धनि जननि जसोदा । बाल-केलि हरिकैं रस मोदा ॥
अस्तुति सुनि मन हरष बढ़ायौ । साधु-साधु कहि सुरनि सुनायौ ॥
तुमहिँ राखि असुरनि संहारौँ । तन धरि धरनी-भार उतारौँ ॥
आवत जात बहुत स्रम पायौ । जाहु भवन करि कृपा पठायौ ॥
कर सिर धरि-धरि चले देव-गन । पहुँचे अमर-लोक आनँद मन ॥
यह लीला सुर घरनि सुनाई । गाइ उठीँ सुर-नारि बधाई ॥
अमरलोक आनंद भए सब । हर्ष सहित आए सुरपति जब ॥
सूरदास सुरपति अति हरष्यौ । जै-जै धुनि सुमननि व्रज बरष्यौ ॥
॥९५०॥१५६८॥

हरि कर तैं गिरिराज उतास्यौ । सात दिवस जल प्रलय सम्हास्यौ ॥
ग्वाल कहत कैसैं गिरि धास्यौ । कैसैं सुरपति-गर्ब निवास्यौ ॥
बज्रायुध छल बरषि सिरान्यौ । पस्यौ चरन जब प्रभु करि जान्यौ ॥
हम सँग सदा रहत है ऐसैं । यह करतूति करत तुम कैसैं ॥
हम हिलि-मिलि तुम गाइ चरावत । नंद-जसोदा-सुवन कहावत ॥
देखि रहीँ सब घोष कुमारी । कोटि काम छबि पर बलिहारी ॥
कर जोरति रबि गोद पसारैं । गिरिवरधर पति होहिँ हमारैं ॥

ऐसौ गिरि गोबर्धन भारी। कब लीन्हौ कब धर्यौ उतारी॥
तनक तनक भुज तनक कन्हाई। यह कहि उठी जसोदा माई॥
कैसैं परबत लियौ उचकाई। भुज चाँपति चूमति बलि जाई॥
बारंबार निरखि पछिताई। हँसत देखि ठाढ़े बल भाई॥
इनकी महिमा काहु न पाई। गिरिवर धर्यौ यहै बहुताई॥
इक इक रोम कोटि ब्रह्मंडा। रबि, ससि, धरनी, धर नव खंडा॥
इहिं ब्रज जन्म लियौ कै बारा। जहाँ तहाँ जल-थल-अवतारा॥
प्रगट होत भक्तनि के काजा। ब्रह्म कीट सम सबके राजा॥
जहँ जह गाढ़ परै तहँ आवैं। गरुड़ छाँड़ि ता सनमुख धावैं॥
ब्रजही मैं नित करत बिहारन। जसुमति-भाव-भक्ति हित-कारन॥
यह लीला इनकौं अति भावै। देह धरत पुनि-पुनि प्रगटावै॥
नैंकु तजत नहिं ब्रज-नर-नारी। इनकैं सुख गिरि धरत मुरारी॥
गर्बवंत सुरपति चढ़ि आयौ। बाम करज गिरि टेकि दिखायौ॥
ऐसे हैं प्रभु गर्ब-प्रहारी। मुख चूमति जसुमति महतारी॥
यह लीला जो नितप्रति गावैं। आपुन सिखि औरनि सिखरावै॥
भक्ति मुक्ति की केतिक आसा। सदा रहत हरि तिनके पासा॥
चतुरानन जाकौ जस गानै। सेस सहस मुख जाहि बखानै॥
आदि अंत कोऊ नहिं पावै। जाकौ निगम नेति नित गावै॥
सूरदास प्रभु सबके स्वामी। सरन राखि मोहिं अंतरजामी॥
॥९५१॥१५६९॥

गोपादि की बातचीत *राग मलार*

हा हा रे हठीले हरि जननी कौ कह्यौ करि इंद्र गौ बरषि गरि अब गिरिवर धरि।
सात द्यौस कीन्ही छाँह नैंकु न पिरानी बाँह अतिहिं कठिन कूट राख्यौ रे छतनि करि॥
सुनि कै जसोदा धाइ निकट गोपाल आइ करौ रे सबै सहाइ कहै नैन जल भरि॥
कुल के देव मनाए दीबे कौं द्विज बुलाए दियौ जाहि जोइ भाए आनँद उमंग भरि॥
भयौ इंद्र-कोप लोप कहत सबै सचोप जियौ रे कन्हैया प्यारौ जाकैं राज सुख करि॥

सूरदास प्रभु गिरिधर कौ कौतुक देखि काम धेनु आयौ लिये इंद्र अपडर डरि ॥६५२॥१५७०॥

राग मलार

देखौ माई बदरनि की बरियाई।
कमल नैन कर भार लिए हैँ, इंद्र ढीठ झरि लाई॥
जाकैँ राज सदा सुख कीन्हौँ, तासौँ कौन बड़ाई।
सेवक करै स्वामि सौँ सरवरि, इन बातनि पति जाई॥
इंद्र ढीठ बलि खात हमारी, देखौ अकिल गँवाई।
सूरदास तिहिँ बन काकौ डर, जिहिँ बन सिंह सहाई॥
॥६५३॥१५७१॥

राग सोरठ

जहाँ-तहाँ तुम हमहिँ उबारयौ।
ग्वाल सखा सब कहत स्याम सौँ, धनि जसुमति अवतारयौ॥
तृनावर्त्त ब्रज पर चढ़ि आयौ, लाग्यौ देन उड़ाइ।
अति सिसुता मैँ ताहि सँहारयौ, परयौ सिला पर आइ॥
फल-जनाइ बालक सँग खेलत, कैसैँ आयौ साथ।
वाहि मारि तुम हमहिँ उबारयौ, ऐसे त्रिभुवन नाथ॥
कागासुर, सकटासुर मारयौ, पय पीवत दनु-नारि।
अघा उदर तैँ हमहिँ बचायौ, बका-वदन धरि फारि॥
कालीदह-जल अँचै गए मरि, तब तुम लियौ जिवाइ।
सूर स्याम सुरपति तैँ राख्यौ, देतौ सबनि बहाइ॥
॥६५४॥१५७२॥

राग बिलावल

ब्रज-जुवतीँ, ब्रज-जन, ब्रजवासी, कहत स्याम-सरि कौन करै।
ब्रज मारत ब्रजनाथहिँ आगैँ, बज्रायुध मन क्रोध करै॥
बल समेत बरषै ब्रज ऊपर, बल मोहन की सुधि न करै।
गरजि गरजि घहराइ गुसा करि, गिरि बोरौँ, यह पैज करै॥
हारि मानि हहरयौ, हरि-चरननि हरषि हियैँ अब हेत करै।
सूरदास गिरिधर करुनामय तुम बिन को प्रभु छमा करै?॥
॥६५५॥१५७३॥

राग सोरठ

जब कर तैं गिरि धरयौ उतारि ।
स्याम कह्यौ बहुरौ गिरि पूजहु, ब्रज-जन लिये उबारि ॥
यह सुनतहिँ मन हरष बढ़ायौ, कियौ पकवान सँवारि ।
बहु मिष्टान्न, बहुत बिधि भोजन, बहु ब्यंजन अनुहारि ॥
परसि धरयौ गोबरधन आगैं, जैंवत अति रुचि भारि ।
सूर स्याम गिरिधर बर माँगतिं, रबि सौं घोष-कुमारि ॥
॥६५६॥१५७४॥

राग मेघ मलार

स्याम गिरिराज क्यौं धरयौ कर सौं ।
अतिहिँ बिस्तार, अति भार, तुम बार अति, बाम भुज टेकि लघु-जात-कर सौं ॥
कहत सब ग्वाल, धनि धन्य नँदलाल, ब्रज धन्य गोपाल, बल-कितिक कर सौं ॥
धन्य जसुमति मात, जिनि जन्यौ तुम तात, चोरि माखन खात, बाँधे कर सौं ॥
कान्ह हँसि कै कह्यौ, तुम सबनि गिरि गह्यौ, रह्यौ है ब्रज बह्यो, लकुट कर सौं ॥
सूर प्रभु के चरित, कहा बल गिरि धरत, चरन-रज लेत सुरराज कर सौं ॥६५७॥१५७५॥

राग कान्हरौ

घर घर तैं ब्रज-जुवती आवतिं ।
दधि अच्छत रोचन धरि थारनि, हरषि स्याम-सिर तिलक बनावतिं ॥
बार-बार निरखतिं अँग-अँग-छबि, स्याम रूप उर माहिँ दुरावतिं ।
नंद-सुवन गिरि धरयौ बाम कर, यह कहि-कहि मन हरष बढ़ावतिं ॥
जिहिँ पूजत सब जनम गँवायौ, सो कैसेहुँ पग छुवन न पावतिं ।
सूर स्याम गिरिधरन माँगि बर, कर जोरतिं कहि बिधिहिँ मनावतिं ॥
॥६५८॥१५७६॥

राग नट

करतैं धरयौ गिरिवर धरनि ।
देखि ब्रज-जन छबि रहे थकि, रूप रति-पति हरनि ॥

लेत बेर न धरत जान्यौ, कहत ब्रज घर-घरनि।
तन ललित भुज अतिहिं कोमल, कियौ बल बहु करनि॥
मोर मुकुट, बिसाल लोचन, श्रवन कुंडल बरनि।
नव जलद, सुरचाप की छबि, जुगल खंजन तरनि॥
बरषि निझरे मेघ-पाइक बहुत कीनी अरनि।
सूर सुरपति हारि मानी तब पर्‍यौ दुहुँ चरनि ॥९५९॥
॥१५७७॥

राग सोरठ

नीकैँ धरनि धर्‍यौ गोपाल।
प्रलय घन जल बरषि सुरपति, पर्‍यौ चरन बिहाल॥
करत अस्तुति नारि-नर-ब्रज, नंद अरु सब ग्वाल।
जहाँ-तहाँ सहाइ हमकौँ, होत हैँ नँदलाल॥
जाहि पूजन डरत मन मैँ, ताहिँ देख्यौ दीन।
त्रिदस-पति सब सुरनि नायक, सी तुमहिँ आधीन॥
देखि छबि अति नंद-सुत की, नारि तन मन वारि।
सूर प्रभु कर तैँ गोबर्धन, धर्‍यौ धरनि उतारि ॥९६०॥१५७८॥

राग बिलावल

घरनि-घरनि ब्रज होति बधाई।
सात बरष कौ कुँवर कन्हैया, गिरिवर धरि जीत्यौ सुरराई॥
गर्ब सहित आया ब्रज बोरन, वह कहि मेरी भक्ति घटाई॥
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ, तब आयौ पाइनि तर धाई॥
कहाँ कहाँ नहिँ संकट मेटत, नर-नारी सब करत बड़ाई॥
सूर स्याम अब कैँ ब्रज राख्यौ, ग्वाल करत सब नंद दोहाई॥
॥९६१॥१५७९॥

राग नट

क्यौँ राख्यौ गोबर्धन स्याम।
अति ऊँचौ, बिस्तार अतिहिँ, वह लीन्हौ उचकि करज-भुज-बाम॥
वह आघात महा परलै-जल, डर आवत मुख लेतहिँ नाम॥
नीकैँ राखि लियौ ब्रज सिगरौ, ताकौँ तुमहिँ पठायौ धाम॥

ब्रज अवतार लियौ जब तैँ तुम, यहै करत निसि-बासर-जाम ॥
सूर स्याम बन-बन हम कारन, बहुत करत स्रम नहिँ बिस्राम ॥
॥६६२॥१५८०॥

राग नट

राखि लियौ ब्रज-नंद किसोर ।
आयौ इंद्र गर्व करिकै चढ़ि, सात दिवस वरषत भयौ भोर ॥
बाम भुजा गोबर्धन धारयौ, अति कोमल नखहीँ की कोर ।
गोपी-ग्वाल-गाइ-ब्रज राखे, नैँकु न आई बूँद-झकोर ॥
अमरापति तब चरन परयौ लै, जब बीते जुग गुन के जोर ।
सूर स्याम करुना करि ताकौँ, पठ दियौ घर मानि निहोर ॥
॥६६३॥१५८१॥

राग मलार

(मेरे) मोहन जल-प्रवाह क्यौँ टारयौ ।
बूझति मुदित जसोदा जननी, इंद्र कोप करि हारयौ ॥
मेघवर्त्त जल बरषि निसा दिन, नैँकु न बेग निवारयौ ।
बार-बार यह कहति कान्ह सौँ, कैसैँ गिरि नख धारयौ ॥
सुरपति आनि पर्यौ गहि पाइनि, ताकौँ सरन उबार्यौ ।
सूर स्याम जन के सुखदाता, कर तैँ धरनि उतार्यौ ॥६६४॥१५८२॥

राग सोरठ

(तेरैँ) भुजनि बहुत बल होइ कन्हैया ।
बार-बार भुज देखि तनक से, कहति जसोदा मैया ॥
स्याम कहत नहिँ भुजा पिरानी, ग्वालनि कियौ सहैया ।
लकुटिनि टेकि सबनि मिलि राख्यौ, अरु बाबा नँदरैया ॥
मोसौँ क्यौँ रहतौ गोबरधन, अतिहिँ बड़ौ वह भारी ।
सूर स्याम यह कहि परबोध्यौ चकित देखि महतारी ॥
॥६६५॥१५८३॥

राग सोरठ

(मेरे) साँवरे मैँ बलि जाउँ भुजन की ।
क्यौँ गिरि सबल धर्यौ कोमल कर, बूझति हैँ गति तन की ॥

इंद्र कोपि आए ब्रज ऊपर, बहुत पैज करि हारे।
गोपी ग्वाल कहत जोरे कर तुम हम सबनि उबारे॥
थार तमोर, दूब, दधि, रोचन, हरषि जसोदा ल्याई।
करि सिर तिलक बदन अवलोकति, मनहुँ रंक निधि पाई॥
परतिँ चरन कमलनि ब्रज-सुंदरि, हरषि-हरषि मुसुकाई।
फिरि-फिरि दरस करतिँ एही मिस, प्रेम न परत अघाई॥
सूरदास सुरपति संकित ह्वै, सुरनि लिथे सँग आयौ।
तुम कृपालु अविगत अबिनासी, काहूँ मरम न पायौ॥
॥६६६॥१५८४॥

राग सोरठ

गिरिवर कैसैँ लियौ उठाइ।
कोमल कर चापति महतारी, यह कहि लेति बलाइ॥
महा प्रलय जल तापर, राख्यौ, एक गोबर्धन भारी।
नैंकु नहीँ टारयौ नख पर तैँ, मेरौ सुत अहँकारी॥
कंचन-थार दूब-दधि-रोचन, सजि तमोर ले आई।
हरषित तिलक करति, मुख निरखति, भुज भरि कंठ लगाई॥
रिस करिकै सुरपति चढ़ि आयौ, देतौ ब्रजहिँ बहाई।
सूर स्याम सौँ कहति जसोदा, गिरिधर बड़ौ कन्हाई॥
॥६६७॥१५८५॥

राग धनाश्री

सखी सबै मिलि कान्ह निहारौ।
जसुमति उर लावति, कर पल्लव सात दिवस गिरि धारौ॥
पूजा बिधि मेटी जु सक्र की, तिनि जिय द्रोह बिचारौ।
छाँड़े मेघ मत्त परलै के, गरजि गयँद-सुंडि धारौ॥
अति आरत जाने ब्रजबासी, सिसु गिरि नैंकु निहारौ।
अनायास अहि-छत्र छिनक मैँ, खेलत माँझ उपारौ॥
सुरपति कौ कियौ मान-भंग हरि, ब्रज आपनौ उबारौ।
सूरदास कौ जीवन गिरिधर, जसुमति-प्रान-दुलारौ॥
॥६६८॥१५८६॥

राग सोरठ

धरनि-धर क्यौँ राख्यौ दिन सात।
अतिहीँ कोमल भुजा तुम्हारी, चापति जसुमति मात॥

ऊँचौ अति बिस्तार भार बहु, यह कहि-कहि पछितात।
वह अगाध तुव तनक-तनक कर कैसैं राख्यौ तात॥
मुख चूमति, हरि कंठ लगावति, देखि हँसत बल भ्रात।
सूर स्याम कौं कितिक बात यह, जननी जोरति नात॥
॥६६६॥१५८७॥

राग देवगंधार

सबै मिलि पूजौ हरि की बहियाँ।
जौ नहिँ लेत उठाइ गोबर्धन को बाँचत ब्रज महियाँ॥
कोमल कर गिरि धर्यौ घोष पर सरद कमल की छहियाँ।
सूरदास प्रभु तुम दरसन सौं आनंद है सब कहियाँ॥
॥६७०॥१५८८॥

राग कान्हरौ

जननी चापति भुजा स्याम की ठाढ़े देखि हँसत बलराम।
चौदह भुवन उदर मैं जाके गिरिवर धर्यौ कहा यह काम॥
कोटि ब्रह्मांड रोम-रोमनि-प्रति, जहाँ-तहाँ निसि-बासर धाम।
जोइ आवत सोइ देखि चकृत ह्वै, कहत करे हरि ऐसे काम॥
नाभि-कमल ब्रह्मा प्रगटायौ, देखि जलार्नव तज्यौ बिस्राम।
आवत जात बीचहीं भटक्यौ, दुखित भयौ खोजत निज धाम॥
तिनसौं कहत सकल ब्रजबासी कैसैं गिरि राख्यौ कर बाम।
सूरदास प्रभु जल-थल ब्यापक, फिरि-फिरि जन्म लेत नँद-धाम॥
॥६७१॥१५८९॥

राग गौरी

मातु पिता इनके नहिँ कोइ।
आपुहिँ करता, आपुहिँ हरता, त्रिगुन रहित हैँ सोइ॥
कितिक बार अवतार लियौ ब्रज, ये हैँ ऐसे ओइ।
जल-थल, कीट-ब्रह्म के व्यापक, और न इन सरि होइ॥
बसुधा-भार-उतारन-काजैं, आपु रहत तनु गोइ।
सूर स्याम माता-हित-कारन, भोजन माँगत रोइ॥
॥६७२॥१५९०॥

अमर-स्तुति तथा कृष्णाभिषेक *राग गौरी*

अमरराज सब अमर बुलाए।
आज्ञा सुनि घर-घर तैं आए, कछू बिलंब न लाए॥
कौन काज सुरराज हँकारे, हमकौं आयसु होइ।
देखौ मेघबर्त्तकनि की गति, ब्रज तैं आए रोइ॥
गोबरधन की पूजा कीन्हीं, मोहिं डारयौ बिसराइ।
मेघवर्त्त, जलवर्त्त पठाए, आवहु ब्रजहिं बहाइ॥
धार अखंडित बरषि सात दिन, ब्रज पहुँची नहिं बुंद।
सुरनि कही गोकुल प्रगटे हैं, पूरन ब्रह्म मुकुंद॥
मोसौं क्यौं न कही तुम तबहीं, गोकुल हैं ब्रजराज।
सूरदास प्रभु कृपा करहिंगे, सरन चलौ दिवराज॥
॥६७३॥१५६१॥

राग सोरठ

सरन गए जो होइ सु होइ।
वे करता, वेई हैं हरता, अब न रहौ मुख गोइ॥
ब्रज अवतार कह्यौ है श्रीमुख, तेई करत बिहार।
पूरन ब्रह्म सनातन वेई, मैं भूल्यौ संसार॥
उनके आगैं चाहौं पूजा, ज्यौं मनि दीप प्रकास।
रबि आगैं खद्योत उज्यारी, चंदन संग कुबाँस॥
कोटि इंद्र छिनहीं मैं राचैं, छिन मैं करैं बिनास।
सूर रच्यौ उनहीं कौ सुरपति, मैं भूल्यौ तिहिं आस॥
॥६७४॥१५६२॥

राग सारंग

प्रगट भए ब्रज त्रिभुवन राइ।
जुग-गुन बीति त्रिगुन-बुधि ब्यापी, सरन चल्यौ सुरपति अकुलाइ।
सपनैं कौ धन जागि परैं ज्यौं, त्यौं, जानी अपनी ठकुराइ।
कहत चल्यौ यह कहा कियौ मैं, जगत-पिता सौं करी ढिठाइ।
शिव-बिरंचि, रवि-चंद्र, बरुन जम, लिए अमर-गन संग लिवाइ।
बार-बार सिर धुनत जात मग, कैहौं कहा बदन दिखराइ।
वे हैं परम कृपालु महा प्रभु रहौं सीस चरननि तर नाइ।
सूरदास प्रभु पिता मातु मैं, ओछी बुद्धि करी लरिकाइ॥
॥६७५॥१५६३॥

इंद्र-शरणागमन

राग कान्हरौ

सुरगन सहित इंद्र ब्रज आवत।
धवल बरन ऐरावत देख्यौ उतरि गगन तैं धरनि धँसावत ॥
अमरा-सिव-रबि-ससि-चतुरानन, हय-गय बसह-हंस-मृग-जावत।
धर्मराज, बनराज, अनल दिव, सारद, नारद, सिव-सुत भावत ॥
मेढ़ा, महिष, मगर, गुदरारौ, मोर, आखुमन वाहन, गावत।
ब्रज के लोग देखि डरपे मन, हरि आगैं कहि कहि जु सुनावत ॥
सात दिवस जल बरषि सिरान्यौ, आवत चल्यौ ब्रजहिं अतुरावत ॥
घेरौ करत जहाँ तहँ ठाढ़े, ब्रजबासिनि कौं नाहिं बचावत।
दूरहिं तैं बाहन सौं उतर्यो, देवनि सहित चल्यौ सिर नावत।
आइ पर्यौ चरननि तर आतुर, सूरदास-प्रभु सीस उठावत ॥
॥९७६॥१५९४॥

राग मलार

सुरपति चरन पर्यौ गहि धाइ।
जुग-गुन धोइ सेष-गुन जान्यौ, आयौ सरन राखि सरनाइ ॥
तुम बिसरे तुम्हरी ही माया, तुम बिनु नाहीँ और सहाइ।
सरन-सरन पुनि-पुनि कहि-कहि मोहिँ, राखि-राखि त्रिभुवन के राइ।
मोतैं चूक परी बिनु जानैं, मैं कीन्हे अपराइ बनाइ।
तुम माता तुमहीँ जग धाता, तुम भ्राता अपराध छमाइ ॥
जौ बालक जननी सौं बिरुझै, माता ताकौं लेइ मनाइ।
ऐसेहिं मोहिँ करौ करुनामय, सूर स्याम ज्यौं सुत-हित माइ ॥
॥९७७॥१५९४॥

राग बिलावल

व्याकुल देखि इंद्र कौं श्रीपति, उभय भुजा करि लियौ उठाइ।
अभै निभै कर माथैं दीन्हौ, श्रीमुख बचन कह्यौ मुसुक्याइ।
कहा भया करि क्रोध चढ़े ब्रज, मैं तुरतहिँ करि लियौ सहाइ।
हमकौ जानि नहीँ तुम कीन्हौ, बिनु जाने यह करी ढिठाइ।
अब अपने जिय सोच करौ जिनि यह मेरी दीन्ही ठकुराइ।
सूर स्याम गिरिधर सब लायक, इंद्रहिँ कह्यौ करौ सुख जाइ।
॥९७८॥१५९६॥

राग नट

सुरगन करत अस्तुति मुखनि।
दरस तैं तनु-ताप खोयौ, मेटि अघ के दुखनि॥
अंग पुलकित रोम, गदगद कहत बानी सुखनि।
बाम भुज गिरि टेकि राख्यौ, करज लघु के नखनि॥
प्रेम कैं बस तुमहिं कीन्हौ, ग्वाल-बालक सखनि।
जोगि जन बन तपनि जापनि, नहीं पावत मखनि॥
धन्य नँद धनि मातु-जसुमति, चलत जाकैं रुखनि।
सूर प्रभ-महिमा अगोचर, जाति कापै लखनि॥

॥९७९॥१५९७॥

राग श्री

जयति नँदलाल जय जयति गोपाल, जय जयति व्रजबाल आनंदकारी।
कृष्न कमनीय मुख-कमल राजित-सुरभि, मुरलिका-मधुर-धुनि बन बिहारी॥
स्यास घन दिब्य तन पीत पट दामिनी, इंद्र धनु मोर कौ मुकुट सोहै।
सुभग उर माल मनि कंठ चंदन अंग, हास्य ईषद जु त्रैलोक्य मोहै।
सुरभि-मंडल-मध्य भुज सखा अंस दियैं, त्रिभँगि सुंदर लाल अति बिराजै।
बिस्व-पूरन-काम कमल लोचन खरे, देखि सोभा काम कोटि लाजै।
स्रवन कुंडल लोल, मधुर मोहन बोल, बेनु-धुनि सुनि सखनि चित्त मोदै।
कलप-तरुवर-मूल सुभग जमुना-कूल, करत क्रीड़ा-रंग सुख बिनोदै।
देव, किन्नर, सिद्ध, सेस सुक, सनक, सिव देखि बिधि, ब्यास मुनि सुयस गायौ।
सूर की गोपाल सोइ सुख- निधि नाथ आपुनौ जानि कै सरन आयौ।

।९८०॥१५९८॥

राग भैरव

जै गोबिंद माधव मुकुंद हरि। कृपा सिंधु कल्यान कंस अरि।
प्रनतपाल केसव कमला पति। कृष्न कमल-लोचन अगतिनि-गति॥
रामचंद्र राजीव-नैन-बर। सरन साधु श्रीपति सारँगधर।
बनमाली बामन बीठल बल। बासुदेव बासी व्रज भूतल॥

खर-दूखन-त्रिसिरासुर खंडन। चरन-चिन्ह-दंडक-भुव-मंडन।
बकी-दवन बक-बदन-बिदारन। बरुन-बिषाद - नंद - निस्तारन॥
रिषि-मष-त्रान ताड़का-तारक। बन बसि तात-बचन-प्रतिपालक।
काली-दवन केसि-कर-पातन। अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन॥
रघुपति प्रबल-पिनाक-बिभंजन। जग हित जनक-सुता मनरंजन।
गोकुल-पति गिरिधर गुन-सागर। गोपी-रवन रास-रति-नागर॥
करुनामय कपि-कुल-हितकारी। बालि-बिरोधि कपट-मृग-हारी।
गुप्त-गोप-कन्या-व्रत-पूरन। द्विज-नारी-दरसन-दुख - चूरन॥
रावन-कुंभकरन-सिर-छेदन। तरुवर सात एक सर भेदन।
संख चूड़-चानूर-सँहारन। सक्र कहै मम रच्छा-कारन॥
उत्तर क्रिया गीध की करी। दरसन दै सबरी उद्धरी।
जे पद सदा संभु-हितकारी। जे पद परसि सुरसरी गारी॥
जे पद रमा हृदय नहिँ टारै। जे पद तिहूँ भुवन प्रतिपारैँ।
जे पद अहि-फन-फन-प्रति-धारी। जे पद बृंदा बिपिन बिहारी॥
जे पद सकटासुर संहारी। जे पद पांडव-गृह पग धारी।
जे पद रज गौतम-तिय तारी। जे पद भक्तनि के सुखकारी॥
सूरदास सुर जाँचत ते पद। करहु कृपा अपने जन पर सद॥
॥६८१॥१५९९॥

राग आसावरी

अस्तुति करि सुर घरनि चले।
यहै कहत सब जात परस्पर, सुकृत हमारे प्रकट फले।
सिव, बिरंचि, सुरपति यह भाषत, पूरन ब्रह्महिँ प्रगट मिले।
धन्य-धन्य यह दिवस आजु कौ, जात हैँ मारग गरब गिले॥
पहुंचे जाइ आपनैं लोकनि, अमर-नारि अति हरष भरैँ।
सूर स्याम की लीला सुनि-सुनि, अति हित मंगल गान करैँ॥
॥६८२॥१६००॥

राग मलार

देखियत दोऊ घन उनए।
उत मघवा-बस भक्त-वस्य इत, दोउ रन रोष रए॥
उत सुर-चाप, कलाप चंद्र इत, तड़ित पट पीत नए।
उत सैनापति बरषत, ये इत अमृत-धार चितए॥

जुगल बीच गिरिराज बिराजत, करज उठाइ लए।
मनु बिबि मरकत मनि बीच महा नग, मनौ बिचित्र ठए॥
लुठत सक्र कौ सोस चरन तर, जुग-गुन-गत समये।
मानहु कनकपुरी-पति के सिर, रघुपति छत्र दये॥
भए प्रसन्न सकल, सुरपुर कौं, प्रमुदित फेरि गए।
सूरदास गिरिधर करुनामय, इंद्र थापि पठए॥

॥६८३॥१६०१॥

वरुण से नंद को छुड़ाना *राग बिलावल*

उत्तम सफल एकादसि आई। बिधिवत ब्रत कीन्हौ नँदराई॥
निराहार जल-पान विवर्जित। पापनि रहित धर्म-फल-अर्जित॥
नारायन-हित ध्यान लगायौ। और नहीं कहुँ मन बिरमायौ॥
बासर ध्यान करत सब बीत्यौ। निसि जागरन करन मन चीत्यौ॥
पाटंबर दिवि मंदिर छायौ। पुहुप-माल मंडली बनायौ॥
देव महल चंदनहि छिपायौ। चौक देउ बैठकी बनायौ॥
सालिग्राम तहाँ बैठायौ। धूप-दीप नैवेद्य चढ़ायौ॥
आरति करि तब माथ नवायौ। ध्यान सहित मन बुद्धि उपायौ॥
आदर सहित करी नँद-पूजा। तुम तजि और न जानौं दूजा॥
तृतिय पहर जब रैनि गँवाई। नंद महरि सौं कही बुलाई॥
दंड एक द्वादसी सकारें। पारन की विधि करौ सबारैं॥
यह कहि नंद गए जमुना-तट। लै धोती झारी बिधि-कर्मट॥
झारी भरि जमुना-जल लीन्हौ। बाहिर जाइ देह कृत कीन्हौ॥
लै माटी कर चरन पखारी। उत्तम बिधि सौं करी मुखारी॥
अँचवन लै पैठे नँद पानी। जल बाजत दूतनि तब जानी॥
नंद बाँधि लै गए पतालहिं। बरुन पास ल्याए ततकालहिं॥
जान्यौ वरुन कृष्न के तातहिं। मनहीं मन हरषित ईहिं बातहिं॥
भीतर लै राखे नँद नीकैं। अँत:पुर महलनि रानी कैं॥
रानी सबनि नँद कौं देख्यौ। धन्य जन्म अपनौ करि लेख्यौ॥
जिनके सुत त्रैलोक-गुसाईं। सुर-नर-मुनि सबही के साईं॥
बरुन कह्यौ मन हरष बढ़ाए। बड़ी बात भई नंदहि ल्याए॥
अंतरजामी जानत बाता। अब आवत ह्वैहैं जग त्राता॥
जाकौ ब्रह्मा अंत न पायौ। जाकौं मुनि जन ध्यान लगायौ॥

जाकौं निगम नेति गावत हैं। जाकौं बन मुनिवर ध्यावत हैं ॥
जाकौं ध्यान धरैं सिव जोगी। जाकौं सेवत सुरपति भोगी ॥
जो प्रभु हैं जल-थल सब व्यापक। जो हैं कंस-दर्प के दापक ॥
गुन-अतीत, अविगत, अबिनासी। सोइ ब्रज मैं खेलत सुख-रासी ॥
धनि मेरे भृत नंदहिं ल्याए। करुनामय अब आवत धाए ॥
महरि कही तब ग्वाल सगर कौं। बड़ी बार भई नंद महर कौं ॥
गए ग्वाल तब नंद बुलावन। देख्यौ जाइ जमुन-जल पावन ॥
जहँ-तहँ ढूढ़ि ग्वाल घर आए। धोती अरु झारी वै ल्याए ॥
मन-मन सोच करत अकुलाए। कही जसोदहि नंद न पाए ॥
धोती झारी तट मैं पाई। सुनत महरि-मुख गयौ झुराई ॥
निसा अकेले आजु सिधाए। काहू धौं जलचर धरि खाए ॥
यह कहि जसुमति रोइ पुकार्यौ। मो बरजत कत रैनि सिधार्यौ ॥
ब्रज-जन लोग सबै उठि धाए। जमुना कैं तट कहूँ न पाए ॥
बन-बन ढूँढ़त गाउँ मझारैं। नंद नंद कहि लोग पुकारैं ॥
खेलत तैं हरि-हलधर आए। रोवत मातु देखि दुख पाए ॥
कत रोवति है जसुदा मैया। पूछत जननी सौं दोउ भैया ॥
कहत स्याम जनि रोवहु माता। अबहीं आवत हैं नँद ताता ॥
मोसौं कहि गए अबहीं आवन। रोवै मति मैं जात बुलावन ॥
सबके अंतरजामी हैं हरि। लै गयौ बाँधि बरुन नंदहिं धरि ॥
यह कारज मैं बाकौं दीन्हौ। वाके दूतनि नंद न चीन्हौ ॥
बरुन-लोक तबहीं प्रभु आए। सुनत बरुन आतुर ह्वै धाए ॥
आनंद कियौ देखि हरि कौ मुख। कोटि जनम के गए सबै दुख ॥
धन्य भाग मेरे बड़ आजू। चरन-कमल-दरसन सुभ काजू ॥
पाटंबर पाँवडे डसाए। महलनि बंदनवार बँधाए ॥
रत्न-खचित सिंहासन धार्यौ। तापर कृष्नहिं लै बैठार्यौ ॥
अपन कर प्रभु-चरन पखारे। जे कमला-उर तैं नहिं टारे ॥
जे पद परसि सुरसरी आई। तिहूँ लोक है बिदित बड़ाई ॥
ते पद बरुन हाथ लै धोए। जनम-जनम के पातक खोए ॥
कृपासिंधु अब सरन तुम्हारैं। इहिं कारन अपराध बिचारे ॥
चले आपु हरि नंदहिं देखन। बैठे नंद राज-बर-बेषन ॥
नृप रानी सब आगैं ठाढ़ीं। मुख-मुख तैं सब अस्तुति काढ़ीं ॥
पाइनि परीं कृष्न कैं रानी। धन्य जनम सबहिनि कही बानी ॥

धन्य नंद, धनि धन्य जसोदा। धनि-धनि तुम्हँ खिलावति गोदा ॥
धनि ब्रज धनि गोकुल की नारी। पूरन ब्रह्म जहाँ बपु-धारी ॥
सेस-सहस-मुख बरनि न जाई। सहज रूप को करै बड़ाई ! ॥
देखि नंद तब करत बिचारा। यह कोउ आहिं बड़ौ अवतारा ॥
नंद मनहिं अति हर्ष बढ़ायौ। कृपा-सिंधु मेरैं गृह आयौ ॥
बरुनहि दीन्ही-लोक बड़ाई। बृंदाबन-रज करौ सदाई ॥
बरुन थापि नंदहिं लै आए। महर गोप सब देखन धाए ॥
नंदहिं बूझत हैं सब बाता। हम अति दुखित भए सब गाता ॥
एकादसी कालिह मैं कीन्हौ। निसि-जागरन-नेम यह लीन्हौ ॥
तीनि पहर निसि जागि गँवाई। तब लीन्ही मैं महरि बुलाई ॥
एक दंड द्वादसी सुनाई। ता कारन मैं करी चँड़ाई ॥
एक दंड द्वादसि कैयौ पल। रैनि अछत मैं गयौ जमुन-जल ॥
गयौ जमुन-भीतर कटि लौं भरि। बरुन-दूत लै गए मोहिं धरि ॥
तहँ तैं जाइ कृष्ण मोहि ल्यायौ। यह कोउ बड़ो पुरुष है आयौ ॥
इनकी महिमा कोउ न जानै। बरुन कोटि मुख इन्हैं बखानै ॥
रानिनि सहित पर्‍यौ चरननि तर। बंदनवार बँधे महलनि घर ॥
मेरौ कह्यौ सत्य कै मानौ। इनकौं नर देही जनि जानौ ॥
जसुमति सुनि चकित यह बानी। कहत कहा यह अकथ कहानी ॥
ब्रज-नर-नारि कहत यह गाथा। इनतैं हम सब भए सनाथा ॥
मया मोह करि सबै भुलाए। नंदहिं बरुन-लोक तैं ल्याए ॥
नंद इकादसि बरनि सुनाई। कहत-सुनत सब कैं मनभाई ॥
जो या पद कौं सुनै सुनावै। एकादसि ब्रत को फल पावै ॥
यह प्रताप नंदहिं दिखराई। सूरदास-प्रभु गोकुल-राई ॥
॥९८४॥१६०२॥

राग कान्हरौ

नंदहिं कहति जसोदा रानी।
मोहिं बरजत निसि गए जमुन-तट, पैठे इकले पानी।
अब तौ कुसल परी पुन्यनि तैं, द्विजनि करौ कछु दान ॥
बोलि लेहु बाजने बजावहिं, देहु मिठाई पान ॥
गावतिं मंगल नारि, बधाई बाजति नंद-दुवार।
सुनहु सूर यह कहति जसोदा, नंद बचे इहिं बार ॥
॥९८५॥१६०३॥

राग बिलावल

कहत नंद जसुमति सुनि बात ।
अब अपनैं जिय सोच करति कत, जाके त्रिभुवन पति से तात ।
गर्ग सुनाइ कही जो बानी सोई, प्रगट होति है जात ।
इनतैं नहीं और कोउ समरथ येई हैं सबही के त्रात ॥
माया रूप लगाइ मोहिनी, डारे भूलै सबै जे गाथ ।
सूर स्याम खेलत तैं आए, माखन माँगत दै माँ हाथ ॥
॥६८६॥१६०४॥

राग गौरी

तबहिं जसोदा माखन ल्याई ।
मैं मथि कै अबहीं धरि राख्यौ, तुम हित कुँवर कन्हाई ॥
माँगि लेहु याही बिधि मोसौं, मो आगैं तुम खाहु ।
बाहिर जनि कबहूँ कछु खैयै, डीठि लगैगी काहु ॥
तनक-तनक कछु खाहु लाल मेरे, ज्यौं बढ़ि आवै देह ।
सूर स्याम अब होहु सयाने, बैरिनि कैं मुँह खेह ॥
॥६८७॥१६०५॥

राग पंचाध्यायी आरंभ *राग गुंड मलार*

सरद-निसि देखि हरि हरष पायौ ।
बिपिन बृंदा रमन, सुभग फूले सुमन, रास रुचि श्याम के मनहिं आयौ ॥
परम उज्वल रैनि, छिटकि रही भूमि पर, सद्य फल तरुनि प्रति लटकि लागे ॥
तैसोई परम रमनीक जमुना-पुलिन, त्रिबिध बहै पवन आनंद जागे ॥
राधिका रमन बन-भवन-सुख देखि कै, अधर धरि बेनु सु ललित बजाई ॥
नाम लै लै सकल गोप-कन्यानि के, सबनि कैं स्रवन वह धुनि सुनाई ॥
सुनत उपज्यौ मैन, परत काहुँ न चैन, सब्द सुनि स्रवन भईं विकल भारी ॥
सूर-प्रभु ध्यान धरि कै चलीं उठि सबै, भवन-जन-नेह तजि घोष-नारी ॥६८८॥१६०६॥

राग टोड़ी

मुरली सुनत भईं सब बौरी। मनहुँ परी सिर माँझ ठगौरी ॥
जो जैसैं सो तैसैं दौरी। तन ब्याकुल भईं बिवस किसोरी ॥
कोउ धरनी, कोउ गगन निहारै। कोउ कर कर तैं बासन डारै ॥
कोउ मनहीं मन बुद्धि बिचारै। कोउ बालक नहिं गोद सम्हारै ॥
घर-घर तरुनी सब बिततानी। मन-मन कहतिं कौन यह बानी ॥
छुटि सब लाज गई कुल-कानी। सुत पति आरज-पंथ भुलानी ॥
लै लै नाम सबनि कौ टेरैं। मुरली-धुनि सबही के नेरैं ॥
कोउ जँवत पतिहीं तन हेरैं। कोउ दधि मैं जावन पय फेरैं ॥
कोउ उठि चली जैसहीं तैसैं। फिरि आवहिं घरही मैं पैसैं ॥
घर पाछैं मुरली-धुनि ऐसैं। आँगन गएँ नहीं वह जैसैं ॥
गृह गुरुजन तिनहूँ सुधि नाहीं। कोउ कितहूँ, कोउ कितहूं जाहीं ॥
कोउ निरखत नहिं काहू माहीं। मुरछ्यौ मदन तरुनि सब डाहीं ॥
ब्याकुल भईं सबै ब्रजनारी। मुरली सौं बोलीं गिरिधारी ॥
चलीं सबै जहँ तहँ सुकुमारी। उपजी प्रीति हृदय अति भारी ॥
मुरली स्याम अनूप बजाई। बिधि-मर्जादा सबनि भुलाई ॥
निसि बन कौं जुवती सब धाईं। उलटे अंग अभूषन ठाईं ॥
कोउ चली चरन हार लपटाई। काहूँ चौकी भुजनि बनाई ॥
अँगिया कटि, लहँगा उर लाई। यह सोभा बरनी नहिं जाई ॥
कोउ उठि चली, जाति है कोऊ। कोउ मग गई, मिली मग कोऊ ॥
सूरदास प्रभु कुंजबिहारी। सरद-रास-रस-रीति बिचारी ॥
॥९८९॥१६०७॥

राग बिहागरौ

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई।
मोहे सुर-नर-नाग निरंतर, ब्रज-बनिता उठि धाईं ॥
जमुना नीर-प्रबाह थकित भयौ, पवन रह्यौ मुरझाई।
खग-मृग-मीन अधीन भए सब, अपनी गति बिसराई ॥
द्रुम-बेली अनुराग-पुलक तनु, ससि थक्यौ निसि न घटाई।
सूर स्याम बृंदाबन बिहरत, चलहु सखी सुधि पाई ॥
॥९९०॥१६०८॥

राग कल्यान

सुनि कै कुंज कानन बैन।
ब्रज-बधू सब बिसरि अंबर, चलीँ गृह तजि चैन ॥
सब्द इहिँ बिधि भयौ मोहन, सम्झि और परै न।
थकित जमुना भईं इहिँ बिधि, मनहुँ जल कियौ सैन ॥
मगन मुनि जन भए इहिँ बिधि, पूजियौ पद-रेन।
सूर स्याम जु रसिक नागर, सुभट सुर उर दैन ॥
॥६६१॥१६०६॥

राग बिहागरौ

मुरली सुनत उपजी बाइ।
स्याम सौँ अति भाव बाढ्यौ, चलीँ सब अकुलाइ ॥
गुरुजननि सौँ भेद काहूँ, कह्यौ नाहिँ उघारि।
अर्धरैनि चलीँ घरनि तैँ, जूथ-जूथनि नारि ॥
नंद-नंदन तरुनि बोलीँ, सरद-निसि कैँ हेत।
रुचि सहित बनकौँ चलीँ वै, सूर भईँ अचेत ॥
॥६६२॥१६१०॥

राग केदारौ

आजु बन बेनु बजावत स्याम।
यह कहि-कहि चकित भईँ गोपी, सुनत मधुर सुर-ग्राम ॥
कोउ ज्यौनार करति, कोउ बैठी कोउ ठाढ़ी ही धाम।
कोउ जँवति, कोउ पतिहिँ जिँवावति, कोउ सिँगार मैँ बाम ॥
मनौ चित्र कैसी लिखि काढ़ीँ, सुनत परस्पर नाम।
सूर सुनत मुरली भईँ बौरी, मदन कियौ तन ताम ॥
॥६६३॥१६११॥

राग गुंड मलार

सुनत मुरली भवन डर न कीन्हौ।
स्याम पै चित्त पहुँचाइ पहिलैँ दियौ, आपु उठि चली सुधि मदन दीन्हौ ॥
कहत मन-कामना आज पूरन करैँ नंद-नंदन सबनि बन बुलाई।
जानि लायक भजीँ, तरुनि सुत-पति तजीँ, काहुँ नहिँ लजीँ अति प्रेम धाईँ ॥

तज्यौ कुल-धर्म, गोधन, भवन-जन तते, पगौं रस कृष्न-बिनु कछु न भावै।
सूर-प्रभु सौं प्रेम सत्य करि कै कियौ, मन गयौ तहाँ, इनकौं बुलावै ॥
॥६६४॥१६१२॥

राग नट

हरि-मुख सुनत बेनु रसाल।
बिरह ब्याकुल भईं बाला, चलीं जहँ गोपाल ॥
पय दुहावत तजि चलीं कोउ, रह्यौ धीरज नाहिँ।
एक दोहनि दूध जावन कौं, सिरावत जाहिँ ॥
एक उफनत ही चलीं उठि, धर्यौ नाहिँ उतारि।
एक जेँवन करत त्याग्यौ, चढ़ी चूल्हैँ दारि ॥
एक भोजन करि सँपूरन, गई वैसँहिँ त्यागि।
सूर-प्रभु कैँ पास तुरतहि, मन गयौ उठि भागि ॥
॥६६५॥१६१३॥

राग सोरठ

मुरली मधुर बजाई स्याम।
मन हरि लियौ भवन नहिँ भावै, ब्याकुल ब्रज की बाम ॥
भोजन, भूषन की सुधि नाहीँ, तनु को नहीँ सम्हार।
गृह गुरु-लाज सूत सौँ तोर्यौ, डरीँ नहीँ ब्यवहार ॥
करत सिँगार बिबस भईं सुंदरि, अंगनि गईं भुलाइ।
सूर-स्याम बन बेनु बजावत, चित हित-रास रमाइ ॥
॥६६६॥१६१४॥

राग केदार

मधुर धुनि बाजै सुनि सजनी (री)।
बृंदाबन मधि रास रच्यौ है, नंद-नँदन अति सुख रजनी (री) ॥
जित-तित रहो स्रवन दै द्दग, सुधि न रही कोउ एक जनी (री)।
सुत-पति छाँड़ि चलीँ ब्याकुल ह्वै, भूलि गईं कुल की लजनी (री) ॥
लोक-लाज तजि चलीँ प्रेम-बस, बनिता बृंद चंद-बदनी (री)।
सूरजदास आस दरसन की, सबै भईं नागर भजनी (री)॥
॥६६७॥१६१५॥

राम गुंड मलार

करत शृंगार जुवती भुलाहीँ।
अंग-सुधि नहीँ, उलटे बसन धारहीँ, एक एकहिँ कछू सुरति नाहीँ ॥
नैन अँजन अधर आँजहीँ हरष सौँ, स्रवन ताटंक उलटे सँवारैँ।
सूर-प्रभु-मुख-ललित बेनु-धुनि, बन सुनत, चलीँ बेहाल अंचल
न धारैँ ॥६६८॥१६१६॥

राग रामकली

मन गयौ चित्त स्याम सौँ लाग्यौ।
नाना विधि जैँवन करि परस्यौ, पुरुष जिंवावत त्याग्यौ ॥
इक पय पियत चली तजि बालक, छोभ नहीँ कछु कीन्हौ।
चली धाई अकुलाइ सकुच तजि, बोलि बेनु-धुनि लीन्हौ ॥
इक पति-सेवा करन चली उठि, ब्याकुल तनु सुधि नाहीँ।
सूर निदरि बिधि की मर्जादा, निसि बन कौँ सब जाहीँ ॥
॥६६६॥१६१७॥

राग जैतश्री

जबहिँ बन मुरली स्रवन परी।
चकित भईँ गोप-कन्या सब, काम-धाम बिसरीँ॥
कुल मर्जाद बेद की आज्ञा नैँकुहुँ नहीँ डरीँ।
स्याम-सिंधु, सरिता-ललना-गन, जल की ढरनि ढरीँ॥
अँग-मरदन करिबे कौँ लागीँ, उबटन तेल धरी।
जो जिहिँ भाँति चली सो तैसैँहिँ, निसि बन कौँ जु खरी।
सुत-पति-नेह, भवन-जन-संका, लज्जा नाहिँ करी।
सूरदास-प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरी ॥
॥१०००॥१६१८॥

राग केदारौ

मुरली-सब्द सुनि ब्रज-नारि।
करत अंग-सिँगार भूलीँ, काम गयौ तनु मारि॥
चरन सौँ गहि हार बाँध्यौ, नैन देखतिँ नाहिँ।
कंचुकी कटि साजि, लँहगा धरतिँ हिरदय माहिँ॥

चतुरता हरि चोरि लीन्ही, भईं भोरी बाल।
सूर-प्रभु अति काम मोहन, रच्यौ रास गोपाल ॥
॥१००१॥१६१६॥

राग रामकली

ब्रज-जुवतिनि मन हर्‌यौ कन्हाई।
रास-रंग-रस-रुचि मन आन्यौ, निसि बन नारि बुलाईं ॥
तप तनु गारि बहुत स्रम कीन्हौ, सो फल पूरन दैन।
बेनु-नाद-रस-बिबस कराईं, सुनि धुनि कीन्हौ गैन ॥
जाकौ मन हरि लियौ स्याम घन, ताहि सम्हारै कौन।
सूरदास ज्यौं नारि कंत मिलि, करै सु भावै जौन ॥
॥१००२॥१६०२॥

राग धनाश्री

चली बन बेनु सुनत जब धाइ।
मातु पिता-बांधव अति त्रासत, जाति कहाँ अकुलाइ ॥
सकुच नहीं, संका कछु नाहीं, रैनि कहाँ तुम जाति।
जननी कहति दई कौ घाली, काहे कौं इतराति ॥
मानति नहीं और रिस पावति, निकसी नातौ तोरि।
जैसैं जल-प्रवाह भादौं कौ, सो को सकै बहोरि ॥
ज्यौं केँचुरी भुअंगम त्यागत, मात पिता यौं त्यागे।
सूर स्याम कैं हाथ बिकानी, अलि अंबुज अनुरागे ॥
॥१००३॥१६२१॥

राग गुंडमलार

सुनत मुरली न सकीं धीर धरि कै। चलीं पितु-मातु-अपमान करिकै ॥
लरति निकसीं सबै तोरि फरिकैं। भईं आतुर बदन-दरस हरि कैं ॥
जाहि जो भजै सो ताहि रातैं। कोउ कछु कहै सो बिरस मातैं ॥
ता बिना ताहि कछु नहिं भावै। और जो जोर कोटिक दिखावै ॥
प्रीति की कथा वह प्रीति जानै। और करि कोटि बातैं बखानै ॥
ज्यौं सरित सिंधु बिनु कहुँ न जाई। सूर वैसी दसा इनहुँ पाई ॥
॥१००४॥१६२२॥

राग सूही बिलावल

घर-घर तैँ निकसीँ ब्रज-बाला।
लीन्हैँ नाम जुवति जन-जन के, मुरली मैँ सुनि-सुनि ततकाला॥
इक मारग, इक घर तैँ निकरीँ, इक निकरतिँ इक भईँ बिहाला।
एक नाहिँ भवननि तैँ निकरीँ, तनपैँ आए परम कृपाला॥
यह महिमा वेई जानैँ, कबि सौँ कहा बरनि यह जाई।
सूर स्याम रस-रास-रीति-सुख, बिनु देखैँ आवै क्यौँ गाई॥
॥१००५॥१६२३॥

राग मलार

रास-रस-रीति नहिँ बरनि आवै।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहौँ, कहाँ यह चित्त जिय भ्रम भुलावै॥
जौ कहौँ, कौन मानै, जो निगम-अगम-कृपा बिनु नहीँ या रसहिँ पावै।
भाव सौँ भजै, बिनु भाव मैँ ये नहीँ भावही माहिँ ध्यानहिँ बसावै॥
यहै निज मंत्र यह ज्ञान यह ध्यान है दरस-दंपति भजन सार गाऊँ।
यहै माँगौँ बार-बार प्रभु सूर के, नैन दोउ रहैँ, नर-देह पाऊँ॥
॥१००६॥१६२४॥

राग केदारौ

मुरली-धुनि करी बलबीर।
सरद निसि का इंदु पूरन, देखि जमुना-तीर॥
सुनत सो धुनि भईँ ब्याकुल, सकल घोष-कुमारि।
अंग अभरन उलटि साजे, रही कछु न सम्हारि॥
गईँ सोरह सहस हरि पै, छाँड़ि सुत-पति-नेह।
एक राखी रोकि कै पति, सो गई तजि देह॥
दियौ तिहिँ निर्वान पद हरि, चितै लोचन-कोर।
सूर भजि गोविंद यौँ, जग-मोह-बंधन-तोर॥
॥१००७॥१६२५॥

राग सारंग

सुनौ सुक कह्यौ परीच्छित राउ।
गोपिनि परम कंत हरि जान्यौ, लख्यौ न ब्रह्म-प्रभाउ॥

गुनमय ध्यान कीन्ह निरगुन-पद, पायो तिनि किहिँ भाइ।
मेरैँ जिय संदेह बड़ौ यह, मुनिवर देहु मनाइ ॥
सुक कह्यौ बैर भाव मन राखैँ, मुक्त भयौ सिसुपाल।
गोपी हरि की प्रिया मुक्ति लहैँ, कह अचरज भूपाल ॥
काम, क्रोध, भय; नेह, सुहृदता, काहू बिधि करि कोइ।
धरै ध्यान हरि कौ जो दृढ़ करि, सूर सो हरि सम होइ ॥
॥१००८॥१६२६॥

राग गुंड मलार

सुनत बन बेनु-धुनि चलीँ नारी।
लोक-लज्जा निदरि, भवन तजि, सुंदरि मिलीँ बन जाइ कै बन-बिहारी ॥
दरस कैँ लहत मन हरष सकौँ भयौ, परस की साध अति करतिँ भारी।
यहै मन बच करम, तज्यौ सुत पति धरम, मेटि भव-भरम सहि लाज गारी ॥
भजै जिहिँ भाव जो, मिल हरि ताहि त्योँ, भेद-भेदा नहीँ पुरुष नारी।
सूर-प्रभु स्याम ब्रज-बाम, आतुर-काम, मिलीँ बन धाम गिरिराज-धारी ॥१००९॥१६२७॥

राग सूही बिलावल

देखि स्याम मन हरष बढ़ायौ।
तैसियै सरद-चाँदनी निर्मल, तैसोइ रास-रंग उपजायौ ॥
तैसियै कनक-बरन सब सुंदरि इहिँ सोभा पर मन ललचायौ।
तैसियै हंस-सुता पवित्र तट, तैसोइ कल्पबृच्छ सुख-दायौ ॥
करौं मनोरथ पूरन सबके, इहिँ अंतर इक खेल उपायौ।
सूर स्याम रचि कपट-चतुराई, जुवतिनि कैँ मन यह भरमायौ ॥
॥१०१०॥१६२८॥

राग बिहागरौ

निसि काहैँ बनकौँ उठि धाईँ।
हँसि-हँसि स्याम कहत हैँ सुंदरि, की तुम ब्रज-मारगहिँ भुलाईँ ॥

गई रहीँ दधि बेचन मथुरा, तहाँ आजु अवसेर लगाई।
अति श्रम भयौ बिपिन क्यौँ आईँ, मारग वह कहि सबनि बताई॥
जाहु-जाहु घर तुरत जुवति जन, खीझत गुरुजन कहि डरवाई।
की गोकुल तैँ गमन कियौ तुम, इन बातनि है नहीँ भलाई॥
यह सुनि कै ब्रज-वाम कहत भईँ, कहा करत गिरिधर चतुराई।
सूर नाम लै-लै जन-जन के मुरली बारंबार बजाई॥
॥१०११॥१६२६॥

राग बिहागरौ

यह जनि कहौ घोष-कुमारि।
चतुराई हम नहीँ कीन्ही, तुम चतुर सब ग्वारि॥
कहाँ हम, कहँ तुम रहीँ ब्रज, कहाँ मुरली-नाद।
करति हौ परिहास हम सौँ, तजौ यह रस-बाद॥
बड़े की तुम बहू-बेटी, नाम लै क्यौँ जाइ।
ऐसैँहीँ निसि दौरि आईँ, हमहिँ दोष लगाइ॥
भली यह तुम करी नाहीँ, अजहुँ घर फिरि जाहु।
सूर प्रभु क्यौँ निदरि आईँ, नहीँ तुम्हरे नाहु॥
॥१०१२॥१६३०॥

राग जैतश्री

मातु-पिता तुम्हरे धौँ नाहीँ।
बारंबार कमल-दल-लोचन, यह कहि-कहि पछिताहीँ॥
उनकैँ लाज नहीँ, बन तुमकौँ आवन दीन्ही राति।
सब सुंदरी, सबै नवजोबन, निठुर अहिर की जाति॥
की तुम कहि आईँ, की ऐसेहिँ कीन्ही कैसी रीति।
सूर तुमहिँ यह नहीँ बूझियै, करी बड़ी बिपरीति॥
॥१०१३॥१६३१॥

राग रामकली

अब तुम कही हमारी मानौ।
बन मैँ आइ रैनि-सुख देख्यौ, यहै लह्यौ सुख जानौ॥
अब ऐसी कीजौ जनि कबहूँ, जानति हौ मन तुमहूँ।
यह धौँ सुनै काहूँ जो कोऊ, तुमहिँ लाज अरु हमहूँ॥

हम तौ आजु बहुत सरमाने, मुरली टेरि बजायौ।
जैसौ कियौ लह्यौ फल तैसौ, हमहीँ दूषन आयौ॥
अब तुम भवन जाहु, पति पूजहु परमेस्वर की नाईँ।
सूर स्याम जुवतिनि सैाँ यह कहि, करी अपराध छमाई॥
॥१०१४॥१६३२॥

राग सूही बिलावल

यह जुवतिनि कौ धरम न होइ।
धिक् सो नारि पुरुष जो त्यागै, धिक् सो पति जो त्यागै जोइ॥
पति कौ धर्म यहै प्रतिपालै, जुवती सेवाही कौ धर्म।
जुवती सेवा तऊ न त्यागै; जौ पति करै कोटि अपकर्म॥
बन मैँ रैनि-बास नहिँ कीजै, देख्यौ बन बृंदाबन आइ।
बिबिध सुमन, सीतल जमुना-जल, त्रिबिध-समीर-परस सुखदाइ॥
घरही मैँ तुव धर्म सदाई, सुत-पति दुखित होत तुम जाहु।
सूर स्याम यह कहि परमोधत, सेवा करहु जाइ घर नाहु॥
॥१०१५॥१६३३॥

राग बिहागरौ

इहिँ बिधि बेद-मारग सुनौ।
कपट तजि पति करौ पूजा, कहा तुम जिय गुनौ॥
कत मानहु भव तरौगी, और नाहिँ उपाइ।
ताहि तजि क्यौँ बिपिन आईँ, कहा पायौ आइ॥
बिरध अरु बिन भागहू कौ, पतित जौ पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी, तजै नाहीँ जोइ॥
यहै मैँ पुनि कहत तुम सौँ, जगत मैँ यह सार।
सूर पति-सेवा बिना क्यौँ, तरौगी संसार॥
॥१०१६॥१६३४॥

राग बिहागरौ

कहा भयौ जौ हम पैँ आईँ, कुल की रीति गँवाइ।
हमहूँ कौँ बिधि कौ डर भारी अजहूँ जाउ चँड़ाइ॥
तजि भरतार और जौ भजियै, सो कुलीन नहिँ होइ।
मरैं नरक, जीवत या जग मैँ, भलौ कहै नहिँ कोइ॥

हम जौ कहत सबै तुम जानतिँ, तुमहूँ चतुर सुजान।
सुनहु सूर घर जाहु, हमहुँ घर जैहैँ, होत बिहान॥
॥१०१७॥१६३५॥

राग बिलावल

निठुर बचन सुनि स्याम के, जुवती बिकलानी।
चकृत भईँ सब सुनि रहीँ, नहिँ आवति बानी॥
मनु तुषार कमलनि पर्यौ, ऐसैँ कुम्हिलानी।
मनौ महानिधि पाइ कै, खोएँ पछितानी॥
ऐसी ह्वै गई तनु-दसा, पियकी सुनि बानी।
सूर बिरह व्याकुल भईँ, बूड़ीँ बिनु पानी॥
॥१०१८॥१६३६॥

राग मारू

स्याम-उर प्रीति मुख कपट-बानी।
जुवति व्याकुल भईँ, धरनि सब गिरि गईँ, आस गई टूटि नहिँ भेद जानी॥
हँसत नँदलाल, मन-मन करत ख्याल, ये भईँ बेहाल ब्रज-बाल भारी।
रुदन-जल नदी-सम बहि चल्यौ उरज-बिच, मनौ गिरि फोरि सरिता पनारी॥
अंग थकि पथिक नहिँ चलत कोउ पंथ के, नाव-रस-भाव हरि नहीँ आनै।
सूर-प्रभु निठुर करिया कहा ह्वै रहे, उनहिँ बिनु और को खेइ जानै॥१०१९॥१६३७॥

राग जैतश्री

निठुर बचन जनि बोलहु स्याम।
आस निरास करौ जनि हमरी, बिकल कहति हैँ बाम॥
अंतर कपट दूरि करि डारौ, हम तन कृपा निहारौ।
कृपा-सिंधु तुमकौँ सब गावत अपनौ नाम सम्हारौ॥
हमकौँ सरन और नहिँ सूझै, कापै हम अब जाहिँ।
सूरदास प्रभु निज दासिनि की, चूक कहा पछिताहिँ!॥
॥१०२०॥१६३८॥

राग गौरी

तुम पावत हम घोष न जाहिँ।
कहा जाइ लैहैँ हम ब्रज, यह दरसन त्रिभुवन नाहिँ॥
तुमहूँ तैँ ब्रज हितू न कोऊ, कोटि कहौ नहिँ मानैँ।
काके पिता, मातु हैं काकी, काहूँ हम नहिँ मानैँ॥
काके पति, सुत-मोह कौन कौ, घरही कहा पठावत।
कैसौ धर्म, पाप है कैसौ, आस निरास करावत॥
हम जानैँ केवल तुमहीँ कौँ, और वृथा संसार।
सूर स्याम निठुराई तजियै, तजियै बचन-विकार॥
॥१०२१॥१६३९॥

राग जैतश्री

तुम हौ अंतर जामि कन्हाई।
निठुर भए कत रहत इते पर, तुम नहिँ जानत पीर पराई॥
पुनि-पुनि कहत जाहु ब्रज सुंदरि, दूरि करौ पिय यह चतुराई।
आपुहिँ कही करौ पति-सेवा, ता सेवा कौँ हैँ हम आईँ॥
जो तुम कहौ तुमहिँ सब छाजै, कहा कहैँ हम प्रभुहिँ सुनाई।
सुनहु सूर ह्याँईँ तनु त्यागैँ, हम पैँ घोष गयौ नहिँ जाई॥
॥१०२२॥१६४०॥

राग बिहागरौ

कैसैँ हमकौँ ब्रजहिँ पठावत।
मन तौ रह्यौ चरन लपटान्यौ, जो इतनी यह देह चलावत॥
अटके नैन माधुरी मुसुकनि, अमृत-बचन स्रवननि कौँ भावत।
इंद्री सबै मनहिँ के पाछैँ, कहौ धर्म कहि कहा बतावत॥
इनकौँ करि लीन्हैँ अपने तुम, तौ क्यौँ हम नाहीँ जिय भावत।
सूर सैन दै सरबस लूट्यौ, मुरली लै-लै नाम बुलावत॥
॥१०२३॥१६४१॥

राग कान्हरौ

भवन नहीँ अब जाहिँ कन्हाई।
स्वजन बंधु तैँ भईँ बाहिरी, वै क्यौँ करैँ बड़ाई॥
जौ कबहूँ वै लेहिँ कृपा करि, धिक वै, धिक हम नारि।
तुम बिछुरत जीवन राखैँ धिक, कहौ न आपु बिचारि॥

धिक वह लाज, बिमुख की संगति, धनि जीवन तुम-हेत।
धिक माता, धिक पिता, गेह धिक, धिक सुत-पति कौ चेत॥
हम चाहतिँ मृदु-हँसनि-माधुरी, जातैं उपज्यौ काम।
सूर स्याम अधरनि रस सींचहु, जरतिं बिरह सब बाम॥
॥१०२४॥१६४२॥

राग कान्हरौ

सुनहु स्याम अब करहु चतुराई, क्यौं तुम बेनु बजाइ बुलाईं ?
बधि-मरजाद, लोक की लज्जा, सबै त्यागि हम धाई आईं॥
अब तुमकौं ऐसी न बूझियै, आस निरास करौ जनि साईं।
सोइ कुलीन सोई बड़भागिनी, जो तुव सन्मुख रहै सदाईं॥
धनि पुरुष, नारि धनि तेई, पंकज चरन रहै दृढ़ताई।
सूरदास कहि कहा बखानैं, यह निसि, यह अँग सुंदरताई॥
॥१०२५॥१६४३॥

राग रामकली

बिनती सुनी स्याम सुजान।
अतिहिं मुख अपमान कीन्हौं, दृढ़ न इनतैं आन॥
अब करौं दुख दूरि इनकौ, भज्यौ तजि अभिमान।
बिरह-दंद निवारि डारौं, अधर-रस दै पान॥
मनहिं मन यह सुख करत हरि, भए कृपानिधान।
सूर निस्चय भजीं मोकौं, नहीं जानतिं आन॥१०२६॥१६४४॥

राग गुंड मलार

तजौ नँद-लाल अति निठुरई गहि रहे कहा पुनि कहत धर्म हमकौं।
एक ही ढंग रहे, बचन सब कटु कहे, बृथा जुवतिनि दहे, मेटि प्रन कौं॥
बिमुख तुम तैं रहैं, तिनहिं हम क्यौं गहैं, तहाँ कह लहैं, दुख दहैं भारी।
कहा सुत-पति, कहा मातु-पितु, कुल कहा, कहा संसार बिनु-बन-बिहारी।
हमहि समुझाइ यह कहौ मूरख नारि, कहौ तुम कहा नहिं मर्म जानैं।
सुनहु प्रभु सूर तुम भले की वै भले, सत्य करि कहौ हम अबहिं मानैं॥
॥१०२७॥१६४५॥

राग रामकली

तुमहिं बिमुख धिक-धिक नर नारि।
हम जानति हैं तुव महिमा कौं, सुनियै हे गिरिधारि॥
साँची प्रीति करी हम तुमसौं, अंतरजामी मानौ।
गृह-जन की नहिं पीर हमारैं, बृथा धर्म-हठ ठानौ॥
पाप पुन्य दोऊ परित्यागे, अब जो होइ सो होई॥
आस निरास सूर के स्वामी!, ऐसी करै न कोइ॥
॥१०२८॥१६४६॥

राग जैतश्री

आस जनि तोरहु स्याम हमारी।
वेनु-नाद-धुनि सुनि उठि धाईं प्रगटत नाम मुरारी॥
क्यौं तुम निठुर नाम प्रगटायौ- काहैं बिरद भुलाने?
दीन आजु हम तैं कोउ नाहीं, जानि स्याम मुसकाने॥
अपनैं भुज दंडनि करि गहियै, बिरह सलिल मैं भासी।
बार-बार कुल-धर्म बतावत, ऐसे तुम अविनासी॥
प्रीति बचन नौका करि राखौ, अंकम भरि बैठावहु।
सूर स्याम तुम बिनु गति नाहीं, जुवतिनि पार लगावहु॥
॥१०२६॥१६४७॥

राग नट

चित दै सुनौ अंबुज-नैन।
कृपन कौ गथ भयौ तुमकौं, सरस अंमृत बैन॥
हम गुनी नव बाल अच्युत, तुम तरुन धन-रासि।
कैसहूँ सुख-दान दीजै, बिरह-दारिद नासि॥
करहु यह जस प्रगट, त्रिभुवन निठुर-कोठी खोलि।
कृपा चितवनि भुज उठाबहु, प्रेम-बचननि बोलि॥
दीन बानी स्रवन सुनि-सुनि, द्रवे परम कृपाल।
सूर एकहु अँग न काँची, धन्य-धनि ब्रज-बाल॥
॥१७३०॥१६४८॥

राग बिहारगौ

हरि सुनि दीन बचन रसाल।
बिरह ब्याकुल देखि बाला, भरे नैन बिसाल॥

चारु आनन लोर-धारा, बरनि कापै जाइ।
मनहुँ सुधा तड़ाग उछलै, प्रेम प्रगट दिखाइ॥
चंद मुख पर निडर बैठे, सुभग जोर-चकोर।
पियत मुख भरि-भरि सुधा-रस, गिरत तापर भोर॥
हरष-बानी कहत पुनि-पुनि, धन्य-धनि ब्रज-बाल।
सूर प्रभु करि कृपा जोह्यौ, सदय भए गोपाल॥
॥१०३१॥१६४६॥

राग बिलावल

मोहिँ बिना ये और न जानैँ।
बिधि-मरजाद लोक की लज्जा, तृनहू तैँ घटि मानैँ।
इनि मोकौँ नीकैँ पहिचान्यौ, कपट नहीँ उर राख्यौ।
साधु-साधु पुनि-पुनि हरषित ह्वै, मनहीँ मन यह भाष्यौ॥
पुनि हँसि कह्यौ निठुरता धरि कै, क्यौँ त्याग्यौ कुल-धर्म।
सूर स्याम मुख कपट, हृदय रति, जुवतिनि कौँ अति भर्म॥
॥१०३२॥१६५०॥

राग बिहागरौ

स्याम हँसि बोले प्रभुता ढारि।
बारंबार बिनय कर जोरत, कटि-पट गोद पसारि॥
तुम सनमुख, मैँ बिमुख तुम्हारौ, मैँ असाधु तुम साध॥
धन्य-धन्य कहि-कहि जुवतिनि कौँ, आपु करत अनुराध॥
मो कौँ भजीँ एक चित ह्वै कैँ, निदरि लोक-कुल-कानि।।
सुत-पति-नेह तोरि तिनुका सौँ, मोहीँ निज करि जानि॥
जाकैँ हाथ पेड़ फल ताजौ, सो फल लेहु कुमारि।
सूर कृपा पूरन सौँ बोले, गिरि-गोबरधन-धारि॥
॥१०३३॥१६५१॥

राग सूही बिलावल

कहत स्याम श्रीमुख यह बानी।
धन्य-धन्य दृढ़ नेम तुम्हारौ, बिनु दामनि मो हाथ बिकानी॥
निरदय बचन कपट के भाखे, तुम अपनैँ जिय नैँकु न आनी॥
भजीँ निसंक आइ तुम मोकौँ गुरुजन की संका नहिँ मानी॥

सिंह रहै जंबुक सरनागत, देखी सुनी न अकथ कहानी।
सूर स्याम अंकम भरि लीन्हीं, बिरह-अगिनि-झर तुरत बुझानी ॥
॥१०३४॥१६५२॥

राग मारू

कियौ जिहिँ काज तप घोष-नारी।
देहु फल हौं तुरत लेहु तुम अब घरा, हरष चित करहु दुख देहु डारी ॥
रास रस रचौं, मिलि संग बिलसौ, सबै बस्त्र हरि कहि जो निगम बानी।
हँसत मुख मुख निरखि, वचन अंमृत बरषि, कृपा-रस-भरे सारंग पानी ॥
ब्रज-जुवति चहुँ पास, मध्य सुंदर स्याम, राधिका बाम, अति छबि बिराजै।
सूर नव-जलद-तनु, सुभग स्यामल कांति, इंदु-बहु-पाँति-बिच अधिक छाजै ॥१०३॥१६५३॥

राग नट

हरि-मुख देखि भूले नैन।
हृदय-हरषित प्रेम गदगद, मुख न आवत बैन ॥
काम-आतुर भजीं गोपी, हरि मिले तिहिँ भाइ।
प्रेम बस्य कृपाल केसव, जानि लेत सुभाइ ॥
परसपर मिलि हँसत रहसत, हरषि करत बिलास।
उमँगि आनँद-सिंधु उछल्यौ, स्याम कैं अभिलाष ॥
मिलति इक-इक भुजनि भरि-भरि, रास-रुचि जिय आनि।
तिहिँ समय सुख स्याम-स्यामा, सूर क्यौं कहै गानि ॥
॥१०३६॥१६५४॥

राग बिहागरौ

रास रुचि जबहिँ स्याम मन आनी।
करहु सिँगार सँवारि सुंदरी, कहत हँसत हरि बानी ॥
जब देखैं अँग उलटे भूषन, तब तरुनी मुसुक्यानी।
बार-बार पिय देखि-देखि मुख, पुनि-पुनि जुवति लजानी ॥

नव-सत साजि भईँ सब ठाढ़ी, को छबि सकै बखानी।
वह छबि निरखि अधीर भई तनु, काम नारि बितताती॥
कुच भुज परसि करी मन इच्छा, कछु, तनु-तृषा बुझानी।
सुनहु सूर रस-रास नायिका, सुंदरि राधा रानी॥
॥१०३७॥१६५५॥

राग सोरठ

अंचल चंचल स्याम गह्यौ।
लै गए सुभग पुलिन जमुना कैँ, अँग-अँग भेष लह्यौ॥
कल्पतरोवर - तर बंसीबट, राधा - रति - गृह - धाम।
तहाँ रास-रस-रंग उपायौ, सँग सोभित ब्रज-बाम॥
मध्य स्याम घन तड़ित भामिनी, अति राजति सुभ जोरी।
सूरदास प्रभु नवल छबीले, नवल छबीली गोरी॥
॥१०३८॥१६५६॥

राग टोड़ी

जहाँ स्याम घन रास उपायौ। कुंकुम-जल सुख-वृष्टि रमायौ॥
धरनी-रज कपूर मय भारी। बिबिध-सुमन-छबि न्यारी-न्यारी॥
जुवती जुरि मंडली बिराजैँ। बिच-बिच कान्ह तरुनि-बिच भ्राजैँ॥
अनुपम लीला प्रगट दिखाई। गोपिनि की कीन्ही मन भाई॥
बिच श्री स्याम नारि बिच गोरी। कनक खंभ मरकत खचि ढोरी॥
सोभा - सिंधु - हिलोर हिलोरी। सूर कहा बरनै मति थोरी॥
॥१०३९॥१६५७॥

राग गुंड मलार

रास-मंडल बने स्याम स्यामा।
नारि दुहुँपास, गिरिधर बने दुहुँनि बिच, ससि सहस-बीस द्वादस उपामा॥
मुकुट की छबि निरखि कहा उपमा कहौँ, बैन जानै नहीँ नैन जानै॥
सुभग नव मेघ ता बीच चपला चमक, निरखि, नृत्य मोर हरष मानै॥
करत आनंद पिय-संग-ललना पुंज, बढ़त रस-संग छिन छिनहिँ औरै।
सूर प्रभु रास रस नागरी मंध्य, दोउ परसपर नारि-पति मनहिँ चोरैँ॥१०४०॥१६५८॥

राग गुंड मलार

परसपर स्याम ब्रज-बाम सोहैँ।
सीस सीखंड, कुंडल जटित-मनि स्रवन, निरखि छबि-स्याम, मन-तरुनि मोहैँ॥
नासिका ललित बेसरि बनी अधर-तट, सुभग-ताटंक-छबि कहि न जाई॥
धरनि पग पटकि, कर झटकि, भौँहनि मटकि, अटकि मन तहाँ रीझै कन्हाई।
तब चलत हरि मटकि, रहीँ जुवति भटकि, लटकि लटकनि छटकि, छबि बिचारैँ
कहतिँ प्रभु-सूर, बहुरौ चलौ वैसैँ हीँ, हमहुँ वैसैँ चलैँ जो निहारैँ॥
॥१०४१॥१६५६॥

राग गुंड मलार

निरखि ब्रज-नारि छबि स्याम लाजै।
बिबिध बेनी रची, माँग पाटी सुभग, भाल बँदी-बिंदु इंदु लाजै॥
स्रवन-ताटंक, लोचन, चारु नासिका, हंस-खंजन-कीर, कोटि लाजै॥
अधर बिद्रुम, दसननहिँ छबि दामिनी, सुभग बेसरि निरखि काम लाजै॥
चिबुक-तर कंठ श्रीमाल मोतिनि छबि, कुच उँचनि हेम-गिरि अतिहिँ लाजै।
सूर की स्वामिनी, नारि ब्रज-भामिनी, निरखि प्रिय, प्रेम सोभा सु लाजै॥१०४२॥१६६०॥

राग बिहागरौ

बनी ब्रज-नारि-सोभा भारि।
पगनि जेहरि, लाल लँहगा, अंग पँच-रँग सारि॥
किंकिनी कटि, कनित कंकन, कर चुरी झनकार।
हृदय चौकी चमकि बैठी, सुभग मोतिन हार॥
कंठश्री दुलरी बिराजति, चिबुक स्यामल बिंद।
सुभग बेसरि ललित नासा, रीझि रहे नँद-नंद॥

स्रवन बर ताटंक की छबि, गौर ललित कपोल।
सूर-प्रभु बस अति भए हैं, निरखि लोचन लोल ॥
॥१०४३॥१६६१॥॥

राग जैतश्री

सुरगन चढ़ि बिमान नभ देखत।
ललना सहित सुमन गन बरसत, धन्य जन्म-ब्रज लेखत ॥
धनि ब्रज-लोग, धन्य ब्रज-बाला, बिहरत रास गुपाल।
धनि बंसीबट, धनि जमुना-तट, धनि धनि लता तमाल ॥
सब तैं धन्य-धन्य बृंदाबन, जहाँ कृष्ण कौ बास।
धनि-धनि सूरदास के स्वामी, अद्भुत राच्यौ रास ॥
॥१०४४॥१६६२॥

राग बिलावल

नैन सफल अब भए हमारे।
देव लोक नीसान बजाए, बरषत सुमन सुधारे ॥
जै-जै धुनि किन्नर-मुनि गावत, निरखत जोग बिसारे।
सिव-सारद-नारद यह भाषत, धनि-धनि नंद-दुलारे ॥
सुर-ललना पति-गति बिसराए, रहीं निहारि-निहारि।
जात न बनै देखि सुर हरि कौ, आईं लोक बिसारि ॥
यह छबि तिहूँ भुवन कहुँ नाहीँ, जो बृंदाबन-धाम।
सुंदरता रस गुन की सीँवाँ, सूर राधिका स्याम ॥
॥१०४५॥१६६३॥

राग आसावरी

हमकौं बिधि ब्रज-बधू न कीन्ही, कहा अमरपुर बास भएँ।
बार-बार पछितात यहै कहि, सुख होतौ हरि संग रहैं।
कहा जनम जो नहीं हमारौ, फिरि-फिरि ब्रज-अवतार भलौ।
बृंदाबन द्रुम-लता हूजियै, करता सौं माँगियै चलौ ॥
यह कामना होइ क्यौं पूरन, दासी ह्वै बरु ब्रज रहियै।
सूरदास प्रभु अंतरजामी तिनहिं बिना कासौं कहियै ! ॥
॥१०४६॥१६६४॥

राग बिहागरौ

धन्य नंद जसुदा के नंदन।
धनि सीखंड-पीड़ सिर-लटकनि, धनि कुंडल, धनि मृगमद चंदन॥
धनि राधिका, धन्य सुंदरता, धनि मोहन की जोरी।
ज्यौं घन मध्य दामिनी की छबि, यह उपमा कहौं थोरी॥
धनि मंडली जुरी गोपिनि की, ता बिच नंद-कुमार।
राधा-सम सब गोप-कुमारी, क्रीड़तिं रास-बिहार॥
षट-दस सहस घोष-सुकुमारी, षट-दस सहस गुपाल।
काहू सौं कछु अंतर नाहीं, करत परस्पर ख्याल॥
धनि ब्रज बास, आस यह पूरन, कैसैं होति हमारी।
सूर अमर-ललना-गन अंबर, बिथकीं लोक बिसारी॥
॥१०४७॥१६६५॥

राग मलार

मानौ माई घन घन अंतर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर, सोभित हरि-ब्रज भामिनि॥
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद-सुहाई-जामिनि।
सुंदर ससि गुन रूप-राग-निधि, अंग-अंग अभिरामिनि॥
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भईं गुन ग्रामिनि।
रूप-निधान स्याम सुंदर तन, आनंद मन बिस्रामिनि॥
खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक, भाइ-भेद गज-गामिनि।
को गति गनै सूर मोहन सँग, काम बिमोह्यौ कामिनि॥
॥१०४८॥१६६६॥

राग मलार

देखौ माई रूप सरोवर साज्यौ।
ब्रज-बनिता-बर-बारि बृंद मैं, श्री ब्रजराज बिराज्यौ॥
लोचन जलज, मधुप अलकावलि, कुंडल मीन सलोल।
कुच चकवाक बिलोकि बदन-बिधु, बिछुरि रहे अनबोल॥
मुक्ता-माल बाल-बग-पंगति, करत कुलाहल कूल।
सारस हंस मोर सुक-स्रेनी, बैजयंति सम-तूल॥
पुरइनि कपिस निचोल, बिबिध अँग, बहुरति रुचि उपजावैं।
सूर स्याम आनंद कंद की, सोभी कहत न आवै॥
॥१०४९॥१६६७॥

राग सूही

तरु तमाल गोपाल लाल बने, माल ग्रीव धर हृदय बिसाल ।
गोधन सँग बालक लिए कबहुँक, बिहरत संग सखा सब ग्वाल ॥
धन्य-धन्य ब्रज कौ यह नायक, कीन्हौ महरि पोष प्रतिपाल ।
कबहुँक बन हरि रहैं जाइकै, गोरस दान लेत ततकाल ॥
पैठि पताल नाथि काली कौं, फन-फन पर निरतत दै ताल ।
भूषन मुकुट जराइ जर्‍यौ, मनु सूर स्याम सँग बनिता-जाल ॥
॥१०५०॥१६६८॥

राग कान्हरौ

भाल तिलक सोभित सिर केसरि नैना बिबिध बने ।
कटि काछनी, चंदन खौरि, स्याम बरन-सुंदर घन ऐसे नट नागर के जैये वारने ॥
ह्वै त्रिभंगि नृत्य करत, ब्रज जुबतिनि मंडली मध्य, दुहूँ-दुहूँ बीच अंग-अंग स्याम घने ।
मोर मुकुट बर सीस धरे राजत हैं, सूरज प्रभु, निरखि-निरखि अमरनि नभ जै जै धुनि भने ॥१०५१॥१६६९॥

राग धनाश्री

रास-मंडल-मध्य स्याम राधा ।
मनौ घन बीच दामिनी कौंधति सुभग, एक है रूप, द्वै नाहिं बाधा ॥
नायिका अष्ट अष्टहु दिसा सोहहीं, बनी चहुँ पास सब गोर-कन्या ।
मिले सब संग नहिं लखत कोउ परसपर, बने षट-दस सहस कृष्न सन्या ॥
सजे शृंगार नव-सात जगमगि रहे अंग-भूषन, रैनि बनी तैसी ।
सूर-प्रभु नवल गिरिधर, नवल राधिका, नवल ब्रज-नारि-मंडली जैसी ॥१०५२॥१६७०॥

राग भैरव

जुवति अंग-छबि निरखत स्याम ।
नँद कुँवर श्री अंग माधुरी, अवलोकति ब्रज-बाम ॥
परी दृष्टि उच कुचनि पिया की, वह सुख कह्यौ न जाइ ।
अँगिया नील, माँड़नी राती, निरखत नैन चुराइ ॥
वै निरखतिं पिय-उर-भुज की छबि पहुँचनि पहुँची भ्राजति ।
कर-पल्लवनि मुद्रिका सोहति, ता छबि पर मन लाजति ॥

बंदन-बिंदु निरखि हरि रीझे, ससि पर बाल-बिभास।
नंदलाल-ब्रजबाल-सु छबि क्यौं, बरनै सूरजदास ॥
॥१०५३॥१६७१॥

राग गौरी

स्याम तनु राजति पीत पिछौरी।
उर बनमाल काछनी काछे, कटि किंकिनि छबि-रौरी ॥
बेनी सुमन नितंबनि डोलति, मंद गामिनी नारी।
सूथन जँघन बाँधि नारा बँद, तिरिनी पर छबि भारी ॥
नखनि रंग जावक की सोभा, देखत पिय-मन भावत।
सूरदास-प्रभु तनु-त्रिभंग ह्वै, जुवतिनि मनहिं रिझावत ॥
॥१०५४॥१६७२॥

राग सारंग

नीलांबर पहिरे तनु भामिनि, जनु घन दमकति दामिनि।
सेस, महेस, गनेस, सुकादिक, नारदादि की स्वामिनि ॥
ससि-मुख तिलक दियौ मृगमद कौ, खुभी जराइ जरी है।
नासा-तिल-प्रसून बेसरि-छबि, मोतिनि माँग भरी है ॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित, गूँथे सुमन रसालहिं।
कबरी अति कमनीय भंग सिर, राजति गोरी बालहिं ॥
सकरी-कनक, रतन-मुक्तामय लटकन, चितहिं चुरावै।
मानौ कोटि कोटि सत मोहिनि, पाँइनि आनि लगावै ॥
काम कमान-समान भौंह दोउ, चंचल नैन सरोज।
अलि-गंजन अंजन-रेखा दै, बरषत बान मनोज ॥
कंबु कंठ नाना मनि भूषन, उर मुकुता की माल।
कनक-किंकिनी-नूपुर-कलरव, कूजत बाल मराल ॥
चौकी-हेम, चंद्र-मनि-लागी, रतन जराइ खचाई।
भुवन चतुर्दस की सुंदरता, राधे मुखहिं रचाई ॥
सजल-मेघ-घन-स्यामल-सुंदर, बाम-अंग अति सोहै।
रूप अनूप मनोहर मांहै, ता उपमा कहिं को है।
सहज माधुरी अंग-अंग-प्रति, सुबस किये-धनी।
अखिल-लोक-लोकेस बिलोकत, सब लोकनि के गनी ॥

कबहुँक हरि-सँग नृत्यति स्यामा, स्रमकन हैँ राजत यौँ।
मानहुँ अधर सुधा के कारन, ससि पूज्यौ मुक्ता सौँ॥
रमा, उमा अरु सची अरुंधति, दिन प्रति देखन आवैँ।
निरखि कुसुमगन बरषत सुरगन, प्रेम मुदित जस गावैँ॥
रूप-रासि, सुख रासि राधिके, सील महा गुन-रासी।
कृष्न-चरन ते पावहिँ स्यामा, जे तुव चरन उपासी॥
जग-नायक, जगदीस-पियारी, जगत-जननि जगरानी।
नित बिहार गोपाललाल-सँग, वृंदाबन रजधानी॥
अगतिनि की गति, भक्तनि की पति राधा मंगलदानी।
असरन-सरनी, भव-भय-हरनी, बेद पुरान बखानी॥
रसना एक नहीँ सत कोटिक, सोभा अमित अपार।
कृष्न-भक्ति दीजै श्रीराधे सूरदास बलिहार॥
॥१०५५॥१६७३॥

राग बिहागरौ

नृत्यत स्याम नाना रंग।
मुकुट-लटकनि, भृकुटि-मटकनि, धरे नटवर अंग॥
चलत गति कटि कुनित किंकिनि, घूँघुरू झनकार।
मनौ हंस रसाल-बानी, अरस-परस बिहार।
लसति कर पहुँची उपाजै, मुद्रिका अति जोति।
भाव सैाँ भुज फिरत जबहीँ, तबहिँ सोभा होति॥
कबहुँ नृत्यत नारि-गति पर, कबहुँ नृत्यत आपु।
सूर के प्रभु रसिक के मनि, रच्यौ रास प्रतापु॥
॥१०५६॥१६७४॥

राग बिहागरौ

गति सुधंग नृत्यति ब्रज-नारि।
हाव भाव नैननि सैननि दै, रिझवति गिरिवर धारि॥
पग-पग पटकि भुजनि लटकावति, फूँदा करनि अनूप।
चंचल चलत झूमका, अंचल, अद्भुत है वह रूप॥
दुरि निरखत अँग, रूप परस्पर दोउ मनहीँ मन रीझत।
हँसि-हँसि बदन बचन-रस बरषत, अंग स्वेद-जल भीजत॥

बेनी छूटि लटैं बगरानी, मुकुट लटकि लटकानौ।
फूल खसत सिर तैं भए न्यारे, सुभग स्वाति-सुत मानौ॥
गान करति नागरि, रीझे पिय, लीन्ही अंकम लाइ।
रस बस ह्वै लपटाइ रहे दोउ, सूर सखी बलि जाइ॥

॥१०५७॥१६७५॥

राग गौरी

नृत्यत, अंग-अभूषन बाजत।
गति सुधंग सौं भाव दिखावत, इक तै इक अति राजत॥
कहत न बनै रह्यौ रस ऐसौ, बरनत बरनि न जाइ।
जैसेइ बने स्याम, तैसीयै गोपी, छबि अधिकाइ॥
कंकन, चुरी, किंकिनी, नूपुर, पैंजनि, बिछिया सोहति।
अद्भुत धुनि उपजति इनि मिलि कै, भ्रमि-भ्रमि इत-उत जोहति॥
सुनि-सुनि स्रवन रीझी मनहीं मन, राधा रास-रसज्ञा।
सूर स्याम सबके सुखदायक, लायक, गुननि गुनज्ञा॥

॥१०५८॥१६७६॥

राग केदारौ

उघटत स्याम नृत्यतिं नारि।
धरे अधर उपंग उपजैं, लेत हैं गिरिधारि॥
ताल, मुरज, रबाब, बीना, किन्नरी रस सार।
सब्द संग मृदंग मिलवत, सुघर नंद कुमार॥
नागरी सब गुननि आगरि, मिलि चलतिं पिय-संग।
कबहुँ गावतिं, कबहुँ नृत्यतिं, कबहुँ उघटतिं रंग॥
मंडली गोपाल-गोपी, अंग-अँग अनुहारि।
सूर प्रभु घन, नवल भामिनि, दामीनि छबि डारि॥

॥१०५९॥१६७७॥

राग बिहागरौ

नृत्यत हैं दोउ स्यामा-स्याम।
अंग मगन पिय तैं प्यारी अति, निरखि चकित ब्रज बाम॥
तिरप लेत चपला सी चमकति, झमकत भूषन अंग।
या छबि पर उपमा कहुँ नाहीं, निरखत बिबस अनंग॥

श्री राधिका सकल गुन पूरन, जाके स्याम अधीन।
सँग तैं होत नहीं कहुँ न्यारे, भए रहत अति लीन॥
रस समुद्र मानौ उछलित भयौ, सुंदरता की खानि।
सूरदास-प्रभु रीझि थकित भए, कहत न कछू बखानि॥
॥१०६०॥१६७८॥

राग कल्यान

कबहुँ पिय हरषि हिरदै लगावै।
कबहुँ लै लै तान नागरी सुघर अति, सुघर नँद-सुवन कौ मन रिझावै॥
कबहुँ चुंबन देति, आकरषि जिय लेति, गिरति बिनु चेत, बस-हेत अपनैं।
मिलति भुज कंठ दै, रहति अँग लटकि कै, जात दुख दूरि ह्वै झझकि सपनैं॥
लेति गहि कुचनि बिच, देति अधरनि अमृत, एक कर चिबुक इक सीस धारै॥
सूर की स्वामिनी, स्याम सनमुख होइ, निरखि मुख नैन इक टक निहारै॥१०६१॥१६७९॥

राग बिहागरौ

रस बस स्याम कीन्ही ग्वारि।
अधर-रस अँचवत परसपर, संग सब ब्रजनारि॥
काम-आतुर भजीं बाला, सबनि पुरई आस।
एक इक ब्रजनारि, इक-इक आपु कर्‌यौ प्रकास॥
कबहुँ नृत्यत कबहुँ गावत, कबहुँ कोक-बिलास।
सूर के प्रभु रास-नायक, करत सुख-दुख नास॥

राग कल्यान

हरषि मुरली-नाद स्याम कीन्हौ।
करषि मन तिहुँ भुवन सुनि, थकि रह्यौ पवन, ससिहिं भूल्यौ गवन, ज्ञान लीन्हौ॥

तारका गन लजे, बुद्धि मन-मन सजे, तबहिँ तनु-सुधि तजे,
सब्द लाग्यौ।
नागर-नर-मुनि थके, नभ-धरनि तन तके, सारदा-स्वामि, सिव
ध्यान जाग्यौ ॥
ध्यान-नारद टर्‍यौ, सेस-आसन चल्यौ, गई बैकुंठ धुनि मगन
स्वामी।
कहत श्री प्रिया सौँ राधिका रमन, ये सूर-प्रभु स्याम के दरस-
कामी ॥१०६३॥१६८१॥

राग बिहागरौ

मुरली धुनि बैकुंठ गई।
नारायन-कमला सुनि दंपति, अति रुचि हृदय भई॥
सुनौ प्रिया यह बानी अद्भुत, बृंदाबन हरि देखौ।
धन्य-धन्य श्रीपति मुख कहि-कहि, जीवन ब्रज कौ लेखौ॥
रास-बिलास करत नँद-नंदन, सो हमतैँ अति दूरि।
धनि बन-धाम, धन्य ब्रज-धरनी, उड़ि लागै जौ धूरि॥
यह सुख तिहूँ भुवन मैँ नाहीँ, जो हरि-सँग पल एक।
सूर निरखि नारायन इकटक, भूले नैन निमेष॥
॥१०६४॥१६८२॥

राग आसावरी

जो सुख स्याम करत बृंदाबन, सो सुख तिहुँ पुर नाहीँ।
हमकौँ कहा मिलति रज उनकी, यह कहि-कहि पछिताहीँ॥
सुनहु प्रिया श्री सत्य कहत हौँ, मोतैँ और न कोई।
नंदकुमार-रास-रस-सुख बिनु, बृंदाबन नहिँ होई॥
हरता-करता कौ प्रभु मैँ हौँ वह सुख मोतैँ न्यारौ।
सूर धन्य राधा बर गिरिधर, धनि सुख नंद दुलारौ॥
॥१०६५॥१६८३॥

राग कल्यान

जब हरि मुरली-नाद प्रकास्यौ।
जंगम जड़, थावर चर कीन्हे, पाहन जलज बिकास्यौ॥

स्वर्ग-पताल दसौं दिसि पूरन, ध्वनि-आच्छादित कीन्हौ।
निसि हरि कल्प समान बढ़ाई, गोपिनि कौं सुख दीन्हौ॥
मैमत भए जीव जल-थल के, तनु की सुधि न सम्हार।
सूर स्याम-मुख बेनु मधुर सुनि, उलटे सब व्यवहार॥
॥१०६६॥१६८४॥

राग पूरबी

मुरली गति बिपरीति कराई।
तिहूँ भुवन भरि नाद समान्यौ, राधा-रमन बजाई॥
बछरा थन नाहीं मुख परसत, चरतिं नहीं तृन धेनु।
जमुना उलटी धार चलीं बहि, पवन थकित सुनि बेनु॥
बिह्वल भए नहीं सुधि काहूँ, सुर-गंध्रब, नर-नारि।
सूरदास सब चकित जहाँ-तहँ, ब्रज-जुवतिनि सुखकारि॥
॥१०६७॥१६८५॥

राग केदारौ

मुरली सुनत अचल चले।
थके चर, जल झरत पाहन, बिफल बृच्छ फले॥
पय स्रवत गोधननि थन तैं, प्रेम पुलकित गात।
झुरे द्रुम अंकुरित पल्लव, बिटप चंचल पात॥
सुनत खग-मृग मौन साध्यौ, चित्र की अनुहारि।
धरनि उमँगि न माति उर मैं, जती जोग बिसारि॥
ग्वाल गृह-गृह सबै सोवत, उहैं सहज सुभाइ।
सूर-प्रभु रस रास के हित, सुखद रैनि बढ़ाइ॥
॥१०६८॥१६८६॥

राग केदारौ

रास-रस मुरली ही तैं जान्यौ।
स्याम-अधर पर बैठि नाद कियौ, मारग चंद्र हिरान्यौ॥
धरनि जीव जल-थल के मोहे, नभ-मंडल सुर थाके।
तृन-द्रुम-सलिल-पवन गति भूले, स्रवन सब्द पर्‌यौ जाके॥
बच्यौ नहीं पाताल-रसातल, कितिक उदै लौं भान।
नारद-सारद-सिव यह भाषत, कछु तनु रह्यौ न स्यान॥

यह अपार रस रास उपायौ, सुन्यौ न देख्यौ नैन।
नारायन धुनि सुनि ललचाने, स्याम अधर रस बेनु॥
कहत रमा सौं सुनि-सुनि प्यारी, बिहरत हैं बन स्याम।
सूर कहाँ हमकौं वैसौ सुख, जो बिलसतिं ब्रज-बाम॥
॥१०६९॥१६८७॥

राग केदारौ

जीती जीती है रन बंसी।
मधुकर सूत, बदत बंदी पिक, मागध मदन प्रसंसी॥
मथ्यौ मान-बल-दर्प, महीपति जुवति-जूथ गहि आने।
ध्वनि-कोदंड ब्रह्मंड भेद करि, सुर-सन्मुख सर ताने॥
ब्रह्मादिक, सिव, सनक-सनंदन, बोलत जै-जै-बाने।
राधा-पति सर्बस अपनौ दै, पुनि ता हाथ बिकाने॥
खग-मृग-मीन सुमार किये सब जड़ जंगम जित बेष।
छाजत छत मद मोह कवच कटि छूटे नैन निमेष॥
अपनी-अपनिहिं ठकुराइति की, काढ़ति है भुव रेष।
बैठी पानि-पीठि गर्जति है, देति सबनि अवसेष॥
रबि कौं रथ लै दियौ सोम कौं, षट-दस कला समेत।
रच्यौ जन्य रस-रास राजसू, बृंदा-बिपिन-निकेत॥
दान-मान परधान प्रेम-रस, बढ्यौ माधुरी हेत।
अधिकारी गोपाल तहाँ हैं, सूर सबनि सुख देत॥
॥१०७०॥१६८८॥

श्रीकृष्ण-विवाह-वर्णन *राग सारंग*

जाकौं ब्यास बरनत रास।
है गंधर्ब विवाह चित दै, सुनौ बिबिध बिलास॥
कियौ प्रथम कुमारिकनि ब्रत, धरि हृदय बिस्वास।
नंद-सुत पति देहु देबी, पूजि मन की आस॥
दियौ तब परसाद सबकौं, भयौ सबनि हुलास।
मिहिर-तनया-पुलिन बर-तर, विमल जल उछ्वास॥
धरी लग्न जु सरद-निसि की, सोधि करि गुरु रास।
मोर मुकुट सुमौर मानौ, कटक कंगन-भास॥

देनु-धुनि सुनि स्रवन धाइँ, कमल-बदन-प्रकास।
रूप प्रति-प्रति रूप कीन्हे, भुजा अंसनि बास॥
अधर-मधु मधुपरक करि कै, करत आनन हास।
फिरत भाँवरि करत भूषन, अग्नि मनौ उजास॥
नारि-दिवि कौतुकहिँ आईँ, छाँड़ि सुत-पति-पास।
जिय परी ग्रथि कौन छोरै, निकट ननद न सास॥
बरषि सुरपति कुसुम अंजुली, निरखि त्रिदस अकास।
लेत या रस-रास कौ रस, रसिक सूरजदास॥

॥१०७१॥१६८६॥

राग सूही

चौपाई

यह ब्रत हिय धरि देवी पूजी। है कछु मन अभिलाष न दूजी॥
दीजै नंद-सुवन पति मेरैँ। जौ पै होइ अनुग्रह तेरैँ॥

छंद

तब करि अनुग्रह बर दियौ, जब बरष जुवतिनि तप कियौ।
त्रैलोक्य-भूषन पुरुष सुंदर, रूप-गुन नाहिँन बियौ॥
इत उबटि खोरि सिँगारि सखियनि, कुवरि चौरी आनियौ।
जा हित कियौ ब्रत नेम-संजम, सो धरी बिधि बानियौ॥

चौपाई

मोर मुकुट रचि मौर बनायौ। माथे पर धरि हरि बर आयौ॥
तनु स्यामल पट पीत दुकूले। देखत घन-दामिनि मन भूले॥

छंद

बर दामिनी-घन कोटि वारौँ, जब निहारौँ यह छबी।
कुंडल बिराजत गंड मंडल, नहीँ सोभा ससि रबी॥
अब और कौन समान त्रिभुवन, सकल गुन जिहिँ माहियाँ।
मन मोर नाचत संग डोलत, मुकुट की परछाहिँयाँ॥

चौपाई

गोपी जन सब नेवते आईँ। मुरली धुनि तैँ पठाइ बुलाईँ॥
बहु बिधि आनँद मंगल गाए। नव फूलनि के मंडप छाए॥

छंद

छाए जु फूलनि कुंज-मंडप, पुलिन मैँ बेदी रची।
बैठे जु स्यामा स्याम बर, त्रैलोक की सोभा सची॥

उत कोकिला-गन करैं कुलाहल, इत सकल ब्रज-नारियाँ।
आईं जु तेवते दुहूँ दिसि तैं, देतिं आनँद गारियाँ॥

चौपाई

मिलि मन दै सुख आसन बैसे। चितवनि वारि किये सब तैसे।
ता परि पानि-ग्रहन बिधि कीन्ही। तब मंषप भ्रमि भाँवरि दीन्ही॥

छंद

तब देत भाँवरि कुंज-मंडप, प्रीति ग्रंथि हियैं परी।
अति रुचिर परस पवित्र राका, निकट बृंदा सुभ घरी॥
गाए जु गीत पुनीत बहु बिध, बेद-रुचि-सुंदर-ध्वनि।
श्री नंद-सुरत बृषभानु-तनया रास मैं जोरी बनी॥

चौपाई

मनमथ सैनिक भए बराती। द्रुम फूले बन अनुपम भाँती॥
सुर बंदीजन मिलि जस गाए। मघवा बाजत आनँद बजाए॥

छंद

बाजहिं जु बाजन सकल सुर नभ पुहुप-अंजलि बरषहीं।
थकि रहे व्योम-बिमान, मुनि-जन जय-सबद करि हरषहीं॥
सुनि सुरदासहिं भयौ आनँद, पूजि मन की साधिका।
श्रीलाल गिरिधर नवल दूलह, दुलहिनि श्री राधिका॥

॥१०७२॥१६६०॥

राग बिहागरौ

थम व्याह बिधि होइ रह्यौ हो कंकन-चार बिचारि।
रचि रचि पचि पचि गूथि बनायौ नवल निपुन ब्रजनारि॥
बड़े हुहो तौ छोरि लेहु जौ, सकल घोष के राइ।
कै कर जोरि करौ बिनती, कै छुवौ राधिका-पाई॥
यह न होइ गिरि कौ धरिबौ हो, सुनहु कुअर-ब्रजनाथ।
आपनु कौं तुम बड़े कहावत, काँपन लागे हाथ॥
बहुरि सिमिटि ब्रज-सुंदरि सब मिलि दीन्ही गाँठि घुराई।
छोरहु बेगि कि आनहु अपनी, जसुमति माई बुलाइ॥
सहज सिथिल पल्लव तैं हरि जू, लीन्हौ छोरि सँवारि।
किलकि उठीं तब सखी स्याम कौ, तुम छोरौ सुकुमारि॥
पचिहारी कैसँहु नहि छूटत, बँधि प्रेम की डोरि।

देखि सखी यह रीति दुहुनि की, मुदित हँसीं मुख मोरि ॥
अब जिनि करहु सहाइ सखी री, छाँड़हु सकल सयान ।
दुलहिनि छोरि दुलह कौ कंकन, बोलि बबा बृषभान ॥
कमल कमल करि बरनत हैं हो, पानि प्रिया के लाल ।
अब कबि कुल साँचे से लागत, रोम कँटीले नाल ॥
लीला-रहस गुपाल लाल की, जो रस रसिक बखान ।
सदा रहै यह अबिचल जोरी, बलि बलि सूर सुजान ॥
॥१०७३॥१६६१॥

राग काफी

सनकादिक नारद मुनि, सिव बिरंचि जान ।
देव-दुंदुभी मृदंग, बाजे बर निसान ।
बारन तोरन बँधाइ, हरि कीन्ह उछाह ।
व्रज की सब रीति भई बरसानैं ब्याह ॥
डोरनि कर छोरन कौं, आईं सकल धाइ ।
फूलीं फिरैं सहचरि उर आनँद न समाइ ॥
गज बर गति आवन मग, धरनि धरत पाउ ।
लटकत सिर सेहरो मनु, सिखि सिखंड भाउ ॥
सोभित संग नारि अंग, सबै छबि बिराजि ।
गज रथ बाजी बनाइ, चँवर छत्र साजि ॥
दुलहिनि बृषभानु-सुता, अंग-अंग भ्राज ।
सूरदास देखौ श्री दूलह व्रजराज ॥
॥१०७४॥१६६२॥

राग सारंग

(दूलह देखौंगी जाइ) उतरे संकेत बटहिं किहिं मिस लखि पाउँ ।
फूल गूँथि माला लै मालिनि ह्वै जाउँ ।
नंद नँदन प्यारे कौं, बीरा करि लेउँ ।
चोलिनि ह्वै जाउँ निरखि, नैननि सुख देउँ ।
बृंदाबन चंद कौं मैं, भूषन गढ़ि लेउँ ।
ह्वै सुनारि जाउँ निरखि, नैननि सुख देउँ ।
अपने गोपाल के मैं, बागे रचि लेउँ ।
दरजिनि ह्वै जाउँ निरखि सुख देउँ ॥

चंदन अरगजा सूर केसरि धरि लेउँ।
गंधिनि ह्वै जाउँ निरखि, नैननि सुख देउँ॥
॥१०७५॥१६६३॥

राग बिहागरौ

वृषभानु-नंदिनी अति सुछबि मयी बनी।
बृंदाबन-चंद राधा निरमल चाँदनी॥
स्याम अलबनि सुबीच मोती-दुति मंगा।
मानहुँ झलमलति संभु के सीस गंगा॥
स्रबन ताटंक सोहै चिकुरनि की काँति।
उलटि चल्यौ है राहु चक्र की सु भाँति॥
गोरैं ललाट सोहै सेंदुर कौ बिंद।
ससिहिं उपमा देइ को कबि को है निंद॥
आलस उनींदे नैन, लागत सुहाए।
नासिका चंपक कली कौं अली भाए॥
बदन-मंजन तैं अँजन गयौ ह्वै दूरि।
कलक रहित ससि पून्यो ज्यौं कला पूरि॥
गिरि तैं लता हैं भई यह तौ हम सुनि।
कंचन लता तैं भए द्वै गिरि वर पुनि॥
कंचन से तनु सोहै नीलांबर सारी।
कुहूं-निसा-मध्य मनौ दामिनी उज्यारी॥
नख सिख सोभा मोपै वरनी नहिं जाइ।
तुम सी तुमहीं राधा स्यामहिं मन-भाइ॥
यह छबि सूरदास मन नित रहै बानी।
नंद के नँदन राजा राधिका रानी।
॥१०७६॥१६६४॥

राग जैतश्री

चंदन के स्यंदन बैठे हरि, सँग श्री राधा गोरी।
अति आनंद निरखि जुबती-जन-डारत हैं तृन तोरी॥
तनु घनस्याम,मुकुट,बनमाला, कुंडल-किरनि अति चमकत।
पीतांबर कटि-तट, उपरैना, नभ दामिनि मनु दमकति॥

बाजत ताल, पखाउज, झालरि, गुन गावत ज्यौं हरषत।
नाचति नटी सुलय गति उमँगत, सूर सुमन सुर बरषत॥
॥१०७७॥१६६५॥

राग देवगंधार

दोऊ राजत स्यामा स्याम।
ब्रज-जुवती-मंडली बिराजति, देखतिं सुरगन-बाम॥
धन्य धन्य वृंदानबन कौ सुख, सुरपुर कौनैं काम।
धनि बृषभानु-सुता, धनि मोहन, धनि गोपिनि कौ नाम॥
इनकी को दासी-सरि ह्वै है, धन्य सरद की जाम।
कैसेहुँ सूर जनम ब्रज पावैं, यह सुख नहिं तिहुँ धाम॥
॥१०७८॥१६६६॥

राग रामकली

स्यामा स्याम रिझावति भारी।
मन मन कहति और नहिं मोसी, कोऊ पिय की प्यारी॥
दोहा-छंद-ध्रुपद जस हरि कौ, हरिहीँ गाइ सुनावति।
आपुन रीझि कंत कौं रिझवति, यह जिय गर्ब बढ़ावति॥
नृत्यति, उघटति, गति-सँगीत-पद, सुनत कोकिला लाजत।
सूर स्याम नागर अरु नागरि, ललना-मंडली राजत॥
॥१०७९॥१६६७॥

राग रामकली

रिझवति पियहिँ बारंबार।
निरखि नैन लजाति हरि के, नहीँ सोभा-पार॥
चलि सुलप गज, हंस, मोहति, कोक-कला-प्रवीन।
हँसि परस्पर तान गावति, करति पियहिँ अधीन॥
सुनत बन-मृग होत ब्याकुल, रहत चक्रित आइ।
सूर प्रभु बस किये नागरि, महा जाननि-राइ॥
॥१०८०॥१६६८॥

राग रामकली

प्यारी स्याम लई उर लाइ।
उरज उर सौं परस कौ सुख, बरनि कापै जाइ॥

कनक-छबि तन मलय-लेपन, निरखि भामिनि-अंग ।
नासिका सुभ बास लै-लै, पुलक स्याम-अनंग ॥
देति चुंबन, लेति सुख कौं, मानि पूरन भाग ।
सूर-प्रभु बस किये नागरि, बदति धन्य सुहाग ॥
॥१०८१॥१६९९॥

राग बिहागरौ

रीझे परसपर बर-नारि ।
कंठ भुज-भुज धरे दोऊ, सकत नहीँ निवारि ॥
गौर स्याम कपोल सुललित, अधर अंमृत-सार ।
परस्पर दोउ पीय प्यारी, रीझि लेत उगार ॥
प्रान इक, द्वै देह कीन्हे, भक्ति-प्रीति-प्रकास ।
सूर-स्वामी स्वामिनी मिलि, करत रंग-बिलास ॥
॥१०८२॥१७००॥

राग बिहागरौ

गावत स्याम स्यामा-रंग ।
सुघर गति नागरि अलापति, सुर भरति पिय-संग ॥
तान गावति कोकिला मनु, नाद अलि मिलि देत ।
मोर संग चकोर डोलत, आपु अपने हेत ॥
भामिनी अँग जोन्ह मानौ, 'जलद स्यामल गात ।
परस्पर दोउ करत क्रीड़ा, मनहिँ-मनहिँ सिहात ॥
कुचनि बिच कच परम सोभा, निरखि हँसत गुपाल ।
सूर कंचन-गिरि बिचनि मनु, रह्यौ है अँधकाल ॥
॥१०८३॥१७०१॥

राग टोड़ी

नंद कुमार रास रस कीन्हौ । ब्रज तरुनिनि मिलि कै सुख दीन्हौ ॥
अद्भुत कौतुक प्रगट दिखायौ । कियौ स्याम सबहिनि मन भायौ ॥
बिच गोपी, बिच मिले गुपाल । मनि कंचन सोभित सुभ माल ॥
राधा-मोहन मध्य बिराजैँ । त्रिभुवन की सोभा ये भ्राजैँ ॥
रास-रंग-रस राख्यौ भारी । हाव-भाव नाना गति न्यारी ॥

रूप गुननि करि परम उजागरि। नृत्यत अंग-थकित भई नागरि॥
उमँगि स्याम स्यामा उर लाई। बारंबार कह्यौ स्रम पाई॥
कंठ कंठ, भुज भुंज दोउ जोरे। घन-दामिनि छूटत नहिं छोरे॥
सूर स्याम जुवतिनि सुखदाई। तिनके जिय अति गर्व बढ़ाई॥
॥१०८४॥१७०२॥

राग रामकली

गरब भयौ ब्रजनारि कौं, तबहीं हरि जाना।
राधा प्यारी सँग लिये, भए अंतर्धाना॥
गोपिनि हरि देख्यौ नहीं, तब सब अकुलाई।
चकि होई पुछन लगीं, कहँ गए कन्हाई॥
कोउ मर्म जानै नहीं, ब्याकुल सब बाला।
सूर स्याम ढूँढ़ति फिरैं, जित-तित ब्रज-बाला॥
॥१०८५॥१७०३॥

श्रीकृष्ण का अंतर्धान होना *राग कान्हरौ*

हुते कान्ह अबहीं सँग बन मैं, मोहन-मोहन कहि-कहि टेरैं।
ऐसौ सँग तजि दूरि भए क्यौं, जानि परत अब गैयनि घेरैं॥
चूक मानि लीन्ही हम अपनी, कैसेहुँ लाल बहुरि फिरि हेरैं।
कहियत हौ तुम अंतरजामी, पूरन कामी सबही केरैं॥
ढूँढ़ति हैं द्रुम बेली बाला, भईं बिहाल करतिं अवसेरैं।
सूरदास प्रभु रास-बिहारी, बृथा करत काहे कौं फेरैं॥
॥१०८६॥१७०४॥

राग अड़ाना

अहो कान्ह यह बात तिहारी, सुख ही मैं भए न्यारे।
इक सँग एक समीप रहत हैं, तिन तजि कहाँ सिधारे॥
अब करि कृपा मिलौ करुनामय, कहियत हौ सुखकारी।
सूर स्याम अपराध छमहु, अब समुझीं, चूक हमारी॥
॥१०८७॥१७०५॥

राग धनाश्री

बिकल ब्रजनाथ-बियोगिनि नारि।
हा हा नाथ, अनाथ करौ जिनि, टेरति बाँह पसारि॥

हरि कैं लाड़, गरब जोबन कैं, सकीं न बचन सम्हारि।
जनियत हैं अपराध हमारौ, नहिं कछु दोष-मुरारि ॥
ढूँढ़तिं बाट-घाट बन घन मैं, मुरछि, नैन जल ढारि।
सूरदास अभिमान देह कैं बैठीं सरबस हारि ॥
॥१०८८॥१७०६॥

राग काफी

कोउ कहुँ देखे री नँदलाला। साँवरौं ढोटा नैन बिसाल ॥
मोर-मुकुट बनमाल रसाल। पीतांबर सोहै मनि-माल ॥
निसि बन गईं सबै ब्रज-बाल। अंतर्धान भए रचि ख्याल ॥
द्रुम-द्रुम ढूँढ़त भईं बिहाल। सूर स्याम-बिनु बिरह जँजाल ॥
॥१०८९॥१७०७॥

राग सारंग

तुम कहुँ देखे स्याम बिसासी।
तनक बजाइ बाँस की मुरली, लै गए प्रान निकासी ॥
कबहुँक आगैं, कबहुँक पाछैं, पग-पग भरति उसासी।
सूर स्याम-दरसन के कारन, निकसीं चंद-कला सी ॥
॥१०९०॥१७०८॥

राग रामकली

कहि धौं री बन बेलि कहूँ तैं देखे हैं नँद-नंदन।
बूझहु धौं मालती कहूँ तैं, पाए हैं तन-चंदन ॥
कहिं धौं कुंद, कदंब बकुल, बट, चंपक, ताल, तमाल।
कहि धौं कमल कहाँ कमलापति, सुंदर नैन बिसाल ॥
कहि धौं री कुमुदिनि, कदली कछु, कहि बदरी कर बीर।
कहि तुलसी तुम सब जानति हौ, कहँ घनस्याम सरीर ॥
कहि धौं मृगी मया करि हमसौं, कहि धौं मधुप मराल।
सूरदास-प्रभु के तुम संगी, हैं कहँ परम कृपाल ॥
॥१०९१॥१७०९॥

राग रामकली

कहूँ न देख्यौ मधुबन माधौ।
कहाँ गमन कियौ, कहाँ बिलमि रहे, नयन मरत दरसन-रस साधौ ॥

जब तैं बिछुरे रह्यौ न जाई, यह तौ मेरौई अपराधौ।
सूरदास-प्रभु बिनु कैसैं जिवैं घटि घटि प्रान रह्यौ घट आधौ॥
॥१०६२॥१७१०॥

राग आसावरी

कहूँ न पाउँ ढूँढ़ि सब बन-घन, स्याम सुंदर पर वारौं तन-मन।
नैन चटपटी लागी तब तैं कहाँ प्रान प्यारौ निधनी-धन॥
चंपक, जाहि गुलाब बकुल प्रति, पूछतिँ कहुँ देखे नँद-नंदन।
सूरदास-प्रभु रास-रसिक-बिनु, रास रासिकिनि भईं बिकल मन॥
॥१०६३॥१७११॥

राग श्री

कान्ह प्यारौ नहिँ पायौ री।
स्याम-स्याम यह कहति फिरति हैँ, धुनि बृंदाबन छायौ री॥
गरब जानि पिय अंतर ह्वै रहे, सो मैं बृथा बढ़ायौ री।
अब बिनु देखे कल न परति छिनु, स्याम सुंदर गुन-रायौ री॥
मृग-मृगिनी, द्रुम-बन, सारस पिक, काहूँ नहीँ बतायौ री।
सूरदास-प्रभु मिलहु कृपा करि, जुवतिनि टेर सुनायौ री॥
॥१०६४॥१७१२॥

राग बिलावल

अति ब्याकुल भईं गोपिका, ढूँढ़त गिरधारी।
बूझति हैँ बन बेलि सौं, देखे बनवारी॥
जाही, जूही, सेवती, करना कनिआरी।
बेलि, चमेली, मालती, बूझतिँ द्रुम-डारी॥
कूजा, मरुआ, कुंद सौं. कहैँ गोद पसारी।
बकुल, बहुलि, बट, कदम पैं, ठाढ़ीं ब्रजनारी॥
बार-बार हा-हा करैं, कहुँ हौ गिरिधारी।
सूर स्याम कौ नाम लै, लोचन जल ढारी॥
॥१०६५॥१७१३॥

राग बिलावल

स्याम सबनि कौं देखहीं, वै देखतिँ नाहीं।
जहाँ तहाँ ब्याकुल फिरैं, धीर न तनु माहीं॥

कोउ बंसीबट कौँ चलीँ, कोउ बन घन जाहीँ।
देखि भूमि वह रास की, जहँ-तहँ पग-छाहीँ॥
सदा हठीली लाड़िली, कहि-कहि पछिताहीँ।
नैन सजल जल ढारहीँ ब्याकुल मन माहीँ॥
एक-एक ह्वै ढूँढ़हीँ, तरुनी बिकलाहीँ।
सूरज-प्रभु कहुँ नहिँ मिले, ढूँढ़ति द्रुम पाहीँ॥
॥१०६६॥१७१४॥

राग बिहागरौ

ब्याकुल भईँ घोष-कुमारि।
स्याम सँग तजि कै कहाँ गए, यह कहहिँ ब्रजनारि॥
दसौँ दिसि, बन द्रुमनि देखतिँ, चकित भईँ बिहाल।
राधिका नहिँ तहाँ देखी, कह्यौ वाके ख्याल॥
कछुक दुख कछु हरष कीन्हौ, कुंज लै गई स्याम।
सूर-प्रभु-सँग देखि हमकौँ, करे ऐसे काम॥
॥१०६७॥१७१५॥

राग बिहागरौ

बन-कुंजनि चलीँ ब्रजनारि।
सदा राधा करति दुबिधा, देतिँ रस की गारि॥
संगहीँ लै गई हरि कौँ, सुख करति बन-धाम।
जहाँ जैहै ढूँढ़ि लैहैँ, महा रसकिनि बाम॥
चरन चिन्हनि चलीँ देखति, राधिका-पग नाहिँ।
सूर-प्रभु-पग परसि गोपी, हरषि मन मुसुकाहिँ॥
॥१०६८॥१७१६

राग कान्हरौ

हँसि हँसि गोपी कहतिँ परस्पर, प्यारी कौँ उर लाई गए री।
स्याम काम-तनु-आतुरताई, ऐसे स्यामा-बस्य भए री॥
पुनि देखति राधिका-चिन्ह-पग, पिय-पग-चिन्ह न पावैँ।
की पिय कौँ प्यारी उर लीन्हौ, यह कहि भ्रम उपजावैँ॥
उहिँ गिरिधर उर धरि ज्यौँ लीन्हौ, उहि गिरिवर उर लीन्हौ।
सूर भईँ आतुर ब्रजनारी, पिय-प्यारी-पग चीन्हौ।
॥१०६६॥१७१७॥

राग सूही

तब नागरि जिय गर्ब बढ़ायौ ।
मो समान तिय और नहीँ कोउ, गिरिधर मैँ हौँ बस करि पायौ ।।
जोइ-जोई कहरि करत पिय सोइ-सोई मेरैँ ही हित रास उपायौ ।
सुंदर, चतुर और नहिँ मोसी, देह धरे कौ भाव जनायौ ।।
कबहुँक बैठि जाति हरि-कर धरि, कबहुँ कहति मैँ अति स्रम पायौ ।
सूर स्याम गहि कंठ रही तिय, कंध चढ़ौँ यह बचन सुनायौ ।।
।।११००।।१७१८।।

राग बिलावल

कहै भामिनी कंत सौँ, मोहिँ कंध चढ़ावहु ।
नृत्य करत अति स्रम भयो, ता स्रमहिँ मिटावहु ।।
धरनी धरनी धरत बनै नहीँ, पग अतिहिँ पिराने ।
तिया-बचन सुनि गर्ब के पिय मन मुसुकाने ।।
मैँ अबिगत, अज, अकल हौँ, यह मरम न पायौ ।
भाव बस्य सब पैँ रहौँ, निगमनि यह गायौ ।।
एक प्रान द्वै देह हैँ, द्विविधा नहिँ यामैँ ।
गर्ब कियौ नरदेह तैँ, मैँ रहौँ न तामैँ ।।
सूरज-प्रभु अंतर भए, संग तैँ तजि प्यारी
जहँ की तहँ ठाढ़ी रही, वह घोष-कुमारी ।।
।।११०१।।१७१९।।

राग बिहागरौ

तब हरि भए अंतरधान ।
जब कियौ मन गर्ब प्यारी, कौन मोसी आन ।।
अति थकित भई चलत मोहन, चलि न मोपैँ जाइ ।
कंठ भुज गहि रही यह कहि, लेहु कंध चढ़ाइ ।
गए संग बिसारि रस मैं, बिरस कीन्हौ बाल ।।
सूर-प्रभु दुरि चरित देखत, तुरत भई बिहाल ।।
।।११०२।।१७२०।।

राग नट

बाएँ कर द्रुम टेके ठाढ़ी ।
बिछुरे मदन गोपाल रसिक मोहिँ, बिरह-ब्यथा तनु बाढ़ी ।

लोचन सजल, बचन नहिँ आवै, स्वास लेति अति गाढ़ो।
नंद लाल हमसौँ ऐसी करी, जल तैँ मीन धरि काढ़ी ॥
तब कत लाड़ लड़ाइ बड़ैतै, बेनी कर गुही गाढ़ी।
सूर स्याम प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, अब न चलत डग आढ़ी ॥
॥११०३॥१७२१॥

राग सारंग

अकेली भूलि परी बन माहिँ।
कोऊ बाउ बही कतहूँ की, छूटि गई पिय-बाहिँ ॥
जहँ-जहँ जाउँ डर लागत, डगर बतावत नाहिँ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, वेइ कदम वेइ छाहिँ ॥
॥११०४॥१७२२॥

राग टोड़ी

स्याम गए जुवतिनि सँग त्यागि। चकित भईँ तरुनी सब जागि ॥
प्यारी संग लगाइ बिहारी। कुंजलता-तर कतहूँ डारी ॥
संग नहीँ तहँ गिरिवरधारी। दसहु-दिसा-तन दृष्टि पसारी ॥
परी मुरछि धरनी सुकुमारी। काम बैर लीन्हौ सर मारी ॥
त्राहि-त्राहि, कहि-कहि बनवारी। भइँ ब्याकुल तनु-दसा बिसारी ॥
नैन सलिल भीजी सब जारी। सूर संग तजि गए मुरारी ॥
॥११०५॥१७२३॥

राग बिलावल

जौ देखैँ द्रुम के तरैँ, मुरझी सुकुमारी।
चकित भईँ सब सुंदरी, यह तौ राधा री ॥
याही कौँ खोजति सबै, यह रही कहाँ री।
धाइ परीँ सब सुंदरी, जो जहाँ-तहाँ री।
तन की तनकहुँ सुधि नहीँ, ब्याकुल भईँ बाला।
यह तौ अति बेहाल है, कहँ गए गोपाला।
बार-बार बूझतिँ सबै, नहिँ बोलति बानी ॥
सूर स्याम काहैँ तजी, कहि सब पछितानी ॥
॥११०६॥१७२४॥

राग सारंग

मंद सुजोति मुखारविंद की, चकित चहूँ दिसि जोवति।
द्रुम साखा अवलंबि, बेलि गहि, नख सौं भूमि खनोवति॥
मुकुलित कल, तन धन की ओट ह्वै, अँसुवनि चीर निचोवति।
सूरदास प्रभु तजी गर्ब तैं, भई प्रेम गति गोवति॥
॥११०७॥१७२५॥

राग भैरव

क्यौं राधा नहिं बोलति है!
काहैं धरनि परी ब्याकुल ह्वै, काहैं नैन न खोलति है!
कनक-बेलि सी क्यौं मुरझानी, क्यौं बन माँझ अकेली है!
कहाँ गए मन मोहन तजि कै, काहैं बिरह दुहेली है।
स्याम-नाम स्रवननि धुनि सुनि कै, सखियनि कंठ लगावति है।
सूर स्याम आए यह कहि-कहि, ऐसैं मन हरषावति है॥
॥११०८॥१७२६॥

राग बिहागरौ

कहाँ रहे अब लौं तुम स्याम।
नैन उघारि, निहारि रही तहँ, जौ देखै ब्रज-बाम॥
लागी करन बिलाप सबनि सौं, स्याम गए मोहिं त्यागि।
तुमकौं नहीं मिले नँद-नंदन, पूछति यह तब जागि॥
निरखि बदन बृषभानु-कुँवरि कौ, मनौ सुधा-बिनु चंद।
राधा बिरह देखि बिरहानी, यह गति बिनु नँद नंद॥
या बन मैं कैसैं तुम आईं, स्याम संग हैं नाहिं।
कछु जानति कहँ गए कन्हाई, तहाँ तोहिं लै जाहिं॥
मैं हठ कियौ बृथा री माई, जिय उपज्यौ अभिमान।
सूर स्याम ह्याँ पै मोहिं आनी, ह्वै गए अंतरधान॥
॥११०९॥१७२७॥

राग बिहागरौ

मैं अपनैं मन गरब बढ़ायौ।
यहै कह्यौ पिय कंध चढ़ौंगी, तब मैं भेद न पायौ॥

यह बानी सुनि हँसे, कंठ भरि, भुजनि उछंग लई।
तब मैं कह्यौ कौन है मो सी, अंतर जानि लई॥
कहाँ गए गिरिधर तजि मोकैाँ, ह्याँ कैसैं मैं आई।
सूर स्याम अंतर भए मोतैं, अपनी चूक सुनाई॥
॥१११०॥१७२८॥

राग परासी

केहिं मारग मैं जाउँ सखी री, मारग मोहिं बिसर्‍यौ।
ना जानौं कित ह्वै गए मोहन, जात न जानि पर्‍यौ॥
अपनौ पिय ढूँढ़ति फिरौं, मोहिं मिलिबे कौ चाव।
काँटो लाग्यौ प्रेम कौ, पिय यह पायौ दाव॥
बन डोंगर ढूँढ़त फिरी, घर-मारग तजि गाउँ।
बूझौं द्रुम, प्रति बेलि कोउ, कहै न पिय कौ नाउँ॥
चकित भई, चितवत फिरी, ब्याकुल अतिहिं अनाथ।
अब कैं जौ कैसहुँ मिलौं, पलक न त्यागौं साथ॥
हृदय माँझ पिय-घर करौं, नैननि बैठक देउँ।
सूरदास प्रभु सँग मिलौं, बहुरि रास-रस लेउँ॥
॥११११॥१७२९॥

राग बिहागरौ

रुदन करति बृषभानु-कुमारी।
बार-बार सखियनि उर लावति कहाँ गए गिरिधारी॥
कबहूँ गिरति धरनि पर ब्याकुल, देखि दसा ब्रजनारी।
भरि अँकवारि धरतिं, मुख पोंछतिं, देतिं नैन जल ढारी॥
त्रिया पुरुष सौं भाव करति है, जाने निठुर मुरारी।
सूर स्याम कुल-धरम आपनो, लए रहत बनवारी॥
॥१११२॥१७३०॥

राग गौरी

नंद-नँदन उनकौं हम जानतिं।
ग्वालनि संग रहत जे माई, यह कहि-कहि गुन गानति॥
बन-बन धेनु चरावत बासर, तिया बधत डर नाहीं।
देखि दसा बृषभानु-सुता की, ब्रज-तरुनी पछिताहीं॥

कहा भयौ तिय जौ हठ कीन्हौं, यह न बूझियै स्यामहिं ।
सूरदास प्रभु मिलहु कृपा करि, दूरि करौ मन तामहिं ॥
॥१११३॥१७३१॥

राग काफी

सखी मोहिं मोहनलाल मिलावै ।
ज्यौं चकोर चंदा कौ, कीटक भृंगी ध्यान लगावै ॥
बिनु देखैं मोहिं कल न परति है, यह कहि सबनि सुनावै ।
बिनु कारन मैं मान कियौ री, अपनेहिं मन दुख पावै ॥
हा-हा करि-करि, पायनि परि-परि, हरि-हरि-टेर लगावै ।
सूर स्याम बिनु कोटि करौ जौ, और नहीं जिय आवै ॥
॥१११४॥१६३२॥

राग आसावरी

हैं तौ ढूँढ़ि फिरि आई, सिगरोई वृंदाबन, कहुँ नहिं पाए माई,
प्यारे नंदनंदना ।
अनतहिं रहे जाइ, कौने धैं राखे छपाइ, मोकौं न कछू सुहाइ,
करै काम-कंदना ॥
मोहीं तैं परी री चूक, अंतर भए हैं जातैं, तुम सौं कहति बातैं,
मैं ही कियौ दंदना ।
सूरदास प्रभु-बिनु, भई हैं बिकल आली, कहाँ रहे बनमाली,
सुर-मुनि-बंदना ॥
॥१११५॥१७३३॥

राग बिलावल

मिलहु स्याम मोहिं चूक परी ।
तिहिं अंतर तनु की सुधि नाहीं, रसना रट लागी न टरी ॥
कृष्न-कृष्न करि टेरि उठति है, जुग सम बीतति पलक-घरी ।
धरनि परी ब्याकुल भइ बोलति, लोचन धारा-आँसु झरी ॥
कबहूँ मगन, कबहुँ सुधि आवति, सरन सरन कहै बिरह-जरी ।
सूर निरखि ब्रजनारि दसा यह चकित भईं जहँ-तहाँ खरी ॥
॥१११६॥१७३४॥

राग बिहागरौ

अहो कान्ह तुम्हैं चहैं, काहैं नहिं आवहु।
तुमहीं तन, तुमहीं धन, तुमहीं मन भावहु॥
कियौ चहैं अरस-परस, करैं नहीं माना।
सुन्यौ चहैं स्रवन, मधुर मुरली की ताना॥
कुंज-कुंज जपत फिरैं, तेरी गुन-माला।
सूरज प्रभु बेगि मिलौ, मोहन नँदलाला॥
॥१११७॥१७३५॥

राग बिलावल

देखि दसा सुकुमारि की, जुवती सब धाईं।
तरु तमाल बूझति फिरैं, कहि-कहि मुरझाईं॥
नंद-नँदन देखे कहूँ, मुरली कर-धारी।
कुंडल, मुकुट, बिराजई, तनु-स्यामल-भा री॥
चोलन चारु बिसाल हैं, नासा अति लोनी।
अरुन अधर दसनावली-छबि चारु चकोनी॥
बिंब, प्रवालनि लाजहीं, दामिनि-दुति थोरी।
ऐसे हरि हमकौं कहौ, कहुँ देखे हो री॥
अंग-अंग छबि कह कहैं, देखैं बनि आवै।
सूर स्याम देखे नहीं, कोउ काहि बतावै॥
॥१११८॥१७३६॥

राग कल्यान

राधिका सौं कह्यौ धीर धरि री।
मिलैंगे स्याम, ब्याकुल दसा जिनि करे, हरष जिय धारि, दुर दूरि करि री॥
आपु जहँ-तहँ गईं, बिरह सब पगि रहीं, कुवँरि सौं कहि गईं स्याम ल्यावौं।
फिरत बन-बन बिकल, सहस सोरह सकल, ब्रह्म पूरन अकल नाहिं पावौं॥
कहँ गए यह कहति सबै मग जोवहीं, काम तनु दहत सब घोष-नारी।
सूर-प्रभु स्याम स्यामा-चरित देखहीं करत अंतर हृदय हेरु प्यारी॥१११९॥१७३७॥

राग बिलावल

कहूँ न पावैं स्याम कौं, बूझति बन-बेली।
सबै भईं ब्याकुल फिरैं, तन मदन-दुहेली॥
मृग नारी सौं बूझहीं, बूझैं सुक-सारी।
कमल सरोवर बूझहीं, बिरहा तन मारी॥
कनक बेलि सी सुंदरी, द्रुम कैं तर डारी।
मानौ दामिनि धर परी, की सुधा-पनारी॥
इत-उत तैं फिरि आवहीं, जहँ राधा प्यारी।
सूर स्याम अजहूँ नहीं, करि मिलत कृपा री॥
॥११२०॥१७३८॥

राग बिहागरौ

करति हैं हरि-चरित ब्रज-नारि।
देखहीं अति बिकल राधा, यहै बुद्धि बिचारि॥
इक भई गोपाल कौ बपु, इक भई बनवारि।
इक भई गिरिधरन समरथ, इक भई दैत्यारि॥
एक इक भईं धेनु-बछरा, इक भई नँदलाल।
इक भई जमला-उधारन, इक त्रिभंग-रसाल॥
इक भई छबि-रासि मोहन, कहति राधा नारि।
इक कहति उठि मिलहु भुज भरि, सूर-प्रभु की प्यारि॥
॥११२१॥१७३९॥

राग जैतश्री

सुनि धुनि स्रवन उठी अकुलाइ।
जो देखै नँद-नंद नहीं वै, सखियनि वेष बनाइ॥
कहा कपट करि मोहिं दिखावतिं, कहाँ स्याम सुखदाइ।
कृष्ण-कृष्ण सरनागत कहि-कहि, बहुरि गिरी भहराइ॥
पुनि दौरीं जहँ-तहँ ब्रजबाला, बन-द्रुम सोर लगाइ।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, बिरहिनि लेहु जिवाइ॥
॥११२२॥१७४०॥

राग कान्हरौ

कृपा सिंधु हरि कृपा करौ हो।
अनजानैं मन गर्व बढ़ायौ, सो जिनि हृदय धरौ हो॥

सोरह सहस पीर तनु एकै, राधा जिव, सब देह।
ऐसी दसा देखि करुनामय, प्रगटौ हृदय-सनेह॥
गर्व-हत्यौ तनु, बिरह प्रकास्यौ, प्यारी व्याकुल जानि।
सुनहु सूर अब दरसन दीजै, चूक लई इनि मानि॥
॥११२३॥१७४१॥

राग केदारौ

अहौ तुम आनि मिलौ नँदलाल।
दुर्वल, मलिन फिरतिँ हम बन-बन, तुम बिन मदनगोपाल॥
द्रुम-बेली पूछतिँ सब उझकतिँ, देखतिँ ताल-तमाल।
खेलत रास-रंग भरि छाँड़ीँ, लै जु गए इक बाल॥
सूरदास सब गोपी पछिली क्रीड़ा करतिँ रसाल।
गोपी वृंद मध्य जग जीवन, प्रगट भए तिहिँ काल॥
॥११२४॥१७४२॥

राग केदारौ

हरि बिनु लागत है बन सूनौ।
ढूँढ़त फिरतिँ ब्रज-जुवती, दहत काम-दुख दूनौ॥
ताजि सुत-पति सुनि स्रवननि धाईँ, मुरलि-नाद मृदु कीनौ।
व्यापित मकरध्वज अति आतुर, मनहु मीन जल-हीनौ॥
चितवतिँ, चकित दिसनि दिसि हेरतिँ, मनमोहन हरि लीनौ।
द्रुम-बेली पूछैँ सब सुंदरि नवल जात कहुँ चीनौ॥
कदली-ओट निचोड़त अंचल, अधर-सुधा-रस भीनौ।
सूर स्याय पिय-प्रेम-उँमगि रस, हँसि आलिंगन दीनौ॥
॥११२५॥१७४३॥

राग बिहागरौ

राधा भूलि रही अनुराग।
तरु तर रुदन करति मुरझानी, ढूँढ़ि फिरी बन-बाग॥
कवरी ग्रसत सिखंडी अहि भ्रम, चरन सिलीमुख लाग।
बानी मधुर जानि पिक बोलति, कदम करारत काग॥
कर-पल्लव किसलय कुसुमाकर, जानि ग्रसत भए कीर।
राका चंद चकोर जानि कै, पिवत नैन कौ नीर॥

बिह्वल बिकल जानि नँद-नंदन, प्रगट भए तिहिँ काल।
सूरदास प्रभु प्रेमांकुर उर, लाय लई भुज माल ॥
॥११२६॥१७४४॥

राग केदारौ

न्याय तजी स्याम गोपाल।
थोरी कृपा बहुत गरबानी, ओछी बुधि ब्रज-बाल ॥
तैँ कछु कपट सबनि सौँ कीन्यौ, अपजस तैँ न डरानी।
हम एकहि सग एकहि मति सब, कोऊ नहिँ बिलगानी ॥
हम चातकि, घन हरि नँदनंदन, बरषनि लगि हित कीन्यौ।
तुव मद प्रबल पवन सम सजनी, प्रेम बीच दुख दीन्यौ ॥
जानी दीन दुखित सब सुख-निधि, मोहन बेनु बजायो।
सूर स्याम तब दरस-परस करि, मिलि संताप नसायो ॥
॥११२७॥१७४५॥

गोपी-गीत *राग कान्हरौ*

प्रगट भए नँदनंदन आइ।
प्यारी निरखि बिरह अति व्याकुल, धर तैँ लई उठाइ ॥
उभय भुजा भरि अंकम दीन्हौँ, राखी कंठ लगाइ।
प्रानहुँ तैँ प्यारी तुम मेरैँ, यह कहि दुख बिसराइ ॥
हँसत भए अंतर हम तुम सौँ, सहज खेल उपजाइ।
धरनी मुरझि परीँ तुम काहैँ, कहाँ गई चतुराइ ॥
राधा सकुचि रही मन जान्यौ, कह्यौ न कछू सुनाइ।
सूरदास-प्रभु मिलि दुख दीन्यौ, दुख डार्‌यौ बिसराइ ॥
॥११२८॥१७४६॥

राग कान्हरौ

नंद-नँदन उर लाइ लई।
नागरि प्रेम प्रगट तनु ब्याकुल, तब करुना हरि हृदय-भई ॥
देखि नारि तरु-तर मुरझानी, देह-दसा सब भूलि गई।
प्रिया जानि अंकम भरि लीन्ही, कहि-कहि ऐसी काम हई ॥
बदन बिलोकि कंठ उठि लागी, कनकबेलि आनंद दई।
सूर स्याम फल कृपा दृष्टि भएँ, अतिहिँ भई आनंद मई ॥
॥११२९॥१७४७॥

राग सूही

अंतर तैँ हरि प्रगट भए।
रहत प्रेम के बस्य कन्हाई, जुवतिनि कौं मिलि हर्ष दए॥
वैसोइ सुख सबकौ फिरि दीन्हैं, वहै भाव सब मानि लियौ।
वै जानति हरि संग तबहिं तैं, वहै बुद्धि सब, वहै हियौ॥
वहै रास-मंडल-रस जानतिं, बिच गोपी, बिच स्याम धनी।
सूर स्याम स्यामा मधि नायक, वहै परस्पर प्रीति बनी॥
॥११३०॥१७४८॥

राग बिहागरौ

स्याम छबि निरखति नागरि नारि।
प्यारी छबि निरखत मन मोहन, सकत न नैन पसारि॥
पिय चकुचत, नहिँ दृष्टि मिलावत, सन्मुख होत लजात।
श्री राधिका निडर अवलोकति, अतिहि हृदय हरषात॥
अरस-परस मोहनि मोहन मिलि, सँग गोपी गोपाल।
सूरदास प्रभु सब गुन लायक, दुष्टनि के उर-साल॥
॥११३१॥१७४६॥

रास-नृत्य तथा जल-क्रीड़ा *राग सारंग*

बहुरि स्याम सुख-रास कियौ।
भुज-भुज जोरि जुरीं ब्रजवाला, वैसेई रस उमँगि हियौ॥ पुन: रास
वैसैंहि मुरली नाद प्रकास्यौ, वैसैंहि सुर-नर बस्य भए।
वैसैंहि उड़गन-सहित निसापति, वैसैंहि मारग भूलि गए॥
वैसिहि दसा भई जमुना की, बैसैंहि गति तजि पवन थक्यौ।
वैसैंहि नृत्य तरंग बढ़ायौ, वैसैंहि बहुरौ काम जक्यौ॥
वहै निसा, वसैंहि मन जुवती, वैसैंही हरि सबनि भजे।
सूर स्याम वैसेइ मन-मोहन, वैसैंहि प्यारी निरखि लजे॥
॥११३२॥१७५०॥

राग नट

मोहन रच्यौ अदभुत रास।
संग मिलि बृषभानु-तनया, गोपिका चहुँ पाउ॥

एकही सुर सकल मोहे, मुरलि सुधा-प्रकास।
जलहु थल के जीव थकि रहे, मुनिनि मनहिँ उदास॥
थकित भयौ समीर सुनि कै, जमुना उलटी धार।
सूर-प्रभु ब्रज-बाम मिलि बन, निसा करत बिहार॥
॥११३३॥१७५१॥

राग नट

बिहरत रास रंग गोपाल।
नवल स्यामा संग सोहति, नवल सब ब्रज-बाल॥
सरद निसि अति नवल उज्ज्वल, नवलता बन धाम।
परम निर्मल पुलिन जमुना, कल्प तरु विस्राम॥
कोस द्वादस रास परिमित, रच्यौ नंदकुमार।
सूर-प्रभु सुख दियौ निसि रमि, काम-कौतुक-हार॥
॥११३४॥१७५२॥

राग गुंड मलार

संग ब्रजनारि हरि रास कीन्हौ।
सबनि की आस पूरन करी स्याम लै, तियनि पिय हेत सुख मानि लीन्हौ॥
मेटि कुलकानि मरजाद बिधि-बेद की, त्यागि गृह नेह, सुनि बेनु धाईँ।
फबी जे-जे करी, मनहिँ सब जे धरी, संक काहु न करी आपु भाई॥
ज्यौँ महामत्त गज जूथ-करिनी लिये, कूल-सर फोरि उर नाहिँ मानै।
सूर-प्रभु नंद-सुत निदरि निसि रस कर्‌यौ, नाग-नर-लोक-सुर सबै जानै॥११३५॥१७५३॥

राग केदारौ

बिराजत मोहन मंडल-रास।
स्यामा स्याम सुधा-सर मानौ, क्रीड़त बिमल बिलास॥
ब्रज-बनिता सत जूथ मंडली, मिलि कर-परस करे।
भुज-मृनाल-भूषन तोरन जुत, कंचन-खंभ खरे॥

मृदु-पद-न्यास, मद-मलयानिल-विगलित सीस-निचोल।
पीत-अरुन-सित-सेत ध्वजा चल, सीत-समीर-झकोल॥
विपुल पुलक कंचुकि बँद छूटे, अति आनंद भई।
कुच जुग चक्रवाक करुना मिटी, अन्तर रैनि गई॥
दसन-कुंद-दाड़िम, दुति दामिनि, प्रगटत अरु दुरि जात।
अधर-बिंब बर, मधुर सुधाकन, प्रीतम बदन समात॥
गिरत कुसुम कबरी केसनि तैँ, टूटत हैं उर हार।
सरद जलद अति मंद करत मनु कहूँ-कहूँ जलधार॥
सुंदर बदन, बिलोल विलोचन, अति रस-रंग रँगे।
पुष्कर-पुंडरीक पर मानहुँ, खंजन-जुगल खगे॥
पृथु नितंब करभोरु कमल पद, नख-मनि चंद अनूप।
मानहुँ लुब्ध भयौ बारिज-दल, इंदु किये दस रूप॥
स्रुति कुंडल धर गिरत न जाने, ह्वै अनंद भरे।
पाइ परस तैँ चलत चहूँ दिसि, मानहु मीन तरे॥
चरन रुनित नूपुर, कटि किंकिनि, कंकन करतल ताल।
मनु तिय-तनय समेत, सहज-सुख, मुखरित मधुर मराल॥
बाजत ताल मृदंग बाँसुरी, उपजति तान-तरंग।
निकट बिटप मनु द्विज-कुल कूजत, बाढ़त प्रबल अनंग॥
देखि विनोद सहित सुर-ललना, मोहे सुर-नर-नाग।
बिथकित उड़पति व्योम बिराजत, श्री-गुपाल-अनुराग॥
जाँचत-दास, आस चरननि की, अपनी सरन बसावहु।
मन अभिलाष स्रवन जस पूरित, सूरहिं सुधा पियावहु॥
॥११३६॥१७५४॥

राग सूही

रास रसिक गोपाल लाल, ब्रजबाल-संग बिहरत वृंदाबन।
सप्त सुरनि मुरली बाजति, धुनि सुनि मोहे सुर-नर-गंध्रब-गन॥
तरुन कान्ह अरु तरुन गोपिका, पीतांबर नीलांबर तन-तन।
नृत्य करत उघटत सँगीत पद, निरखि सूर रीझत मन ही मन॥
॥११३७॥१७५५॥

राग बिहागरौ

आजु निसि सोभित सरद सुहाई।
सीतल मंद सुगंध पवन बहै, रोम-रोम सुखदाई।

जमुना-पुलिन पुनीत, परम रुचि, रचि मंडली बनाई।
राधा बाम अंग पर कर धरि, मध्यहिँ कुँवर कन्हाई।
कुंडल सँग ताटंक एक भए, जुगल कपोलनि झाईं।
एक उरग मानौ गिरि ऊपर, द्वै ससि उदै कराई॥
चारि चकोर परे मनु फंदा, चलत हैँ चंचलताई।
उड़पति गति तजि रह्यौ निरखि लजि, सूरदास बलि जाई॥
॥११३८॥१७५६॥

राग केदारौ

आजु हरि ऐसौ रास रच्यौ।
स्रवन सुन्यौ न कहूँ अवलोक्यौ यह सुख अब लौँ कहाँ सँच्यौ॥
प्रथमहिँ सँचे, समाज साज सुर, सब मोहे, कोऊ न बच्यौ।
एकहिँ बार थकित थिर चर कियौ, कौ जानै को कबहिँ नच्यौ!॥
गत गुन-मद अभिमान, अधिक रुचि लै लोचन मन तहँइ खच्यौ।
सिव-नारद-सारदा कहत यौँ, हम इतने दिन बादि पच्यौ॥
निरखि नैन रस-रीति रजनि रुचि, काम-कटक फिरि कलह मच्यौ।
सूर धनुष-धीरज न धर्‌यौ तब, उलटि अनंग अनंग तच्यौ॥
॥११३९॥१७५७॥

राग केदारौ

आजु हरि अद्‌भुत रास उपायौ।
एकहिँ सुर सब मोहित कीन्हे, मुरली नाद सुनायौ॥
अचल चले, चल थकित भए, सब मुनिजन ध्यान भुलायौ।
चंचल पवन थक्यौ नहिँ डोलत, जमुना उलटि बहायौ॥
थकित भयौ चंद्रमा सहित-मृग, सुधा-समुद्र बढ़ायौ।
सूर स्याम गोपिनि सुखदायक, लायक दरस दिखायौ॥
॥११४०॥१७५८॥

राग सोरठ

मोहन यह सुख कहाँ धर्‌यौ।
जो सुख-रासि रैनि उपजायौ, त्रिभुवन-मनहिँ हर्‌यौ॥
मुरलि-सब्द सुनत ऐसौ को, जो व्रत तैँ न टर्‌यौ!
बचे न कोउ मोहित सब कीन्हे, प्रेम उदोत कर्‌यौ।

उलटि काम तनु काम प्रकास्यौ, अद्भुत रूप धस्यौ।
सूरदास सिव-नारद-सारद कहत, न कह्यौ पस्यौ॥
॥११४१॥१७५९॥

राग बिहागरौ

आजु निसि रास रंग हरि कीन्हौ।
ब्रजबनिता-बिच स्याम मंडली, मिलि सबकैँ सुख दीन्हौ॥
सुर-ललना सुर सहित बिमोहीँ, रच्यौ मधुर सुर गान।
नृत्य करत, उघटत नाना-बिधि, सुनि मुनि बिसस्यौ ध्यान॥
मुरली सुनत भए सब व्याकुल, नभ-धरनी-पाताल।
सूर स्याम को को न किये बस, रचि रस-रास रसाल॥
॥११४२॥१७६०॥

राग केदारौ

बनावत रास-मँडल प्यारौ।
मुकुट की लटक, झलक कुंडल की, निरतत नंद-दुलारौ॥
उर बनमाल सोह सुंदर बर, गोपिनि कैँ सँग गावै।
लेत उपज नागर नागरि सँग, बिच-बिच तान सुनावै॥
बंसीबट-तट रास रच्यौ है, सब गोपिनि सुखकारौ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन सौँ, भक्तनि प्रान अधारौ॥
॥११४३॥१७६१॥

राग बिहागरौ

दुलहिनि दूलह स्यामा स्याम।
कोक-कला-ब्युतपन्न परस्पर, देखत लज्जित काम॥
जा फल कैँ ब्रजनारि कियौ ब्रत, सो फल सबहिनि दीन्हौ।
मनकामना भई परिपूरन, सबहिनि मानि जु लीन्हौ॥
राग-रागिनी प्रगट दिखायौ, गायौ जो जिहिँ रूप।
सप्त सुरनि के भेद बताबति, नागरि रूप-अनूप॥
अतिहिँ सुघर पिय कौ मन मोहति, अपबस करति रिझावति।
सूर स्याम-मोहनि-मूरति कौँ, बार-बार उर लावति॥
॥११४४॥१७६२॥

राग बिहागरौ

मोहन मोहिनी रस भरे।
भौंह मोरनि, नैन फेरनि, तहाँ तैं नहिं टरे॥
अंग निरखि अनंग लज्जित, सकै नहिं ठहराइ।
एक की कह चलै, सत-सत कोटि रहत लजाइ॥
इते पर हस्तकनि गति-छबि, नृत्य-भेद अपार।
उड़त अंचल, प्रगटि कुच दोउ, कनकघट-रससार॥
दरकि कंचुकि, तरकि माला, रही धरनी जाइ।
सूर-प्रभु करि निरखि करुना, तुरत लई उचाइ॥
॥११४५॥१७६३॥

राग जैतश्री

प्रेम सहित माला कर लीन्ही।
प्यारी-हृदय रहति यह जानी, भूपर परन न दीन्ही॥
पीत बसन लै स्रम-जल पोंछत, पुनि लै कंठ लगाई।
चरननि कर परसत हैं अपनैं, कहत अतिहिं स्रम पाई॥
स्रम-कन देखि पवन मुखही कैं, फूँकि भुरावत अंग।
सूरदास-प्रभु भौंह निहारत, चलत तिया कैं रंग॥
॥११४६॥१७६४॥

राग भैरो

हा हा हो पिय नृत्य करौ।
जैसैं करि मैं तुमहिं रिझाई, त्यौं मेरौ मन तुमहु हरौ॥
तुम जैसैं स्रम-वायु करत हौ, तैसैं मैंहुँ डुलावौंगी।
मैं स्रम देखि तुम्हारे अँग कौ, भुज भरि कंठ लगावौंगी॥
मैं हारी त्यौंही तुम हारो, चरन चापि स्रम मेटौंगी।
सूर स्याम ज्यौं उछंग लई मोहिं, त्यौं मैं हूँ हँसि भेंटौंगी॥
॥११४७॥१७६५॥

राग रामकली

नृत्यत स्याम स्यामा-हेत।
मुकुट-लटकनि, भृकुटि-मटकनि, नारि-मन सुख देत॥
कबहुँ चलत सुगंध गति सौं, कबहुँ उघटत बैन।
लोल कुंडल गंड-मंडल, चपल नैननि सैन॥

स्याम की छबि देखि नागरि, रही इकटक जोहि।
सूर-प्रभु उर लाइ लीन्ही, प्रेम-गुन करि पोहि॥
॥११४८॥१७६६॥

राग मलार कमोद

अरुझी कुंडल लट, बेसरि सौं पीतपट, बनमाल बीच आनि उरझे हैं दोउ जन।
प्राननि सौं प्रान, नैन नैननि अँटकि रहे, चटकीली छबि देखि लपटात स्याम घन॥
होड़ा-होड़ी नृत्य करैं, रीझि-रीझि अंक भरैं, ता ता थेई थेई उघटत हैं हरषि मन।
सूरदास प्रभु प्यारी, मंडली-जुवति भारी, नारि कौ अँचल लै लै, पोंछत हैं स्रमकन ॥११४९॥१७६७॥

राग अडाना

मोहन लाल के सँग, ललना यौं सोहैं ज्यौं, तमाल-ढिक तरु सुभ सुमन जरद कौ।
बदन अनूप कांति, नीलांबर इहिं भाँति, नवघन बीच ससि मानहु सरद कौ॥
मुक्ता-लर तारागन, प्रतिबिंब बेसरि कौ, चूनैं मिलि रंग जैसैं होत है हरद कौ।
सूरदास-प्रभु मोहन-गोहन छबि बाढ़ी, मेटतिं निरखि दुख मैन के दरद कौ॥११५०॥१७६८॥

राग पूरबी

नंद-नँदन सुघराई, बाँसुरी बजाई।
सरगम सुनीकैं साधि, सप्त सुरनि गाई॥
अतीत अनागत सँगीत, बिच तान मिलाई।
सुर तालऽरु नृत्य ध्याइ, पुनि मृदँग बजाई॥
सकल कला गुन प्रवीन, नवल बाल भाईं।
सूरज प्रभु अरस परस, रीझि सब रिझाईं॥
॥११५१॥१७६९॥

राग बिहागरौ

पिय-सँग खेलत अधिक भयौ स्रम, अब हाँकौं हैं आउ बयारि।
अपनौ अंचल लै सुखऊँ री, रुचिर बदन स्रमकन के बारि॥
निरतन उलटि गए अँग-भूषन, बाँधौं बिथुरी अलक सँवारि।
सूरदास ललिता की बानी, सुनि चित हरष कियौ सुकुमारि॥
॥११५२॥१७७०॥

राग केदारौ

प्यारी देखि बिह्वल गात।
नंद-नंदन देखि रीझे, अंक भरि लपटात॥
कबहुँ लेहिं उछंग बाला, कहिं परस्पर बात।
प्रम रस करि भरे दोऊ, नैन मिलि मुसुकात॥
रास-रस-कामना-पूरन, रैनि नाहिँ बिहात।
सूर-प्रभु-सँग ब्रज-तरुनि मिलि, करत सुख न सिरात॥
॥११५३॥१७७१॥

राग कल्यान

रच्यो रास रंग स्याम सबहिनि सुख दीन्हौ।
मुरली-सुर करि प्रकास, खग-मृग सुनि रस-उदास, जुवतिनि तजि गेह बास, बनहिं गवन कीन्हौ॥
मोहे सुर-असुर-नाग, मुनिजन-गन भए जाग, सिव सारद नारदादि चकित भए ज्ञानी॥
अमरनि सह अमर-नारि, आईं लोकनि बिसारि, ओक ओक त्यागि, कहतिं धन्य-धन्य बानी॥
थकित-गति भयौ समीर, चंद्रमा भयौ अधीर, तारागन लज्जित भए, मारग नहिं पावै।
उलटि कहति जमुन-धार, बिपरित सबही बिचार, सूरज-प्रभु संग नारि, कौतुक उपजावै॥११५४॥१७७२॥

राग बिहागरौ

रचि रस-रास स्याम सुजान।
प्रथम मुरली-नाद करि, हरि हरयौ सबकौ ज्ञान॥

सबनि उलटी रीति कीन्ही, देव-सुर-नर आदि।
ब्रज बधू मन-काम पूरन, कियौ पुरुष अनादि।।
सहज सुख निसि ग्वाल सोवत, सो रची षट् मास।
हेतु जुवती सुख-बढ़ावन, कियौ पूरन रास।।
मेटि अंतर ध्यान कौ दुख, वहै राख्यौ भाव।
सूर-प्रभु महिमा अगोचर, निगम अंत न पाव।।
।।११५५।।१७७३।।

राग मलार

रास रस स्रमित भईं ब्रजबाल।
निसि सुख दै जमुना-तट लै गए, भोर भयौ तिहिँ काल।।
मनकामना भई परिपूरन, रही न एकौ साध।
षोड़स सहस नारि सँग मोहन, कीन्हौ सुख अवगाधि।।
जमुना-जल बिहरत नँद-नंदन, संग मिलीँ सुकुमारि।
सूर धन्य धरनी वृंदावन, रबि-तनया सुखकारि।।
।।११५६।।१७७४।।

राग गुंडमलार

रैनि रस-रास-सुख करत बीती।
भोर भए गए पावन जमुन कैँ सलिल, न्हात सुख करत अति बढ़ी प्रीती।।
एक इक मिलति हँसि, एक हरि संग रसि, एक जल मध्य, इक तीर ठाढ़ी।
एक इक दुरति, इक अंक भरि कै चलति, एक सुख करति अति नेह बाढ़ी।।
काहु नहिं डरति, जल-थलहु क्रीड़ा करति, हरति मन निडर, ज्यौँ कंत नारी।
सूर प्रभु स्याम-स्यामा संग गोपिका, मिटी तनु-साध भईं मगन भारी।।११५७।।१७७५।।

राग गौरी

जमुना-जल क्रीड़त नँद-नंदन।
गोपी-बृंद मनोहर चहुँ दिसि, मध्य अरिष्ट निकंदन।।

स्पर छिड़कना सोभित सलिल परस्पर छिरकत, सिथिल होत भुज-बंदन।
ज्यौं अहिपति केँचुरि कौ, लघु-लघु छोरत है अँग-बंदन॥
कच-भर कुटिल सुदेस अंबुकनि, चुवत अग्र गति मंदन।
मानहु भरि गंडूष कमल तैँ डारत अलि आनंदन॥
भुज भरि अंक अगाध चलत लै, ज्यौं लुब्धक खग फंदन।
सूरदास स्वामी श्रीपति के गुन गावत श्रुति छंदन॥
॥११५८॥१७७६॥

राग रामकली

स्यामा स्याम सुभग जमुना-जल निर्भ्रम करत बिहार।
पीत कमल इंदीबर पर मनु भोर भएँ नीहार॥
श्रीराधा अंबुज कर भरि-भरि, छिरकति बारंबार।
कनक-लता मकरंद झरत मनु, हालत पवन सँचार॥
अतिसी-कुसुम-कलेवर बूँदैँ प्रतिबिंबित निरधार।
जोतिसूचक गगन सौँ डोलत, सखि सब करतिँ बिचार॥
धाइ धरे बृषभानु-सुता हरि, मोहे सकल सिँगार।
तड़ित जलद सूरज मानौ मिलि, बरषत अंमृत-धार॥
॥११५९॥१७७७॥

राग ललित

राधे छिरकति छीँट छबीली।
कुच कुंकुम कंचुकि-बद छूटे, लटकि रही लट गीली॥
बंदन सिर ताटंक गंड पर, रतन जटित मनि नीली।
गति गयंद, मृगराज सुकटि पर, सोभित किंकिन ढीली॥
मच्यौ खेल जमुना-जल-अंतर प्रेम मुदित रस-भीली।
नंद-सुवन-भुज ग्रीव बिराजति, भाग-सुहाग भरीली॥
बरषत सुमन देवगन हरषत, दुंदुभि सरस बजीली।
सूर स्याम-स्यामा रस क्रीड़त, जमुन-तरंग थकीली॥
॥११६०॥१७७८॥

राग सारंग

देखि री उमँग्यौ सुख आजु।
जलबिहार-बिनोदमय-सुख रुचिर तनु को साजु॥

भीजि पट लपट्यौ सुभग उर, रही केसरि-चय न।
सरस-परस सुभाव त्याग्यौ, जगे निसि के नयन॥
कछुक कुंचित केस भाई, सरस-सोभा भ्राज।
सुभग मानौ काम-द्रुम कौ, नयौ अंकुर राज॥
जुवति गन सब जूथ जित, कित भरत अंजुलि नीर।
सूर सुभग गुपाल-तन-रुचि, सुखद स्याम-सरीर॥
॥११६१॥१७७६॥

राग कान्हरौ

बिहरत हैं जमुना-जल स्याम।
राजत हैं दोउ बाहीं-जोरी, दम्पति अरु व्रज-बाम॥
कोउ ठाढ़ीं जल जानु जंघ लौं, कोउ कटि हिरदय ग्रीव।
यह सुख वरनि सकै ऐसौ को, सुंदरता की सींव॥
स्याम अंग चंदन की आभा, नागरि केसरि अंग।
मलयज-पंकज कुंकुमा मिलिकै, जल-जमुना इक रंग॥
निसि-स्रम मिट्यौ,मिट्यौ तन-आलस परसि जमुन भईं पावन।
सूर स्याम जल-मध्य जुबति-गन, जन-जन के मन-भावन॥
॥११६२॥१७८०॥

राग कान्हरौ

जल क्रीड़ा-सुख अति उपजायौ।
रास रंग मन तैं नहिं भूलत, पहै भेद मन आयौ॥
जुवती कर-कर जोरि मंडली, स्याम नागरी बीच।
चंदन अंग-कुंकुमा छूटत, जल मिलि तट भई कीच॥
जो सुख स्याम करत जुबतिनि सँग, सो सुख तिहुँ पुर नाहीं।
सूर स्याम देखत नारिनि कौं, रीझि-रीझि लपटाहीं॥
॥११६३॥१७८१॥

राग बिलावल

बिहरति नारि हँसत नँद-नंदन। निर्मल देह छूटि तन चंदन॥
अति सोभा त्रिभुअन-जन-वंदन। पावत नहिं गावत स्रुति छंदन॥
कंचन पेड़ नारि-अँग-सोभा। वे उनकौं वे उनकौं लोभा॥

कबहुँ अंक भरि चलत अगाधहिँ। अरस-परस मेटत मन-साधहिँ ॥
कोउ भाजै कोउ पाछैँ धावैँ। जुवतिनि सौँ कहि ताहि मँगावैँ ॥
ताकौँ गहि अथाह जल डारैँ। मुख-व्याकुलता-रूप निहारैँ ॥
कंठ लगाइ लेत पुनि ताहीँ। देत अलिंगन रीझत जाहीँ ॥
सूर स्याम ब्रज जुबतिनि भोगी। जाकौँ ध्यावत सिबमुनि जोगी ॥
॥११६४॥१७८२॥

राग टोड़ी

ऐसे स्याम बस्य राधा के। नाम लेत पावन आधा के ॥
तिया स्याम-तन अंजुलि डारै। वा छबिकौँ चित लाइ निहारै ॥
मनौ जलद जल डारत धारै। मन मनहीँ तन मन धन बारै ॥
निरखि रूप नहिं धीर सम्हारै। सूर स्याम कौँ अंकम धारै ॥
॥११६५॥१७८३॥

राग रामकली

रीझे स्याम नागरि रूप।
तैसियै लट बगरि उर पर, स्रवत नीर अनूप ॥
स्रवत जल कुच परति धारा, नहीँ उपमा पार।
मनौ उगिलत राहु अंमृत, कनक-गिरि पर धार ॥
उरज परसत स्याम सुंदर, नागरी सरमाइ।
सूर-प्रभु तन-काम-व्याकुल, किये मनहिं सुहाइ ॥
॥११६६॥१७८४॥

राग रामकली

स्यामा स्याम अंकम भरी।
उरज उर परसाइ, भुज-भुज जोरि गाढ़ैँ धरी ॥
तुरत मन सुख मानि लीन्ही, नारि तिहिँ रँग ढरी।
परस्पर दोउ करत क्रीड़ा, राधिका नव हरी ॥
ऐसे हीँ सुख दियौ मोहन, सबै आनँद भरी।
करत रंग हिलोर जमुना, प्रेम आनँद झरी ॥
रास-निसि-स्रम दूरि कीन्हौ, धन्य धनि यह घरी।
सूर-प्रभु तट निकसि आए, नारि सँग सब खरी ॥
॥११६७॥१७८५॥

राग गूजरी

ठाढ़े स्याम जमुना-तीर।
धन्य पुलिन पवित्र पावन, जहाँ गिरिधर धीर॥
जुवति बनि-बनि भईं ठाढ़ीं और पहिरे चीर।
राधिका सुख-स्याम-दायक, कनक-बरन सरीर॥
लाल चोली, नील उड़िया, संग जुवतिनि भीर।
सूर-प्रभु छबि निरखि रीझे, मगन भयौ मन-कीर॥
॥११६८॥१७८६॥

राग नट

ललकत स्याम मन ललचात।
कहत हैं घर जाहु सुंदरि, मुख न आवति बात॥
षट सहस दस गोप-कन्या, रैनि भोगीं रास।
एक छिन भईं कोउ न न्यारी, सबनि पूजी आस॥
बिहँसि सब घर-घर पठाईं ब्रज गईं ब्रज-बाल।
सूर-प्रभु नँद-धाम पहुँचे, लख्यौ काहु न ख्याल॥
॥११६९॥१७८७॥

राग बिलावल

ब्रजबासी सब सोवत पाए।
नंद-सुवन मति ऐसी ठानी, उनि घर लोग जगाए॥
उठे प्रात-गाथा मुख भाषत, आतुर रैनि बिहानी।
एँडत अंग जम्हात बदन भरि, कहत सबै यह बानी॥
जो जैसे सो तैसे लागे, अपनैं-अपनैं काज।
सूर स्याम के चरित अगोचर, राखी कुल की लाज॥
॥११७०॥१७८८॥

राग जैतश्री

ब्रज-जुवती रस-रास पगीं।
कियौ स्याम सब कौ मन भायौ, निसि रति-रंग जगीं॥
पूरन ब्रह्म, अकल, अबिनासी, सबनि संग सुख चीन्हौ।
जितनी नारि भेष भए तितने, भेद न काहू कीन्हौ॥

वह सुख टरत न काहूँ मन तैँ, पति-हित-साध पुराईँ ।
सूर स्याम दूलह सब दुलहिनि, निसि भाँवरि दै आईँ ॥
॥११७१॥१७८६॥

राग सोरठ

साध नहीँ जुवतिनि मन राखी ।
मन बांछित सबहिनी फल पायौ, बेद-उपनिषद साखी ॥
भुज भरि मिले, कठिन कुच चाँपे, अधर सुधा रस चाखी ।
हाव-भाव नैननि सैननि दै, बचन-रचन मुख भाषी ॥
सुक भागवत प्रगट करि गायौ, कछू न दुबिधा राखी ।
सूरदास ब्रजनारि संग-हरि, बाकी रही न काखी ॥
॥११७२॥१७६०॥

राग कान्हरौ

धनि सुक मुनि भागवत बखान्यौ ।
गुरु की कृपा भई जब पूरन, तब रसना कहि गान्यौ ॥
धन्य स्याम बृंदाबन कौ सुख, सत मया तैँ जान्यौ ।
जो रस-रास-रंग हरि कीन्ह्यौ, बेद नहीँ ठहरान्यौ ॥
सुर-नर-मुनि मोहित भए सबही, सिवहु समाधि भुलान्यौ ।
सूरदास तहँ नैन बसाए, और न कहूँ पत्यान्यौ ॥
॥११७३॥१७६१॥

राग धनाश्री

मैँ कैसैँ रस रासहिँ गाऊँ ।
श्री राधिका स्याम की प्यारी, कृपा बास ब्रज पाऊँ ॥
आन देव सपनेहुँ न जानौ, दंपति कौँ सिर नाऊँ ।
भजन-प्रताप, चरन-महिमा तैँ गुरु की कृपा दिखाऊँ ॥
नव निकुंज बन-धाम-निकट इक, आनँद-कुटी रचाऊँ ।
सूर कहा बिनती करि बिनवै, जनम-जनम यह ध्याऊँ ।
॥११७४, १७६२॥

राग बिलावल

गोपी-पद-रज महिमा, बिधि भृगु सैँ कही ।
बरष सहस तप कियौ, तऊ मैँ ना लही ॥

यह सुनि के भृगु कह्यौ, नारदादिक हरि भक्ता।
माँगौ तिनकी चरन रेनु, तौ है यह जुक्ता॥
सो निज गोपी-चरन-रज, बछत हौ तुम देव।
मेरैं मन संसय भयौ, कहौ कृपा करि भेव॥
ब्रज सुंदरि नहिं नारि, रिचा स्रुति की सब आहीं।
मैं अरु सिव पुनि सेष, लच्छमी तिन सब नाहीं॥
अद्भुत है तिनकी कथा, कहौं सु मैं अब गाइ।
याहि सुनै जो प्रीति करि, सो हरि-पदहि समाइ॥
प्रकृति पुरुष लय भई, जगत सब प्रकृति समाया।
रह्यौ एक बैकुंठ लोक, जह त्रिभुवन-राया॥
अछर अच्युत अविकार है, निराकार है जोइ।
आदि अंत नहिं जानियत, आदि अंत प्रभु सोइ॥
स्रुति बिनती करि कह्यौ, सर्व तुमहीं हौ देवा।
दूरि निरंतर तुमहिं, तुमहिं जानत सब भेवा॥
इहिं बिधि बहु अस्तुति करी तब भइ गिरा अकास।
माँगौ बर मन भावते, पुरवौं सो तुम आस॥
स्रुतिनि कह्यौ कर जोरि, सच्चिदानंद देव तुम।
जो नारायन आदि रूप तुम्हरे सो लखे हम॥
त्रिगुन रहित निज रूप जो, लख्यौ न ताकौ भेव।
मन बानी तैं अगम जो, दिखरावहु सो देव॥
बृंदाबन निज धाम, कृपा करि तहाँ दिखायौ।
सब दिन जहाँ बसंत, कल्प-बृच्छनि सो छायौ॥
कुँज अतिहिं रमनीक तहँ, बेलि सुभग रहीं छाइ।
गिरि गोबर्धन धातुमय, झरना झरत सुभाइ॥
कालिंदी जल अमृत, प्रफुल्लित कमल सुहाए।
नगनि जटित दोउ कूल, हंस सारस तहँ छाए॥
क्रीड़त स्याम किसोर तहँ, लिए गोपिका साथ।
निरखि सु छबि स्रुति थकित भईं, तब बोले जदुनाथ॥
जो मन इच्छा होइ, कहौ सो मोहिं प्रगट कर।
पूरन करौं सु काम, देउँ तुमकौं मैं यह बर॥
स्रुतिनि कह्यौ ह्वै गोपिका, केलि करैं तुम संग।
एव मस्तु निज मुख कह्यौ, पूरन परमानंद॥

कल्पसार सत ब्रह्मा, जब सब सृष्टि उपावौ।
अरु तिहुँ लोकनि बरन-आसरम धरम चलावौ॥
बहुरि अधर्मी होहिँ नृप, जग अधर्म बढ़ि जाइ।
तब बिधि, पृथ्वी, सुर सकल, बिनय करैँ मोहिँ आइ॥
मथुरा-मंडल भरत-खंड, निज धाम हमारौ॥
धरौँ तहाँ मैँ गोप-वेष, सो पंथ निहारौ॥
तब तुम ह्वै कै गोपिका, करिहौ मो सौँ नेह।
करौँ केलि तुम सौँ सदा, सत्य बचन मम एह॥
स्रुति सुनि कै यह बचन, भाग्य अपनौ बहु मान्यौ।
चितवन लगीँ तिहि समय, द्यौस सो जात न जान्यौ॥
भार भयौ जब पृथी पर, तब हरि लियौ अवतार।
बेद ऋचा ह्वै गोपिका, हरि सँग कियौ बिहार॥
जो कोउ भरता-भाव, हृदय धरि हरि-पद ध्यावौ।
नारि पुरुष कोउ होइ, स्रुति-ऋचा-गति सो पावौ॥
तिनकी पदरज कोउ जो, बृंदाबन भू माँह।
परसे सोउ गोपिका-गति पावौ संसय नाहिँ॥
भृगु, तातैँ मैँ चरन-रेनु गोपिनिकी चाहत।
स्रुति-मति बारंबार, हृदय अपनैँ अवगाहत॥
महिमा पद-रज-गोपिका, बिधि जब दई सुनाइ।
तब भृगु आदिक रिषि-सकल रहे हरि पद चित लाइ॥
सर्व सास्त्र कौ सार, सार-इतिहास-सर्व जो।
सर्ब पुराननि सार, सार जो सर्व स्रुतिनि कौ॥
बंदन-रज-बिधि सबै बिधि, दियौ रिषिनि समुझाइ।
ब्यास जु कह्यौ पुरान मैँ, सूर कह्यौ सो गाइ॥

॥११७५॥१७६३॥

राग रामकली

(श्री) जमुना पतित पावन कर्‌यौ।
प्रथमहीँ जब दियौ दरसन, सकल पापनि हर्‌यौ॥
जल तरंगनि परसि कै, पय पान सौँ मुख भर्‌यौ।
नाम सुमिरत गई दुरमति, कृष्न रस बिस्तर्‌यौ॥

गोप-कन्या कियौ मज्जन, लाल गिरिधर बर्यौ।
सूर श्री गोपाल सुमिरत, सकल कारज सर्यौ॥
॥११७६॥१७६४॥

राग बिलावल

तुमहीं मोकौं ढीठ कियौ।
गैन सदा चरननि तर राखे, मुख देखत न बियौ॥
प्रभु मेरी तुम सकुच मेटाई, जोइ-सोइ माँगत पेलि।
माँगौं चरन-सरन-बृंदाबन, जहाँ करत नित केलि॥
यह बानी जु भुजंग स्रवन बिनु, सुनत बहुत सरमाऊँ।
श्री वृषभानु-सुता-पति सौं हित, सूर जगत भरमाऊँ॥
॥११७७॥१७६५॥

राग बिहागरौ

रास रस लीला गाइ सुनाऊँ।
यह जस कहै, सुनै मुख स्रवननि, तिहि चरननि सिर नाऊँ॥
कहा कहौं वक्ता स्रोता फल, इक रसना क्यौं गाऊँ।
अष्ट सिद्धि नवनिधि सुख-संपति, लघुता कर दरसाऊँ॥
जौ परतीति होइ हिरदै मैं, जग-माया धिक देखै।
हरि-जन दरस हरिहिं सम बूझै अंतर कपट न लेखै॥
धनि वक्ता, तेई धनि स्रोता, स्याम निकट हैं ताकैं।
सूर धन्य तिहि के पितु-माता, भाव भगति हैं जाकैं॥
॥११७८॥१७६६॥

राग बिलावल

बृंदाबन हरि रास उपायौ। देखि सरद-निसि रुचि उपजायौ॥
अद्भुत मुरली-नाद सुनायौ। जुवति सुनत तनु दसा गँवायौ॥
मिलि धाईं मन कौ फल पायौ। जंगम चले चलत ठहरायौ॥
उलटी जमुना धार बहायौ। सुनि धुनि चंचल पवन थकायौ॥
सुर नर मुनि कौ ध्यान भुलायौ। चंद्र गगन मारग बिसरायौ॥
रूप देखि मन काम लजायौ। रस मैं अंतर बिरस जनायौ॥
जुवतिनि कैं तनु बिरह बढ़ायौ। बहुरि मिले अति हित उपजायौ॥
फेरि रास मंडली बनायौ। हाव भाव करि सबनि रिझायौ॥

कल्प रैनि रस हेत उपायौ। प्रात समय जमुना तट आयौ॥
नारिनि के निसि-स्रमहिँ मिटायौ। जुवतिनि प्रति प्रतिरूप बनायौ॥
सिय नारद सारद यह गायौ। ध्यान टर्‌यौ चित तहाँ चलायौ॥
रमाकंत जा सुख कौँ ध्यायौ। सो सुख नंद-सुवन व्रज आयौ॥
राधा बर निज नाम कहायौ। सूरदास कछु कहि कहि गायौ॥
॥११७६॥१७६७॥

राग धनाश्री

सरद सुहाई आई राति। दहुँ दिसि फूलि रही बन-जाति॥
देखि स्याम मन सुख भयौ।
ससि गो मंडित जमुना-कूल। बरषत बिटप सदा फल फूल॥
त्रिबिध पवन दुख दवन है।
राधा-रवन बजायौ बैनु। सुनि धुनि गोपिनि उपज्यौ मैनु॥
जहाँ तहाँ तैँ उठि चलीँ।
चलत न काहुहिँ कियौ जनाव। हरि प्यारे सौँ बाढ्यौ भाव॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
घर-डर बिसर्‌यौ भयौ उछाह। मन चीतौ पायौ हरि नाह॥
व्रज नायक लायक सुने।
दूध पूत की छाँड़ी आस। गोधन भर्त्ता करे निरास॥
साँचौ हित हरि सौँ कियौ।
खान पान तनु की न सम्हार। हिलग छँड़ायो गृह-व्यवहार॥
सुधि बुधि मोहन हरि लई।
अंजन मंजन अँगन सिंगार। पट भूषन छूटे सिर-बार॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
एक दुहावत तैँ उठि चली। एक सिरावत मग मैँ मिली॥
उतकंठा हरि सौँ बढ़ी।
उफनत दूध न धर्‌यौ उतारि। सीधी घूली चूल्हैँ डारि॥
पुरुष तजे जेँवत हुते।
पय प्यावत बालक धरि चली। पति सेवा कुछ करी न भली॥
धर्‌यौ रह्यौ जेँवन जितौ।
तेल उबटनौ त्याग्यौ दूरि। भागनि पाई जीवन-मूरि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

अंजत ही इक नैन बिसार्‍यौ। कटि कंचुकि लँहगा उर धार्‍यौ॥
हार लपेट्यो चरन सैँ।
स्त्रवननि पहिरे उलटे तार। तिरनी पर चौकी शृंगार॥
चतुर चतुरता हरि लई।
जाकौ मन जहँ अँटकै जाइ। ता बिनु ताकौँ कछु न सुहाइ॥
कठिन प्रीति कौ फंद है।
स्यामहि सूचत मुरली-नाद। सुनि धुनि छूटे विषय-सवाद॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
एक मातु पितु रोकी आनि। सही न हरि-दरसन की हानि॥
सबही कौ अपमान कै।
जाकौ मन मोहन हरि लियौ। ताकौ काहू कछू न कियौ।
ज्यौँ पति सैँ तिय रति करै।
जैसैं सरिता सिंधुहि भजै। कोटिक गिरि भेदत नहिँ लजै॥
तैसी गति तिनकी भई।
इक जे घर तैं निकसीँ नहीँ। हरि करुना करि आए तहीँ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
नीरस कबि न कहै रस-रीति। रसिकहिँ रस-लीला पर प्रीति॥
यह मत सुक मुख जानियौ।
ब्रज-बनिता पहुँची पिय-पास। चितवत चंचल भ्रकुटि-बिलास॥
हँसि बूझी हरि मान दै।
कैसैं आईं मारग माँझ। कुल की नारि न निकसैं साँझ॥
कहा कहैँ तुम जोग हौ।
ब्रज की कुसल कहौ बड़ भाग। क्यौँ तुम छाँडे सुवन सुहाग॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
अजहूँ फिरि अपन घर जाहु। परमेस्वर करि मानौ नाहु॥
बन मैँ निसि बसियै नहीँ।
वृंदाबन तुम देख्यौ आइ। सुखद कुमोदिनि प्रफुलित जाइ॥
जमुना-जल सीकर घनौ।
घर मैँ जुवती धर्महिँ फबै। ता बिनु सुत पति दुःखित सबै॥
यह बिधना रचना रची।
भर्ता की सेवा सत सार। कपट तजै छूटै संसार॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

बिरध अभागो जो पति होइ। मूरष रोगी तजै न जोइ ॥
पतित बिलछि करि छाँड़ियै।
तजि भर्त्ता रहि जारहिँ लीन। ऐसी नारि न होइ कुलीन ॥
जस बिहीन नरकहिँ परै।
बहुत कहा समुझाऊँ आजु। हमहूँ कछु करिबै गृह-काज ॥
तुम तैँ को अति जान है।
श्री मुख बचन सुनत बिलखाइ। व्याकुल धरनि परीँ मुरझाइ ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
दारुन चिंता बढ़ो न थोर। क्रूर बचन कहे नंद-किसोर ॥
और सरन सूझै नहीँ।
रुदन करत नदि बढ़ी गँभीर। हरि करिया नहिँ जानै पीर ॥
कुच थंभन अवलंब है।
तुम्हरी रही बहुत पिय आस। बिनु अपराधन करहु निरास ॥
कितौ रुखाई छाँड़िये।
निठुर बचन जनि बोलहु नाथ। निज दासिनि जनि करहु अनाथ ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
मुख देखत सुख पावन नैन। स्रवन सिरात सुनत मृदु बैन ॥
सैननि हीँ सरबस हर्यौ।
मंद हँसनि उपजायौ काम। अधर सुधा धुनि करि बिस्राम ॥
बरषि सीँचि बिरहानला।
जब तैँ हम पेखे ये पाइ। तब तैँ और न कछू सुहाइ ॥
कहौ घोष हम जाहिँ क्यौँ?
सजन बंधु की करिहैँ कानि। तुम बिछुरत पिय आतम हानि ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
बेनु बजाइ बुलाईँ नारि। सहि आई कुल सबकी गारि ॥
मन मधुकर लंपट भयौ।
सोऊ सुंदर चतुर-सुजान। आरज-पंथ तजै सुनि गान ॥
तिनि देखत पुरुषहुँ लजै।
बहुत कहा बरनौ यह रूप। और न त्रिभुवन सरिस अनूप ॥
बलिहारी या राति की।
सुनु मोहन बिनती दै कान। अपजस होइ कियैँ अपमान ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

तुम हमकौं उपदेस्यौ धर्म। ताकौ कछू न पायौ मर्म॥
हम अबला मतिहीन हैं।
सुख-दाता सुत-पति-गृह-बंधु। तुम्हरी कृपा बिनु सब जग अंधु॥
तुमतैं प्रीतम और को।
तुम सौं प्रीति करहिँ जे धीर। तिनहिँ न लोक वेद की पीर॥
पाप पुन्य तिनकौं नहीं।
आसा-पास बँधीं हम बाल। तुमहिँ बिमुख ह्वै हैं बेहाल॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
बिरद तुम्हारौ दीनदयाल। कर सौं कर धरि करि प्रतिपाल॥
भुज दंडनि खंडहु व्यथा।
जैसैं गुनी दिखावै कला। कृपन कबहुँ नहिँ मानै भला॥
सदय हृदय हम पर करौ।
ब्रज की लाज बढ़ाई तोहिं। करहु कृपा करुना करि जोहि॥
तुमहि हमारे गति सदा।
दीन बचन जब जुवतिनि कहे। सुनत स्रवन लोचन जल बहे॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
हँसि बोले हरि बोली ओड़ि। कर जोरे प्रभुता सब छोड़ि॥
हौं असाधु तुम साधु हौ।
मो कारन तुम भईं निसंक। लोक वेद बपुरा कौ रंग।
सिंह सरन जंबुक बसै।
बिनु दमकनि हौं लीन्हौ मोल। करत निरादर भईं न लोल॥
आवहु हिलि मिलि खेलिये।
ब्रज-जुवतिनि घेरे ब्रजराज। मनहुँ निसाकर किरनि-समाज॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
हरि-मुख देखत भूले नैन। उर उमँगे कछु कहत न बैन॥
स्यामहिँ गावत काम-बस।
हँसत हँसावत करि परिहास। मन मैं कहत करैं अब रास॥
अंचल गहि चंचल चल्यौ।
ल्यायौ कोमल पुलिन मँझार। नख सिख भूषन अंग सँवार॥
पट भूषन जुबतिनि सजे।
कुच परसत पुजई सब साध। रस सागर मनु मगन अगाध॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

रस मैं बिरस जु अंतरधान। गोपिनि के उपजै अभिमान॥
बिरह-कथा मैं कौन सुख।
द्वादस कोस रास परमान। ताकौं कैसैं होत बखान॥
आस पास जमुना झिली।
तामैं मान सरोवर ताल। कमल बिमल जल परम रसाल॥
सेवहिं खग मृग सुख भरे।
निकट कल्प तरु बंसी बटा। श्रीराधा रति कुंजनि अटा॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
नव कुमकुम रज बरषत जहाँ। उड़त कपूर धूरि तहँ तहाँ॥
और फूल फल को गनै।
तहँ घन स्याम रास रस रच्यौ। मरकत मनि कंचन सौं खँच्यौ॥
अद्भुत कौतुक प्रकट कियौ।
मंडल जोरि जुवति तहँ बनी। दुहुँ दुहुँ बीच स्याम घन धनी॥
सोभा कहत न आवई।
घूँघट मुकुट बिराजत सीस। सोभित ससि मनु सहस बतीस॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
मनि कुंडल ताटंक बिलोल। बिहँसत लज्जित ललित कपोल॥
अलक तिलक केसरि बनी।
कंठसिरी गज मोतिनि हार। चंचरि चुहि किंकिनि झनकार॥
चौकी चमकति उर लगी।
कौस्तुभ मनि राजति रुचि पोति। दसन चमक दामिनि तैं ज्यौति॥
सरस अधर पल्लव बने।
चिबुक मध्य स्यामल रुचि बिंद। देखि सबनि रीझै गोबिंद॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
सघन बिमान गगन भरि रहे। कौतुक देखन सुर उमहे॥
नैन सुफल सबके भए।
बजे देवलोक नीसान। बरषत सुमन करत सुर गान॥
मुनि किन्नर जय ध्वनि करैं।
जुवतिनि बिसरे पति गति गेह। प्रेम-मगन सब सहित सनेह॥
यह सुख हमकौं हो कहाँ।
सुंदरता सब सुख की खानि। रसना एक न परत बखानि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

नील कंचुकी माँडनि लाल। भुजनि नबै आभूषन माल॥
पीत पिछौरी स्याम तनु।
अँगुरिनि मुँदरी पहुँची पानि। कछि कटि कछनी किंकिनि-बानि॥
उर नितंव बेनी रुरै।
नारा बंदन सूथन जंघन। पाइनि नूपुर बाजत संघन॥
नखनि महावर खुलि रह्यौ।
राधा मोहन मंडल माँझ। मनहुँ बिराजत चंदा साँझ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
पग पटकत लटकत लट वाहु। मटकत भौंहनि हस्त उछाह॥
अंचल चंचल झूमका।
ढुरि-ढुरि देखत नैननि सैन। मुख की हँसी कहत मृदु बैन॥
मंडित गंड प्रस्वेद कन।
चौरी डोरी बिगलित केस। झूमत लटकत मुकुट सुदेस॥
फूल खसत सिर तैँ घने।
कृष्न बधू पावन जस गाइ। रीझत मोहन कंठ लगाइ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
बाजत भूषन ताल मृदंग। अंग दिखावत सरस सुधंग॥
रंग रह्यौ न कह्यौ परै।
नूपूर किंकिनि कंकन चुरी। उपजत मिस्रित ध्वनि माधुरी॥
सुनत सिराने स्रवन मन।
मुरली मुरज रबाब उपंग। उघटत सब्द बिहारी संग॥
नागरि सव गुन आगरी।
गोपी मंडल मंडित स्याम। कनक नील मनि जनु अभिराम॥
राम रसिक गुन गाइ हो।
तिरप लेति सुंदर भामिनी। मनहुँ बिराजत घन दामिनी॥
या छबि की उपमा नहीँ।
राधा की गति परत न लखी। रस सागर की सीँवा नखी॥
बलिहारी वा रूप की।
लेति सुघर औघर गति तान। दे चुंबन आकर्षति प्रान॥
भैँटति मेटति दुख सबै।
राखति पियहिँ कुचनि बिच आनि। दै अधरामृत सिर पर पानि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

हरषित बेनु बजायौ छैल। चंद्रहिँ बिसरी नभ की गैल॥
तारा गन मन मैँ लज्यौ।
मुरली-धुनि बैकुंठहि गई। नारायन सुनि प्रीति जु भई॥
कहत बचन कमला सुनौ।
कुंज बिहारी बिहरत देखि। जीवन जन्म सफल करि लेखि॥
यह सुख तिहुँ पुर है कहाँ।
श्री वृंदाबन हम तैँ दूरि। कैसे धौँ उड़ि लागै धूरि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
कोलाहल ध्वनि दहुँ दिसि जाति। कल्प समान भई सुख राति॥
जीव जंतु मै मत सबै।
उलटि बह्यौ जमुना कौ नीर। बाल बच्छ न पीवैँ छीर॥
राधारवन ठगे सबै।
गिरिवर तरुवर पुलकित गात। गोधन-थन तैँ दूध चुचात॥
सुनि खग मृग मुनि ब्रत धर्‌यौ।
महि फूली भूल्यौ गति पौन। सोवत ग्वाल बजत नहिं भौन॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
राग रागिनी मूरतिवंत। दूलह दुलहिनि सरस बसंत॥
कोक कला संगीत गुर।
सप्त सुरनि की जाति अनेक। नीकैँ मिलवति राधा एक॥
मन मोह्यौ पिय का सुघर।
छंद ध्रुवनि के भेद अपार। नाचति कुँवरि मिले झपतार॥
कह्यौ सबै संगीत मैँ।
पिकनि रिझावति सुंदर सुपद। सरस स्वल्प ध्वनि उघटत सुखद॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
चलति सु मोहति गति गज हंस। हँसत परस्पर गावत गंस॥
तान मान मृग मन थके।
गौरी चंदन चर्चित बाहु। लेत सुबास पुलक तनु नाहु॥
दै चुंबन हरि सुख लियौ।
स्यामल गौर कपोल सुचारु। रीति परस्पर लेत उगारु॥
एक प्रान द्वै देह हैँ।
नाचत गावत गुन की खानि। स्रमित भए टेकत पिय पानि॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

पिक गावत अलि नादहिँ देत। मोर चकोर फिरत सँग हेत॥
सघन जुन्हाई है मानौ।
कच कुच-बिच देखे हँसि स्याम। चलत भौंह नैननि अभिराम॥
अंगनि कोटि अनंग छवि।
हस्तक भेद ललित गति लई। अंचल उड़त अधिक छबि भई॥
कुच बिगलित माला गिरी।
हरि करुना करि लई उठाइ। पोंछत स्रम-जल कंठ लगाइ॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
तिनहिँ लिवाइ जमुन जल गए। पुलिन पुनीत निकुंजनि ठए॥
अंग स्रमित सब के भए।
जैसैँ मद गज कूल बिदारि। तैसैँ सँग लै खेली नारि॥
संक न काहू की करी।
मेटी लोक-बेद-कुल मेड़िँ। निकसि कुँवरि खेल्यौ करि ऐँड़ि॥
फबी सबै जो मन धरी।
जल-थल क्रीड़त व्रीड़त नहीँ। तिनकी लीला परत न कही॥
रास रसिक गुन गाइ हो।
कह्यौं भागवत सुक अनुराग। कैसैँ समुझैँ बिनु बड़ भाग॥
श्री गुरु सकल कृपा करी।
सूर आस करि वरन्यौ रास। चाहत हौ बृंदाबन बास॥
राधा (बर) इतनि करि कृपा।
निसि दिन स्याम सेउँ मैँ तोहिँ। यहै कृपा करि दीजै मोहिँ॥
नव गिकुंज सुख पुंज मैँ।
हरि वंसी हरि-दासी जहाँ। हरि करुना करि राखहु तहाँ॥
नित बिहार आभार दै।
कहत सुनत बाढ़त रस रीति। वक्ता स्रोता हरि पद प्रीति॥
रास रसिक गुन गाइ हो।

॥११८०॥१७९८॥

राग बिहागरौ

(तो पर वारी हौँ नँदलाल।) टेक

सरद-चाँदनी रजनी सोहै, बृंदाबन श्री कुंज।
प्रफुलित सुमन बिबि-रँग, जहँ-तहँ कूजत कोकिल-पुंज॥

जमुना-पुलिन स्याम-घन सुंदर, अद्भुत रास उपायौ।
सप्त सुरनि बंधान-सहित हरि, मुरली टेर सुनायौ॥
थक्यौ पवन, सुर थकित भए, नभ-मंडल, ससि-रथ थाक्यौ।
अचल चले, चल थकित भए, सुनि धरनि उमँगि धर काँप्यौ॥
खग मृग मीन जीव-जल-थल के, सब तन-सुरति बिहारी।
सूखैं द्रुम पल्लव फल लागे, नव-नव साखा डारी॥
सुनि ब्रच-बधू तज्यौ आरज-पथ, सुत-पति-नेह न कीन्हौ।
प्रगट्यौ अंग अनंग बिकल भईं, तन-मन हरि सब लीन्हौ॥
इक जँवनार करत ही छाँड़ी, इक जँवत पति त्याग्यौ।
इक बालक पय पियत सुवावति, प्रेम बिबस तनु जाग्यौ॥
जो जैसैं, तैसैं उठि धाईं, तन-मन सुरति बिसारी।
मुरलि-नाद करि टेरि लई हरि, ब्रज-नब-जुवति-कुमारी॥
आँजत नैन अधर दुहुँ कैं बिच, सारँग-सुत तहँ लाग्यौ।
मानहु अलि बैठ्यौ बंधुक पर, पियत सुमन-रस पाग्यौ॥
कटि कंचुकी, उरज लहँगा कसि, चरननि हार सँवार्‌यौ।
उलटे भूषन अंगनि साजे, फेर न काहु निहार्‌यौ॥
चलीं सबै तिय आधी रतियाँ, जहँ नव-कुंज-बिहारी।
आनि हजूर भईं कानन मैं, जहाँ स्याम सुखकारी॥
देखि सबै ब्रज-नारि स्याम-घन, चितये बुद्धि सँवारी।
क्यौं आईं बृंदाबन-भीतर, तुम सब पिय की प्यारी॥
तुम कुल-बधू भवनहीं नीकी, रैनि कहाँ सब आईं।
अपनैं अपनैं घर पति-जन सौं, कैसैं निकसन पाईं॥
बेनु-सब्द स्रवननि मग ह्वै उर, पैठि हमहिं लै आयौ।
आस तुम्हारी जानि चपल चित, चंचल तुरत चलायौ॥
अपनौ पुरुष छाँड़ि जो कामिनि अन्य पुरुष मन लावै।
अपजस होइ जगत जीवन भरि, बहुरि अधम गति पावै॥
अजहुँ जाहु सब घोस-तरुनि फिरि, तुम तौ भली न कीन्ही।
रैनि बिपिन नहिं बास कीजियै, अबलनि कौं नहिं लीन्ही॥
घर कैसैं फिरि जाहिं स्याम जू, तन इहइँ सब त्यागैं।
तुम तैं कहौ कौन ह्याँ प्रीतम, जा सँग मिलि अनुरागैं॥
हम अनाथ, ब्रजनाथ-नाथ तुम, चरन-सरन तकि आईं।
निठुर बचन जनि कह्यौ पीय तुम जानत पीर पराई॥

दीन बचन सुनि स्रवन कृपानिधि, लोचन जल बरषाए।
धन्य धन्य कहि कहि नँद-नंदन हरषित कंठ लगाए॥
हम कीन्हौ अपमान तुम्हारौ, तुम नहिँ जिय कछु आन्यौ।
सरिता जैसैँ सिंधु भजै ढरि, तैसैँ तुम मोहिं जान्यौ॥
द्वादस कोस रास परमत भई, ताकौ कहा बखानौ।
बोलि लईँ ब्रज-बधू बिहँसि सब, तब मंडल बिधि बानौ॥
पानि-पानि सौँ जोरि जुवति, द्वै द्वै बिच स्याम बिराजै।
कंचन-खंभ खचित मरकत मनि, यह उपमा कछु छाजै॥
अँग-प्रति कोटि-काम-छबि लज्जित, मधि नायक गिरिधारी।
नृत्य करत रस-बस भए दोऊ, मोहन राधा प्यारी॥
ब्रज बनिता मंडली बनी यौं, सोभा अधिक बिराजै।
नूपुर कटि किंकिनी चलत गति, अरस-परस पर बाजै॥
मोर-चंद्रिका सिर पर सोहै, जब हरि रुनझुन नाचै।
अंग अंग प्रति और-और-गति कोटि-मदन-छबि राचै॥
जमुना जल उलटी वही धारा, चंदा रथ न चलावै।
बानक अतिहि बन्यौ मनमोहन, मन्मथ पकरि नचावै॥
नृत्य करत रीझत मन-मोहन, राधा कंठ लगाई।
रास बिलास करत सुख उपज्यौ, बस सब किये कन्हाई॥
अंतर ध्यान करत सुख बाढ़ै, राधा बर सुखकारी।
सूरदास प्रभु भक्त-बछलता प्रगट करी गिरिधारी॥
॥११८१॥१७६६॥

राग बिहागरौ

सरद निसा आई जोन्ह सुहाई।
बृंदाबन घन मैँ जदुपति राई॥
सप्त सुरनि बिधि सौँ मुरलि बजाई।
सुनि धुनि नारि चली ब्रज तजि आईँ॥

छंद

(धुनि) सुनत ब्याकुल भई जुवती, मदन तन आतुर करी।
बिबस भई तन-मन भुलानी, भवन कारज परिहरी॥
उलटि भूषन सब बनाए, अंग की सुधि बीसरी।
नंद-सुत चित बित चुरायौ, आइ भई सब हाजिरी॥

हाजिर आइ भईं जहँ बनवारी।
निसि कहँ धाइ चलीं घोष-कुमारी ॥
बचन सुनाए मोहन नागरि कौं।
पति गृह त्यागे, गुरुजन-बागरि क्यौं ॥

छंद

गेह सुत पति त्यागि आईं, नाहिनैं जु भली करी।
पाप पुन्य न सोच कीन्हौ, कहा तुम जिय यह धरी ॥
अजहुँ घर फिरि जाहु कामिनी, काहु सो जो हम कहैं।
लोक-बेदनि बिदित गावत, पर पुरुष नहिँ धनि लहैं ॥
निठुर बचन सुनि ग्वालिनि निठुर भई।
मुरझाइ रहीं सुधि बुधि सबै गईं ॥
बिनय बचन कहि कै ग्वारि सुनाए।
तुव चरननि मन दै सब बिसराए ॥

छंद

तुव दरस की आस पिय व्रत नेम दृढ़ यह है धर्‌यौ।
कौन सुत को मातु पति कौन तिय को किनि कर्‌यौ ॥
कहाँ पठवत जाहिँ काकैं, कहौ कहँ मन मानिहैं।
यहाँ बरु हम प्रान त्यागैं आईं जहँ सोइ जानिहैं ॥
हरि तब हँसि बोले धनि ब्रजनारी।
मैं तुम बहुत कसी दृढ़-व्रतधारी ॥
मुख बहुत कही अंतर तुमहीं रहीं।
जब जहँ देह धरौं तहँ तुम सँगहीं ॥

छंद

कहा कसि कोउ तुमहिँ देखै, कनक बारह बानि हौ।
मेरे तौ तुम प्रान जानहु, और मन नहिँ जानि हौ ॥
तबहिँ हिलि मिलि रास कीन्हौ, जुवति बहु मंडलि जुरी।
कनक मरकत खंभ रचि, बिच कान्ह बिच-बिच नागरी ॥
अद्‌भुत रास रच्यौ गिरिधर लाड़िले।
श्री बृतभानु-सुता सौं हरि चाड़िले ॥
अति आनँद बढ़्यौ गोपी हरष भईं।
निर्तत रीझे, भुज भरि स्याम लईं ॥

जल थल पवन थक्यौ। खग मृग तरु बिथक्यौ ॥
देखत मदन जक्यौ। चरननि सरन तक्यौ ॥

छंद

जीव सब तिहुँ भुवन मोहे, अमर नभ बिथकित छए।
चंद्रमा-रथ मध्य थाक्यौ, रास-बस मोहन भए ॥
और तरु फल और लागे, और भए पल्लव कली।
स्याम स्यामा रास-नायक, गोपिका गन मंडली ॥

दोहा

रास रंग रस अति बढ्यौ, मन गर्बित सुकुमारि।
लेहु कंध प्रभु सौं कह्यौ, अंतर भए दैतारि ॥
तब अंतर भए दैत्यारी। श्री राधा सँग तैं डारी ॥
प्रभु संतनि के सुखकारी। दुष्टनि मन गर्ब प्रहारी ॥
येई भक्त वछल बपुधारी। धरनी उद्धारनकारी ॥

दोहा

चहुँ दिसि चितवत चकित ह्वै, स्याम संग कहुँ नाहिँ।
आपु अकेले देखि कै, मुरछि परी धर माहिँ ॥
धर मुरछि परत नहिँ जानी। दुख-सागर-माँझ समानी ॥
हा कृष्न-कृष्न-रट लागी। हरि-अधर-पान अनुरागी ॥
ललिता गहि बाहँ जगाई। तब चौंकि उठी अकुलाई ॥
यह कहति उठी हरि आए। जियो मनौ रंक निधि पाए ॥

दोहा

सावधान तिहिँ छिनु भई, नैना दिये उघारि।
ललिता कौ मुख देखि कै, भई बिरह तनु-भारि ॥
अति बिकल भई बेहाला। कहुँ देखे श्री गोपाला ॥
मोहिँ त्यागि गए नँदलाला। तन करत मदन जंजाला ॥
मुख-सुंदर-बचन-रसाला। बर-लोचन-कमल-बिसाला ॥
मिलि करहु न मोहि निहाला। ढूँढ़ति बन बीथिनि बाला ॥

दोहा

जहाँ तहाँ खोजति फिरै, चरन-चिन्ह कहुँ पाइ।
बार बार अवलोकि कै, नैन चले ढहराइ ॥
बन बेली बूझति जाई। कहुँ नाहिँन मिले कन्हाई ॥
चंपकऽरु बकुल बट बूझे। तनु बिरह ब्यथा हिय गूझे ॥

खोजे बन बारंबारा। कहि कहि मुख नंदकुमारा ॥
मोहिँ नंदनँदन क्यौँ त्यागी। मैँ अतिहीँ परम अभागी ॥

दोहा

नंदनँदन बस प्रेम के, प्रगट भए तिहिँ काल।
प्यारी कौँ मिलि सुख दियौ, मेटि बिरह दुख जाल ॥

मिलि मनमोहन ब्रजबाला। फिरि आपुहिँ भए कृपाला ॥
पुनि रास-मँडल-बिधि ठास्यौ। सब काम-द्वंद-दुख कास्यौ ॥
सुर असुर नारि नर मोहे। इहिँ रस बिलास सब पोहे ॥
दिवि दुँदुभि देव बजाई। सुरनारि सुमन बरषाई ॥
जै जै धुनि लोकनि गाए। जस तिहूँ भुवन भरि छाए ॥
रस रास रसिक गुन भारी। श्री राधा मोहन प्यारी ॥
सहसानन कहत न आवैं। जिहिँ निगम नेति नित गावैं ॥
सुख-आनँद-पुंज बढ़ायौ। क्यौँ जात सूर पै गायौ ॥

॥११८२॥१८००॥

राग जैतश्री

सुनियै सुनियै हो धरि ध्यान, सुधारस मुरली बाजै।
स्याम-अधर पर बैठि बिराजति, सप्त सुरनि मिलि साजै ॥
बिसरी सुधि बुधि गति सबहिनि, सुनि बेनु मधुर कल गान।
मन-गति-पंगु भईं ब्रज-जुवती, गंध्रब मोहे तान ॥
खग-मृग थके, फलनि तृन तजिकै, बछरा पियत न छीर।
सिद्धि समाधि थके चतुरानन, लोचन मोचत नीर ॥
महादेव की नारी छूटी, अति ह्वै रहे अचेत।
ध्यान टस्यौ धुनि सो मन लाग्यौ, सुर-मुनि भए सचेत ॥
जमुना उलटि बही अति ब्याकुल, मीन भए बलहीन।
पसु पच्छी सब थकित भए हैँ, रहे इकटक लौलीन ॥
इंद्रादिक, सनकादिक, नारद, सारद, सुनि आबेस।
घोष-तरुनि आतुर उठि धाईं, तजि पति-पुत्र-अदेस ॥
श्री बृंदाबन कुंज-कुंज प्रति, अति बिलास आनंद।
अनुरागी पिय प्यारी कैं सँग, रस राँचे सानंद ॥
तिहूँ भुवन भरि नाद प्रकास्यौ, गगन धरनि पाताल।
थकित भए तारागन सुनि कै, चंद भयौ बेहाल ॥

नटवर वेष धरे नँद-नंदन, निरखि बिबस भयौ काम।
उर बनमाल चरन पंकज, लौं, नील जलद तनु स्याम॥
जटित जराव मकर कुंडल छबि, पीत बसन सोभाइ।
वृंदाबन रस रास माधुरी, निरखि सूर बलि जाइ॥
॥११८३॥१८०१॥

सुदर्शन विद्याधर-शाप-मोचन तथा शंखचूड़ बध

विद्याधर-शाप-मोचन *राग बिलावल*

नंद सब गोपी ग्वाल समेत।
गए सरस्वति तट इक दिन, सिव अँबिका पूजा हेत॥
पूजा करत सकल दिन बीत्यौ, ह्वै आई तहँ साँझ।
ब्रजवासी सब स्रमित होइ कै, सोइ रहे बन माँझ॥
अर्ध निसा इक उरग आइ कै, लपटि गयौ नँद-पाइ।
चौँकि पर्यौ, दुख पाइ पुकार्यौ, हा-हा कृष्न छुड़ाइ॥
ग्वालनि मिलि श्रीकृष्न जगाए, छुवत पाइ दियौ छोड़।
बिद्याधर का रूप धारि कह्यौ, करै को तुम्हरी होड़॥
सब देवनि के देव तुमहिं हो, मैं अब देख्यौ जोइ।
रिषि अंगिरा साप मोहिं दीन्हौ, भयौ अनुग्रह सोइ॥
हरि-आज्ञा कौं पाइ, नाइ सिर, गयौ आपनैं ओक।
सूरदास हरि के गुन गावत, ब्रज आए ब्रज-लोक॥
॥११८४॥१८०२॥

बृंदाबन-बिहार *राग बिलावल*

जागौ मोहन भोर भयौ।
बदन उघारि स्याम तुम देखौ, रबि की किरनि प्रकास कयौ॥
संगी सखा ग्वाल सब ठाढ़े, खेलत हैँ कछु खेल नयौ॥
आँगन ठाढ़ी कुवँरि राधिका, उनकौं कहा दुराइ लयौ॥
हँसि मोहन मुसुकाइ कहौ, कब हैाँ बृषभानु कैं गेह गयौ ?॥
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, सबंस लै हरि आपु दयौ॥
॥११८५॥१८०३॥

राग बिलावल

मैं हरि की मुरली बन पाई।
सुनि जसुमति सँग छाँड़ि आपनौ, कुँवर जगाइ दैन हैाँ आई॥

सुनतहिँ बचन बिहँसि उठि-बैठे, अंतरजामी कुँवर कन्हाई।
याकैँ संग हुती मेरी पहुँची, दै राधे बृषभानु-दुहाई॥
मैँ नाहिँन चित लाइ निहारयौ, चलौ ठौर सब देउँ बताई।
सूरदास प्रभु मिली अंतर गति, दुहुँनि पढ़ी एकै चतुराई॥
॥११८६॥१८०४॥

राग कान्हरौ

बिहरत कुंजनि कुंज-बिहारी।
पिक, सुक, बिहँग पवन, थकि थिर रहे, तान अलापत जब गिरिधारी॥
सरिता थकित, थकित द्रुम-वेली, अधर धरत मुरली जब प्यारी।
रबि अरु ससि देखैँ दोउ चोरिनि, संका गहि तब बदन-उज्यारी॥
आभूषन सब साजि आपने, थकित भईँ ब्रज की कुल-नारी।
सूरदास-स्वामी की लीला, अब जोवै बृषभानु-दुलारी॥
॥११८७॥१८०५॥

राग गौड़ मलार

गगन उठी घटा कारी, तामैँ बग-पंगति अति न्यारी।
सुरधनु की छबि रुचिर देखियत, बरन वरन रँगधारी॥
बीच-बीच दामिनि कौँधति है, मानौ चंचल नारी।
दुरि-दुरि जाति बहुरि फिर आवति, बिकल मदन की जारी॥
बन बरही चातक रटै द्रुम-द्रुम, प्रति-प्रति सघन सँचारी।
सूर, स्याम-हित काम सुकोविद, निज कर कुटी सँवारी॥
॥११८८॥१८०६॥

राग सारंग

अद्भुत कौतुक देखि सखी री बृंदाबन नभ होड़ परी।
उत घन उदित सहित सौदामिनि, इतहिँ मुदित राधिका हरी॥
उत बग-पाँति, सु इतहिँ स्वाति-सुत-दाम, बिसाल सुदेस खरी।
ह्वाँ घन-गरज, इहाँ मुरली-धुनि, जलधर उत, इत अमृत भरी।
उतहिँ इंद्र-धनु, इत बनमाला, अति बिचित्र हरि कंठ धरी।
सूरदास प्रभु-कुँवरि राधिका, गगन की सोभा दूरि करी॥
॥११८९॥१८०७॥

राग सारंग

खैंचि भुज-बंध बल बिहँसि भीतर चली, सुनि अधर दुहुँनि के नैकु डोलैँ।
झूमत झुमत सेज निकट नवतन चढ़े, मन मनहिँ मुसुकाइ कोउ न बोलैँ॥
सूर सकल सहचरि देखि, तजी बिकलता, परम फल प्रानपति सुरति आयौ।
आपु आदर कियौ, सुमुषि बहु सुख दियौ, एक तैँ एक अति मोद पायौ॥११६०॥१८०८॥

राग सोरठ

नवल नागरि, नवल नागर किसोर मिलि, कुंज कोमल-कमल-दलनि सज्या रची।
गौर साँवल अंग रुचिर तापर मिले, सरस मनि मृदुल कंचन सु आभा खची॥
सुँदर नीबी बंध रहति पिय पानि गहि पीय के भुजनि मैँ कलह मोहन मची।
सुभग श्रीफल उरज पानि परसत, हुँकरि, रोषि, करि गर्व, दृग भंगि, भामिनी लची॥
कोट-कोटिक रभस, रसिक हरि सूरज, बिबिध कल माधुरी किमपि नाहिँन बची।
प्रान-मन-रसिक, ललितादि, लोचन-चषक, पिवति मकरंद, सुख-रासि-अंतर-सची॥११६१॥१८०६॥

राग नट

राधे जल-सुत कर जु धरे।
अतिहीँ अरुन, अधिक छबि उपजत, तजत हंस सगरे॥
चुगन चकोर चले ह्वै सनमुख; झझके रहे खरे।
तब बिहँसी बृषभानु-नंदिनी, दोऊ मिलि झगरे॥
रबि अरु ससि दोऊ एकै रथ, आनि अरे।
सूरदास-प्रभु कुंज बिहारी, आनँद उमँगि भरे॥
॥११६२॥१८१०॥

राग कान्हरौ

स्याम-बदन देखि हरि लाज्यौ।
यहै अपूर्ब छानि जिय लघुता, खीन इंदु, याही दुख भाज्यौ॥
क्रीड़त कुंज-अटा रजनी-मुख, प्रेम-मुदित नवसत अँग साज्यौ।
बिधु लच्छन जानत सुर नर सब, मृगमद-तिलक देखि सो लाज्यौ॥
बिथकित रथ चक्रित अवलोकत, सुंदरि-सँग हरि-राज बिराज्यौ।
बिस्मय मिटी ससि पेखि समीपहिँ, कहि अब सूर उभय हरि गाज्यौ॥
॥११६३॥१८११॥

राग बिलावल

कंदुक केलि करति सुकुमारी।
अति सूछम कटि तट आड़े जिमि, बिसद नितंब पयोधर भारी॥
अंचल चंचल, फटी कंचुकी, बिलुलित बर कुच-सटी उघारी।
मनु नव जलद बंध कीनौ बिधु, निकसी नभ कसली अनियारी॥
तिलक तरल, ताटंक निकट तट, उभय परस्पर सोभ सिँगारी।
जलरुह हंस मिले मनु नाचत, ब्रज-कौतुक बृषभानु-दुलारी॥
मुक्तावलि कौ हार लोल गति, ता पर लटपटाति लट कारी।
तामैँ सो लर मनौ तरंगिनि, निसिनायक तम मोचन हारी॥
अरु कंकन-किंकिनि-नूपुर-छबि, निसा-पान सम दुति रत नारी।
श्रीगोपाल लाल बर लाई, बलि-बलि सूर मिथुन-कृत भारी॥
॥११६४॥१८१२॥

राग नट

देखे चारि कमल इक साथ।
कमलहिँ कमल गहे लावत है, कमल कमल ही मध्य समात॥
सारँग पर सारँग खेलत है, सारँग ही सौँ हँसि हँसि जात।
सारँग स्याम औरहू सारँग, सारँग सारँग सौँ करैँ बात॥
अरि सारंग राखि सारँग कौँ, सारँग गहि सारंग कौँ जात।
तौ लै राखि सारँग सारँग कौँ, सारँग लै आऊँ वा हात॥
सोइ सारँग चतुरानन दुर्लभ, सोइ सारंग संभु मुनि ध्यान।
सेवत सूरदास सारँग कौँ, सारँग ऊपर बलि बलि जात॥
॥११६५॥१८१३॥

हरि-उर मोहिनि-बेलि लसी।
तापर उरग ग्रसित तब, सोभित पूरन-अंस ससी॥
चापति कर भुज दंड रेख-गुन, अंतर बीच कसी।
कनक-कलस मधु-पान मनौ करि भुजगिनि उलटि धँसी॥
तापर सुंदर अंचल झाँप्यौ, अंकित दंसत सी।
सूरदास-प्रभु तुमहिं मिलत, जनु दाड़िम बिगसि हँसी॥
॥११९६॥१८१४॥

राग कान्हरौ

मोहिनी मोहन की प्यारी।
रूप-उदधि मथि कै बिधि, हठि पचि रची जुबति यह न्यारी॥
चंपक कनक कलेवर की दुति, ससि न बदन समता री।
खंजरीट मृग मीन की गुरुता, नैननि सबै निवारी॥ १३५८
भ्रुकुटी कुटिल सुदेश सोभित अति, मनहुँ मदन-धनु धारी।
भाल बिसाल, कपोल अधिक छबि, नासा द्विज मदगारी॥
अधर बिंब-बंधूक-निरादर, दसन कुंद-अनुहारी।
परम रसाल, स्याम, सुखदायक बचननि सुनि, पिक हारी॥
कबरी अहि जनु हेम-खंभ लगी, ग्रीव कपोत बिसारी।
बाहु मृनाल जु उरज कुंभ-गज निम्न नाभि सुभ गारी॥
मृग-नृप खीन सुभग कटि राजति जंघ जुगल रंभा री।
अरुन रुचिर जु बिड़ाल-रसन सम चरन-तली ललिता री॥
जहँ तहँ दृष्टि परति तहँ अरुझति, भरि नहिं जाति निहारी॥
सूरदास-प्रभु रस-बस कीन्हे, अंग अंग सुखकारी॥
॥११९७॥१८१५॥

राग नट

उर पर देखियत हैं ससि सात।
सोवत हू तैं कुँवरि राधिका, चौंकि परी अधिरात॥
खंड खंड ह्वै गिरे गगन तैं, बासपतिनि के भ्रात।
कै बहु रूप किये मारग तैं, दसि-सुत आवत जात॥

बिधु बिहुरे, बिधु किये सिखंडी सिव मैं सिव-सुत जात।
सूरदास धारै को धरनी, स्याम सुनै यह बात॥
॥११६८॥१८१६॥

राग बिलावल

आजु बन राजत जुगल किसोर।
दसन-बसन खंडित मुख मंडित, गंड तिलक कछु थोर॥
डगमगात पग धरत सिथिल गति, उठे काम-रस-भोर।
रति-पति सारँग अरुन महा छबि, उमँगि पलक लगे भोर॥
स्रुति अवतंस बिराजत हरि-सुत, सिद्ध-दरस-सुत ओर।
सूरदास-प्रभु रस-बस कीन्ही, परी महा रन जोर॥
॥११६६॥१८१७

राग सारंग

देखौ भाई माधौ राधा क्रीरत।
सुरत समय संतोष न मानत, फिरि-फिरि अंक भरत॥
सुख कैं अनिल सुखावत स्रम-जल, यह छबि मनहिँ हरत।
मानहुँ काम-अगिनि निरज्वल भई, ज्वाला फेरि करत॥
द्वितिय प्रेम की रासि लाड़िली, पलकनि बीच धरत।
सूर स्याम स्यामा सुख क्रीडत, मनसिज पाइ परत॥
॥१२००॥१८१८॥

राग केदारौ

नागरता की रासि किसोरी।
नव-नागर-कुल-मूल साँवरौ, बरबस कियौ चितै मुख मोरी॥
रूप रुचिर अँग-अंग माधुरी, बिनु भूषित ब्रज-गोरी।
छिन-छिन कुसल सुगंध अंग मैं, कोक रभस रस-सिंधु झकोरी॥
चंचल रसिक मधुप मोहन मन, राखे कनक कमल कुच कोरी॥
प्रीतम-नैन जुगल खंजन खग, बाँधे बिबिध निबंधनि डोरी।
अवनी उदर, नाभि सरसी मैं, मनहुँ कछुक मादक मधुरौ री।
सूरदास पीवत सुंदर बर, सीव सुदृढ़ निगमनि की तोरी॥
॥१२०१॥१८१६॥

राग केदारौ

आजु तन राधा सज्यौ सिँगार।
नीरज-सुत-सुत-वाहन कौ भख, स्याम अरुन रँग कौन बिचार॥
मुद्रा-पति-अँचवन-तनया-सुत, ताके उरहिं बनावहि हार।
गिरि-सुत तिन पति बिबस करन कौँ, अच्छत लै पूजत रिपु मार॥
पंथ-पिता आसन-सुत सोभित, स्याम घटा बन-पंक्ति अपार।
सूरदास-प्रभु अंस-सुता-तट, क्रीड़त राधा नंदकुमार॥
॥१२०२॥१८२०॥

राग ललित

देखि सखि साठि कमल इक जोर।
बीस कमल परगट देखियत हैँ, राधा नंद किसोर॥
सोरह कला सँपूरन गोह्यौ, ब्रज अरुनोदय भोर।
तामैँ सखि द्वैक मधु लागि रहे, चितवत चारि चकोर॥
मैँमत द्वै गजराज अरे हैँ, कोटि-मदन-भय-भोर।
सूरदास बलि बलि या छबि की, अलकनि की झकझोर॥
॥१२०३॥१८२१॥

राग सारंग

मोरन के चँदवा माथैँ बने, राजत रुचिर सुदेस।
बदन कमल पर अलिगन मानौ, घूँघरवारे केस॥
भौँह धनुष दृग पनच सखी री, भाल तिलक जनु बान।
भोर होत रबि अंधकार कौँ, कियौ मनौ संधान॥
मनि गन जटित मनोहर कुंडल, राजत लोल कपोल।
कालिंदी मैँ रबि प्रतिबिंबित, चंचल पवन हिँडोल॥
सुभग नासिका मुक्ता सोभित, झलमलाति छबि होत।
भृगु-सुत मानौ अमल बिमल सखि, घन मैँ कियौ उदोत।
अरुन अधर सखि मुख मृदु बोलत, ईषद कछु मुसुकात।
मनहु सुपक्व बिंब तैँ सजनी, रस अनुराग चुचात॥
दसन दमक दामिनि सी चमकति, सोभा कहत न आवै।
याही तैँ दाड़िम उर फाटत, तिनकी सरि नहिँ पावै॥
चिबुक चारु मरकत मनि-दुति, सखि राजति त्रिबली ग्रीव।
मानहुँ सैँती तीनि रेख करि, काम रूप की सींव॥

उन्नत बिसद हृदय राजत है, तापर मुक्ता-हार।
मनहु नील गिरिवर तैं सुरसरि, अध आवति द्वै-धार॥
भुज बिसाल चंदन सौं चरचित, कर गहे मुख मृदु बंस।
मानहुँ सुधा-सरोवर कैं ढिग, क्रीड़त जुग कलहंस॥
कंचन बरन पीत उपरैना, सोभित साँवल अंग।
मानहुँ आवत आगैं पाछैं, निसि बासर इक संग॥
नाभि गँभीर सुधा-सरसी जनु, त्रिबली सीढी बनाई।
व्रज-बधु-नैन मृगी आतुर ह्वै, अति प्यासी ढिग आई॥
कटि प्रदेस सुंदर सुदेस सखि, ता पर किंकिनि राजै।
अति नितंब, जंघनि प्रति सोभा, देखत गजपति लाजै॥
पीन पिँडुरिया स्याम लसी री, चरनांबुज नख लाल।
मंद-मंद गति वै आवत हैँ मत्त दुरद की चाल॥
बृंदाबन मैँ बिहरत दोऊ मम प्रभु स्यामा स्याम।
सूरदास-उर बसहु निरंतर, मनमोहन अभिराम॥
॥१२०४॥१८२२॥

राग सारंग

देखि हरि जू कै नैननि की छबि।
इहै जानि दुख मानि जु अनुदिन, मानहुँ अंबुज सेवत है रबि॥
खंजरीट अति बृथा चपल भए, गए बन मृग जलमीन रहे दबि।
तहँउ जाति तनु तजत, जबहिं कछु, पटतर देंौं कहत कबहुँ कबि।
इनसे येई, पचिहारि रही हैँ, आनौ नहीँ कहत कछु बौ फबि।
सूर सकल उपमा जु रहीँ यौं, ज्यौं आनौ कहि होमत मैँ हबि॥
॥१२०५॥१८२३॥

राग गूजरी

किसोरी देखत नैन सिरात।
बलि वलि सुखद मुखारबिंद की, चंद्र-बिंब दुरि जात॥
अध-मोचन लोचन रतनारे, फूले ज्यौं जलजात।
राजत निकट निपट स्रवननि कैं, पिसुन कहत मन-बात॥
गौर ललाट-पाट पर सोभित, कुंचित कच अरुझात।
मानौ कनक-कमल-मकरंदहिं, पीवत अलि न अघात॥

नकबेसरि बंसी कै संभ्रम, नैन मीन अकुलात।
अरु ताटंक कमठ घूँघट उर, जाल बाझि अकुलात॥
स्याम कंचुकी तामैं सोभित, कंचन कलस न मात।
मानहु मत्त गयँद कुंभनि पर, नील धुजा फहरात॥
नख सिख लौं रस रूप किसोरी, बिलसत साँवल-गात।
यह सुख देखत सूर और सुख, उड़े पुराने पात॥
॥१२०६॥१८२४॥

राग गूजरी

बसौ मेरे नैननि मैं यह जोरी।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, सँग बृषभानु-किसोरी॥
मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल, पीतांबर झकझोरी।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, का बरनौं मति थोरी॥
॥१२०७॥१८२५॥

शंखचूड़-बध *राग बिलावल*

संखचूड़ तिहिं अवसर आयो।
गोपी हुतीं प्रेम-रस-प्राती, तिन कछु सोध न पायौ॥
चल्यौ पराइ सकल गोपी लै, दूरि गएँ सुधि आई।
को यह लिये जात कहँ हमकौं, कृष्न कृष्न गुहराई॥
गोपी-टेर सुनत हरि पहुँचे, दानव देखि डरायौ।
मुष्टिक मारि गिराइ दियौ तिहिं, गोपिनि हरष बढ़ायौ॥
मनि अमोल ताकैं सिर पाई, दई हलधरहिं आई।
सूर चले बन तैं गृह कौं प्रभु, बिहँसत मिलि समुदाई॥
॥१२०८॥१८२६॥

राग सोरठ

सो सुख नंद भाग्य तैं पायौ।
जो सुख ब्रह्मादिक कौं नाहीं, सोई जसुमति गोद खिलायौ॥
सोइ सुख सुरभि बच्छ बृंदाबन, सोइ सुख ग्वालनि टेरि बुलायौ।
सोइ सुख जमुना-कूल-कदँब चढ़ि, कोप कियौ काली गहि ल्यायौ॥
सुखही सुख डोलत कुंजनि मैं, सब-सुख-निधि बन तैं ब्रज आयौ।
सूरदास-प्रभु सुख-सागर अति, सोइ सुख सेस सहस मुख गायौ॥
॥१२०९॥१८२७॥

राग बिलावल

भोर भयौ जागौ नँद-नंद।

तात निसि बिगत भई, चकई आनंदमयी, तरनि की किरनी तैँ
चंद भयौ मंद ॥
तमचूर खग रोर, अलि करैँ बहु सोर, बेगि मोचन करहु सुरभि
गल फंद।
उठहु भोजन करहु, खोरि उतारि धरहु, जननि प्रति देहु सिसु
रूप निज कंद ॥
तीय दधि मथन करैँ मधुर धुनि स्रवन परैँ, कृष्न-जस-बिमल गुनि
करतिँ आनंद।
सूर-प्रभु हरि नाम उधारत लग-जननि, गुननि कौँ देखि कै छकित
भयौ छंद ॥१२१०॥१८२८॥

राग बिलावल

कौन परी मेरे लालहिँ बानि।

प्रात समय जागन की बिरियाँ सोवत है पीतांबर तानि ॥
संग सखा ब्रज-बाल खरे सब, मधुबन धेनु-चरावन-जान।
मातु जसोदा कब की ठाढ़ी. दधि-ओदन भोजन लिये पान ॥
तुम मोहन जीवन-धन मेरे, मुरली नैँकु सुनावहु कान।
यह सुनि स्रवन उठे नँदनंदन, बंसी निज माँग्यौ मृदु बानि ॥
जननी कहति लेहु मनमोहन, दधि ओदन घृत आन्यौ सानि।
सूर सु बलि-बलि जाउँ बेनु की, जिहिँ लगि लाल जगे हित मानि॥
॥१२११॥१८२९॥

राग बिलावल

जागिये गुपाल लाल ग्वाल द्वार ठाढ़े।

रैनि-अँधकार गयौ, चंद्रमा मलीन भयौ, तारागन देखियत नाँहिँ
तरनि-किरनि बाढ़े ॥
मुकुलित भए कमल-जाल, गुंज करत भृंग-माल, प्रफुलित बन पुहुप
डाल, कुमुदिनि कुँभिलानी।
गंध्रबगत गान करत, स्नान दान नेम धरत, हरत सकल पाप,
बदत बिप्र बेद-ज्ञानी ॥

बोलत नँद बार-बार देखैं मुख तुव कुमार, गाइनि भई बड़ी बार,
वृंदावन जैबैं।
ननि कहति उठो स्याम, जानत, जिय रजनि ताम, सूरदास-प्रभु
कृपाल, तुमकौं कछु खैबैं ॥१२१२॥१८३०॥

राग बिलावल

भोजन भयो भावते मोहन। तातोइ जैंइ जाहु गो-गोहन॥
खीर, खाँड़, खीचरी सँवारी। मधुर महेरी गोपनि प्यारी॥
राइ भोग लियो भात पसाई। मूँग ढरहरी हींग लगाई॥
सद माखन तुलसी दै तायौ। घिरत सुबास कचोरा नायौ॥
पापर बरी अँचार परम सुचि। अदरख अरु निबुअनि ह्वै है रुचि॥
सूरन करि तरि सरस तोरई। सेम सींगरी छौंकि झोरई॥
भरता भँटा खटाई दीनी। भाजी भली भाँति दस कीन्ही॥
साग चना मरुसा चौराई। सोवा अरु सरसौं सरसाई॥
बथुआ भली भाँति रचि राँध्यौ। हींग लगाइ राइ दधि साँध्यो॥
पोई परवर फाँग फरी चुनि। टेटी ढैंढ़स छोलि कियौ पुनि॥
कुनरू और ककोरा कौरे। कचरी चारु चिचींड़ा सौरे॥
भले बनाइ करेला कीने। लौन लगाइ तुरत तरि लीने॥
फूले फूल सहिजना छौंके। मन रुचि होइ नाम के औंके॥
फूल करील कली पाकर नम। फरी अगस्त करी अंमृत सम॥
अरुइहिं इमली दई खटाई। जेंवत षटरस जात लजाई॥
पैंठा बहुत प्रकारनि कीन्हे। तिन सौं सबै स्वाद हरि लीन्हे॥
खीरा राम तरोई तामैं। अरुचिनि रुचि अंकुर जिय जामै॥
सुंदर रूप रतालू रातौ। तरि करि लीन्हौ अबहीं तातौ॥
ककरी कचरी अरु कचनारयौ। सरस निमोननि स्वाद सँवारयौ॥
कितिक भाँति केला करि लीने। दै करवँदा हरदि-रँग भीने॥
बरी बरिल अरु बरा बहुत बिधि। खारे खट्टे मीठे हैँ निधि॥
पानौरा राइता पकौरी। डभकौरी मुँगछी सुठि सौंरी॥
अंमृत इँडहर है रस सागर। बेसन सालन अधिकौ नागर॥
खाटी कढ़ी बिचित्र बनाई। बहुत बार जेंवत रुचि आई॥
रोटी रुचिर कनक बेसन करि। अजवाइनि सैंधो मिलाइ धरि॥
अबहीं अँगाकरि तुरत बनाईं। जे भजि भजि ग्वालनि सँग खाईं॥

माँड़े माँड़ि दुनेरे चुपरे। बहु घृत पाइ आपहीँ उपरे॥
पूरी पूरि कचौरी कौरी। सदल सउज्जल सुंदर सौरी॥
लुचुई ललित लापसी सोहै। स्वाद सुबास सहज मन मोहै॥
मालपुआ माखन मथि कीन्हे। ग्राह ग्रसित रबि सम रँग लीन्हे॥
लावन लाडू लागत नीके। सेब सुहारी घेवर घी के॥
गोझा गूँधे गाल मसूरी। मेवा मिलै कपूरनि पूरी॥
ससि सम सुंदर सरस अँदरसे। ऊपर कनी अमी जनु बरसे॥
बहुत जलेब जलेबी बोरी। नाहिँन घटत सुधा तैँ थोरी॥
देखत हरष होत है सभी। मनहुँ बुदबुदा उपजै अमी॥
फेनी घुरि मिसि मिली दूध सँग। मिस्री मिस्रित भई एक रँग॥
साज्यौ दही अधिक सुखदाई। ता ऊपर पुनि मधुर मलाई॥
खोवा खाँड़ औँटि है राख्यौ। सोहै मधुर मीठे रस चाख्यौ॥
बासौँधी सिखरन अति सौँधी। मिले मिरिच मेटत चकचौँधी॥
छाँछ छबीली धरी धुँगारी। झर है उठति झार की न्यारी॥
इतने व्यँजन जसोदा कीन्हे। तब मोहन बालक सँग लीन्हे॥
बैठे आइ हँसत दोउ भैया। प्रेम-मुदित परसति है मैया॥
थार कटोरा जरित रतन के। भरि सब सालन बिबिध जतनके॥
पहिलैँ पनवारी परसायौ। तब आपन कौर करि उठायौ॥
जेँवत रुचि अधिकौ अधिकैया। भोजन हूँ बिसरति नहिं गैया॥
सीतल जल कपूर रस रचयौ। सो मोहन अति रुचि करि अँचयौ॥
महरि मुदित नित लाड़ लड़ावै। ते सुख कहाँ देवकी पावै॥
धरि तष्टी झारी जल ल्याई। भर्‍यौ चुरू खरिका लै आई॥
पीरे पान पुराने बीरा। खात भई दुति दाँतनि हीरा॥
मृगमद-कन कपूर कर लीने। बाँटि बाँटि ग्वालनि कौँ दीने॥
चंदन और अरगजा आन्यौ। अपनैँ कर बल कैँ अँग बान्यौ॥
ता पाछैँ आपुन हूँ लायौ। उबर्‍यौ बहुत सखनि पुनि पायौ॥
सूरदास देख्यौ गिरिधारी। बोलि दई हँसि जूठनि थारी॥
यह ज्यौनार सुनै जो गावै। सो निज-भक्ति अभै-पद पावै॥
॥१२१३॥१८३१॥

राग बिलावल रामकली

भोजन करत मोहन राइ।
पाक अमृत बिबिध षट बिधि, रचि किये हित माइ॥

गोप ग्वाल सखाहु ते सब, लिये निकट बुलाइ।
हरषि मुख तन देत मोहन, आपु लेत छँड़ाइ॥
देखहीँ मुख नंद कौतुक, अनँद उर न समाइ॥
निरखि प्रभु की प्रगट लीला, जननि लेति बलाइ॥
नंद-नंदन नीर सीतल, अँचै उठे अघाइ।
सूर जूठनि भक्त पाई, देव लोक लुभाइ॥
॥१२१४॥१८३२॥

राग बिलावल

देखि सखी व्रज तैँ वन जात।
रोहिनि-सुत, जसुमति-सुत की छबि, गौर, स्याम हरि-हलधर-गात॥
नीलांबर, पीतांवर ओढ़े, यह सोभा कछु कही न जात।
जुगल जलज, जुग तड़ित मनहुँ मिलि, अरस-परस जोरत हैँ नात॥
सीस मुकुट, मकराकृत कुंडल झलकत बिबिध कपोलनि भाँति।
मनहुँ जलद-जुग-पास जुगल रबि तापर इंद्र-धनुष की काँति॥
कटि कछनी, कर लकुट मनोहर, गो चारन चले मन अनुमानि।
ग्वाल सखा बिच श्री नँद-नंदन, बोलत वचन मधुर मुसुकानि॥
चितै रहीँ व्रज की जुवती सव, आपुस ही मैँ करत बिचार।
गोधन-वृंद लिये सूरज-प्रभु, वृंदाबन गए करत बिहार॥
॥१२१५॥१८३३॥

राग गौरी

छबीले मुरली नैँकु बजाउ।
बलि बलि जात सखा यह कहि कहि, अधर-सुधा-रस प्याउ॥
दुरलभ जनम लहब बृंदाबन, दुर्लभ प्रेम-तरंग।
ना जानियै बहुरि कब ह्वैहै, स्याम तिहारौ संग॥
बिनती करत सुबल श्रीदामा, सुनहु स्याम दै कान।
या रस कौ सनकादि सुकादिक, करत अमर मुनि ध्यान॥
जब पुनि गोप-वेष व्रज धरिहौ, फिरिहौ सुरभिनि साथ।
कब तुम छाक छीनि कै खैहौ, हो गोकुल के नाथ॥
अपनी-अपनी कंध कमरिया, ग्वालनि दई डसाइ।
सैँह दिवाइ नंद बाबा की, रहे सकल गहि पाइ॥

सुनि-सुनि दीन गिरा मुरलीधर, चितयौ मृदु मुसकाइ।
गुन गंभीर गुपाल मुरलि प्रिय, लीन्ही तबहिं उठाइ॥
धरिकै अधर बेनु मन मोहन, कियौ मधुर धुनि गान।
मोहे सकल जीव जल-थल के, सुनि वारे तन प्रान॥
चलत अधर भृकुटी कर पल्लव, नासा पुट जुग नैन।
मानहुँ नर्तक भाव दिखावत, गति लिये नायक मैन॥
चमकत मोर चंद्रिका माथैँ, कुंचित अलक सुभाल।
मानहुँ कमल-कोष-रस चाखन, उड़ि आई अलि माल॥
कुंडल लोल कपोलनि झलकत, ऐसी सोभा देत।
मानहुँ सुधा-सिंधु मैँ क्रीड़त, मकर पान कैँ हेत॥
उपजावत गावत गति सुंदर, अनाघात के ताल।
सरबस दियौ मदन मोहन कौँ, प्रेम-हरषि सब ग्वाल॥
लोलित बैजंती चरननि पर, स्वासा-पवन-झकोर।
मनहुँ गर्बि सुरसरि बहि आई, ब्रह्म-कमंडल फोरि॥
डुलति लता नहिँ, मरुत मंद गति, सुनि सुंदर मुख बैन।
खग मृग मीन अधीन भए सब, कियौ जमुन-जल सैन॥
झलमलाति भृगु-पद की रेखा, सुभग साँवरैँ गात।
मनु षट बिधु एकै रथ बैठे, उदय कियौ अधिरात॥
बाँके चरन-कमल, भुज बाँके, अवलोकनि जु अनूप।
मानहुँ कलप-तरोवर-बिरवा, अवनि रच्यौ सुर-भूप॥
अति सुख दियौ गुपाल सबनि कौँ, सुखदायक जिय जान।
सूरदास चरननि-रज माँगत, निरखत रूप-निधान॥
॥१२१६॥१८३४॥

राग सारंग

रीझत ग्वाल रिझावत स्याम।
मुरलि बजावत, सखनि बुलावत, सुबल सुदामा लै-लै नाम॥
हँसत सखा सब तारी दै-दै, नाम हमारौ मुरली लेत।
स्याम कहत अब तुमहुँ बुलावहु, अपने कर तैँ ग्वालनि देत॥
मुरली लै-लै सबै बजावत, काहू पै नहिँ आवै रूप।
सूर स्याम तुम्हरे मुख बाजत, कैसैँ देखौ राग अनूप॥
॥१२१७॥१८३५॥

राग टोड़ी

हरि के बराबरि बेनु, कोऊ न बजावै।
जग-जीवन विदित मुनिनि, नाच जो नचावै॥
चतुरानन, पंचानन, सहसानन ध्यावै।
ग्वाल बाल लिये जमुन-कच्छ बच्छ चरावै॥
सुर नर मुनि अखिल लोक, कोउ न पार पावै।
तारन-तरन अगिनित-गुन, निगम नेति गावै॥
तिनकौं जसुमति आगन-ताल दै नचावै।
सूरज-प्रभु कृपा-धाम, भक्त बस-कहावै॥
॥१२१८॥१८३६॥

राग टोड़ी

मुरली सुनत देह-गति भूलीं। गोपी प्रेम-हिंडोरैं झूलीं॥
कबहूं चकित होहिं सयानी। स्वेद चले द्रवि जैसैं पानी॥
धीरज धरि इक इकहिं सुनावहि। इक कहि कै आपुहिं बिसरावहि॥
कबहूँ सुधि, कबहूँ सुधि नाहीं। कबहूं मुरली-नाद समाहीं॥
कबहू तरुनी सब मिलि बोलैं। कबहू रहैं धीर नहिं डोलैं॥
कबहूं चलैं, कबहुँ फिरि आवैं। कबहुँ लाज तजि लाज लजावैं॥
मुरली स्याम-सुहागिनि भारी। सूरदास-प्रभु की बलिहारी॥
॥१२१९॥१८३७॥

राग बिहागरौ

अधर धरि मुरली स्याम बजावत।
सारँग, गौड़ी, नटनारायन, गौरी सुरहिं सुनावत॥
आपु भए रस-बस ताही कैं, औरनि बस करवावत।
ऐसौ को त्रिभुवन जल-थल मैं, ज़ो सिर नहीं धुनावत॥
सुभग मुकुट कुंडल-मनि स्रवननि, देखत नारिनि भावत।
सूरदास-प्रभु गिरिधर नागर, मुरलीधरन कहावत॥
॥१२२०॥१८३८॥

राग सारंग

अधर-रस मुरली लूटन लागी।
जा रस कौं षट रितु तब कीन्हौ, सौ रस पियति सभागी॥

कहाँ रही, कहँ तैं इह आई, कौनैं याहि बुलाई ?
चकित भई कहतिं ब्रजबासिनि, यह तौ भली न आई ॥
सावधान क्यौं होतिं नहीं तुम, उपजी बुरी बलाइ।
सूरदास-प्रभु हम पर ताकौं, कीन्हौ सौति बजाइ ॥
॥१२२१॥१८३९॥

राग नट

जनि बोलै पपिहा, हौं डाढ़ी ॥
पैले पार कान्ह बँसुरी बजावौ, उलै पार बिरहिनी ठाढ़ी ॥
कहा करौं, कैसैं आवौं सखि, नैन-नीर-जमुना बाढ़ी।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मैन-प्रीति अतिहीं गाढ़ी ॥
॥१२२२॥१८४०॥

राग मलार

अधर मधु कत मूईं हम राखि।
संचित किये रहीं स्रद्धा सौं, सकीं न सकुचनि चाखि ॥
सहि-सहि सीत, जाइ जमुना-जल, दीन बचन मुख भाषि।
पूजि उमापति बर पायौ हम, मनहीं मन अभिलाषि ॥
सोइ अब अमृत पिवति है मुरली, सबहिनि कैं सिर नाखि।
लियौ छँडाइ सकल सुनि सूरज, बेनु धूरि दै आँखि ॥
॥१२२३॥१८४१॥

राग बिलावल

मुरली भई आजु अनूप।
अधर बिंब बजाइ कर धरि, मोहे त्रिभुवन रूप ॥
देखि गोपी ग्वाल गाइनि, देखि बन गृह यूप।
देखि मुनि जन नाग चंचल, देखि सुंदर रूप ॥
देखि धरनि अकास सुर नर, देखि सीतल धूप।
देखि सूर अगाध महिमा, भए दादुर कूप ॥
॥१२२४॥१८४२॥

राग केदारौ

मुरली नाम गुन बिपरीति।
खीन मुरली गहैं मुर-अरि, रहत निसि-दिन प्रीति ॥

कहत बंसी छिद्र परगट, ह्वै छूछे अंग।
विदित जग हरि अधर पीवत, करत मनसा पंग॥
चलत ते सब अचल कीन्हे, अचल चलत नगेस।
अमर आने मृत्यु लोकहिँ, चलत भुव पर सेष॥
नैनहू मन मगन ऐसौ, काल गुननि वितीत।
सूर त्रै सौँ एक कीन्हे, रीझि त्रिगुन अतीत॥
॥१२२५॥१८४३॥

राग पूर्वी

स्याम मुख मुरली अनुपम राजत।
सुभंग स्रीखंड पीड़ सिर सोहत, स्रवननि कुंडल भ्राजत॥
नील जलद पर सुभग चाप सुर, मंद-मंद रव बाजत।
पीतांबर कटि तड़ित भाव जनु नारि, बिवस मन राजत॥
ठाढ़े तरु तमाल तर सुंदर, नंद-नँदन बन-माली।
सूर निरखि ब्रजनारि चकित भईं, लगी मदन की भाली॥
॥१२२६॥१८४४॥

राग गौरी

मोहन मुरली अधर धरी।
कंचन मनि मय, रचित, खचित अति कर गिरधरन परी॥
उघटत तान बँधान सप्त स्वर, सुनि रस उँमगि भरी।
आकर्षति तन मन जुवतिन के, गति बिपरीत करी॥
पिय-मुख-सुधा-बिलास-बिलासिनि, गीत-समुद्र तरी।
सूरदास त्रैलोक्य-बिजय कर रति पति-गर्व हरी॥
॥१२२७॥१८४५॥

राग केदारौ

मुरली अधर बिंब रमी।
लेति सरबस जुवति जन कौ, मदन बिदित अमी॥
पीय प्यारी, कृत्य कारे, करत नाहिँ नमी।
बोलि सब्द सुसप्त सुर, गति नाग सु नाद दमी॥
महा कठिन कठोर आली, बाँस बंस जमी।
सूर पूरन परसि श्री मुख नैंकु नाहिँ भ्रमी॥
॥१२२८॥१८४६॥

राग सारंग

बंसी बैर परी जु हमारैं ।
अधर पयूष अंस सबहिनि कौ, इन पीयौ सब दिन निज न्यारैं ॥
इक धुनि हरि मन हरति माधुरी, दूजैं बचन हरति अनियारैं ।
बाँस बंस हिय बेध महा सठ, अपने छिद्र न जानत गारैं ॥
सौंप्यौ सुपति जानि ब्रज कौ पति, सो अपनाइ लियौ रखवारैं ।
सब दिन सही अनीति सूर-प्रभु, श्री गुपाल जिय अपन धारैं ॥
॥१२२९॥१८४७॥

राग बिहागरौ

मुरली स्याम अधर नहिं टारत ।
बारंबार बजावत, गावत, उर तैं नहीं बिसारत ॥
यह तौ अति प्यारी है हरि की, कहतिं परस्पर नारी ।
याकैं बस्य रहत हैं ऐसे, गिरि-गोबर्धन-धारी ।
लटकि रहत मुरली पर ठाढ़े, राखत ग्रीव नवाइ ।
सूर स्याम बस ताकैं डोलत, पलक नहीं बिसराइ ॥
॥१२३०॥१८४८॥

राग रामकली

मुरली कैं बस स्याम भए री ।
अधरनि तैं नहिं करत निनारी, वाकैं रंग रए री ॥
रहत सदा तन-सुधि बिसराए, कहा करन धौं चाहति ।
देखी, सुनी न भई आजु लौं, बाँस बँसुरिया दाहति ॥
स्यामहिं निदरि- निदरि हमहूँ कौं, अबहीं तैं यह रूप ।
सुनहु सूर हरि कौ मुहँ पाएँ, बोलति बचन अनूप ॥
॥१२३१॥१८४९॥

राग जैतश्री

मुरली स्याम कहाँ तैं पाई ।
करत नहीं अधरनि तैं न्यारी कहा ठगारी लाई ॥
ऐसी ढीठि मिलतहीं ह्वै गई, उनके मनहीं भाई ।
हम देखत वह पियत सुधा-रस, देखौ री अधिकाई ॥

कहा भयौ मुँह लागी हरि कैं, बचननि लिये रिझाई।
सूर स्याम कौँ बिबस करावति, कहा सौति सी आई॥
॥१२३२॥१८५०॥

राग गूजरी

स्याम मुरलि कैं रंग ढरे।
कर पल्लव ताकौँ बैठावत, आपुन रहत खरे॥
बारंबार अधर-रस प्याबत, उपजावत अनुराग।
जे बस करत देव-मुनि-गंध्रब, ते करि मानत भाग॥
बन मैं रहति डरी को जानै, कब आनी धौं जाइ।
सूरज-प्रभु की बड़ी सुहागिनि, उपजी सौति बजाइ॥
॥१२३३॥१८५१॥

राग नट

मुरली भई सौति बजाइ।
कहूँ बन मैं रहति डारी, ताहि यह सुघराइ॥
बचन हीं हरि रिझै लीन्हे, अधर पूरत नाद।
दिनहि दिन अधिकान लागी, अब करैगी बाद॥
सुनहु री इहिं दूरि कीजै, यहै करौ बिचार।
अबहि तैं करनी करी यह, बहुरि कहा लगार॥
ढंग याके भले नाहीं, बहुत गई डराइ।
सर स्याम सुजान रीझै, देह-गति बिसराइ॥
॥१२३४॥१८५२॥

राग सोरठ

मुरली दूरि कराएँ बनिहै।
अबहीं तैं ऐसे ढंग याके, बहुरि काहि यह गनिहै॥
लागी यह कर-पल्लव बैठन, दिन-दिन बाढ़ति जाति।
अबहीं तैं तुम सजग होहु री, मैं जु कहति अकुलाति॥
यह ब्रज मैं नहिं भली बात है, देखौ हृदय बिचारि।
सर स्याम वाही के ह्वै गए, सब ब्रजनारि बिसारि॥
॥१२३५॥१८५३॥

राग बिहागरौ

अबहीं तैं हम सबनि बिसारी।
ऐसे बस्य भए हरि बाके, जाति न दसा बिचारी॥
कबहूँ कर पल्लव पर राखत, कबहुँ अधर लै धारी।
कबहुँ लगाइ लेत हिरदै सौं, नैंकहुँ करत न न्यारी॥
मुरली स्याम किए बस अपनैं, जे कहियत गिरिधारी।
सूरदास प्रभु कैं तन-मन-धन, बाँस बँसुरिया प्यारी॥
॥१२३६॥१८५४॥

राग रामकली

मुरली भई स्याम-तन-मन-धन।
अब बाकौं तुम दूरि करावतिं, जाके बस्य भए नँद-नंदन॥
कबहुँ अधर, कबहूँ राखत कर, कबहूँ गावत हैं हिरदै धरि।
कबहुँ बजाइ मगन आपुन ह्वै, लटकि रहत मुख धरि तापर ढरि॥
ऐसे पगे रहत हैं जासौं, ताहि करति कैसैं तुम न्यारी।
सूर स्याम हम सबनि बिसारी, वह कैसैं अब जाति बिसारी॥
॥१२३७॥१८५५॥

राग सूहौ

मुरली हरि कौं भावै री
सदा रहति मुखहीं सौं लागी, नाना रंग बजावै री॥
छहैं राग, छत्तीसौ रागिनि, इक इक नीकैं गावै री।
जैसेहिं मन रीझत है हरि कौ, तैसिहिं भाँति रिझावै री॥
अधरनि कौ अंमृत पुनि अँचवति, हरि के मनहिं चुरावै री।
गिरिधर कौं अपनैं बस कीन्हे नाना नाच नचावै री॥
उनकौ मन अपनौ करि लीन्हौ, भरि-भरि बचन सुनावै री।
सूरज-प्रभु ढिग तैं कहि बाकौं, ऐसौ कौन टरावै री॥
॥१२३८॥१८५६॥

राग भैरव

मुरली हरि तैं छूटति है!
बाही कैं बस भए निरंतर, वह अधरनि रस लूटति है॥

तुम तैँ निठुर भए वह बोलत, तिन उचटावति है।
आरज-पथ, कुल कानि मिटावति, सबकौं निलज करावति है॥
निदरे रहति, डरति नहिँ काहूँ, मुहँ पाएँ वह फूलति है।
अब वह हरि तैँ होति न न्यारी, तू काहे कौं भूलति है॥
रोम-रोम नख-सिख रस पागी, अनुरागिनि हरि प्यारी है।
सूर स्याम वाकैँ रस लुबधे, जानी सौति हमारी है॥
॥१२३६॥१८५७॥

राग बिहागरौ

मुरली हम कहँ सौति भई।
नैँकु न होति अधर तैँ न्यारी, जैसैँ तृषा डई॥
इहँ अँचवति, उहँ डारति लै-लै, जल थल बननि बई।
जा रस कौं व्रत करि तनु गार्‌यौ, कीन्ही रई-रई॥
पुनि-पुनि लेति, सकुच नहिँ मानति, कैसी भई दई।
कहा धरै वह बाँस साँस की, आस निरास गई॥
ऐसी कहूँ गई नहिँ देखी, जैसी भई नई।
सूर बचन याके टोना से, सुनत मनोज जई॥
॥१२४०॥१८५८॥

राग सोरठ

मुरली बचन कहति जनु टोना।
जल-थल-जीव बस्य करि लीन्हे, रिझए स्याम सलोना॥
नैँकु अधर तैँ करत न न्यारी, प्यारी तियनि लजौना।
ऐसी ढीठि बदति नहिँ काहूँ, रहति बननि बन जौना॥
ताकी प्रभुता जाति कही नहिँ, ऐसी भई न होना।
सूर स्याम-मुद-नाद प्रकासति, थकित होत सुनि पौना॥
॥१२४१॥१८५६॥

राग सारंग

मुरली हम पर रोष भरी।
अंस हमारौ आपुन अँचवत, नैँकहुँ नहीँ डरी॥
बार-बार अधरनि सो परसति, देखति सबै खरी।
ऐसी ढीठि टरी न उहाँ तैँ, जउ हम रिसनि भरी॥

यह तौ कियौ अकाज हमारौ, अब हमैं जानि परी।
सूरज-प्रभु इन निठुर करायौ, ऐसी करनि करी॥
॥१२४२॥१८६०॥

राग धनाश्री

मुरली के ऐसे ढँग माई।
जब तैं स्याम परे बस वाकैं, हम सबहिनि बिसराई॥
अपनौ गुन यह प्रगट करायौ, निठुर काठ की जाई।
अपनिहि आगि दह्यौ कुल अपनौ, यह गुनि-गुनि पछिताई॥
जौ है निठुर आपने घर कौं, औरनि तैं क्यौं मानै।
सूर बड़ी यह आपु स्वारथिनि, कपट राग करि गानै॥
॥१२४३॥१८६१॥

राग कल्यान

बाँस-बंस-बंसी-बस सबै-जगत-स्वामी।
जाकैं बस सुर नर मुनि, ब्रह्मादिक गुन गुनि गुनि, बासर निसि कथत निगम, नेति नेति बानी॥
जाकी महिमा अपार, सिव न लहत वार-पार, करता-संसार-सार ब्रह्म रूप ये हैं।
सूर नंद-सुवन स्याम, जे कहितऽनंत नाम, अतिही आधीन बस्य, मुरली के ते हैं॥
॥१२४४॥१८६२॥

राग कन्हारौ

जा दिन तैं मुरली कर लीन्ही।
ता दिन तैं स्रवननि सुनि-सुनि सखि, मन की बात सबै लै दीन्ही॥
लोक बेद कुल-लाज कानि तजी, अरु मरजाद-बचन-मिति खीनी।
तबहीं तैं तन-सुधि बिसराई, निसि-दिन रहतिं गुपाल अधीनी॥
सरद-सुधा-निधि-सरद अंस ज्यौं, सींचति अमी प्रेम रस भीनी।
ता ऊपर सुभ दरस सूर-प्रभु श्री गुपाल लोचन-गति छीनी॥
॥१२४५॥१८६३॥

राग नट

मुरली तौ यह बाँस की।
बाजति स्वास परति नहिं जानतिं, भई रहति पिय पास की॥

चेतन कौ चित हरति अचेतन, भूखी डोलति माँस की।
सूरदास सब ब्रज-बासिनि सौं, लिये रहति है गाँस की ॥
॥१२:६॥१८६४॥

राग मलार

बाँसुरी बिधि हूँ तैं परबीन।
कहियै काहि आहि को ऐसौ, कियौ जगत आधीन ॥
चारि बदन उपदेस बिधाता, थापो थिर-चर नीति।
आठ बदन गरजति गरबीली, क्यौं चलिहै यह रीति ॥
बिपुल बिभूति लही चतुरानन, एक कमल करि थान ॥
हरि-कर कमल जुगल पर बैठी, बाढ़्यौ यह अभिमान ॥
एक बेर श्रीपति के सिखएँ, उन आयौ गुरु ज्ञान।
याकैं तौ नदलाल लाड़िलौ, लग्यौ रहन नित कान ॥
एक मराल-पीठि आरोहन, बिधि भयौ प्रबल प्रसंस।
इन तौ सकल बिमान किये, गोपी-जन-मानस-हंस ॥
श्री बैकुंठनाथ-पुरबासी, चाहत जा पद-रैनु।
ताकौ मुख सुखमय सिंहासन, करि बैठी यह ऐनु ॥
अधर-सुधा पी कुल-व्रत टारयौ, नहीँ सिखा नहि ताग।
तदपि सूर या नंद-सुवन कौं, याही सौं अनुराग ॥
॥१२४७॥१८६५॥

राग कल्यान

मुरली नहिँ करत स्याम अधरनि तैं न्यारी।
ठाढ़े ह्वै एक पाइ रहत तनु त्रिभंग, करत भरत नाद, मुरली सुनि, बस्य पुहुमि सारी ॥
थावर चर, चर थावर जंगम जड़, जड़ जंगम, सरिता उलटै प्रबाह, पवन थकित भारी।
सुनि सुनि मुनि थकित तान, स्वेद गए ह्वै पषान, तरु डाँगर धावत खग-मृगनि सुधि बिसारी ॥
उकठे तरु भए पात, पाथर पर कमल जात, आरज पथ तज्यौ नात, ब्याकुल नर-नारी।
रीझे प्रभु सूर स्याम, बंसी-रव सुखद धाम, बासरहू जाम नहीँ जाति कतहुँ टारी ॥१२४८॥१८६६॥

राग सारंग

यह मुरली मोहिनी कहावै ।
सप्त सुरनि मधुरी कहि बानी, जल-थल-जीव रिझावै ।।
उहिँ रिझए सुर असुर कपट रचि, तिनकौ बस्य करावै ।
पुट एकै इत मद उत अंमृत, आपु अँचै अँचवावै ।।
याके गुन ये, सब सुख पावत, हमकौं बिरह बढ़ावै ।
सूरदास वाकी यह करनी, स्यामहिँ नीकै भावै ।।
।।१२४६।।१८६७।।

राग सारंग

मुरली तैँ हरि हमहिँ बिसारी ।
बन की व्याधि कहा यह आई, देतिं सबै मिलि गारी ।।
घर-घर तैँ सब निठुर कराईँ महा अपत यह नारी ।
कहा भयौ जो हरि-मुख लागी, अपनी प्रकृति न टारी ।।
सकुचति हौ याकौं तुम काहँ, कहौ न बात उघारी ।
नोखी सौति भई यह हमकौं, और नहीँ कहुँ का री ।।
इनहूँ तैँ अरु निठुर कहावति, जो आई कुल जारी ।
सूरदास ऐसौ को त्रिभुवन, जैसी यह अनखारी ।।
।।१२५०।।१८६८

राग मारू

आई कुल दाहि निठुर, मुरली यह माई ।
याकौं रीझे गुपाल, काहूँ न लखाई ।।
जैसी यह करनि करी, ताहि यह बड़ाई ।
कैसैँ बस रहत भए, यह तौ दुनहाई ।।
दिन-दिन यह प्रबल होति, अधर अमृत पाई ।
मोहन कौँ इहिँ तौ कछु, मोहिनी लगाई ।।
कबहुँ अधर, कबहूँ कर, टारत न कन्हाई ।
सूरज-प्रभु कौँ ता बिनु, और नहि सुहाई ।।
।।१२५१।।१८६६।।

राग बिलावल

मुरली हरि कौँ आपनौ, करि लीन्हौ माई ।
जोइ कहै सोई करैँ, अति हरष बढ़ाई ।

घर बन सँग लीन्हे फिरैं, कहुँ करत न न्यारी।
राधा आधा अंग है, तातैं यह प्यारी॥
सोवत जागत चलत हूँ, बैठत रस बासौं।
दूरि कौन सौं होइगी, लुबधे हरि जासौं॥
अब काहे कौं झखति हौ, वह भई लड़ैती।
सूर स्याम की भावती, वह अतिहिं चढ़ैती।
॥१२५२॥१८७०॥

राग जैतश्री

मुरली भई रहति लड़बौरी।
देखति नहीं रैनिहू बासर, कैसी लावति ढोरी॥
कर पर धरी अधर के आगैं, राखति ग्रीव निहोरी।
पूरत नाद स्वाद सुख पावत, तान बजावत गौरी॥
आयसु लिये रहत ताही कौ, डारी सीस ठगौरी।
सूर स्याम की बुधि-चतुराई, लीन्ही सबै अँजौरी॥
॥१२५३॥१८७१॥

राग गौरी

मुरली प्रगट भई धौं कैसे।
कहाँ हुती, कैसैं धौं आई, गीधे स्याम अनैसे॥
मातु पिता कैसे हैं याके, याकी गति मति ऐसी।
ऐसे निठुर होहिगे तेऊ, जैसे की यह तैसी॥
यह तुम नहीं सुनी हो सजनी, याके कुल कौ धर्म।
सूर सुनत अबहीं सुख पैहौ, करनी उत्तम कर्म॥
॥१२५४॥१८७२॥

राग भैरव

याके गुन मैं जानति हौं।
अब तौ आइ भई ह्याँ मुरली, औरहिं नातैं मानति हौं॥
हरि की कानि करति, यह को है, कहा करौं अनुमानति हौं।
अबहीं दूरि करौं गुन कहिकै, नैंकु सकुच जिय मानति हौं॥
यातैं लगो रहति मुख हरि के, सुख पावत पहिचानति हौं।
सूरदास यह निठुर जाति की अब मैं यासौं ठानति हौं॥
॥१२५५॥१८७३॥

राग नट

सुनहु री मुरली की उतपत्ति।
बन मैं रहति, बाँस कुल याकौ, यह तौ याकी जत्ति ॥
जलधर पिता, धरनि है माता, अवगुन कहाँ उधारि।
बनहूँ तैं याकौ घर न्यारौ, निपटहिं जहाँ उजारि ॥
इक तैं एक गुननि हैं पूरे, मातु पिता अरु आपु।
नहिं जानियै कौन फल प्रगट्यौ, अतिहीँ कृपा प्रताप ॥
बिसवासिन पर काज न जानै, याके कुल कौ धर्म।
सुनहु सूर मेघनि की करनी अरु धरनी के कर्म ॥
॥१२५६॥१८७४॥

राग गौरी

सुनहु सखी याके कुल-धर्म।
तैसोइ पिता, मातु तैसी, अब देखौ याके कर्म ॥
व बरषत धरनी संपूरन, सर सरिता अवगाह।
चातक सदा निरास रहत है, एक बूँद की चाह ॥
धरनी जनम देति सबही कौं, आपुन सदा कुमारी।
उपजत फिरि ताही मैं बिनसत, छोह न कहुँ महतारी ॥
ता कुल मैं यह कन्या उपजी, याके गुननि सुनाऊँ।
सूर सुनत सुख होइ तुम्हारैं, मैं कहिकै सुख पाऊँ ॥
॥१२५७॥१८७५॥

राग जैतश्री

मातु पिता गुन कह्यौ बुझाई।
अब याहू के गुन सुनि लेहु न, जातैं स्रवन सिराई।
उनके वै गुन, निठुर कहावत, मुरली के गुन देखौ।
तब याकौ तुम औगुन मानौ, जब कछु अचरज पेखौ ॥
जा कुल मैं उपजी, ता कुल कौं, जारि करत है छार।
तनहीं तन मैं अगिनि प्रकासति, ऐसी याकी झार ॥
यह जौ स्याम सुनैं स्रवननि भरि, कर तैं दै हैं डारि।
सूरदास प्रभु धोखैं याकौं, राखत अधरनि धारि ॥
॥१२५८॥१८७६॥

राग नट

यह मुरली सखि ऐसी है।
रीझे स्याम बात सुनि मीठी, नहिँ जानत यह नैसी है॥
देखौ याके भेद सखी री, कैसैँ मन दै पैसी है।
हम पर रहति भौँह सतराए, चतुर चतुरई जैसी है॥
वै गुन रहति चुराए हरि सौँ, देखौ ऐसी गैसी है।
सुनहु सूर बैरनि भई हमकौँ, प्रगट सौति ह्वै वैसी है॥
॥१२५९॥१८७७॥

राग नट

यह तौ भली उपजी नाहिँ।
निदरि वैसी सौति ह्वैकै, देखि-देखि रिसाहि॥
कहा याकी सकुच मानति, कहौ बात सुनाइ।
तबहिँ बस करि लियौ हरि कौँ, हम सबनि बिसराइ॥
प्रबल पावस सरद ग्रीषम, कियौ तप तनु गारि।
तिन्हैँ तू लै आपु वैसी, प्रानपति बनवारि॥
जो भई सो भई अब यह, छाँड़ि दै रस-बाद।
सूर-प्रभु कैँ अधर लगि लगि, कहा बोलति नाद॥
॥१२६०॥१८७८॥

राग कान्हर

ऐसैँ कहौ निदरि मुरली सौँ, कृपा करौ अब बहुत भई।
सकुचैँ नहीँ बनत री माई घर-घर करिहौ दई दई॥
देखति नहीँ चतुरई वाकी, मुँह पाएँ ज्यौँ फूलि गई।
अधर सुधा सरबस जु हमारौ, सो याकौँ सब लूट भई॥
ओछी-जाति डोम के घर कौ, कहा मंत्र करि हरि बसई।
सूरदास-प्रभु बड़े कहावत, ऐसी कौँ धरि अधर लई॥
॥१२६१॥१८७९॥

राग बिहागरौ

ताकी जाति स्याम नहिँ जानी।
बिन बूझैँ, बिनहीँ अनुमानैँ, करि बैठे पटरानी॥

बारहिँ बार लेत आलिंगन, सुनि-सुनि मधुरी बानी।
गाउँ न ठाउँ बाँस-बंसी कौ, जाइ कहाँ तैँ आनी॥
जिनि कुल दाहत बिलँब न कीन्हौ, कौन धर्म ठहरानी।
सुनहु सूर, यह करनी, यह सुख, जात न कछू बखानी॥
॥१२६२॥१८८०॥

राग केदारौ

मुरली अपने सुख कौँ धाई।
सुंदर स्याम प्रवीन कहावत, कहाँ गई चतुराई॥
यह देखैँ मन समुझि आपनैँ, दाहि कुलहिँ जो आई।
तातैँ सिद्धि कहा पुनि ह्वै है, जाके ये गुन माई॥
जो अपने स्वारथ कौँ धावै, तातैँ कौन भलाई।
सूर स्याम के अधर सुधा कौँ, ब्याकुल आई धाई॥
॥१२६३॥१८८१॥

राग धनाश्री

मुरली आपुस्वारथिनि नारि।
ताकी हरि प्रतीति मानत हैँ, जीति न जानत हारि॥
ऐसे बस्य भए हरि वाके, कहा ठगौरी डारि।
लूटति है अधरनि कौ अंमृत, खात देति है ढारि॥
को बकि मेरै, बनी है जोरी, तृन तोरति हैँ वारि।
सूर स्याम कौँ भले कहति हौँ, देउँ कहा अब गारि॥
॥१२६४॥१८८२॥

राग सोरठ

हम तप करि तनु गार्‌यौ जाकौँ।
सो फल तुरत मुरलिया पायौ, करि कृपा हरि ताकौँ॥
कपटी कुटिल और नहिँ कोई, जैसे हैँ ब्रजराज।
जो सन्मुख सो बिमुख कहावै, बिमुख करै सुखराज॥
बूझी बात नंद-नंदन की, मुरली कैँ रस पागे।
सूर अधर रस आहि हमारौ, ताकौँ बकसन लागे॥
॥१२६५॥१८८३॥

राग रामकली

मुरली हम सौं बैर बढ़ायौ ।
चली निपट इतराइ नैंकुहीँ, हरि अधरनि परसायौ ॥
फूली फिरती स्याम-कर बैठी, अतिहीँ गर्व बढ़ायौ ।
ज्यौं निधनी धन पाइ अचानक, नैन अकास चढ़ायौ ॥
सूर स्याम देखत सिहात हैँ, ताकौँ गाइ रिझायौ ।
त्रिभुवन-पति श्री पति जे कहावत, तिन मुरली बस पायौ ॥
॥१२६६॥१८८४॥

राग नट

मुरली अति चली इतराइ ।
अछय निधि जिनि लूटि पाई, क्यौँ नहीं सतराइ ॥
आदि जौ यह बड़ी होती, चलति सीस नवाइ ।
सबनि कौँ लै संग चलती, दौरि मिलती आइ ॥
बाँस तैँ उत्पत्ति जाकी, कहा बुधि ठहराइ ।
सूर-प्रभु ता वस्य जैसैँ, रहे तनु बिसराइ ॥
॥१२६७॥१८८५॥

राग बिहागरौ

स्याम सुहागिनी मुरली ।
भेद नाना करति, हरषति, उन हरषि उर ली ।
सदा तासौँ रहत पागे, मंद मधु सुर ली ॥
रैनि-बासरि टरति नाहीँ, रहति जहँ दुरली ॥
भईँ ब्याकुल चरित देखत, नारि ब्रजपुर ली ।
सूर आरज पंथ बिसरयौ, भवन डर गुर ली ॥
॥१२६८॥१८८६॥

राग केदारौ

मुरली एते पर अति प्यारी ।
जद्यपि नाना भाँति नचावति, सुख पावत गिरिधारी ॥
रहत हजूर एक पन ठाढ़े, मानत हैँ अति त्रास ।
कर तैँ कबहुँ नैंकु नहिँ टारत, सदा रहत ता पास ॥

बारंबार देति आयसु, हरि पर राखति अधिकार।
सूर स्याम कौं अपबस कीन्हौ, रहत रही बनझार॥
॥१२६६॥१८८७॥

राग गौरी

मुरली स्यामहिं मूँड़ चढ़ाई।
बारंबार अधर धरि याकौं, काहैं गर्ब कराई॥
तब तैं गनति नहीं यह काहुहिं, जब तैं उन मुँह लाई।
ना जानियै और कह करिहै, देखत नहीं भलाई॥
अपने बस्य किये नंद-नंदन, बैरिनि हम कहँ आई।
सूरज-प्रभु एते पर माई, मानत बहुत बड़ाई॥
॥१२७०॥१८८८॥

राग नट

बड़े की मानियै जो कानि।
कहा ओछे की बड़ाई, जाहि ओछी बानि॥
बड़ौ निदरै नाहिं काहुँ, ओछोई इतराइ।
नीर नारी नीचे हीं कौं, चलै जैसैं धाइ॥
रही बन मैं घरहिं ल्याए, महा बुरी बलाइ।
निदरि कै यह सबनि बैसी, सौति उपजी आइ॥
दिनहिं दिन अधिकार बाढ़यौ आँगे रहत कन्हाइ।
सूरदास उपाधि बिधना, कहा रची बनाइ॥
॥१२७१॥१८८६॥

राग गौरी

मुरली हमहिं उपाधि भई।
नँद नंदन हम सबनि भुलाई, उपजी कहा दई॥
कैसैं अब यह दूरि होति है, नोखी मिली नई।
देखौ री संबंध पाछिलौ, घर विष बेलि बई॥
जारैं जरै न काटैं सूखै ह्वै गई अमृत मई।
सूर स्याम भरुहाई, याकौं, ब्रज मैं आनि छई॥
॥१२७२॥१८६०॥

राग गौरी

दिन-दिन मुरली ढीठि भई।
रहति रही बनझार पात मैं, सो भई सुधामई॥
प्रगटहि भाग सुहागिनि हरि की, अनुरागी हरि याके।
धनि धनि वंसी भए रहत हैं, स्याम सुंदर बस जाके॥
वाकौ भाग सुहाग साँचिलौ, नैंकु नहीँ सँग त्यागत।
सूर स्याम राजा, वह बानी, वाकी सरि को लागत॥
॥१२७३॥१८६१॥

राग अड़ानौ

मुरली की सरि कौन करै।
नंद-नँदन त्रिभुवन-पति नागर सो जो बस्य करै॥
जवहीँ जब मन आवत तब तब अधरनि पान करै।
रहत स्याम आधीन सदाई आयसु तिनहिँ करै॥
ऐसी भई मोहिनी माई मोहन मोह करै।
सुनहु सूर याके गुन ऐसे ऐसी करनि करै॥
॥१२७४॥१८६२॥

राग केदार

मुरली मोहिनी अब भई।
करी जु करनि देव-दनुजनि प्रति वह बिधि फेरि ठई॥
उन पय-निधि हम व्रज-सागर मथि पाई पियुष नई।
अधर-सुधा हरि-बदन इंदु की इहिँ छलि छीनि लई॥
आपु अचै अँचवाइ सप्त सुर कीन्हे दिग बिजई।
एकहिँ पुट उत अमृत सूर इत मदिरा मदन-मई॥
॥१२७५॥१८६३॥

राग गौरी

मुरलिया अपनौ काज कियौ।
आपुन लूटति अधर-सुधा-हरि, हमकौँ दूरि कियौ॥
नंद-नँदन बस भए बचन सुनि, तिनहिँ बिमोह कियौ।
स्थावर चर, जंगम जड़ कीन्हे, मदन विमोह कियौ॥

जाकी दसा रही नहिँ वाही, सबहीँ चकृत कियौ।
सूरदास-प्रभु-चतुर-सिरोमनि, तिनकौँ हाथ कियौ॥
॥१२७६॥१८६४॥

राग गौरी

मुरलिया स्यामहिँ और कियौ।
औरै दसा, और मति ह्वै गई और बिवेक हियौ॥
तब तैँ निठुर भए हरि हम सौँ, जब तैँ हाथ लई।
निसि-दिन हम उन संगहिँ रहतीँ, मनु ह्वै गईँ नई॥
इहिँ औरै करि डारे भारे, हम कहँ दूरि करी।
घर की बन, बन की घर कीन्ही, सूर सुजान हरी॥
॥१२७७॥१८६५॥

राग कल्यान

सजनी स्याम सदाई ऐसे।
एक अंग की प्रीति हमारी, वै जैसे के तैसे॥
ज्यौँ चकोर चंदा कौँ चाहै, चंदा नैँकु न मानै।
जल कै तीर मीन तन त्यागै, नीर निठुर नहिँ जानै॥
ज्यौँ पतंग उड़ि परै ज्योति तकि, वाके नैँकु न भाएँ।
चातक रटि-रटि जनम गँवावै, जल वै डारत खाएँ॥
उनहूँ तैँ निर्दयी बड़े वै, तैसियै मुरली पाई।
सूर स्याम जैसे तैसी वह, भली बनी अब माई॥
॥१२७८॥१८६६॥

राग रामकली

मुरली कौ मन हरि सौँ मान्यौ।
हरि कौ मन मुरली सौँ मिलि गयौ, जैसैँ पय अरु पान्यौ॥
जैसैँ चोर चोर सौँ रातै ठठा ठठा एकै जानि।
कुटिल कुटिल मिलि चलैँ एक ह्वै, दुहुनि बनी पहिचानि॥
वे बन बन नित धेनु चरावत, वह बनही की आहि।
सर गढ़ी जोरी बिधना की, जैसी तैसी ताहि॥
॥१२७९॥१८६७॥

राग धनाश्री

काहैँ न मुरली सैँ हरि जोरै।
काहैँ न अधरनि धरैँ जु पुनि-पुनि, मिली अचानक भोरैँ ॥
काहैँ नहीँ ताहि कर धारैँ, क्यौँ नहिँ ग्रीव नवावैँ।
काहैँ न तनु त्रिभंग करि राखैँ, ताके मनहिँ चुरावैँ ॥
काहैँ न यौ आधीन रहैँ ह्वै, वै अहीर वह बेनु।
सूर स्याम कर तैँ नहिँ टारत, बन-बन चारत धेनु ॥
॥१२८०॥१८९८॥

राग बिलावल

वाही कैँ बल धेनु चरावत।
वहै लकुट जाकी वह मुरली, वातैँ वै सुख पावत ॥
वह अति निठुर निठुर वै वातैँ; मिलि कै घात बतावत।
बनहीँ बन मैँ रहत निरंतर, ताहि बजावत गावत ॥
वाके बचन अमृत हैँ इनकौँ, ताहि अधर-रस प्यावत।
सूर स्याम बनवारि कहावत, वह बन-बाँसि कहावत ॥
॥१२८१॥१८९९॥

राग रामकली

बैर सदा हमसैँ हरि कीन्हौ।
प्रथमहिँ रोकि रहे गहि मारग, दधि लै जान न दीन्हौ ॥
पुनि मन हर्‍यौ भेदहीँ भेदहि, इंद्री संगहिँ लीन्हौ।
ता पाछैँ ये नैन बुलाए, इन उनहीँ कौँ चीन्हौ ॥
अब मुरली बैरिनि उपजाई, निपट भईँ हम भीन्हौ।
सूर परे हरि खोज हमारैँ, ऐसे पर मन गीन्हौ ॥
॥१२८२॥१९००॥

राग बिलावल

सुनि सजनी यह साँची बानी, बारेहिँ तैँ नगधर कहवायौ ॥
धन्य धन्य कवि, ता पितु माता, जिन कहि-कहि उपमा यह गायौ ॥
इंदु बदन, तन स्याम सुभग घन, तड़ित बसन सति भाव बतायौ।
अलक भृंग पटतर कौँ साँचे, कर मुख चरन कमल करि गायौ ॥

ये उपमा इनहीं कौं छाजैं, अब मुरली अधरनि परसायौ।
सूर अंस यह आहि हमारौ, मुरली सबै अकेली पायौ॥
॥१२८३॥१६०१॥

राग रामकली

सजनी अब हम समुझि परी।
अंग-अंग उपमा जे हरि के, कबिता बनै धरी॥
नव जलधर तन कहियत, सोभा दामिनि पट फहरी।
भँवर कुटिल कुंतल की सोभा, सो हम सही करी॥
मुख-छबि ससि-पटतर उनि दीन्हौ, यह सुनि अधिक डरी।
सूर सहाइ भई यह मुरली अपनैं कुलहिं-जरी॥
॥१२८४॥१६०२॥

राग रामकली

तातैं मुरली कैं बस स्याम।
जैसे कौं तैसोई मिलबै, बिधना के ये काम॥
नैंकु न करतैं करत निनारी, कुल-जारी भई बाम।
निसि बासर वाकैं रस पागे, बैठे-ठाढ़े जाम॥
वाके सुख कौं बन-बन डोलत, जहँ-तहँ, छाँह न घाम।
सूरदास प्रभु की हितकारिनि, हम पर राखति ताम॥
॥१२८५॥१६०३॥

राग धनाश्री

बिधना मुरली सौति बनाई।
कुटिल बाँस की, बंस-बिनासिनि, आस निरास कराई॥
जौ यह ठाट ठाटिबोहि राख्यौ, कुल की होती कोऊ।
तौ इतनौ दुख हमहिं न होतौ, औगुन-आगर दोऊ॥
ये निरदई, निठुर वह बन की, घर अब भयौ प्रकास।
सूरदास ब्रजनाथ हमारे, जे, से भए उदास॥
॥१२८६॥१६०४॥

राग सारंग

अब मुरली-पति क्यौं न कहावत।
राधा-पति काहे कौं कहियै, सुनत लाज जिय आवत॥

वह अनखाति नाउँ सुनि हमरौ, इत हमकौं नहिं भावत।
कै मिलि चलैं फेरि हमही कौं, कै बनहीं किन छावत॥
काहे कौं द्वै नाव चढ़त हैं, अपनी बिपति करावत।
सुनहु सूर यह कौन भलाई, हँसि-हँसि बैर बढ़ावत॥
॥१२८७॥१६०५॥

राग नट

और कहौ हरि कौं समुझाइ।
अब यह दुबिधा काहैं राखत, वाही मिलियै जाइ॥
हम अपनौ मन निठुर करायौ, बात तुम्हारैं हाथ।
भली भई अब सकुचन लागे, कबि गावत ब्रजनाथ॥
अब मुरलीपति जाइ कहावहु, वह बाँसी तुम काठ।
सूरदास-प्रभु नई चतुरई, मुरली पढ़ये पाठ॥
॥१२८८॥१६०६॥

राग भैरव

मुरली कौ कह लागै री।
देखौ चरित जसोदा-सुत कौ, वह जुवतिनि अनुरागै री॥
यह दृढ़ नहीं, कहाँ तिहिं दोबल, ये उचटैं, वह पागै री।
कर धरि अधर परसि आलिंगन, देत कहा उठि भागै री॥
वह लंपट, धूतिनि, दुनहाई, जानि बूझि ज्यौ खागै री।
सुनहु सूर वह यहई चाहै, ता पर यह रिस पागै री॥
॥१२८९॥१६०७॥

राग सारंग

बावरी कहा धौं अब बाँसुरी सौं तू लरै।
उनहीं सौं प्रेम-नेम, तुमसौं नाहिंन आली, यातैं गिरिधारीलाल लै लै अधरा धरै॥
जौ लौं मधु पीवति रहति, तौलौं जीवित है, घरी घरी पल पल छिनु नहिं बिसरै।
सूरदास प्रभु वाकैं रस-बस भए रहैं, तातैं वाकी सरबरि कहौ कौन धौं करै॥१२९०॥१६०८॥

राग बिलावल

यह मुरली बन-झार की, बिनु ल्याएँ आई।
हमहीँ कौँ दुख देन कौँ, ब्रज भए कन्हाई॥
आरहिँ तैँ हमसौँ लरैँ, करते बरियाई।
गागरि फोरैँ घाट मैँ, दधि-माट ढराई॥
पुनि रोकत हैँ दान कौँ, अँग-भूषन माई।
सीखी चोरी आदि तैँ, मन लियौ चोराई॥
पुनि लोचन अँटके रहैँ अजहूँ नहिँ आए।
हमसौँ उचटे रहत हैँ, मुरली चित लाए॥
दोष कहा वाकौ सखी, इनके गुन ऐसे।
सूर परसपर नागरी, कहैँ स्याम अनैसे॥
॥१२६१॥१६०६॥

राग सोरठ

सजनी नख सिख तैँ हरि खोटे।
ये गुन तबहीँ तैँ जानतिँ हम, जब जननी कहै छोटे॥
अंबर हरे जाइ जमुनातट, राखे कदम चढ़ाइ।
तब के चरित सबै जानति हौ, कीन्ही निलज बनाइ॥
जब हम तप करि करि तनु गार्‌यौ, अधर-सुधा-रस-काज।
सो मुरली निदरे अँचवति है, ऐसे हैँ ब्रजराज॥
हमकौं यौं औरनि कौँ ऐसैँ, निधरक दीन्हौ डारि।
सूर इते पर चतुर कहावत, कहा दीजियै गारि॥
॥१२६२॥२६१०॥

राग केदारौ

इहिँ बँसुरी सखि सबै चुरायौ, हरि तौ चुरायौ इकलौ चीर।
मनहिँ चोरि, चित बितहिँ चुरायौ, गई लाज कुल-धरमऽरु धीर॥
तब तैँ भई फिरति हौँ ब्याकुल, अति आकुलता भई अधीर।
सूरदास-प्रभु निठुर, निठुर वह, नहिँ जानत पर-हिरदै पीर॥
॥१२६३॥१६११॥

राग गौर

तुम अब हरि कौँ दोष लगावति।
नंद-नँदन खोटे तुम कीन्हे, मुरली भली कहावति !॥

यह छिनारि, लंपट अन्याइनि, कुल दाहत नहिँ बार।
मधुर-मधुर बानी कहि रिझए, साजि तान-सिंगार॥
यह आई टोना सिर डारति, सप्त सुरनि कल गान।
ऐसैँ बनि-ठनि मिली आइ कै, ह्वै गए स्याम अजान॥
पुरुष भँवर उन कहँ कह लागै, नारि भजै जब आइ।
सूरज प्रभु तब कहा करैँ री, ऐसी मिली बलाइ॥
॥१२६४॥१६१२॥

राग बिहागरौ

मुरली को करि साधु धरी।
जिन रिझए मनहरन हमारे, ह्वै मोहिनी ढरी॥
ऐसी कहूँ भई नहिं होनी, जैसी इनहिँ करी।
रहति सदा बन-झारनि, झारनि, देखहु ज्यौँ उघरी॥
अब जहँ-तहँ धनि-धनि कहवावति, यह सुनि रिसनि जरी।
सूर स्याम-अधरनि के लागैँ, खोटी भई खरी॥
॥१२६५॥१६१३॥

राग मारू

मुरली नहिँ धरत धरनि, करतैँ कहुँ टरति नाहिँ, अधरनि धरि रहत खरे, ढरत स्याम भारी।
कबहुँ नाद भरत करत, अपनौ मन बस्य तहाँ, कबहुँ रीझि मगन होत, देखति ब्रजनारी॥
कबहुँ लटकि जात गात,ताननि जब कहति बात, सुनत स्रवन रस-अघात लागति अति प्यारी।
जा हित तप कियौ गारि, सो रस लै देति डारि, धरनी-जल-डाँगर-बन-द्रुमनि मैँ बृथा री॥
ऐसे ढँग किये आइ, हमकौँ उपजी बलाइ, ताकौँ तुम भली कहति, नाहिँ आदि जानी।
देखौ याकौ उपाइ, जै जै तिहुँ-भुवन गाइ सूर स्याम अपनौ करि, दिन-दिन इतरानी॥१२६६॥१६१४॥

राग धनाश्री

बृथा तुम स्यामहिँ दूषन देति।
जो कछु कहौ सबै मुरली कौँ, मन धौँ देखौ चेति॥

पहिलैं आइ प्रतीति बढ़ाई, को जानै यह घात।
बन बोली हम धाई आईं, तजि गृह-जन, पितु मात॥
जैसैं मधु पखान लपटान्यौ, तैसेइ याके बोल।
सूर मिली जिहिं भाँति आइ कै, त्यौं रहती अनमोल॥
॥१२९७॥१९१५॥

राग नट

मुरली प्रगट कीन्ही जाति।
तनकहीं इतराइ बोली, बाँस-बंस कुजाति॥
अहरनिसि रस अधर अँचवति, तऊ नहिं तृपिताति।
निदरि बैठी सबनि कौं यह, पुलकि अँग न समाति॥
छहौं ऋतु तप करि पचीं हम, अधर-रस कैं लोभ।
सूर-प्रभु सो याहि बकस्यौ, कछु न कीन्हौ छोभ॥
॥१२९८॥१९१६॥

राग सारंग

क्यौं तुम स्यामहिं दोष लगावति।
क्यौं मुरली की करति प्रसंसा, यह तौ मोहिं न भावति॥
याकी जाति नहीं जो जानति कहि-कहि मैं समुझावति।
कपटिनि, कुटिल, काठ की संगिनि, ताकौं भली बतावति॥
याकौ नाम भोर नहिं लीजै, कहि कहि ताहि सुनावति।
सूर स्याम इनहीं बहकाए, भई उदासिनि गावति॥
॥१२९९॥१९१७॥

राग धनाश्री

यह मुरली जरि गई न तबहीं।
अब अपनौ कुल-दाह करायौ, तब कैसैं करि निबही॥
ऐसी चतुर चतुरई कीन्ही, आपु बची सब जोरी।
कैसैं मिली सूर के प्रभु कौं, बिधना की गति न्यारी॥
॥१३००॥१९१८॥

राग सारंग

यह हमकौं बिधना लिखि राख्यौ।
नाउँ न गाउँ, कहाँ तैं आई, स्याम-अधर-रस चाख्यौ॥

यह दुख कहँ काहि, जो जानै, ऐसौ कौन ? निवारै।
जो रस धरयौ कृपिन की नाईं सो सब ऐसैं हि डारै॥
यह दूषन वाही कौ कहियै, की हरिहू कौं दीजै।
सुनहु सूर कछु बच्यौ अधर-रस, सो कैसैं करि लीजै॥
॥१३०१॥१६१६॥

राग नट

अधर-रस अपनौई करि लीन्हौ।
जो भावै सो अँचवति निधरक, अरु सबहिनि कौं दीन्हौ॥
मुरली हमहिं तुच्छ करि जानति, बैर इते पर मानै।
जैसी वह तैसी सब जानै, कुटिल, कुटिल पहिचानै॥
अवगुन सानि गढ़ी नख-सिख लौं, तैसियै बुद्धि बिकासै।
सरदास-प्रभु के मुख आगैं, मीठे बचन प्रकासै॥
॥१३०२॥१६२०॥

राग गौरी

यह मुरली ऐसी है माई।
निदरि सौति यह भई हमारी, कहा कहौं अधिकाई॥
ऐसैं पियति अधर-रस निधरक, जैसे बदन लगाई।
हम देखत वह गरजति बैठी, फेरति आपु दुहाई॥
याकी स्याम प्रतीति करत हैं, कछु पढ़ि टोना लाई।
सूर सुनत इहिं बचन माधुरी, स्याम दसा बिसराई॥
॥१३०३॥१६२१॥

राग गौरी

मुरलिया कपट चतुराई ठानी।
कैसैं मिलि गई नंद-नँदन कौं, उन नाहिंन पहिचानी॥
इक वह नारि, बचन मुख मीठे, सुनत स्याम ललचाने।
जाति-पाँति की कौन चलावै, वाकैं रंग भुलाने॥
जाकौ मन मानत है जासौं, सो तहँई सुख मानै।
सूर स्याम वाके गुन गावत, वह हरि के गुन गानै॥
॥१३०४॥१६२२॥

राग गौरी

मुरलिया यह तौ भली न कीन्ही ।
कहा भयौ तो स्याम हेत सौं, अधरनि पर धर लीन्ही ॥
अगुरी गहत गह्यौ जिहिं पहुँचौ, कैसैं दुरति दुराएँ ।
ओछी तनिकहिं मैं मरुहानी, तनिकहिं बदन लगाएँ ॥
जो कुल नेम धर्म की होती, दिन-दिन होती भार ।
सूरदास न्यारे भएँ हमतैं, डोसत नंद-कुमार ॥
॥१३०५॥१६२३॥

राग सारंग

इहिं मुरली कछु भलौ न कीनौ ।
अधर-सुधा-रस अंस हमारौ, बाँटि-बाँटि सबहिनि कौं दीनौ ॥
बीरुघ, तृन द्रुम सैल सरिति तट, सींचति बै बसुधा मृग मीनौ ।
जानै स्वाद कहा श्री मुख कौ, छूँछौ हियौ सार-बिनु हीनौ ॥
जा रस कौं कालिंदी के तट, पूजत गौरि भयौ तन छीनौ ।
सूर सु रस इहिं परसि कुटिल-मति, सबहिन कैं देखत हरि लीनौ ॥
॥१३०६॥१६२४॥

राग कान्हरौ

मुरली जौ अधरनि तट लागी ।
ज्यौं मरकट कर होत नारियर तैसैं इहौ अभागी ॥
अमृत लेति रहै यह हिरदौ, द्रवद साँस कैं मारग ।
वै रुचि सौं अँचवावत, यह लै डारति बन-बन सारग ॥
यह विपरीति नहीं कहुँ देखी, स्याम चढ़ाई सीस ।
ना तरु सूर देखती मुरली, कहा वाहि कर बीस ? ॥
॥१३०७॥१६२५॥

राग गौरी

अधर-रस मुरली लूट करावति ।
आपुन बार-बार लै अँचवति, जहाँ-तहाँ ढरकावति ॥
आजु महा चढ़ि बाजी वाकी, जोइ जोइ करै बिराजै ।
कर-सिंगासन बैठि, अधर-सिरछत्र धरे वह गाजै ॥

गनति नहीँ अपनैँ बल काहुहिँ, स्यामहि ढीठि कराई।
सुनहु सूर बन की बसबासिनि, ब्रज मैँ भई रजाई ॥
॥१३०८॥१६२६॥

राग बिलावल

यह मुरली कुस-दाहनहारी। सुनहु स्रवन दै सब ब्रजनारी ॥
कपटिनि कुटिल बाँस की जाई। बन तैँ कहाँ घरहिँ यह आई ॥
जो अपनैँ घर बैर बढ़ावै। तनहीँ तन मिलि आगि लगावै ॥
ऐसी की संगति हरि कीन्ही। जाति नहीं बाकी उन चीन्ही ॥
जैसे ये तैसी वह आई। विधना जोरी भली बनाई ॥
मुरली कैँ सँग मिले मुरारी। भाग सुहागिनि पिय अरु प्यारी ॥
अहैँ कुलट कुलटा वे दोऊ। इक तैँ एक नहीँ घटि कोऊ ॥
अधरनि धरत सबनि के आगैँ। करतैँ नैँकु कहूँ नहिँ त्यागैँ ॥
इनके गुन कहियै सो थोरे। सूर स्याम बंसी-बस भोरे ॥
॥१३०६॥१६२७॥

राग बिलावल

हरि मुरली कैँ हाथ बिकाने। वह अपमान करति न लजाने ॥
उहिँ ऐसे करि लिये दिवाने। बार-बार वो जसहिँ बखाने।
ठाढे रहत न पाइ पिराने। एते पर मन रहत डेराने ॥
आयसु देति सुनत मुसुकाने। जीवन जन्म सुफल करि माने ॥
वह गरजति ये हरैँ बताने। बार बार अधरनि पर ठाने ॥
त्रिभुवन पति जे कहियत बाने। ते ता बस तन-दसा भुलानै ॥
बा आगैँ हम सबनि सुगाने। वह गावति ये सुनत पगाने ॥
सूर नेति निगमनि जे गाने। ते मुरली कैँ नाद ठगाने ॥
॥१३१०॥१६२८॥

राग बिलावल

मुरली निदरै स्याम कौँ, स्यामहि निदराई।
मधुर बचन सुनि कै ठगे, ठगमूरी खाई ॥
रहत बस्य वाके भए, सब मेटि बड़ाई।
वह तन मन धन ह्वै रही, रसना रस म्राई ॥
वह कर, वह अधरनि रहै, देखौ अधिकाई।

वहै कहति सो सुनत हैं, ये कुँवर कन्हाई ॥
बन की बाढ़ी बापुरी, घर यह ठकुराई।
सूर स्याम कौं वा बिना, कछु नहीं सुहाई ॥
॥१३११॥१९२९॥

राग नट

सखी री माधोहिं दोष न दीजै।
जो कछु करि कहियै सोई सब, या मुरली कौं कीजै ॥
बार-बार बन बोलि मधुर धुनि, अति प्रतीत उपजाई।
मिलि स्रवननि मन मोहि महा रस, तन की सुधि बिसराई ॥
मुख मृदु बचन, कपट उर अंतर हम यह बात न जानी।
लोक-बेद-कुल छाँड़ि आपनौ, जोइ-जोइ कही सु मानी ॥
अजहूँ वहै प्रकृति याकैं जिय, लुब्धक-सँग ज्यौं साधी।
सूरदास क्यौं हूँ करुना मैं, परति नहीं अवराधी ॥
॥१३१२॥१९३०॥

राग धनाश्री

स्यामहिं दोष देहु जनि माई।
कहौ याहि किन बाँस जाति की, कौनैं तोहिं बुलाई ? ॥
उनकी कथा मनहिं दै राख्यौ, याकी चलति ढिठाई।
वै जो भले बुरे तौ अपने, यह लंगरि टुनहाई ॥
ऐसी रिस अब आवति मोकौं, दूरि करौं झहराई।
सूर स्याम की कानि करति हौं, ना तरु करति बड़ाई ॥
॥१३१३॥१९३१॥

राग धनाश्री

स्यामहिं दोष कहा कहि दीजै।
कहा बात मुरली सौं कहियै, सब अपनेहिं सिर लीजै ॥
हमहीं कहति बजावहु मोहन, यह नाहीं तब जानी।
हम जानी यह बाँस बँसुरिया, को जानै पटरानी ॥
बारे तैं मुँह लागत-लागत, अब ह्वै गई सयानी।
सुनहु सूर हम भोरी-भारी, याकी अकथ कहानी ॥
॥१३१४॥१९३२॥

राग धनाश्री

सुनु री सखी बात यह मोसैं।
तुम अपनैं सिर मानि लई क्यौं, मैं वाही कौं कोसैं॥
जौ वह भली नैंकुहूँ होती, तौ मिलि सबनि बताती।
वह पापिनी दाहि कुल आई, देखि जरति है छाती॥
बँसी की कह कानि मानियै वह हत्यारिनि नारी।
सूर स्याम वा गुन कह जानैं, धोखैं कीन्ही प्यारी॥
॥१३१५॥१६३३॥

राग आसावरी

बिनु जानैं हरि वाहि बढ़ाई।
वह तौ मिली बचन मधुरे कहि, सुनतहि दई बड़ाई॥
रिझै लियौ हरि कौं टोना करि, तुरतहिं बिलँब न लाई।
उन लै कर अधरनि पर धारी, अनुपम राग बजाई॥
मानहुँ एकहि संग रहे ते, ऐसैं मिले कन्हाई।
सूर स्याम हम सबनि बिसारी, जबहीं तैं वह आई॥
॥१३१६॥१६३४॥

राग बिलावल

सुनु सजनी इक कथा कहौं री, करम करै सो कोउ न करै।
यह महिमा करता की अगनित, कौनैं बिधि धौं काहि ढरै॥
बन-झारनि की घर बैठाई, स्याम-अधर सिर छत्र धरै॥
हमकौं घर-कुलकानि छँड़ाई, ऐसी उलटी रीति जरै॥
अधर-सुधा-रस अपनौ जानति, दिनही दिन यह आस भरै।
सूर स्याम ताकौं करि लीन्हौ, वहै सुधा सवताहिं झरै॥
॥१३१७॥१६३५॥

राग आसावरी

यह मुरली बहि गई न नारैं।
निदरे हमहिं सुधा-रस अँचवति, टरति नहीं कहुँ टारैं॥
देखहु भाग जरत तैं उबरी, मिली आनि हरि-पास।
इन तौ ताहि लूटि सी पाई, हम करि दई निरास॥

अब वह भई स्याम-पटरानी, स्याम भए बस वाके।
सुनहु सूर ये चरित करति है, लखे कौन गुन ताके॥
॥१३१८॥१९३६॥

राग कान्हरौ

मुरली कहै सु स्याम करैं री।
वाही कैं बस भए रहत हैं, वाकैं रंग ढरैं री॥
घर-बन, रैनि-दिना सँग डोलत, कर तैं करत न न्यारी।
आई बन बलाइ यह हमकौं, कहा दीजियै गारी॥
अब लौं रहे हमारे माई, इहिं अपने अब कीन्हे।
सूर स्याम नागर यह नागरि, दुहुँनि भलैं करि चीन्हे॥
॥१३१९॥१९३७॥

राग गौरी

मुरलिया हरि कौं कहा कियौ।
इनकौं नहीं और कछु भावै, यौं अपनाइ लियौ॥
औरै दसा भई मोहन की, कहा मोहिनी लाई।
अधर-सुधा-रस देत निरंतर, राखत ग्रीव नवाई॥
कर जोरे आज्ञा प्रतिपालत, कहाँ रही दुखदाई।
सुनहु सूर ऐसी नान्हीं कौं, काहै लाड़ लड़ाई॥
॥१३२०॥१९३८॥

राग मलार

ज्यौं-ज्यौं मुरलिहिं महत दियौ।
त्यौं-त्यौं निदरि स्याम कोमल-तन, बदन-पियूष पियौ॥
राखे रहति पानि-पल्लव गहि, होत न काज बियौ।
पौढति आपु अधर-सेज्या, पर सकुचत नाहिं हियौ॥
जग जान्यौ रति-पति सिव जारयौ, सो इहिं सब्द जियौ।
मेटी बिधि मरजाद सूर इहिं, जो भायौ सो कियौ॥
॥१३२१॥१९३९॥

राग गौरी

मुरली महत दियैं इतरानी।
निदरि पियति पीयूष अधर कौ, स्याम नहीं यह जानी॥

कर गहि रही टरति नहिँ नैँकुहुँ, दूजौ काज न होइ।
लाज नहीँ आवति अति निधरक, रहति बदन पर सोइ॥
सिव कौ दह्यो काम इहिँ ज्यायौ, सबद सुनत अकुलाई।
आरज-पथ बिधि की मरजादा, सूर सबनि बिसराई॥
॥१३२२॥१६४०॥

राग मलार

जब-जब मुरली कैँ मुख लागत।
तब-तब कान्ह कमल-दल-लोचन, नख-सिख तैँ रस पागत॥
पलकहिँ माँझ पलटि से लीजत, प्रगटत प्रीति अनागत।
फरकत अधर बिंब, नासा पुट, सूधी चितवनि त्यागत॥
बात न कहत, रहत टेढ़े ह्वै, नहिँ आलिंगन माँगत।
सूरदास-स्वामी बंसी बस, मुरछे नैँकु न जागत॥
॥१३२३॥१६४१॥

राग रामकली

जबहीँ मुरली अधर लगावत।
अंग-अंग रस भरि उमगत हैँ, जातैँ पुनि-पुनि भावत॥
औरै दसा होति पलकहिँ मैँ, अगम-प्रीति परकासत।
तब चितवत काहूँ तन नाहीँ, जबहिँ नाद मुख भाषत॥
ग्रीव नवाइ देत हैँ चुंबन, सुनि धुनि दसा बिसारत।
सूर मुरछि लटकत ताही पर, ताही रसहिँ बिचारत॥
॥१३२४॥१६४२॥

राग रामकली

मुरली हरि कौँ नाच नचावति।
एते पर यह बाँस-बँसुरिया, नंद-नँदन कौँ भावति॥
ठाढ़े रहत बस्य ऐसे ह्वै, सकुचत बोलत बात॥
वह निदरे आज्ञा करवावति, नैकुँहुँ नाहिँ लजात॥
जब जानति आधीन भए हैँ, देखति ग्रीव नवावत।
पौढ़ति अधर, चलित कर पल्लव रंध्र-चरन पलुटावत॥
हम पर रिस करि-करि अवलोकत, नासा-पुट फरकावत।
सूर-स्याम जब-जब रीझत हैँ, तब-तब सीस डुलावत॥
॥१३२५॥१६४३॥

राग जैतश्री

मुरली मोहि लिये गोपाल ।
बस करि आपु अधर-रस अँचवति, करि पाए हरि ख्याल ॥
सर्बस अधर-सुधा-रस सबकौं, कोउ देखन नहिं पावति ।
आपुहिँ पियति अघाति न तौहू, पुनि-पुनि लोभ बढ़ावति ॥
दुहुँ कर बैठि गर्व सौं गरजति, बादति सुनति न बात ।
जो कुल-दही डरै सो कौनैं, अतिहिँ निर्दयी गात ॥
बारे तैं तप कियौ जौन हित, सो गँवाइ पछितानी ।
सूरदास वन-व्याधि माँझ-घर, देखि-देखि अकुलानी ॥
॥१३२६॥१६४४॥

राग बलार

माई, मुरली है चित चोर्यौ ।
बदति नहीँ अपनैं बल काहू, नेह स्याम सौं जोर्यौ ॥
करत सनेह सहत तन अपने, देखत अंगनि मोर्यौ ।
स्रवन सुनत सुर नर मुनि मोहे, सागर जाइ झकोर्यौ ॥
गोपी कहतिं परस्पर ऐसैं, सबहुनि कौं मन मोर्यौ ।
सूदास-प्रभु की अरधंगी, इहि बिधि स्याम अँकोर्यौ ॥
॥१३२७॥१६४५॥

राग गौरी

सखी री मुरली भई पटरानी ।
अधर सदा सुख करति स्याम कैं, सुधा पियति इतरानी ॥
मोहे पसु पंछी द्रुम बेली, जमुना उलटि बहानी ।
सुर-नर-मुनि बस भए नाद कैं, सबै बस्य मन ध्यानी ॥
तिहूँ भुवन मैं चली बड़ाई, अस्तुति मुख-मुख गानी ।
सूर स्याम की अब अर्धंगनि, रही झार लपठानी ॥
॥१३२८॥१६४६॥

राग गौरी

स्याम नृपति, मुरली भई रानी ।
बन तैं ल्याइ सुहागिनि कीन्हौ, और नारि उनकैं न सुहानी ॥

कबहुँ अधर धरि देत अलिंगन, बचन सुनत तन दसा भुलानी।
सूरदास-प्रभु गिरिधर नागर, नागरि बन भीतर तैं आनी॥
॥१३२९॥१६४७॥

मुरली-बचन गोपियों के प्रति *राग मलार*

ग्वालिनि तुम कत उरहन देहु ?
पूछहु जाई स्याम सुंदर कौं, जिहि दुख जुरयौ सनेहु॥
जन्मत ही तैं भईं बिरत चित, तज्यौ गाउँ, गुन गेहु।
एकहि पाउँ रही हौं ठाढ़ी, हिम-ग्रीषम-ऋतु नेहु॥
तज्यौ मूल साखा-सुपत्र सब, सोच सुखायी देहु।
अगिनि सुलाकत मुरयौ न तन मन, बिकट बनावत बेहु॥
बकतीं कहा बाँसुरी कहि-कहि करि-करि तापस तेहु।
सूर स्याम इहिं भाँति रिझै, किंनि, तुमहुँ अधर रस लेहु॥
॥१३३०॥१६४८॥

राग मलार

ग्वारिनि मोहीं पर सतरानी।
जौ कुलीन अकुलीन भईं हस, तुम तौ बड़ी सयानी॥
नाना रूप बखान करति हौ, काहैं बृथा रिसानी।
तुमहिं कहौ कह दोष हमारौ ? खोटा क्यौं पहिचानी ?॥
जो स्रम मैं अपनैं तन कीन्हौ, सो सब कहौं बखानी।
सूरदास-प्रभु बन-भीतर तैं, तब अपनैं घर आनी।
॥१३३१॥१६४९॥

राग सूहौ

जब सुनिहौ करतूति हमारी।
तब मन-मन तुमहीं पछितैहौ, बृथा दई हम याकौं गारी॥
तुम तप कियौ सुन्यौ मैं सोऊ, रिस पावहुगी और कहा री।
मो समान तप तुम नहिं कीन्हौ, सुनहु करौं जनि सोर बृथा री॥
मैं कह कहौं, सुनौगी तुमहीं, जगत-बिदित यह बात हमारी।
सूर स्याम आपुन ही कहियो, सुनत कहा मुसुकात मुरारी॥
॥१३३२॥१६५०॥

राग कान्हरौ

मो पर ग्वालि कहा रिसाति ।
कहा गारी देति मोकौं कहा उघटति जाति ॥
जौ बड़ी तुम आपुही कौं, तुमहि होहु कुलीन ।
मैं बँसुरिया बाँस की जौ, तौ भई अकुलीन ॥
पीर मेरी कौन जानै, छाँड़ि इक करतार ।
सूर-प्रभु-सँग देखि काहैं, खिझति बारंबार ॥
॥१३३३॥१६५१॥

राग बिहागरौ

मैं अपनैं बल रहति स्याम सँग, तुम काहैं दुख पावति री ॥
मो पर रिस पावति हौ पुनि पुनि, कछु, काहुँहिं बतरावति री ॥
तुमहुँ करौ सुख, मैं बरजति हौं, ऐसेहि सोर लगावति री !
कहा करौं मोहिं स्याम निवाजी, काहैं न दूरि करावति री ॥
बृथा बैर तुम करति निसादिव, आछौ जनम गँवावति री ।
सूर सुनहु ब्रजनारि सयानी, मूरख ह्वै, समुझावति री ! ॥
॥१३३४॥१६५२॥

राग रामकली

सुनौ इक बात हो ब्रजनारि ।
रिस कियैं पावति कहा हो, कहा दीन्है गारि ॥
जाति उघटति, पाँति उघटति, लेति हौं जब मानि ।
तुम कहति, मैं हूँ कहति सोइ, मोहिं बन तैं आनि ! ॥
कर्म कौ यह बहुत नाहीं, स्याम अधरनि धारि ।
सूर-प्रभु जौ कृपा कीन्ही, कहा रही बिचारि ॥
॥१३३५॥१६५३॥

राग बिलावल

रिझै लेहु तुमहूँ किन स्यामहिं ।
काहे कौं बकबाद बढ़ावति, सतर होतिं बिनु कामहिं ॥
मैं अपने तप कौ फल भोगवति, तुमहूँ करि फल लीजौ ।
तब धौं बीच बोलिहै कोऊ, ताहि दूरि धरि कीजौ ॥

अपनौ भाग नहीँ काहू सौँ, आपु आपनैँ पास।
जो कछु कहौ सूर के प्रभु कौँ, मो पर होतिँ उदास॥
॥१३३६॥१६५४॥

राग बिलावल

मेरे दुख कौ ओर नहीँ।
षट रितु सीत उष्न बरषा मैँ, ठाढ़े पाइ रही॥
कसकी नहीँ नैकुहूँ काटत, घामैँ राखी डारि।
अगिनि-सुलाक देत नहिँ मुरकी, बेह बनावत जारि॥
तुम जानति मोहिँ बाँस बसुरिया अगिनि छाप दै आई।
सूर स्याम ऐसैँ तुम लेहु न, खिझति कहा हौ माई॥
॥१३३७॥१६५५॥

राग बिलावल

स्रम करिहौ जब मेरी सी।
तब तुम अधर-सुधा-रस बिलसहु, मैँ ह्वै रहि हौँ चेरी सी॥
बिना कष्ट यह फल न पाइहौ, जाति हौ अवडेरी सी।
षट रितु सीत तपनि तन गारौ, बाँस बँसुरिया केरी सी॥
कहा मौन ह्वै ह्वै जु रही हौ, कहा करति अवसेरी सी।
सुनहु सूर मैँ न्यारी ह्वैहौँ, जब देखौँ तुम मेरी सी॥
॥१३३८॥१६५६॥॥

गोपी-बचन परस्पर *राग सारंग*

मुरली तौ अधरनि पर गाजति।
कैसैँ बैठी दुहूँ करनि चढ़ि, अँगुरी रंध्रनि राजति॥
स्यामहिँ मिलि हम सबनि दिखावति, नैकु नहीँ मन लाजति।
नाद सबाद मोद सौँ उपजत, मधुरे-मधुरे बाजति॥
कबहुँ मौन ह्वै रहति, कबहुँ कुछ कहति, रहति नहिँ हाजति।
सूर स्याम वाकौ सुर साजत, वह उनहीँ सौँ भ्राजति॥
॥१३३९॥१६५७॥

राग नट

मुरली तप कियौ तनु गारि।
नैकहूँ नहिँ अंग मुरकी, जब सुलाकी जारि॥

सरद, ग्रीषम, प्रबल पोवस, खरी इक पग भारि।
कटत हूँ नहिं अंग मोरयौ, साहसिनि-अति नारि ॥
रिझै लीन्हें स्याम सुंदर, देति हौ कत गारि।
सूर प्रभु तब ढरे हैं री, गुननि कीन्ही प्यारि ॥
॥१३४०॥१९५८॥

राग सारंग

मुरलिया ऐसैं स्याम रिझाए।
नंद-नँदन के गुन नहिं जानति, अति स्रम तैं इहिं पाए ॥
तुव व्रत कौ फल उहै दिखायौ, चार कदंब चढ़ाए।
कह्यौ कहा सब वैसेहिं आवहु, जुवतिनि लाज छँड़ाए ॥
तब दै चीर अभूषन बोले, धनि-धनि सबद सुनाए।
सुनहु सूर ब्रजनारी भोरी, इतनेहिं हरष बढ़ाए ॥
॥१३४१॥१९५९॥

राग बिलावल

मुरली जैसैं तप कियौ कैसैं तुम करिहौ।
षटरितु इक पग क्यौं रहौ अबहीं लरखरिहौ ॥
वह काटत मुरकी नहीं, तुम तौ सब मरिहौ।
वह सुलाक कैसैं सहौ, परसत हीं जरिहौ ॥
तुम अनेक वह एक है, वासौं जनि लरिहौ।
सूर स्याम जिहिं ढरि मिले, नहिं जीतौ हरिहौ ॥
॥१३४२॥१९६०॥

राग बिलावल

मुरली की सरि जनि करौ, वह तप अधिकारिनि।
एते पर तुम बोलि हौ, कह भई बनजारिनि ॥
धीर धरैं मरजाद है, नातौ लघु ह्वै हौ।
नैंकु दरस की आस है, ताहू तैं जैहौ ॥
झगरैं झगरोई रहै तिहिं कहा बड़ाई।
वह अपनौ फल भोगवै, तुम देखौ माई ॥
देखौ वाके भाग कौं, ताकौं न सराहौ।
सूरदास झझकौं कहा, नीकैं किन चाहौ ॥
॥१३४३॥१९६१॥

राग रामकली

मुरली सौं अब प्रीति करौ री।
मेरी कही मानि मन राखौ, उर-रिस दूरि धरौ री॥
तुमहिँ सुनीँ मुरली की बातैं, दीन होइ बतरानी।
काहैँ न ढरैं स्याम ता ऊपर, क्यौँ न होइ पटरानी॥
हम जान्यौ यह गर्व भरी है, साधु न यातैं और।
रिझै लियौ हरि कौँ तप कैं बल, वृथा करौ तुम सौर॥
सूर स्याम बहुनायक सजनी, यहौ मिली इक आइ।
तुम अपने जौ नेम रहौगी, नेम न कर तैं जाइ॥
॥१३४४॥१९६२॥

राग कान्हरौ

नेमहिँ मैँ हरि आइ रहैँगे।
मुरली सौँ तुम कछू कहौ जनि, ऐसेहिँ तुमहिँ मिलैंगे॥
वे अंतरजामी सब जानत, घट-घट की जो प्रीति।
जाकौ जैसौ भाव सखी री, ताहि मिलैं तिहिँ रीति॥
मातु-पिता-कुलकानि-लाज तजि, भजी जनम तैं जाहि।
काहे कौँ मुरली कौ डाहनि अब तजियै री ताहि॥
सोरह सहस एक मन आगरि, नागरि मुरली जानि।
सूर स्याम कौँ भजौ निरंतर, जासैँ है पहिचानि॥
॥१३४५॥१९६३॥

राग कान्हरौ

मुरली की जनि बात चलावौ।
वह बल करति आपने तप कौ, तुम काहैँ बिसरावौ॥
कहा रही एकहि पग ठाढ़ी, कहा काटि जो डारी।
कहा सुलाक सह्यौ उहिँ गाढ़े, कर सैँ स्याम सँवारी॥
निमिष एक भरि कष्ट सह्यौ जो, तुरत अधर मधु सौँची।
सूर सुनौ, जनि वात कहौ तेहिँः बड़ी आहि जौ नीची॥
॥१३४६॥१९६४॥

राग कान्हरौ

हम तैं तप मुरली न करै री।
कहा सुलाक सह्यौ जो इक पल, नित प्रति बिरह जरै री ?।

किरिया सी करि कै भई ठाढ़ी, तुरत अधर-तट लागी।
हमकौँ निसि दिन मदन जरावत, वाही रस अनुरागी॥
यहै बात कर्महुँ तैँ मोटी, तातैँ हम सरि नाहीँ।
सूर स्याम की महिमा न्यारी, कृपा करी ता माहीँ॥
॥१३४७॥१६६५॥

राग कान्हरौ

तुम अपने तप की सुधि नाहीँ, जो तनु गारि कियौ।
संबत पाँच-पाँच की सबहीँ, अजहूँ प्रगट हियौ॥
वह तुषार, वह तपनि तपस्या, वह पावस झकझोर।
वह लरिकई मातु-पितु कौ हित, ऐसी प्रीतिहि तोर॥
तबहीँ तैँ तनु बिरह जरत है, निसि-बासर यौँ जात।
कैसैँ तप निरफलहिँ जाइगौ, सुनहु सूर यह बात॥
॥१३४८॥१६६६॥

राग गौरी

मुरलिया एकै बात कही।
भाग आपनौ अपने माथैँ, मानी यह मनहिँ सही॥
हम तैँ बहुत तपस्या नाहीँ, बिरह जरी वह नाहीँ।
कहा निमिष करि प्रेम सुलाकी, देखहु गुनि जिय माहीँ॥
बात कहति कछु निंदति नाहीँ, भाग बड़े हैँ वाके।
सूरदास-प्रभु चतुर सिरोमनि, बस्य भए हैँ जाके॥
॥१३४९॥१६६७॥

राग गौरी

मुरली सौँ कह काम हमारौ।
अधर धर, सिर पर किन राखै, तुम जनि कबहुँ बिगारौ॥
जा कारन तुम जन्म भईँ ब्रज, ध्यावहु नंद-दुलारौ।
बीचहिँ कहूँ और सौँ अँटके, तामैँ कहा तुम्हारौ॥
वह मुसुकनि, वह स्याम सुभग छबि, नैननि तैँ जनि टारौ।
सूरज-प्रभु ब्रजनाथ कहावत, ते तुम छिनु न बिसारौ॥
॥१३५०॥१६६८॥

राग बिहागरौ

मुरली स्याम बजावन लागे।
अधर-सुधा-रस है वह पागी, आपुन ता रस पागे॥
धन्य-धन्य बड़ भागिनि नागरि, धनि हरि के मुख लागी।
धनि वह बन, धनि-धनि वह उपवन, जहँ बाँसुरी सोहागी॥
धनि वह रंध्र, धन्य वह अँगुरी, बारंबार चलावत।
सूर सुनत ब्रजनारि परस्पर, दुख-सुख दोऊ पावत॥
॥१३५१॥१६६९॥

राग पूरबी

मुरली कैसैँ बजै रस सानी, गरजि धुँकार अमृत बानी।
नाद प्रवाह तरै भरै रीझै, इतनौ रस कहँ तैँ जानी॥
सप्त सुरनि गति जति उपजति अति, बिपरित थावर पवन पानी।
सूरदास गिरिधर बहुनायक, याहीँ सौँ निसिदिन रति मानी॥
॥१३५२॥१६७०॥

राग रामकली

मुरलिया बाजति है बहु बान।
तीनि ग्राम, इकईस मूर्छना, कोटि उनंचास तान॥
सर्व कला व्युत्पन्न सुघर अति, या समसरि को आन।
अति सुकंठ गावति, मन भावति, रीझै स्याम सुजान॥
ऐसी सौँ नहिँ बैर कीजियौ, दूरि करौ रिस-जान।
सूर स्याम कैँ अधर बिराजति, सबहीँ अंग-निधान॥
॥१३५३॥१६७१॥

राग रामकली

मुरलिया स्याम अधर पर बैसी।
सुनहु सखी यह है तिहिँ लायक, अतिहिँ भली, नाहिँ नैसी॥
कैसैँ नंद-नंदन कर धरते, जो पै होती गैसी।
तुमहीँ बृथा कहति जोइ सोइ, यह जैसी की तैसी॥
सुनहु कहा कहि-कहि मुख गावति, हृदय स्याम कैँ पैसी।
सूरदास-प्रभु क्यौँ न मिलैँ ढरि, तिहूँ भुवन जै जै सी॥
॥१३५४॥१६७२॥

राग बिलावल

आपु भलाई सबै भले री।
जो वह भली गुननि की पूरी, तौ ढरि स्याम मिलेरी ॥
इक जुवती, अरु मधुरैं गावति, बानी ललित कहै री।
जब-जब स्याम अधर पर राखत, तब-तब सुधा बहै री ॥
एते पर हम सौं सनमुख है, तुम काहैं रिस पावति।
सूरदास-प्रभु कमल नयन कौं, एते पर वह भावति ॥
॥१३५५॥१६७३॥

राग केदारौ

जौ पै मुरली कौ हित मानो ॥
तौ तुम बार-बार ऐसैं कहि. मन मैं दोष न आनौ ॥
बासर-याम-बिरह अहि-ग्रासित, हूजत मृतक समान।
लेति जिवाइ सु-मंत्र सुरस कहि, करति न डर-अपमान ॥
निज संकेत लेखावति अजहूँ, मिलवति सारँग पानि।
सरद-निसा रस-रास करायौ, बोलि-बोलि मृदु बानि ॥
परकृत-सील सुकृत-उपमा-रमी तासौं यौं कत कहियै ;
पर को सूरजदास मेटि कृत न्याइ इतौ दुख सहियै ॥
॥१३५६॥१६७४॥

राग रामकली

मुरली स्याम बजावन दै री।
स्रवननि सुधा पियति काहैं, इहिं तू जनि बरजै री ॥
सुनति नहीं वह कहति कहा है, राधा राधा नाम।
तू जानति हरि भूलि गए मोहिं, तुम एकै पति बाम ॥
वाही कैं मुख नाम धरावत, हमहिं मिलावत ताहि।
सूर स्याम हमकौं नहिं बिसरे, तुम डरपति हौ काहि ॥
॥१३५७॥१६७५॥

राग जैतश्री

जब जब मुरली कान्ह बजावत।
तब-तब राधा नाम' उचारत, बारंबार रिझावत ॥
तुम रमनी, वह रमन तुम्हारे, वसेहिं मोहिं जनावत।
मुरली भई सौति जो माई, तेरी टहल करावत ॥

वह दासी तुम हरि-अर्धांगिनि, यह मेरैं मन आवत।
सूर प्रगट ताही सौं कहि-कहि, तुमकौं स्याम बुलावत ॥

॥१३५८॥१६७६॥

राग केदारौ

यह मुरली ऐसी है माई।
हम यासौं रिस बृथा करति हीं, तब इहिं कद्रि न पाई।
बानी ललित सुनत स्रवननि हित, चित मेरैं अति भाई।
गाजति, बाजति स्याम-अधर पर, लागति तान सुहाई ॥
मैं जानी यह निठुर काठ की, नरम बाँस की जाई।
सूरदास ब्रजनारि परस्पर, ताकी करतिं बड़ाई ॥

॥१३५९॥१६७७॥

राग कान्हरौ

अब मुरली कछु नीकैं बाजति।
ज्यौं अधरनि, ज्यौं कर पर बैठति, त्यौं अतिहीं अति राजति ॥
अब लौं जानी बाँस बँसुरिया, यातैं और न बंस।
कैसैं बजि रजि चली सबनि कौं, राधा करति प्रसंस ॥
यह कुलीन, अकुलीन नहीं री, धनि याके पितु-मात।
सुनहु सूर नाते की भैनी, कहतिं बात हरषात ॥

॥१३६०॥१६७८॥

राग कान्हरौ

मुरलिया मोकौं लागति प्यारी।
मिलि अचानक आइ कहूँ तैं, ऐसी रही कहाँ री ॥
धनि याके पितु-मातु, धन्य यह, धन्य-धन्य मृदु बोलनि।
धन्य स्याम गुन गुनि कै ल्याए, नागरि चतुर अमोलनि ॥
यह निरमोल मोल नहिं याकौ, भली न यातैं कोई।
सूरदास याके पटतर कौ, तौ दीजै जौ होई ॥

॥१३६१॥१६७९॥

राग रामकली

मुरली दिन-दिन भली भई।
बन की रहनि नहीं अब यामैं, मधु हीं पागि गई ॥

अमिय समान कहति है बानी, नीकैँ जानि लई।
जैसी संगति बुधि तैसीयै ह्वै गई सुधामई॥
जब आई तब औरै लागी, सो निठुरई हई।
सूर स्याम अधरनि के परसैँ, सोभा भई नई॥
॥१३६२॥१९८०॥

राग गौड़ मलार

भली अनभली करतूति संगतिहिं तैँ, बाँस बनझार को भई मुरली।
कहाँ तव लहति ही निठुरताई, अबै बचन अमृत कहति, सुरनि सुरली॥
सुधा अधरनि संग भई आपुहिं सुधा, कहा अब प्रीति मैँ इन गँवायौ।
सूर-प्रभु मिले अरु हस मिलौँ धाइ कै, इते पर धन्य चहुँ जुग कहायौ॥
॥१३६३॥१९८१॥

राग गौड़ मलार

धन्य मुरली, धन्य तप तुम्हारौ।
धन्य-धनि मातु, धनि धन्य भ्राता-पिता, बहुरि धनि धन्य तुव-भगति सारौ॥
धन्य-वह बाँस, धनि धन्य जहँ तू रही, धन्य बनझार, तो तैँ बड़ाई।
धन्य तप कियौ षट रितु रही एक पग, डुली नहिं धन्य मन की दृढ़ाई॥
कटतहू मुरी नहिं, रंध्रहू जरी नहिं, नेम तैँ टरी नहिं, तुही जानै।
तैसेई मिले प्रभु सूर तोकौँ तुरत, सीँचि अमृत अधर नेह मानै॥
॥१३६४॥१९८२॥

राग हमीर

आजु बजाई मुरली मनोहर, सुधि न रही कछु तन मन मैँ।
मैँ जमुना-तट सहज जाति ही, ठाढ़े कान्ह बृँदाबन मैँ॥
नाना राग रागिनी गावत, धरे अमृत मृदु बैननि मैँ।
सूर निरखि हरि-अंग त्रिभंगी, वा छबि भरि लियौ नैननि मैँ॥
॥१३६५॥१९८३॥

राग पूरबी

मुरली बाजै मुख मोहन कैँ, सुनि रीझी रस-ताननि ।
अतिहिँ दूरि ही धुनि सँग आई, भई मगन दै काननि ॥
तब तैँ और कछू नहिँ भावत, मन भावति छवि-बाननि ।
सूरदास प्रभु नवल छबीलौ, हरत नवेलिनि-ज्ञाननि ॥
॥१३६६॥१६८४॥

राग काफी

(माई) मोहन की मुरली मैँ मोहिनी बसत है ।
जब तैँ सुनी स्रवन, रह्यौ न परै भवन, देह तैँ मनहुँ प्रान अब निकसत है ॥
कहा करौँ मेरी आली, बाँसुरी की धुनि साली, माता-पिता पति बंधु अतिहीँ त्रसत है ।
मदन अगिनि अरु बिरह की ज्वाल जरी जैसैँ जल-हीन मीन तट दरसत है ॥
अतिहि तपति छाती लागति है प्रेम काँती फूलनि की माला मनौ व्याल ह्वै डसत है ।
सूर स्याम मिलत कौँ आतुर ब्रज की बाल, एक-एक पल जुग-जुग ज्यौँ खसत है ॥१३६७॥१६८५॥

श्रीकृष्ण का ब्रजागमन *राग गौरी*

नटवर-बेष धरे ब्रज आवत ।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, कुटिल अलक मुख पर छबि पावत ॥
भ्रकुटी बिकट नैन अति चंचल इहिँ छबि पर उपमा इक धावत ।
धनुष देखि खंजन बिबि डरपत, उडि न सकत उड़िबै अकुलावत ॥
अधर अनूप मुरलि-सुर पूरत, गौरी राग अलापि बजावत ।
सुरभी-बृंद गोप-बालक-संग, गावत अति आनंद बढ़ावत ॥
कनक-मेखला कटि पीतांबर, निर्तत मंद-मंद सुर गावत ।
सूर स्याम-प्रति-अंग-माधुरी, निरखत ब्रज-जन कैँ मन भावत ॥
॥१३६८॥१६८६॥

राग कल्यान

ब्रज जुवती सब कहतिँ परस्पर, बन तैँ स्याम बने ब्रज आवत ।
सीऐ छबि मैँ कबहुँ न पाई, सखी सखी सौँ प्रगट दिखावत ॥

मोर मुकुट सिर, जलज-माल उर, कटि-तट पीतांबर छवि पावत।
नव जलधर पर इंद्र चाप मनु, दामिनि-छबि, बालक धन धावत ॥
जिहिं जो अंग अवलोकन कीन्हौ, सो तन मन तहँई बिरमावत।
सूरदास-प्रभु मुरली अधर धरे, आवत राग कल्यान बजावत ॥
॥१३६९॥१९८७॥

राग गुन सारंग

मेरे नैन निरखि सचु पावैं।
बलि बलि जउँ मुखारबिंद की बन तैं बनि व्रज आवैं ॥
गुंजा-फल अवतंस, मुकुट मनि, बेनु रसाल बजावैं।
कोटि-किरनि-मनि मंजु प्रकासित, उड़्पति बदन लजावैं ॥
नटवर रूप अनूप छबीले, सबहिनि कैं मन भावैं।
सूरदास-प्रभु चलत मंद गति, बिरहिनि ताप नसावैं ॥
॥१३७०॥१९८८॥

राग गौरी

बलि बलि मोहनि मूरति की, बलि कुंडल बलि नैन बिसाल।
बलि भ्रकुटी, बलि तिलक बिराजत, बलि मुरली बलि सब्द रसाल ॥
बलि कुंतल, बलि पाग लटपटी, बलि कपोल, बलि उर बनमाल।
बलि मुसुकानि महामुनि मोहति, बलि उपरैना-गिरधर लाल ॥
बलि भुज सखा-अंस पर मेले, निरखत मगन भईं व्रज-बाल।
बलि दरसन ब्रह्मादिक दुरलभ, सूरदास बलि चरन गुपाल ॥
॥१३७१॥१९८९॥

राग जैतश्री

एरे सुंदर साँवरे, तैं चित लियौ चुराइ।
संग सखा संध्या समय, द्वारैं निकस्यौ आइ।
देखि रूप अद्भुत तेरौ, रहे नैन उरझाइ।
पाग ऊपर गोसमावल, रँग रँग रची बनाइ ॥
अति सुंदर सुकनासिका, राजत लोल कपोल।
रत्न जटित कुंडल मानौ, झख सर करत कलोल ॥
कटि तट काछनि राजई, पीतांबर छबि देत।
अमृत बचन मुख भाषई, तन-मन बस करि लेत ॥

भौंह धनुष बर नैन द्वै, मनौ मदन सर साँधि।
जाहि लगै सौ जानई, संग लेत बल बाँहि॥
अंग-अंग पर बलि गई, मुरली नैकु बजाइ।
सुनि पावँ सचु गापिका, सूरदास बलि जाइ॥
॥१३७२॥१६६०॥

राग बिलावल

स्याम कछु सो तन हाँ मुसुकात।
पहिरि पितंबर, चरन पाँवरी, ब्रज बीथिनि मैं जात॥
अदभुत बिद-चँदन, नख-सिख लौं, सौंधे भीने गात।
अलकावली, अधर मुख बीरा, लिये कर कमल फिरात॥
धन्य भाग या ब्रज के सखि री धनि धनि जननी तात।
धनि जे सूरदास प्रभु निरखत, लोचन नाहिँ अघात॥
॥१३७३॥१६६१॥

राग अड़ानौ

स्याम सुंदर आवत बन तैं बने, भावत आजु देखि देखि छबि,
नैन रीझै।
सीस पै मुकुट डोल, स्रवन कुंडल लोल, भ्रकुटि धनुष, नैन
खंज खीझै।
दसत दामिनी ज्योति, उर पर माल मोति, ग्वाल बाल संग,
आवैं रंग भीजे।
सूर-प्रभु राम-स्याम, संतनि के सुखधाम, अंग-अंग प्रति छबि,
देखि जीजै॥१३७४॥१६६२॥

राग कान्हरौ

राजत री बनमाल गरे हरि आवत बन तैं।
फूलनि सौं लाल पाग, लटकि रही बाम भाग, सो छबि लखि
सानुराग, टरति न मन तैं॥
मोर मुकुट सिर श्रीखंड, गोरज मुख मंजु मंड, नटवर बर बेष
धरैं आवत छबि तैं।
सूरदास-प्रभु की छबि ब्रज-ललना निरखि थकित तन मन
न्यौछावर करैं, आनँद बहु तैं॥१३७५॥१६६३॥

राग गौरी

ब्रज कौं देखि सखी हरि आवत।
कटि तट सुभग पीतपट राजत, अद्भुत बेष बनावत ॥
कुंडल तिलक चिकुर रज मंडित, मुरली मधुर बजावत।
हँसि मुसुकानि, बंक अवलोकनि, मन्मथ कोटि लजावत ॥
पीरी धौरी धूमरि गौरी, लै-लै नाउँ बुलावत।
कबहूँ गान करत अपनी रुचि, करतल तार बजावत ॥
कुसुमित दाम मधुप-कुल गुंजत, संग सखा मिलि गावत।
कबहुँक नृत्य करत कौतूहल, सप्तक भेद दिखावत।
मंद-मंद गति चलत मनोहर, जुवतिनि रस उपजावत।
आनँद कंद जसोदा-नंदन, सूरदास मन भावत ॥
॥१३७६॥१९९४॥

राग गौरी

कमल-मुख सोभित सुंदर बेनु।
मोहन राग बजावत गावत, आवत चारे धेनु ॥
कुंचित केस सुदेस बदन पर, जनु साज्यौ अलि सैन।
लहि न सकत मुरली मधु पीवत, चाहत अपनौ ऐन ॥
भ्रकुटि मनौ कर चाप आपु लै, भयौ सहायक मैन ॥
सूरदास-प्रभु-अधर-सुधा-लगि, उपज्यौ कठिन कुचैन ॥
॥१३७७॥१९९५॥

राग केदारौ

नैननि निरखि हरि कौ रूप।
चित्त दै मुख चितै माई, कमल ऐन अनूप ॥
कुटिल केस सुदेस अलिगन, नैन सरद-सरोज।
मकर-कुंडल-किरनि की छबि, दुरत फिरत मनोज ॥
अरुन अधर, कपोल, नासा सुभग, ईषद हास।
दसन दामिनि, लजत नव ससि, भ्रकुटि मदन-बिलास ॥
अंग अंग अनंग जीते, रुचिर उर बनमाल।
सूर सोभा हृदय पूरन, देत सुख गोपाल ॥
॥१३७८॥१९९६॥

राग केदारौ

हरि कौ बदन रूप-निधान।
दसन दाड़िम-बीज राजत, कमल-कोष समान॥
नैन पंकज रुचिर द्वै दल, चलन भौंहनि बान।
मध्य स्याम सुभाग मानो, अली बैठ्यौ आन॥
मुकुट कुंडल-किरनि करननि, किये किरनि की हान।
नासिका, मृग-तिलक ताकत, चिबुक चित्त भुलान॥
सूर के प्रभु निगम बानी, कौन भाँति बखान॥
॥१३७९॥१९९७॥

राग नट

माधौ जु के बदन की सोभा।
कुटिल कुंतल कमल प्रति, मनु मधुप रस-लोभा॥
भ्रकुटि इमि नव कंज पर जनु, सरत् चंचल मीन।
मकर-कुंडल-छबि किरनि-रबि, परसि बिगसित कीन॥
सुरभि-रेनु पराग-रंजित, मुरलि-धुनि, अलि-गुंज।
निरखि सुभग सरोज मुदित, मराल-सम सिसु-पुंज॥
दसन दामिनि बीच मिलि, मनु जलद मध्य प्रकास।
निगम बानी नेति क्यौं कहि सकै सूरजदास॥
॥१३८०॥१९९८॥

राग नट

देखि री देखि मोहन-ओर।
स्याम-सुभग-सरोज-आनन, चारु, चित के चोर॥
नील तनु मनु जलद की छबि, मुरलि-सुर घन-घोर।
दसन दामिनि लसति बसननि, चितवनी झकझोर॥
स्रवन कुंडल गंड-मंडल, उदित ज्यौं रबि भोर।
बरहि-मुकुट बिसाल माला, इंद्र-धनु-छबि-थोर॥
धातु-चित्रित बेष-नटवर, मुदित नवल किसोर।
सूर स्याम सुभाइ आतुर, चितै लोचन-कोर॥
॥१३८१॥१९९९॥

राग कल्यान

माधौ जू के तन की सोभा, कहत नहीं बनि आव।
अचवत सादर दोउ लोचन-पुट, मन नाहीं तृपितावै॥

सघन मेघ अति स्याम सुभग बपु, तड़ित बसन, बन माल।
सिर-सिषंड, बन-धातु बिराजत सुमन सुरंग प्रबाल॥
कछुक कुटिल कमनीय सघन अति गोरज-मंडित केस।
अंबुज रुचि पराग पर मानौ, राजत मधुप सुदेस॥
कुंडल लोल कपोल किरनि-गन, नैन कमल-दल, मीन।
अधर मधुर मुसुकानि मनोहर, करत मदन-मन हीन॥
प्रति प्रति अंग अनंग-कोटि-छबि, सुनि सखि परम-प्रबीन।
सूर दृष्टि जहँ जहाँ परति, तहँ तहीँ रहति ह्वै लीन॥
॥१३८२॥२०००॥

राग हमीर

चितवनि, मैँ कि चंद्रिका मैँ किधौँ, मुरली माँझ ठगौरी।
देखत सुनत मोहैँ जिहिँ, सुर, नर, मुनि मृग और खगौरी॥
जब तैँ दृष्टि परे मन मोहन, गृह मेरौ मन न लगौरी।
सूर स्याग-बिनु छिनु न रहौँ मैँ, मन उन हाथ पगौरी॥
॥१३८३॥२००१॥

राग कल्यान

लाल की रूप माधुरी, निरखि नैँकु सखी री।
मनसिज-मनहरनि हाँसि, साँवरौ सुकुमार रासि, नख सिख अँग अंग निरखि, सोभा-सीव नखी री॥
रँग मँगि सिर सुरँग पाग, लटकि रही बाम भाग, चंपकली कुटिल अलक, बीच-बीच रखी री।
आयत दृग अरुन लोल, कुंडल मंडित कपोल, अधर दसन दीपति-छबि क्यौँहुँ न जाति लखी री।
अभपद भुजदंड मूल, पीन अंस सानुकूल, कनक-मेखला दुकूल, दामिनी धरखी री।
उर पर मंदार-हार, मुक्ता-लरबर सुढार, मत्त-द्विरद-गति तियनि की देह दसा करषी री।
मुकुलित बय नव किसोर, बचन-रचन चितहिँ चोर, माधुरी प्रकास मंजरी अनूप चखी री।
सूर स्याम अति सुजान, गावय कल्यान तान, सप्त सुरनि कल तिहिँ पर मुरलिका बरषी री॥१३८४॥२००२॥

राग गौरी

आवत बन तैँ साँझ, देख्यौ मैँ गाइनि माँझ, काहू कौ ढोटा री जाकैँ
सीस मोर-पखियाँ।
अतिसी कुसुम तन, दीरघ चंचल नैन, मानौ रिस भरि के लरतिँ जुग
झखियाँ ॥
केसरि की खौरि किये, गुंजा बनमाल हियैँ, उपमा न कहि आवै जेती
नखियाँ।
राजति पीत पिछौरी, मुरली बजावै गौरी, धुनि सुनि भईँ बौरी, रहीँ
तकि अँखियाँ ॥
चल्यौ न परत पग, गिरि परी सूधैँ मग, भामिनी भवन ल्याई कर गहे
कँखियाँ।
सूरदास प्रभु चित चोरि लियौ मेरैँ जान, और न उपाउ दाँउ सुनौ
मेरी सखियाँ ॥१३८५॥२००३॥

वृषभासुर-बध *राग देवगंधार*

इक दिन हरि हलधर सँग ग्वारन। प्रात चले गोधन बन चारन ॥
कोउ गावत, कोउ बेनु बजावत। कोउ सिंगी, कौ नाद सुनावत ॥
खेलत हँसत गए बन महियाँ। चरन लगीँ जित तित सब गइयाँ ॥
हरि ग्वालनि मिलि खेलन लागे। सूर अमंगल जग के भागे ॥
॥१३८६॥२००४॥

राग सोरठ

इहिँ अंतर बृषभासुर आयौ।
देखे नंद-सुवन बालक सँग, यहै घात इहिँ पायौ ॥
गयौ समाइ धेनु-पति ह्वै कै, मन मैँ दाउँ बिचारे।
हरि तबहीँ लखि लियौ दुष्ट कौँ, डोलत धेनु बिडारै ॥
गइयाँ बिझुकि चलीँ जित तित कौँ, सखा जहाँ तहँ घेरैँ।
वृषभ शृंग सौँ धरनि उकासत, बल-मोहन-तन हेरै ॥
आवत चल्यौ स्याम कैँ सन्मुख, निदरि आपु अगुसारी।
कूदि पर्‌यौ हरि ऊपर आयौ, कियौ जुद्ध अति भारी ॥
धाइ परे सब सखा हाँक दै, वृषभ स्याम कौँ मार्‌यौ।
पाउँ पकरि भुज सौँ गहि फेर्‌यौ, भूतल माहिँ पछार्‌यौ ॥

परयौ असुर पर्बत समान ह्वै, चकित भए सब ग्वाल।
बृषभ जानि कै हम सब धाए, यह तो कोउ बिकराल॥
देखि चरित्र जसोमति सुत के, मन मैं करत बिचार।
सूरदास-प्रभु असुर-निकंदन, संतनि-प्रान-अधार॥
॥१३८७॥२००५॥

राग गौरी

धन्य कान्ह धनि धनि ब्रज आए।
आजु सबनि धरि कै यह खातौ, धनि तुम हमहिँ बचाए॥
यह ऐसौ तुम अतिहिँ तनक से, कैसैँ भुजनि फिरायौ।
पलकहिँ माँझ सबनि कैँ देखत, मारयौ, धरनि गिरायौ॥
अब लौँ हम तुमकौँ नहिँ जान्यौ, तुमहिँ जगत-प्रतिपालक।
सूरदास-प्रभु असुर-निकंदन, ब्रज-जन के दुख-घालक॥
॥१३८८॥२००६॥

राग कल्यान

आवत मोहन धेनु चराए।
मोर-मुकुट सिर, उर बनमाला, हाथ लकुट, गो-रज लपटाए॥
कटि कछनी किंकिनि-धुनि बाजति, चरन चलत नूपुर रव लाए।
ग्वाल-मंडली-मध्य स्यामघन, पीत बसन दामिनिहिँ लजाए॥
गोप सखा आवत गुन गावत, मध्य स्याम हलधर छबि छाए।
सूरदास-प्रभु असुर सँहारे, ब्रज आवत मन हरष बढ़ाए॥
॥१३८९॥२००७॥

राग कल्यान

ये लखि आवत मोहनलाल।
स्याम सुभग घन, तड़ित बसन, बग-पंगति, मुक्ता-माल॥
गो-पद-रज मुख पर छबि लागति, कुंडल नैन बिसाल।
बल मोहन बन तैँ बने आवत लीन्हे गैया जाल॥
ग्वाल मंडली मध्य बिराजत, बाजत बेनु रसाल।
सूर स्याम बन तैँ ब्रज आए, जननि लिये अँक माल॥
॥१३९०॥२००८॥

राग कान्हरौ

तेरौ माई गोपाल रन-सूरौ।
जहँ-जहँ भिरत प्रचारि, पैज करि, तहीँ परत है पूरौ ॥
वृषभ-रूप दानव इक आयौ, सो छिन माहिँ सँहारयौ।
पाउँ पकरि भुज सौँ गहि वाकौ, भूतल माहिँ पछारयौ॥
कहत ग्वाल जसुमति धनि मैया, बड़ौ पूत तैँ जायौ।
यह कोउ आहि पुरुष अवतारी, भाग हमारैँ आयौ ॥
चरन-कमल रज बंदत रहियै, अनुदित सेवा कीजै।
बारंबार सूर के प्रभु की, हरषि बलैया लीजै ॥
॥१३६१॥२००६॥

राग सोरठ

जसुमति बार-बार पछतानी।
सुनी करतूति वृषासुर की, जब ग्वाल कही मुख बानी ॥
गैयनि भीतर आइ समान्यौ, कान्हहिँ मारन ताक्यौ।
मैँ नहिँ काहू को कछु घाल्यौ, पुन्यनि करवर नाक्यौ ॥
सुनि जसुमति मैया, कत खीझति,हरि के भाएँ ख्याल।
परबत तुल्य देह धारी कौँ पल मैँ कियौ बिहाल ॥
तुम्हरी रच्छा कौँ यह नहीँ, यह व्रज कौ रखवार।
सूरदास मन मोह्यौ सब कौ, मोहन नंद-कुमार ॥
॥१३६२॥२०१०॥

राग सारंग

हमहिँ डर कौन कौ रे भैया।
डोलत फिरत सकल वृंदावन, जाके मीत कन्हैया ॥
जब-जब गाढ़ परति है हमकौं, तब करि लेत सहैया।
चिरजीवहु जसुमति सुत तेरे, हरि-हलधर दोउ भैया ॥
इनतैँ बड़ौ और नहिँ कोऊ, येइ सब देत बड़ैया।
सूर स्याम सन्मुख जे आए, ते सब स्वर्ग चलैया ॥
१३६३॥२०११॥

राग कान्हरौ

हँसि जननी सौँ बात कहत हरि, देख्यौ मैँ वृंदावन नाके।
अति रमनीक भूमि द्रुम बेली, कुंज सघन निरखत सुख जी के ॥

जमुना कैं तट धेनु चराई, कहत बात माता-मन नीके।
भूख मिटी बन-फल के खाएँ, मिटी प्यास जमुना-जल पीके ॥
सुनति जसोदा सुत की बातैं, अति आनंद मगन तब ही के।
सूरदास-प्रभु बिस्व-भरन ये, चोर भए ब्रज तनक दही के ॥
॥१३६४॥२०१२॥

राग कान्हरौ

गोविंद गोकुल जीवन मेरे।
जाहि लगाई रही तन-मन धन, दुख भूलत सुख हेरै।
जाके गर्व बद्यौ नहिं सुरपति, रह्यो सात दिन घेरे।
ब्रज-हित नाथ गोबधन धारयौ, सुभग भुजनि नख नेरैं ॥
जाकौ जस रिषि गर्ग बखान्यौ, कहत निगम नित टेरे।
सोइ अब सूर सहित संकर्षन, पाए जतन घनेरे ॥
॥१३६५॥२०१३॥

केशी वध *राग मारू*

असुर-पति अतिहीं गर्ब धरयौ।
सभा-माँझ बैठ्यौ गर्जत है, बोलत रोष भरयौ ॥
महा-महा जे सुभट दैत्य-कुल, बैठे सब उमराव।
तिहूँ भुवन भरि गम है मेरौ, मो सन्मुख को आव ॥
मो समान सेवक नहिं मेरैं, जाहि कहौं कछु दाउ।
काहि कहौं, को ऐसौ लायक, तातैं मोहिं पछिताउ ॥
नृपतिराइ आयसु दै मोकौं, ऐसौ कौन बिचार।
तुम अपनैं चित सोचत जाकौं, असुरनि के सरदार ॥
ज्यौं करि क्रोध जाहि तन ताकौं, ताकौ है संहार।
मथुरा-पति यह सुनि हरषित भयौ, मनहिं धरयो आभार ॥
स्वेत छत्र फहरात सीस पर, धुज पताक, बहु बान।
ऐसौ को जो मोहिं न जानत, तिहूँ भुवन मो आन ॥
असुर बंस जे महाबली सब, कहौं काहि ह्याँ जान।
तनक-तनक से महर-ढुटौना, करि आवै बिनु प्रान ॥
यह कहि कंस चितै केसी-तन, कह्यौ जाइ करि काज।
तृनावर्त, सकटाऽरु पूतना, उनके कृति सुनि लाज ॥

तो तै कछु ह्वै है मैं जानत, धरि आनै ज्यौं बाज।
कल बल छल करि मारि तुरत हीं, लै आवहु अब आज॥
अति गर्बित ह्वै कह्यौ असुर भट, कितिक बात यह आहि।
कै मारौं, जीवत धरि ल्यावौं, एक पलट मैं ताहि॥
आज्ञा पाइ असुर तब धायौ, मन मैं यह अवगाहि।
देखौं जाइ कौन यह ऐसौ, कंस डरत है जाहि॥
यह कहि कै आयौ ब्रज भीतर, करत बड़ौ उतपात।
नर-नारी सब देखत डरपे, भयौ बड़ौ संताप॥
हरि ताकौ दै सैन बुलायौ, मो पै काहे न आवत।
तब वह दोऊ हाथ उठाएँ, आयौ हरि दिसि धावत॥
हरि दोउ हाथ पकरि कै ताकौं, दियौ दूरि फटकारि।
गिर्‍यौ धरनि पर अति बिह्वल ह्वै, रही न देह सँभारि॥
बहुरौ उठ्यो समारि असुर वह, धायौ निज मुख बाइ।
देखि भयानक रूप असुर कौ, सुर नर गए डराइ॥
दाउँ-घात सब भाँति करत है, तब हरि बुद्धि उपाइ।
एक हाथ मुख-भीतर नायौ, पकरि केस घिसियाइ॥
चहुँघा फेरि, असुर गहि पटक्यौ, सब्द उठ्यौ आघात।
चौंकि पर्‍यौ कंसासुर सुनिकै, भीतर चल्यौ परात॥
यह कोउ भलौ नहीं ब्रज जनम्यौ, यातैं बहुत डरात।
जान्यौ कंस असुर गहि पटक्यौ, नंद महर कैं तात॥
पुहुप बृष्टि देवनि मिलि कीन्ही, आनँद मोद बढ़ाए।
ब्रज-जन, नंद-जसोदा हरषे, सूर सुमंगल गाए॥
॥१३६६॥२०१४॥

ब्योमासुर-बध — *रास बिलावल*

हरि ग्वालनि मिलि खेलन लागे, वन मैं आँखि मिचाई।
सिसु ह्वै ब्योमासुर तहँ आयौ, काहूँ जानि न पाई॥
ग्वाल-रूप धरि खेलन लाग्यौ, ग्वालनि कौं लै जाई।
धरै दुराइ कंदरा-भीतर, जानी बात कन्हाई॥
गुदी चाँपिकै ताहि निपात्यौ, धरनि पर्‍यौ मुरछाई।
सूर ग्वाल मिलि हरि गृह आए, दिव दुंदुभी बजाई॥
॥१३६७॥२०१५॥

राग कान्हरौ

कहति जसोदा बात सयानी।
भावी नहीँ मिटै काहू की, करता की गति जाति न जानी ॥
जन्म भयौ जब तैं ब्रज हरि कौ, कहा कियौ करि करि रखवानी।
कहाँ कहाँ तैं स्याम न उबर्‌यौ, किहिँ राख्यौ तिहि औसर आनी ॥
केसी सकटऽरु बृषभ पूतना, तृनावर्त की चलति कहानी।
को मेरैं पछिताइ मरै अब, अनजानत सब करी अयानी ॥
लै बलाइ छाती सौँ लाए, स्याम राम हरषित नँद-रानी।
भूखे गए प्रात अधखातहिँ, तातैं आजु बहुत पछितानी ॥
रोहिनि लियौ न्हवाई दुहुँनि कौँ, भोजन कौ माता अकुलानी।
ल्याई परसि दुहुँनि की थारी, जेँवत बल मोहन रुचि मानी ॥
माँगि लियौ सीतल जल अँचयौ, मुख धोयौँ चुरुवनि लै पानी।
बीरा खात दोउ बीरा जब, जननी मुख देखि सिहानी ॥
रत्न-जटित पलिका पर पौढ़े, बरनि न जाइ कृष्न-रजधानी।
सूरदास कछु जूठनि माँगत, पाऊँ कहि दीजै बानी ॥
॥१३९८॥२०१६॥

पनघट-लीला *राग बिलावल*

हरि त्रिलोक-पति पूरनकामी। घट-घट व्यापक अंतरजामी ॥
ब्रज-जुवतिनि को हेत बिचार्‌यौ। जमुना कैं तट खेल पसार्‌यौ ॥
काहू की गगरी ढरकावैँ। काहू की इँडुरी फटकावैँ ॥
काहू की गागरि धरि फोरैं। काहू के चित चितवत चोरैं ॥
या बिधि सबके मनहिँ मनावैं। सूर स्याम-गति कोउ न पावैँ ॥
॥१३९९॥२०१७॥

राग अड़ाना

हौँ गई जमुन-जल साँवरे सौँ मोही।
केसरि की खौरि, कुसुम की दाम अभिराम, कनक-दुलरि कंठ,
पीतांबर खोही ॥
नान्ही नान्ही बुँदनि मैँ, ठाढ़ौ गावै मीठी तान, मैँ तौ लालन की
छबि, नैँ कहू न जोही।
सूर स्याम मुरि मुसुक्यानि, छबि अँखियानि रही हैँ न जान्यौ री
कहाँ ही और कोही ॥१४००॥२०१८॥

राग अड़ाना

चटकीलौ पट लपटानौ कटि पर, बंसीवट जमुना कैं तट
राजत नागर नट ।
मुकुट की लटक, मटक भृकुटी की लोल, कुंडल चटक आछो,
सुबरन की लुकट ॥
उर सोहै बनमाल, कर टेके द्रुम डाल ठाढ़े नंदलाल सोभा भई
घट घट ।
सूरदास-प्रभु की बानक देखैं गोपी ग्वाल निंपट निकट, पट आवै
सौंधे की लपट ॥१४०१॥२०१६॥

राग सुघरई

मृदु मुरली की तान सुनावौ, इहि बिधि कान्ह रिझावै ।
नटवर-बेष बनाए ठाढ़ौ, बन-मृग निकट बुलावै ॥
ऐसौ को जो जाइ जमुन तैं, जल भरि लै घर आवै ।
मोर-मुकुट- कुंडल, बनमाला, पीतांबर फहरावै ॥
एक अंग सोभा अवलोकत, लोचन जल भरि आवै ।
सूर स्याम के अंग-अंग-प्रति, कोटि काम-छबि छावै ॥
॥१४०२॥२०२०॥

राग पूर्वी

पनघट रोके रहत कन्हाई ।
जमुना-जल कोउ भरन न पावै, देखत हीं फिर जाई ॥
तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई, आपुन रहे छपाई ।
तट ठाढ़े जे सखा संग के, तिनकौं लियौ बुलाई ॥
बैठाख्यौ ग्वालिनि कौं द्रुम-तर, आपुन फिरि-फिरि देखत ।
बड़ी बार भई कोउ न आई, सूर स्याम मन लेखत ॥
॥१४०३॥२०२१॥

राग देवगंधार

जुवति इक आवति देखी स्याम ।
द्रुम कैं ओट रहे हरि आपुन, जमुना-तट गई बाम ॥
जल हलोरि गागरि भरि नागरि, जबहीं सीस उठायौ ।
घर कौं चली जाइ ता पाछैं, सिर तैं घट ढरकायौ ॥

चतुर ग्वालि कर गह्यौ स्याम कौ कनक लकुटिया पाई।
औरनि सौं करि रहे अचगरी, मोसौं लगत कन्हाई।
गागरि लै हँसि देत ग्वारि-कर, रीतौ घट नहिं लैहौं।
सूर स्याम ह्याँ आनि देहु भरि, तबहिं लकुट कर दैहौं॥
॥१४०४॥२०२२॥

राग कल्यान

घट मेरौ जबहीं भरि दैहौं, लकुटी तबहीं दैहौं।
कहा भयौ जौ नंद बड़े, वृषभानु-आन न डरैहौं॥
एक गावँ इक ठावँ बास, तुम कै हौ क्यौं मैं सैहौं।
सूर स्याम मैं तुम न डरैहौं, ज्वाब स्वाल कौ दैहौं॥
॥१४०५॥२०२३॥

राग कल्यान

घट भरि देहु लकुट तब दैहौं।
हौं हूँ बड़े महर की बेटी, तुम सौं नहीं डरैहौं॥
मेरी कनक-लकुटिया दै री, मैं भरि दैहौं नीर।
बिसरि गई सुधि ता दिन की तोहिं, हरे सबनि के चीर॥
यह बानी सुनि ग्वारि बिबस भई तनकी सुधि बिसराई।
सूर लकुट कर गिरत न जानी, स्याम ठगौरी लाई॥
॥१४०६॥२०२४॥

राग हमीर

घट भरि दियौ स्याम उठाइ।
नैंकु तन की सुधि न ताकौं, चली ब्रज-समुहाइ॥
स्याम सुंदर नैन-भीतर, रहे आनि समाइ।
जहाँ-जहँ भरि दृष्टि देखै, तहाँ-तहाँ कन्हाइ॥
उतहिं तैं इक सखी आई, कहति कहा भुलाइ।
सूर अबहीं हँसत आई, चली कहा गवाँइ॥
॥१४०७॥२०२५॥

राग टोड़ी

री हौं स्याम मोहिनी घाली।
अबहिं गई जल भरन अकेली, हरि-चितवनि उर साली॥

कहा कहौं कछु कहत न आवै, लगी मरम की भाली।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, बिबस भइ हौं आली॥
॥१४०८॥२०२६॥

राग धनाश्री

सुनत बात यह सखि अतुरानी।
ताहि-बाहँ गहि घर पहुँचाई, आपु चली जमुना कैं पानी॥
देखे आइ वहाँ हरि नाहीं, चितवति जहाँ-तहाँ बिततानी।
जल भरि ठठुकति चली घरहिं तन, बार-बार हरि कौं पछितानी॥
ग्वालिनि बिकल देखि हरि प्रगटे, हरष भयौ तन-तपति बुझानी।
सूर स्याम अंकम भरि लीन्ही, गोपी-अंतरगत की जानी॥
॥१४०९॥२०२७॥

राम आसावरी

मिलि हरि सुख दियौ तिहिं बाल।
तपति मिटि गई प्रेम छाकी, भई रस बेहाल॥
मन नहीं डग धरति नागरि, भवन गई भुलाइ।
जल भरन व्रजनारि आवति, देखि ताहि बुलाइ॥
जाति कित ह्वै डगर छाँड़े, कह्यौ इत कौं आइ।
सूर प्रभु कैं रंग राँची, चितै रही चितलाइ॥
॥१४१०॥२०२८॥

राग धनाश्री

काहू तोहिं ठगौरी लाई।
बूझति सखी सुनति नहिं नैंकुहुँ, तुहीं किधौं ठगमूरी खाई॥
चौंकी परी सपनैं जनु जागी, तब बानी कहि सखिनि सुनाई।
स्याम बरन इक मिल्यौ ढुटौना, तिहिं मौकौं मोहिनी लगाई॥
मैं जल भरे इतहिं कौं आवति, आनि अचानक अंकम लाई।
सूर ग्वारि सखियनि के आगैं, बात कहति सब लाज गँवाई॥
॥१४११॥२०२९॥

राग टोड़ी

आवति ही जमुना भरि पानी।
स्याम बरन काहू कौ ढोटा, निरखि बदन घर-गैल भुलानी॥

मैँ उन तन उन मोतन चितयौ, तबहीँ तैँ उन हाथ बिकानी।
उर धकधकी, टकटकी लागी, तन व्याकुल, मुख फुरति न बानी ॥
कह्यौ मोहन मोहिनि तू को है, मोहि नाहीँ तोसौँ पहिचानी।
सूरदास-प्रभु मोहन देखत, जनु बारिध जल-बूँद हिरानी ॥
॥१४१२॥२०३०॥

राग धनाश्री

नैँकु न मन तैँ टरत कन्हाई।
इक ऐसैँहि छकि रही स्याम-रस, तापर इहिँ यह बात सुनाई ॥
बाकैँ सावधान करि पठयौ, चली आपु जल कौँ अतुराई।
मोर मुकुट पीतांबर काछे, देख्यौ कुँवर नंद कौ जाई ॥
कुंडल झलकत ललित कपोलनि, सुंदर नैन बिसाल सुहाई।
कह्यौ सूर-प्रभु ये ढग सीखे, ठगत फिरत हौ नारि पराई ॥
॥१४१३॥२०३१॥

राग धनाश्री

"कहा ठग्यौ, तुम्हरौ ठगि लीन्हौ ?"
क्यौँ नहिँ ठग्यौ और कह ठगिहौ, औरहि के ठग चीन्हौ" ॥
"कहौ नाम धरि कहा ठगायौ, सुनि राखैँ यह बात।
ठग के लच्छन माहिँ बतावहु, कैसे ठग के घात ?"
"ठग के लच्छन हमसौँ सुनियै, मृदु मुसुकनि चित चोरत।
नैन-सैन दै चलत सूर-प्रभु, तन त्रिभंग करि मोरत।"
॥१४१४॥२०३२॥

राग सूही

अतिहिँ करत तुम स्याम अचगरी।
काहू की छीनत हौ इँडुरी, काहू की फोरत हौ गगरी ॥
भरन देहु जमुना-जल हमकौँ, दूरि करौ ये बातैँ लँगरी।
पैँड़े चलन न पावै कोऊ, रोकि रहत लरिकनि लै डगरी ॥
घाट-बाट सब देखति आवति, जुवती डरनि मरति हैँ सगरी।
सूर स्याम तेहिँ गारी दीजै, जो कोउ आवै तुम्हरी बगरी ॥
॥१४१५॥२०३३॥

राग रामकली

नीकैँ देहु न मेरी गिँडुरी ।
लै जैहैँ धरि जसुमति आगैँ, आवहु री सब मिलि इक झुँडरी ।।
काहूँ नहीँ डरात कन्हाई, बाट-घाट तुम करत अचगरी ।
जमुना-दह गिँडुरी फटकारी, फारी सब मटुकी अरु गगरी ।।
भली करी यह कुँवर कन्हाई, आजु मेटिहैँ तुम्हरी लगरी ।
चलीँ सूर जसुमति के आगैँ, उरहन लै ब्रज-तरुनी सगरी ।।
।।१४१६।।२०३४।।

राग टोड़ी

आनि देहु गेँडुरी पराई ।
तेरौ कोऊ कहा करैगौ, लरिहैँ हम सौँ भगिनी माई ।।
मेरे सँग की और गईँ लै जल भरि, धरि, घर तैँ फिरि आईँ ।
सूर स्याम गँडुरी दीजियै, न तु जसुमति सौँ कैहौँ जाई ।।
।।१४१७।।२०३५।।

राग धनाश्री

आपुन चढ़े कदम पर धाई ।
बदन सकोरि भौँह मोरत है, हाँक देत करि नंद-दुहाई ।।
जाइ कहौ मैया के आगैँ, लेहु सबै मिलि मोहिँ बँधाई ।
मोकौँ जुरि मारन जब आईँ, तब दीन्ही गँडुरी फटकाई ।।
ऐसैँ करि मोकौँ तुम पायौ, मनु इनकी मैँ करौँ चेराई ।
सूर स्याम वे दिन बिसराए, जब बाँधे तुम ऊखल लाई ।।
।।१४१८।।२०३६।।

राग आसावरी

इहँइ रहौ तौ बदौँ कन्हाई ।
आपु गईँ जसुमतिहिँ सुनावन, दै गईँ स्यामहिँ नंद-दुहाई ।।
महरि मथति दधि सदन आपनैँ, इहिँ अंतर जुवती सब आईँ ।
चितै रही जुवतिनि कौँ आवत, कह आवति हैँ भीर लगाई ! ।।
मैँ जानति इनकौँ हरि खिझयौ, तातैँ सब उरहन लै धाईँ ।
सूरदास रिस भरी ग्वालिनी, ऐसौ ढीठ कियौ सुत माई ।।
।।१४१९।।२०३७।।

राग बिलावल

सुनहु महरि तेरौ लाड़िलौ, अति करत अचगरी।
जमुन भरन जल हम गईं, तहँ रोकत डगरी॥
सिरतैं नीर ढराइ दै, फोरी सब गगरी।
गेंडुरि दई फटकारि कै, हरि करत जु लँगरी॥
नित प्रति ऐसे ढँग करैं, हमसौं कहै धगरी।
अब बस-बास बनै नहीं, इहिं तुव ब्रज-नगरी॥
आपु गयौ चढ़ि कदम पर, चितवत रहीं सगरी।
सूर स्याम ऐसैंहि सदा, हम सौं करै झगरी॥
॥१४२०॥२०३८॥

राग रामकली

सुत कौं बरजि राखहु महरि।
डगर चलन न देत काहुँहिं, फोरि डारत डहरि॥
स्याम के गुन कछु न जानति, जाति हम सौं गहरि।
इहै लालच गाइ दस लिये, बसति हैं ब्रज-ठहरि॥
जमुन-तट हरि देखि ठाढ़े, डरनि आवैं बहरि।
सूर स्यामहिं नैंकु बरजौ करत हैं अति चहरि॥
॥१४२१॥२०३९॥

राग रामकली

तुम सौं कहत सकुचतिं महरि।
स्याम के गुन कछु न जानति, जाति हम सौं गहरि॥
नैकहूँ नहिं सुनति स्रवनति, करत हैं हरि चहरि।
जल भरन कोउ नाहिं पावति, रोकि राखत डहरि॥
अजगरी अति करत मोहन, फटकि गेंडुरि दहरि।
सूर प्रभु कौं कहा सिखयौ, रिसनि जुवती झहरि॥
॥१४२२॥२०४०॥

राग धनाश्री

कहा करौं मोसौं कहौ सबहीं।
जौ पाऊँ तौ तुमहि दिखाऊँ, हा हा करिहै अबहीं॥

तुमहूँ गुन जानति हौ हरि के ऊखल बाँधे जबहीं।
सँटिया लै मारन जब लागी, तब बरज्यौ मोहिं सबहीं ॥
लरिकाई तैं करत अचगरी, मैं जाने गुन तबहीं।
सूर हाल कैसे करि हौं धरि, आवै तौ हरि अबहीं॥
॥१४२३॥२०४१॥

राग सारंग

मैं जानति दौं ढीठ कन्हाई।
आवन तौ घर देहु स्याम कौं, कैसी करौं सजाई ॥
मोसौं करत ढिठाई मोहन, मैं वाकी हौं माई।
और न काहू कौं वह मानै, कछु सकुचत बल भाई॥
अब जौ जाउँ कहा तिहिं पाऊँ, कासौं देइ धराई।
सूर स्याम दिन दिन लंगर भयौ, दूरि करौं लँगराई॥
॥१४२४॥२०४२॥

राग सूही

जुवति बोधि सब घरहिं पठाई।
यह अपराध मोहिं बकसौ री, यहै कहति हौं मेरी माई॥
इत तैं चलीं घरनि सब गोपी, उत तैं आवत कुँवर कन्हाई।
बीचहिं भेट भई जुवतिनि हरि, नैननि जोरत गईं लजाई॥
जाहु कान्ह महतारी टेरति, बहुत बड़ाई करि हम आईं।
सूर स्याम मुख निरखि कह्यौ हँसि, मैं कैहौं जननी समुझाई॥
॥१४२५॥२०४३॥

राग नट

सकुचत गए घर कौं स्याम।
द्वारेहीं तैं निरखि देख्यौ, जननि लागी काम॥
यहै बानी कहति मुख तैं, कहाँ गयौ कन्हाइ।
आपु ठाढ़े जननि-पाछैं, सुनत हैं चित लाइ॥
जल भरन जुवती न पावैं, घाट रोकत जाइ।
सूर सब की फोरि गागरि, स्याम जाइ पराइ॥
॥१४२६॥२०४४॥

राग नट नारायन

जसुमति यह कहि कै रिस पावति ।
रोहिनि करति रसोई भीतर, कहि-कहि ताहि सुनावति ॥
गारी देत बहू बेटिनि कौँ, वैं धाई ह्याँ आवति ।
हा हा करति सबनि सौँ मैँ हौँ, कैसैँ हु खूँट छुड़ावति ॥
जाति पाँति सौँ कहा अचगरी, यह कहि सुतहिँ विरावति ।
सूर स्याम कौँ सिखवति हारी, मारेहुँ लाज न आवति ॥
॥१४२७॥२०४५॥

राग सारंग

तू मोहीँ कौँ मारन जानति ।
उनके चरित कहा कोउ जानै, उनहिँ कही तू मानति ॥
कदम-तीर तैँ मोहिँ बुलायौ, गढ़ि-गढ़ि बातैँ बानति ।
मटकत गिरी गागरी सिर तैँ, अब ऐसी बुधि ठानति ॥
फिरि चितई तू कहाँ रह्यौ कहि, मैँ नहिँ तोकौँ जानति ।
सूर सुतहिँ देखतही रिस गई, मुख चूमति उर आनति ॥
॥१४२८॥२०४६॥

राग गौरी

झूठहिँ सुतहिँ लगावतिँ खोरि ।
मैँ जानति उनके ढँग नीकैँ, बातैँ मिलवतिँ जोरि ॥
वै सब जोबन-मद की माती, मेरौ तनक कन्हाई ।
आपुन फोरि गागरी सिर तैँ, उरहन लीन्हे आईँ ॥
तू उनकैँ ढिग जात कतहिँ है, वै पापिनि सब नारि ।
सूर स्याम अब कह्यौ मानि तू, हैँ सब ढीठि गँवारि ॥
॥१४२९॥२०४७॥

राग अड़ानौ

मोहन बालगुबिंदा माई, मेरौ कह जानै खोरि ।
उरहन लै जुवती सब आवतिँ, झूठी बतियाँ जोरि ॥
कोऊ कहति गेँडुरी लीन्ही, कोउ कहैँ गागरि फोरी ।
कोऊ चोली हार बतावति, कान्हहुँ तैँ ये भोरी ॥

अब आगैँ जौ उरहन लै कै, तौ पठवौँ मुख मोरि।
सूर कहाँ मेरौ तनक कन्हाई, आपुन जोबन-जोरि॥
॥१४३०॥२०४८॥

राग कान्हरौ

ब्रज-घर-घर यह बात चलावत।
जसुमति कौ सुत करत अचगरी, जमुना जल कोउ भरन न पावत॥
स्याम बरन नटवर बपु काछे, मुरली राग मलार बजावत॥
कुंडल-छबि रबि-किरनहुँ तैँ दुति, मुकुट इंद्र-धनुहूँ तैँ भावत॥
मानत काहु न करत अचगरी, गागरि धरि जल भुइँ ढरकावत॥
सूर स्याम कौँ मात पिता दोउ, ऐसे ढँग आपुनहिँ पढ़ावत॥
॥१४३१॥२०४९॥

राग गौरी

करत अचगरी नंद महर कौ।
सखा लिये जमुना-तट बैठ्यौ, निबह न लोग डगर कौ॥
कोउ खीझौ, कोऊ किन बरजौ, जुवतिनि कैँ मन ध्यान।
मन-बच-कर्म स्याम सुंदर तजि, और न जानतिँ आन॥
यह लीला सब स्याम करत हैँ, ब्रज-जुवतिनि कैँ हेत।
सूर भजै जिहिँ भाव कृष्न कौँ, ताकौँ सोइ फल देत॥
॥१४३२॥२०५०॥

राग गौरी

जमुना-जल कोउ भरन न पावै।
आपुन बैठ्यौ कदम-डार चढ़ि, गारी दै-दै सबनि बुलावै॥
काहू की गगरी गहि फोरै काहूँ सिर तैँ नीर ढरावै।
काहू सौँ करि प्रीति मिलत है, नैन-सैन दै चितहिँ चुरावै॥
बरबस ही अँकवारि भरत धरि, काहू सौँ अपनौ मन लावै।
सूर स्याम अति करत अचगरी, कैसैँहुँ काहू हाथ न आवै॥
॥१४३३॥२०५१॥

राग धनाश्री

ब्रज-ग्वैँड़ैँ कोउ चलन न पावत।
ग्वाल सखा सँग लीन्हे डोलत दै-दै हाँक जहाँ तहँ धावत॥

काहू की इँडुरी फटकारत, काहू की गगरी ढरकावत।
काहू कौँ गारी दै भाजत, काहू कौँ अकम भरि लावत॥
काहू नहिँ मानत ब्रज-भीतर, नंद महर कौ कुँवर कहावत।
सूर स्याम नटवर-बपु काछे, जमुना कैँ तट मुरलि बजावत॥
॥१४३४॥२०५२॥

राग टोड़ी

गोकुल के खोँड़ैँ एक साँवरौ सौ ढोटा माई, आँखिनि कैँ पैँड़ैँ पैठि जीके पैँड़े पर्यौ है।
कल न परत छन गृह भयौ बन-सम, तन-मन-धन-प्रान सरबस हर्यौ है॥
भवन न भावै माई, आँगन न रह्यौ जाइ, करैँ हाय हाय, देखौ जैसे हाल कर्यौ है।
सूरदास-प्रभु नीकैँ गावत मधुर सुर, मानौ मुरली मैँ लै पीयूष-रस भर्यौ है॥१४३५॥२०५३॥

राग नट

राधा सखिनि लई बुलाइ।
चलौ जमुना-जलहिँ जैयै, चलीँ सब सुख पाइ॥
सबनि इक-इक कलस लीन्हौ, तुरत पहुँची जाइ।
तहाँ देख्यौ स्याम सुंदर, कुँवरि मन हरषाइ॥
नंद-नंदन देखि रीझे, चितै रहे चितलाइ।
सूर प्रभु की प्रिया राधा, भरति जल मुसुकाइ॥
॥१४३६॥२०५४॥

राग गूजरी

घरहिँ चली जमुना-जल भरि कै।
सखिनि बीच नागरी बिराजति, भई प्रीति उर हरि कै॥
मंद-मंद गति चलत अधिक छबि, अंचल रह्यौ फहरि कै।
मोहन कौँ मोहिनी लगाउ, संगहिँ चले डगरि कै॥
बेनी की छबि कहत न आवै, रही नितंबनि ढरि कै।
सूर स्याम प्यारी क बस भए, रोम-रोम रस भरि कै॥
॥१४३७॥२०५५॥

राग जैतश्री

नागरि गागरि जल भरि ल्यावै।
सखियनि बीच भर्यौ घट सिर पर, तापर नैन चलावै॥
ढलत ग्रीव, लटकति नक-बेसरि, मंद-मंद गति आवै।
भृकुटी धनुष, कटाच्छ बान, मनु पुनि-पुनि हरिहिं लगावै॥
जाकौं निरखि अनंग अनंगित, ताहि अनंग बढ़ावै।
सूर स्याम प्यारी-छबि निरखत, आपुहिं धन्य कहावै॥
॥१४३८॥२०५६॥

राग जैतश्री

गागरि नागरि लै पनघट तैं, चली घरहिं कौं आवै।
ग्रीवा डोलति, लोचन लोलति, हरि के चितहिं चुरावै॥
ठठकति चलै, मटकि मुख मोरै, बंकट भौंह चलावै।
मनहुँ काम-सेना अँग-सोभा, अंचल धुज फहरावै॥
गति गयंद, कुच कुंभ, किंकिनी मनहुँ घंट झहनावै।
मोतिनि हार जलाजल मानौ, खुभी दंत झलकावै॥
चंदक मनहुँ महाउत मुख पर, अंकुस बेसरि लावै।
रोमावली सूड तिरनी लौं, नाभि-सरोवर आवै॥
पग जेहरि जंजीरनि जकर्यौ, यह उपमा कछु भावै।
घट-जल छलकि कपोलनि कनिका, मानौ मदहिं चुवावै॥
बेनी डोलति दुहूँ नितंबनि, मानहुँ पुच्छ हलावै।
गज-सरदार सूर कौ स्वामी, देखि देखि सुख पावै॥
॥१४३९॥२०५७॥

राग जैतश्री

सखियनि बीच नागरी आवै।
छबि निरखत रीझयौ नँद-नंदन, प्यारी मनहिं रिझावै॥
कबहुँक आगैं, कबहुँक पाछैं, नाना भाव बतावै।
राधा यह अनुमान करै, हरि, मेरे चितहिं चुरावै॥
आगैं जाइ कनक लकुटी लै, पंथ सँवारि बनावै।
निरखत जहाँ छाह प्यारी की, तहँ लै छाँह छुवावै॥
छबि निरखत तन वारत अपनौ नागरि-जियहिं जनावै।
अपने सिर पीतांबर बारत, ऐसैं रुचि उपजावै॥

ओढ़ि उढ़नियाँ चलत दिखावत, इहिँ मिस निकटहिँ आवै ।
सूर स्याम ऐसे भावनि सौँ, राधा-मनहिँ रिझावै ॥
॥१४४०॥२०५८॥

राग सारंग

लग लागन नहिँ पावत स्याम ।
तब इक भाव कियौ कछु ऐसौ, प्यारी-तन उपजायौ काम ॥
मिस करि निकट आइ मुख हेर्‌यौ, पीतांबर डार्‌यौ सिर वारि ।
यह छल करि मन हर्‌यौ कन्हाई, काम-बिबस कीन्ही सुकुमारि ॥
पुलकि अंग, अँगिया दरकानी, उर आनँद अंचल फहरात ।
गागरि ताकि काँकरी मारै, उचटि-उचटि लागति प्रिय-गात ॥
मोहन मन मोहिनी लगाई, सखिनि संग पहुँची घर जाइ ।
सूरदास प्रभु सौँ मन अँटक्यौ, देह-गेह की सुधि बिसराइ ॥
॥१४४१॥२०५९॥

राग नट

ग्वारिनि जमुन चलीँ बहोरि ।
ताहि सब मिलि कहतिँ आवहु, कछुक कहहिँ निहोरि ॥
ज्वाब देति न हमहिँ नागरि, रही आनन मोरि ।
ठगि रही, मन कहा सोचति, काहु लियौ कछु चोरि ॥
भुजा धरि कर कह्यौ चलहि न आवँ अबहीँ खोरि ।
सूर प्रभु के चरित सखियनि, कहति लोचन ढोरि ॥
॥१४४२॥२०६०॥

राग मलार

गैल छाँड़े साँवरौ, क्यौँ करि पनघट जाउँ ।
इहिँ सकुचनि डरपति रहौँ, धरै न कोऊ नाउँ ॥
जित देखौँ तित देखियै, रसिया नंद-कुमार ।
इत उत नैन चुराइ कै, पलकनि करत जुहार ।
लकुट लियै आगैँ चलै, पंथ सँवारत जाइ ।
मोहिँ निहोरौ लाइकै, फिरि चितवै मुसुकाइ ॥
जमुना-जल भरि गागरी, जब सिर धरौँ उठाइ ।
क्यौँ कंचुकि अँचरा उड़ै, हियरा तकि ललचाइ ॥

गागरि मारै काँकरी, लागै मेरैं गात।
गैल माँझ ठाढ़ौ रहै, खूटै आवत जात॥
हौँ सकुचनि बोलौँ नहीँ, लोक-लाज की संक।
मोहन छ्वै बैहर चलै, ताहि भरत है अंक॥
निकट आइ मुख निरखि कै सकुचै बहुरि निहारि।
औ ढँग ओढ़ै ओढ़नी, पीतांबर मुहिं वारि॥
जब कहुँ लग लागै नहीँ, वाकौ जिय अकुलाइ।
तब हठि मेरी छाँह सौँ, राखै छाँह छुवाइ॥
को जानै कित होत है, घर गुरुजन कौ सोर।
मेरौ जिय गाँठी बँध्यौ, पीतांबर कैँ छोर॥
अब लौँ सकुच अँटकि रही, प्रगट करौँ अनुराग।
हिलि मिलि कै सँग खेलिहौँ, मानि आपनौ भाग॥
घर घर ब्रजवासी सबै, कोउ किन कहै पुकारि।
गुप्त प्रीति परगट करौँ, कुल की कानि निवारि॥
जब लगि मन मिलयौ नहीँ नची चोप कैं नाच।
सूर स्याम-सँगही रहौँ करौँ, मनोरथ साँच॥
॥१४४३॥२०६१॥

राग कान्हरौ

मोहन बिन मन न रहै, कहा करौँ माई (री)
कोटि भाँति करि रही नहीँ, मानै समुझाई (री)
लोक-लाज कौन काज, मन मैँ नहिं आई (री)
हिरदै तैं टरत नाहिँ, ऐसी मोहनि लाई (री)
सुंदर वर त्रिभंगी नवरंगी सुखदाई (री)
सूरदास प्रभु बिनु रह्यौ, मोपै नहिं जाई (री)
॥१४४४॥२०६२॥

राग सूही

नंद कौ नंदन साँवरौ, मेरौ मन चोरे जाइ।
रूप अनूप दिखाइ कै, सखि वह औचक गयौ आइ।
मोर मुकुट कुंडल स्रवन, सिर पीतांबर फहराइ।
अधरनि पर मुरली धरे, मृदु मधुरी तान बजाइ॥

चंदन की खौरी किये तन, कटि काछनी बनाइ।
सूरज-प्रभु बैठे लखे मैं जमुना-तीर कन्हाइ॥
॥१४४५॥२०६३॥

राग गौरी

परी तब तैं ठग मूरि ठगौरी।
देख्यौ मैं जमुना-तट बैठो, ढोटा जसुमति कौरी॥
अति साँवरो भरयौ सौ साँचैं, कीन्हे चंदन-खौरी।
मनमथ कोटि-कोटि गहि वारौं, ओढ़े पीत पिछौरी॥
दुलरी कंठ, नयन रतनारे, मो मन चितै रह्यौ री।
बिकट भृगुटि की ओर कोर तैं, मन्मथ-बान धरयौ री॥
दमकत दसन कनक-कुंडल-मुख, मुरली गावत गौरी।
स्रवननि सुनत देह-गति भूली, भई बिकल मति बौरी॥
नहिं कल परति बिना दरसन, तैं, नैननि लगी ठगौरी।
सूर स्याम तैं चित न टरत कहुँ, निसि-दिन रहत लगौरी॥
॥१४४६॥२०६४॥

राग कल्यान

जुवति इक जमुना-जल कौं आई।
निरखत अंग-अंग-प्रति सोभा, रीझे कुवर कन्हाई॥
गोरे बदन, चूनरी सारी, अलकैं मुख बगराई।
डारनि चरि चरि चुरी बिराजति, कर-कंकन झलकाई॥
सहज सिंगार उठत जोबन तन, बिधि निज हाथ बनाई।
सूर स्याम आए ढिग आपुन, घट भरि चली झमकाई॥
॥१४४७॥२०६५॥

राग गौरी

ग्वारि घट भरि चली झमकाइ।
स्याम अचानक लट गहि कही अति, कहा चली अतुराइ।
मोहन-कर तिय-मुख की अलकैं, यह उपमा अधिकाइ।
मनौ सुधा ससि राहु चुरावत, धरयौ ताहि हरि आइ॥
कुच परसे, अंकम भरि लीन्ही, अति मन हरष बढ़ाइ।
सूर स्याम मनु अमृत-घटनि कौं, देखत हैं कर लाइ॥
॥१४४८॥२०६६॥

राग कल्यान

छाँड़ि देहु मेरी लट मोहन।
कुच परसत पुनि-पुनि सकुचत नहिं, कत आई तजि गोहन ॥
जुवती आनि देखिहै कोई, कहति बंक करि भौंहन।
बार-बार कही बीर-दुहाई, तुम मानत नहिं सौंहन ॥
इतनै हीं कौं सौंह दिवावति, मैं आयौ मुख जोहन।
सूर स्याम नागरि बस कीन्ही, बिवस चली घर कोह न ॥
॥१४४६॥२०६७॥

राग धनाश्री

चली भवन मन हरि हरि लीन्हौं।
पग द्वै जाति ठठकि फिरि हेरति, जिय यह कहति कहा हरि कीन्हौं ॥
मारग भूलि गई जिहिं आई, आवत कै नहिं पावति चीन्हौं।
रिस करि खीझि-खीझि लट झटकति, स्याम-भुजनि छुटकायौ ईन्हौं।
प्रेम-सिंधु मैं मगन भई तिय, हरि कैं रंग भयौ उर लीनौ।
सूरदास-प्रभु सौं चित अँटक्यौ, आवत नहिं इत उतहिं पतीनौ ॥
॥१४५०॥२०६८॥

राग गौरी

घर गुरुजन की सुधि जब आई।
तब मारग सूझ्यौ नैननि कछु, जिय अपनैं तिय गई लजाई ॥
पहुँची आइ सदन ज्यौं-त्यौं करि, नैकु न चित तैं टरत कन्हाई।
सखी संग की बूझन लागीं, जमुना-तट अति गहर लगाई ॥
औरै दसा भई वछु तेरी, कहति नहीं हमसौं समुझाई।
कहा कहौं कछु कहत न आवै, सूर स्याम मोहिनी लगाई ॥
॥१४५१॥२०६६॥

राग गौरी

सुनहु सखी री वा जमुना-तट।
हौं जल भरति अकेली पनिघट, गही स्याम मेरी लट ॥

लै गगरी सिर, मारग डगरी, उन पहिरे पीरे पट।
देखत रूप अधिक रुचि उपजी, काछ बनी किंकिनि-रट ॥
फूल हिऐं ग्वालिनि कैं ज्यौं रन जीते फिरे महाभट।
सूर लह्यौ गोपाल-अलिंगन, सुफल किये कंचन-घट ॥
॥१४५२॥२०७०॥

राग सोरठ

कैसैं जल भरन मैं जाउँ।
गैल मेरी पर्‌यौ सखिरी, कान्ह जाकौ नाउँ ॥
घर तैं निकसत बनत नाहीँ, लोक-लाज लजाउँ।
तन इहाँ, मन जाइ अँटक्यौ, नंद-नंदन-ठाउँ ॥
जौ रहौं घर बैठि कै तौ, रह्यौ नाहिँन जाइ।
सीख तैसी देहु तुमहीँ, करैं कहा उपाइ ॥
जात बाहिर बनत नाहीँ, घर न नैकु सुहाइ।
मोहिनी मोहन लगाई, कहति सखिनि सुनाइ ॥
लाज अरु मरजाद जिय लौं, करति हौं यह सोच।
जाहि बिनु तन प्रान छाँड़े, कौन बुधि यह सोच ॥
मनहिं यह परतीति आनी, दूरि करिहौं दोच।
सूर प्रभु हिलि मिलि रहौंगी, लाज डारौं मोच ॥
॥१४५३॥२०७१॥

राग आसावरी

कहा कहौं सखि कहत बनै नहिँ, नंद-नँदन मेरौ मन जु हर्‌यौ।
मात-पिता-पति-बंधु-सकुच तजि, मगन भई नहिँ सिंधु तर्‌यौ ॥
अरुन अधर, जुग नैन रुचिर रुचि, मदन मुदित मन संग लर्‌यौ।
देह-दसा, कुल-कानि-लाज तजि, सहज सुभाउ रह्यौ सु धर्‌यौ ॥
आनँद-कंद चंद-मुख निसि दिन, अवलोकन यह अमल पर्‌यौ।
सूरदास प्रभु-सौं मेरी गति, जनु लुब्धक-कर मीन चर्‌यौ ॥
॥१४५४॥२०७२॥

राग नट

मेरौ हरि नागर सौं मन मान्यौ।
मन मोह्यौ सुंदर ब्रज-नायक, भली भई सब जग जान्यौ ॥

बिसरी देहु, गेह सुधि बिसरी, बिसरि गई कुल की कान्यौ।
सूर आस पूजौ या मन की, तब भावै भोजन पान्यौ॥
॥१४५५॥२०७३॥

राग रामकली

सखी मोहिँ हरि दरस कौ चाउ।
साँवरे सौँ प्रीति बाढ़ी, लाख लोग रिसाउ॥
स्यामसुंदर कमल-लोचन, अंग अगनित भाउ।
सूर हरि कैँ रूप राँची, लाज रहौ कि जाउ॥
॥१४५६॥२०७४॥

राग काफी

मोही सजनी साँवरैँ (मोहिँ) गृह बन कछु न सुहाइ।
जमुन भरन जल मैँ (तह) स्याम मोहिनी लाइ।
ओढ़े पीरी पामरा (हो) पहिरे लाल निचोल।
भौँ हैँ काँट कटीलियाँ (मोहिँ) मोल लियौ बिनु मोल॥
मोर-मुकुट सिर राजई (हो) अधर धरे मुख-बैन।
हरि की मूरति माधुरी (तिहि) लागि रहे दोउ नैन॥
मदन-मुरति कैँ बस भई (अब) भलौ बुरौ कहै कोइ।
सूरदास प्रभु कौँ मिली (करि) मन एकै तन दोइ॥
॥१४५७॥२०७५॥

राग रामकली

मैँ रैँ जिय ऐसी आनि बनी।
बिनु गोपाल और नहिँ जानौँ, सुनि मोसौँ सजनी॥
कहा काँच के संग्रह कीन्हैँ, डारि अमोल मनी।
बिष-सुमेरु कछु काज न आवै, अंमृत एक कनी।
मन-बच-क्रम मोहिँ और न भावै, मेरे स्याम धनी।
सूरदास-स्वामी कैँ कारन, तजी जाति अपनी॥
॥१४५८॥२०७६॥

राग गूजरी

दृढ़ करि धरी अब यह बानि।
कहा कीजै सो नफा, जिहिँ होइ जिय की हानि॥

लोक-लज्जा काँच किरचैं, स्याम-कंचन-खानि।
कौन लीजै, कौन तजियै, सखि तुमहिँ कहौ जानि॥
मोहिं तौ नहिँ और सूझत बिना मृदु मुसुक्यानि॥
रंग कापै होत न्यारौ, हरद चूनौ सानि।
इहै करिहैं और तजिहौं, परी ऐसी आनि।
सूर प्रभु पतिव्रत्त राखौं, मेटि कै कुल-कानि॥

॥१४५६॥२०७७॥

दान-लीला राग बिलावल

भक्तनि के सुखदायक स्याम। नारि पुरुष नहीं कछु काम॥
संकट मैं जिनि जहाँ पुकार्‍यौ। तहाँ प्रगटि तिनकौं उद्धार्‍यौ॥
सुख भीतर जिनि सुमिरन कीन्हौ। तिनकौं दरस तहाँ हरि दीन्हौ॥
दुख सुख मैं जो हरि कौं ध्यावैं। तिनकौं नैंकु न हरि बिसरावैं॥
चित दै भजै कौनहूँ भाउ। ताकौं तैसौ त्रिभुवन-राउ॥
कामातुर गोपी हरि ध्यायौ। मन-बच-क्रम हरि सैं चित लायौ॥
षट ऋतु तप कीन्हौ तनु गारी। होहिं हमारे पति गिरिधारी॥
अंतरजामी जानी सबकी। प्रीति पुरातन पाली तब की॥
बसन हरे गोपिनि सुख दीन्हौ। सुख दै सब कौ मन हरि लीन्हौ॥
जुवतिनि कैं यह ध्यान सदाई। नैंकु न अंतर होहिं कन्हाई॥
घाट बाट जमुना-तट रोकैं। मारग चलत जहाँ तहँ टोकैं॥
काहू की गागरि धरि फोरैं। काहू सैं हँसि बदन सकोरैं॥
काहू कौं अंकम भरि भेटैं। काम बिथा तरुनिनि की मेटैं॥
ब्रह्मा कीट आदि के स्वामी। प्रभु हैं निर्लोभी, निहकामी॥
भाव-बस्य सँगहीं सँग डोलैं। खेलैं हँसैं तिनहिं सैं बोलैं॥
ब्रज-जुवती नहिं नैंकु बिसारैं। भवन-काज, चित हरि सैं धारैं॥
गोरस लै निकसैं ब्रज-बाला। तहाँ तिनहिं देखैं गोपाला॥
अँग-अँग सजि सिंगार बर कामिनि। चलैं मनौ जूथनि जुरि दामिनि॥
कटि किंकिनि नूपुर बिछिया-धुनि। मनहुँ मदन के गज-घंटा सुनि॥
जाति माट मटुकी सिर धरि कै। मुख-मुख गान करत गुन हरि कै॥
चंद-बदनि तन अति सुकुमारी। अपनैं मन सब कृष्न-पियारी॥
देखि सबनि रीझे बनवारी। तब मन मैं इक बुद्धि बिचारी॥
अब दधि-दान रचौं इक लीला। जुवतिनि संग करौं रस-क्रीला॥

सूर स्याम संग सखनि बुलायौ। यह लीला कहि सुख उपजायौ॥
॥१४६०॥२०७८॥

राग धनाश्री

सुनत हँसी सुख होहीं, दान दही कौ लाग्यौ।
निसि दिन मथुरा बेचैं, स्याम दान अब माँग्यौ॥
प्रात होत उठि कान्ह, टेरि सब सखा बुलाए।
तेइ तेइ लीन्हे साथ, मिले जे प्रकृति बनाए॥
डगरि गए अनजानहीं, गह्यौ जाइ बन-घाट।
पेड़ पेड़ तर कै लगे, ठाठि ठगनि कौ ठाट॥
इहाँ ग्वालि बनि बानि, जुरीं सब सखी सहेली।
सिरनि लिए दधि दूध, सबै जोबन अलबेली॥
हँसति परस्पर आपु मैं, चली जाहिँ जिय भोर।
जबहिं आनि घातहिं परीं, (तब) छेंकि लिए चहुँ ओर॥
देखि अचानक भीर भई, सब चकित किसोरी।
ज्यौं मृग-सावक-जूथ मध्य बागुर चहुँ ओरी॥
संकित ह्वै ठाढ़ी भई, हाथ-पाँव नहिं डोल।
मनहु चित्र की सी लिखी, मुखहिं न आवे बोल॥
तब उठि बोले ग्वाल, डरहु जिनि कान्ह-दुहाई।
ठग तसकर कोउ नाहिं, दानि जदुपति सुखदाई॥
आवत निसि दिनहीं रहो, स्याम-राज भय नाहिं।
जो कछु लागै दान कौ, घाटि देहु तिहि माहिं॥
तब हँसि बोलीं ग्वालि, नाम जब कान्ह सुनायौ।
चोरी भरयौ न पेट, आनि अब दान लगायौ॥
तब उलटी पलटी फबी, जब सिसु रहे कन्हाइ।
अब कछु उहिं धोखैं करौ (तौ) छिनक माहि पति जाइ॥
तब उठि बोले कान्ह, रहीं तुम पोच सदाई।
महर-महरि-मुख पाइ, संक तजि करहु ढिठाई॥
अब वह धोखौ मेटि कै, छाँड़ि देहु अभिमान।
करि लेखौ अब दान कौ, दियैं पाइ हौ जान॥
तब हँसि बोलीं ग्वालि, डरनि तुम तजी ढिठाई।
बहुतै नंद निकाज, भयौ तुव तप-अधिकाई॥

कालिहिँ घर-घर डोलते, खाते दही चुराइ।
राति कछू सपनौ भयौ, प्रात भई ठकुराइ॥
भली कही नहिँ ग्वारि, बात कौ भेद न पायौ।
पिता-रचित धन धाम, पुत्र के काजहिँ आयौ॥
तुमसे प्रजा बसाइ कै, राखे हैँ इहिँ ठाइ।
ते तुम हम सरबस भईँ (अब) मिलहु छाँड़ि चतुराइ॥
तब झुकि बोली ग्वालि, बात किन कहौ सँभारैँ।
ऐसौ को वहि गयौ, प्रजा ह्वै बसै तुम्हारैँ॥
हमहुँ तुम नृप कंस कै, बसैँ बास इक ठाउँ।
देखौ धौँ घर जाइकै, (हम) तजैँ तुम्हारौ गाउँ॥
गाउँ हमारौ छाँड़ि जाइ बसिहौ किहिँ केरैँ।
तीनि लोक मैँ कौन, जीव नाहिँन बस मेरैँ॥
कंसहिँ को गनती गनै, जाकौ हमहिं कहाहु।
दिये दान पै बाँचिहौ, नातरु नहीँ निबाहु॥
छोटे मुँह बड़ी बात, कहौ किन आपु सम्हारे।
तीन लोक अरु कंस, कबहिँ बस भए तुम्हारे॥
यह बानी तासौँ कहौ, जो कोउ होइ अजान।
जैसे हौ जू रावरै, हम जानतिँ परवान॥
लेखौ जैहै भूलि, कहूँ की बात चलावत।
झूठी मिलावत आनि, सुनत हमकौँ नहिँ भावत॥
हम सौँ लीजै दान के, दाम सबै परखाइ।
थैली माँगि पठाइयै, पीतांबर फटि जाइ॥
काहे कौँ सतराति, बात मैँ साँची भाषत।
झूठहिँ सब तुम ग्वारि, बात मेरी गहि नाखत॥
कह्यौ मानि लेखौ करौ देहु हमारौ दान।
सौँह बबा मोहिँ नंद की, ऐसैँ देहुँ न जान॥
नंद-दुहाई देन, कहा तुम कंस-दुहाई।
काहे कौँ अँठिलात, कान्ह छाँड़ौ लरिकाई॥
पहिली परिपाटी चलौ, नई चलै क्यौँ आजु।
नृपति जानि जो पावही, बहुरौ होइ अकाजु॥
लरिका मोकौँ कहति, नाहिँ देखी लरिकाई।
पय पीवत संहारि पूतना स्वर्ग पठाई॥

अघा बका सकटा हने, केसी मुख कर नाइ।
गिरि गोबर्धन कर धर्‍यौ, यह मेरी लरिकाइ॥
सबै भली तुम करी, हमैं अब कहत कहा हो।
हमकौं होति अबार, दही लै जाहिं हहा हो॥
हँसी पलक द्वै चारि की, बीतन लागे जाम।
बन मैं राखी रोकि कै, नारि पराई स्याम॥
हँसी करति हौ तुमहिं, भली गई मति ब्रजनारि।
तुम हमकौं, हम तुमहिं, दई बिनु काजहिं गारि॥
बात कहौ कछु जानि कै, बृथा बढ़ावतिं सोर।
सदा जाहु चोरटि भई, आजु परीं फग मोर॥
माँगि लेहु दधि देहिं, दान कौ नाम मिटावहु।
ऐसे देहिं न नैंकु, कहा हमकौं डरपावहु॥
हमहिं कहत हौ चोरटी, आपु भए अब साहु।
चोरी करत बड़े भए, महा छाँछ लै खाहु॥
दही लेत हैं छीनि, दान अंगनि कौ लैहौं।
लैहौं रूपहिं दान, दान जोबन पै कै हौं॥
तुम सब कंचन-भार लै, मेरैं मारग जाहु।
मही दही दिखरावहू, कैसैं होत निबाहु॥
जाहु भले हो कान्ह, दान अँग अँग कौ माँगत।
हमरौ जोबन-रूप, आँखि इनकी गड़ि लागत॥
सबै चलीं झहराइ कै, मटुकी सीस उठाइ।
रिस कसि कटि पीत पट, ग्वालि गही हरि धाइ॥
मटुकी लई छुड़ाइ, हार चोली-बंद तोर्‍यौ।
भुज भरि धरि अकवारि, बाँह गहि कै झकझोर्‍यौ॥
माखन दधि लियौ छीनि कै, कह्यौ ग्वाल सब खाहु।
मुख झिगरति आनंद उर, धिरवतिं हैं वर जाहु॥
देखौ हरि को काम, हार चोली-बँद तोर्‍यौ।
हम कौं भरि अँकवारि, बाँह धरि-धरि झकझोर्‍यौ॥
जसुमति सौं कहियै चलौ, अब प्रगटी तरुनाइ।
दधि माखन सब छीनि लै, ग्वालिनि दए खवाइ॥
जाइ कहौं जू भली, बात भैया के आगैं।
तुम क्यौं जोबन-रूप-दान, देतीं नहिं माँगैं॥

तुम जौ कैहौ जाइकै जननी नहीँ पत्याइ ।
सूर सुनहु री ग्वारिनी आवहुगी पछताइ ॥
॥१४६१॥२०७६॥

राग काफी

ऐसौ दान माँगियै नहिँ जौ, हम पैँ दियौ न जाइ ।
बन मैँ पाइ अकेली जुवतिनि, मारग रोकत धाइ ॥
घाट बाट औघट जमुना-तट, बातैँ कहत बनाइ ।
कोऊ ऐसौ दान देत है, कौनैँ पठए सिखाइ ।
हम जानतिँ तुम यौँ नहिँ रैहौ, रहिहौ गारी खाइ ।
जो रस चाहौ सो रस नाहीँ, गोरस पियौ अघाइ ॥
औरनि सौँ लै लीजै मोहन, तब हम देहिँ बुलाइ ।
सूर स्याम कत करत अचगरी, हम सौँ कुँवर कन्हाइ ॥
॥१४६२॥२०८०॥

राग नट

दान लेहु घर जान देहु काहे कौँ कान्ह देत हौ गारी ।
जो कछु कहै करैँ हम सोई, इहिँ मारग आवौँ ब्रजनारी ॥
भली करी दधि माखन खायौ, चोली हार तोरि सब डारी ।
जोबन-दान कहूँ कोउ माँगत, यह सुनि-सुनि अति लाजनि मारी ।
होति अबार दूरि घर जैबौ, पैयाँ लगैँ डरति हैँ भारी ।
सूर स्याम काहे कौँ झगरौँ, तुम सुजान हम ग्वारि गँवारी ॥
॥१४६३॥२०८१॥

राग भैरव

भोरहिँ कान्ह करत कत झगरौ ।
औरनि छाँड़ि परे हठ समसौँ दिन प्रति कलह करत गहि डगरौ ॥
बिनु बोहनी तनक नहिँ देहैँ, ऐसैँ छीनि लेहु बरु सगरौ ।
सब कोउ जात मधुपुरी बेँचन कौनैँ दियौ दिखावहु कगरौ ॥
इहाँ दान काहे कौँ लागत, कौनैँ दियौ अबै धौँ पगरौ ।
आँचर ऐँचि ऐँचि राखत हौ, जान देहु अब होत है दगरौ ॥
सूर सनेह ग्वालि मन अँटक्यौ, छाँड़िहु दए परत नहिँ डगरौ ।
परम मगन ह्वै रही चितै मुख, सब तैँ भाग याहि कौ अगरौ ॥
॥१४६४॥२०८२॥

राग कान्हरौ

लैहौँ दान सब अंगनि कौ।
अति मद गलित ताल-फल तैँ गुरु, इन जुग उरज उतंगनि कौ॥
खंजन, कंज, मीन, मृग-सावक, भँवरज बर भुव भंगनि कौ।
कुंदकली, बंधूक, बिंब-फल बर ताटंक तरंगनि कौ॥
सूरदास-प्रभु हँसि बस कीन्हौ, नायक कोटि अनंगनि कौ॥
॥१४६५॥२०८३॥

राग काफी

कान्ह भले हौ भले हौ।
अंग-दान हमसौँ तुम माँगत, उलटी रीति चले हौ॥
कौन दोष तुम माखन छीन्यौ, औरहिँ भाव मिले हौ।
दान लेन कछु कहत हौ, कौनी प्रकृति हिले हौ॥
तोर्‌यौ हार चोर गहि फार्‌यौ, बोलत बोल ठिले हौ।
ऐसौ हाल हमारौ कीन्हौ, जाति हुतीँ दहि लै हौ॥
हम हैँ तुम्हरे गाँव ठाँव की, याही तैँ गहिले हौ।
सूरदास प्रभु और भए अब, तुम न होहु पहिले हौ॥
॥१४६६॥२०८४॥

राग पूरबी

तू मोसौँ (दधि) दान माँगि किन, (सूधैँ) लेइ नंद के लाला।
ऐसी बातनि झगरौ ठानत, मूरख तेरौ कौन हवाला॥
नंद महर की कानि करति हौँ, छाँड़ि देहु तुम ऐसे ख्याला।
सूरदास-प्रभु मन हरि लीन्हौ, हँसत नैँकु भइ ग्वारि बिहाला॥
॥१४६७॥२०८५॥

राग गूजरी

सूधैँ दान न काहैँ लेत।
और अटपटी छाँड़ि नंद-सुत, रहहु कँपावत बेत॥
बृंदाबन की बीथिनि तकि-तकि, रहत गुमान समेत॥
इन बातनि पति नाहिँन पैयत, जानि न होहु अचेत॥
अबलनि रबकि-रबकि पकरत हौ, मारग चलन न देत।
सो तो तुम कछु कहि न जनावत, कहा तुम्हारौ हेत॥

आजु न जान देउँ री ग्वारिनि, बहुत दिननि कौ नेत।
सूरदास-प्रभु कुंज-भवन चले, जोरि उरनि नख देत॥
॥१४६८॥२०८६॥

राग कान्हरौ

जोबन-दान लेउँगौ तुम सौँ।
जाकैँ बल तुम बदति न काहुहिँ, कहा दुरावति हमसौँ॥
ऐसौ धन तुम लिये फिरति हौ, दान देत सतराति।
अतिहिँ गर्ब तैँ कह्यौ न मोसैँ, नित प्रति आवति जाति॥
कंचन-कलस महारस भारे, हमहूँ तनक चखावहु।
सूर सुनौ बिन दिये दान के, जान नहीँ तुम पावहु॥
॥१४६९॥२०८७॥

राग कान्हरौ

कहा कहत तू नंद-ढुटौना।
सखी सुनहु री बातैँ जैसी, करत अतिहिँ अचँभौना॥
बदन सकोरत, भौँह मरोरत, नैननि मैँ कछु टौना।
जोबन-दान कहा धौँ माँगत, भई कहूँ नहिँ होना॥
हम कहँ बात सुनहु मनमोहन, कालिह रहे तुम छौना।
सूर स्याम गारी कह दीजै, यह बुधि है घर-खोना॥
॥१४७०॥२०८८॥

राग पूरबी

ऐसैँ जनि बोलहु नँद-लाला।
छाँड़ि देहु अँचरा मेरौ नीकैँ, जानत और सी बाला॥
बार-बार मैँ तुमहिँ कहति हौँ, परिहौ बहुरि जँजाला।
जोबन, रूप देखि ललचाने, अबहीँ तैँ ये ख्याला॥
तरुनाई तनु आवन दीजै, कत जिय होत बिहाला।
सूर स्याम उर तैँ कर टारहु, टूटै मोतिनि-माला॥
॥१४७१॥२०८९॥

राग सुघरई

कहा प्रकृति परी कान्ह तुम्हारी, कत राखत हौ घेरे॥
जे बतियाँ तुम हँसि-हँसि भाषत, इहै चलैँ चहुँफेरे॥

अब सुनिहैँ यह बात आजु की, कान्ह जुवति सब नेरे।
सकुचति हैँ घर घर घैरा कौँ, नैकुँ लाज नहिँ तेरे॥
अतिहिँ अबेर भई घर छाँड़े, चितै हँसति मुख हेरे।
सूरदास-प्रभु झुकत कहा हो, चेरी हैँ कहु केरे॥
॥१४७२॥२०६०॥

राग टोड़ी

कहा कहत तुम सौँ मैँ ग्वारिनि।
दान देहु सब जाहु चली घर अति, कत होति गँवारिनि॥
कबहूँ बातनि हीँ घर खोवति, कबहुँ उठति दै गारिनि।
लीन्हे फिरति रूप त्रिभुवन कौ, री नोखी बनजारिनि॥
पैलौ करतिँ, देतिँ नहिँ नीकैँ, तुम हौ बड़ी बजारिनि।
सूरदास ऐसौ गथ जाकैँ, ताकैँ बुद्धि पँसारिनि ?॥
॥१४७३॥२०६१॥

राग पुरिया

कान्ह अब लंगराई हौँ जानी।
माँगत दान दही कौ अबलौँ, अब कछु औरै ठानी॥
औरनि सौँ तुम कहा लियौ है, हमहिँ दिखावहु आनी।
माँगत हे दधि सो हम दीन्हौ, कहा कहत यह बानी॥
छाँड़ि देहु अँचरा फटि जैहै, तुमकौँ हम पहिचानी।
सूर स्याम तुम रति-पति-नागर, नागरि अतिहिँ सयानी॥
॥१४७४॥२०६२॥

राग कान्हरौ

लैहौँ दान सब अंग अंग कौ।
गोरैँ भाल लाल सेँदुर छबि, मुक्ता बर सिर सुभग मंग कौ॥
नकबेसरि खुठिला, तरिवनि कौ, गर हमेल, कुच जुग उतंग कौ।
कंठसिरी, दुलरी, तिलरी-उर, मानिक-मोती-हार रंग कौ॥
बहु नग जरे जराऊ अँगिया, भुजा बहूँटनि, बलय संग कौ।
कटि किंकिनि कौ दानु जु लैहौँ, जिनही रीझत मन अनंग कौ॥
जेहरि पग जकरयौ गाढ़ैँ मनु, मंद-मंद गति इहिँ मतंग कौ।
जोबन रूप अंग पाटंबर, सुनहु सूर सब इहिँ प्रसंग कौ॥
॥१४७५॥२०६३॥

राग टोड़ी

(अरी यह) ढीठ कन्हाई बोलि न जानै, बरबस झगरौ ठानै।
जोइ भावत सोई कहि डारत, अति निधरक अनुमानै॥
अंग-अंग के दान लेत, नहिँ घर के कौँ पहिचानै।
हम-दधि बेचन जाति हैँ मारग, रोकि रहत नहिँ मानै॥
ऐसी बात सम्हारि कहौ, हरि, हम तुमकौँ पहिचानै।
सूर स्याम जो हमसो माँगत, और तियनि सो बानै॥
॥१४७६॥२०६४॥

राग मलार

तोहि कारी कामरि लकुटि अब भूलि गई, नव पीतांबर दुहुँ करनि बिलासी।
गोकुल की गायनि चराइबौ है छाँड़ि दयो, नवलनि संग डोलैं परम बिसासी॥
गोरस चुरा खाइ बदन दुराइ राखै, मन न धरत बृंदाबन कौ मवासी।
सूर स्याम तोहि घर-घर सब जानत है, इहाँ बलि को हैं सो तिहारी जो है दासी॥
॥१४७७॥२०६५॥

राग मलार

नंद महर के सुत करत अचगरी।
बन-बन फिरत गो चारत बजाइ बेनु, बातैँ वे भुलाईँ दानी भए गहि डगरी॥
बन मैँ पराई नारि, रोकि राखी बनवारि, जान नहिँ देत हौ जू कौन ऐसी लँगरी।
माँगत जोबन दान, भले हौ जू भले कान्ह, मानत न कंस-आन बसि ब्रज-नगरी।
कबहुँ गहत दधि-मटुकी अचानक ही, कबहुँ गहत हौ अचानक ही गगरी।
सूर स्याम ब्रज-बाम जहँ तहँ खिझावत, ज्यौँ मन भावत दूरि करी लग सगरी॥१४७८॥२०६६॥

राग पूरबी

तुम कबके जु भए हौ दानी ।
मटुकी फोरि, हार गहि तोरयौ, इन बातनि पहिचानी ॥
नंद महर की कानि करति हौं, न तु करती मेहमानी ।
भूलि गए सुधि ता दिन की, जब बाँधे जसुदा रानी ॥
अब लौं सह्यौ तुम्हारौ ढीठौ, तुम यह कहत डरानी ।
सूर स्याम कछु करत न बनिहै, नृप पावै कहुँ जानी ॥
॥१४७९॥२०९७॥

राग पूरवी

दधि-मटुकी हरि छीनि लई ।
हार छोरि चोली-बँद तोरयौ, जोबन कैं बल ढीठि भई ॥
ज्यौंहीं ज्यौं हम सूधैं बोलत, त्यौंहीं त्यौ अति सतरि गई ।
बाद करति अबहीं रोवहुगी, बार-बार कहि दई-दई ॥
अंस परायौ देहु न नीकैं माँगत हीं सब करति खई ।
सूर सुनहु मैं कहत अजहुँ लौं, प्रीति करहु, जु भई सुभई ॥
॥१४८०॥२०९८॥

राग काफी

कन्हैया हार हमारौ देहु ।
दधि, लवनी, घृत जो कछु चाहौ, सो तुम ऐसैं हि लेहु ॥
कहा करौं दधि-दूध तिहारौ, मोसौं नाहिंन काम ।
जोबन-रूप दुराइ धरयौ है, ताकौ लेति न नाम ॥
नीके मन ह्वै माँगत तुम सौं, बैर नहीं तुम नाखति ।
सूर सुनहु री ग्वारि अयानी, अंतर हमसौं राखति ॥
॥१४८१॥२०९९॥

राग गौरी

हमकौं लाज न तुमहिं कन्हाई ।
जौ हम इहिं मारग सब आईं, तौ तुम हम सौं करत ढिठाई ॥
हा हा करतिं, पाइ तुव लागतिं, रीती मटुकी देहु मँगाई ।
काकौ बदन प्रातहीं देख्यौ, घर तैं हम छींकतहु न आईं ॥

उतहिँ जाति हौं सखी सहेली, मैं हौं सबकौं इतहिं फिराई।
सूर स्याम अधमई हमहिं सब, लागै तुमकौं सकल भलाई॥
॥१४८२॥२१००॥

राग बिलावल

मैं भरुहाएँ लागत हौं!
कनक-कलस-रस मोहिं चखावहु, मैं तुमसौं माँगत हौं॥
उहाँ ढंग तुम रहे कन्हाई, उठौं सबै झिझकारि।
लेहु असीस सबनि के मुख तैं, कतहिं दिवावति गारि॥
नीकैं देहु हार दधि-मटुकी, बात कहन नहिं जानत।
कैहैं जाइ जसोदा सौं, प्रभु सूर अचगरी ठानत॥
॥१४८३॥२१०१॥

राग बिलावल

हार तोरि बिथराइ दयौ।
मैया पै तुम कहन चलीं कत, दधि-माखन सब छीनि लयौ॥
रिस करि धाइ कंचुकी फारी, अब तौ मेरौ नाउँ भयौ।
काल्हि नहीं इहिं मारग ऐहौ, ऐसौ मोसौ बैर ठयौ॥
भली बात घर जाहु आजु तुम, माँगत जोबन-दान नयौ।
सूरदास मुख हीं रिस जुवतिनि, अरु उर-अंतर काम छयौ॥
॥१४८४॥२१०२॥

राग नट

मोहिं तोहिं जानबि नँद-नंदन, जब बन तैं गोकुल जैबौ।
सखियनि सहित छीनि लै मेरी, दधि मटुकी गारी दैबौ॥
मुख मोरिबौ जु आउ-बाउ कहि, दान अधिकई सौं लैबौ।
एक गाउँ एकहि सँग बसियै, कैसैं अब इहि मग ऐबौ॥
जुवतिनि के मुख देकि रहत हौ, लालचाने कैसैं पैबौ।
कैसैं हार तोरि मेरौ डाखौ, बिसरति नहिं रिस करि धैबौ॥
सुनि री सखी ढीठ नँद-नंदन, चलि सब जसुमति सौं लैबौ।
सूर स्याम दधि माखन लीन्हौ, हारहु बैर समुझि कैबौ॥
॥१४८५॥२१०३॥

राग बिलावल

सुनहु स्याम हम अब चलीं, जसुमति के आगैं।
तौ बदियौ हमकौं अबै, तुमकौं धरि माँगैं॥
इक-इक करि बिथुराइ कै, मोतिनि लर तोरयौ।
यह सुनि-सुनि मूसुक्याइ कै, हरि भौंह सकोरयौ॥
चली महरि पै सुंदरी, उरहन लै हरि कौ।
अबहीँ बोलि बँधाइयै, लंगर यह लरिकौ॥
गईं नंद-घर कौं सबै, जसुमति तहँ भीतर।
देखि महरि कौं कहि उठीं, सुत कीन्हौ ईतर॥
मारग चलत न पाइयै, री, हरि के आगैं।
सूरदास-प्रभु-त्रास तैं ब्रज तजि हम भागैं॥

॥१४८६॥२१०४॥

राग सारंग

तैं कत तोरयौ हार नौ सरि कौ।
मोती बगरि रहे सब बन मैं, गयौ कान कौ तरिकौ॥
ये अवगुन जु करत गोकुल मैं तिलक दिये केसरि कौ।
ढीठ गुवाल दही कौ मातौ, ओढ़नहार कमरि कौ॥
जाइ पुकारैं जसुमति आगैं, कहति जु मोहन लरिकौ।
सूर स्याम जानी चतुराई, जिहिं अभ्यास महुअरि कौ॥

॥१४८७॥२१०५॥

राग नट

अपने कुँवर कन्हाई सौं तू माई कहति बात धौं काहे न।
बहुत बचत ब्रजराज की काननि, हँसति कहा, यह तौ सहि जाहि न।
ऐसौ भयौ कौन कुल तेरैं, जोबन दान लयौ, हम चाहि न।
अनुदित अति उत्पात कहाँ लगि, दीजै पीपर कौ बन दाहिन॥
आन की आन कहत नित सौं, उनके मन कछु जानति नाहिंन।
कहा बिलोकनि बानि सिखायौ, मैं नैंकहु पहिचानतु ताहि न॥
बूझि देखि धौं कौन सयानी, हरि चोरयौ मन जाकैं पाहि न।
जाइ न मिलहु सूर के प्रभु कौं, कहहु अरूझिन सौं अरुझाहिं न॥

॥१४८८॥२१०६॥

राग सुघरई

जसुमति तेरौ, अतिहिं है अचगरौ।
दूध दही माखन लै, ढारि दियौ सगरौ॥
भोर होत नितहीं प्रति, करत रहै झगरौ।
ग्वाल बाल संग लए, जाइ गहै उगरौ॥
हम तुम हैं एकै सम, कौन कातैं अगरौ।
लियौ दियौ कछू सोउ डारि देहु कगरौ॥
और कहूँ जाइ रहैं, छाँड़ ब्रज बगरौ।
सूरदास को प्रभु सब, गुननि माहिँ अगरौ।

॥१४८६॥२१०७॥

राग सूही

मैं तुम्हरे मन की सब जानी।
आपु सबै इतराति फिरति हौं, दूषन देति स्याम कौं आनी॥
मेरौ हरि कहँ दसहिं बरस कौ, तुम री जोवन-मद उमदानी।
लाज नहीं आवति इन लँगरिनि, कैसे धौं कहि आवति बानी॥
आपुहिं तोरि हार चोली-बंद, उर नख घात बनाइ निसानी।
कहाँ कान्ह की तनक अँगुरियाँ, यह कहि बार-बार पछितानी॥
देखहु जाइ और काहू कैं, हरि पर सबहिं रहसि मँडरानी।
सूरदास-प्रभु मेरौ नान्हौ, तुम तरुनी डोलतिं अठिलानीं॥

॥१४६०॥२१०८॥

राग जैतश्री

जब दधि बेँचन जाहिँ, मारग रोकि रहै।
ग्वारिनि देखत धाइ, अंचल आइ गहै॥ टेक०॥
अहो नंद की नारि, डारि ऐसी क्यौं दीजै।
एक ठौर बस वासु, सुनहु ऐसी नहिँ कीजै॥
सुत वैसौ तुम तौ खिझतिँ, कौ रैहै इहिँ गाउँ।
जैहैं ब्रज तजि अनत हीं बहुरि सुनौ नहिँ नाउँ॥
कहा कहति डरपाइ, कछू मेरौ घटि जैहै।
तुम बाँधति आकास बात झूठी को सैहै॥
जोबन दिन द्वै सबहिँ कौ, तुम ऐसी इतरातिँ।
झूठैं कान्हहिं दोष दै, तुमहीं ब्रज तजि जातिँ॥

हम यह झूठी कही, और सौं बूझि न देखौ।
हमसौं माँगत दान, करत गौवनि कौ लेखौ॥
मटुकी डारे सीस तैं, मर्कट लेइ बुलाइ।
महा ढीठ मानै नहीँ, सखनि सहित दधि लाइ॥
ग्वारिनि ढींठ गवारि, कान्ह मेरौ अति भारौ।
तेरैं गोरस बहुत भयौ, री मेरैं थोरौ॥
बोलत लाज नहीँ तुमहिँ, सबहीँ भई गँवारि।
ऐसी कैसैं हरि करै, कतहिँ बढ़ावतिँ रारि॥
अहो जसोदा महरि, पूत की मामी पीवै।
हमहिँ कहा है होत, बहुत दिन मोहन जीवै॥
सुत के कर्म न जानइ, करै आपुनी टेक।
दस गैयनि करि का बड़ौ, अहिर-जाति सब एक॥
कह गैयनि की चली, कहा अब चली जाति की।
चकृत भई मैं तुम जु कहत, अनमिलत बात की॥
जैसा मोसौं कहति हौ, को सुनि कै पतियाइ।
कौन प्रकृति तुमकौं परी, मोहिँ कहौ समुझाइ॥
अहो जसोदा बात, काल्हि की सुनी कि नाहीँ।
बंसीबट की छाह, गही हरि मेरी बाहीँ॥
हौं सकुचनि बोली नहीँ, बहु सखियनि की भीर।
गहि बहियाँ मोहिँ लै चले, हंस-सुता कैं तीर॥
एरी मदमत ग्वालि, फिरति जोबन-मद-माती।
गोरस-बँचनहारि, गूजरी अति इतराती॥
अनमिलती बातैं कहति, तातैं सुनियत नाहिँ।
कहँ मोहन कहँ तू रहै, कबहिँ गही तेरी बाहिँ॥
साँची सब मैं कहति, झूठ नहिँ कहिहौं तुम सौं।
सुत की राखति कानि, बिलग मानति हौ हमसौं॥
कुंजनि मैं क्रीड़ा करै, मनु बाही कौ राज।
संक सकुचत नहिँ मानई, रहत भयौ सिरताज॥
ऐसी बातैं कहति, मनहुँ हरि बरष बीस कौ।
दुसह सही नहिँ जाइ, नैंकु डर करहु ईस कौ॥
धनि धनि तुम यह कहति हौ, मोकौं आवै लाज।

माखन माँगत रोइ तिहिँ, दोष देतिँ बिनु काज ॥
हरि जानत हैँ मंत्र तंत्र सीख्यौ कहुँ टौना ।
बन मैँ तरुन कन्हाइ, घरहिँ आवत ह्वै छौना ॥
एक दिवस किन देखहू, अंतर रहौ छपाइ ।
दस कौ है धौं बीस कौ, नैननि देखौ जाइ ॥
जाहु चली घर आपु, नैन, भरि हम देख्यौ है ।
तीस, बीस, दस बरष, एक एक दिन लेख्यौ है ॥
दीठि लगावतिँ कान्ह कौं, जरैँ बरैँ वे आँखि ।
धौंगरि धिग चाँचरि करैँ, मोहिँ बुलावतिँ साखि ॥
धौंग तुम्हारौ पूत, धौंगरी हमकौँ कीन्ही ।
सुत कौँ हटकतिँ नाहिँ, कोटि इक गारी दीन्ही ॥
महतारी सुत दोउ बने, वे मग रोकत जाइ ।
इनहिँ कहन दुख आइयै, (ये) सब कौँ उठतिँ रिसाइ ॥
कहा करौँ तुम बात, कहूँ की कहूँ लगावति ।
तरुनिनि यहै रीति, मोहिँ कैसैँ यह भावति ॥
बहुत उरहनौ मोहिँ दियौ, अब ऐसौ जिनि देहु ।
तुम तरुनी हरि तरुन नहिँ, मन अपनैँ गुनि लेहु ॥
निरउत्तर भई ग्वालि, बहुरि कछु कहत न आयौ ।
मन उपजी कछु लाज, गुप्त हरि सौँ चित लायौ ॥
लीला ललित गुपाल की, कहत सुनत सुखदाइ ।
दान-चरित-सुख देखि कै, सूरदास बलि जाइ ॥
॥१४६१॥२१०६॥

राग रामकली

नंद नँदन इक बुद्धि उपाई ।
जे-जे सखा प्रकृति के जाने, ते सब लए बुलाई ॥
सुबल, सुदामा, श्रीदामा मिलि, और महर-सुत आए ।
जो कछु मंत्र हृदय हरि कीन्हौ, ग्वालनि प्रगट सुनाए ॥
ब्रज-जुवती नित प्रति दधि-बेँचन, बनि बनि मथुरा जातिँ ।
राधा, चंद्रावलि, ललितादिक, बहु तरुनी इक भाँति ॥
कालिंदी-तट काल्हि प्रातहीँ, द्रुम चढ़ि रहौ लुकाइ ।
गोरस लै जबहीँ सब आवैँ, मारग रोकौ जाइ ॥

भली बुद्धि यह रची कन्हाई, सखनि कह्यौ सुख पाइ।
सूरदास प्रभु-प्रीति हृदय की, सब मन गई जनाइ॥
॥१४६२॥२११०॥

राग रामकली

प्रातहिं उठीं गोप-कुमारि
परसपर बोलीं जहाँ-तहँ, यह सुनी बनवारि॥
प्रथमहीं उठि सखा आए, नंद कैं दरबार।
आइयै उठि कै कन्हाई, कह्यौ बारंबार॥
ग्वाल-टेरत सुनि जसोदा, कुँवर दियौ जगाइ।
रहे आपुन मौन साधे, उठे तब अकुलाइ॥
मुकुट सिर, कटि पीत अंबर, मुरलि लीन्ही हाथ।
सूर-प्रभु कालिंदि-तट गए, सखा लीन्हे साथ॥
॥१४६३॥२१११॥

राग रामकली

भली करी उठि प्रातहिं आए।
मैं जानत सब ग्वालि उठीं जब, तब मोहिं बुलाए॥
अब आवति ह्वैहैं दधि लीन्हे, घर-घर तैं ब्रज-नारी।
हँसे सबै कर तारी दै-दै, आनंद कौतुक भारी॥
प्रकृति-प्रकृति अपनैं ढिग राखे, संगी पाँच हजार।
और पठाइ दिये सूरज-प्रभु, जे-जे अतिहिं कुमार॥
॥१४६४॥२११२॥

राग बिलावल

हँसत सखनि यह कहत कन्हाई।
जाइ चढ़ौ तुम सघन द्रुमनि पर, जहँ-तहँ रहौ छपाई॥
तब लौं बैठि रहौ मुख मूँदे जब जानहु सब आईं।
कूदि परौ तब द्रुमनि-द्रुमनि तैं, दै दै नंद-दुहाई॥
चकित होहिं जैसैं जुवती-गन, डरनि जाहिं अकुलाई।
बेनु-बिषान-मुरलि-धुनि कीजौ संख-सब्द घहनाई॥
नित प्रति जाति हमारैं मारग, यह कहियो समुझाई।
सूर स्याम माखन-दधि-दानी, यह सुधि नाहिंन पाई?॥
॥१४६५॥२११३॥

राग बिलावल

स्याम सखनि ऐसैं समुझावत।
ब्रज-बनिता राधा, ललितादिक, देखि बहुत सुख पावत ॥
लाल्हि जात इहिं मारग देखीं, तब यह बुद्धि उपाई।
अब आवतिं ह्वै हैं बनि-बनि सब, मोहीं सौं चित लाई ॥
तुमसौं कछु दुरावत नाहीं, कहत प्रगट करि बात।
सुनहु सूर लोचन मेरे, बिनु राधा-मुख अकुलात ॥
॥१४६६॥२११४॥

राग बिलावल

ब्रज-जुवती मिलि करतिं बिचार।
चलौ आजु प्रातहिं दधि बेंचन, नित तुम करतिं अबार ॥
तुरत चलौ अबहीं फिरि आवैं, गोरस बेंचि सबारैं।
माखन, दधि, घृत साजतिं मटुकी, मथुरा जान बिचारैं ॥
षट-दस-सहित सिंगार करति हैं, अंग अग निरखि सँवारतिं।
सूरदास-प्रभु-प्रीति सबनि कैं, नैकु न हृदय बिसारतिं ॥
॥१४६७॥२११५॥

राग धनाश्री

जुवती अंग-सिंगार सँवारति।
बेनी गूँथि, माँग मोतिनि की, सीसफूल सिर धारति।
गोरैं भाल बिंदु सेंदुर पर, टीका धर्‌यौ जराउ।
बदन चंद पर रबि तारा-गन, मानौ उदित सुभाउ ॥
सुभग स्रवन तरिवन मनि-भूषित इहिं उपमानहिं पार।
मनहु काम बिवि फंद बनाए, कारन नंद-कुमार ॥
नासा नथ-मुकुता के भारहिं, रह्यौ अधर-तट जाइ।
दाड़िम-कन सुक लेत बन्यौ नहिं, कनक-फंद रह्यौ आइ ॥
दमकत दसन अरुन अधरनि तर, चिबुक डिठौना भ्राजत।
दुलरी अरु तिलरी-बँद तातर, सुभग हुमेल बिराजत ॥
कुच कंचुकी, हार मोतिनि के भुज बाजूबँद सोहत।
डारनि चुरी करनि फुँदना-बने, कंज पास अलि जोहत ॥
छुद्रघंटिका कटि लँहगा रँग, तन तनसुख की सारी।
सूर ग्वालि दधि बेंचन निकरीं, पग-नूपुर-धुनि भारी ॥
॥१४६८॥२११६॥

राग नट नारायणी

बेँचन चलीँ दधि ब्रजनारि।
सीस धरि-धरि माट मटुकी, बढ़ी सोभा भारि॥
निकसि ब्रज के गई गौँडैँ, हरष भईँ सुकुमारि।
चलीँ गावतिँ कृष्ण के गुन हृदय ध्यान बिचारि॥
सबनि कैँ मन जौ मिलै हरि, कोउ न कहति उघारि।
सूर-प्रभु घट घटहिँ व्यापी, जानि लई बनवारि॥
॥१४६६॥२११७॥

राग जैतश्री

हरि देखी जुवती आवत जब।
सखनि कह्यौ तुम जाइ चढ़ौ द्रुम, बैठि रहौ दुरि दुरि सब॥
चढ़े सबै द्रुम-डार ग्वाल-गन, सुनत स्याम-मुख-बानी।
धोखैँ धोखैँ रहे सबै हम, स्याम भली यह जानी॥
नव-सत साजि सिँगार जुवति सब, दधि-मटुकी लिये आवत।
सूर स्याम छबि देखत रीझे, मन-मन हरष बढ़ावत॥
॥१५००॥२११८॥

राग धनाश्री

और सखा सँग लिये कन्हाई।
आपुहिँ निकसि गए आगे कौँ, मारग रोक्यौ जाई॥
इहिँ अंतर जुवती सब आईँ, बन लाग्यो कछु भारी।
पाछैँ जुवती रहीँ तिन टेरति, अबहिँ गईँ तुम हारी॥
तरुनि जुरि इक संग भईँ सब, इत उत चली निहारत।
सूरदास-प्रभु सखा लिये सँग ठाढ़े यहै बिचारत॥
॥१५०१॥२११९॥

राग गौरी

ग्वारिनि जब देखे नँद-नंदन।
मोर-मुकुट पीतांबर काछे, खौरि किए तन चंदन॥
तब यह कह्यौ कहाँ अब जैहौ, आगैँ कुँवर कन्हाई।
यह सुनि मन आनंद बढ़ायौ, मुख कहैँ, बात डराई॥
कोउ-कोउ कहति चलौ री जैयै, कोउ कहै घर फिरि जैयै।
कोउ-कोउ कहति कहा करिहैँ हरि, इनसौँ कहा परैयै॥

कोउ-कोउ कहति कालिहीँ हमकौँ, लूटि लई नँद-लाल।
सूर स्याम के ऐसे गुन हैँ, घरहिँ फिरीँ ब्रज-बाल॥
॥१५०२॥२१२०॥

राग सोरठ

ग्वालनि सैन दई तब स्याम।
कूदि-कूदि सब परहु द्रुमनि तैँ, जाति चलीँ घर बाम॥
सैन जानि तब ग्वाल जहाँ तहँ, द्रुम-द्रुम डार हलायौ।
बेनु-बिषान-संख-मुरली-धुनि, सब इक सब्द बजायौ॥
चकित भईँ तरु-तरु-प्रति देखत, डारनि-डारनि ग्वाल।
कूदि-कूदि सब परे धरनि मैँ घेरि लईँ ब्रज-बाल॥
निज प्रति जाति दूध-दधि बँचन, आजु पकरि हम पाई।
सूर स्याम कौँ दान देहु तब, जैहौ नंद-दुहाई॥
॥१५०३॥२१२१॥

राग नट

ग्वालिनि यह भली नहिँ करति।
दूध दधि घृत नितहिँ बँचति, दान देतैँ डरति॥
प्रातहीँ लै जाति गोरस, बँचि आवति राति।
कहौ कैसैँ जानियै तुम, दान मारे जाति॥
कालिँदी-तट स्याम बैठे हमहिँ दियौ पठाइ।
यह कह्यौ हरि दान माँगहु, जाति नितहिँ चुराइ॥
तुम सुता बृषभानु की, वै बड़े नंद-कुमार।
सूर-प्रभु कौँ नाहिँ जानतिँ, दान हाट बजार!॥
॥१५०४॥२१२२॥

राग कान्हरौ

यह सुनि हँसीँ सकल ब्रजनारि।
आइ सुनौ री बात नई इक सिखए हैँ महतारि॥
दधि माखन खैबे कौँ चाहत, माँगि लेहु हम-पास।
सूधैँ बात कहौ सुख पावौँ, बाँधन कहत अकास॥
अब समुझीँ हम बात तुम्हारी, पढ़े एक चटसार।
सुनहु सूर यह बात कहौ जनि, जानति नंद-कुमार॥
॥१५०५॥२१२३॥

राग धनाश्री

बात कहति ग्वालिनि इतराति ।
हम जानी अब बात तुम्हारी, सूधैं नहिं बतराति ॥
यहै बड़ौ दुख गाउँ-बास कौ, चीन्हैं कोउ न सकात ।
हरि माँगत हैं दान आपनौ, कहति माँगि किन खात ॥
हाट-बाट सब हमहिं उगाहत, अपनौ दान जगात ।
सूर दान कौ लेखौ दीजै, कोउ न कहै पुनि बात ॥
॥१५०६॥२१२४॥

राग कान्हरौ

कौन कान्ह, को तुम, कह माँगत ?
नीकैं करि सबकौं हम जानति, बातैं कहत अनागत ॥
छाँड़ि देहु हमकौ जनि रोकहु बृथा बढ़ावत रारि ।
जैहै बात दूरि लौं ऐसी, परिहै बहुरि खभारि ॥
आजुहिं दान पहिरि ह्याँ आए, कहा दिखावहु छाप ।
सूर स्याम वैसैंहिं चलौ, ज्यौं चलत तुम्हारौ बाप ॥
॥१५०७॥२१२५॥

राग कान्हरौ

कान्ह कहत दधि-दान न दैहौ ? ।
लैहौं छीनि दूध दधि माखन, देखति ही तुम रैहौ ॥
सब दिन कौ भरि लेउँ आजु हौं, तब छाड़ौं मैं तुमकौ ।
उघटति हौ तुम मातु-पिता लौं, नहिं जानति हौ यमकौ ॥
हम जानति हैं तुमकौं मोहन, लै-लै गोद खिलाए ।
सूर स्याम अब भए जगाती, वै दिन सब बिसराए ॥
॥१५०८॥२१२६॥

राग कान्हरौ

अजहूँ माँगि लेहु दधि दैहैं ।
दूध दही माखन जौ चाहौ, सहज खाहु सुख पैहैं ॥
तुम दानी ह्वै आए हम पर, यह हमकौं नहिं भावै ।
करौ तहीं लौं निबहै जोई, जातैं सब सुख पावै ॥

हमकौं जान देहु दधि बेंचन, पुनि कोऊ नहिं लैहै।
गोरस लेत प्रातहीं सब कोउ, सूर धर्‌यौ पुनि रैहै॥
॥१५०९॥२१२७॥

राग कान्हरौ

दान दिये बिनु जान न पैहौ।
जब दैहौं ढराइ सब गोरस, तबहिं दान तुम दैहौ॥
तुम सौं बहुत लेन है मोकौं, पहिलैं ताहि सुनाऊँ।
चोरी आवति बेंचि जाति हौ, पुनि गोरस कहँ पाऊँ॥
माँगति छाप कहा दिखराऊँ, को नहिं हमकौं जानत।
सूर स्याम तब कह्यौ ग्वालि सौं, तुम मोकौं नहिं मानत॥
॥१५१०॥२१२८॥

राग रामकली

कहा हमहिं रिसे करत कन्हाई।
यह रिस जाइ करौ मथुरा पर, जह है कंस कसाई॥
अब हम कहाँ जाइ गुहरावैं, बसति तिहारैं गाउँ।
ऐसे हाल करत लोगनि के, कौन रहै इहिं ठाउँ॥
अपने घर के तुम राजा हो, सब कौ राजा कंस।
सूर स्याम हम देखत बाढ़े, अब सीखे ये गंस॥
॥१५११॥२१२९॥

राग देवगंधार

कापर दान पहिरि तुम आए।
चलहु जु मिलि उनहीं पैं जैयै, जिनि तुम रोकन पंथ पठाए॥
सखा संग लीन्हे सँतिक के, फिरत रैनि-दिन बन मैं धाए।
नाहिंन राज कंस कौ जानत, मारग रोकत फिरत पराए॥
लिये उपरना छीनि सबनि के, जहाँ-तहाँ कुंजनि अरुझाए।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, दधि के माट भूमि ढरकाए॥
॥१५१२॥२१३०॥

राग सूहौ

जाइ सबै कंसहि गुहरावहु।
दधि माखन घृत लेत छुड़ाए, आजु हजूर बुलावहु॥

ऐसे कौँ कहि मोहिँ बतावति, पल भीतर गहि मारौँ।
मथुरापतिहिँ सुनौनी, तब धरि केस पछारौँ॥
बार-बार दिन हमहिँ बतावति, अपनौ दिन न बिचारयौ।
सूर इंद्र ब्रज जबहिं बहावत, तब गिरि राखि उबारयौ॥
॥१५१३॥२१३१॥

राग गूजरी

गिरिवर धरयौ आपने घर कौँ।
ताही कैँ बल दान लेत हौ, रोकि रहत पर कौँ॥
अपनेहीँ घर बड़े कहावत, मन धरि नंद महर कौँ।
यह जानति तुम गाइ चरावन, जात सदा बन बर कौँ।
मुरली कर काछनि आभूषन, मोर पखौवा सिर कौँ।
सूरदास काँधैँ कामरिया, और लकुटिया कर कौँ॥
॥१५१४॥२१३१॥

राग बिलावल

यह कमरी कमरी करि जानति।
जाके जितनी बुद्धि हृदय मैँ, सो तितनौ अनुमानति॥
या कमरी के एक रोम पर, वारौँ चीर पटंबर।
सो कमरी तुम निंदति गोपी, जो तिहुँ लोक अडंबर॥
कमरी कैँ बल असुर सँहारे, कमरिहिँ तैँ सब भोग।
जाति-पाँति कमरी सब मेरी, सूर सबै यह जोग॥
॥१५१५॥२१३३॥

राग बिलावल

धनि धनि यह कामरी मोहन स्याम की।
यहै ओढ़ि जात बन यहै सेज कौ बसन यहै निवारिनि मेह-बूँद, छाँह धाम की।
याही ओट सहत सीसिर-सीत, याहीँ गहने हरत, लै घरत ओट कोटि बाम की।
यहै जाति-पाँति, परिपाटी यह सिखवति, सूरज प्रभु के यह सब बिसराम की॥१५१६॥२१३४॥

राग बिलावल

अब तुम साँची बात कही।
इतने पर जुवतिनि कौं रोकत, माँगत दान दही ॥
जो हम तुम्हैं कह्यौ चाहति हौं, सो श्रीमुख प्रगटायौ।
नीकैं जाति उघारि आपनी, जुवतिनि भलैं हँसायौ ॥
तुम कमरी के ओढनहारे, पाटंबर नहिं छाजत।
सूर स्याम कारे तन ऊपर, कारी कामरि भ्राजत ॥
॥१५१७॥२१३५॥

राग बिलावल

मोसौं बात सुनहु ब्रज-नारी।
इक उपखान चलत त्रिभुवन मैं, तुमसौं कहौं उघारी ॥
कबहूँ बालक मुँह न दीजियै, मुँह न दीजियै नारी।
जोइ उन करैं सोइ करि डारैं, मूँड़ चढ़त हैं भारी ॥
बात कहत अँठिलाति जाति सब, हँसति देति कर तारी।
सूर कहा ये हमकौं जानैं, छाँछहिं बेंचनहारी ॥
॥१५१८॥२१३६॥

राग बिलावल

यह जानति तुम नंदमहर-सुत।
धेनु दुहत तुमकौं हम देखति, जबहिं जाति खरिकहिं उत ॥
चोरी करत यहौ पुनि जानति, घर-घर ढूढ़त भाँड़े।
मारग रोकि भए अब दानी, वे ढँग कब तैं छाँड़े ॥
और सुनौ जसुमति जब बाँधे, तब हम कियौ सहाइ।
सूरदास-प्रभु यह जानति हम, तुम ब्रज रहत कन्हाइ ॥
॥१५१९॥२१३७॥

राग आसावरी

को माता को पिता हमारैं
कब जनमत हमकौं तुम देख्यौ, हँसियत बचन तुम्हारैं ॥
कब माखन चोरी करि खायौ, कब बाँधे महतारी।
दुहत कौन की गैया चारत बात कहौ यह भारी ॥

तुम जानत मोहिँ नंद-ढुटौना, नंद कहाँ तैँ आए।
मैँ पूरन अबिगत, अबिनासी, माया सबनि भुलाए॥
यह सुनि ग्वालि सबै मुसुक्यानी, ऐसे गुन हौ जानत।
सूर स्याम जो निदरयौ सबहीँ, मात-पिता नहिँ मानत॥
॥१५२०॥२१३८॥

राग सोरठ

तुमकौँ नंद महर भरुहाए।
मात-गर्भ नहिँ तुम उपजे तौ, कहौ कहाँ तैँ आए?॥
घर-घर माखन नहीँ चुरायौ? ऊखल नहीँ बँधाए?।
हा-हा करि जसुमति के आगैँ, तुमकौँ हमहिँ छुड़ाए?॥
ग्वालनि संग-संग वृंदाबन, तुम नहिँ गाइ चराए?।
सूर स्याम दस मास गर्भ धरि, जननि नहीँ तुम जाए?॥
॥१५२१॥२१३९॥

राग टोड़ी

भक्त-हेत अवतार धरौँ।
कर्म-धर्म कैँ बस मैँ नाहीँ, जोग जज्ञ मन मैँ न करौँ॥
दीन-गुहारि सुनौँ स्रवननि भरि, गर्व-बचन सुनि हृदय जरौँ।
भाव-अधीन रहौँ सबही कैँ, और न काहू नैँकु डरौँ॥
ब्रह्मा कीट आदि लौँ ब्यापक, सबकौँ सुख दै दुखहिँ हरौँ।
सूर स्याम तब कही प्रगटही, जहाँ भाव तहँ तैँ न टरौँ॥
॥१५२२॥२१४०॥

राग धनाश्री

कान्ह कहाँ की बात चलावत।
स्वर्ग पताल एक करि राखौ, जुवतिनि कहा बतावत॥
जौ लायक तौ अपने घर कौ, बन-भीतर डरपावत।
कहा दान गोरस कौ ह्वैहै, सबै न लेहु दिखावत॥
रीती जान देहु घर हमकौँ, इतनैँ हीँ सुख पावत।
सूर स्याम माखन दधि लीजै, जुवतिनि कत अरुझावत॥
॥१५२३॥२१४१॥

राग धनाश्री

माखन दधि कह करौं तुम्हारौ।
या वन मैं तुम बनिज करति हौ, नहिं जानति मोकौं घटवारौ॥
मैं मन मैं अनुमान करौं नित, मोसौं कैहै बनिज-पसारौ।
काहे कौं तुम मोहिं कहति हो, जोवन-धन ताकौ करि गारौ॥
अब कैसैं घर जान पाइहौ, मोकौं यह समझाइ सिधारौ।
सूर बनिज तुम करति सदाई, लेखौ करिहैं आजु तिहारौ।
॥१५२४॥२१४२॥

राग सूहौ

ऐसी कहौ बनिज कौं अटकौं।
मुख-मुख हेरि तरुनि मुसुक्यानी, नैन-सैन दै-दै सब मटकौं॥
हमहुँ कह्यौ दान दधि कौ कह माँगत कुँवर कन्हाई।
अब लौं कहा मौन धरि बैठे, तबहीं नहीं सुनाई॥
हँसि बृषभानु-सुता तब बोली, कहा बनिज हम-पास।
सूर स्याम लेखौ करि लीजै, जाहिं सबै ब्रजबास॥
॥१५२५॥२१४३॥

राग बिलावल

कहौ तुमहिं हमकौं कह बूझति।
लै-लै नाम सुनावहु तुमहीं, मोसौं कहा अरूझति॥
तुम जानति मैं हूँ कछु जानत, जो-जो माल तुम्हारैं।
डारि देहु जापर जो लागै, मारग चलौ हमारैं॥
इतने ही कौं सोर लगायौ, अब समुझीं यह बात।
सूर स्याम कौ बचन सुनौ री, कछु समुझति हौ घात॥
॥१५२६॥२१४४॥

राग बिलावल

इनहीं धौं बूझौ यह लेखौ।
कहा कहैं गै स्रवननि सुनियै, चरित नैंकु तुम देखौ॥
मन मन हरष भईं सब जुवती, मुख ये बात चलावति।
ज्यौं-ज्यौं स्याम कहत मृदु बानी, त्यौं-त्यौं अति सुख पावति॥

कोउ काहू कौ भेद न जानति, लोक-सकुच उर मानत।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, अंतर की गति जानत ॥
॥१५२७॥२१४५॥

राग बिलावल

कहौ कान्ह कह गथ है हम सौं।
जा कारन जुवती सब अटकीं, सो बूझति हैं तुमसौं ॥
लौंन, नारियर, दाख, सुपारी, कह लादे हम आगौं।
हींग, मिरिच पीपरि, अजवाइनि, ये सब बनिज कहाौं ॥
कूट, कायफर, सोंठ, चिरइता, करजीरा कहुँ देखत।
आज, मजीठ, लाख, सेंदुर कहुँ ऐसिहिं बिधि अवरेखत ॥
बाइबिडंग, बहेरा, हर्रें, बेल, गोन व्यापारी।
सूर स्याम लरिकाई भूली, जोबन भए मुरारी ॥
॥१५२८॥२१४६॥

राग सूही

कौन बनिज कहि मोहिं सुनावति।
तुम्हरौ गथ लाद्यौ गयंद पर, हींग मिरिच कह गावति ॥
अपनौ बनिज दुरावति हौ कत, नाउँ लिये ते नाहीं।
कहा दुरावति हौ मो आगैं, सब जानत तुम गाहीं ॥
बहुत मोल के बान तुम्हारे, कैसैं दुरत दुराए।
सुनहु सूर कछु मोल लेहिगे, कछु इक दान भराए ॥
॥१५२९॥२१४७॥

राग टोड़ी

दधि कौ दान मेटि यह ठान्यौ।
सुनहु स्याम अति चतुर भए हौ, आजु तुम्हैं हम जान्यौ ॥
जो कछु दूध दह्यौ हम देतीं लै खाते मिलि ग्वाल।
सोऊ खोइ हाथ तैं बैठे, हँसति कहतिं ब्रज-बाल ॥
यह सुनि स्याम सबनि कर तैं, दधि-मटुकी लई छँड़ाइ।
आपुन खाइ, सबनि कौं दीन्हौ, अति मन हरष बढ़ाइ।
कछु खायौ, कछु भुइँ ढरकायौ, चितै रहीं ब्रज-नारि।
सूर स्याम बन-भीतर जुवतिनि, ये ढँग करत मुरारि ॥
॥१५३०॥२१४८॥

राग रामकली

प्यारी पीतांबर उर झटक्यौ।
हरि तोरी मोतिनि की माला, कछु,गर कछु कर लटक्यौं ॥
ढोठौ करन स्याम तुम लागे, जाइ गही कटि-फेंक।
आपु स्याम रिस करि अंकम भरी, भई प्रेम की भेंट ॥
जुवतिनि घेरि लियौ हरि कौं तब, भरि भरि धरि अँकवारि।
सखा परस्पर देखत ठाढ़े, हँसत देत किलकारि ॥
हाँक दियौ करि नंद-दुहाई, आइ गए सब ग्वाल।
सूर स्याम कौं जानति नाहीं, ढीठि भई हैं बाल ॥
॥१६३१॥२१४६॥

राग भैरव

हम भई ँ ढीठि भले तुम ग्वाल।
दीन्हौ ज्वाब दई कौ चैहौ, देखौ री कहा जँजाल ॥
बन-भीतर जुवतिनि कौं रोकत, हम खोटी, तुम्हरे ये ख्याल।
बात कहन कौं येऊ आवत, बड़े सुधर्मा धर्महिं पाल ॥
सखि सखा की ऐसी भरिहौ, तब आवहुगे जीति भुवाल।
आए हैं चढ़ि रिस करि हम पर, सूर हमहिं जानत बेहाल॥
॥१५३२॥२१५०॥

राग बिलावल

जानी बात तुम्हारी सब की।
लरिकाई के ख्याल तजौ अब, गई बात वह तब की ॥
मारग रोकत रहे जमुन कौ, तिहिं धोखैं हौ आए।
पावहुगे पुनि कियौ आपुनौ, जुवतिनि हाथ लगाए ॥
जौ सुनिहैं यह बात मात-पितु, तौ हमसौं कह कैहैं।
सूर स्याम मोतिनि लर तोरी, कौन ज्वाब हम देहैं ॥
॥१५३३॥२१५१॥

राग नट

आपुन भई ँ सबै अब भोरी।
तुम हरि कौ पीतांबर झटक्यौ, उन तुम्हरी मोतिनि लर तोरी ॥

माँगत दान ज्वाब नहिं देतीं, ऐसी तुम जोबन की जोरी।
डर नहिं माननिं नंद-नँदन कौं, करतिं आनि झकझोरा झोरी॥
इक तुम नारि गवारि भली हौ, त्रिभुवन मैं इनकी सरि को री॥
सूर सुनहु लैहैं छँड़ाइ सब, अबहिं फिरौगी दौरी दौरी॥
॥१५३४॥२१५२॥

राग नट

कहा बड़ाई इनकी सरि मैं।
नंद-जसोदा के प्रतिपाले, जानति नीके करि मैं॥
तुम्हरे कहैं सबनि डर मान्यौ, हरिहिं गई अति डरि मैं।
बसुद्यौ डारि राति हीं भागे, आए हैं सुभ घरि मैं॥
अंग-अंग कौ दान कहत हैं, सुनत उठी रिस जरि मैं।
तब पीतांबर झटकि लियो मैं, सूर स्याम कौ झरि मैं॥
॥१५३५॥२१५३॥

राग गौरी

यातैं तुमकौं ढीठि कही।
स्यासहिं तुम भईं झिरकनहारी, एते पर पुनि हार नहीं।
तब तैं हमहिं देति हौ गारी, हमकौं दाहति आपु दही।
बनिज करति हमसौं झगरति हौ, कहा कहैं हम बहुत सही।
समुझि परी अब कछु जिय जान्यौ, तातैं ह्वै सब मान रहीं।
सूर स्याम ब्रज-ऊपर दानी, इहिं मारग अब तुम निबहीं॥
॥१५३६॥२१५४॥

राग कल्यान

तुम देखत रैहौ हम जैहैं।
गोरस बेंचि मधुपुरी तैं पुनि, याही मारग ऐहैं॥
ऐसैं ही सब बैठे रैहौ बोलैं ज्वाब न दैहैं।
धरि लै जैहैं जसुमति पै, हरि तब धौं कैसी कैहैं॥
काहे कौं मोतिनि लर तोरी, हम पीतांबर लैहैं।
सूर स्याम सतरात इते पर, घर बैठे तब रैहैं॥
॥१५३७॥२१५५॥

राग कल्यान

मेर हठ क्यौं निबहन पैहौ ?
अब तौ रोकि सबनि कौं राख्यौ, कैसे करि तुम जैहौ ? ॥
दान लेहुँगौ भरि दिन-दिन कौ, लेख्यो करि सब दैहौ ।
सौंह करत हौं नंद बबा की, मैं कैहौं तब जैहौ ॥
आवति-जाति रहतिं याही पथ, मोसौं बैर बढ़ैहौ ।
सुनहु सूर हम सौं हठ माँडतिं, कौन नफा कर लैहौ ॥
॥१५३८॥२१५६॥

राग कान्हरौ

कौन बात यह कहत कन्हाई ।
समुझत नहीं कहा डर पावत तुम करि नंद-दुहाई ॥
डरपावहु तिनकौं जे डरपहिं, तुम त घटि हम नाहीं ।
मारग छाँडि देहु मनमोहन दधि बैंचन हम जाहीं ॥
भली करी मोतिनि लर तोरी, जसुमति सौं हम लैहैं ।
सूरदास-प्रभु यहौ बनत नहिं, इतनौ धन कहँ पैहैं ॥
॥१५३९॥२१५७॥

राग कान्हरौ

एक हार मोहिं कहा दिखावति ।
नख सिख लौं अंग-अंग निहारहु, ये सब कतहिं दुरावति ॥
मोतिनि माल जराइ कौ टीकौ, करन फूल नकबेसरि ।
कंठसिरी, दुलरी, तिलरी तर, और हार इक नौसरि ॥
सुभग हुमेल कटाव की, अँगिया, नगनि जरित की चौकी ।
बहुँटा, कर-कंकन, बाजूबँद, एते पर है तौकी ॥
छुद्रघंटिका पग नूपुर जेहरि, बिछिया सब लेखौ ।
सहज अंग-सोभा सब न्यारी, कहत सूर ये देखौ ॥
॥१५४०॥२१५८॥

राग जैतश्री

याहू मैं कछु बाट तिहारौ ।
अचिरज आइ सुनौ री, भूषन देखि न सकत हमारौ ॥

कहौ गढ़ाइ दिये ते आपुन, कै जसुमति, कै नंद।
घाट धर्‍यौ तुम यहै जानि कै, करत ठगनि के छंद॥
जितनौ पहिरि आजु हम आईँ घर है यातैं दूनौ।
सूर स्याम हौ बहुत लुभाने, बन देख्यौ धौं सूनौ॥
॥१५४१॥२१५६॥

राग गौरी

बाँट कहा अब सबै हमारौ।
जब लौं दान नहीं हम पायौ, तब लौं कैसैं होत तिहारौ॥
आभूषन की कौन चलावत, कंचन-घट काहैं न उघारौ।
मदन-दूत मोहि बात सुनाई, इनमैं भर्‍यौ महा रस भारौ॥
एक ओर अँग-आभूषन सब, एक ओर यह दान बिचारौं।
सुनहु सूर कह बाँट करैं हम, दान देहु पुनि जहाँ सिधारौ॥
॥१५४२॥२१६०॥

राग कल्यान

स्याम भए ऐसे रस-नागर।
दिन द्वै घाट रोकि जमुना कौ अब तुम भए उजागर॥
काँधैं कामरि, हाथ लकुटिया, गाइ चरावन जाते।
दही भात की छाक मँगावत, ग्वालनि सँग मिलि खाते॥
अब तुम कर नवला सी लीन्हे, पीतांबर कटि सोहत।
सूर स्याम अब नवल भए तुम, नवल नारि-मन मोहत॥
॥१५४३॥२१६१॥

राग गौरी

दानि देति की झगरौ करिहौ।
प्रथमहिं यह जंजाल मिटावहु, तब तुम हमहिं निदरिहौ॥
कहत कहा निदरे से हौ तुम, सहज कहतिं हम बात।
आदि बुन्यादि सबै हम जानतिं, काहै कौं सतरात॥
रिस करि-करि मटुकी सिर धरि-धरि, डगरि चलीं सब ग्वारिनि।
सूर स्याम अंचल गहि झिरकी, जैहौ कहा बजारिनि॥
॥१५४४॥२१६२॥

राग कल्यान

अब तुमकौँ मैँ जान न दैहौँ।
दान लेउँ कौड़ी कौड़ी करि, बैर आपनौ लैहौँ॥
गोरस खाइ, बच्यौ सो डार्‍यौ, मटुकी डारीँ फोरि।
दै दै गारि नारि झकझोरीँ, चोली के बँद तोरि॥
हँसत सखा करतारी दै दै, बन मैँ रोकीँ नारि।
सुरत लोग घर तैँ आवगे, सकिहौ नहीँ सम्हारि।
घर के लोगनि कहा डरावति, कंसहिँ आनि बुलाइ।
सूर सबै जुवतिनि कैँ देखत, पूजा करौँ बनाइ॥
॥१५४५॥२१६३॥

राग गौरी

जौ तुमहीँ हौ सबके राजा।
तौ बैठौ सिंहासन चढ़ि कै, चँवर, छत्र, सिर भ्राजा॥
मोर-मुकुट, मुरली पीतांबर, छाड़ौ नटवर-साजा।
वेनु, बिषान, संख क्यौँ पूरत, बाजै नौबत बाजा॥
यह जु सुनैँ हमहूँ सुख पावौँ, संग करैँ कछु काजा।
सूर स्याम ऐसी बातैँ सुनि, हमकौँ आवति लाजा॥
॥१५४६॥२१६४॥

राग कल्यान

तुम्हरैँ चित रजधानी नीकी।
मेरे दास-दास के चेरे, तिनकौँ लागति फीकी॥
ऐसी कहि मोहिँ कहा सुनावतिँ, तुमकौँ यहै अगाध।
कंस मारि सिर छत्र धरावौँ कहा तुच्छ यह साध॥
तबहिँ लगि यह संग तिहारौ, जब लगि जीवत कंस।
सूर स्याम कैँ मुख यह सुनि तब, मन-मन कीन्हौ संस॥
॥१५४७॥२१६५॥

राग जैतश्री

भली करी हरि माखन खायौ।
यहौ मानि लीन्ही अपनैँ सिर, उबर्‍यौ सो ढरकायौ॥
राखी रही दुराइ कमोरी, सो लै प्रगट दिखायौ।
यह लीजै, कछु और मँगावौँ, दान सुनत रिस पायौ॥

दान दियैं बिनु जान न पैहौ, कब मैं दान छुटायौ।
सूर स्याम हठ परे हमारे, कहौ न कहा लदायौ॥
॥१५४८॥२१६६॥

राग धनाश्री

लैहौं दान इननि कौ तुम सौं।
मत्त गयंद, हंस हम सौ हैं, कहा दुरावति हम सौं॥
केहरि, कनक-कलस अंमृत के, कैसैं दुरैं दुरावति।
बिद्रुम, हेम, बज्र के कनुका, नाहिंन हमहिं सुनावति॥
खग कपोत, कोकिला, कीर, खंजन, चंचल मृग जानति।
मनि कंचन के चक्र जरे हैं, एते पर नहिं मानति॥
सायक, चाप, तुरय, बनि जति हौ, लिये सबै तुम जाहु।
चंदन, चँवर, सुगंध, जहाँ तहँ, कैसैं होत निबाहु॥
यह बनिजति बृषभानु-सुता तुम हमसौं बैर बढ़ावति।
सुनहु सूर एते पर कहियत, हम धौं कहा लगावत॥
॥१५४९॥२१६७॥

राग सोरठ

यह सुनि चकित भईं ब्रज-बाला
तरुनी सब आपुस मैं बूझति, कहा कहत गोपाला॥
कहाँ तुरग, कहाँ गज केहरि, हंस सरोवर सुनियै।
कंचन-कलस गढ़ाए कब हम, देखौ धौं यह गुनियै॥
कोकिल, कीर, कपोत बननि मैं, मृग खंजन इक संग।
तिनकौ दान लेत हैं हमसौं, देखहु इनकौ रंग॥
चंदन, चँवर, सुगंध बतावत, कहाँ हमारैं पास।
सूर स्याम जो ऐसे दानी, देखि लेहु चहुँ पास॥
॥१५५०॥२१६८॥

राग गुनकली

भूलि रहे तुम कहाँ कन्हाई।
तिनकौ नाम लेत हम आगैं, सपनेहुँ दृष्टि न आईं॥
हय बर, गय बर, सिंह, हंस बर, खग मृग कहँ हम लीन्हे।
सायक, धनुष, चक्र सुनि चक्रित, चमर न देखे चीन्हे॥

चंदन और सुगंध कहत हौ, कंचन-कलस बतावहु।
सूर स्याम ये सब जो द्वै हैं, तबहिं दान तुम पावहु॥
॥१५५१॥२१६६॥

राग गूजरी

इतने सब तुम्हारैं पास।
निरखि देखहु अंग-अँग अब, चतुरई कैं गाँस॥
तुरतहीं निरवारि डारहु, करति कतहिं अबेर।
तुम कह्यौ, कछु, हमहुँ बोलैं, धरहिं जाहु सबेर॥
कनक-तनु परतच्छ देखहु, सजे नव-सत अंग।
सूर तुम सब रूप जोबन, धर्‍यौ एकहिं संग॥
॥१५५२॥२१७०॥

राग बिलावल

प्रगट करौं अब तुमहिं बताऊँ।
चिकुर चमर, घूँघट हय-बर, वर भ्रुव-सारँग दिखराऊँ॥
बान कटाच्छ, नैन खंजन, मृग, नासा सुक उपमाऊँ।
तरिवन चक्र, अधर बिद्रुम-छबि, दसन बज्र-कन ठाऊँ॥
ग्रीव कपोत, कोकिला बानी, कुच घट-कनक सुभाऊँ।
जोबन-मद रस अमृत भरे हैं, रूप रंग झलकाऊँ॥
अंग सुगंध बास पाटंबर, गनि-गनि तुमहिं सुनाऊँ।
कटि केहरि, गयंद-गति-सोभा, हंस सहित इकनाऊँ॥
फेर कियै कैसैं निबहति हौ, धरहिं गए कहँ पाऊँ।
सुनहु सूर यह बनिज तुम्हारैं, फिरि-फिरि तुमहिं मनाऊँ॥
॥१५५३॥२१७१॥

राग नट

माँगत ऐसौ दान कन्हाई।
अब समुझीं हम बात तुम्हारी, प्रगट भई कछु धौं तरुनाई॥
इहिं लालच अकवारि भरत हौ, हार तोरि चोली झटकाई।
अपनी ओर देखि धौं लीजै, ता पाछैं करियै बरियाई॥
सखा लिये तुम घेरत पुनि-पुनि, बन-भीतर सब नारि पराई।
सूर स्याम ऐसी न बूझियै, इन बातनि मरजाद नसाई॥
॥१५५४॥२१७२॥

राग नट

हम पर रिस करति व्रजनारि।
बात सूधैं हम बतावन, आपु उठतिं पुकारि॥
कबहुँ, मरजादा घटावति, कबहु देति हैँ गारि।
प्रात तैं झगरौ पसार्‌यौ, दान देहु निवारि॥
बड़े घर की बहू बेटी, करतिं बृथा झवारि।
सूर अपनौ अंस पावैं, जाहिं घर झख मारि॥
॥१५५५॥२१७३॥

राग सारंग

तुमहिं उलटि हम पर सतराने।
जो कछु हमकौं कहन बूझियै, सो तुम कहि आगैं अतुराने॥
यह चतुराई कहाँ पढ़ी हरि, थोरैं दिन अति भए सयाने।
तुम कौं लाज होति कै हमकौं बात परै जौ कहुँ महराने॥
ऐसौ दान और पैं माँगहु, जो हम सौं कहौ छाने छाने।
सूरदास प्रभु जान देहु अब, बहुरि कहौगे कान्हि बिहाने॥
॥१५५६॥२१७४॥

राग सारंग

स्यामहिं बोलि भयौ ढिग प्यारी।
ऐसी बात प्रगट कहुँ कहियत, सखिनि माँझ कत लाजनि मारी॥
इक ऐसैहिं उपहास करत सब, ता पर तुम यह बात पसारी।
जाति-पाँति के लोग हँसहिंगे, प्रगट जानिहैँ स्याम-मतारी॥
लाजनि मारत हौ कत हमकौं, हा हा करति जानि बलिहारी।
सूर स्याम सर्बज्ञ कहावत, मात-पिता सौं द्यावत गारी॥
॥१५५७॥२१७५॥

राग सारंग

जब प्यारी यह बात सुनाई।
सखा सबनि तबहीँ लखि लीन्ही, स्याम के प्रकृति सुभाई॥
सुनहु ग्वारि इक बात सुनावैं, जौ तुम्हरैं मन आवै।
तुव प्रति अंग-अंग की सोभा, देखत हरि सुख पावैं॥

तुम नागरी, नवल नागर वै, दोउ मिलि करौ बिहार।
सूर स्याम स्यामा तुम एकै, कह हँसिहै संसार ॥
॥१५५८॥२१७६॥

राग नट

नंद-सुवन यह बात कहावत।
आपुन जोबन-दान लेत हैं, जोइ-सोइ सखनि सिखावत ॥
वे दिन भूलि गए हरि तुमकौं, चोरी माखन खाते।
खीझत हीं भरि नैन लेत हे, डरडरात भजि जाते ॥
जसुमति जब ऊखल सौं बाँध्यौ हमहीं छोर्यौ जाइ।
सूर स्याम अब बड़े भए हौ, जोबन-दान सुहाइ ॥
॥१५५९॥२१७७॥

राग टोड़ी

लरिकाई की बात चलावति।
कैसी भई, कहा हम जानैं, नैं कहुँ सुधि नहिं आवति ॥
कब माखन चोरी करि खायौ, कब बाँधे धौं मैया ?
भले बुरे कौ मानऽपमान न, हरषत ही दिन जैया।
अपनी बात खबरि करि देखहु, न्हात जमुन कैं तीर।
सूर स्याम तब कहत, सबनि के कदम चढ़ाए चीर ॥
॥१५६०॥२१७८॥

राग गूजरी

सबै रहीं जल-नाँझ उघारी।
वार-बार हा-हा करि थाकीं, मैं तट लई हँकारी ॥
आई निकसि बसन बिनु तरुनी, बहुत करी मनुहारी।
कैसे हाल भए तब सबके, सो तुम सुरति बिसारी ॥
हमहिं कहत दधि-दूंध चुरायौ, अरु बाँधे-महतारी।
सूर स्याम के भेद-बचन सुनि, हँसि सकुचीं व्रजनारी ॥
॥१५६१॥२१७९॥

राग सारंग

कहा भए अति ढीठ कन्हाई।
ऐसी बात कहत सकुचत नहिं, कहँ धौं अपनी लाज गँवाई।

जाहु चले लोगनि के आगैं, झूठी बानी कहत सुनाई।
तुम हसि कहत बाल सुनि सुनि कै, घर-घर मैं कैहैं सब जाई॥
बहुत होहुगे दसहिं बरस के, बात कहत हौ बनै बनाई।
सूर स्याम जसुमति के आगैं, यहै बात सब कैहैं जाई॥
॥१५६२॥२१८०॥

राग हमीर

झूठी बात कहा मैं जानौं।
जो मोकौं जैसैं हि भजै री, ताकौं तैसैं हि मानौं॥
तुम तप कियौ मोहिं कौं मन दै, मै हौं अंतरजामी।
जोगी कौं जोगी ह्वै दरसौं, कामी कौं ह्वै कामी॥
हमकौं तुम झूठे करि जानति, तौ काहैं तप कीन्हौ।
सुनहु सूर कत भई निठुर अब, दान जात नहिं दीन्हौ॥
॥१५६३॥२१८१॥

राग गौरी

दान सुनत रिस होति कन्हाई।
और कहौ सो सब सहि लैहैं, जो कछु भली-बुराई॥
महतारी तुम्हरी के बे गुन, उरहन देत रिसाई।
तुक नीके ढँग सीखे, बन मैं, रोकत नारि पराई॥
आवन जान न पावत कोऊ, तुम मग मैं घटवाई।
सूर स्याम हमकौं बिलमावत खीझति भगिनी माई॥
॥१५६४॥२१८२॥

राग गौरी

मोहन तुम कैसे हौ दानी।
सूधे रहौ गहौ पति अपनी, तुम्हरे जिय की जानी॥
हम तौ अहिर गँवारि ग्वारि हैं, तुम हौ सारँगपानी।
मटुकी लई उतारि सीस तैं, सुंदरि अधिक लजानी॥
कर गहि चीर कहा ऐँचत हौ, बोलत मधुरी बानी।
सूरदास-प्रभु माखन कैं मिस, प्रीति-रीति चित आनी॥
॥१५६५॥२१८३॥

राग गौरी

काहे कौं तुम फेर लगावत ।
दान देहु, घर जाहु बेचि दधि तुमहीं कौं यह भावत ॥
प्रीति करौ मोसौं तुम काहे न, बनिज करति ब्रज-गाउँ ।
आवहु जाहु सबै इहिं मारग, लेत हमारौ नाउँ ॥
लेखौ करौ तुमहिं अपनैं मन, जोइ दैहौ सोइ लैहैं ।
सूर सुभाइ चलौगी जब तुम पुनि धौं मैं कह कैहैं ॥
॥१५६६॥२१८४॥

राग कान्हरौ

सुनहु आइ हरि के गुन माई ।
हम भईं बनिजारिनि, आपुन भए दानी कुँअर कन्हाई ॥
कहा बनिज धौं लै आईं हम, जाकौ माँगत दान ।
काल्हिहिं कै ढँग पुनि आई हैं, नहिं जानतिं कछु आन ॥
तुम गँवारि याही मग आवति, जानि-बूझि गुन इनके ।
सूर स्याम सुंदर बहु-नायक, सुखदायक सबहिनि के ॥
॥१५६७॥२१८५॥

राग टोड़ी

काहे कौं हमसौं हरि लागत ।
बातहिं कछु लेखा सर नाहीं, को जानै कह माँगत ॥
कहा सुभाउ पर्यौ अबहीं तैं, इन बातनि कछु पावत ।
निपट हमारैं ख्याल परे हरि, बन मैं नितहिं खिझावत ॥
पूरौ देहु बहुत अब कीन्हौ, सुनत हँसैगे लोग ।
सूर स्याम मारग जिनि रोकहु, घर तैं लीजौ ओग ॥
॥१५६८॥२१८६॥

राग सूही

अब लौं यहै कियौ तुम लेखौ ।
ऐसी बुद्धि बतावति कंकन कर-दर्पन लै देखौ ॥
आपुहिं चतुर, आपुहीं सब कछु, हमकौं करति गँवार ।
ओगहिं लेत फिरौ इनकैं घर, ठाढ़े ह्वै ह्वै द्वार ॥

घाट छाँड़ि जैहौं तब लैहौं, ज्वाब नृपहिं कह दैहौं।
जा दिन तैं इहिं मारग आवति, ता दिन तैं भरि लैहौं॥
इनकी बुद्धि दान हम पहिर्यौ, काहैं न घर-घर जैहैं।
सूर स्याम हँसि कहत सखनि सौं, जान कौन विधि पैहैं॥
॥१५६६॥२१८७॥

राग टोड़ी

भली भई नृप मान्यौ तुमहूँ।
लेखौ करैं जाइ कँसहिं पै, चलैं संग तुम हमहूँ॥
अब लौं हम जानी घरही मैं, पहिर्यौ है तम दान।
काल्हि कह्यौ हो दान लेन कौं, नंद महर की आन॥
तौ तुम कस पठाए हौ ह्याँ, अब जानी यह बात।
सूर स्याम सुनि-सुनि यह बानी, भौंहि मोरि मुसुकात॥
॥१५७७॥२१८८॥

राग आसावरी

कहा हँसत मोरत हौ भौंह।
सोई कहौ मनहिं जो आई, तुमहिं नंद की सौंह॥
और सौंह तुमकौं गोधन की, सौंह माइ जसुमति की।
सौंह तुमहिं बलदाऊ की है, कहौ बात वा मति की॥
वार-बार तुम भौंह सकोर्यौ, कहा आपु हँसि रीझे।
सूर स्याम हम पर सुख पायौ, की मनहीं मन खीझे॥
॥१५७१॥२१८९॥

राग रामकली

हँसत सखनि सौं कहत कन्हाई।
मैया की बाबा की दाऊ जू की, सौंह दिवाई॥
कहति कहा काहैं हँसि हेर्यौ, करहैं भौंह सकोर्यौ।
यह अचरज देखौ तुम इनकौ, कब हम बदन मरोर्यौ॥
ऐसी बातनि सौंह दिवावति, अधिक हँसी मोहिं आवत।
सूर स्याम कहैं श्रीदामा सैं तुम काहैं न समुझावत॥
॥१५७२॥२१९०॥

राग धनाश्री

श्रीदामा गोपिनि समुझावत ।
हँसत स्याम के तुम कह जान्यौ, काहैं सौंह दिवावत ॥
तुमहूँ हँसौ आपनैं संग मिलि, हम नहिँ सौंह दिवावैं ।
तरुनिनि की यह प्रकृति अनैसी, थोरिहिँ बात सिखावैं ॥
नान्हे लोगनि सौंह दिवावहु, ये दानी प्रभु सबके ।
सूर स्याम कौं दान देहु री, माँगत ठाढ़े कब के ॥
॥१५७३॥२१९१॥

राग जैतश्री

हम जानति बेइ कुँवर कन्हाई ।
प्रभु तुम्हरैं मुख आजु सुनी हम, तुम जानत प्रभुताई ॥
प्रभुता नहीं होति इन बातनि, मही दही कैं दान ।
वै ठाकुर, तुम सेवक उनके, जान्यौ सबकौ ज्ञान ॥
दधि खायौ, मोतिनि लर तोरी, घृत माखन सोउ लीजै ।
सूरदास प्रभु अपनैं सदका, घरहिं जान हम दीजै ॥
॥१५७४॥२१९२॥

राग सोरठ

तुम घर जाहु दान को दैहै ।
जिहिं बीरा दै मोहिं पठायौ, सो मोसौं कह लैहै ॥
तुम घर जाइ बैठि सुख करिहौ, नृप-गारी को खैहै ।
अबहीं बोलि पठावैगो री, ता सनमुख को जैहै ॥
जान कहै तुमकौं तुम जैहौ, बिधना कैसैं सैहैं ।
सूर मोहिं अँटक्यौ है नृप बर, तुम बिनु कौन छुड़ैहै ॥
॥१५७५॥२१९३॥

राग जैतश्री

नृप कौ नाउँ लेत ताही मुख, जिहिं मुख निंदा काल्हि करी ।
आपुन तौ राजनि के राजा, आजु कहा सुधि मनहिं परी ॥
भले स्याम ऐसी तुम कीन्ही, कहा कंस कौ नाउँ लियौ ।
जब हम सौंह दिवावन लागीं, तबहिं कंस पर रोष कियौ ॥

जाकौं निंदि बंदियै सो पुनि, वह ताकौं बहुरौ निदरै।
सूर सुनी वह बात काल्हि की तब जानी इन कंस डरै॥
॥१५७६॥२१६४॥

राग आसावरी

कहा कहति कछु जान न पायौ।
कब कंसहिं धौं हम कर जोरे, कब हम माथ नवायौ॥
कबहूँ सौंह करत देख्यौ मोहि, लेत कबहुँ मुख नाउँ।
निपटहिं ग्वारि गँवारि भईं तुम, बसत हमारैं गाउँ॥
कहा कंस, कितने लायक कौ, जाकैं मोहिं दिखावति।
सुनहु सूर इहि नृप के हम हैं- यह तुम्हरैं मन आवति॥ ॥
॥१५७७॥२१६५॥

राग टोड़ी

कौन नृपति (पुनि) जाके तुम हौ।
ताकौ नाउँ सुनावहु हमकौं, यह सुनिकै अति पावति भौ॥
इहिं संसार भुवन चौदह भरि कंसहिं तैं नहिं दूजौ औ।
सो नृप कहाँ रहत सुनि पावै, तब ताही कौं मानैं जौ॥
कहा नाउ, किहिं गाउँ बसत है, ताही के ह्वै रहियै तौ।
सूरदास प्रभु कहे बनैगी, झूठहिं हमहिं कहत धौं हौ॥
॥१५७८॥२१६६॥

राग धनाश्री

मोसौं सुनहु नृपति कौ नाउँ।
तिहूँ भुवन भरि गम है जाकौ, नर-नारी सब गाउँ॥
गन गंधर्व वस्य वाही कै, और नहीं सरि ताहिं।
उनकी अस्तुति करौं कहा लगि, मैं सकुचत हौं जाहि॥
तिनहीं कौ पठयौ मैं आयौ, दियौ दान कौ बीरा।
सूर रूप-जोबन-धन सुनि कै, देखत भयौ अधीरा॥
॥१५७६॥२१६७॥

राग गौरी

पाई जाति तुम्हारे नृप की, जैसे तुम तैसे कोऊ हैं।
कहाँ रहे दुरि जाइ आजु लौं, येई गुन ढँग के सोऊ हैं॥

यह अनुमान कियौ मन मैं हम, एकहिँ दिन जनमे कोऊ हैँ।
चोरी, अपमारग, बटपारयौ, इन पटतर के नहिँ कोऊ हैँ ॥
स्याम बनी अब जोरी नीकी, सुनहु 'सखी मानत तोऊ हैँ।
सूर स्याम जितने रँग काछत, जुवती जन-मन के गोऊ हैँ ॥
॥१५८०॥२१९८॥

राग गौरी

ठगति फिरति ठगिनी तुम नारि ।
होइ आवत सोइ सोइ कहि डराति, जाति जनावति दै-दै गारि ॥
कँसिहारिनि, बटपारिनि हम भईं आपुन भए सुधर्मा भारि ।
फंदा फाँस कमान बान सौँ, काहूँ देख्यौ डारत मारि ॥
जाकैँ मन जैसीयै बरतै मुख-बानी कहि देति उघारि ।
सुनहु सूर नीकैँ करि जान्यौ, व्रज-तरुनी तुम सब बटपारि ॥
॥१५८१॥२१९९॥

राग सूहौ

अपने नृप कौँ यहै सुनायौ ।
व्रज-नारी बटपारिनि हैँ सब, चुगली आपुहिँ जाइ लगायौ ॥
राजा बड़े बात यह समुझी, तुमकौँ हम पर धौँस पठायौ ।
कसिहारिनि कैसैँ तुम जानी, हम कहँ नाहिन प्रगट दिखायौ ॥
व्रज-बनिता फँसिहारिनि जौ सब, महतारी काहैँ न गनायौ ।
फंदा-फाँसि, धनुष, बिष-लाडू, सूर स्याम हमहीँ न बतायौ ॥
॥१५८२॥२२००॥

राग भैरव

फंदा-फाँसि बतावौँ जौ ।
अंगनि धरे छपाइ जहाँ जो, प्रगट करौ सब बदिहौ तौ ॥
प्रथमहिँ सीस मोहिनी डारति, ऐसे ताहि करति बस हौ ।
बिष-लाडू दरसावति लै पुनि, देह दसा सुधि बिसरत ज्यौ ॥
ता पाछैँ फंदा गर डारति, इनि भाँतिनि करि मारति हौ ।
सुनहु सूर ऐसे गुन तुम्हरे, मोसौँ कहा उचारति हौ ॥
॥१५८३॥२२०१॥

राग सूहौ

प्रगट करौ यह बात कन्हाई।
बान, कमान, कहाँ किहिं मार्‌यौ, काकैं गर हम फाँस लगाई॥
काकैं सिर पढ़ि मंत्र दियौ हम, कहाँ हमारै पास दिनाई।
मिलवत कहाँ कहाँ की बातैं, हँसत कहत अति गइ सकुचाई॥
तब मानै सब हमहिं बतावहु, कहौ नहीं तौ नंद-दुहाई।
सूर स्याम तब कह्यौ सुनहुगी, एक-एक करि देउँ बताई।
॥१५८४॥२२०२॥

राग सूहौ

मोसौं कहा दुरावति नारि।
नैन सैन दै चितहिं चुरावति यहै मंत्र टोना सिर डारि॥
भौंह धनुष, अंजन गुन एँचति, बान कटाच्छनि डारति मारि।
तरिवन-स्रवन फाँसि गर डारति, कैसेहुँ नाहिं सकत निरवारि।
पान उरज मुख-नैन चखावति, यह बिष-मोदक जात न झारि।
घालति छुरी प्रेम की बानी, सूरदास को सकै सम्हारि।
॥१५८५॥२२०३॥

राग टोंड़ी

अपनौ गुन औरनि सिर डारत।
मोहन, जोहन, मंत्र-जंत्र, टोना, सब तुम पर वारत॥
तनु त्रिभंग, अँग-अंग मरोरनि, भौंह बंक करि हेरत।
मुरली अधर बजाइ मधुर सुर, तरुनी-मन-मृग घेरत॥
नटवर वेष पितांबर काछे, छैल भए तुम डोलत।
सूर स्याम रावरे ढंग ये, औरनि कौं ठग बोलत॥
॥१५८६॥२२०४॥

राग टोंड़ी

जानी बात मौन धरि रहियै।
बहै जानि हम पर चढ़ि आए, जो भावै सो कहियै॥
हम नहिं बिलग तुम्हारौ मान्यौ, तुम जिनि कछु मन आनौ।
देखहु एक दोइ जिनि भाषहु, चारि देखि दुइ गानौ॥

दोबल दूतैं सबै मोहीं कौं, उन पठयौ मैं आयौ।
सूर रूप-जोबन की चुगुली, नैननि जाइ सुनायौ ॥
॥१५८७॥२२०५॥

राग बिलावल

तब रिस करिकै मोहिँ बुलायौ।
लोचन-दूत तुमहिँ इहि मारग, देखत जाइ सुनायौ ॥
सैसव-महलनि तैं सुनि बानी, जोबन-महलनि आयौ।
अपनैं कर बीरा मोहिँ दीन्हौ, तुरत दान पहिरायौ ॥
बैठौ है सिंहासन चढ़ि कै, चतुराई उपजायौ ॥
मन-तरंग आज्ञाकारी भृत, तिनकौं तुमहिँ लगायौ ॥
तिनकौ नाम अनंग नृपति वर, सुनहु बात सुख पायौ।
सूर स्याम मुख बात सुनत यह, जुवतिनि तन बिसरायौ ॥
॥१५८८॥२२०६॥

राग सूहौ

व्रज-जुवती सुनि मगन भईं।
यह बानी सुनि नंद-सुवन-मुख, मन ब्याकुल, तन सुधिहु गई ॥
को हम, कहाँ रहति, कहँ आईं, जुवतिनि कैं यह सोच पस्यौ।
लागी काम-नृपति की साँटी, जोबन-रूपहिँ आनि अस्यौ ॥
बसित भईं तरुनी अनंग-डर, सकुचि रूप-जोबनहिँ दियौ।
सूर स्याम अब सरन तुम्हारी, हृदय सबनि यह ध्यान कियौ ॥
॥१५८९॥२२०७॥

राग जैतश्री

मन यह कहतिँ देह बिसरायैँ।
यह धन तुमहीँ कैँ सँचि राख्यौ, इहिँ लीजै सुख पायैं ॥
जोबन-रूप नहीँ तुम लायक, तुमकैँ देति लजातिँ।
ज्यौं बारिधि आगैं जल-किनुका, बिनय करति इहिँ भाँति॥
अंमृत-सर आगैं मधु रंचक, मनहिँ करतिँ अनुमान।
सूर स्याम सोभा की सींवाँ, तिन पटतर को आन ॥
॥१५९०॥२२०८॥

राग जैतश्री

अंतरजामी जानि लई।
मन मैँ मिले सबनि सुख दीन्हौँ, तब तनु की कछु सुरति भई॥
तब जान्यौ बन मैँ हम ठाढ़ीँ, तन निरख्यौ मन सकुचि गईँ।
कहति परस्पर आपुस मैँ सब, कहाँ रहीँ, हम काहि रईँ॥
स्याम बिना ये चरित करै को, यह कहि कै तनु सौँपि दयौ।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, गुप्तहिँ जोबन-दान लयौ॥
॥१५६१॥२२०६॥

राग रामकली

यह कहि उठे नंद-कुमार।
कहा ठगि सी रहीँ बाला, पर्यौ कौन बिचार॥
दान कौ कछु कियौ लेखौ, रहीँ जहँ-तहँ सोचि।
प्रगट करि हमकौँ सुनावहु, मेटि डारौ दोचि॥
बहुरि इहि मग जाहु-आवहु, राति साँझ सकार।
सूर ऐसौ कौन जो पुनि, तुमहिँ रोकनहार॥
॥१५६२॥२२१०॥

राग गूजरी

हमहिँ और सो रोकै कौन।
रोकनहारौ नंदमहर-सुत, कान्ह नाम जाकौ है तौन॥
जाकैँ बल है काम-नृपति कौ, ठगत फिरति जुवतिनि कौँ जौन।
टोना डारि देत सिर ऊपर, आपु रहत ठाढ़ौ ह्वै मौन॥
सुनहु स्याम ऐसी न बूझियै, बानि परी तुमकौँ यह कौन।
सूरदास-प्रभु कृपा करहु अब, कैसैँहु जाहिँ आपनै भौन॥
॥१५६३॥२२११॥

राग सूहौ

दान मानि घर कौँ सब जाहु।
लेखौ मैँ कहुँ-कहुँ जानत हौँ, तुम समुझै सब होत निबाहु॥
पछिलौ देहु निबाहि आजु सब पुनि दीजौ जब जानौ कालि।
अब मैँ कहत भली हौँ तुमसौँ जौ तुम मौकौँ मानौ ग्वालि॥

बृंदाबन तुम आवत डरपति, मैं देहौं तुमकौं पहुँचाइ।
सुनहु सूर त्रिभुवन बस जाकैं, सो प्रभु भए जुवतिन्नि बस आइ ॥
॥१५६४॥२२१२॥

राग टोड़ी

को जानै हरि चरित तुम्हारे।
अजहूँ दान नहीं तुम पायौ, मन हरि लिये हमारे ॥
लेखौ करि लीजौ मन मोहन, दूध दही कछु खाहु।
सद माखन तुम्हरेहिं मुख-लायक, लीजै दान उगाहु ॥
तुम खैहौ माखन-दधि, हम सब देखि-देखि सुख पावौं।
सूर स्याम तुम अब दधि-दानी, कहि-कहि प्रगट सुनावौं ॥
॥१५९५॥२२१३॥

राग गौड़

कान्ह माखन खाहु हम सु देखैं।
सद्य दधि दूध ल्याईं अवटि हम, खाहु तुम सफल करि जनम लेखैं ॥
सखा सब बोलि, बैठारि हरि मंडली, बनहिं के पात दोना लगाए।
देति दधि परुसि ब्रज-नारि, जेंवत कान्ह, ग्वाल-सँग बैठि अति रुचि बढ़ाए ॥
धन्य दधि, धन्य माखन, धन्य गोपिका, धन्य राधा-बस्य हैं मुरारी।
सूर-प्रभु के चरित देखि सुर-गन थकित, कृष्न-सँग सुख करति घोष-नारी ॥
॥१५९६॥२२१४॥

राग जैतश्री

माखन दधि हरि खात ग्वाल-सँग।
पातनि के दोना सब लै-लै, पतुखिनि मुख मेलत रँग ॥
मटुकिनि तैं लै-लै परुसति हैं, हरष भरीं ब्रज-नारी।
यह सुख तिहूँ भुवन कहुँ नाहीं, दधि जेंवत बनवारी ॥

गोपी धन्य कहतिँ आपुन कौँ, धन्य दूध-दधि-माखन।
जाकैँ कान्ह लेत मुख मेलत, सबनि कियौ संभाषन॥
जो हम साध करतिँ अपनैँ मन, सो सुख पायौ नीकैँ।
सूर स्याम पर तन-मन वारति, आनँद जी सबही कैँ॥
॥१५९७॥२२१५॥

राग देवगंधार

गोपिका अति आनंद भरी।
माखन-दधि हरि खात प्रेम सौँ निरखति नारि खरी॥
कर लै लै मुख परस करावत, उपमा बढ़ी सु भाइ।
मानहुँ कंज मिलत ससि कौँ लिये, सुधा-कौर कर आइ॥
जा कारन सिव ध्यान लगावत, सेस सहस मुख गावत।
कोई सूर प्रकटि ब्रज-भीतर, राधा-मनहिँ चुरावत॥
॥१५९८॥२२१६॥

राग कान्हरौ

राधा सौँ माखन हरि माँगत।
औरनि की मटुकी कौ खायौ, तुम्हरौ कैसौ लागत॥
लै आई वृषभानु सुता, हँसि सद लवनी है मेरौ।
लै दीन्हौं अपनैँ कर हरि-मुख, खात अल्प हँसि हेरौ॥
सबहिनि तैँ मीठौ दधि है यह, मधुरैँ ठह्यौ सुनाइ।
सूरदास-प्रभु सुख उपजायौ, ब्रज ललना मनभाइ॥
॥१५९९॥२२१७॥

राग रामकली

मेरे दधि कौ हरि स्वाद न पायौ।
जानत इन गुजरिनि कौ सौ है, लयौ छिड़ाइ मिलि ग्वालनि खायौ।
धौरी धेनु दुहाइ छानि पय, मधुर आँचि मैँ औटि सिरायौ।
नई दोहनी पौँछि पखारी, धरि, धरि निरधूम खिरनि पै तायौ॥
तामैँ मिलि मिस्रित मिसिरी करि, दै कपूर-पुट जावन नायौ।
सुभग ढकनियाँ ढाँकि बाँधि पट, जतन राखि छींकैँ समुदायौ॥
हौँ तुम कारन लै आई गृह, मारग मैँ न कहूँ दरसायौ।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, कियौ कान्ह ग्वालिनि मन भायौ।
॥१६००॥२२१८॥

राग नट

गोपिनि हेत माखन खात ।
प्रेम कैँ बस नंद-नंदन, नैँकु नाहिँ अघात ।।
सबै मटुकी भरीँ बैसेँहि, प्रेम नाहिँ सिरात ।
भाव हिरदय जानि मोहन, खात माखन जात ।।
इकनि कर दधि दूध लीन्हैँ, इकनि कर दधि जात ।
सूर-प्रभु कौँ निरखि गोपी, मनहिँ-मनहिँ सिहात ।।
।।१६०१।।२२१६।।

राग बिहागरौ

गोपी कहति धन्य हम नारी ।
धन्य दूध, धनि, दधि धनि माखन, हम परुसति जैँवत गिरिधारी ।।
धन्य घोष धनि दिन, धनि निसि वह, धनि गोकुल प्रगटे बनवारी ।
धन्य सुकृत पाँछिला, धन्य धनि नंद, धन्य जसुमति महतारी ।।
धनि धनि ग्वाल, धन्य वृंदावन, धन्य भूमि यह अति सुखकारी ।
धन्य दान, धनि कान्ह मँगैया, धन्य सूर त्रिन-द्रुम-बन-डारी ।।
।।१६०२।।२२२०।।

राग नट

गन गंधर्व देखि सिहात
धन्य ब्रज-ललनानि कर तैँ, ब्रह्म माखन खात ।।
नहीँ रेख, न रूप, नहिँ तनु बरन, नहिँ अनुहारि ।
मातु-पितु नहिँ दोउ जाकैँ, हरत-मरत न जारि ।।
आपु कर्त्ता आपु हर्त्ता, आपु त्रिभुवन नाथ ।
आपुहीँ सब घट कौ व्यापी, निगम गावत गाथ ।।
अंग प्रति-प्रति रोम जाकै, कोटि-कोटि ब्रह्मंड ।
कीट ब्रह्म प्रजंत जल-थल, इनहिँ तैँ यह मंड ।।
येइ विस्वंभरन नायक, ग्वाल-संग-बिलास ।
सोइ प्रभु-दधि दान माँगत, धन्य सूरजदास ।।
।।१६०३।।२२२१।।

राग रामकली

कंस-हेतु हरि जन्म लियौ ।
पापहिँ पाप धरा भई भारी, तब सुरनि पुकार कियौ ।।

सेस-सैन जहँ रमा संग मिलि, तहँ अकास भई बानी ।
असुर मारि भुव-भार उतारौं, गोकुल प्रगटौं आनी ॥
गर्भ देवकी कैं तनु धरिहैं, जसुमति कौ पय पीहैं ।
पूरब तप बहु कियौ कष्ट करि, इनकौ बहुत रिनी हैं ॥
यह बानी कहि सूर सुरनि कौं, अब कृष्ना अवतार ।
कह्यौ सबनि ब्रज जन्म लेहु सँग, मेरैं करहु बिहार ॥
॥१६०४॥२२२२॥

राग गौरी

ब्रह्म जिनहिं यह आयसु दीन्हौ ।
तिन तिन संग जन्म लियौ परगट, सखी सखा करि कीन्हौ ॥
गोपी-ग्वाल कान्ह द्वै नाहीं, ये कहुँ नैंकु न न्यारे ।
जहाँ-जहाँ अवतार धरत हरि, ये नहिं नैंकु बिसारे ॥
एकै देह बहुत करि राखे, गोपी ग्वाल मुरारी ।
यह सुख देखि सूर के प्रभु कौं, थकित अमर-सँग-नारी ॥
॥१६०५॥२२२३॥

राग गौरी

अमर-नारि अस्तुति करैं भारी ।
एक निमिष ब्रजबासिनि कौ सुख, नहिं तिहुँ लोक बिचारी ॥
धन्य कान्ह नटवर बपु काछे, धन्य गोपिका नारी ।
इक-इक तैं गुन-रूप उजागरि, स्याम-भावती प्यारी ॥
परुसति ग्वारि ग्वाल सब जेंवत, मध्य कृष्न सुखकारी ।
सूर स्याम दधि-दानी कहि-कहि, आनँद घोष-कुमारी ॥
॥१६०६॥२२२४॥

राग बिलावल

धन्य कृष्न अवतार ब्रह्म लियौ । रेख न रूप प्रगट दरसन दियौ ॥
जल थल मैं कोउ और नहीँ दियौ । दुष्टनि बधि संतनि कौं सुख दियौ ॥
जौ प्रभु नर देही नहिं धरते । देवै-गर्भ नहीँ अवतरते ॥
कंस-सोक कैसैं उर टरते । मातु पिता दुरितहिं क्यौं हरते ॥
जौ प्रभु ब्रज-भीतर नहिं आवैं । नंद जसोदा क्यौं सुख पावैं ॥

पूरब तप कैसैं प्रगटावैं। देद-बदन कैसैं ठहरावैं ॥
जौ प्रभु भेष धरै नहिं बालक। कैसैं होहिं पूतना-घालक ॥
अँगुठा पियत सकट-संहारक। तृना अकास सिला पर डारक ॥
जौ प्रभु ब्रज माखन न चोरावैं। क्यौं गोपिनि कौं आपु जनावैं ॥
भुजा उलूखल नाहिं बँधावैं। जमला मोच्छ कौन बिधि पावैं ॥
सो प्रभु दधि-दानी कहवावैं। गोपिनि कौं मारग अँटकावैं ॥
करि करि लेखौ दान सुनावैं। आपुन खीझैं उनहिं खिझावैं ॥
ब्रजबासी यौं धन्य कहावैं। जहाँ स्याम दधि-दान लगावैं ॥
माँगि खात आनंद बढ़ावैं। जुवतिनि सौं कहि-कहि परुसावैं ॥
तेई हरि नटवर-बपु काछैं। मोर-मुकुट पीतांबर आखैं ॥
ग्वाल सखा ठाढ़े सब पाछैं। सूरस्याम गोपिनि सुख साछैं ॥
॥१६०७॥२२२५॥

राग सूहौ

यह महिमा येई पै जानैं।
जोग-जज्ञ-तप ध्यान न आवत, सो दधि-दान लेत सुख मानैं ॥
खात परस्पर ग्वालनि मिलि कै, मीठौ कहि कहि आपु बखानैं।
बिस्वंभर जगदीस कहावत ते दधि दोना माँझ अघाने ॥
आपुहिं करता, आपुहिं हरता, आपु बनावत, आपुहिं मानैं।
ऐसे सूरदास के स्वामी, ते गोपिनि कैं हाथ बिकाने ॥
॥१६०८॥२२२६॥

राग रामकली

धनि बड़भागिनी ब्रजनारि।
खात लै दधि-दूध-माखन, प्रगट जहाँ मुरारि ॥
नाहिं जानत भेद जाकौ, ब्रह्म अरु त्रिपुरारि।
सुक सनक मुनि येउ न जानत, निगम गावत चारि ॥
देखि सुख ब्रजनारि हरि-सँग, अमर रहे भुलाइ।
सूर प्रभु के चरित अगनित, बरनि कापै जाइ ॥
॥१६०९॥२२२७॥

राग बिलावल

ब्रज-बनिता यह कहतिं स्याम सौं, दूध दह्यौ अरु ल्यावैं।
मटुकिनि तैं हम देहिं खाहु तुम, देखि देखि सुख पावैं ॥

गोरस बहुत हमारैं घर-घर, दान पाछिलौ लेहु।
खायौ जौन दान आजुहिं कौ, माँगत है सब देहु॥
सबै लेहु, राखहु जिनि बाकी, पुनि न पाइहौ माँगैं।
आजुहिं लेहु सबै भरि दैहैं, कहतिं तुम्हारे आगैं॥
कहत स्याम अब भईं हमारी, मनहिं भई परतीति।
जब चैहैं तब माँगि लेहिंगे, हमहिं तमहिं भई प्रीति॥
बेंचहु जाइ दूध दधि निधरक, घाट-बाट डर नाहीं।
सूर स्याम-बस भईं ग्वारिनी, जात बनत घर नाहीं॥
॥१६१०॥२२२८॥

राग टोड़ी

सुनहु सखी मोहन कह कीन्हौ।
इक इक सौं यह बात कहति, लियौ दान कि मन हरि लीन्हौ॥
यह बात तौ नाहिं बदी हम उनसौं, बूझहु धौं यह बात।
चकित भईं बिचार करत यह, बिसरि गई सुधि गात॥
उमचि जातिं तबहीं सब सकुचतिं, बहुरि मगन ह्वै जातिं।
सूर स्याम सौं कहौ कहा यह, कहत न बनत लजाति॥
॥१६११॥२२२९॥

स्याम सुनहु इक बात हमारी।
ढीठौ बहुत दई हम तुमसौं, बकसौ चूक हमारी।
मुख जो कहीं कटुक सब बानी, हृदय हमारैं नाहीं।
हँसि-हँसि कहतिं, खिझावतिं तुमकौं, अति आनँद मन माहीं॥
दधि माखन कौ दान और जो, जानौ सबै तुम्हारौ।
सूर स्याम तुमकौं सब दीन्हौं, जीवन प्रान हमारौ॥
॥१६१२॥२२३०॥

राग धनाश्री

नंद-कुमार कहा यह कीन्हौ।
बूझति तुमहिं दान यह लीन्हौं, कैधौं मन हरि लीन्हौं॥
कछू दुराव नहीं हम राख्यौ, निकट तुम्हारैं आईं।
एते पर तुमहीं अब जानौ, करनी भली बुराई॥

जो जासौं अंतर नहिं राखै, सो क्यौं अंतर राखै।
सूर स्याम तुम अंतरजामी, बेद उपनिषद भाषै॥
॥१६१३॥२२३१॥

राग टोड़ी

सुनहु बात जुवती इक मेरी।
तुमतैं दूरि होत नहिँ कबहुँ, तुम राख्यौ मोहिँ घेरी॥
तुम कारन बैकुंठ तजत हौँ, जनम लेत ब्रज आइ।
बृंदाबन राधा-गोपी सँग, यह नहिँ बिसर्यौ जाइ॥
तुम अंतर-अंतर कह भाषति, एक प्रान द्वै देह।
क्यौं राधा ब्रज बसैं बिसारैं, सुमिरि पुरातन नेह॥
अब घर जाहु दान मैं पायौ, लेखा कियौ न जाइ।
सूर स्याम हँसि-हँसि जुवतिनि सौं, ऐसी कहत बनाइ॥
॥१६१४॥२२३२॥

राग नट

घर तनु मन विना नहिँ जात।
आपु हँसि-हँसि कहत हौ, जू चतुरई की बात॥
तनहि पर है मनहि राजा, जोइ करै सोइ होइ।
कहौ घर हम जाहि कैसैं, मन धर्यौ तुम गोइ॥
नैन-स्रवन बिचार सुधि-बुधि रहे मनहि लुभाइ।
जाहिं अबहीँ तनुहि लै घर, परत नाहिंन पाइ॥
प्रीति करि, दुबिधा करी कत, तुमहिँ जानौ नाथ।
सूर के प्रभु दीजियै मन, जाहिं घर लै साथ॥
॥१६१५॥२२३३॥

राग कान्हरौ

मन-भीतर है बास हमारौ।
हमकौं लै तहँ तुमहिँ छपायौ, यह तौ दोष तुम्हारौ॥
अजहूँ कहौ रहैं हम अनतहिँ, तुम अपनौ मन लेहु।
अब पछितानी लोक-लाज-डर, हमहिँ छाड़ि तौ देहु॥
घटती होइ जाहि तै अपनी, ताहि कीजियैं त्याग।
धोखैं कियौ वास मन-भीतर, अब मुझसे भइँ जाग॥

मन दीन्हौ, मोकौं, तब लीन्हौ, मन लैहौ, मैं जाउँ।
सूर स्याम ऐसी जनि कहियौ, हम यह कही सुभाउ॥
॥१६१६॥२२३४॥

राग कान्हरौ

तुमहिँ बिना मन धिक अरु धिक घर।
तुमहिँ बिना धिक-धिक माता पितु, धिक कुल-कानि, लाज, डर॥
धिक सुत पति, धिक जीवन जग कौ, धिक तुम बिनु संसार।
धिक सो दिवस, पहर, घटिका, पल जो बिनु नंद-कुमार॥
धिक धिक स्रवन कथा बिनु हरि कै, धिक लोचन बिनु रूप।
सूरदास प्रभु तुम बिनु घर ज्यौं, बन-भीतर के कूप॥
॥१६१७॥२२६५॥

राग राज्ञी हठीली

सुनि तमचुर कौ सोर घोष की बागरी।
नव सत साजि सिँगार चलीं नव-नागरी॥
नव सत साजि सिँगार अंग पाटंबर सोहैं।
इक तैं एक अनूप रूप त्रिभुवन-मन मोहैं॥
इंदा विंदा राधिका स्यामा कामा नारि।
ललिता अरु चंद्रावली सखिनि मध्य सुकुमारि॥ सबै ब्रजनागरी।
कोउ दूध कोउ दह्यौ लै चली सयानी।
कोउ मटुकी कोउ माट भरी नवनीत मथानी॥
गृह गृह तैं सब सुंदरी, जुरी जमन-तट जाइ।
सबनि हरष मन मैं कियौ, उठीं स्याम-गुन गाइ॥ चलीं ब्रजनागरी।
यह सुनि नंद-कुमार सैन दै सखा बुलाए।
मन हरषित भए आपु जाइ सब ग्वाल जगाए॥
यह कहिकै तब साँवरे राखे द्रुमनि चढ़ाइ।
और सखा कछु संग लै रोकि रहे मग जाइ॥
एक सखी अवलोकि तबहिँ सब सखी बुलाई। तहाँ नँदलाड़िलो।
इहि बन मैं इक बार लूटि हम लई कन्हाई॥
तनक फेर फिरि आइयै अपनैं सुखहिँ बिलास।
यह झगरौ सुनि होइगौ गोकुल मैं उपहास॥ कहति ब्रजनागरी।

उलटि चलीँ सब सखी तहाँ कोउ जान न पावैँ।
रोकि रहे सब सखा और बातनि बिरमावैँ॥
सुबल सखा तब यह कह्यौ, तुम नागरि हरि-जोग।
कैसैँ बातैँ दुरति हैँ, तुम उनकैँ संजोग॥ कहत ब्रजलाड़िलौ।
किनहु सृंग, कोउ बेनु, किनहुँ बन-पत्र बजाए।
छाँड़ि छाँड़ि द्रुम डारि, कूदि धरनी पर आए॥
सखिनि मध्य इत राधिका, सखनि मध्य बलवीर।
झगरौ ठान्यौ दान कौ, कालिंदी कै तीर। आइ ब्रजलाड़िले।
दै नागरि दधि-दान कान्ह ठाढ़े बृंदाबन।
और सखा सब संग बच्छ चारत अरु गोधन॥
बड़े गोप की लाड़िली, तुम बृषभानु-कुमारि।
दही मही के कारनैँ कतहिँ बढ़ावति रारि॥ कहत ब्रजलड़िले।
सूधैँ गोरस माँगि कछू लै हम पैँ खाहू।
ऐसे ढीठ गुवाल, कान्ह बरजत नहिँ काहू॥
इहिँ मग गोरस लै सबै, नित-प्रति आवहिँ जाहिँ।
हमहिँ छाप दिखरावहू, दान चहत किहिं पाहि॥ कहति ब्रजलाड़िली।
इतै मान सतराति ग्वालि पै जान न पावै।
अन ऊपर उठि चली, कुँवर सिर-नैन-कँपावै॥
इतनी हम सौँ को करै, या बृंदाबन बीच।
पुहुमि माट ढरकाइहौं मचिहै गोरस-कीच॥ कहत नँदलाड़िलो।
कान्ह अचगरी करत, देत अगनित हौ गारी।
कापैँ पहिरयौ दान, भए कबतैँ अधिकारी॥
मात पिता जैसैँ चलैँ, तैसैँ चलियो आपु।
कठिन कंस मथुरा बसै, को कहि लेइ सँतापु॥ कहतिँ ब्रजनागरी।
कहौ न जाइ उताल, जहाँ भूपाल तिहारौ।
हौं बृंदाबन-चंद, कहा कोउ करै हमारौ॥
सेस सहस-फन नाथि ज्यौँ सुरपति करे निरंस।
अग्नि-पान कियौँ छिनक मैँ, कितक बापुरौ कंस॥ कहत नँदलाड़िलो।
जाके तुम सु कुमार, ताहि हम नीकैँ जानैँ।
जौ पूछौ सतिभाव, आदि अरु अंत बखानैँ॥
बातनि बड़े न हूजिये, सुनहु कान्ह उतपाति।
गर्भ साँटि जसुमति लियौ, तब तुम आए राति॥ कहति ब्रजनागरी।

अरी ग्वारि मयमत, वचन बोलति जु अनेरौ।
कब हरि बालक भए, गर्भ कब लियौ बसेरौ॥
प्रबल असुर पुहुमी बढ़े, बिधि कीन्हे ये ख्याल।
कमल-कोस अलि भुरै त्यौं, तुम मुरयौ गोपाल॥ कहत ब्रजलाड़िले॥
तुम भुरए हौ नंद, कहत हैँ तुम सौँ ढोटा।
दूध दही कैँ काज, देह धरि आए छोटा॥
गढ़ि गढ़ि छोलत लाड़िले, भली नहीँ यह स्याम।
या धोखैँ जिनि भूलहू, हम समरथ की बान॥ कहति ब्रजनागरी॥
जौ प्रभु देह न धरै, दीन को कौन उधारै।
कंस-केस को गहै, बिघ्न ब्रज कौ को टारै॥
कहा निगम कहि गावतौ, कह मुनि धरते ध्यान।
दरस-परस बिनु नाम गुन, को पावै निर्बान॥ कहत नंदलाड़िले॥
जौ इतनौ गुन आहि, तिहारैँ दरस कन्हाई।
तुम निर्भय पद देत, बेदहू यहै बताई॥
जोग जुगुति तप ध्यावहीँ, तिन गति कौन दयाल?
जल-तरंग-गत मीन ज्यौँ बँधे कर्म कैँ जाल॥ कहति ब्रजनागरी॥
जटा भस्म तन दहै, बृथा करि कर्म बँधावै।
पुहुमि दाहिनी देहि, गुफा बसि मोहिँ न पावै॥
तजि अभिमान जु गावही, गदगद सुरहिँ प्रकास।
इहि रस मगन जु ग्वालिनी, ता घट मेरौ बास॥ कहत नँदलाड़िले॥
जु पै चाहि लैँ स्याम, करत उपहास घनेरे॥
हम अहीर-गृह-नारि, लोक-लज्जा कैँ जेरे।
ता दिन हम भईँ बावरी, दियौ कंठ तैँ हार।
तब तैँ घर घैरा चल्यौ, स्याम तुम्हारे जार॥ कहति ब्रजनागरी॥
सखा सबनि मिलि कह्यौ, ग्वारि इक बात सुनावैँ।
तुम तन-ज्योति-सुभाव-रूप-उपमा को पावैँ॥
गुप्त प्रीति बिधिना रची, रसिक साँवरैँ जोग।
यह सँयोग सुनि ग्वारिनी, न्याय हँसैँगे लोग॥ कहत ब्रजलाड़िले॥
ऐसी बातैँ कान्ह, कहत हमसौँ काहे तैँ।
चोरी खाते छाँछ, नैन भरि लेत गहे तैँ॥
देत उरहनौ रावरैँ, बछरा दाँवरि जोरि।
जननी ऊखल बाँधती, हमहीँ देतीँ छोरि॥ कहति ब्रजनागरी॥

बालक रूप अजान, कहा काहू पहिचानै।
अन ऊतर कोउ कहै, भली अनभली न मानै॥
वह दिन सुमिरौ आपनौ, न्हात जमुन कैं पानी।
जब सब मिलि हाहा करी, बस्त्र हर्‌यौ मैं जानि॥ कहत नँदलाड़िले॥
बहुत भए हौ ढीठ, देत मुख ऊपर गारी।
जिहिं छाजै तिहिं कहौ, इहाँ को दासि तुम्हारी॥
तुमसौं अब दधि-कारनैं, कौन बढ़ावै रारि।
या बन मैं इतरात हौ, रोकि पराई नारि॥ कहति ब्रजनागरी॥
लियो उपरना छीनि, दूरि डारनि अँटकायौ।
दियौ सखनि दधि बाँटि, माँट पुहुमी ढरकायौ॥
फटे पीत पट साँवरे, कर पलास कैं पात।
हँसत परस्पर ग्वाल सब, बिमल बिमल दधि खात॥ आपु नँदलाड़िले॥
कान्ह बहोरि न देहु, दही, काहे कौं माते।
बसियै एकहिं गाउँ, कानि राखति हैं ताते॥
तब न कछू बनि आइहै, जब बिरुझैं सब नारि।
लरिकनि कैं बर करत यह, धरिहैं लाड़ उतारि॥ कहति ब्रजनागरी॥
गहि अंचल झकझोरि, तोरि हारावलि डारी।
मटुकी लई उतारि, भोरि भुज कंचुकि फारी॥
गुपुत सैन दै साँवरैं, कामरि धरी दुराइ।
वा कमरी के कारनैं, अभरन लेउ छिनाइ॥ कहत नँदलाड़िले॥
झीनी कामरि काज, कान्ह ऐसे नहिं हूजै।
काँच पोत गिरि जाइ, नंद-घर गयौ न पूजै॥
झटकि लई कर मुद्रिका, नासा-मुक्ता गोल।
इक मुँदरी कौ होइगौ, कान्ह तिहारौ मोल॥ कहति ब्रजनागरी॥
सिव बिरंचि सनकादि, आदि तिनहूँ नहिं जानी।
सेस सहस-फन थक्यौ, निगम कीरतिहिं बखानी॥
तेरी सौं सुनि ग्वालिनि, यह मेरे मन माहँ।
भुवन चतुर्दस देखियै वा कमरी की छाहँ॥ कहत नँदलाड़िले॥
जाहि इतौ परताप, गाइ सो काहैं चारै।
पर दारा कैं जाइ, आपु कत लज्जा हारै॥
घर के बाढ़े रावरे, बातैं कहत बनाइ।
ग्वारिनि पै लै खात हैं, जूठी छाक छिनाइ॥ कहति ब्रजनागरी॥

देब-रूप सब ग्वाल करत कौतूहल न्यारे।
गोकुल गुप्त-बिलास सखा सब संग हमारे॥
इहिँ बृंदाबन ग्वारिनी, जित कित अंमृत-बेलि।
तिहूँ लोक मैँ गाइयौ, मेरे रस की केलि॥ कहत नँदलाड़िलौ॥
अब लौँ कीन्ही कानि, कान्ह अब तुमसैाँ लरिहैँ।
अधर नयन रिस कोपि, बिरचि अन उत्तर करिहैँ॥
मो आगे कौ छोहरा, जीत्यौ चाहै मोहिँ।
काकैँ बल इतरात हौ, देहिँ न नख भरि तोहि॥ कहति ब्रजनागरी॥
चितै बदन मुसुकात, हाथ दधि पूरन दोना।
इत सुंदरी बिचित्र, उतै घन स्याम सलोना॥
अति तामस तोहिँ ग्वारिनी, मैँ जानत सब आदि।
खोटी करनी जाहि की, सोइ करै उपादि॥ कहत नँदलाड़िलै॥
हठ छाँड़ौ नँदलाल, दान तुमकौँ नहिँ दैहैँ।
बिना कहैँ ब्रज-लोग, कहा काहूँ पतियैहैँ॥
लाज नहीँ तुम आवई, बोलत हौ सतराइ।
कहूँ कंस सुनि पाइहै, गहत फिरौगे पाइ॥ कहति ब्रजनागरी॥
सुनत हँसे नँदलाल, ग्वारि जिय तामस मान्यौ।
सीँच्यौ अंमृत बैन, कोप करषत नहिँ जान्यौ॥
कहाँ बसति हौ नागरी, सो पुर मुग्ध गँवार।
ब्रज-बासी कह जानहीँ, तामस कौ व्यवहार॥ कहत नँदलाड़िले॥
जनमत जननी तजौ, तात-कुल-धर्म नसायौ।
नंदगोप-गृह आइ, पुत्र कौ नाम धरायौ॥
इतनिक सैाँ एतौ कियौ, खाटी छाँछ पियाइ।
तुमहिँ दोष कहिँ लाड़िले, ओछौ गुन क्यौँ जाइ॥ कहति ब्रजनागरी॥
अविगत अगम अपार, आदि नाहीँ अबिनासी।
परम पुरुष अवतार, जिनहिँ की माया दासी॥
तुमहिँ मिलैँ ओछे भए, कहा रहौ धरि मौन।
तुम्हरेहिँ आगैँ न्याव है, द्वै मैँ ओछौ कौन॥ कहत नँदलाड़िले॥
हमहिँ ओछाई यहै, कान्ह तुमकौँ प्रतिपाले।
तुम पूरे सब भाँति, मातु-पितु-संकट घाले॥
कहा चलत उपरावटे, अजहूँ नहीँ खिसात।
कंस सौँह दै पूछियै, जिनि पटके हैँ सात॥ कहति ब्रजनागरी॥

कंस-केसि निग्रहैहौँ पुहुमि कौ भार उतारौँ।
उग्रसेन-सिर छत्र, चमर अपनैँ कर ढारौँ॥
मथुरा सुरनि बसाइहैौँ असुर कौँ जम-हाथ।
दनुज-दवन बिरुदावली, साँचौ त्रिभुवन-नाथ॥ कहत नँदलाड़िले॥
तब न कंस निग्रह्यौ, पुहुमि कौ भार उतारयौ।
चोरी जायौ मातु-गोद, गोकुल पग धारयौ॥
अब बहुतै बातैँ कहौ, दही दूध कैँ घात।
जौ ऐसे बलवंत हौ, क्यौँ न मधुपुरी जात॥ कहति ब्रजनागरी॥
जौ जैहैँ मधुपुरी, बहुरि गोकुल नहिँ ऐहैँ।
यह अपनौ परताप, नंद-जसुदा न दिखैहैँ॥
बचन लागि मैँ है कियौ, जसुमति कौ पय-पान।
मोहिँ ग्वार जिनि जानहू, ग्वारिनि सुनौ निदान। कहत नँदलाड़िले॥
हम ग्वारिनि, तुम तरुन, रूप छबि, रबि ससि मोहै।
तिहूँ लोक परताप, छत्र सिंहासन सोहै॥
भई गर्ब गत ग्वालिनी, चित्र लिखी तिहिँ काल।
हम अहीरि ढीठौ कियौ, जै-जै मदन गुपाल॥
बहुत दिननि तैँ कान्ह, दह्यौ इहिँ मारग ल्याईँ।
तुम देखत नँदलाल, बहुत हम दई ढिठाई॥
कान्ह बिलग जिनि मानियै, राखि पाछिलौ नेहु।
दूध दह्यौ की को गिनै, जो भावैँ सो लेहु॥
धन्य नंद कौ गेह, धन्य गोकुल जहँ आए।
धनि गोकुल की नारि जिन्हैँ तुम रोकन धाए॥
धनि धनि झगरौ आजु कौ, इहिँ सुख नाहिन पार।
नंद-नँदन पर कीजियै, तन-मन-धन बलिहार॥
तब दधि आगैँ धरयौ, कान्ह लीजै जो भावै।
खाइ जाइ मंजार, काज एकौ नहिँ आवै॥
हम अनखौँ या बात कौँ, लेत दान कौ नाउँ।
सहज भाव रहैँ लाड़िले, बसत एक ही गाउँ॥ कहति ब्रजनागरी॥
अभरन दियौ मँगाइ, कियौ गोपिनि मन मायौ।
हिलि मिलि बढ़यौ सनेह, आपु कर माठ उठायौ॥
नंद-नँदन छबि देखिकै, गोपिनि बारयौ प्रान।
कुंज-केलि मन मैँ बसी, गायौ सूर सुजान॥१६१८॥२२३६॥

राग बिलावल

जबहिँ कान्ह यह बात सुनाई। व्रज-जुवती सब गईँ मुरझाई ॥
कंस सँहारन मथुरा जैहौं। बहुरौ फिरि व्रज कौं नहिं ऐहौं ॥
देवै-गर्भ बास हौं लीन्हौ। तुमकौ गोकुल दरसन दीन्हौ ॥
नंद जसोदा अति तप कीन्हौ। मासौं पुत्र माँगि तब लीन्हौ ॥
मोसौ दूजौ और न कोई। हरता करता मैं ही सोई ॥
तुम सौं सुत पय-पान कराऊँ। यह तुमसौं मैं माँगैं पाऊँ ॥
मासौं सुत तुमकौं मैं देहौं। मथुरा जनमि गोकुलहिं ऐहौं ॥
नंद जसोदा बचन बधायौ। ता कारन देही धरि आयौ ॥
यह बानी सुनि ग्वारि झुरानी। मीन भईं मानौ बिनु पानी ॥
यहै कथा तब गर्ग सुनाई। सोई आपु कहत री माई ॥
नर देही करि मोहिँ न जानो। ब्रह्म-रूप करि मोकौं मानौ ॥
षोडष बरष मिले सुख करिहौं। मथुरा जाइ देव उद्धरिहौं ॥
केस गहौं अरि कंस पछारौं। असुर कठोर जमुन लै डारौं ॥
रंगभूमि करि मल्लनि मारौं। प्रबल कुबलया-दंत उपारौं ॥
सुनहु न री हरि-मुख की बानी। यह सुनि सुनि तरुनी बिकलानी ॥
तन मन धन इनपर सब वारहु। जोबन-दान देइ रिस टारहु ॥
षोडष बरष गए धौं जैहैं। व्रज तैं जाइ मधुपुरी रैहैं ॥
राजा उग्रसेन कौं करिहैं। कनक-दंड आपुन कर धरिहैं ॥
मातु पिता बसुदेव देवकी। जसुमति धाइ कहत हैं इनकी ॥
अब तिनके बंधन मोचहिंगे। दरस बिना पुनि हम लोचहिंगे ॥
मथुरा नारिनि कौं सुख देहैं। तब घट प्रान कहौ क्यौं रैहैं ॥
कहत सखी यह बात अयानी। जानति हौ तुम कछुक सयानी ॥
जोबन दान लेहिंगे तुहसौं। चतुरायौ मेलत हैं हमसौं ॥
इनके गाँस कहा री जानौ। इनकी कही एक जनि मानौ ॥
जो चाहैं सो दीजै इनकौं। ज्यौं बिनु देखौं रहत न जिनकौं ॥
आपु आपु यह बात बिचारैं। नारि नारि मन धीरज धारैं ॥
आगैं धरयौ दूध दधि माखन। प्रथमहिं यह कीन्हौ संभाषन ॥
बड़े चतुर तुम अहौ कन्हाई। तरुनि सबनि कहि यहै सुनाई ॥
जानी बात तुम्हारैं मन की। दूरि न कीजै यह रिस तन की ॥
सबनि धरयौ दधि माखन आगैं। लेहु सबै अब बिनुहीं माँगैं ॥
तुम रिस करत देखि सुख पावैं। यातैं बारहिं बार खिझावैं ॥

तन जोबन धन अर्पन कीन्हौ। मन दै मन हरि कौं सुख दीन्हौ॥
सुभग पात दोना लिए हाथहिं। बैठे सखा स्याम इक साथहिं॥
मोहन खात खवावति नारी। माँगि लेत दधि गिरिवर-धारी॥
आपुहिं धन्य कहहिं ब्रज-नारी। रुचि करि माँगि खात बनवारी॥
और खाहु मोहन दधिदानी। यह कहि कहि तरुनी मुसुकानी॥
सुख दीन्हौ हरि अंतरजामी। ब्रज-जुवतिनि के पूरनकामी॥
देखत रूप थकित ब्रज-नारी। देह-गेह की सुरति बिसारी॥
सूर स्याम सबकौं सुखकारी। कह्यौ जाहु घर घोष-कुमारी॥
॥१६१६॥२२३७॥

राग रामकली

जुवती ब्रज घर जान बिचारतिँ।
कबहुँक मटुकी लेति सीस पर, कबहुँ धरनि फिरि धारतिँ॥
देखत स्याम, सखा सब देखत, चितै रहीँ ब्रज-नारी।
रीती मटुकिनी मैं कछु नाहीँ, सकुचीँ मनहिं बिचारि॥
तब हँसि बोलै स्याम जाहु घर तुमकौं भई अबार।
सकुचति दान पाछिले कौं तुम, मैं करिहौं निरवार॥
यह कहिकै हरि ब्रजहिं सिधारे, जुवतिनि दान मनाइ।
सूर स्याम नागर नारिनि के, चित लै गए चुराइ॥
॥१६२०॥२२३८॥

राग बिलावल अलहिया

रीति मटुकी सीस लै, चलीँ घोष-कुमारी।
एक एक की सुधि नहीँ, को कैसो नारी॥
बनहीँ मैं बँचति फिरैं, घर की सुधि डारी।
लोक-लाज, कुल-कानि की, मरजादा हारी॥
लेहु-लेहु दधि कहति हैं, बन सोर पसारी।
द्रुम सब घर करि जानहीँ, तिनकौं दै नारी॥
दूध दह्यौ नहिं लेहु री, कहि कहि पचिहारी।
कहत सूर घर कोउ नहीँ, कहँ गईं दइ मारी॥
॥१६२१॥२२३६॥

राग टोड़ी

या घर मैं कोउ है कै नाहीँ।
बार-बार बूझति बृच्छनि कौं, गोरस लेहु कि जाहीँ॥

आपुहिं कहति लेति नाहीँ दधि, और द्रुमनि तर जाति।
मिलतिं परसपर बिबस देखि तिहिँ, कहति कहा इतराति॥
ताकौं कहति, आपु सुधि नाहीँ, सो पुनि जानति नाहीँ।
सूर स्याम-रस भरी गोपिका, बन मैं यौं बिततार्हीं॥
॥१६२२॥२२४०॥

राग बिलावल

रीती मटुकी सीस धरैं।
बन की घर की सुरति न काहूँ, लेहु दही यह कहति फिरैं॥
कबहुँक जाति, कुंज भीतर कौं, तहाँ स्याम की सुरति करैं।
चौंकि परतिं, कछु तन-सुधि आवति, जहाँ तहाँ सखि-सुनति ररैं॥
तब यह कहतिं कहाँ मैं इनसौं, भ्रमि भ्रमि बन मैं बृथा मरैं।
सूर स्याम कैं रस पुनि छाकतिं, बैसैंहों ढंग बहुरि ढरैं॥
॥१६२३॥२२४१॥

राग नट

तरुनी स्याम-रस मतवारि।
प्रथम जोबन-रस चढ़ायौ, अतिहि भई खुमारि॥
दूध नहिं, दधि नहीँ, माखन नहीँ, रीतौ माट।
महा-रस अँग-अंग पूरन, कहाँ घर, कहँ बाट॥
मातु-पितु गुरुजन कहाँ के, कौन पति, को नारि।
सूर प्रभु कैं प्रेम पूरन, छकि रहीँ ब्रजनारि॥
॥१६२४॥२२४२॥

राग रामकली

गोरस लेहु री कोउ आइ।
द्रुमनि सौं यह कहति डोलतिं, कोउ न लेइ बुलाइ॥
कबहु जमुना-तीर कौं सब, जाति हैं अकुलाइ।
कबहुँ बंसीबट-निकट जुरि, होतिं ठाढ़ी धाइ॥
लेहु गोरस-दान मोहन, कहाँ रहे छपाइ।
डरनि तुम्हरैं जातिं नाहीँ, लेत दह्यौ छड़ाइ॥
माँगि लीजै दान अपनौ, कहति हैं समुझाइ।
आइ पुनि रिस करत हौ हरि, दह्यौ देत बहाइ॥

एक-एकहिँ बात बूझति, कहाँ गए कन्हाइ।
सूर-प्रभु कैँ रंग राँची, जिय गयौ भरमाइ।।
।।१६२५।।२२४३।।

राग जैतश्री

बैठि गईँ मटुकी सब धरि कै।
यह जानतिँ अबहीँ हैँ आवत, ग्वाल सखा सँग हरि कैँ।।
अंचल सौँ दधि-माट दुरावतिँ, दृष्टि गई तहँ परि कै।
सबनि मटुकियाँ रीती देखीँ, तरुनी गईँ भभरि कै।।
कहि-कहि उठीँ जहाँ-तहँ सब मिलि, गोरस गयौ कहुँ ढरिकै।
कोउ कोउ कहै स्याम ढरकायौ, जान देहु री जरि कै।।
इहिँ मारग कोऊ जनि आवहु, रिस करि चली डगरि कै।
सूर सुरति तनु की कछु आई, उतरत काम लहरि कैँ।।
।।१६२६।।२२४४।।

राग नट

चक्रित भईँ घोष कुमारि।
हम नाहीँ घर गईँ तब तैँ रहीँ बिचारि-बिचारि।।
घरहिँ तैँ हम प्रात आईँ, सकुचि बदन निहारि।
कछु हँसतिँ कछु डरतिँ, गुरुजन देत ह्वैहैँ गारि।।
जो भई सो भई हम कहँ, रहीँ इतनी नारि।
सखा सँग मिलि खाइ दधि, तबहीँ गए बनवारि।।
इहाँ लौँ की बात जानतिँ, यह अचंभौ भारि।
यहै जानतिँ सूर के प्रभु, सिर गए कछु डारि।।
।।१६२७।।२२४५।।

राग धनाश्री

स्याम बिना यह कौन करै।
चितवत ही मोहिनी लगावै, नैँकु हँसनि पर मनहिँ हरै।।
रोकि रह्यौ प्रातहिँ गहि मारग, लेखौ करि दधि-दान लियौ।
तनु की सुधि तबही तैँ भूली, कछु पढ़ि कै सिर नाइ दियौ।।
मन के करत मनोरथ पूरन, चतुर नारि इहिँ भाँति कहैँ।
सूर स्याम मन हर्‍यौ हमारौ, तिहिँ बिनु कहि कैसैँ निबहैँ।।
।।१६२८।।२२४६।।

राग धनाश्री

मन हरि सौं तनु घरहिं चलावति।
ज्यौं गज मत्त लाज-अंकुस करि, घर गुरुजन-सुधि आवति ॥
हरि-रस-रूप यहै मद आवत, डर डारयौ जु महावत।
गेह-नेह-बंधन-पग तोरयौ, प्रेम-सरोवर धावत।
रोमावली सुंड, बिबि कुच मनु कुंभस्थल-छबि पावत।
सूर स्याम केहरि सुनि कै ज्यौं बन-गज-दर्प नवावत ॥
॥१६२६॥२२४७॥

राग धनाश्री

जुवति गईं घर नैंकु न भावत।
मातु-पिता गुरुजन पूछत कछु औरै और बतावत ॥
गारी देत सुनति नहिं नैंकहु, स्रवन सब्द हरि पूरे।
नैन नहीं देखत काहू कौं, ज्यौं, कहुँ होहिं अधूरे ॥
बचन कहति हरि ही के गुन कौ, उतहीं चरन चलावैं।
सूर स्याम बिनु और न भावै, कोउ कितनहु समुझावै ॥
॥१६३०॥२२४८॥

राग सोरठ

लोक-सकुच कुल-कानि तजी।
जैसैं नदी सिंधु कौं धावै, वैसैं हि स्याम भजी ॥
मात पिता बहु त्रास दिखायौ, नैंकुं न डरी, लजी।
हारि मानि बैठे, नहिं लागति, बहुतै बुद्धि सजी ॥
मानति नहीं लोक-मरजादा, हरि कैं रंग मजी।
सूर स्याम कौं, मिलि, चूनौ-हरदी ज्यौं रंग रजी ॥
॥१६३१।२२४६॥

राग सोरठ

बार बार जननी समुझावति।
काहे कौं जहँ-तहँ डोलति, हमकौं अतिहिं लजावति ॥
अपने कुल की खबरि करौ कौं, सकुच नहीं जिय आवति।
दधि बेंचहु घर सधैं आवहु, काहैं भेर लगावति ॥

यह सुनि कै मन हर्ष बढ़ायौ, तब इक बुद्धि बनावति।
सुनि मैया दधि-माट ढरायौ, तिहिँ डर बात न आवति॥
जान देहिँ कितनौ दधि डारयौ, ऐसैं तब न सुनावति।
सुनहु सूर इहिँ बात डरानी. माता उर लै लावति॥
॥१६३२॥२२५०॥

राग सारंग

नैंकु नहीँ घर सौँ मन लागत।
पिता-मातु, गुरुजन परबोधत, नीके बचन बान सम लागत॥
तिनकौँ धिक-धिक कहति मनहिँ मन, इनकौँ बनै भलै हीँ त्यागत।
स्याम-बिमुख नर-नारि बृथा सब, कैसैं मन इनसौँ अनुरागत॥
इनकौ बदन प्रात दरसै जिनि, बार-बार बिधि सैाँ यह माँगत।
यह तनु सूर स्याम कौँ अरप्यौ, नैंकु टरत नहिँ सोवत जागत॥
॥१६३३॥२२५१॥

राग धनाश्री

पलक-ओट नहिँ होत कन्हाई।
घर गुरुजन बहुतै बिधि त्रासत, लाज करावत लाज न आई॥
नैन जहाँ दरसन हरि अँटके, स्रवन थके सुनि बचन न सुहाई।
रसना और नहीँ कछु भाषति, स्याम स्याम रट इहै लगाई॥
चित चंचल संगहिँ सँग डोलत लोक-लाज-मरजाद मिटाई।
मन हरि लियौ सूर-प्रभु तबहीँ, तन बपुरे की कहा बसाई॥
॥१६३४॥२२५२॥

राग बिलावल

चली प्रातहीँ गोपिका, मटुकिनि लै गोरस।
नेत्र, स्रवन, मन, बुद्धि, चित, ये नहिँ काहू बस॥
तन लीन्हे डोलति फिरै, रसना अटक्यौ जस।
गोरस नाम न आवई, कोउ लैहै हरि-रस॥
जीव परयौ या ख्याल मैँ, अरु गयौ दसा दस।
बझै जाइ खग-बृंद ज्यौँ, प्रिय छबि लटकनि लस॥
छाड़िहु दियैँ उड़ात नहिँ कीन्हौ पाग्नै तस।
सूरदास प्रभु-भौँह की मोरनि फाँसी-गँस॥
॥१६३५॥२२५३॥

राग कान्हरौ

दधि बेंचति ब्रज-गलिनि फिरै ।
गोरस लेन बुलावत कोऊ, ताकी सुधि नैंकहु न करै ॥
उनकी बात सुनति नहिं स्रवननि, कहति कहा ये घरनि जरै ।
दूध-दह्यौ ह्याँ लेत न कोऊ, प्रातहिं तै सिर लिये ररै ॥
बोलि उठनि पुनि लेहु गुपालहिं, घर-घर लोक-लाज निदरै ।
सूर स्याम कौ रूप महारस, जाकैं बल काहू न डरै ॥
॥१६३६॥२२५४॥

राग कान्हरौ

गोरस कौ निज नाम भुलायौ ।
लेहु लेहु कोऊ गोपालहिं, गलिनि गलिनि यह सोर लगायौ ॥
काउ कहै, स्याम, कृष्ण कहै कोऊ, आजु दरस नाहीँ हम पायौ ।
जाकैं सुधि तन की कछु आवति, लेहु दही कहि तिनहिं सुनायौ ॥
इक कहि उठति दान माँगत हरि, कहूँ भई कै तुमहिं चलायौ ।
सुनहु सूर तरुनी जोबन-मद, तापर स्याम-महारस पायौ ॥
॥१६३७॥२२५५॥

राग कान्हरौ

ग्वालिनि फिरति बिहालहिं सैाँ ।
दधि-मटुकी सिर लीन्हे डोलति, रसना रटति गोपालहिं सैाँ ॥
गेह-नेह, सुधि-देह बिसारे, जीव परयौ हरि ख्यालहिं सैाँ ।
स्याम धाम निज बास रच्यौ, रचि, रहित भई जंजालहिं सैाँ ॥
छलकत तक्र उफनि अँग-आवत, नहिं जानति तिहिं कालहिं सौँ ।
सूरदास चित ठौर नहीँ कहुँ, मन लाग्यौ नँदलालहिं सौँ ॥
॥१६३६॥२२५६॥

राग मलार

कोउ माई लैहै री गोपालहिं ।
दधि कौ नाम स्यामसुंदर-रस, बिसरि गयौ ब्रज-बालहिं ॥
मटुकी सीस, फिरति ब्रज-बीथिनि, बोलति बचन रसालहिं ।
उफनत तक्र चहूँ दिसि चितवत, चित लाग्यौ नँद-लालहिं ॥

हँसति रिसाति, बुलावति, बरजति देखहु इनकी चालहिँ।
सूर स्याम बिनु और न भावै, या बिरहिनि वेहालहिँ॥
॥१६३९॥२२५७॥

राग गौड़ मलार

ग्वालिनि प्रगट्यौ पूरन नेहु।
दधि-भाजन सिर पर धरे, कहहि गोपालहिँ लेहु॥
बन-बीथिनि अरु पुर-गलिनि, जहाँ-तहाँ हरि-नाउँ।
समुझाई समुझति नहीँ, सिख दै बिथक्यौ गाउँ॥
कौन सुनै, काकैँ स्रवन, काकैँ सुरति सँकोच।
कौन डरै पथ-अपथ तैँ, को उत्तम को पोच॥
पिये प्रेम बर बारुनी, बलकति मुख न सम्हार।
पन डगमग जित-तित धरति, बिथुरी अलक लिलार॥
मंदिर मैँ दीपक दिवै, बाहिर लखै न कोइ।
तृन परसत परगट भयौ, गुप्त कौन पै होइ॥
लज्जा तरल तरंगिनी, गुरुजन गहिरी धार।
दुहूँ कूल-परमिति नहीँ, तरत न लागी बार॥
सरिता निकट तड़ाग कैँ, निकसी कूल बिदारि।
नाम मिस्यौ सरिता भई, कौन निवारै वारि॥
बिधि भाजन ओछौ रच्यौ, सोभा-सिंधु अपार।
उलटि मगन तामैँ भई, कौन निकासनहार॥
चित आकर्ष्यौ नंद-सुत मुरली मधुर बजाइ।
जिहिँ लज्जा जग लज्जियै (सो) लज्जा गई लजाइ॥
प्रेम-मगन ग्वालिनि भई सूरज-प्रभु कैँ संग।
स्रवन नैन मुख-नासिका (ज्यौँ) कैँचुल तजै भुजंग॥
१६४०॥२२५८॥

राग सुघरई

छोटी मटुकी, मधुर चाल चलि, गोरस बेँचति ग्वालि रसाल।
हरबराइ उठि चली प्रातहीँ बिथुरे कच कुम्हिलानी माल॥
गेह-नेह-सुधि नैँकु न आवति, मोहि रही तजि भवन-जँजाल।
और कहति औरै कहि आवत, मन मोहन कैँ परी जु ख्याल॥

जोइ जोइ पूछत हैँ कह यामैँ, कहति फिरति कोउ लेहु गुपाल।
सूरदास-प्रभु कैँ रस-बस ह्वै, चतुर ग्वालिनी भई बिहाल॥
॥१६४१॥२२५९॥

राग कान्हरौ

दधि-मटुकी सिर लिये ग्वालिनी कान्ह कान्ह करि डोलै री।
बिबस भई तनु-सुधि न सम्हारै आपु बिकी बिनु मोलै री॥
जोइ जोइ पूछै यामैँ है कह लेहु लेहु कहि बोलै री।
सूरदास-प्रभु-रस-बस ग्वालिनि बिरह भरी फिरै टोलै री॥
॥१६४२॥२२६०॥

राग धनाश्री

बँचति ही दधि ब्रज की खोरी।
सिर कौ भार सुरति नहिँ आवत, स्याम स्याम टेरत भइ भोरी॥
घर-घर फिरति गुपालहिँ बँचत, मगन भई मन ग्वारि किसोरी।
सुंदर बदन निहारन कारन, अंतर लगी सुरति की डोरी॥
ठाढ़ी रही बिथकि मारग मैँ हाट-माँझ मटुकी सो फोरी।
सूरदास-प्रभु रसिक-सिरोमनि, चित-चिंतामनि लियौ अँजोरी॥
॥१६४३॥२२६१॥

राग बिलावल

नरनारी सब बूझत धाइ।
दही मही मटुकी सिर लीन्हे, बोलति हौ गोपाल सुनाइ॥
हमहिँ कहौ तुम करति कहा यह, फिरति प्रातहीँ तैँ हौ आइ।
गृह द्वारा कहुँ है कै नाहीँ, पिता, मातु, पति, बंधु न भाइ॥
इततैँ उत, उततैँ इत आवति, बिधि-मर्जादा सबै मिटाइ।
सूर स्याम मन हर्‍यौ तुम्हारौ, हम जानी यह बात बनाइ॥
॥१६४४॥२२६२॥

राग धनाश्री

कहति नंद-घर मोहिँ बतावहु।
द्वारहिँ माँझ बात यह बूझति, बार बार कहि कहाँ दिखावहु॥
याही गाउँ किधौँ औरै कहुँ, जहाँ महर कौ गेहु।
बहुत दूरि तैँ मैँ आई हौँ, कहि काहे न जस लेहु॥

अतिहीँ संभ्रम भई ग्वालिनी, द्वारेही पर ठाढ़ी।
सूरदास स्वामी सौँ अटकी प्रीति प्रगट अति बाढ़ी॥
॥१६४५॥२२६३॥

राग गौड़ मलार

नंद के द्वार नँद-गेह बूझै।
इतहिँ तैँ जाति उत, उतहिँ तैँ फिरै इत, निकट ह्वै जाति नहिँ नैँकु सूझै॥
भई बेहाल ब्रज-बाल, नँद-लाल-हित, अरपि तन मन सबै तिन्है दीन्हौ।
लोक-लज्जा तजी, लाज देखत लजी, स्याम कौँ भजी, कछु डर न कीन्हौ॥
भूलि गयौ दधि-नाम, कहति लैहो स्याम, नहीँ सुधि धाम कहुँ है कि नाहीँ।
सूर-प्रभु कौँ मिलि, मैँटि भली अनभली, चून-हरदी-रंग देह छाहीँ॥१६४६॥२२६४॥

राग रामकली

तब इक सखी प्रियतम कहति।
प्रम ऐसौ प्रगट कीन्हौ, धीर काहैँ न गहति॥
ब्रज-धरनि उपहास जहँ-तहँ, समुझि मन किन रहति।
बात मेरी सुनति नाहिँन, कतहिँ, निंदा सहति॥
मातु-पिपु, गुरुजननि जान्यौ, भली खोई महति।
सूर प्रभु कौ ध्यान चित धरि, अतिहिँ काहैँ बहति॥
॥१६४७॥२२६५॥

राग धनाश्री

आपु कहावति बड़ी सयानी।
तब तू कहति सबनि सौँ हँसि-हँसि, अब तौ प्रगटहि भई दिवानी॥
कहाँ गई चतुराई तेरी, अतिही काहैँ भई अयानी।
गुप्त प्रीति परगट तैँ कीन्ही, सुनति कछू घर-घर की बानी?॥
एकहि बेर तजी मरजादा, मातु-पिता गुरुजनहिँ भुलानी!
सुनहु सूर ऐसी न बूझियै, सीस धरे मटुकी बितत्तानी॥
॥१६४८॥२२६६॥

राग नट

सुनुरी ग्वारि मुग्ध गँवारि ।
स्याम सौँ हित भलैँ कीन्हौ, दियौ ताहि उघारि ॥
कृष्न-धन कह प्रगट कीजै, राखि सकै उबारि ? ।
अजहुँ काहे न समुझि देखति, कह्यौ सुनि री नारि ॥
ओछि बुधि तैँ करी सजनी, लाज दीन्ही डारि ।
लाज आवति मोहिँ सुनि री, तोहि कहत गँवारि ॥
ज्वाब नाहिंन आवई मुख, कहति हौँ जु पुकारि ।
सूर प्रभु कौँ पाइ कै यह, ज्ञान हृदय बिचारि ॥
॥१६४६॥२२६७॥

राग कान्हरौ

कछु कैहै कै मौनहिँ रैहै ।
कहा कहति हौँ तोसौँ तब तैँ, ताकौ ज्वाब कछू मोहिँ दैहै ॥
सुनिहैँ मातु-पिता लोगनि-मुख, यह लीला उनि सबै जनैहै ।
प्रातहिँ तैँ आई दधि बँचन, घरहिँ आजु जैहै किन जैहै ॥
मेरौ कह्यौ मानिहै नाहीँ, ऐसहिँ भ्रमि भ्रमि द्यौस बितैहै ।
मुख तौ खोलि सुनौँ तेरी बानी, भली बुरी कैसी धौँ कैहै ॥
गुप्त प्रीति काहे न करि हरि सौँ, प्रगट कियैँ कछु नफा बढ़ैहै ।
सूर स्याम सौँ प्रीति निरंतर, लाज कियैँ अंतर कछु ह्वैहै ॥
॥१६५०॥२२६८॥

राग कान्हरौ

कहा कहति तू मोहिँ री माई ।
नंद-नँदन मन हरि लियौ मेरौ, तब तैँ मोकौँ कछु न सुहाई ॥
अब लौँ नहिँ जानति मैँ, को ही, कब तैँ तू मेरैँ ढिग आई ।
कहाँ गेह, कहँ मातु पिता हैँ, कहाँ सजन, गुरुजन कहँ भाई ॥
कैसी लाज, कानि है कैसी, कहा कहति ह्वै ह्वै रिसाई ? ।
अब तौ सूर भजी नँद-लालहिँ, की लघुता की होइ बड़ाई ॥
॥१६५१॥२२६९॥

राग धनाश्री

बार बार मोहिँ कहा सुनावति ।
नैकहुँ नहीँ टरत हिरदय तैँ, बहुत भाँति समुझावति ॥

दोबल कहा देति मोहिँ सजनी, तू तौ बड़ी सुजान।
अपनी सी मैं बहुतै कीन्ही, रहति न तेरी आन॥
लोचन और न देखत काहुँ, और सुनत नहिँ कान।
सूर स्याम कौँ बेगि मिलावहु, कहत रहत घट प्रान॥
॥१६५२॥२२७०॥

राग धनाश्री

सबै हिरानी हरि-मुख हेरैँ।
घुँघट-ओट पट-ओट करैँ सखि, हाथ न हाथनि मेरैँ॥
काकी लाज, कौन कौ डर है, कहा कहे भयौ तेरैँ।
को अब सुनै, स्रवन हैँ काकैँ, निपट के निगम टेरैँ॥
मेरे नैन न हैँ नैननि की, जो पै जानति फेरैँ।
सूरदास हरि चेरी कीन्ही, मन मनसिज के चेरैँ॥
॥१६५३॥२२७१॥

राग नट

मेरे कहे मैँ कोउ नाहिँ।
कह कहौँ, कछु कहि न आवै, नैँकुहूँ न ढराहिँ॥
नैन ये हरि-दरस-लोभी, स्रवन सब्द-रसाल।
प्रथमहीँ मन गयौ तन तजि, तब भई बेहाल॥
इंद्रियनि पर भूप मन है, सबनि लियौ बुलाइ।
सूर प्रभु कौँ मिले सब ये, मोहिँ करि गए बाइ॥
॥१६५४॥२२७२॥

राग गौरी

कहा करौँ मन हाथ नहीँ।
तू मो सौँ यह कहति भली री, अपनौ चित मोहिँ देति नहीँ॥
नैन रूप अटक नहिँ आवत, स्रवन रहे सुनि बात तहीँ।
इंद्री धाइ मिलीँ सब उनकौँ, तन मय जीव रह्यौ सँगहीँ॥
मेरैँ हाथ नहीँ ये कोऊ, घट लीन्हें इक रही महीँ।
सर स्याम सँग तैँ कहूँ टरत न, आनि देहि जौ मोहिँ तुहीँ॥
॥१६५५॥२२७३॥

राग सारंग

बिकानी हरि-मुख की मुसुकानि।
पर बस भई फिरनि सँग निसि दिन, सहज परी यह बानि॥
नैननि निरखि बसीठी कीन्ही, मन मिलयौ पय पानि।
गहि रति नाथ लाज नित पुर तैं, हरि कौं सौंपी आनि॥
सुनि री सखी स्यामसुंदर की, दासी सब जग जानि।
जाइ जोइ कहत साई कृत, आयसु माथैं मानि॥
तजि कुल-लाज, लोक-मरजादा, पति-परिजन-पहिचानि।
सूर सिंधु-सरिता मिलि जैसैं, मनसा-बूद हिरानि॥
॥१६५६॥२२७४॥

राग गौरी

अब तौ प्रगट भई जग जानी।
वा मोहन सौं प्रीति निरंतर, क्यौंऽब रहैगी छानी॥
कहा करौं सुंदर मूरति, इन नैननि माँझ-समानी।
निकसति नहीं बहुत पचिहारी, रोम रोम अरुझानी॥
अब कैसैं निरवारि जाति है, मिली दूध ज्यौं पानी।
सूरदास-प्रभु अंतरजामी, उर अंतर की जानी॥
॥१६५७॥२२७५॥

राग गौरी

कहा करैगौ कोऊ मेरौ।
हौं अपनैं पतिव्रतहिं न टरिहौं, जग उपहास करौ बहुतेरौ॥
कोउ किन लै पाछैं मुख मोरे, कोउ कहि स्त्रवन सुनाइ न टेरौ।
हौं मति कुसल नाहिंनै काची, हरि-सँग छाँड़ि फिरौं भव-फेरौ॥
अब तौ जिय ऐसी बनि आई, स्याम-धाम मैं करौं बसेरौ।
तिहिं रँग सूर रँग्यौ मिलि कै मन, होइ न स्वेत, अरुन फिरि पेरौ॥
॥१६५८॥२२७६॥

राग धनाश्री

सखि मोहिं हरि-दरस-रस प्याइ।
हौं रँगी अब स्याम-मूरति, लाख लोग रिसाइ॥

स्यामसुंदर मदन-मोहन, रंग-रूप सुभाइ।
सूर-स्वामी-प्रीति-कारन, सीस रहौ कि जाइ॥

॥१६५९॥२२७७॥

राग धनाश्री

(माइ री) गोबिँद सौँ, प्रीति करत तबहिँ क्यौँ न हटकी।
यह तौ अब बात फलि, भई बीज बटकी॥
घर घर नित यहै घैर, बानी घट घट की।
मैं तौ यह सबै सही, लोक-लाज पटकी॥
मद के हस्ती समान, फिरति प्रेम लटकी।
खेलत मैं चूकि जाति, होति कला नट की॥
जल रजु मिलि गाँठि परी, रसना हरि-रट की।
छोरे तैं नाहिँ छुटति, कैक बार भटकी॥
मेटैं क्यौँहूँ न मिटति, छाप परी टटकी।
सूरदास-प्रभु की छबि, हृदय माँझ अटकी॥

॥१६६०॥२२७८॥

राग आसावरी

मैं अपनौ मन हरि सौँ जोर्‌यौ। हरि सौँ जोरि सबनि सौँ तोर्‌यौ॥
नाच कछ्यौ तब घूँघट छोर्‌यौ। लोक-लाज सब फटकि पछोर्‌यौ॥
आगैं पाछैं नीकैं हेर्‌यौ। माँझ बाट मटुकी सिर फोर्‌यौ॥
कहि कहि कासौँ करति निहोर्‌यौ। कहा भयौ कोऊ मुख मोर्‌यौ॥
सूरदास-प्रभु सौँ चित जोर्‌यौ। लोक-बेद तिनुका सौ तोर्‌यौ॥

॥१६६१॥२२७९॥

राग आसावरी

सखी री स्याम सौँ मन मान्यौ।
नीक करि चित कमल-नैन सौँ, घालि एकठाँ सान्यौ॥
लोक-लाज उपहास न मान्यौ, न्यौति आपनेहिँ आन्यौ॥
या गोबिंदचंद कैं कारन, बैर सबनि सौँ ठान्यौ॥
अब क्यौँ जात निबेरि सखी री, मिल्यौ एक पय पान्यौ।
सूरदास-प्रभु मेरे जीवन, पहिलैं ही पहिचान्यौ॥

॥१६६२॥२२८०॥

राग आसावरी

नंदलाल सौँ मेरौ मन मान्यौ, कहा करेगौ कोउ।
मैँ तौ चरन-कमल लपटानी, जो भावै सो हो॥
बाप रिसाइ, माइ घर मारै, हँसै बिराने लोग।
अब तौ स्यामहिँ सौँ रति बाढ़ी, बिधना रच्यौ सँजोग॥
जाति महति पति जाइ न मेरी, अरु परलोक नसाइ।
गिरिधर बर मैँ नैँकु न छाँड़ौँ, मिली निसान बजाइ॥
बहुरि कबहिँ यह तन धरि पैहौँ, कहँ पुनि श्रीबनबारि।
सूरदास-स्वामी कैँ ऊपर यह तन डारौँ वारि॥
॥१६६३॥२२८१॥

राग सारंग

करन दै लोगनि कौँ उपहास।
मन क्रम बचन नंद-नंदन कौ, नैँकु न छाड़ौँ पास॥
सब या ब्रज के लोग चिकनियाँ, मेरे भाएँ घास।
अब तौ यहै बसी री माई, नहिँ मानौँ गुरु त्रास॥
कैसैँ रह्यौ परै री सजनी, एक गाँव कै बास।
स्याम मिलन की प्रीति सखी री, जानत सूरजदास॥
१६६४॥२२८२॥

राग रामकली

एक गाउँ कै बास सखी हौँ, कैसैँ धीर धरौँ।
लोचन-मधुप अटक नहिं मानत, जद्यपि जतन करौँ॥
वै इहिँ मग नित प्रति आवत हैँ, हौँ दधि लै निकरौँ।
पुलकित रोम रोम, गदगद सुर, आनँद उमँग भरौँ॥
पल अंतर चलि जात, कलप बर बिरहा अनल जरौँ।
सूर सकुच कुल-कानि कहाँ लगि, आरज-पथहिं डरौँ॥
॥१६६५॥२२८३॥

राग धनाश्री

हरि देखैँ बिनु कल न परै।
जा दिन तैँ वे दृष्टि परे हैँ, क्यौँ हूँ चित उनतैँ न टरै॥

नव कुमार मनमोहन, ललना-प्रान-जिवनधन क्यौं बिसरै।
सूर गुपाल-सनेह न छाँड़ै, देह-सुरति सखि कौन करै॥
॥१६६६॥२२८४॥

राग रामकली

मेरौ मन हरि-चितवनि अरुझानौ।
फेरत कमल द्वार ह्वै निकसे, करत सिंगार भुलानौ॥
अरुन अधर- दसननि दुति राजति, मो तन मुरि मुसुकानौ।
उदधि-सुता-सुत पाँति कमल मैं, बंदन भुरके मानौ॥
इहिं रस मगन रहति निसि-बासर, हार जीति नहिं जानौ।
सूरदास चित-भंग होत क्यौं, जो जिहिं रूप समानौ॥
॥१६६७॥२२८५॥

राग रामकली

हौं सँग साँवरे के जैहौं।
होनी होइ होइ सो अबहीं, जस अपजस काहू न डरैहौं॥
कहा रिसाइ करै कोउ मेरौ, कछु जो कहै प्रान तिहिं दैहौं।
देहौ त्यागि राखिहौं यह व्रत, हरि-रति-बीज बहुरि कब बैहौं॥
का यह सूर अचिर अवनी, तनु तजि अकास पिय-भवन समैहौं।
का यह व्रज-बापी क्रीड़ा जल, भजि नंद-नंद सबै सुख लैहौं॥
॥१६६८॥२२८६॥

राग धनाश्री

तैं मेरैं हित कहति सही।
यह मोकौं सुधि भली दिवाई, तनु बिसरे मैं बहुत बही॥
जब तैं दान लियौ हरि हमसौं, हँसि-हँसि कै कछु बात कही।
काकौ घर, काकै पितु माता, काकौं तनु की सुरति रही॥
अब समुझति कछु तेरी बानी, आई हौं लै दही मही।
सुनहु सूर प्रातहिं तैं आई, यह कहि कहि जिय लाज गही।
॥१६६९॥२२८७॥

राग धनाश्री

सुनि री सखी बात इक मेरी।
तोसौं धरौं दुराइ, कहौं किहिं, तू जानहि सब चित की मेरी।

मैं गोरस लै जाति अकेली, काल्हि कान्ह बहियाँ गही मेरी।
हार सहित अँचरा गहि गाढ़ैं, इक कर गही मटुकिया मेरी॥
तब मैं कह्यौ खीझि हरि छाँड़हु, टूटहिगी मोतिनि लर मेरी।
सूर स्याम ऐसैं मोहि रिझयौ, कहा कहति तू मोसौं मेरी॥
॥१६७०॥२२८८॥

राग धनाश्री

तऊ न गोरस छाँड़ि दियौ।
चहुँ-फल-भवन, गह्यौ सारँग-रिपु बाजि धरा अथयौ॥
अमी-बचन-रुचि रटत कपट हठ झगरौ फेरि ठयौ।
कुमुदिनि प्रफुलित, हौं जिय सकुची, लै मृगचंद नयौ॥
जानि निसा सिसु-रूप बिलोकत नवल किसोर भयौ।
तब तैं सूर नैंकु नहिं छूटत, मन अपनाइ लयौ॥
॥१६७१॥२२८९॥

राग रामकली

यह कहि मौन साध्यौ ग्वारि।
स्याम-रस घट पूरि उछलत, बहुरि धरयौ सम्हारि॥
वैसैं ढँग बहुरि आई, देह-दसा बिसारि।
लेहु री कोउ नंद-नंदन, कहै पुकारि पुकारि॥
सखी सौं तब कहति तू री, को, कहाँ की नारि।
नंद कैं गृह जाउँ कित ह्वै, जहाँ हैं बनवारि॥
देखि वाकौं चकित भई, सखि बिकल भ्रम गई मारि।
∴सूर स्यामहिं कहि सुनाऊँ, गए सिर कह डारि॥
॥१६७२॥२२९०॥

राग नट

सखी वह गई हरि पैं धाइ।
तुरतहीं हरि मिले ताकौं, प्रगट कही सुनाइ॥
नारि इक अति परम सुंदरि, बरनि कापैं जाइ।
पान तैं सिर धरे मटुकी, नंद-गृह भरमाइ॥
लेहु लेहु गुपाल कोऊ, दह्यौ गई भुलाइ।
सूर-प्रभु कहुँ मिलैं ताकौं, कहति करि चतुराइ॥
॥१६७३॥२२९१॥

राग कान्हरौ

नंद-ग्राम कौ मारग बूझै है, हो कोउ दधि बँचनहारी ।
सुनहु न स्याम कठिन तन गारै, विधु-बदनी अरु हाटक-ढारी ॥
अपया को सुत ताहि बिरंचै, जाहिँ बरंचि सीस पर धारी ।
कमल कुरंग चलत बरुना भख, राख्यौ निकट निषंग सँवारी ॥
गति मराल-सावक ता पाछैँ, जावक मुकुना चुनत बिसारी ।
सूरदास-प्रभु कहत बनै नहिँ, सुख संपति बृषभानु दुलारी ॥
॥१६७४॥२२६२॥

राग बिलावल

सिर मटुकी मुख मौन गही ।
भ्रमि भ्रमि बिबस भई नव ग्वारिनि, नवल कान्ह कैँ रस उमही ॥
तन की सुधि आवति जब मनही, तबहिँ कहति कोउ लेहु दही ।
द्वारैँ आइ नंद कैँ बोलति, कान्ह लेहु किन सरस मही ॥
इत उत फिरि आवति याही मग, महरि तहाँ लगि द्वार रही ।
और बुलावति ताहि न हेरति, बोलति आनि नंह-दरही ॥
अंग-अंग जसुमति तिहिँ चरची, कहा करति यह ग्वारि वही ।
सुनहु सूर यह ग्वारि दिवानी, कब की याही ढंग रही ॥
॥१६७५॥२२६३॥

राग रामकली

कब की मह्यौ लिये सिर डोलै ।
झूठै हीँ इत उत फिरि आवै, इहाँ आनि पै बोलै ॥
मुँह लौँ भरी मथनियाँ तेरी, तोहिँ रटत भई साँझ ।
जानति हौँ गोरस कौ लेवा, याही बाखरि-माँझ ॥
इत धौँ आइ बात सुनि मेरी, कहैँ बिलग जनि मानैं ।
तेरे घर मैँ तुहीँ सयानी, और बँचि नहिँ जानैं ॥
भ्रमत-भ्रमत भ्रमि गई ग्वारिनी, बिकल भई बेहाल ।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, आइ मिले गोपाल ॥
॥१६७६॥२२६४॥

राग रामकली

भई मन माधव की अवसेर ।
मौन धरे मुख चितवति ठाढ़ी, ज्वाब न आवै फेर ॥

तब अकुलाइ चली उठि बन कौं, बोलैं सुनति न टेर।
बिरह बिबस चहुँधा भरमति है, स्याम कहा कियौ फेर॥
आवहु बेगि मिलौ नँद-नंदन, दान न करौ निवेर।
सूर स्याम अंकम भरि लीन्ही, दूरि कियौ दुख-ढेर॥
॥१६७७॥२२९५॥

राग बिबावल

साँची प्रीति जानि हरि आए। पूरन नेह प्रकट दरसाए।
लई उठाइ अंक भरि प्यारी। श्रमि-श्रसि स्रम कीन्हौ तनुगारी॥
मुख मुख जोरि अलिंगन दीन्हौ। बार बार भुज भरि उरलीन्हौ।
बृंदाबन-धनकुंज लता-तर। स्यामा-स्याम नवल-नवला वर॥
मनमोहन मोहिनि सुखकारी। कोक कला-गुन प्रगटे भारी।
छूटे-बंद अलक सिर छूटे। मोतिनि-हार टूटे, सुख लूटे॥
सूर स्याम बिपरीत बढ़ाई। नागरि सकुचि रही लपटाई।
॥१६७८॥२२९६॥

राग नट

स्यामा स्याम करत बिहार।
कुंज गृह रचि कुसुम सज्जा, छबि बरनि को पार॥
सुरत-सुख करि अंग आलस, सकुचि बसन सम्हारि।
परसपर भुज कंठ दीन्हे, बैठे हैं बर नारि॥
पीत कंचन-बरन भामिनि, स्याम घन-अनुहारि।
सूर घन अरु दामिनी, प्रकट सुख बिस्तारि॥
॥१६७९॥२२९७॥

राग कान्हरौ

राधा बसन स्याम तनु चीन्ही।
सारँग-बदन, बिलास बिलोचन, हरि सारग जानि रति कीन्ही।
सारँग-बचन, कहत सारँग सौं, सारँग-रिपु दै राखति झीनी॥
सारग पानि गहत रिपु-सारँग, सारँग कहा कहति लियौ छीनी।
सुधा पान करि कै नीकी बिधि, रह्यौ सेस फिरि मुद्रा दीन्ही॥
सूर सुदेस आहि रति-नागर, भुज आकर्षि काम कर लीन्ही।
॥१६८०॥२२९८॥

राग कान्हरौ

तुम सौँ कहा कहौँ सुंदर घन ।
या ब्रज मैँ उपहास चलत है, सुनि सुनि स्रवन रहति मनहीँ मन ॥
जा दिन सवनि पछारि, नोइ करि, मोहि दुहि नई धेनु बंसीबन ।
तुम गही बाहँ सुभाइ अपनैँ हौँ चितइ हँसि नैकु बदन-तन ॥
ता दिन तैँ घर मारग जित तित, करत चवाय सकल गोपीजन ।
सूर-स्याम अब साँच पारिहौँ, यह पतिव्रत तुम सौँ-नँद नंदन ॥
॥१६८१॥२२९९॥

राग भैरव

कहा कहौँ सुंदर घन तोसौँ ।
घेरा यहै चलावत घर-घर, स्रवन सुनत जिय सोसौँ ॥
भगिनी मातु-पिता, बाँधव अरु गुरुजन यह कहैँ मोसौँ ।
राधा कान्ह एक सँग बिलसत, मनहीँ मन अपसोसौँ ॥
कबहुँक कहैँ सवनि परित्यागौँ बूझति हौँ अब गौँ सो ।
सूर स्याम-दरसन बिनु पाएँ, नैन देत मोहिँ दोषौ ॥
॥१६८२॥२३००॥

राग रामकली

बात यह तुमसौँ कहत लजाऊँ ।
सुनि न जात घर घर कौ घेरा, काहूँ मुख न समाऊँ ॥
नर नारी सब यहै चलावत, राधा मोहन एक ।
मातुपिता सुनि सुनि अति त्रासत, मैं इक वै जु अनेक ॥
आपु जबै द्वारैँ ह्वै निकसत, देखत सबै सुगात ।
निंदत तुमहिँ सुनावत मोकौँ सुनत न नैँकु सुहात ॥
धिक नर धिक नारी, धिक जीवन, तुमहिँ बिमुख धिक देह ।
सूर स्याम यह कोउ न जानत, तन ह्वै है जरि खेह ॥
॥१६८३॥२३०१॥

राग गूजरी

स्याम यह तमसौँ क्यौँ न कहौँ ।
जहाँ तहाँ घर घर कौ घेरा, कौनी भाँति सहौँ ॥

पिता कोपि करवाल गहत कर, बंधु बधन कौं धावै।
मातु कहै कन्या कुल कौ दुख, जनि कोऊ जग जावै॥
बिनती एक करौं कर जोरे, इनि बीथिनि जनि आवहु।
जौ आवहु तौ मुरलि-मधुर-धुनि, मो जनि कान सुनावहु॥
मन क्रम बचन कहति हौं साँची, मैं मन तुमहिं लगायौ।
सूरदास-प्रभु अंतरजामी, क्यौं न करौ मन भायौ॥
॥१६८४॥२३०२॥

राग रामकली

हँसि बोले गिरिधर रस-बानी।
गुरुजन खिझैं कतहिं रिस पावति, काहे कौं पछितानी॥
देह धरे को धर्म यहै है, स्वजन कुटुंब गृह-प्रानी।
कहन देहु, कहि कहा करैंगे, अपनी सुरत हिरानी?॥
लोक लाज काहे कौं छाँड़ति, ब्रजहीं बसैं भुलानी।
सूरदास घट द्वै हैं, मन इक, भेद नहीं कछु जानी॥
॥१६८५॥२३०३॥

राग जैतश्री

ब्रज बसि काके बोल सहौं।
तुम बिनु स्याम और नहिं जानौं, सकुचि न तुमहिं कहौं॥
कुल की कानि कहा लै करिहौं तुमकौं कहाँ लहौं।
धिक माता, धिक पिता बिमुख तुव, भावे तहाँ बहौं॥
कोउ कछु करै, कहै कछु कोऊ, हरष न सोक गहौं।
सूर स्याम तुमकौं बिनु देखैं, तनु मन जीव दहौं॥
॥१६८६॥२३०४॥

राग जैतश्री

ब्रजहिं बसैं आपुहिं बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायौ॥
जल थल जहाँ रहौं तुम बिनु नहिं बेद उपनिषद गायौ।
द्वै-तन जीव-एक हम दोउ, सुख-कारन उपजायौ॥
ब्रह्म-रूप द्वितिया नहिं कोऊ, तब मन तिया जनायौ।
सूर स्याम-मुख देखि अलप हसि, आनँद-पुंज बढ़ायौ॥
॥१६८७॥२३०५॥

राग रामकली

तब नागरि मन हरष भई ।
नेह पुरातन जानि स्याम कौ, अति आनंद-भई ॥
प्रकृति पुरुष, नारी मैं वै पति, काहैं भूलि गई ।
को माता, को पिता, बंधु को, यह तौ भेंट नई ॥
जन्म-जन्म, जुग-जुग यह लीला, प्यारी जानि लई ।
सूरदास-प्रभु का यह महिमा, यातैं बिबस भई ॥
॥१६८८॥२३०६॥

राग सूही

सुनहु स्याम मेरी बिनती ।
तुम हरता तुम करता प्रभु जू, मातु पिता कौनैं गिनती ॥
गय बर मेटि चढ़ावत रासभ, प्रभुता मेटि करत हिनती ।
अब लौं करी लोक-मरजादा, मानौ थोरैं हीं दिन ती ॥
बहुरि बहुरि ब्रज जन्म लेत हौ, यह लीला जानी किन ती ।
सूर स्याम चरननि तैं मोकौं, राखत रहे कहा भिन ती ॥
॥१६८६॥२३०७॥

राग धनाश्री

देह धरे कौ यह फल प्यारी ।
लोक-लाज कुल-कानि मानियै, डरियै, बंधु पिता महतारी ॥
श्रीमुख कह्यौ जाहु घर सुंदरि, बड़े महर बृषभानु दुलारी ।
तुव अवसेर करत सब ह्वैहैं, जाहु बेगि दैहैं पुनि गारी ॥
हमहूँ जाहिं ब्रज, तुमहुँ जाहु अब, गेह-नेह क्यौं दीजै डारी ।
सूरदास-प्रभु कहत प्रिया सौं नैंकु नहीं मोतैं तुम न्यारी ॥
॥१६६०॥२३०८॥

राग जनाश्री

देह धरे कौ कारन सोई ।
लोक-लाज कुल-कानि न तजियै, जातैं भलौ कहै सब कोई ॥
मातु पिता के डर कौं मानै, मानै सजन कुटुँब सब सोई ।
तात मातु मोहूँ कौं भावत, तन धरि कै माया-बस होई ॥

सुनि बृषभानु-सुता मेरी बानी, प्रीति पुरातन राखहु गोई।
सूर स्याम नागरिहिँ सुनावत, मैँ तुम एक नाहिँ हैँ होई॥
॥१६६१॥२३०९॥

राग सारंग

अब कैसै दूजै हाथ विकाउँ।
मन-मधुकर कीन्हौ वा दिन तैँ, चरन-कमल निज ठाउँ॥
जौ जानौ और कोउ करता, तऊ न मन पछिताउँ।
जो जाकौ सोई सो जानै, नर-अघ-तारन नाउँ॥
जो परतीति होइ या जग की, परमिति छुटत डराउँ।
सूरदास प्रभु-सिंधु सरन तजि, नदी-सरन कत जाउँ॥
॥१६६२॥२३१०॥

राग बिलावल

घर पठई प्यारी अंकम भरि।
कर अपनैँ मुख परसि तिया कौ, प्रेम सहित दोऊ भुज धरि धरि॥
सँग सुख लूटि हरष भरि हिरदै, चली भवन भामिनि गज-गति ढरि।
अँग मरगजी पटोरी राजति, छबि निरखत रीझत ठाढ़े हरि॥
बेनी डुलति नितंबनि पर दोउ, छीन अंक पर वारौँ केहरि।
फिरि चितयौ तब प्यारी पिय-तनु, दुहुँ मन मन आनंद हरष करि॥
राधा हरि आधा आधा तनु, एकै ह्वै द्वै ब्रज मैँ अवतरि।
सूर स्याम-रस भरी उमँगि अँग, वह छबि देखि रह्यौ रति-पति डरि॥१६६३॥२३११॥

राग भैरव

रैनि जागि प्रीतम कैँ संग रंग भीनी।
प्रफुलित मुख-कंज, नैन-कंजरीट-मीन-मैन, बिथुरि रहे चूरनि कच बदन ओप दीनी॥
आतुर आलस जँभाति, पुलकित अति पान खाति, मद माती तन-सुधि नहिँ, सिथिलित भई बेनी।
माँग तैँ मुकुतावलि टरि, अलक संग अरुझि रही, उरगिनि सत-फन मानौ कंचुलि तजि दीनी॥

बिकसत ज्यौँ चंप-कली भोर भएँ भवन चली लटपटात प्रेम घटा
गज-गति गति लीन्ही।
आरति कौ करत नास, गिरिधर सुठि सुख की रासि, सूरदास
स्वामिनि-गुन-गन न जात चीन्ही ॥
॥१६६४॥२३१२॥

राग बिलावल

घरहिँ जाति मन हरष बढ़ायौ।
दुख डार्‍यौ, सुख अंग भार भरि, चली लूट सौ पायौ ॥
भौँह सकोरति मंद गति, नैँकु बदन मुसुकायौ।
तहँ इक सखी मिलि राधा कौँ, कहति भयौ मनभायौ ॥
कुंज-भवन हरि-संग बिलसि रस-मन कौ सुफल करायौ।
सूर सुगंध चुरावनहारौ, कैसैँ दुरत दुरायौ ॥
॥१६६५॥२३१३॥

राग जैतश्री

कह फूली आवति री राधा।
मानहुँ मिली अंक भरि माधौ, प्रगटत प्रेम अगाधा ॥
भृगुटी-धनुष नैन-सर साधे, बदन बिकास अबाधा।
चंचल चपल चारु अवलोकनि, काम नचावति ताधा ॥
जिहिँ रस सिव सनकादि मगन भए, सेस रहति दिन साधा।
सौ रस दियौ सूर-प्रभु तोकौँ, सिवा न लहति अराधा ॥
॥१६६६॥२३१४॥

राग जैतश्री

मोसैँ कहा दुरावति राधा।
कहाँ मिलि नँद-नंदन कौँ, जिनि पुरई मन की साधा ॥
व्याकुल भई फिरति ही अबहीँ, काम-बिथा तनु बाधा।
पुलकित रोम रोम गद गद, अब अँग अंग रूप अगाधा ॥
नहिँ पावत जो रस जोगी जन, जप तप करत समाधा।
सुनहुँ सूर तिहिँ रस परिपूरन, दूरि कियौ तनुदाधा ॥
॥१६६७॥२३१५॥

राग आसावरी

कहा कहत तू भई बावरी।
तू हँसि कहति सुनै कोउ औरै, कह कीन्हौ चाहति उपाव री॥
सो तौ साँच मानि यह लैहै हमहिँ तुमहिं बातैँ सुभाव री।
मेरी प्रकृति भलैँ करि जानति, मैँ तोसौँ करिहौँ दुराव री?॥
ऐसी कैहैँ होइ सखी री, घर पुनि मेरौ है बचाव री?।
सूर कहत राधा सखि आगैँ, चकित भई सुनि कथा रावरी॥
॥१६६८॥२३१६॥

राग सारंग

स्याम कौन कारे की गोरे।
कहाँ रहत काके पै ढोटा, बृद्ध, तरुन की धौँ हैँ भोरे॥
रहँई रहत कि और गाउँ कहुँ, मैँ देखे नाहिँ कहुँ उनकौँ।
कहै नहाँ समुझाइ बात यह, मोहिँ लगावति हौ तुम जिनकौँ॥
कहाँ रहौँ मैँ, वैं धौँ कहँके, तुम मिलवति हौ काहैँ ऐसी।
सुनहु सूर मोसी भोरी कौँ, जोरि जोरि लावति हौ कैसी॥
॥१६६६॥२३१७॥

राग सारंग

जाहि चली मैँ जानति तोकौँ।
आजुहि पढ़ि लीन्ही चतुराई, कहा दुरावति मोकौँ॥
इहिँ ब्रज हम तुम नंद-नँदनहू, दूरि कहूँ नहिँ जैहैँ।
मेरैँ फंद कबहुँ तौ परिहौ, मुजरा तबहीँ दैहैँ॥
उनहिँ मिलैँ बितपन्न भई अब, वे दिन गए भुलाइ।
सूर स्याम-सँग तैँ उठि आई, मोसैँ कहत दुराइ॥
॥१७००॥२३१८॥

राग सोरठ

हँसत कहत कीधौँ सत भाउ।
तेरी सौँ मैँ कछू न समुझति, कहा कह्यौ मोहिँ बहुरि सुनाउ॥
मेरी सपथ तोहिँ री सजनी, कबहूँ कछु पायौ यह भाउ।
देख्यौ नैन, सुन्यौ कहुँ स्रवननि, झूठैँ कहति फिरति हौ दाउ॥

यह कहती औरै जौ कोऊ, तासौं मैं करती अपडाउ।
सूरदास यह मोहिं लगावति, सपनेहुँ नहिं जासौं दरसाउ॥
॥१७०१॥२३१६॥

राग धनाश्री

राधे तेरौ बदन बिराजत नीकौ।
जब तू इत-उत बंक बिलोकति, होत निसा-पति फीकौ॥
भृकुटी धनुष, नैन सर, साँधे, सिर केसरि कौ टीकौ।
मनु घूँघट-पट मैं दुरि बैठ्यौ, पारधि रति-पतिही कौ॥
गति मैमंत नाग ज्यौं नागरि, करे कहति ही लीकौ।
सूरदास-प्रभु बिबिध भाँति करि, मन रिझयौ हरि पीकौ॥
॥१७०२॥२३२०॥

राग बिहागरौ

राजति राधे अलक भली री।
मुकता माँग, तिलक पन्नगि सिर, सुत समेत भष लेन चली री॥
कुमकुम-आड़ स्रवत स्रम-जल मिलि, मधु पीवत छबि-छीट चली री।
चारु उरज ऊपर यौं राजति, अरुझे अलि-कुल कमल-कली री॥
रोमावलि त्रिबली उर परसति, बाँस चढ़े नट काम बली री।
प्रीति सुहाग भुजा सिर मंडन, जघन सघन विपरित कदली री॥
जावक चरन, पंच-सर-सायक, समर जीति लै सरन चली री।
सूरदाल प्रभु कौं सुख दीन्हौ, नख-सिख राधे सुखनि फली री॥
॥१७०३॥२३२१॥

राग रामकली

सजनी कत यह बात दुरैहैं।
ऐसी मोहिं कहै जनि कबहूँ, झूठे पर दुख पैहैं॥
तो तैं प्रियतम और कौन है, जाके आगैं कैहैं।
मोकैं उचटाए कछु पैहै, बहुरि नाम नहिं लैहैं॥
यह परतीति नहीं जिय तेरैं सो कह तोहिं चुरैहौं।
सूर स्याम धैं कहा रहत हैं, काहे कौं तहँ जैहौं!॥
॥१७०४॥२३२२॥

राग धनाश्री

चतुर सखी मन जानि लई।
मोसैं तौ दुराव इहिं कीन्हौ, याकैं जिय कछु त्रास भई॥
तब यह कह्यौ हँसति री तोसैं, जनि मन मैं कछु आनै।
मानी बात कहाँ वै कहँ तू, हमहूँ उनहिं न जानै॥
अबै तनक तू भई सयानी, हम आगै की बारी।
सूर स्याम ब्रज मैं नहिं देखे, हँसत कह्यौ घर जा री॥
॥१७०५॥२३२३॥

राग बिलावल

सकुच-सहित घर कौं गई, बृषभानु-दुलारी।
महरि देखि तासौं कह्यौ, कहँ रही री प्यारी?॥
घर तौंहिं नैंकु न देखऊँ, मेरी महतारी।
डोलत लाज न आवई, अजहूँ है बारी॥
पिता आजु रिस करत हे, दे-दे कै गारी।
सुता बड़े बृषभानु की, कुल खोवनहारी।
बंधु मारन कहत हैं, तेरे ढँग का री।
सूर स्याम-सँग फिरति है, जोबन-मतवारी॥
॥१७०६॥२३२४॥

राग गौड़ मलार

कहा री कहति तू मातु मोसौं।
ऐसी बहि गई को, स्याम-सँग फिरै जो, बृथा रिस करति कह कहौं तासौं!॥
कही कौनैं बात, बोलि धौं तिहिं मात, मेरे आगैं कहै, ताहि देखौं।
तात रिस करत, भ्राता कहै मारिहैं, भीति बिनु चित्र तुम करति रेखौ॥
तुमहुँ रिस करति, कछु कहा मौंहिं मारिहौ, धन्य पितु भ्रात अरु-मातु तुमहौं।
ऐसौ लायक नंद महर कौ सुत भयौ, तिनहिं मोहिं कहति प्रभु सूर सुनहौं॥१७०७॥२३२५॥

राग गूजरी

काहैं कौं पर-घर छिनु-छिनु जाति।
घर मैं डाँटि देति सिख जननी, नाहिँन नैंकु डराति।
राधा-कान्ह कान्ह-राधा ब्रज ह्वै रह्यौ अतिहि लजाति।
अब गोकुल कौ जैबौ छाँड़ो, अपजस हू न अघाति।
तू बृषभानु बड़े की बेटी, उनकैं जाति न पाँति।
सूर सुता समुझावति जननी, सकुचति नहिं मुसुकाति॥
॥१७०८॥२३२६॥

राग कान्हरौ

खेलन कौं मैं जाउँ नहीं?
और लरिकिनी घर घर खेलहिँ, मोहीं कौं पै कहत तुहीं॥
उनकैं मातु पिता नहिं कोई, खेलत डोलतिं जहीं तहीं।
तोसी महतारी बहि जाइ न, मैं रैहौं तुमहीं बिनुहीं॥
कबहूँ मोकौं कछू लगावति, कबहुँ कहति जनि जाहु कहीं।
सूरदास बातैं अनखौहीं, नाहिँन मो पै जाति सही॥
॥१७०९॥२३२७॥

राग सारंग

मनहीं मन रीझति महतारी।
कहा भई जौ बाढ़ि तनक गई, अबनौं तौ मेरी है बारी।
झूठ हीं यह बात उड़ी है, राधा-कान्ह कहत नर-नारी।
रिस की बात सुता के मुख की, सुनत हँसति मनहीं मन भारी॥
अब लौं नहीं कछू इहिँ जान्यौ, खेलत देखि लगावौं गारी।
सूरदास जननी उर लावति, मुख-चूमति पोंछति रिस टारी॥
॥१७१०॥२३२८॥

राग सूहौ

सुता लए जननी समुझावति।
संग बिटिनिअनि कैं मिलि खेलौ, स्याम-साथ सुनि-सुनि रिस पावति॥
जातैं निंदा होइ आपनी, जातैं कुल कौं गारी आवति।
सुनि लाड़िली कहति यह तोसैं, तोकौं यातैं रिस करि धावति॥

अब समुझी मैं बात सबनि की, झूठैं ही यह बात उड़ावति।
सूरदास सुनि-सुनि ये बातैं, राधा मन अति हरष बढ़ावति॥
॥१७११॥२३२६॥

राग नट

राधा बिनय करति मनहीं मन, सुनहु स्याम अंतर के जामी।
मातु-पिता कुल-कानिहिं मानत, तुमहिं न जानत हैं जग-स्वामी॥
तुम्हरौ नाउँ लेत सकुचत हैं, ऐसैं ठौर रहौ हौं आनी।
गुरु परिजन की कानि मानियौ, बारंबार कही मुख बानी॥
कैसैं संग रहौं बिमुखनि कै, यह कहि-कहि नागरि पछितानी।
सूरदास-प्रभु कौं हिरदै धरि, गृह-जन देखि-देखि मुसुकानी॥
॥१७१२॥२३३०॥

राग धनाश्री

जब प्यारी मन ध्यान धरयौ है।
पुलकित उर, रोमांच प्रगट भए, अंचल टरि मुख उघरि परयौ।
जननी निरखि रही ता छबि कौं, कहन चहै कछु कहि नहिं आवै।
चकित भई अँग-अंग बिलोकति, दुख-सुख दोऊ मन उपजावै॥
पुनि मन कहति सुता काहू की, कै धौं यह मेरी जाई।
राधा हरि कैं रंगहिं राँची, जननि रही जिय मैं भरमाई॥
तब जानी मेरी यह बेटी, जिय अपनैं जब ज्ञान कियौ है।
सूरदास प्रभु-प्यारी की छबि देखि, चहति कछु सीख दियौ है॥
॥१७१३॥२३३१॥

राग सोरठ

राधे दधि-सुत क्यौं न दुरावति।
हौं जु कहति बृषभानु नंदिनी, काहैं जीव सतावति॥
जल-सुत दुखी, दुखी हैं मधुकर, द्वै पंछी दुख पावत।
सारँग दुखी होत बिनु सारंग, तोहिं दया नहिं पावत॥
सरँग-रिपु की नैंकु ओट करि, ज्यौं सारँग सुख सावत।
सूरदास सारँग किहिं कारन, सारँग-कुलहिं लजावत॥
॥१७१४॥२३३२॥

राग बिहागरौ

मेरी सिख स्रवन काहैँ न करति ।
अजहुँ भोरी भई रैहै, कहति तोसैँ डरति ॥
ससि निरखि मुख चलत नाहिँन, नैन निरखि कुरंग ।
कमल, खंजन, मीन, मधुकर, होत हैँ चित-भंग ॥
देखि नासा कीर लज्जित, अधर दसन निहारि ।
बिंब अरु बंधूक, बिद्रुम दामिनी डर भारि ॥
उर निरखि चकवाक बिथके, कटि निरखि बन राज ॥
चाल देखि मराल भूले, चलत तब गजराज ॥
अंग-अँग अबलोकि सोभा, मनहिँ देखि बिचारि ।
सूर मुख पट देति काहैँ न, बरष द्वादस भारि ॥
॥१७१५॥२३३३॥

राग सूही बिलावल

अब राधा तू भई सयानी ।
मेरी सीख मानि हिरदय धरि जहँ-तहँ डोलति बुद्धि-अयानी ॥
भई लाज की सामा तनु मैँ सुनि यह बात कुँवरि मुसुकानी ।
हँसति कहा मैँ कहति भली तोहिँ सुनति नहीँ लोगनि की बानी ॥
आजुहिँ तैँ कहुँ जान न देहौँ मा तेरी कछु अकथ कहानी ।
सूर स्याम कै संग न जैहौ जा कारन तू मोहिँ रिसानी ॥
॥१७१६॥२३३४॥

राग टोड़ी

भली बात बाबा आवन दै ।
कान्ह लगाइ देति मोहिँ गारी, ऐसे बड़ भए कब तैँ वै ॥
काल्हि मोहिँ मारग मैँ रोक्यौ, जाति रही सखियनि संग दधि लै ।
कहन लगे मेरौ देहु खिलौना, ता दिन लै भागी चुराइ कै ॥
छठ आठैँ मोहिँ कान्ह कुँवर सौँ, कहति प्रीति तोसैँ है ।
सूर जननि सुनि-सुनि यह बानी, पुनि-पुनि निरखि-निरखि मुख
बिहँसै ॥१७१७॥२३३५॥

राग गौरी

बड़ी भई नहिँ गई लरिकाई ।
बारेही के ढंग आजु लौँ, सदा आपनी टेक चलाई ॥

अबहीं मचलि जाइगी तब पुनि, कैसैं मोसौं जाति बुझाई।
मानी हारि महरि मन अपनैं, बोलि लई हँसि कै दुलराई॥
कंठ लगाइ लई अति हित सौं, पुनि-पुनि कहि मेरी रिसहाई।
सूरदास अति चतुर राधिका, राखि लई नीकैं चतुराई॥
॥१७१८॥२३३६॥

राग गौड़ मलार

स्याम नग जानि हिरदै चुरायौ।
चतुर बर नागरी, महा मनि लखि लियौ, प्रिय सखी संग तिहिं नहिं जनायौ॥
कृपन ज्यौं धरत धन, ऐसैं दृढ़ कियौ मन, जननि सुनि बात हँसि कंठ लायौ।
गाँस दियौ डारि, कह्यौ कुँवरि मेरी बारि, सूर-प्रभु-नाम झूठैं उड़ायौ॥१७१९॥२३३७॥

राग कल्यान

सखियनि यहै बिचार पर्‌यौ।
राधा कान्ह एक भए दोऊ, हमसौं गोप कर्‌यौ॥
चंदाबन तैं अबहीं आई, अति जिय हरष बढ़ाए।
औरै भाव, अंग-छबि औरै, स्याम मिले मन भाए॥
तब वह अखी कहति मैं बूझी, मोतन फिरि हँसि हेर्‌यौ।
जबहिं कही सखि मिले तोहिं हरि, तब रिस करि मुख फेर्‌यौ॥
औरै बात चलावन लागी, मैं वाकौं पहिचानी।
सूर स्याम कैं मिलत आजुहीं, ऐसी भई सयानी॥
॥१७२०॥२३३८॥

राग सोरठ

सुनहु सखी राधा की बातैं।
मोसौं कहति स्याम हैं कैसे, ऐसी मिलई घातैं॥
की गोरे, की कारे-रँग हरि, की जोबन, की भोरे।
की इहिं गाउँ बसत, की अनतहिं, दिननि बहुत, की थोरे॥
की तू कहति बात हँसि मोसौं, की बूझति सति-भाउ।
सपन हूँ उनकौं नहिं देखे, बाके सुनहु उपाउ॥

मोसौँ कही कौन तोसी प्रिय, तोसौँ बात दुरैहौँ।
सूर कही राधा मो आगैँ, कैसैँ मुख दरसैहौँ॥
॥१७२१॥२३३९॥

राग गौरी

यह निधरक मैँ सकुचि गई।
तब यह कह्यौ जाहि घर राधा, मैँ झूठी, तू साँच भई॥
त्यौरी भौँहनि मो तन चितवै, नैँकु रहौँ तौ करै खई।
काम-भँडार लूटि नीकैँ करि, निदरि गई, मैँ चकृत भई॥
घर धौँ जाइ कहा अब कैहै, अब कछु औरै बुद्धि नई।
सूर स्याम-सँग अँग रँग राची, मन मानौ सुख लूटि लई॥
॥१७२२॥२३४०॥

राग बिलावल

सुनि सुनि बात सखी मुसुकानी।
अब हीँ जाइ प्रगट करि दैहैँ, कहा रहै यह बात छपानी ?॥
औरनि सौँ दुराव जौ करती, तौ हम कहतीँ भई सयानी।
दाई आगैँ पेट दुरावति, बाकी बुद्धि आजु मैँ जानी॥
हम जातहिँ वह उघरि परैगी, दूध दूध, पानी सो पानी।
सूरदास अब करति चतुरई, हमहिँ दुरावति बातनि ठानी॥
॥१७२३॥२३४१॥

राग रामकली

अपनौ भेद तुम्हैँ नहिँ कैहै।
देखहु जाइ चरित तुम बाके जैसैँ गाल बजैहै॥
बड़े गुरू की बुद्धि पढ़ी वह, काहू कौँ न पत्यैहै।
एकौ बात मानिहै नाहीँ, सबकी सौँहैँ खैहै।
मैँ नीकैँ करि बूझि रही हौँ, अब बूझैँ रिस पैहै।
सुनहु सूर रस-छकी राधिका, बातनि बैर बढ़ैहै॥
॥१७२४॥२३४२॥

राग बिलावल

कहा बैर हमसौँ वह करिहै।
वाकी जाति भलैँ करि पाई, हमखौँ कहा निदरिहै॥

कैहै कहा चोरटी हमसौँ, बातहिँ बात उघरिहै।
दूर करौँ लँगराई वाकी, मेरैँ फँग जौ परिहै॥
हमसौँ बैर कियैँ कह पैहै, काज कहा पुनि सरिहै।
सूरदास मटुकी सिर लीन्हे, बहुरि वैसैंही ररिहै॥
॥१७२५॥२३४३॥

राग गौरी

चलहु सखी जैयै राधा-घर।
बूझैँ बात कहा धौँ कहै, निधरक है कै मन डर॥
कीधौँ हमहिँ देखि भजि जैहै, की उठि हमकौँ मिलिहै।
कीधौँ बात उघारि कहैगी, की मनहीँ मन गिलिहै॥
कीधौँ हँसि बोलै, की रिस करि, कीधौँ सहज सुभाइ।
कीधौँ सूर स्याम-रस-माती, जोबन-गर्ब बढ़ाइ॥
॥१७२६॥२३४४॥

राग गौरी

जुवती जुरि राधा-ढिग आईँ।
लखि लीन्ही तब चतुर नागरी, ये मोपर सब हैँ रिसहाई॥
आदर नहीँ कियौ काहू कौ, मन मैँ एक बुद्धि उपजाई।
मौन गह्यौ नहिँ बोलति तिनसौँ, बैठि रही करिकै निठुराई॥
आपुहिँ बैठि गईँ ढिग सिगरी, जब जानी यह तौ चतुराई।
सूरदास वै सखी सयानी, और कहूँ की बात चलाई॥
॥१७२७॥२३४५॥

राग जैतश्री

चतुर चतुर की भेँट भई।
वह तौ निठुर मौन ह्वै बैठी, इनि सबहिनि लखि ताहि लई॥
मुँहाचुही जुवतिनि तब कीन्ही, देख्यौ उलटी रीति ठई।
कहा हमारौ मन यह राखै, हमहीँ पर सतराइ गई॥
बूझौ याहि खूँट गहिकै, तू कहा आजु यह मौन लई।
सुनहु सूर हमसैाँ कह परदा, हम करि दीन्ही साँट सई॥
॥१७२८॥२३४६॥

राग गुंड

राधिका मौन-व्रत किनि सधायौ।
धन्य ऐसौ गुरू, कान के लगतहीँ मंत्र दै आजुहीँ यह लखायौ॥
काल्हि कछु और, प्रातहिँ कछू औरही, अबहिँ कछु और ह्वै गई प्यारी।
सुनत इहिं बात कौँ, दौरि आईँ सबै, तोहिं देखत भईँ चकृत भारी॥
अब कहौ बात या मौन कौ फल कहा, सुनि जु लीजै कछू हमहुँ जानैँ।
एकहीँ सँग भईँ सबै जोबन नई, होहु अब गुरू हम तुमहिँ मानैँ॥
देहु उपदेस हमहूँ धरैँ मौन सब, मंत्र जब लियौ तब हम न बोली।
सूर-प्रभु की नारि राधिका नागरी, चरचि लीन्हौ मोहिँ करति ठोली॥
॥१७२९॥२३४७॥

राग मारू

की गुरू कहौ की मौन छाँड़ौ।
हमहिँ मूरख बदति, आप ये ढंग सधति, पाइ अब मदति, हठ कतहिँ माँडौ॥
एकही संग हम तुम सदा रहति हैँ, आजुहीँ चटकि तू भई न्यारी।
भेद हमसौँ कियौ मौन व्रत कह लियौ, और कोऊ बियौ कह देहि गारी॥
कहा तोहिँ भयौ, तुव प्रकृति कौनैँ हरी, रीति यह नई तैँ हीँ चलाई।
सूर सुनि नागरी, गुननि की आगरी, निठुरई सौँ बात कहि सुनाई॥
॥१७३०॥२३४८॥

राग गौरी

तुम प्रियतम कै बैरिनि मेरी।
वासौँ कहति मिली जो मारग, यह मोसौँ अति कही अनेरी॥
कहति कहा स्यामहिँ मिलि आई, मैँ जकि रही सौँह मोहिँ तेरी।
मेरैँ अँग छबि और कहति कछु, जुवती सुनत रहीँ मुख हेरी॥
मैँ जिनकौँ सपनेहुँ नहिँ देख्यौ, तिनकी बात कहति फिरि फेरी।
सूरदास गुन-भरी राधिका, महिमा को जानैँ इहिँ केरी॥
॥१७३१॥२३४९॥

राग कल्याल

तुम सौं कछु दुराव है मेरौ।
कहाँ कान्ह, कहँ मैं सुनि सजनी, ब्रज-घर-घर है घैरौ॥
और कहत सब मोहिं न ब्यापै, तुमहुँ कहौ यह बानी।
आदर नहीं कियौ याही तैं, तुम पर अतिहिं रिसानी॥
हम तौ नहीं कह्यौ कछु तोसौं ताही पर रिस करती।
सूर तबहिं हमसौं जौ कहती, तेरी घाँ ह्वै लरती॥
॥१७३२॥२३५०॥

राग रामकली

सखी तू राधेहिं दोष लगावति।
तेरौ स्याम कहाँ इन देखे, बातनि बैर बढ़ावति॥
हम आगैं झूठी नहिं कैहै, सखियनि सैन बतावति।
ऐसी बात अरी मुख तेरैं, कैसैं धौं कहि आवति॥
भेदहिं भेद कहति है बातैं, ऐसैं मनहिं जनावति।
सूर स्याम तैं देखे नाहीं, कीधौं हमहिं दुरावति॥
॥१७३३॥२३५१॥

राग नट नारायन

काकौ काकौ मुख माई बातनि कौं गहियै।
पाँच की सात लगायौ, झूठो झूठी कै बनायौ, साँची जौ तनक होइ, तौलौं सब सहियै॥
बातनि गह्यौ अकास, सुनत न आवै साँस, बोलि तौ कछु न आवै, तातैं मौन गहियै॥
ऐसैं कहँ नर नारि, बिना भीति चित्रकारि, काहे कौं देखे मैं कान्ह कहा कहौ कहियै॥
घर घर यहै घैर, बृथा मोसौं करैं बैर, यह सुनि सुनि स्रौन, हिरदय दहिए।
सूरदास बरु उपहास होइ सिर मेरैं, नँद कौ सुवन मिलै तौ पै कहा चहियै॥१७३४॥२३५२॥

राग गुंड मलार

दुरत नहिं नेह अरु सुगँध-चोरी।
कहा कोउ कहै, तू सुनति काहै, तनहिं कत दहै, सुनि सीख मोरी॥

लोग तोहिँ कहत हैँ, पाप कौँ गहत हैँ, कहा धौँ लहत हैँ, सुनहु-
मोरी।

खरिकहूँ नहिँ मिले, कहुँ कहू अनभले, करन दै गिले, तू दिननि
थोरी॥

नंद कौ सुवन अरु सुता बृषभानु की, हँसत सब कहैँ चिरजीव
जोरी।

सूर-प्रभु कहाँ, तू कहाँ अपनैँ भवन, मैँ लखी तोहिँ तोसी न
औरी॥१७३५॥२३५३॥

राग बिलावल

कैसे हैँ नँद-सुवन कन्हाई॥
देखे नहीँ नैन-भरि कबहूँ, ब्रज मैँ रहत सदाई॥
सकुचति हौँ इक बात कहति तोहिँ, सो नहिँ जाति सुनाई।
कैसैहुँ मोहिँ दिखावहु उनकौँ, यह मेरैँ मन आई॥
अतिहीँ सुंदर कहियत हैँ वै, मोकौँ देहु बताई।
सूरदास राधा की बानी, सुनत सखी भरमाई॥
॥१७३६॥२३५४॥

राग धनाश्री

सुनहु सखी राधा की बानी।
ब्रज बसि हरि देखे नहिँ कबहूँ लोग कहत कछु अकथ कहानी॥
यह अब कहति दिखावहु हरि कौँ, देखहु री यह अचिरज मानी।
जो हम सुनति रहीँ सो नाहीँ, ऐसैँ ही यह बायु बहानी॥
ज्वाब न देत बनै काहू सौँ, मन मैँ यह काहू नहिँ मानी।
सूर सबै तरुनी मुख चाहतिँ, चतुर सौँ चतुराई ठानी॥
॥१७३७॥२३५५॥

राग बिलावल

सुनि राधे तोहिँ स्याम दिखैहैँ।
जहाँ तहाँ ब्रज-गलिनि फिरत हैँ, जब इहिँ मारन ऐहैँ॥
जबहीँ हम उनकौँ देखैँगी, तबहीँ तोहिँ बुलैहैँ।
उनहूँ कैँ लालसा बहुत यह, तोहिँ देखि सुख पैहैँ॥
दरसन तैँ धीरज जब रैहै, तब हम तोहिँ पत्यैहैँ।
तुमकौँ देखि स्याम सुंदर घन, मुरली मधुर बजैहैँ॥

तनु त्रिभंग करि अंग अंग सैाँ, नाना भाव जनैहैँ।
सूरदास-प्रभु नवल कान्ह बर, पीतांबर फहरैहैँ॥
॥१७३८॥२३५६॥

राग गौड़ मलार

नंद-नंदन-दरस जबहिँ पैहौ।
एक द्वै तीनि तजि, चारि बानी मेटि, पाँच छह निदरि, सातै भुलैहौ॥
आठहू गाँठि परिहै, नवहु दस दिस भूलिहौ, ग्यारहौ रुद्र जैसैँ।
बारहौ कला तैँ तपनि तन तैँ मिटति, तेरहौ रतन-मुख छबि न तैसैँ॥
निपुन चौदह, बरन पंद्रहो सुभग अति, बरष सोडष सतरहो न रैहै।
जपत अट्ठारहैँ भेद उनइस नहीँ, बीसहू बिसै तैँ सुखहि पैहै॥
नैन भरि देखि जीवन सफल करि लेखि, ब्रजहिँ मैँ रहत तौँ नहीँ जाने।
सूर-प्रभु चतुर, तुमहूँ महा चतुर हौ, जैसी तुम तैसे वोऊ सयाने॥१७३९॥२३५७॥

राग देवगंधार

मन मन हँसति राधिका गोरी।
ऐसी स्याम रहत ब्रज-भीतर, पूछति है ह्वै भोरी॥
तुम उनकौँ कहुँ देख्यौ है, कै, सुनी कहति हौ बात।
चतुराई नीकैँ गहि राखी, कहति सखी मुसुकात॥
कबहूँ तौ काहूँ फँग परिहौ, तबहीँ लीजै चीन्हि।
सूर स्याम कौ पीतांबर मेरौ, बेसरि लीजौ छीन्हि॥
॥१७४०॥२३५८॥

राग नट

यह सुनि हँसि चलीँ ब्रज-नारि।
अतिहिँ आईँ गरब कीन्हे, गईँ घर झख मारि॥

कबहुँ तौ हम देखिहैं, इक संग राधा-कान्ह।
भेद हमकौं कियौ राधा, निठुर भई निदान॥
बीस बिरियाँ चोर की तौ, कबहुँ मिलिहै साहु।
सूर सब दिन चोर कौ कहुँ, होत है निरबाहु॥
॥१७४१॥२३५६॥

राग कान्हरौ

भेद लियौ चाहति राधा सौं।
बैठि रहौ अपनैं घर चुपकैं, काम कहा बाधा सौं॥
यह मन दूर धरौ अपनौ, बड़ बोलि गईं कह कीन्हौ।
कैसैं निभँय रही सबनि सौं, भेद न काहुहिं दीन्हौ॥
वह कैसैं फँग परै तुम्हारैं, वाके घात न जानौ।
सूर सबै तुम बड़ी सयानी, मोहिं नहीं तुम मानौ॥
॥१७४२॥२३६०॥

राग बिलावल

फेर पारि देखौ मैं धरिहौं।
सुनि री सखी प्रतिज्ञा मेरी, तिहि दिन तोसौं लरिहौं॥
हमकौं निदरि रही है राधा, रिसनि रही मैं जरि हौं।
तब मेरैं मन धीरज ऐहै, चोरी करत पकरिहौं॥
राति दिवस मोहिं चैन नहीं अब, उनकौं देखत फिरिहौं।
सूरदास स्वामी के आगैं, नीकैं ताहि निदरिहौं॥
॥१७४३॥२३६१॥

राग नट नारायन

गोपी यहै करतिं चवाउ।
देखौ धौं चतुराइ वाकी, हमहिं कियौ दुराउ॥
लरिकई तैं करति ढँग, तब रहे सति भाउ।
अब करति चतुराई जानैं, स्याम पढ़ए दाउ॥
कहाँ लौं करिहै अचगरी, सबै ये उपजाउ।
आजु बाँची मौन धरि ज्यौं, सदा होत बचाउ॥
दिवस चारिक भोर पारहु, रहौ एक सुभाउ।
सूर कालिहिं प्रगट ह्वै है, करन दै अपड़ाउ॥
॥१७४४॥२३६२॥

राग सूहा बिलावल

कहा कहति तू बात अयानी ।
तुम यह कहति सबै वह जानति, हम सबतैँ वह बड़ी सयानी ॥
सात बरष तैँ ये ढँग सीखे, तुम तौ यह आजुहिँ है जानी ।
वाके छंद-भेद को जानै, मीन कबहिँ धौँ पीवत पानी ॥
हरि के चरित सबै उहिँ सीखे, दोऊ हैँ वे बारहबानी ।
कालिह गईँ वाकैँ घर सब मिलि, कैसी बुद्धि मौन की ठानी ॥
केती कही नैँकु नहिँ बोली, फिरि आईँ तब हमहिँ खिसानी ।
सूर स्याम-संगति की महिमा, काहू कौँ नैँकुहु न पत्यानी ॥
॥१७४५॥२३६३॥

राग मारू

तब राधा सखियनि पैँ आई ।
आवत देखि सबनि मुख मूँद्यौ, जहँ-तहँ रहीँ अरगाई ।
मुख देखत सब सकुचि गईँ, यह, कहा अचानक आई ॥
करति रहीँ चुगुली हम याकी, तरुनी गईँ लजाई ॥
अति आदर बैठक दीन्ही, कह्यौ कहाँ तुम आईँ ।
कहा आजु सुधि करी हमारी, सूर स्याम-सुखदाई ॥
॥१७४६॥२३६४॥

राग धनाश्री

मैँ कह आजु नवै री आई ।
बहुतै आदर करति सबै मिलि, पहुने की पहुनाई ॥
कैसी बात कहति तू राधा, बैठन कौँ नहिँ कहियै ।
तुम आईँ अपनै घर तैँ ह्याँ, हमहुँ मौन धरि रहियै ॥
जानि लई बृषभानु-सुता हँसि, तरक कह्यौ तुम कीन्हौ ।
सूरदास ता दिन कौ बदलौ, दाउँ आपनौ लीन्हौ ॥
॥१७४७॥२३६५॥

राग धनाश्री

दाउँ घाउँ तुमहीँ सब जानति ।
सदा मानि तुमकौँ हम आईँ, अबहूँ तैसैँहि मानति ॥

तुम वह बात गाँस करि राखी, हमकौं गई भुलाइ।
ता दिन कह्यौ नहीं मैं जानौं, मानि लई सतिभाइ॥
चोर सबनि चौरै करि जानै, ज्ञानी मन सब ज्ञानी।
सूरदास गोपिनि की बानी, सुनि राधा मुसुकानी॥
॥१७४८॥२३६६॥

राग मारू

सखी यह बात तुम कही साँची।
जाकैं हिरदय जौन, कहै मुख तैं तौन, कैसैं हरि कौन, कही लीक खाँची॥
हरखि ब्रज-नारि भरि लेति अँकवारि सब कहति तू कहा यह बात जानै।
हम हँसत कहति, तू रिस कहा गहति री, नागरी राधिका बिलग मानै।
तुमहिं उलटी कहौ, तुमहिं पलटी कहौ, तुमहिं रिस करतिं, मैं कछु न जानौं।
सूर-प्रभु कौ नाम मोहिं तुमहीं कह्यौ, स्रवन यह सुन्यौ तुम कछू-मानौ॥१७४९॥२३६७॥
